प्राचीन भारत का राजनैतिक इतिहास

6494

हेमचन्द्र रायचौधरी

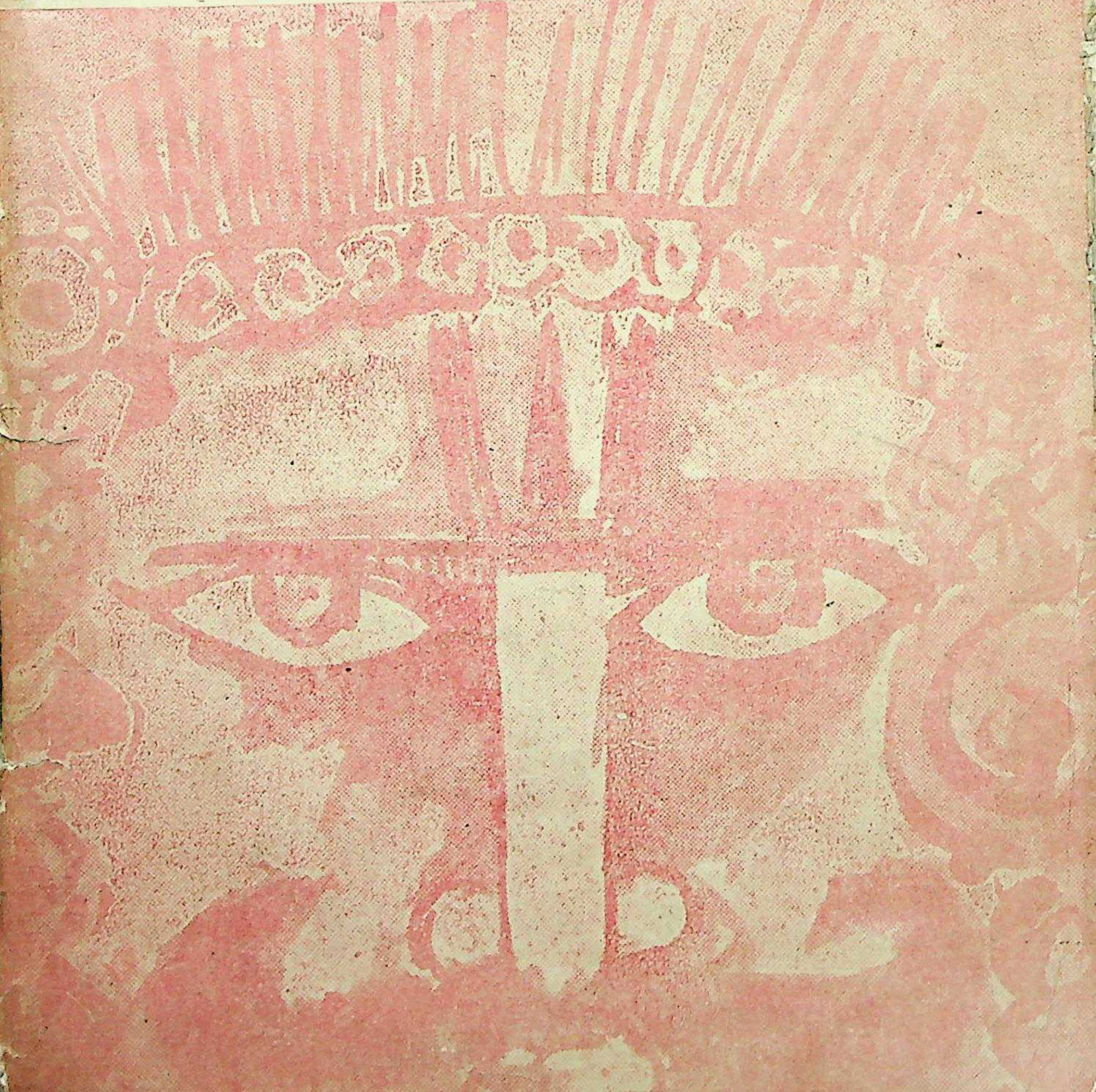

प्राचीन भारत का राजनैतिक इतिहास

लेखक

डॉ० हेमचन्द्र रायचौधरी

एम० ए०, पी-एच० डी०

State Museum Library Lucknow
6595

APR. 97 ☎ 224836
Rama Book Depot
Book Market. Aminabad
LUCKNOW.

किताब महल

जहाँ तक मुझसे बन पड़ा है, मैंने इस सम्बन्ध में हुई तमाम खोजों से लाभ उठाने की चेष्टा की है। कुछ राजवंशों—विशेषतया सीथियन-काल के राजवंशों—से सम्बन्धित प्रश्नों पर मैंने अनेक बार विचार किया है और शाहदौर, मैरा, खालात्से, नागार्जुनीकोंडा, गुणाइघर और ऐसे ही दूसरे स्थानों से प्राप्त शिलालेखों का अध्ययन कर पुस्तक में नयी सामग्री जोड़ी है। साथ ही, विवादास्पद विषयों से अपनी दृष्टि-विशेष स्पष्ट करने के लिए पाद-टिप्पणियाँ और अनुक्रमणिकायें भी दी हैं।

मैंने इस प्रकार हर बार नयी से नयी उपलब्ध सामग्री पुस्तक में सम्मिलित की है और थोड़ी-सी भी पुरानी पड़ गई सामग्री पुस्तक से निकाल दी है।

यहाँ श्री अडवानी और अन्य व्यक्तियों द्वारा भिलसा से प्राप्त कुछ ताम्र-सिक्कों का उल्लेख आवश्यक है। इनकी सीधी ओर सिंह अंकित है और सम्राट् का नाम 'रामगुप्त' पढ़ा गया है। पर, इस सम्बन्ध में कोई निश्चित स्थापना अभी तक नहीं हो सकी है। बात यह है कि उपलब्ध साक्ष्य से स्पष्ट नहीं होता कि यह 'रामगुप्त' कोई स्थानीय राजकुमार था, अथवा गुप्त-सम्राटों का कोई सीधा वंशधर। यहीं प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा कराई गई कौशाम्बी की खुदाई में घोष्ठीराम-मठ से प्राप्त बताई गई एक मुद्रा-विशेष की भी चर्चा अपेक्षित है। मुद्रा पर प्रसिद्ध हूण-शासक तोरमाण का नाम है और इससे कृष्ण-तृतीय राष्ट्रकूट के समकालीन जैन सोमदेव के इस साक्ष्य की पुष्टि होती है कि हूण गंगा की घाटी में बहुत दूर तक घुसते चले गये थे। चिओनिताई के ग्रमबेटस को कई विद्वानों ने कुषाण-शासक माना है; पर, इस विषय में भी निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता।

सारांश यह है कि इस देश के आरम्भिक इतिहास के वर्णपट के कुछ अदृश्य बिन्दुओं पर अब तक घनांधकार का जो गहरा पर्दा पड़ा हुआ है, उसे किसी जादूगर की छड़ी या ओझा के मंत्र-तंत्र से नहीं हटाया जा सकता। यदि ऐसा चमत्कार किसी प्रकार सम्भव हो, तो भी लेखक के रूप में मुझे यह स्वीकार करने में कोई संकोच नहीं कि मुझमें ऐसी कोई विलक्षण क्षमता नहीं है।

—लेखक

विषय-सूची

भाग १ : परीक्षित के राज्यारोहण से बिम्बिसार के राज्याभिषेक तक

अध्याय पृष्ठ
१. प्रस्तावना ३
२ कुरु तथा विदेह १२
३. महाजनपद तथा राजतन्त्र ७५

भाग २ : बिम्बिसार के राज्याभिषेक से गुप्त-वंश के अन्त तक

४. प्रस्तावना १३७
५. मगध का उत्थान १४१
६. फारस और मैसीडोनिया के आक्रमण १७८
७. मौर्य-साम्राज्य : दिग्विजय का युग १९५
८. मौर्य-साम्राज्य : धम्मविजय का युग और उसका ह्रास २३८
९. बैम्बिक-शुग-शासन और बैक्ट्रियन यूनानी २६९
१०. मगध तथा भारत-यूनानी राजसत्ताओं का पतन २९०
११. उत्तर भारत में सीथियन-शासन ३१५
१२. दक्षिणी तथा पश्चिमी भारत में सीथियन शासन ३५८
१३. गुप्त-साम्राज्य : गुप्त-शक्ति का उदय ३९१
१४. गुप्त-साम्राज्य (क्रमशः) : विक्रमादित्यों का युग ४११
१५. गुप्त-साम्राज्य (क्रमशः) : उत्तर गुप्त-सम्राट् ४३४

वंशानुक्रमिक एवं समकालिक सारणियाँ

परीक्षित-वंश ३९
वैदिक गुरुओं का उत्तराधिकार ४२
प्रद्योत की पारम्परिक वंशावली १६५
सम्भावित तिथिक्रम-चक्र (बिम्बिसार तथा शिशुनाग काल) १६९
मौर्य-वंशावली २६८
प्रारम्भिक सातवाहन ३०४
मथुरा के क्षत्रप ३२६

अध्याय पृष्ठ

पल्लव ३७१
उज्जैन के शक-नरेशों की वंशावली ३८०
वाकाटकों की वंशावली ४२१
प्रारम्भिक गुप्त-सम्राट् ४४६
अन्तिम गुप्त-सम्राटों की वंशावली ४५७
समकालिक सारणी ४८०

परिशिष्ट, अनुक्रमणिका आदि ४५८

परिशिष्ट क : अशोक के धर्म-प्रचार का पश्चिमी एशिया में प्रभाव ४५८
परिशिष्ट ख : कनिष्क और रुद्रदामन की तिथियों के सम्बन्ध में एक टिप्पणी ४६१
परिशिष्ट ग : उत्तर गुप्त राजाओं पर एक टिप्पणी ४६५
परिशिष्ट घ : प्रारम्भिक गुप्त-साम्राज्य का पतन ४६७
परिशिष्ट च : विंध्य पर्वत-पार के भारतीय राज्यों, जनों तथा वंशों आदि की क्रमिक सूची ४७६
सन्दर्भ-अनुक्रमणिका ४८१
सामान्य अनुक्रमणिका ४८७

मानचित्र

१. जनक के काल में भारत ४४-४५
२. प्राचीन दक्षिणापथ ७०-७१
३. प्राचीन भारत और पूर्वी ईरान के महाजनपद ७४-७५
४. भारतवर्ष १५०-१५१
५. उत्तर गुप्त-राजाओं के काल में भारत ४३६-४३७

भाग १

(परीक्षित के राज्यारोहण से बिम्बिसार के राज्याभिषेक तक)

१

प्रस्तावना

१. प्राक्कथन

भारत के इतिहास पर प्रकाश डालनेवाले लेखकों में किसी ऐसे विद्वान् ने जन्म नहीं लिया जिसने थ्यूसीडाइड्स अथवा टैसीटस की भाँति भावी पीढ़ियों को ध्यान में रखकर प्राचीन भारत के वास्तविक इतिहास पर किसी प्रकार का कोई प्रकाश डाला हो। फिर भी, अनेकानेक विद्वानों एवम् पुरातत्त्ववेत्ताओं के धैर्ययुक्त अनुसन्धान के फलस्वरूप हमें भारत के प्राचीन इतिहास की पुनर्रचना के लिए पर्याप्त एवम् महत्त्वपूर्ण सामग्री प्राप्त हुई है। ज्ञान के इस संचित एवम् निरन्तर बढ़ते हुए भण्डार को छाँटने तथा क्रमबद्ध करने की दिशा में सर्वप्रथम उल्लेखनीय प्रयास डॉ० विन्सेन्ट स्मिथ ने किया था; परन्तु तत्सम्बन्धी कथाओं में किसी गम्भीर इतिहास को ढूंढ़ निकालने में असफल रहने पर इस महान् इतिहासकार ने भी यमुना-तट पर कौरवों तथा पाण्डवों के बीच हुए महाभारत-युद्ध के तुरन्त बाद की घटनाओं की उपेक्षा कर अपना इतिहास सातवीं शताब्दी ईसापूर्व के मध्य से आरम्भ किया है। परन्तु मैं सतत् इस बात की कामना करता रहा हूँ कि भारत के प्राचीन वंशानुगत इतिहास की एक ऐसी रूपरेखा तैयार की जाये जिसमें भारतीय इतिहास का 'उपर्युक्त उपेक्षित युग भी सम्मिलित हो। यही कारण है कि मैंने अपनी पुस्तक को राजा परीक्षित के राज्यारोहण से प्रारम्भ किया है, क्योंकि यह घटना, महाकाव्य एवम् पौराणिक कथाओं के अनुसार, महाभारत-युद्ध के कुछ ही समय बाद घटी थी।

परीक्षित-काल तथा उत्तर परीक्षित-काल के सम्बन्ध में वीबर, लासेन, ईर्गलिग, कालैण्ड, ओल्डेनबर्ग, जैकोबी, हॉप्किन्स, मैक्डोनल, कीथ, डेविड्स, फ़िक, पार्जिटर; भण्डारकर तथा अन्य इतिहासकारों ने महत्त्वपूर्ण सामग्री प्रस्तुत की है। परन्तु, मेरा विश्वास है कि ब्राह्मण तथा ब्राह्मणेतर साहित्य से उपलब्ध सामग्री के आधार पर परीक्षित से बिम्बसार तक के राजनीतिक इतिहास की रूपरेखा तैयार करने का प्रयास अगले पृष्ठों में पहली ही बार किया जा रहा है।

२. मूलस्रोत

दुर्भाग्यवश उत्तर परीक्षित-काल या पूर्व बिम्बिसार-काल का ऐसा कोई भी शिलालेख अथवा सिक्का अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है जिसे निश्चयात्मक रूप से उस

युग का माना या कहा जा सके। दक्षिण भारत से प्राप्त जो धातुपत्र जनमेजय-काल[1] के समझे जाते रहे हैं, वे अब कल्पित या असत्य प्रमाणित हो चुके हैं। अतः हमें साहित्यिक सामग्री के लिए मुख्य रूप से वेदों तथा उपनिषदों पर ही निर्भर करना पड़ेगा। परन्तु दुर्भाग्यवश यह साहित्य पूर्णतया भारतीय साहित्य है और पाश्चात्य विद्वानों के वे लेख, जिनकी सहायता से उत्तर बिम्बिसारकालीन इतिहास को पुनःजीवित करने में किसी पुरातत्त्व-अनुसन्धान से भी अधिक योग मिलता है, भारतीय साहित्य की पुष्टि में अधिक सहायक नहीं हुए हैं। इसमें सन्देह नहीं कि मोहनजोदड़ो व हड़प्पा में हुई खोजों से प्राचीन भारत के इतिहास से सम्बन्धित वेदों एवम् उपनिषदों की उक्तियों की पुष्टि होती है। किन्तु, इस अनुसन्धान-कार्य से जिस सभ्यता का पता चलता है, वह सम्भवतः पूर्व परीक्षित-काल की सौवीर, सोवीर अथवा सौफ़ीर सभ्यता[2] थी और वहाँ जो भी सामग्री प्राप्त हुई है, उससे तत्कालीन राजनैतिक इतिहास—विशेतया मध्यदेश अथवा गंगा की घाटी से सम्बन्धित इतिहास—की रचना में किसी प्रकार की प्रत्यक्ष सहायता नहीं मिलती।

वैसे उत्तर परीक्षित-काल तथा पूर्व बिम्बिसार-काल के इतिहासकारों के लिए उपयोगी भारतीय साहित्य को ५ वर्गों में बाँटा जा सकता है—

१. उत्तर परीक्षित तथा पूर्व बिम्बिसार काल का ब्राह्मण साहित्य। यह साहित्य प्राचीन जातियों एवम् राजवंशों से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त करने में सहायक सिद्ध हुआ है। इस साहित्य में निम्न ग्रन्थ सम्मिलित हैं—

(अ) अथर्ववेद का अन्तिम भाग।
(ब) ऐतरेय, शतपथ, पंचविंश तथा अन्य ब्राह्मण ग्रन्थ।[3]
(स) वृहदारण्यक का अधिकांश भाग, छांदोग्य तथा अन्य उपनिषद्।

उपयक्त ग्रन्थ उत्तर परीक्षित-काल के हैं। इस तथ्य की पुष्टि इस बात से होती है कि इनमें राजा परीक्षित, उनके पुत्र जनमेजय तथा जनमेजय के उत्तराधिकारी अभिप्रतारिण एवम् विदेह के राजा जनक (जिनके दरबार में ऋषियों-मुनियों ने एकत्रित होकर राजा परीक्षित के वंश पर विचार-विमर्श किया था) का बार-बार उल्लेख किया गया है। इसी प्रकार डॉ० राजेन्द्रलाल मित्र[4], प्रो० मैक्डोनल[5] तथा अन्य योग्य आलोचकों ने सिद्ध कर दिया है कि यह ग्रन्थ पूर्व बौद्धकालीन थे और इस आधार पर उन्हें पूर्व बिम्बिसार-काल से सम्बन्धित भी कहा जा सकता है।

२. दूसरे वर्ग में ब्राह्मण साहित्य का वह भाग आता है जिसका कोई काल निश्चित नहीं किया जा सकता। परन्तु, विद्वानों के मतानुसार इस वर्ग का साहित्य उत्तर

---

[1] *Ep. Ind.*, VII. App., pp. 162-163; *IA*, III, 268; IV, 333.

[2] *Cf. AI*, XIII. 228; I. *Kings*. 9, 28; 10, 11.

[3] शतपथ ब्राह्मण के १३वें काण्ड के गीतों एवं गाथाओं का विशेष महत्त्व है। ऐतरेय की अष्टम पंचिका भी महत्त्वपूर्ण है।

[4] छांदोग्य उपनिषद् का अनुवाद, p. 23-24.

[5] संस्कृत साहित्य का इतिहास, pp. 189, 202-203, 226.

बिम्बसार-काल का है। इसमें रामायण, महाभारत और पुराण आते हैं। वर्तमान रामायण में २४,००० श्लोक अथवा पद हैं[1], 'परन्तु कात्यायनीपुत्र-कृत 'ज्ञान-प्रस्थान' की टीका महाविभाषा के अनुसार प्रथम अथवा द्वितीय शताब्दी में भी रामायण में केवल १२ हजार श्लोक थे।[2] इसमें बुद्ध तथागत[3] का ही उल्लेख नहीं है, वरन् यवनों (यूनानियों) और शकों (सीथियन्स) के संयुक्त दलों से हुए हिन्दुओं के संघर्ष "शकान् यवन मिश्रितान्"[4] का भी स्पष्ट अंकन है। रामायण के किष्किन्धा कांड[5] में सुग्रीव ने यवनों के देश तथा शकों के नगरों को कुरुदेश तथा मद्रदेश के बीच बतलाया है। स्पष्ट है कि उस समय यवनों व शकों का पंजाब के भूभाग पर अधिकार था। लंकाकाण्ड[6] में मन्दराचल या गोवर्द्धन को उठाने का भी उल्लेख **'परिगृह्य गिरिं दोर्भ्यां वपुर्विष्णोर्विडम्बयन्'**[7] के रूप में मिलता है।

जहाँ तक महाभारत का प्रश्न है, हॉप्किन्स[8] लिखते हैं—"बुद्ध का प्रभाव घट चुका था।" उक्त तथ्य ग्रन्थ की उन पंक्तियों से सिद्ध होता है जिनमें एडूको अथवा बौद्ध स्मारकों की ओर तिरस्कारपूर्ण ढंग से संकेत करते हुए उन्हें देवालयों का स्थान ग्रहण करनेवाला बतलाया गया है। III, 190,65 में इसी का उल्लेख इस प्रकार किया गया है—"लोग एडूकों की पूजा करेंगे और मन्दिरों का तिरस्कार' *ib*.67. में, "और यह पृथ्वी देवालयों से सुसज्जित रहने के स्थान पर एडूकों से पट जायेगी।" महाभारत में व्यक्त इन विचारों से बौद्ध ग्रन्थ चतुर्महाराजिका XII, 339,40 तथा इसी ग्रन्थ में निहित बौद्ध दर्शन की तुलना की जानी चाहिये।"

'ग्रन्थ में यूनानियों को पश्चिमी देशों का निवासी बतलाया गया है और उनके पतन की ओर संकेत किया गया है⋯और सम्भावित जातियों की औपचारिक सूची

---

[1] १. ४. २—चतुर्विंश सहस्राणि श्लोकानाम् उक्तवान् ऋषिः।

[2] *JRAS*, 1907, pp. 99ff. *Cf. Bunyiu Nanjio's Catalogue*, No. 1263.

[3] II. 109. 34.

[4] I. 54. 21.

[5] IV. 43. 11-12. दक्षिण के वैजयन्तपुर का भी उल्लेख आया है। (II. 9. 12), द्रविड़ (*Ibid*., 10.37), मलय और दर्दुर (*Ibid*., 91. 24), मुरची‌पत्तन (Muziris, Cranganore, IV. 42. 3), दकन के निवासियों के रीति-रिवाज (II. 93. 13), यवद्वीप (जावा) के सात उन्नतिशील राज्य, सुवर्णद्वीप (सुमात्रा) (IV. 40, 30) में तथा कर्कटक लग्न (II. 15. 3)।

[6] 69.32; *Cf*. मत्स्य, 249, 53; भागवत, X, 25; महाभारत III. 101. 15.

[7] अन्य पौराणिक संदर्भों के लिए *Calcutta Review*, March, 1922, pp. 500-502 देखिये। सुत्ती के लिए Hopkins, *JAOS*., 13, 173 और 'empire' के लिए रामायण, II. 10. 36. देखिये।

[8] *The Great Epic of India*, pp. 391-93

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

में रोमन अथवा रोमक जाति का केवल एक बार उल्लेख किया गया है, (II, 51.17) और इस प्रकार उन्हें यूनानियों, पर्सियनों (पह्लवों), जिनका उल्लेख बार-बार मिलता है—से स्पष्ट रूप से भिन्न बतलाया गया है (III. 188,35), पर सीथियनों, यूनानियों तथा बैक्ट्रियनों के बारे में एक स्पष्ट भविष्यवाणी की गई है कि आने वाले भयानक युग में ये जातियाँ बड़े अनाचारपूर्ण ढंग से राज्य करेंगी। ये उद्धरण इतने स्पष्ट हैं कि न तो इनकी अवहेलना की जा सकती है और न इनसे सम्बन्धित कोई टीका ही की जा सकती है।"

महाभारत के आदिपर्व[१] में सम्राट् अशोक का उल्लेख महासुर[२] के अवतार के रूप में किया गया है और उन्हें 'महावीरोऽपरजित:' कहा गया है। साथ ही साथ इस ग्रन्थ में एक यूनानी सामन्त 'सौवीर के यवनाधिप' और उसके साथी दत्तामित्र (देमेट्रियोस ?)[३] का भी उल्लेख है। शान्ति पर्व में 'मालिनी नगर' को मगध के अन्तर्गत अंगराज्य में मिलाये जाने की चर्चा है।[४] यहीं पर 'निरुक्त'[५] के ग्रन्थकार यास्क जो सम्भवत: चौथी या पाँचवीं शताब्दी[६] में हुए थे—सांख्य दर्शनवेत्ता वार्षगण्य[७] एवम् कौटिल्य के मुख्य शिष्य माने जानेवाले अर्थ तथा धर्मवेत्ता कामन्दक[८] का भी उल्लेख मिलता है।

अलबेरूनी[९] (१००० ई०), राजशेखर (९०० ई०) तथा महाभारत के अन्तिम संग्रहकर्ता को जिसका समय ५०० ई० पूर्व से पहले था, १८ पुराणों[९] की निश्चित जानकारी

---

[१] I. 67.13-14. *Cf.* also XII. 5. 7. जहाँ अशोक का शतधन्वन के साथ उल्लेख आया है।

[२] यह महत्त्वपूर्ण या दिलचस्प प्रसंग है कि मार्कण्डेय पुराण (८८.५) के 'देवी-महात्म्य' में मौर्यों को एक प्रकार का असुर कहा गया है—

> **कालका दौरहृता मौर्याः कालकेयास्तथासुराः**
> **युद्धाय सज्जा निर्यान्तु आज्ञाया त्वरिता मम।**

"कालका, दौरहृत, मौर्य तथा कालकेय असुरों को मेरे आदेश पर आगे बढ़ने दो। लड़ाई के लिए तैयार रहो।"

"सुरद्विषाम् (देवताओं के शत्रु, अर्थात् असुर) शब्द भागवत पुराण (१. ३. २४) में उन लोगों के लिये प्रयुक्त हुआ है जो बुद्ध द्वारा बहकाये गये हैं।"

[३] महाभारत, I. 139. 21-23.

[४] 5. 1-6.

[५] 342, 73.

[६] *JRAS*, 1905, pp. 47-51; Keith, सांख्य-प्रणाली, pp. 62, 63, 69.

[७] 318. 59.

[८] शान्ति, 123. 11.

[९] *Cf.* अलबेरूनी, Ch. XII; प्रचण्ड पाण्डव, ed. by Carl Cappeller, p. 5 (**अष्टादश पुराण सार-संग्रहकारिन्**); महाभारत, XVIII. 6.97; पवमानप्रोक्त पुराण, हर्षचरित, III (p. 86 of Parab's ed., 1918);

थी। बाण (६०० ई०) तथा उससे भी पहले के कुछ लेखकों ने भी कुछ पौराणिक तिथियों का उल्लेख किया है। फिर भी महाभारत की उपलब्ध मूल प्रतियों को जिनमें कलयुग के राजाओं की सूचियाँ दी गई हैं—तृतीय अथवा चतुर्थ शताब्दी से पूर्व की रचना नहीं माना जा सकता, क्योंकि इन सूचियों में तथाकथित आन्ध्र राजाओं और यहाँ तक कि उनके पश्चात्‌वर्ती राजाओं का भी उल्लेख किया गया है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि महाकाव्यों या पुराणों के आधुनिक रूप बहुत बाद की कृतियाँ हैं। इन्हें पूर्व बिम्बिसार-काल के इतिहास का उपयुक्त आधार नहीं कहा जा सकता। इनसे अधिक उपयुक्त तो 'महावंश' और 'अशोकावदान' की कहानियाँ होंगी जिन्हें मौर्यकालीन इतिहास का आधार बनाया गया है। किन्तु, फिर भी यह उचित न होगा कि हम उनकी पूर्णरूपेण उपेक्षा कर दें, क्योंकि इनका अधिकांश निश्चित रूप से प्राचीन एवम् महत्त्वपूर्ण है। डॉ० स्मिथ के अनुसार, लंका के पालि-ग्रन्थों का अवलोकन करते समय बहुत सावधान रहना चाहिये। संस्कृत महाकाव्यों व पुराणों के अध्ययन में भी डॉ० स्मिथ की चेतावनी को ध्यान में रखना आवश्यक होगा।

अपनी कृतियों में डॉ० कीथ ने उपर्युक्त महाकाव्यों तथा पुराणों के प्रात अविश्वास और उन भारतीयों की भोली-भाली आस्था पर आश्चर्य प्रकट किया है जो महाभारत-युद्ध-जैसी घटनाओं की ऐतिहासिकता पर भी विश्वास रखते हैं, जबकि वेदों में इनका स्पष्ट उल्लेख नहीं किया गया। यद्यपि यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि महाकाव्यों व पुराणों के आधुनिक स्वरूप में बहुत कुछ ऐसा है जो विश्वास के योग्य नहीं है, किन्तु यह भी असत्य है कि इनमें कथा-तत्त्व के आ जाने से सत्य का बिलकुल ही लोप हो गया है। सातवाहन, आभीर, वाकाटक, नागा, गुप्ता तथा अन्य अनेक राजवंशों के शिलालेखादि इतिहास से डॉ० स्मिथ की इस टिप्पणी की पुष्टि होती है कि "आधुनिक यूरोपीय लेखकों में पौराणिक सूचियों की प्रामाणिकता का तिरस्कार करने की भावना पायी गई है। किन्तु इसके गम्भीर अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि इनमें बड़ी ही वास्तविक एवम् महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक परम्पराएँ निहित हैं।" जहाँ तक महाभारत का सम्बन्ध है, हमारे पास निश्चित ही किसी भी प्रकार के तत्कालीन शिलालेखादि का अभाव है, फिर भी अगले अध्याय में हम इस बात पर विचार करेंगे कि वैदिक साहित्य में अनेक ऐसे संकेत मिलते हैं जिनसे लगता है कि महाभारत का महायुद्ध कोरी कल्पना मात्र नहीं है। कुरुक्षेत्र की कथा के बाह्लिक प्रातिपेय,[१] धृत-राष्ट्र, वैचित्रवीर्य, देवकीपुत्र कृष्ण तथा सम्भवतः यज्ञसेन शिखण्डी जैसे अनेक चरित्रों का

---

i.e. वायुपुराण; *Cf.* सकल पुराण राजर्षि चरिताभिज्ञाः (III. 87) और 'हरेरिव वृषविरोधिनि बालचरितानि' (II. 77); *EHVS*, दूसरा संस्करण, pp. 17, 70, 150। अठारहों पुराण का सार-संग्रह राजशेखर-कृत है। इससे सिद्ध होता है कि पुराणों की रचना नवीं शताब्दी के पूर्व ही हुई थी। मंगलेष के नेरूर-शिलालेख के अनुसार कुछ पुराण छठी शताब्दी में भी थे (*IA*, VII. 161—मानव पुराण रामायण भारत इतिहास कुशलः···वल्लभः, i.e. पुलिकेशी-प्रथम)। मत्स्य पुराण सबसे पुराने पुराणों में से एक है। (देखिये, 70, 46; 56; 72, 27, etc.)।

[१] महाभारत, V. 23.9.

प्राचीन वैदिक साहित्य[१] में भी उल्लेख मिलता है। 'शतपथ' ब्राह्मण में एक स्थल पर कुरुराजकुमार तथा शृञ्जय[२] के बीच शत्रुभाव की भी चर्चा है। हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि महाकाव्य में वर्णित महायुद्ध कभी-कभी इन दोनों के बीच शक्ति-परीक्षा का भी रूप धारण कर लेता है **(कुरूणां शृञ्जानांच्च जिगीषुनां परस्परम्)**।[३] जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण[४] के अनुसार, महाभारत में अपने प्रमुख विरोधी पांचालों के निकट सम्बन्धी दाल्भ्यों को कुरुओं ने बहुत फटकारा था। छांदोग्य उपनिषद् में कुरुओं की रक्षा करनेवाली घोड़ी की प्रशंसा से भरी एक गाथा प्रसिद्ध है। शृञ्जयों तथा उनकी मित्र जातियों एवम् वंशों से कुरुओं की लड़ाई के गीत कम से कम ईसा पूर्व की पाँचवीं शताब्दी में प्रचलित रहे होंगे, क्योंकि आश्वलायन तथा पाणिनि को वैशम्पायन-कृत महाभारत का पूरा ज्ञान था। अगले पृष्ठों में वेदों में निहित उन प्रमाणों पर विचार किया गया है जिनके अनुसार महाभारत का महायुद्ध वस्तुतः ईसापूर्व की नवीं शताब्दी के आसपास लड़ा गया था। यदि यह सत्य है तो युद्ध की कथा की रूपरेखा किसी भी दशा में पाँचवीं शताब्दी ईसापूर्व के बाद की नहीं है और न ही इसे पूर्णतया अप्रामाणिक कहकर टाला जा सकता है।

पार्जिटर का विचार डॉ० कीथ से भिन्न है। वह वैदिक साहित्य की अपेक्षा पौराणिक परम्पराओं को अधिक विश्वसनीय समझते हैं और उन्होंने जो निष्कर्ष निकाला है, उसे डॉ० बार्नेट[५] ने प्रत्यक्ष रूप से स्वीकार किया है। पार्जिटर[६] ने दृढ़तापूर्वक कहा है कि वैदिक साहित्य में ऐतिहासिकता नहीं है, अतः यह सदैव विश्वसनीय भी नहीं है। परन्तु, क्या शाक्य को एक व्यक्ति मात्र माननेवाले पुराणों में राजाओं की सूची में अभिमन्यु तथा सिद्धार्थ का भी नाम है, क्या प्रसेनजित को राहुल का उत्तराधिकारी कहा गया है, प्रद्योत को बिम्बिसार से कई पीढ़ी पूर्व का माना गया है, तथा अशोक के सम्बन्ध में केवल एक वाक्य कहा गया है ? क्या पुराणों में सातवाहन-राजवंश का उल्लेख किया गया है और क्या श्रीकुम्भ-शातकर्णि समान आन्ध्र राजाओं के उल्लेख को छोड़ नहीं दिया गया, जबकि तत्कालीन प्राप्त सिक्कों[७] से उनका अस्तित्व अकाट्य सिद्ध होता है। ऐसे पुराणों में क्या विशेष ऐतिहासिकता है, या उन पर सदैव विश्वास किया जा सकता है ? महाकाव्यों एवम् पुराणों में निहित बातें जब किसी सिद्धान्त अथवा विचारधारा के विपरीत सिद्ध हुई हैं तो स्वयं पार्जिटर ने संस्कृत महाकाव्यों एवम् पुराणों की सामग्री को अस्वीकार किया है।[८] यहाँ पर वी०

---

[१] शतपथ ब्राह्मण (V. 4.3.7) तथा आश्वलायन श्रौत सूत्र (XII. 10) में क्रमशः अर्जुन तथा पार्थ को इन्द्र माना गया है (*Vedic Index*, I. 522.)

[२] *Vedic Index*, II. p. 63; शतपथ ब्राह्मण, XII, 9.3.

[३] महाभारत, VI. 45.2.

[४] I. 38. 1 (xii, 4)

[५] *Calcutta Review*, Feb., 1924, p. 249.

[६] *Ancient Indian Historical Tradition*, pp. 9 ff.

[७] Mirashi *in the Journal of the Numismatic Society of India*, Vol. II.

[८] *Cf. AIHT*, pp. 173, n. 1; 299, n. 7.

गार्डन चाइल्ड (V. Gordon Childe)[1] के इस मत का उल्लेख अप्रासंगिक न होगा कि "क्षत्रिय परम्पराएँ, अर्थात् महाकाव्यों एवम् पुराणों की परम्पराएँ इतिहास का एक विशुद्ध स्रोत नहीं समझी जा सकती हैं।" प्राचीन अथवा कट्टर दृष्टिकोण पौरोहित्य-परम्पराओं या उसके संशोधित एवम् परिवर्धित ग्रन्थों पर आधारित नहीं है, वरन् वेदों के आन्तरिक तत्त्वों पर आधारित है। चूँकि वेदों में इतिहास एवम् भूगोल सम्बन्धी उल्लेख आकस्मिक एवम् अनजाने में किये गये हैं, अतः इन्हें अधिक विश्वसनीय माना जा सकता है। यह बात क्षत्रिय-परम्पराओं पर लागू नहीं होती। क्षत्रिय-परम्पराएँ अपने लिखित स्वरूप में उस समय से सम्बन्धित रही होंगी जब कथा-प्रणयन का क्रम शताब्दियों तक चल चुका रहा होगा और इस प्रकार की कथाएँ केवल राजवंशों के निजी हितों में कही जाती थीं। वैदिक साहित्य के पक्ष में दो तर्क बड़े सशक्त हैं। एक तो यह कि वैदिक साहित्य बहुत प्राचीन है; दूसरे, यह कि वेदों के मूल पाठ में किसी प्रकार के परिवर्तन की स्वतन्त्रता अपेक्षाकृत कम थी।

३. तृतीय वर्ग में उत्तर बिम्बिसार-काल का ब्राह्मण-साहित्य आता है। इसके काल व तिथि के विषय में कुछ निश्चित रूप से कहा जा सकता है। उदाहरणार्थ, कौटिल्य का अर्थशास्त्र २४९ ईसापूर्व व १०० ईसवी सन्[2] के बीच, और पतंजलि

---

[1] *The Aryans*, p. 32.

[2] कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' नामक ग्रन्थ को सातवीं शताब्दी के कादम्बरी का ग्रन्थकार बाण ही नहीं जानता था, वरन् सातवीं शताब्दी के पूर्व की शताब्दियों में हुए जैन-ग्रन्थकार नन्दीसूत्र और पैण्ण भी इस ग्रन्थ को जानते थे। इसके अतिरिक्त सम्भवतः वात्स्यायन के न्यायभाष्य के समय भी यह पुस्तक थी। वात्यायन के न्यायभाष्य की दिग्नाग तथा वसुबन्धु ने आलोचना भी की है (*I. A.* 1915, p. 82, 1918, p. 103)। कुछ विद्वानों के मतानुसार अर्थशास्त्र का प्रणयन धर्मशास्त्र के बाद सम्भवतः तीसरी शताब्दी में हुआ था। किन्तु रुद्रदामन-प्रथम के शिलालेख के समय के जूनागढ़-शिलालेख से ज्ञात होता है कि अर्थशास्त्र के पूर्व भी अर्थविद्या का अस्तित्व था। अर्थशास्त्र के टेक्निकल शब्दों 'प्रणय' तथा 'विष्टि' का भी उल्लेख मिलता है। यह महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र की रचना में अपने पूर्ववर्त्ती आचार्यों का उल्लेख नहीं किया है (Bk. V. Ch. 2)। इसलिए यह भी सम्भव है कि रुद्रदामन-प्रथम जिसने कि अर्थविद्या पढ़ी थी, उसने कौटिल्य ही नहीं, वरन् उसके पूर्ववर्त्ती आचार्यों से भी टेक्निकल शब्दों का प्रयोग सीखा हो। यह उल्लेखनीय है कि जूनागढ़ के तत्सम्बन्धी रिकार्ड में अर्थशास्त्र के साहित्य को विशेष स्थान मिला है। जूनागढ़ के स्कन्दगुप्त के शिलालेख में 'उपधास—सर्वोपधाभिश्च विशुद्धबुद्धिः' का उल्लेख मिलता है। पूरा अनुच्छेद इस प्रकार है—

न्याय-आर्जनेर्थस्य च कः समर्थः
स्यादर्जितस्याप्यय रक्षणे च
गोपायितस्यापि च वृद्धि हेतौ
वृद्धस्य पात्र प्रतिपादनाय।

का महाभाष्य १५० ईसापूर्व व १०० ईसवी सन्[१] के बीच रखा जा सकता है। इन महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का मूल्यांकन जितना भी किया जाये, उतना ही कम होगा। भारतीय प्राचीन इतिहास के उद्वेलित समुद्र में यह ग्रन्थ लंगर के सदश हैं। जहाँ तक पूर्व बिम्बिसार-काल का सम्बन्ध है, ब्राह्मण साहित्य व उपनिषदों की सामग्री कुछ निम्न कोटि की अवश्य पड़ती है, किन्तु इन ग्रन्थों के प्रणेताओं का काल निश्चित है। इस दृष्टि से ये ग्रन्थ महाकाव्य या पुराणों की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण ठहरते हैं, क्योंकि पुराणों की तिथि की प्रामाणिकता सर्वदा सन्देहास्पद हैं।

४. चतुर्थ वर्ग में बौद्ध साहित्य के सूत्र, विनय-ग्रन्थ तथा जातक-कथाएँ आती हैं। भरहुत और साँची में उपलब्ध शिलालेखों से—जिन्हें ईसवी पूर्व की द्वितीय तथा प्रथम शताब्दी में लिखवाया गया था—ऐसे अनेक बौद्ध सिद्धान्तों का पता चलता है जिनमें बौद्ध धर्म के आदेश, विधियाँ या नियम निहित हैं। स्तूपद्वारों तथा छज्जों पर अंकित अनेक चित्रों में तत्कालीन जातक-कथाओं को दर्शाया गया है। ऐसा समझा जाता है कि पालि भाषा में बौद्ध-धर्म के नियमों को लिपिबद्ध करने का कार्य ईसवी पूर्व की प्रथम शताब्दी में प्रारम्भ हुआ था। इनमें बिम्बिसार के सिंहासनारोहण से पूर्ववर्ती घटनाओं से सम्बन्धित अत्यन्त उपयोगी सूचनाएँ प्राप्त होती हैं, वे न केवल प्राचीन कथाओं के बौद्ध स्वरूप को सुरक्षित रखने में सहायक सिद्ध हुए हैं, वरन् जिन मामलों में ब्राह्मण साहित्य कुछ अनिश्चित और धुँधला-सा पड़ने लगता है, वहाँ भी ये लेख पर्याप्त प्रकाश डालते हैं।

उक्त अनुच्छेद से निम्न शब्दावलियाँ याद आ जाती हैं—दण्डनीतिः, अलब्ध-लाभार्था लब्धपरिरक्षणी, रक्षित विवर्धनी, वृद्धस्य तीर्थेषु प्रतिपादनी च।

जानसन (*FRAS*, 1929, 1 January, p. 77.ff.) ने इस बात का संकेत दिया है कि कौटिल्य के अर्थशास्त्र तथा अश्वघोष के समय का कोई बहुत बड़ा अन्तर नहीं है। इसके अतिरिक्त अर्थशास्त्र ४३४ ईसवी के आर्यसूर की जातकमाला से पूर्व का ग्रन्थ है (Winternitz, *Ind. Lit.*, Vol. II. 276)। किन्तु चीनभूमि तथा चीनपट्ट के उल्लेख से ऐसा लगता है कि यह ग्रन्थ ईसापूर्व की तीसरी शताब्दी के मध्य से भी पूर्व का है। इस उल्लेख से दक्षिणी-पूर्वी एशिया का ही आभास मिलता है (McCrindle's *Ancient India*, p. 162)। संस्कृत-विद्वानों के ग्रन्थों में चीन का प्रायः जिक्र आया है। अच्छा सिल्क पैदा करने वाले प्रदेश मौर्य साम्राज्य की सीमा से बाहर थे (देखिये *The Problem of the Far East*, p. 15)। ईंट के बजाय काठ की चहारदीवारी का उल्लेख मिलता है। इससे भी कहा जाता है कि अर्थशास्त्र चन्द्रगुप्त के बाद का ग्रन्थ है। इसके अतिरिक्त राजधानी तथा दरबार में संस्कृत भाषा के प्रयोग का उल्लेख भी आया है। खारवेल शिलालेख में 'चक्रवर्त्ती' शब्द नहीं मिलता तथा 'समाहर्तृ' तथा 'सन्निधातृ' शब्दों की रचना भी बाद में ही आती है।

[१] पतंजलि के बारे में नये विचारों के लिए, *Indian Culture*, III. 1 ff; *Proceedings of the Indian History Congress*, Third Session, pp. 510-11 देखिये।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

५. पाँचवें वर्ग में जैन मत के धर्म-ग्रन्थ आते हैं। इनमें से कुछ तो ईसवी सन् की द्वितीय शताब्दी से भी पहले के हैं, परन्तु जैन मत के नियम सम्भवतः पाँचवीं या छठी शताब्दी में लिखे गये थे।[१] इनसे पूर्व बिम्बिसार-काल के अनेक राजाओं के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है, किन्तु अपेक्षाकृत उत्तरकालीन होने के कारण इस साहित्य पर सदैव विश्वास नहीं किया जा सकता है।

---

[१] Jacobi, परिशिष्टपर्वन्, p. VII; S. B. E., Vol. XXII. p. xxxii; XLV, p. xl., *Cf.* Winternitz, *A History of Indian Literature*, Eng. Trans., Vol. II, p. 432.

२

कुरु तथा विदेह

१. परीक्षित-काल

जनः स भद्रमेधति राष्ट्रे राज्ञः परिक्षितः

—अथर्ववेद।

हमने परीक्षित के शासन-काल को अपने अध्ययन का प्रारम्भिक विषय बनाया है। परीक्षित-काल का राज्याभिषेक, परम्पराओं के अनुसार, महाभारत युद्ध के कुछ हीं समय पश्चात् हुआ था।

क्या वास्तव में राजा परीक्षित हुए थे ? यह प्रश्न सर्वोपरि है। यह सत्य है कि महाभारत तथा पुराणों में उनका उल्लेख मिलता है, परन्तु इस प्रकार के साहित्य में किसी राजा के उल्लेख मात्र को ही उसके ऐतिहासिक अस्तित्व का निश्चित प्रमाण उस समय तक नहीं माना जा सकता जब तक कि अन्य बाह्य साक्ष्यों से उसकी पुष्टि न हो।

अथर्ववेद संहिता[1] के बीसवें भाग के स्तुति खण्ड में कुरुओं के राजा के रूप में परीक्षित नाम आता है। उनके राज्य में घी, दूध की नदियां बहती थीं। अथर्ववेद का उल्लिखित श्लोक इस प्रकार है—

"राज्ञो विश्वजनीनस्य यो देवोमर्त्यां अति
वैश्वानरस्य सुष्टुतिमा सुनोता परिक्षितः
परिच्छिन्नः क्षेममकरोत् तम आसनमाचरन्
कुलायन् कृण्वन् कौरव्यः पतिर्वदति जायया
कतरत् त आहराणि दधि मन्थाम् परिश्रुतम्
जायाः पतिं विपृच्छति राष्ट्रे राज्ञः परिक्षितः
अमीव स्वः प्रजिहीते यवः पक्वः पयोबिलम्
जनः सः भद्रमेधति राष्ट्रे राज्ञः परिक्षितः

कुरुदेश में गृहस्थ-जीवन में प्रवेश करने वाला व्यक्ति अपनी पत्नी से कहता है—"राजा परीक्षित अविनश्वर हैं, वे सर्वत्र राज्य करते हैं तथा 'घट-घट-व्यापी हैं। उनकी स्तुतियों का श्रवण करो। राजा परीक्षित के सिंहासनासीन होने से हमको सुरक्षित आवास प्राप्त हुआ है।"[2]

---

१. अथर्ववेद, XX, 127, 7-10.

२. वैश्वानर की व्याख्या के लिए 'बृहद्देवता' (II. 66) देखिये।

परीक्षित के राज्य में रहने वाली स्त्री अपने पति से पूछती है—"तुम्हारे लिए क्या लाऊँ, दही, कोई उत्तेजिक पेय अथवा सुरा ?"

"जिस प्रकार प्रकाश अपने आप चारों ओर फैलता है, उसी प्रकार राजा परीक्षित के राज्य में अन्न की सर्वत्र सुख-सुविधा थी, प्रजा सुखी थी ।"[1]

रोथ तथा ब्लूमफ़ील्ड अथर्ववेद में उल्लिखित परीक्षित को दैवी सत्ता मानते हैं, परन्तु ज़िमर तथा ओल्डेनबर्ग उसे एक सांसारिक जीव मानते हैं। एतरेय ब्राह्मण तथा शतपथ ब्राह्मण के इस कथन से, कि राजा जनमेजय अपने नाम के साथ पिता का नाम अर्थात् परीक्षित भी धारण करते थे, ज़िमर तथा ओल्डेनबर्ग के कथन की पुष्टि होती है। एतरेय ब्राह्मण[2] में लिखा है कि "पुरोहित तुरकावषेय ने जनमेजय परीक्षित का राज्याभिषेक इन्द्र के राज्याभिषेक के समान सम्पन्न कराया था ।"

"एतेन ह वा ऐन्द्रेण महाभिषेकेण तुरः
कावषेयो जनमसेजयम् पारिक्षितम् अभिषिषेच ।"

राजा परीक्षित का उल्लेख करते हुए मैक्डोनल तथा कीथ[3] लिखते हैं कि—"महाकाव्य के अनुसार, वह प्रतिश्रवा के पितामह तथा प्रतीप के प्रपितामह थे ।" ध्यान रहे कि महाभारत तथा पुराणों में वस्तुतः परीक्षित नाम के दो राजाओं का उल्लेख मिलता है। इनमें एक परीक्षित के पूर्वजों के सम्बन्ध में सहमति नहीं है । भिन्न-भिन्न स्थानों पर उसे अविक्षित, अनश्वा या कुरु का पुत्र कहा गया है। यही नहीं, आगे चल कर उसे प्रतिश्रवा तथा प्रतीप का अग्रज भी कहा गया है। परीक्षित नाम के दूसरे राजा प्रतीप के वंशज थे और सभी ने एक स्वर से उन्हें अभिमन्यु का पुत्र माना है।[4] अतः हम पहले परीक्षित को परीक्षित-प्रथम और दूसरे को परीक्षित-द्वितीय कहेंगे । वैदिक तालिका के लेखकों ने महाभारत तथा पुराणों के परीक्षित-प्रथम को वेदों में उल्लिखित परीक्षित से अभिन्न माना है । इस मत के समर्थन में यह कहा जा सकता है कि शतपथ ब्राह्मण[5] के अनुसार वैदिक परीक्षित के पुत्र जनमेजय के पुरोहित इन्द्रोत दैवाप शौनक महाभारत के पूर्व के परीक्षित-प्रथम के भी पुरोहित थे, ऐसा पुराणों[6] में भी

---

[1] ब्लूमफ़ील्ड, अथर्ववेद, pp. 197-98.

[2] VIII, 21.

[3] *Vedic Index*, Vol., I., p 494.

[4] महाभारत, आदिपर्व, ९४.५२ और ९५.४१ । परीक्षित-प्रथम के लिए मत्स्य पुराण (50, 23) देखिये ।

कुरोस्तु दयिताः पुत्राः सुधन्वा जह्नु रेव च
परिक्षिच्च महातेजाः प्रवरश्चारिमर्दनः ।

[5] *Vedic Index*, I. 78.

[6] Pargiter, *AIHT*, 114.

कहा गया है । इन्द्रोत के पुत्र दृति, कक्षसेन के पुत्र अभिप्रतारिण[1] के समकालीन थे और कक्षसेन का नाम, महाभारत[2] में दी गई वंशावलियों में, परीक्षित-प्रथम के पुत्रों की सूची में मिलता है । यही नहीं, पुराणों के अनुसार परीक्षित-प्रथम के भी, वैदिक परीक्षित की तरह चार पुत्र थे। उनके नाम थे—जनमेजय, श्रुतसेन, उग्रसेन तथा भीमसेन[3] और इनमें सबसे बड़े पुत्र का ब्राह्मणों से झगड़ा हुआ था ।

इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे अन्य तथ्य भी हैं जिनसे विपरीत निष्कर्ष निकलता है । अथर्व स्तुतियों में वैदिक परीक्षित को विश्वजनीन राजा तथा 'अनश्वर देव की उपाधियों से अभिहित किया गया है । इनके समय में 'कौरव्य' शब्द केवल राजघराने के लोगों के लिए ही नहीं प्रयुक्त होता था, वरन् कुरुदेश के हर नागरिक को कौरव्य कहा जाता था । कुरु, समस्त जाति के eponymous पूर्वज माने जाने लगे थे और अन्त में, राजा परीक्षित के राज्य में सभी सुखी थे (**जनः स भद्रमेधति**) । यह तथ्य महाभारत और पुराणों के परीक्षित-प्रथम पर लागू नहीं होता, क्योंकि उनमें और स्वयं कुरु[4] में समय का अधिक अन्तर नहीं था । इसके विपरीत, वैदिक स्तुति में तथा भागवत पुराण के १६वें से १८वें अध्याय में उल्लिखित अभिमन्यु-पुत्र परीक्षित-द्वितीय की प्रसिद्ध कथा में, विषय तथा शब्दावली, दोनों ही दृष्टिकोण से आश्चर्यजनक सामञ्जस्य है । हम यह भी जानते हैं कि इस परीक्षित ने एक बार दिग्विजय करके सभी महाद्वीपों को अपने अधिकार में कर लिया था । उक्त परीक्षित को परमदेव कहा गया है, अर्थात् उन्हें साधारण मनुष्य की श्रेणी से ऊपर उठाया गया है (**न वै नृभिर्नरदेवम् पराख्यम् सम्मातुं अर्हसि**) । इन्हें सम्राट् भी कहा गया है । इनके संरक्षण में प्रजा सुखी एवम् निर्भीक थी (**विन्दन्ति भद्राण्य कुतोभयाः प्रजाः**) ।

अभिमन्यु-पुत्र परीक्षित तथा वैदिक परीक्षित की अभिन्नता का एक अन्य प्रमाण भागवत पुराण[5] के अगले पृष्ठों में मिलता है जहाँ तुरकावषेय को उनके पुत्र जनमेजय का भी पुरोहित कहा गया है—

कावषेयम् पुरोधीय तुरम् तुरगमेधराट्
समन्तात् पृथिवीं सर्वाम् जित्वा यक्ष्यति चाध्वरैः ।

स्मरण रहे कि ऐतरेय ब्राह्मण में इन्हीं तुरकावषेय को जनमेजय परीक्षित का पुरोहित भी कहा गया है ।

इसमें सन्देह नहीं कि भागवत पुराण बहुत बाद में लिखा गया था, किन्तु इसमें दिये गये प्रमाण निराधार नहीं हैं । वेदों तथा महाभारत में परीक्षित के पुत्रों की सूची का अवलोकन करने पर भागवत पुराण के प्रमाण अधिक स्पष्ट प्रतीत होने लगेंगे ।

---

[1] *Vedic Index*. I. 373.

[2] महाभारत, I. 94, 54.

[3] विष्णुपुराण, IV. 20. 1.

[4] वायुपुराण (९३.२१) और हरिवंश (XXX.9) में परीक्षित-प्रथम को कुरु कहा गया है । कुरु के पुत्र को 'कुरोः पुत्रः' कहा गया है ।

[5] Book IX., Ch. 22., Verses 25-37.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इनसे पता चलता है कि वैदिक परीक्षित के चार पुत्र थे—जनमेजय, उग्रसेन, श्रुतसेन तथा भीमसेन।[1] इसके विपरीत, महाभारत के आदिपर्व के ६५वें अध्याय के ४२वें श्लोक के अनुसार परीक्षित (प्रथम) का केवल एक पुत्र था—भीमसेन; जबकि ९४ अध्याय के ५४, ५५वें श्लोक उनके सात पुत्र—जनमेजय, कक्षसेन, उग्रसेन, चित्रसेन, इन्द्रसेन, सुषेण तथा भीमसेन थे। इन नामों में श्रुतसेन का उल्लेख नहीं मिलता। ९५वें अध्याय तथा जावा ग्रन्थ[2] (Java Text) में तो जनमेजय को भी छोड़ दिया गया है। वीरचोड[3] के चेल्लूर या कोकनाड़ के लेखपत्र में दी गई कुरु-पाण्डु-वंशावली में भी परीक्षित-प्रथम के उत्तराधिकारियों में इस नाम के किसी राजा का उल्लेख नहीं है। चोड-लेख महाभारत से भी पुराने हैं, परन्तु न तो उनके लेखक को और न महाकाव्य के रचयिता को ही इस बात की निश्चित जानकारी थी कि परीक्षित (प्रथम) जनमेजय तथा श्रुतसेन के पुत्र थे। इसके विपरीत, महाभारत तथा पुराणों में इस बात पर सहमति है कि जनमेजय, परीक्षित (द्वितीय) के पुत्र तथा उत्तराधिकारी थे। अभिमन्यु-पुत्र परीक्षित-द्वितीय का उल्लेख करते हुए महाभारत[4] में निम्न श्लोक दिया गया है—

"परिक्षित खलु माद्रवतीं नामोपयेमे, त्वन्मातरम्। तस्यां भवान् जनमेजयः।"

अर्थात्, "जनमेजय! परीक्षित ने तुम्हारी माँ माद्रवती से विवाह किया, तब तुम्हारा जन्म हुआ।" मत्स्यपुराण[5] में कहा गया है—

"अभिन्योः परिक्षित्तु पुत्रः परपुरञ्जयः
जनमेजयः परिक्षितः पुत्रः परमधार्मिकः।"

अपने शत्रुओं के नगर का विजेता परीक्षित, अभिमन्यु का पुत्र था। उसका पुत्र जनमेजय था जो बड़ा ही धर्मपरायण था।

इस जनमेजय के श्रुतसेन, उग्रसेन तथा भीमसेन नामक तीन भाई थे[6]— **"जनमेजयः पारिक्षितः सह भ्रातृभिः कुरुक्षेत्रे दीर्घ सत्रम् उपास्ते; तस्य भ्रातरस्त्रयः श्रुत-**

---

[1] *Vedic Index*, Vol. I, p. 520.

[2] *JRAS*, 1913, p. 6.

[3] Hultzsch, *S. I. I.*, Vol. 1, p. 57.

[4] I. 95.85.

[5] 50. 57.

[6] महाभारत (1.3.1.) ग्रन्थ के अनुवाद के समय के रे और दत्त के विचारों का भी उल्लेख किया गया है। पार्जिटर द्वारा उद्धृत पौराणिक पाठ के *Dynasties of Kali Age*, p. 4 n⁴ भी देखिये। इस मत का, कि श्रुतसेन, उग्रसेन और भीमसेन जनमेजय के पुत्र हैं, कुछ पुराणों तथा हरिवंश में खण्डन मिलता है। (Pargiter, *Ancient Indian Historical Tradition*, p.113 f.) अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित के बारे में विष्णुपुराण में लिखा है—'योऽयं साम्प्रतम् अवनीपतिः तस्यापि जनमेजय-श्रुतसेन-उग्रसेन-भीमसेनः पुत्रास् चत्वारो भविष्यन्ति।'

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सेन, उग्रसेन, भीमसेन इति ।" परीक्षित के पुत्र अपने भाइयों के साथ कुरुक्षेत्र में दीर्घ सत्र वाले यज्ञ में भाग ले रहे थे ।

जो बात हम महाभारत तथा पुराणों के परीक्षित-द्वितीय के पुत्र तथा उत्तराधिकारी के सम्बन्ध में जानते हैं, वही वैदिक परीक्षित के पुत्र एवम् उत्तराधिकारी पर लागू होती है । शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि वैदिक परीक्षित के पुत्र जनमेजय ने अश्वमेध यज्ञ किया था । इस प्रसिद्ध यज्ञ को कराने वाले पुरोहित इन्द्रोत दैवाप शौनक थे । इसके विपरीत, ऐतरेय ब्राह्मण में भी अश्वमेध यज्ञ का उल्लेख आता है, परन्तु यहाँ पुरोहित का नाम तुरकावषेय बताया गया है । इस प्रकार शतपथ ब्राह्मण तथा ऐतरेय ब्राह्मण का विवरण परस्पर-विरोधी है । इनका समाधान तभी सम्भव है जब हम यह मान लें कि हम दो विभिन्न राजाओं के बारे में अध्ययन कर रहे हैं और दोनों के पिता का नाम भी एक है, अथवा हम यह स्वीकार करें कि एक ही जनमेजय ने दो अश्वमेध यज्ञ किये थे । प्रश्न है कि इनमें किस जनमेजय ने यज्ञ किया था ? यह एक विचित्र बात प्रतीत होती है कि इस सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी भी पुराणों से प्राप्त की जा सकती हैं । मत्स्यपुराण में अभिमन्यु के पौत्र तथा परीक्षित-द्वितीय के पुत्र जनमेजय का उल्लेख इस प्रकार किया गया है—

> द्विरश्वमेधमाहृत्य महावाजसनेयकः
> प्रवर्तयित्वा तं सर्वम् ऋषिं वाजसनेयकम्
> विवादे ब्राह्मणैः सार्द्धमभिशप्तो वनं ययौ ।[१]

उपर्युक्त अनुच्छेद की अन्तिम पंक्ति में ब्राह्मणों से होने वाले जिस विवाद की ओर संकेत किया गया है, उसका उल्लेख ऐतरेय ब्राह्मण[२] में भी मिलता है । इस ग्रन्थ के अनुसार, जनमेजय से पौरोहित्य-विरोध रखने वाले ब्राह्मणों का कश्यप गोत्र था । यह गोत्र परीक्षित-प्रथम[३] के पुत्र से झगड़ा करने वाले गार्गीय ब्राह्मणों पर लागू नहीं किया जा सकता, क्योंकि बौद्धायन श्रौत सूत्र[४] के अनुसार उनका गोत्र अंगरस था । दूसरी ओर परीक्षित-द्वितीय के पुत्र के विरोधियों का नेतृत्व करने वाले वैशम्पायन असंदिग्ध रूप से कश्यप-वंश[५] के थे ।

अतः, जहाँ तक वैदिक परीक्षित से अभिन्नता का प्रश्न है, परीक्षित-प्रथम के स्थान पर परीक्षित-द्वितीय को वरीयता प्राप्त है । यह भी सम्भव है कि परीक्षित-प्रथम और परीक्षित-द्वितीय एक ही व्यक्ति के दो नाम रहे हों जिसके कुरुवंशीय सूची में निश्चित स्थान के सम्बन्ध में कोई सर्वमान्य परम्परा अथवा कथा प्रचलित नहीं

---

[१] 50,63-64., *Cf.* N. K. Siddhanta, *The Heroic Age of India*, p.42.

[२] VII. 27

[३] Pargiter, *Ancient Indian Historical Tradition*, p. 114; वायु, 93,22-25.

[४] Vol. III. p. 431 ff.

[५] *Op. cit.*, p. 449.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

रह सकी थी । यदि हम इस तथ्य पर ध्यान दें कि न केवल परीक्षित नाम, वरन् उसके अधिकांश पुत्रों के नाम भी (विष्णु तथा ब्रह्म पुराण[1] में सभी पुत्रों के नाम) एक जैसे हैं तो हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि परीक्षित-प्रथम तथा परीक्षित-द्वितीय एक ही व्यक्ति के नाम थे । दोनों परीक्षितों के पुत्र तथा उत्तराधिकारी के ब्राह्मणों से झगड़े की कथा[2] में भी आश्चर्यजनक समानता है । यह भी ध्यान रखना होगा कि पुराणों में यदि तुरकावषेय को परीक्षित-द्वितीय के पुत्र का राजपुरोहित कहा गया है तो वहीं इन्द्रोत दैवाप शौनक को परीक्षित-प्रथम के पुत्र का राजपुरोहित माना गया है । परन्तु वेदों से यह भी स्पष्ट है कि दोनों राजपुरोहित जनक के पाँच या छः पीढ़ी बाद हुए एक ही राजा के पुरोहित थे । यह राजा उद्दालक आरुणि, याज्ञवल्क्य तथा सोमशुष्म का समकालीन था । अब, जबकि दोनों परीक्षितों के पुत्रों के नाम तथा उनसे सम्बन्धित कहानियाँ एक ही तरह की हैं तो उन दोनों के अस्तित्व पर सन्देह होना सर्वथा उचित होगा । अतः सम्भावना यही है कि कुरुवंश में केवल एक ही परीक्षित हुए थे, जिनके पुत्र ने तुर और इन्द्रोत दोनों पुरोहितों को प्रश्रय दिया था ।

अब प्रश्न उठता है कि उपर्युक्त परीक्षित महाभारत के युद्ध से पहले हुए थे या बाद में । इस युद्ध की समाप्ति पर अभिमन्यु के पुत्र को परीक्षित नाम देने की आवश्यकता और उसके उत्तर से सम्भवतः इस बात का संकेत मिलता है कि दसवें भाग के लिखे जाने तक कुरुवंश में परीक्षित नाम का कोई राजा नहीं हुआ था ।[3] कदाचित् कुरुवंश की वंशावली तैयार करने वालों ने महाभारत के बारहवें भाग के १५१वें अध्याय में भीष्म द्वारा कहलाई गई इन्द्रोत-परीक्षित-सम्वाद की कहानी से ब्रहककर काल-गणना की भूल को बचाने के लिए परीक्षित-प्रथम का नाम गढ़ लिया था । इस सम्बन्ध में परीक्षित-प्रथम के पिता के नाम तथा कुरुवंश की सूची में उसकी स्थिति के प्रश्न पर विद्वानों में मत-वैभिन्न्य को भी ध्यान में रखना होगा । स्पष्ट है कि उस समय तक परीक्षित के नाम से कोई कथा या परम्परा प्रचलित न थी । इसके विपरीत, परीक्षित-द्वितीय[4] के वंश एवम् अन्य विवरणों पर सभी एकमत हैं ।

---

१. विष्णु, IV. 20,1;21.1; ब्रह्म, XIII, 109.

२. वायु, 93,22-25; मत्स्य, 50,63-64. etc

३. महाभारत, X. 1.63.

"जब कुरु-वंश का नाश हो जायगा (परिक्षीणेषु कुरुषु) तो आपके (अर्थात् अभिमन्यु की पत्नी उत्तरा के) एक पुत्र होगा । उस बच्चे का नाम इसी कारण से परीक्षित होगा ।

४. डॉक्टर एन० दत्त के अनुसार, वैदिक परीक्षित तथा अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित को (जो कि महाभारत की लड़ाई के बाद हुआ) एक समझना युक्तिसंगत नहीं है (*The Aryanisation of India*, pp. 50ff.), क्योंकि यह मैक्डोनल, कीथ और पार्जिटर के इस मत के विरुद्ध पड़ता है कि वैदिक परीक्षित (जनमेजय के पिता) पांडु के पूर्वज थे । यह भी उल्लेखनीय है कि परीक्षित को पांडुओं का पूर्वज उन्हीं प्रमाणों के आधार पर कहा जा सकता है जिनको कि कीथ ने अविश्वसनीय करार दिया है

वैदिक स्तुतियों से परीक्षित के शासन-काल तथा उनके घरेलू जीवन की बहुत कम जानकारी प्राप्त होती है। महाभारत से हमें यह पता चलता है कि उन्होंने मद्रदेश की राजकुमारी (माद्रवती) से विवाह किया था और २४ वर्षों तक राज्य

(*Cf. RPVU.* 21,618) । इस संबंध में जनमेजय का नाम वंशावली का अतिक्रमण करना होगा।

डॉक्टर दत्त ने आगे कहा है कि विष्णु पुराण में जनमेजय, श्रुतसेन आदि को भाई-भाई कहा गया है जो कि परीक्षित-प्रथम के लड़के थे। यदि उन्होंने उसके बाद का भी अनुच्छेद पढ़ा है तो उन्हें मिला होगा कि परीक्षित-द्वितीय के भी लड़के चार भाई थे। इस दूसरे मत की पुष्टि तो महाभारत (I. 3.1.) में हो जाती है, किन्तु पहले के मत का समर्थन नहीं हो पाता।

डॉक्टर दत्त ने आगे कहा है कि राजाओं का परिचय तथा उनके समय का निर्धारण उनके गुरुओं या पुरोहितों से संबंधित तथ्यों के आधार पर नहीं किया जाना चाहिए। किन्तु यदि नाभ तथा एक के बाद दूसरे के उत्तराधिकार के तथ्य सही हैं तो ऐसा करने में हर्ज ही क्या है ? वास्तव में ऐसे तथ्यों को बिना सोचे-समझे अस्वीकार कर देने में भी खतरा है। किन्तु यहाँ पर यह जान लेना आवश्यक है कि वैदिक परीक्षित और अभिमन्यु के बाद के परीक्षित की समानता किसी गुरु या पुरोहित के नाम पर नहीं, वरन् निम्न तथ्यों पर आधारित है—(१) पहले किसी भी जनमेजय परीक्षित के होने का कोई ठोस प्रमाण नहीं मिलता; (२) अनेक बातें वैदिक परीक्षित तथा जनमेजय में एक-सी मिलती हैं (जैसे कुरु राज्य की समृद्धि का वर्णन, दो अश्वमेध यज्ञों का होना तथा कश्यपों से युद्ध आदि) जिनसे हमें परीक्षित और जनमेजय के बारे में पता चलता है जो कि अभिमन्यु के बाद हुए हैं। परीक्षित-सम्बन्धी उक्त समानता तथा वैदिक परीक्षित और वैदिक जनक के बीच किसी प्रकार का तिथि-सम्बन्ध दोनों दो अलग-अलग चीजें हैं। यह तिथि-सम्बन्ध दो प्रकार के प्रमाणों के आधार पर माना जाता है। एक प्रकार के प्रमाण तो वंशसूची और ब्राह्मण-ग्रन्थों से लिये गये हैं। इन्द्रोत से सोमशुष्म को उत्तराधिकार के तथ्य ब्राह्मण ग्रन्थों से प्राप्त किये गये हैं।

डॉक्टर दत्त के अनुसार, नामों की समानता का मतलब व्यक्ति की समानता ही अनिवार्यतः नहीं होता। उदाहरणार्थ, धृतराष्ट्र वैचित्रवीर्य तथा काशी के धृतराष्ट्र के नामों को ही ले लीजिये। *Political History* में वैदिक तथा महाभारत-कालीन परीक्षितों और जनमेजयों को इसलिए एक नहीं कहा जा सकता कि दोनों नाम एक ही हैं।

इतिहासकार (डॉ० दत्त) के मतानुसार, 'बाद के युग में प्रतिद्वन्द्वी राजवंशों तथा विचारधाराओं वाले नामों के साथ भी विभिन्न पुरोहितों तथा प्रसिद्ध राजाओं के नाम जोड़ दिये जाते थे।' यह नहीं कहा जा सकता कि यह मत प्रकट करते हुए डॉक्टर दत्त के मस्तिष्क में कोई उदाहरण था या नहीं। शतपथ ब्राह्मण, ऐतरेय ब्राह्मण तथा उपनिषदों में इन्द्रोत और तुर को जनमेजय से तथा उद्दालक और याज्ञवल्क्य को जनक से सम्बन्धित कहा गया है। यह भी कहा गया है कि यह सम्बन्ध निराधार या

करने के बाद साठ वर्ष की आयु में उनका स्वर्गवास हुआ था।[1] फिर भी उनके नाम से सम्बन्धित अनेक प्रचलित कहानियों को अधिक विश्वसनीय नहीं माना जा सकता। इनमें केवल इन्हीं तथ्यों को ऐतिहासिक माना जा सकता है कि परीक्षित कुरुवंशीय राजा थे, उनके राज्य में प्रजा सुखी एवम् समृद्ध थी, उनके कई पुत्र थे और उनमें ज्येष्ठ पुत्र, जनमेजय उनके उत्तराधिकारी थे।

यहाँ परीक्षित के समय कुरु राज्य की सीमाओं के बारे में कुछ शब्द कह देना अप्रासंगिक न होगा। महाभारत के अनुसार, कुरु राज्य सरस्वती से गंगा तक फैला हुआ था। दिग्विजय-पर्व में कुरु राज्य की सीमा (सतलज तथा गंगा-यमुना के उद्गम के समीप) कुलिन्द की सीमा से (मथुरा तथा बैराट क्षेत्रों में क्रमशः) सूरसेन और

कल्पित है, किन्तु इस आरोप का भी कोई प्रमाण नहीं मिलता। यह भी हो सकता है कि पुराणों तथा महाभारत में तथ्यों को ठीक से न प्रस्तुत किया गया हो, जैसा कि पार्जिटर ने संकेत किया है। किन्तु यह कहना ठीक नहीं होगा कि ब्राह्मण ग्रन्थों तथा उपनिषदों में ग़लत तथ्यों का ही समावेश किया गया है, क्योंकि बाद के लिखे गये पुराणों में कुछ ऐसी क्रमहीनता मिल सकती है।

अंततः वंशसूची की प्रामाणिकता को निम्न आधारों पर अप्रामाणिक कहा गया है—१. टीकाकारों का मौन। २. शतपथ ब्राह्मण की १०वीं तथा १४वीं पुस्तकों में ग्रन्थकार तथा पुस्तक के सम्बन्ध में विरोधी तथ्य मिलते हैं। विभिन्न पुरोहितों के भी नामों का उल्लेख आया है। ३. एक शिष्य द्वारा अपने गुरु के प्रति पर्याप्त आदर का अभाव।

(१) टीकाकारों ने आचार्य-परम्परा का उल्लेख किया है, किन्तु उसकी अधिक व्याख्या इसलिए नहीं की गई कि उतने उल्लेख मात्र को ही सुगम तथा स्पष्ट माना गया होगा।

(२) ब्राह्मण ग्रन्थों की १४वीं पुस्तक तक में, जिसमें कि बृहदारण्यक भी शामिल है, वंशसूची नहीं रखी गई है। उपनिषदों के अन्त में गुरु-सूचियाँ निस्सन्देह दी गई हैं। ऐसी आशा नहीं की जा सकती कि सभी ब्राह्मण ग्रन्थों तथा उपनिषदों की वंशसूचियों में एक ही परम्परा का उल्लेख हो। ये ग्रंथ या उपनिषद् किसी एक ही ग्रंथकार की रचनायें हैं। इसलिए इन ग्रन्थों के तथ्यों में विरोधाभास का प्रश्न ही नहीं उठता। विभिन्न ग्रन्थों में ग्रन्थकार के सम्बन्ध में विभिन्न परम्पराओं के उल्लेख से किसी आचार्य-परम्परा का अपमान नहीं होता और जबकि ग्रन्थ के मूल पाठ में सन्देह की ज़रा भी गुंजाइश न रहे।

(३) यह भी उम्मीद नहीं की जानी चाहिये कि प्राचीन काल में सभी शिष्य अपने गुरु का समान रूप से आदर-सत्कार करते थे। उदाहरणार्थ, धृष्टद्युम्न को लीजिये जो द्रोणाचार्य का शिष्य था। द्रोणाचार्य को उसकी हत्या तक करनी पड़ी है।

[1] महाभारत, I. 49, 17-26. टीकासहित। बृहदारण्यक उपनिषद् (III. 3.1) से हमें पता चलता है कि परीक्षित का वंश तत्कालीन मद्रदेश का रहने वाला था।

मत्स्य तक तथा (पूर्वी पंजाब में) रोहतक की सीमा से (रुहेलखण्ड में) पंचालों की सीमा तक बतलाई गई है। समूचा राज्य तीन भागों में विभाजित था—कुरुजांगल, कुरुखास, तथा कुरुक्षेत्र।[1] जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, कुरुजांगल सम्भवतः कुरु राज्य का वह वनीय क्षेत्र था जो सरस्वती-तट पर काम्यक वन से यमुना के समीप[2] खाण्डव तक फैला हुआ था। किन्तु कहीं-कहीं कुरुजांगल शब्द ऐसा आया है कि उससे समूचे देश या राष्ट्र का बोध होता है।[3] कुरुखास सम्भवतः हस्तिनापुर के पास-पड़ोस के क्षेत्र को कहते थे। वर्तमान मेरठ जिले में स्थित हस्तिनापुर[4] को ही प्राचीन हस्तिनापुर माना गया है। कुरुक्षेत्र की सीमा के सम्बन्ध में तैत्तरीय आरण्यक[5] में कहा गया है कि कुरुक्षेत्र के दक्षिण में खाण्डव, उत्तर में तुर्घ्न (तुरगना) तथा पश्चिम में परीणह[6] स्थित है। महाभारत[7] में कुरुक्षेत्र का वर्णन इस प्रकार है—

"जो व्यक्ति सरस्वती के दक्षिण तथा दृशद्वती के उत्तर स्थित कुरुक्षेत्र में रहता है, वह वास्तव में स्वर्ग में ही रहता है। राम और मचक्रुक की झीलों—तरुन्तुक, मरुन्तुक अथवा अरुन्तुक—के बीच फैला हुआ क्षेत्र कुरुक्षेत्र है।[8] इसे सामन्त-पंचक और ब्रह्मा की उत्तर वेदी भी कहा जाता है।

मोटे तौर पर कुरु राज्य वर्तमान थानेश्वर, दिल्ली तथा गंगा के दोआब के उत्तरी भाग में फैला हुआ था। कुरु राज्य में (पिहोआ के समीप सरस्वती से मिलने वाली) अरुणा, अंशुमती, हिरण्यवती, आपया (चितांग की आपगा या ओघवती नामक शाखा), कौशिकी, और साथ ही साथ सरस्वती तथा दृशद्वती अथवा राक्षी[9] नदियाँ

---

१. महाभारत, I. 109. 1; 149.5-15; II. 26-32. III. 83,206; तोलेमी VII. i.42

२. ततः सरस्वतीकूले समेषु मरुधन्वसु
काम्यकं नाम दद्रिसूर वनम् मुनिजनप्रियम्।

"तब उन्हें सरस्वती नदी के किनारे काम्यक वन मिला जो समतल तथा जंगली मैदान था। ऋषि-मुनियों का प्रिय आश्रम था (महाभारत, III. 5.3)। खाण्डव वन की स्थिति के लिए, I. 222-14; 223.1 देखिये।

३. *Cf*. महाभारत, I.109. 24; viii. 1.17. xii, 37.23.

४. Smith, *Oxford History* (1919), p. 31. *Cf*. रामायण, II. 68· 13; महाभारत 1. 128. 29ff; 133.11; Pargiter, *Dynasties of Kali Age*, 5; पतंजलि, II 1.2. **अनुगंगम् हास्तिनपुरम्।**

५. *Vedic Index*, 1. pp. 169-70.

६. *Cf*. Parenos of Arrian (Indika, iv), सिन्ध की एक सहायक।

७. 111, 83. 4; 9; 15; 25-40; 52; 200; 204-208.

८. मचक्रुक, तरुन्तुक और मरुन्तुक यक्ष-द्वारपाल थे जो कुरुक्षेत्र की रक्षा करते थे।

९. इसी प्रकार के कुछ नद की सही स्थिति के लिए महाभारत, III. 83. 95. 151; V. 151. 78; Cunningham's *Arch. Rep.*, for 1878-79,

प्रवाहित होती थीं। यहाँ सर्यणावत नाम की एक झील भी थी जिसे वैदिक तालिकाओं ने झील की संज्ञा दी है। शतपथ ब्राह्मण में अन्यतःप्लक्षा नाम से इसका उल्लेख मिलता है।

वेदों के अनुसार, इस राज्य की राजधानी सम्भवतः आसन्दीवत[१] थी जिसे पुराणों एवम् महाकाव्यों में वर्णित नागसाह्वय या हस्तिनापुर समझा जा सकता है, परन्तु चितांग[२] के समीप वर्तमान असन्ध को कुरु राज्य की राजधानी समझना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

महाभारत के अनुसार, कुरुक्षेत्र के राजा पुरु-भरत वंश के थे। पौरव तथा कुरुओं के पारिवारिक सम्बन्ध का सकेत ऋग्वेद[३] की स्तुतियों से मिलता है। इनमें कुरु श्रवण को पौरव-वंश के प्रसिद्ध राजा त्रसदस्यु[४] का उत्तराधिकारी कहा गया है। कुरुदेश के भरत-वंशीय राजाओं के सम्बन्धों की पुष्टि वेदों से होती है। ऋग्वेद में सरस्वती, आपया तथा दृशद्वती पर यज्ञ करने वाले इस वंश के दो राजाओं, देवश्रवा तथा देववात[५] की चर्चा की गई है। कुछ प्रसिद्ध ब्राह्मण गाथाओं[६] तथा महाभारत के अनुसार भरत दौःषन्ति ने गंगा, यमुना तथा सरस्वती के तटों पर यज्ञ किये थे। उपर्युक्त प्रसंग में जिस क्षेत्र की चर्चा की गई है वस्तुतः वही आगे चलकर कुरुक्षेत्र के नाम से विख्यात हुआ था।

ओल्डेनबर्ग के मतानुसार, "संहिता-काल के छोटे छोटे सम्प्रदायों ने आगे चल कर संयुक्त रूप से ब्राह्मण में बृहत्तर जनता का रूप ले लिया था। भरतवशीय राजाओं ने भी सम्भवतः अपने पुराने शत्रुओं सहित उस जाति में अपना स्थान बना लिया था जिन्होंने कुरुवश की स्थापना की और जिनकी पवित्र भूमि को कुरुक्षेत्र[८] कहा गया है।"

---

quoted in *JRAS*, 1883, 363n; Smith, *Oxford History*, 29; *Science and Culture*, 1943, p. 468 ff.

[१] *Vedic Index*, Vol. I., p. 72.

[२] नक़्शा देखिये, Smith, *Oxford History*, p. 29; फ़्लीट के *Dynasties of the Kanarese Districts* में आसन्दी ज़िले का उल्लेख आया है (*Bombay Gazetteer*, 1. 2, p. 492)। वहाँ पर इसे कुरुक्षेत्र से सम्बन्धित करने का कारण भी है।

[३] X. 33. 4.

[४] ऋग्वेद, IV. 38. 1; VII. 19.3.

[५] ऋग्वेद, iii. 23; Oldenberg, *Buddha*, pp. 409-10.

[६] शतपथ ब्राह्मण, XIII. 5. 4. 11; ऐतरेय ब्राह्मण, VIII. 23; महाभारत, VII. 66.8.

[७] महाभारत (XII. 349.44) में **'कौरवो नाम भारता.'** उल्लेख से भरत-वंश के कुरुओं में मिल जाने का संकेत मिलता है। रामायण (IV.33.11) में फिर भी भरत और कुरु दोनों **वंश अलग-अलग** हैं। इतिहासकार सी० वी० वैद्य (*History*

महाभारत[१] में दी गई राजाओं की सूची में परीक्षित के पूर्वजों तथा पूर्ववर्ती राजाओं में जिन नामों का उल्लेख वेदों में मिलता है, वे इस प्रकार हैं—

पुरूरवा ऐल[२], आयु[३], ययाति नहुष्य[४], पूरु[५], भरत दौःषन्ति, सौद्युम्नि[६], अजमीढ[७], ऋक्ष[८], संवरण[९], कुरु.[१०], उच्चैःश्रवा[११], प्रतीप-प्रातिसत्वन, अथवा प्रातिसुत्वन[१२], बाह्लिक प्रातिपीय[१३], शंतनु[१४] तथा धृतराष्ट्र वैचित्रवीर्य ।[१५]

---

of *Medieval Hindu India*, Vol. II. p. 268 ff.) के अनुसार, ऋग्वेद-परम्परा के भरत को दौःषन्ति भरत नहीं कहा जा सकता। ऋग्वेद के पुत्र से इस भरत की समानता हो सकती है जो कि स्वयंभू कहे जाने वाले मनु का भी वंशज माना जाता है, किन्तु यह ध्यान देने योग्य है कि ऋषभ का पुत्र भरत भी बहुत बाद का है। भरत-वंश के राजकुमार तथा ऋग्वेद-परम्परा के भरत कुरु से सम्बन्धित थे। तत्कालीन कुरुवंश में सरस्वती और दृषद्वती नदियाँ बहती थीं तथा पुराणों के अनुसार यहाँ के राजाओं में दिवोदास तथा सुदास थे जो मनु की पुत्री या पुत्र वैवस्वत के वंशज थे। भरत-पुरोहित वशिष्ठ और विश्वामित्र कौशिक स्वयंभू मनु नहीं, वरन् वैवस्वत मनु की पुत्री के वंशजों से संबंधित थे। वशिष्ठ के भरत दौःषन्ति से सम्बन्धित होने के प्रमाणों के लिए संवरण और ताप्ती की कथा (महाभारत I. 94 and 171 f.) देखिये। विश्वामित्र कौशिक तथा पुरु-भरत-वंश के संबंध तो सर्वविदित ही है (महाभारत, I. 94.33)। यह कहा जा सकता है कि ऐतरेय ब्राह्मण में भरत ऋषभ कहलाने वाले विश्वामित्र के पूर्वज भरत तथा विश्वामित्र की पुत्री शकुन्तला के पुत्र भरत भिन्न-भिन्न थे। किन्तु इसके प्रमाण में कोई गम्भीर इतिहास नहीं है। ऋग्वेद वाले विश्वामित्र कुशिक-वंश से सम्बन्धित थे। महाभारत में कुशिक लोग भरत दौःषन्ति के वंशज कहे गये हैं।

१. आदिपर्व, अध्याय ९४-९५।

२. ऋग्वेद, X. 95; शतपथ ब्रह्मण XI. 5.1.1.

३. ऋग्वेद, I. 53.10; II. 14.7. etc.

४. ऋग्वेद, I. 31.17; X. 63.1.

५. ऋग्वेद, VII. 8.4; 18.13.

६. शतपथ ब्राह्मण, XIII. 5.4. 11-12; ऐतरेय ब्राह्मण, VIII. 23.

७. ऋग्वेद, IV. 44.6.

८. ऋग्वेद, VIII. 68.15.

९. ऋग्वेद, VIII. 51.1. (*Vedic Index*, II. 442)

१०. ब्राह्मण ग्रन्थों में प्रायः उल्लेख मिलता है। *Cf.* कुरुश्रवण, ऋग्वेद, X. 33.4.

११. जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण, III. 29.1-3.

१२. अथर्ववेद, XX. 129. 2.

१३. शतपथ ब्राह्मण, XII.9.3.3.

१४. ऋग्वेद, X. 98.

१५. काठक संहिता, X.6.

वेदों में इन नामों का उल्लेख सम्भवतः इनकी ऐतिहासिकता[1] को प्रमाणित करता है, परन्तु यह कहना कठिन है कि महाभारत में इन नामों को एक दूसरे से या परीक्षित से जिस प्रकार सम्बद्ध किया गया है, वे तथा उनके राज्याभिषेक का क्रम सर्वथा विश्वसनीय है। हो सकता है कि इनमें कुछ राजाओं का कुरुओं से कोई सम्बन्ध ही न रहा हो; परन्तु उच्चैःश्रवा, कौपेय, बाह्लिक प्रातिपीय और शंतनु आदि अन्य राजा निश्चित रूप से परीक्षित की तरह कौरव्य-वंश के थे।[2]

उपर्युक्त सूची में प्रथम राजा पुरूरवा ऐल को महाभारत में एक ऐसे शासक का पुत्र कहा गया है जो मध्य एशिया में स्थित बाह्ली से आकर मध्य भारत[3] में बस गया था। इस सम्बन्ध में यह बात ध्यान देने योग्य है कि पपंचसूदनि में कुरुओं को—जिन्हें महाभारत तथा पुराणों में ऐल जाति की सबसे महत्वपूर्ण शाखा कहा गया है—हिमालय के उस पार उत्तर-कुरु नामक क्षेत्र से आने वाले उपनिवेशवादी कहा गया है।[4] इसी प्रकार इसी सूची के अन्य राजा, भरत को पुरूरवा तथा कुरु का वंशज कहा गया है। परन्तु यह बात सन्देहास्पद है। हम देख चुके हैं कि ब्राह्मण गाथाओं एवम् महाभारत में इस राजा को निश्चित रूप से गंगा, यमुना तथा सरस्वती के देश से सम्बद्ध किया गया है और उसे सत्वातों को हराने का श्रेय दिया गया है। महाभारत में उसे कुरु राजवंश का पूर्वज कहा गया है और यह कथन वेदों में निहित उन गाथाओं से मिलता है जिनमें उसे तथा उसकी जाति के अन्य दो राजाओं—देवश्रवा तथा देववात—को उसी क्षेत्र का कहा गया है जो आगे चलकर कुरु प्रदेश के नाम से प्रसिद्ध हुआ था। उच्चैःश्रवा कौपायेय का पांचालों से वैवाहिक सम्बन्ध था, परन्तु बाह्लिक प्रातिपीय अपनी समस्त कोशिशों के बावजूद पांचालों के निकट सम्बन्धी

---

[1] यह उल्लेखनीय है कि वैदिक साहित्य में कुरु नाम के किसी भी राजा का उल्लेख नहीं आता। वैदिक साहित्य में कुरु एक देश के निवासियों का नाम है।

[2] जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण, III; 29. 1; शतपथ ब्राह्मण, XII. 9.3; निरुक्त, क्षेमराज श्रीकृष्ण दास श्रेष्ठी द्वारा सम्पादित, p. 130; बृहद्देवता, VII, 155-156; *Studies in Indian Antiquities*, pp. 7-8.

[3] रामायण, VII. 103,21-22. यह बाह्ली मध्यदेश के बाहर था तथा कार्द्दम राजाओं के अधीन था। हो सकता है यह बल्ख या बैक्ट्रिया का भाग रहा हो। *IHQ*, 1933, 37-39 तथा मत्स्य पुराण, 12.14 ff. भी देखिये। इसमें इलावृत-वर्ष (मध्य एशिया) का भी उल्लेख है। महाभारत, III. 90.22-25 भी देखिए। गंगोत्री के पास एक स्थान है जो पुरूरवा-वंश की जन्म-भूमि माना जाता है।

[4] Law : *Ancient Mid-Indian Kshatriya Tribes*, p. 16. कुरुओं का महावृषों (*Vedic Index*, II, 279n.) तथा बाह्लिकों (महाभारत, II. 63.2-7) के सम्बन्ध उल्लेखनीय हैं। महाभारत (III. 145. 18-19) में उत्तर कुरु कैलाश और बदरी पहाड़ों के समीप माने गये हैं। दूसरे ग्रन्थ में ये लोग और उत्तर के कहे गये हैं। महाभारत के 1.109.10 में मध्यदेश के कुरुओं को दक्षिण कुरु कहा गया है।

शृञ्जयों के शासक के प्रति अपनी ईर्ष्या को नहीं छिपा सका। बाह्लिक प्रातिपीय नाम में 'बाह्लिक' शब्द एक व्यक्तिगत उपाधि प्रतीत होता है और इस बात का कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता कि बाह्लिक नाम में एवम् अथर्ववेद या बाद के अन्य ग्रन्थों की बाह्लिक जाति में किसी प्रकार का सम्बन्ध था। फिर भी इससे इस बात का संकेत तो मिलता ही है कि कुरुओं की उत्पत्ति उत्तर में किसी 'मध्यदेश' में हुई थी। कुरुओं की इस उत्पत्ति का संकेत कुरुओं[१] एवम् महावृषों[२] के पारस्परिक सम्बन्धों से तथा इस तथ्य से मिलता है कि ऐतरेय ब्राह्मण तथा महाभारत के समय में भी कुरुओं की एक शाखा हिमालय के उस पार रहती थी। कुरुवंश का इतिहास परीक्षित के पूर्व पाँचवीं पीढ़ी के शंतनु के समय से अधिक स्पष्ट होने लगता है। परीक्षित के शासन-काल की घटनाओं के सम्बन्ध में हमारे पास विश्वसनीय सूचनाओं की कमी है। हम केवल इतना जानते हैं कि शंतनु के समय में जो अकाल पड़ा था, वह परीक्षित के काल में समाप्त हो गया था और प्रजा सुखी एवम् समृद्ध थी।

जहाँ तक परीक्षित के समय का प्रश्न है, वेदों में इस सम्बन्ध में कोई प्रत्यक्ष सूचना नहीं मिलती। पुलकेशिन-द्वितीय के स्तुति-पाठक रविकीर्ति के एक शिलालेख—जिसे शक सम्वत् ५५६ = ६३४-३५ ईसवी में लिखा गया था—के अनुसार उस समय तक महाभारत युद्ध को ३७३५ वर्ष हो चुके थे।

त्रिंशत्सु त्रिसहस्त्रेषु भारताद् आह्वाद् इतः
सप्ताब्द-शत युक्तेशु गतेष्वब्देषु पञ्चसु।[३]

इस गणना तथा आर्यभट्ट (४९९ ई०) के अनुसार, महाभारत का युद्ध ३१०२ वर्ष ईसापूर्व में हुआ था। परीक्षित का जन्म भी क़रीब-क़रीब इसी समय हुआ था। इसे कलियुग का प्रारम्भ भी माना जा सकता है। परन्तु फ़्लीट[४] का मत है कि यह गणना वेदों के समय नहीं हुई थी। इस तिथि का आविष्कार तो कुछ हिन्दू ज्योतिषियों ने अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए घटना के ३५ सौ वर्ष बाद कर लिया था। वस्तुतः हिन्दू ज्योतिषियों एवम् इतिहासकारों—जिनमें वृद्ध-गर्ग, वराहमिहिर तथा कल्हण की गणना की जाती है—के अनुसार महाभारत का युद्ध कलियुग की प्रारम्भिक तिथि से ६५३ वर्ष बाद तथा शक सम्वत् से २५२६ वर्ष पूर्व, अर्थात् २४४९[५] वर्ष ईसा-

---

१. कुरु के प्रातिपेयों व बाह्लिकों का सम्बन्ध महाभारत (II. 63.2-7) में कहा गया है। **प्रतिपेयाः शान्तनवा भीमसेनाः स बाह्लिकाः·······शृणुध्वम् काव्याम् वाचम् सम्सदी कौरवाणाम्।**

२. *Vedic Index*, II. 279n 5; शतपथ ब्राह्मण (कण्व-पाठ); बाह्लिकों और महावृषों के लिए अथर्ववेद, V. 22.4-8.

३. *Ep. Ind.*, VI, pp. 11-12.

४. *JRAS*, 1911, p. 479 ff., 675 ff.

५. **आसन् मघासु मुनयः शासति पृथ्वीं युधिष्ठिरे नृपतौ**
षड्-द्विक-पंच द्वियुतः शककालस्तस्य राज्ञश्च।
—बृहद् संहिता, XIII 3. *Cf.* राजतरंगिणी, I,48-56.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पूर्व लड़ा गया था। महाभारत के युद्ध की यह तिथि भी उतनी ही सन्देहास्पद है जितनी कि आर्यभट्ट और रविकीर्ति द्वारा निर्धारित तिथि। वृद्ध-गर्ग-परम्परा का साहित्य उतना प्राचीन एवम् ऐतिहासिकता से पूर्ण नहीं कहा जा सकता जितनी कि कुसुमपुर के प्रसिद्ध ज्योतिषी की कृतियाँ। इस साहित्य में जिस तैथिकी-क्रम को वरीयता दी गई है, उसे रविकीर्ति के ऐहोल लेख में स्वीकार नहीं किया गया। वृद्ध गर्ग तथा वराह द्वारा दी गई तिथियों को स्वीकार करने वाले एक विख्यात लेखक (श्री पी० सी० सेनगुप्त[1]) ने भारत में इनके प्रचलन को सिद्ध करने के लिए भागवतामृत तथा कुछ आधुनिक पंचांगों के रूप में केवल दो प्रमाण प्रस्तुत किये हैं, परन्तु उक्त लेखक द्वारा महाभारत के कुछ श्लोकों के आधार पर इस परम्परा के समर्थन करने में कठिनाई ही कठिनाई है, क्योंकि उक्त लेखक ने जिस युग को पौराणिक अथवा महाकाव्य के कलियुग की संज्ञा दी है, उसके प्रारम्भिक समय के सम्बन्ध में पर्याप्त अनिश्चितता है। श्री सेन के अनुसार, महाभारत का कलियुग सम्भवतः ईसा से २४५४ वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुआ था। दूसरी ओर उन्होंने महाभारत युद्ध की तिथि ईसा से २४४९ वर्ष पूर्व निर्धारित की है। दूसरे शब्दों में, महाभारत का युद्ध महाकाव्य के कलियुग की प्रारम्भिक तिथि से पाँच वर्ष पश्चात् हुआ था। परन्तु अपनी पुस्तक के ३९३वें पृष्ठ पर उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है कि महाभारत के अनुसार, यह युद्ध कलियुग तथा द्वापर के अन्तर-काल में तथा श्रीकृष्ण के देहावसान से ३६ वर्ष पूर्व लड़ा गया था। श्रीकृष्ण के देहावसान के समय से ही वास्तविक कलियुग प्रारम्भ हुआ। इस प्रकार कलियुग के आरम्भ के सम्बन्ध में दी जाने वाली विभिन्न तिथियाँ एक दूसरे से मेल नहीं खातीं। ये त्रुटियाँ उन समस्त तर्कों को निराधार बना देती हैं जिनके आधार पर तैथिकी-क्रम-रूपी भवन को खड़ा करने का प्रयास किया गया है। इस सम्बन्ध में यह स्मरणीय है कि कल्हण ने जिन्होंने कश्मीर के कोनार्ड-प्रथम को तथा महाभारत युद्ध को ईसा से २४४९ वर्ष पुराना माना है—समाट् अशोक को कश्मीर के कोनार्ड-तृतीय (११८० वर्ष ईसापूर्व) से पहले का शासक माना है। यह निष्कर्ष विशुद्ध ऐतिहासिक प्रमाणों के विपरीत है और इस बात को सिद्ध करता है कि महाभारत की लड़ाई को ईसा से २४४९ वर्ष पुराना कहने वाले विद्वानों का तैथिकी-क्रम निराधार एवम् अविश्वसनीय है। कुछ लेखकों[2] ने वराहमिहिर के शक-काल को शाक्य-काल, अर्थात् बुद्ध की निर्वाण-तिथि के समान स्वीकार कर आर्यभट्ट तथा वृद्ध-गर्ग के मतों के विरोधाभास को दूर करने का प्रयास किया है। यह निष्कर्ष न केवल कल्हण की विचारधारा के विपरीत है, वरन् बृहत्संहिता के शक-काल को शक-नृप-काल[3] मानने वाले भट्टोत्पल ने इसका खण्डन किया है। वराहमिहिर स्वयं भी शकेन्द्र-काल या शक-भूप-काल के अतिरिक्त शक-काल के सम्वन्ध में कुछ नहीं जानते थे।[4]

---

[1] श्री पी० सी० सेनगुप्त, *Bharat Battle Traditions*, *JRASB*, IV, 1938, No. 3 (Sept. 1939, pp. 393-413)।

[2] *IHQ*, 1932, 85; *Modern Review*, June 1932, 650 ff.

[3] वराहमिहिर-कृत वृहत् सहिता, टीकाकार भट्टोत्पल तथा सम्पादक सुधाकर द्विवेदी, p.281.

[4] बृहत् संहिता, VIII, 20-21.

पुराणों के संकलनकर्त्ताओं ने एक तीसरा दृष्टिकोण भी प्रस्तुत किया है। विभिन्न ऐतिहासिक पुराणों में एक श्लोक कुछ हेर-फेर के साथ आया है जिसमें कहा गया है कि नन्दवंश के प्रथम राजा महापद्म के १०५०, तथा कुछ अन्य पांडुलिपियों के अनुसार १०१५, १११५ व १५०० वर्ष पूर्व राजा परीक्षित का जन्म हुआ था—

> महापद्म अभिषेकात् तु यावज्जन्म परीक्षितः
> एवम् वर्ष सहस्रम् तु ज्ञेयं पंचाशदुत्तरम् ।[1]

उपर्युक्त श्लोक में यदि 'पंचाशदुत्तरम्' शब्द सही है तो परीक्षित का जन्म १४वीं या १५वीं शताब्दी ईसापूर्व में पड़ता है। किन्तु यह तिथि भी सन्देहजनक ही है। पहली बात तो यह है कि विभिन्न पाण्डुलिपियों में अलग-अलग तिथियों के दिये जाने से तैथिकी-क्रम का महत्त्व समाप्त हो जाता है। दूसरे, विभिन्न पुराणों में महाभारत के युद्ध तथा महापद्म के राज्याभिषेक के बीच जिन-जिन राजाओं व राजवंशों का उल्लेख मिलता है, उनके शासन-काल के समय को जोड़ने पर न तो हमें किसी सर्वमान्य परम्परा का पता चलता है और न १०५० वर्ष की संख्या ही, जबकि मत्स्य, वायु एवम् ब्रह्माण्ड पुराणों में इस घटना की तिथि के लिए केवल १०५० वर्ष का ही उल्लेख आता है। यह बात सर्वविदित है कि पौराणिक तैथिकी-क्रमवेत्ताओं ने समकालीन राजवंशों के दो शासकों—प्रद्योत तथा बिम्बिसार—को एक-दूसरे के बाद गद्दी पर बैठते हुए दिखाया है और इस बात में सन्देह नहीं कि यह तथ्य उपर्युक्त अनिश्चितताओं को दूर करने में किसी हद तक सहायक हुआ है। परन्तु इस सम्बन्ध में एक बात और भी ध्यान देने योग्य है। पुराणों के जिस श्लोक में परीक्षित के जन्म तथा महापद्म के राज्याभिषेक के बीच १०५० वर्ष के अन्तर का उल्लेख आता है, उसी में आगे कहा गया है कि अन्तिम आन्ध्र राजा पुलोमावि तथा महापद्म के राज्याभिषेक में ८३६ वर्षों का अन्तर था। पुराणों में चूंकि महापद्म तथा उसके पुत्रों के १०० वर्षीय शासन-काल के उपरान्त चन्द्रगुप्त मौर्य के सिंहासनारोहण का उल्लेख किया गया है। अतः इस पौराणिक तैथिकी-क्रम के अनुसार, चन्द्रगुप्त एवम् पुलोमावि के बीच ८३६–१०० = ७३६ वर्षों का अन्तर होना चाहिये। अब, चूंकि चन्द्रगुप्त के राज्याभिषेक की तिथि ३२६ ईसापूर्व में निर्धारित नहीं की जा सकती, अतः यदि पौराणिक गणना को स्वीकार किया जाये तो पुलोमावि के राज्याभिषेक की तिथि को ४१० ई० से पूर्व नहीं

---

[1] Pargiter, *Dynasties of Kali Age*, p. 58. पार्जिटर के अनुसार, 'पंचशतोत्तरम्' की पुष्टि वायु तथा ब्रह्माण्ड पुराणों से नहीं होती। 'शतम् पंचदशोत्तरम्' का उल्लेख केवल भागवत पुराण में मिलता है। मत्स्य पुराण में 'पंचदशोत्तरम्' शब्द नहीं है। मत्स्य पुराण की एक पांडुलिपि में 'शतोत्रयम्' शब्द आया है। कुछ लोग उक्त शब्दावली को 'पंचशदुत्तरम्' के रूप में सही मानते हैं। अवन्ती के प्रद्योतों की मगध-सूची में सबसे ऊँची संख्या १५०० मिलती है। बार्हद्रथ-शासन को ७२३ वर्ष के बजाय १००० वर्ष का मानने पर उच्चतम संख्या (१००० बार्हद्रथ + १५२ प्रद्योत + ३६० शिशुनागों का समय) = १५१२ वर्ष की होती है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

माना जा सकता । परन्तु ईसवी काल की पाँचवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में दक्षिण (Deccan) के जिस इतिहास की हमें जानकारी है, उक्त तिथि इस इतिहास से मेल नहीं खाती । दक्षिण के तत्कालीन अभिलेखों से पता चलता है कि पुलोमावि तथा उसके पूर्वजों के राज्य पर उस समय काकाटकों तथा उन अन्य वंशों का अधिकार था जिनका उत्थान तथाकथित 'आन्ध्र वंश' या सातवाहनों के पतन के बाद हुआ था। यही कारण है कि पुराणों[1] के तैथिकी-क्रम को स्वीकार करते समय सतर्क रहने की आवश्यकता है ।

हाल ही में इस बात को प्रमाणित करने का प्रयास किया गया है कि परीक्षित के जन्म तथा महाभारत के युद्ध के लिए पुराणों द्वारा निर्धारित तिथि, अर्थात् १४०० वर्ष ईसापूर्व[2] ही वास्तविक तिथि थी । यह प्रयास वैदिक साहित्य में दी गई गुरुओं और शिष्यों की तालिकाओं पर आधारित गणना के अनुसार किया गया है । इन सूचियों के महत्त्व पर १९२३ में ही पर्याप्त प्रकाश डाला गया था, परन्तु इन सूचियों से जिन तथ्यों का पता चलता है, उन्हें निराधार कल्पनाओं के आधार पर कुछ पौराणिक पांडुलिपियों के तैथिकी-क्रम के समरूप सिद्ध करने का प्रयास किया गया है । उदाहरणार्थ, इस बात को स्वीकार कर लिया गया है कि बृहदारण्यक उपनिषद् के अन्त में दी गई वंशसूची वंश ब्राह्मण तथा जैमिनीय उपनिषिद् ब्राह्मण की वंशसूची की समकालीन है तथा ये सब सूचियाँ ५५० ईसापूर्व के बाद की कदापि नहीं हैं (*Op. Cit.* p. 70) । आगे चलकर (पृष्ठ ७७ पर) वंश ब्राह्मण को "c. 550 ईसापूर्व" का कहा गया है (यहाँ "उसके बाद की नहीं" शब्दों को छोड़ दिया गया है) । बृहदारण्यक तथा समूचे श्रुति साहित्य[3] को सामान्यतः बुद्ध के पहले का माना जाता है, किन्तु केवल इसी आधार पर यह सिद्ध नहीं किया जा सकता कि इनमें दी गई गुरुओं और शिष्यों की समस्त सूचियाँ भी उतनी ही प्राचीन हैं जितना कि श्रुति साहित्य । इतिहासकार वैदिक साहित्य को मोटे तौर से ५०० वर्ष ईसापूर्व का साहित्य मानते हैं, परन्तु वे "इसके latest excrescence" को उतना प्राचीन नहीं समझते । पाणिनि[4] ने वैदिक साहित्य को दो भागों में बाँट दिया है । पहला भाग तो वह जिसे वे 'पुराण-प्रोक्त" कहते हैं तथा दूसरा भाग वह जिसमें अन्य साहित्य आते हैं । ये साहित्य उतने पुराने नहीं हैं । इस साहित्यों को ५५० वर्ष ईसापूर्व का कहने के स्थान पर "५५० वर्ष ईसापूर्व के पूर्व का नहीं" कहना अधिक उचित होगा ।

आगे चलकर यह भी कहा गया है कि जनमेजय के पुरोहितों का समय ५५० ईसापूर्व से ८०० वर्ष पूर्व था । उक्त संख्या (८००) इस आधार पर प्राप्त की गई है कि मध्यवर्ती काल में कुल मिलाकर ४० पीढ़ियाँ हुई थीं और प्रत्येक पीढ़ी औसतन २० वर्ष तक चली थी । किन्तु इस गणना का सम्पूर्ण महत्त्व उस समय समाप्तप्राय

---

[1] *The Early History of the Vaishnava Sect* by Raychaudhuri, Second ed., pp. 62 ff.

[2] Dr. Altekar, *Presidential Address to the Archaic Section of the Indian History Congress, Proceedings of the Third Session*, 1939. pp. 68-77.

[3] Winternitz, *A History of Indian Literature*, p. 27.

[4] IV.3.105.

हो जाता है जब हम देखते हैं कि बृहदारण्यक उपनिषद् में गुरुओं की संख्या ४० के स्थान पर ४५ है और प्रत्येक गुरु-शिष्य-परम्परा का औसत-काल जैन तथा बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार ३० वर्ष था, २० वर्ष नहीं ।[1] साथ ही साथ हमें यह भी नहीं भूलना चाहिये कि यदि इस गणना की आधारशिला अर्थात् सूचियाँ "५५० ईसापूर्व से पूर्व की नहीं" हैं तो इन सूचियों को केवल terminus ad quem की संज्ञा दी जा सकती है । वास्तविक तिथि को निश्चित करने का कार्य फिर भी शेष रह जाता है । तैथिकी-क्रम के सिद्धान्त को जिस विशेष वंश-सूची पर आधरित किया गया है, उस सूची की तिथि के सम्बन्ध में अनिश्चितता के कारण तो उपर्युक्त सिद्धान्त की छोटी से छोटी बात पर भी सन्देह किया जा सकता है ।

कथासरित्सागर में एक स्थान पर परीक्षित-काल के सम्बन्ध में संकेत किया गया है । यह तिथि गुप्त-काल[2] के ज्योतिषियों तथा पुराणों द्वारा निर्धारित तिथि के बहुत बाद पड़ती है । इस ग्रन्थ में कौशाम्बी के शासक उदयन (c. ५०० ईसापूर्व) का उल्लेख किया गया है और उसे परीक्षित से पाँचवीं पीढ़ी का शासक कहा गया है । यद्यपि इसमें की सामग्री बहुत बाद की है, फिर भी इस ग्रन्थ में उन परम्पराओं के निहित होने का दावा किया गया है जो गुणाढच के समय से सम्बद्ध थीं । इस ग्रन्थ के अनुसार, गुणाढय सातवाहन-काल में हुए थे । बाण (600 A.D.) को उनका ज्ञान था ।

उत्तर वैदिककालीन साहित्य में भी एक ऐसी तिथि का उल्लेख आता है जो कथा सरित्सागर में दी गई तिथि से भी बाद की है । इसी अध्याय के अगले भाग में हम देखेंगे कि परीक्षित के पुत्र जनमेजय उपनिषद् के जनक या उनके समकालीन उद्दालक आरुणि से ५ या ६ पीढ़ी के बाद के हैं । कौषीतकि अथवा शांखायन आरण्यक[3] के अन्त में हमें उन शिक्षकों की सूची (वंश) का पता चलता है जिनके कारण ही हमें आरण्यक में निहित भण्डार उपलब्ध हो सका है । सूची का आरम्भ इस प्रकार हुआ है—

'ओ३म् ! अब वंशसूची प्रारम्भ होती है । ब्राह्मण-भूषण ! गुरु-भूषण ! इस कथा का ज्ञान हमें गुणाख्य शांखायन से, गुणाख्य को कहोला कौषीतकि से, और कहोला कौषीतकि को उद्दालक आरुणि से प्राप्त हुआ है ।"[4]

उपर्युक्त अनुच्छेद से स्पष्ट है कि गुणाख्य शांखायन और उद्दालक के बीच दो पीढ़ियों का अन्तर था जबकि उद्दालक और जनमेजय के बीच पाँच या छः पीढ़ियों का अन्तर था । इस प्रकार गुणाख्य परीक्षित से सात या आठ पीढ़ी बाद हुए थे ।[5] यहाँ इस बात का ध्यान रहे कि जिस प्रकार शांखायन से पूर्व गुणाख्य नाम जोड़ा गया है,

---

[1] Jacobi, परिशिष्ट-पर्वन्, 2nd ed., XVIII; Rhys Davids, *Buddhist Suttas*, Introduction, xlvii.

[2] कथासरित्सागर, IX. 6-7 ff. Penzer, I. 95.

[3] अध्याय १५.

[4] *SBE*, Vol. XXIX, p.4.

[5] आश्वलायन गृह्य सूत्र, III. 4. 4.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उसी प्रकार का कोई भी नाम आश्वलायन से नहीं जोड़ा गया। इससे सम्भवतः इस बात का संकेत मिलता है कि वैदिक परम्पराओं के अनुसार, आश्वलायन नाम के केवल एक ही महान् गुरु हुए थे। यह एक महत्त्वपूर्ण बात है कि वैदिक तथा बौद्ध, दोनों ही प्रकार के साहित्य में इस प्रसिद्ध विद्वान् को एक ही स्थान, अर्थात् कोशल (आधुनिक अवध) से सम्बन्धित दिखाया गया है। प्रश्न उपनिषद् से पता चलता है कि वे कौशल्य, अर्थात् कोशल-निवासी थे और साथ ही साथ कबन्धी कात्यायन के समकालीन थे। इन तथ्यों से हमें सावत्थी (कोशल के ही एक नगर) के अस्सलायन का ध्यान हो आता है। मज्झिम निकाय[1] के अनुसार, वे वैदिक काल के एक प्रसिद्ध विद्वान्[2] थे। वे न केवल गौतम बुद्ध के समकालीन थे, वरन् उनका समकालीन होने के नाते ककुद[3] अथवा पकुध कच्चायन के भी समकालीन थे। केटुभ (कर्मकाण्ड) वेत्ता के रूप में गौतम के समकालीन के उल्लेख से इस बात की सम्भावना अधिक हो जाती है कि उसे गृह्य सूत्र का प्रसिद्ध विद्वान् आश्वलायन ही समझा जाये। यदि ऐसा है तो वे ६ठी शताब्दी ईसापूर्व में रहे होंगे। गुणाख्य शांखायन जिनके गुरु कहोला की गृह्य सूत्रकार ने वन्दना की है, भी ६ठी शताब्दी ईसापूर्व के बाद के नहीं हो सकते। गुणाख्य के आरण्यक में पौष्करसादी, लौहित्य तथा एक अन्य गुरु की भी चर्चा की गई है। इस गुरु को मगधवासी कहा गया है। इनके उल्लेख से पता चलता है कि गुणाख्य से सम्बन्धित दोनों तिथियों में अधिक अन्तर न था। गुणाख्य के आरण्यक में उल्लिखित प्रथम दोनों व्यक्तियों को, अम्बथ तथा लोहिच्च सुत्त में बुद्ध का समकालीन कहा गया है। आरण्यक में मगधवासी गुरु के प्रति सम्मानसूचक चर्चा से एक ऐसे युग का संकेत मिलता है जो श्रौत सूत्र के बाद का है, क्योंकि श्रौत सूत्र में **'ब्रह्मबन्धुमगधदेशीय'** कह कर ब्राह्मणों का निन्दात्मक उल्लेख किया गया है।

गोल्डस्टुकर[5] का कथन है कि पाणिनि ने किसी जंगल में रहने वाले के अर्थ में ही 'आरण्यक' शब्द का प्रयोग किया है। वस्तुतः कात्यायन ही प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने वार्तिक में 'आरण्यक' शब्द को 'वन में पढ़े गये ग्रन्थ' के रूप में लिया है। 'आरण्यक' शब्द के इस अतिरिक्त अर्थ के सम्बन्ध में पाणिनि की चुप्पी से जब कात्यायन के स्पष्ट कथन की तुलना की जाती है तो इस बात में लेशमात्र भी सन्देह नहीं रहता कि इस अर्थ में 'आरण्यक' शब्द का ज्ञान उन लेखकों को तो था जिन्हें ईसापूर्व की चतुर्थ शताब्दी का कहा जाता है, परन्तु पाणिनि को इसका ज्ञान नहीं था।

---

१. II. 147. *et seq.*

२. **"तिण्णम् वेदानं पारगू सनिघाण्डु केटुभानम्।"**

३. अथर्ववेद (X. 2.3) में 'कबन्ध' का अर्थ है 'श्रोणि' तथा 'ऊरु', अर्थात् कूल्हा एवम् जांघें। अमर के अनुसार, 'ककुदमती' का भी लगभग यही अर्थ होता है।

४. *Vedic Index*, II. 116. पौष्करसादि तथा दूसरों से संबंधित उल्लेख कोई खास महत्त्व के नहीं हैं। हमें केवल इस बात पर विचार करना चाहिए कि सांखायन आरण्यक में दिये गये उदाहरणों एवं पाणिनि तथा आपस्तम्ब की साक्षियों का संयुक्त प्रभाव क्या हो सकता है।

५. पाणिनि : संस्कृत साहित्य में उसका स्थान, १९१४, ९९

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इस प्रसंग में यहाँ इस बात का ध्यान रहे कि कात्यायन के विपरीत पाणिनि, गुणाख्य के गुरु कहोला के समकालीन याज्ञवल्क्य की कृतियों को प्राचीण ब्राह्मण साहित्य (पुराण-प्रोक्त) में नहीं रखते।[1] गुणाख्य के गुरु कहोला के दूसरे समकालीन श्वेतकेतु का उल्लेख आपस्तम्ब[2] के धर्मसूत्र में एक आधुनिक लेखक के रूप में मिलता है। पाणिनि के सूत्रों में 'यवनानि'[3] के उल्लेख से तथा काव्य-मीमांसा[4] में उल्लिखित इस परम्परा से, कि उसने (यवनानि ने) पाटलिपुत्र नगर में ख्याति प्राप्त की थी, इस बात के स्पष्ट संकेत मिलते हैं कि वे शाक्य मुनि से पूर्व नहीं हुए थे। (हम जानते हैं कि पाटलिपुत्र की स्थापना बुद्ध की मृत्यु के पश्चात् उदयन के शासन-काल में ४८६ ईसापूर्व में हुई थी)। वैदिक साहित्य में असाधारण गति रखते हुए भी पाणिनि "वन में प्रणीत ग्रन्थ" के रूप में आरण्यक के अस्तित्व से अनभिज्ञ थे। अतः यह निष्कर्ष निकालना अनुचित न होगा कि पाणिनि, आरण्यकवेत्ताओं जिनमें गुणाख्य शांखायन को उच्च स्थान प्राप्त था—के बहुत बाद नहीं हुए थे। दूसरे शब्दों में, इस गुरु से सम्बन्धित समय की अधिकतम तथा न्यूनतम सीमा में अधिक अन्तर न था। यदि पाणिनि का काल छठी शताब्दी ईसापूर्व माना जाये तो तत्सम्बन्धी उपलब्ध सामग्री बिलकुल ठीक उतरती है।

हमें अभी भी परीक्षित और गुणाख्य के समय का अन्तर निकालने का प्रयास करना है। प्रोफ़ेसर रीज़ डेविड्स ने अपनी पुस्तक Buddhist Suttas में उपालि से महिन्द तक पाँच थेराओं के लिए १५० वर्षों का समय निर्धारित किया है। जैकोबी के अनुसार भी एक धर्मगुरु के लिए औसतन तीस वर्ष के समय का अनुमान लगाया जा सकता है। अतः हम परीक्षित से गुणाख्य शांखायन के बीच आठ या नौ पीढ़ियों के लिए २४० अथवा २७० वर्षों का समय निर्धारित कर सकते हैं और परीक्षित के लिए ईसापूर्व की नवीं शताब्दी का समय निश्चित कर सकते हैं।

परीक्षित के बाद उनका ज्येष्ठ पुत्र जनमेजय कुरु राज्य का उत्तराधिकारी बना। महाभारत में उस राजा द्वारा किये गये एक महान् नागयज्ञ का उल्लेख आता है। इस प्रसंग में यह भी कहा गया है कि जनमेजय ने तक्षशिला[5] पर विजय प्राप्त की थी। पंचविंश ब्राह्मण[6] तथा बौद्धायन श्रौत सूत्र[7] से स्पष्ट है कि महाभारत में इस कुरु राजा के सर्प-सत्र का जो विवरण दिया गया है, उसका कोई ऐतिहासिक आधार नहीं था। इसमें सन्देह नहीं कि वैदिक साहित्य में जिस सर्प-सत्र का उल्लेख है, वह महाभारत की ही कथा का एक प्रतिरूप है। ऐसा प्रतीत होता है कि उक्त कथा तीन

---

[1] IV. 3. 105 गोल्डस्टुकर की पुस्तक 'पाणिनि' में टीका सहित, "याज्ञवल्क्योदयो हि न चिरकाला इत्याख्यानेषु वार्ता।"

[2] धर्मसूत्र, 1.2.5,4-6.

[3] IV. I. 49.

[4] p. 55.

[5] महाभारत, 1.3.20· तक्षशिला के पूर्वप्रसंग के लिए पाणिनि, IV. 3.93; विनय ग्रन्थ, द्वितीय भाग, पृ० १७४; मलालसेकर, शब्दकोश, I, p. 982 भी देखिये।

[6] XXV. 15; *Vedic Index*, I, p. 274.

[7] Vol. II, p. 298; XVII. 18.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

विभिन्न स्थितियों से होकर विकसित हुई है। मूल कथा तो यह है कि नागों ने स्वयं यह सत्र (यज्ञ) किया था और जनमेजय भी उन्हीं में एक नाग था। उसने अध्वर्यु (पुजारी) का कार्य किया था। "इस यज्ञ के द्वारा नागों ने मृत्यु पर विजय प्राप्त की थी।" कथा का दूसरा रूप बौद्धायन श्रौत सूत्र में मिलता है। इस कथा के अनुसार, नाग राजा और राजकुमार विष-प्राप्ति के उद्देश्य से बलि चढ़ाने के लिए मनुष्य रूप में (कुरु प्रदेश के) खाण्डवप्रस्थ में एकत्रित हुए थे। जनमेजय भी उन्हीं में से एक था। महाभारत की कथानुसार, इस यज्ञ को करने वाला एक कुरुवंशीय राजा था और यज्ञ का उद्देश्य सर्पों के लिये मृत्यु पर विजय प्राप्त करना अथवा विष प्राप्त करना न होकर सर्पों का समूल विनाश करना था। इन विषैले जन्तुओं के किसी कार्य में ऐतिहासिक संघर्ष की झलक पाना तो असम्भव है।[1]

चूंकि ब्राह्मण-साहित्य में जनमेजय को एक विजेता के रूप में चित्रित किया गया है, अतः जनमेजय की तक्षशिला-विजय को एक ऐतिहासिक तथ्य कहा जा सकता है। ऐतरेय ब्राह्मण[2] में कहा गया है—**जनमेजयः पारिक्षितः समन्तम् सर्वतः पृथिवीं जयन् परीयायाश्वेन च मेध्येमेनेजे तदेषा यज्ञ गाथा गीयते—**

आसन्दीवति धान्यावम् रुक्मिणं करितस्रजम्
अश्वं बबन्ध सारंगम्[3] देवेभ्यो जनमेजय इति।

"जनमेजय परीक्षित ने सम्पूर्ण पृथ्वी का भ्रमण कर दिग्विजय प्राप्त की और अश्वमेध यज्ञ किया था।" इस सम्बन्ध में एक बलि-गीत गाया जाता है—"असन्दीवत में जनमेजय ने देवताओं के लिए एक घोड़ा बाँधा था। इस घोड़े के शरीर पर काले धब्बे थे, वह अन्न खाता था और स्वर्ण-आभूषणों एवम् पीली मालाओं से सुशोभित था।"[4]

ऐतरेय ब्राह्मण[5] के एक अन्य अनुच्छेद में लिखा है कि जनमेजय 'सर्वभूमि', अर्थात् चक्रवर्ती राजा बनना चाहता था।

"एवं विदम् हि वै मामेवंविदो याजयन्ति तस्माद् अहं जयाम्यभीत्वरीं सेनां जयाम्यभीत्वर्या सेनया न मा दिव्या न मानुष्य इषव रिच्छत्त्येष्यामि सर्वमायुः सर्वभूमिः-र्भविष्यामीति।"

---

[1] डॉक्टर डब्ल्यू० कालैण्ड द्वारा अनुवादित पञ्चविंश ब्राह्मण, p. 641; *Cf.* Winternitz, *JBBrRAS.*, 1926, 74. ff; Pargiter, *AIHT*, p. 285 के अनुसार परीक्षित-द्वितीय को नागाओं ने मार डाला था, किन्तु उसके पुत्र जनमेजय-तृतीय ने उन सबको हराया और शान्ति स्थापित की।

[2] VIII. 21.

[3] Variant—**अबध्नादश्वम् सारङ्गम्**—शतपथ ब्राह्मण, XIII. 5. 4.1-2.

[4] Keith, ऋग्वेद ब्राह्मण ग्रन्थ, 336; Eggeling, शतपथ ब्राह्मण, V, p. 396.

[5] VIII. 11.

(जनमेजय परीक्षित प्रायः कहा करते थे)––"जो लोग हमारे यज्ञ को जानते हैं, वे जानते हैं कि मैं आक्रमणकारी सेना पर विजय प्राप्त करता हूँ और मैं आक्रमण द्वारा ही यह विजय प्राप्त करता हूँ। लोक या परलोक, कहीं के भी बाण मुझ तक नहीं पहुँच सकते। मैं अपनी पूरी आयु भर जिऊँगा और सम्पूर्ण पृथ्वी का स्वामी बनूँगा।"

जनमेजय द्वारा तक्षशिला-विजय का अर्थ है कि जनमेजय ने अपनी माता माद्रवती[1] के जन्मस्थान माद्र अथवा मध्य पंजाब पर अधिकार कर लिया था। इस सम्बन्ध में यह ध्यान रखना चाहिये कि किसी समय कुरुराज्य की पश्चिमी सीमा सिन्ध की सहायक नदी परिणाह (Parenos) तक फैली हुई थी। पौरव-वंश के राजा सिकन्दर के समय तक झेलम और रावी के मध्यवर्ती प्रदेश पर राज्य करते थे। भूगोलवेत्ता तोलेमी ने भी स्पष्ट रूप से इस बात का उल्लेख किया है कि इस विस्तृत क्षेत्र के बीचोबीच स्थित शाकल (स्यालकोट) पर पाण्डु राजाओं का शासन था।

अनुमानतः अपनी विजय-यात्राओं के बाद ही जनमेजय का पुनर्भिषेक एवम् ऐन्द्रमहाभिषेक हुआ। उन्होंने दो अश्वमेध यज्ञ किये और वैशम्पायन तथा ब्राह्मणों से उनका झगड़ा हुआ था। मत्स्य पुराण के अनुसार, पहले तो राजा ब्राह्मणों के विरुद्ध दृढ़ता से अड़े रहे, किन्तु बाद में उन्होंने हार मान ली और अपने पुत्र को राजपाट देकर जंगल को चले गये। इतिहासकार पार्जिटर ने मत्स्यपुराण के विवरण को प्राचीनतम माना है। वायु पुराण के अनुसार, ब्राह्मणों से हुए विवाद में ही उनका अन्त हो गया और ब्राह्मणों ने उनके पुत्र को सिंहासन पर बैठाया था। पौराणिक विवरण की मोटी-मोटी बातों की पुष्टि ब्राह्मण-ग्रन्थों से होती है। शतपथ ब्राह्मण में केवल एक अश्वमेध यज्ञ की चर्चा आती है और इसमें कहा गया है कि इस यज्ञ के पुजारी इन्द्रोत दैवाप शौनक थे। ऐतरेय ब्राह्मण में दूसरे अश्वमेध यज्ञ का उल्लेख है और पुरोहित का नाम तुरकावषेय बतलाया गया है। इसमें एक ऐसी कथा भी आती है जिसके अनुसार उन्होंने एक यज्ञ में कश्यपों के स्थान पर भूतवीरों को अपना पुरोहित बनाया था। इस पर कश्यप गोत्र के एक अन्य परिवार असितमृग ने बलपूर्वक भूतवीरों से पौरोहित्य-कार्य छीन लिया। हमारे पास ब्राह्मणों से जनमेजय के विवाद की अनेक पौराणिक कहानियाँ हैं। जनमेजय के विरोधियों के नेता वैशम्पायन निश्चित रूप से कश्यपवंश के थे। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी इस विवाद का उल्लेख मिलता है (**कोपाज जनमेजयो ब्राह्मणेषु विक्रान्तः**)।

गोपथ ब्राह्मण में जनमेजय तथा दो हंसों की एक कथा है जिसमें ब्रह्मचर्य की महत्ता एवम् उसके लिए व्यतीत किये जाने वाले समय पर प्रकाश डाला गया है। स्पष्ट है कि यह एक पौराणिक कथा है, फिर भी इससे इस बात के स्पष्ट संकेत मिलते हैं कि गोपथ-काल में जनमेजय को पौराणिक गाथाओं का नायक माना जाता था।[2]

---

[1] भागवत पुराण (I. XVI. 2) में उत्तरा की पुत्री इरावती को जनमेजय एवं उसके भाइयों की माँ कहा गया है।

[2] गोपथ ब्राह्मण, ed. by. R.L. Mitra and Harchandra Vidyabhushan, p. 25 ff (I. 2 5.)। उपर्युक्त कथा में दन्ताबल धौम्र एक नाम आया

पूर्व उल्लिखित यज्ञगीतों के अनुसार, जनमेजय की राजधानी आसन्दीवत थी जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। शतपथ ब्राह्मण में यज्ञभवन या जनमेजय के राजभवन की बड़ी सुन्दर झाँकी प्रस्तुत की गई है—

समानान्तसदम् उक्षन्ति हयान् काष्ठभृतो यथा
पूर्णान् परिश्रुतः कुम्भान् जनमेजयसादनऽइति।

अर्थात्, "जनमेजय के राजमहल या यज्ञभवन में, समान रूप से पुरस्कृत घोड़ों पर दधि और सुरा की वर्षा के साथ ही साथ वे इसी पेय से अपने पात्र भी भर लेते हैं।"[1] "दधि और सुरा" परीक्षित के समय में ही कुरुओं का मुख्य पेय बन चुका था।

यदि महाभारत पर विश्वास किया जाय तो जनमेजय का दरबार तक्षशिला में भी लगा था और वहीं पर वैशम्पायन ने उन्हें कौरव-पाण्डओं[2] के संघर्ष की कथा सुनाई थी जिसमें दोनों पक्षों की ओर से शृंजय सहित अनेक व्यक्तियों ने भाग लिया था। महाभारत युद्ध का कोई स्वतन्त्र प्रमाण नहीं है, किन्तु कुरु तथा शृंजय की शत्रुता के अनेक संकेत शतपथ ब्राह्मण[3] में भी मिलते हैं और इन दोनों की शत्रुता पर आधारित युद्धगाथाएँ महाभारत ग्रन्थ में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण साहित्यिक स्थान रखती हैं। साथ ही साथ इतिहासकार हॉप्किन्स ने छान्दोग्य उपनिषद्[4] की उस कथा की ओर संकेत किया है जिसके अनुसार एक घोड़ी ने कुरुओं की रक्षा की थी—

यतो यत आवर्तते तत् तद् गच्छति मानवः
............................कुरून् अश्वाभिरक्षति।

उक्त पद हमें महाभारत की एक विपद-गाथा (कुरुनाम् वैशसम्) की याद दिलाता है।[5]

है, कुछ लेखकों ने इस नाम को और जैमिनीय ब्राह्मण के दन्ताल धौम्य को एक ही कहा है, किन्तु इसका कोई प्रमाण नहीं है। बौद्धायन श्रौत सूत्र (Vol. III, p. 449) में 'धूम्र', 'धूम्रायन' तथा 'धौम्य' शब्द कश्यप-ग्रुप के विभिन्न व्यक्तियों के लिए आये हैं।

[1] शतपथ ब्राह्मण, XI. 5.5,13; Eggeling, V. 95.

[2] महाभारत, XVIII. 5.34.

[3] कुरुक्षेत्र के युद्ध को प्रायः कुरुओं तथा शृञ्जय के बीच हुआ कहा जाता है (महाभारत, VI. 45.2; 60. 29; 72,15; 73.41; VII. 20.41;149. 40; VIII. 47.23; 57.12; 59.1; 93.1)। शतपथ ब्राह्मण में भी इन दो वंशों के बीच कुछ अमैत्रीपूर्ण व्यवहार का उल्लेख मिलता है (XII. 9.3. 1 ff.; *Vedic Index*, II. p. 63)।

[4] IV. 17. 9-10; *The Great Epic of India*, p. 385.

[5] महाभारत, IX, 35.20.

यह कहा जा सकता है कि चूँकि पांडुओं का वैदिक साहित्य में नाम नहीं आता, इसलिये इनका कुरुओं से संघर्ष उत्तर-वैदिक काल में हुआ होगा। किंतु यह निष्कर्ष निकालना ग़लत होगा, क्योंकि एक तो argumentum ex silentio प्रायः निर्णायक नहीं होता; दूसरे, भारतीय परम्परा के अनुसार, पाण्डु अपरिचित व्यक्ति न होकर कुरुवंश की ही एक शाखा थे। हॉप्किन्स अवश्य लिखता है कि पाण्डु लोग अज्ञात जाति के थे और गंगा के उत्तर की किसी जंगली जाति से संबन्धित थे।[१] किन्तु, पतंजलि[२] ने भीम, नकुल और सहदेव को कुरु कहा है।[३] हिन्दू-परम्परा के अनुसार पाण्डव, कुरुवंश की ही एक शाखा थे, जैसे कि कौरव भरत-वंश की एक शाखा थे। महाभारत नाम ही दोनों पक्षों और प्रमुख वीरों के भरतवंशीय सम्बन्धों की ओर संकेत करता है। बौद्ध साहित्य भी इसी निष्कर्ष की ओर संकेत करता है। दश ब्राह्मण जातक[४] में कुरु राज्य तथा इन्दपत्त नगर के युधिट्ठिला वंश के राजा को स्पष्ट रूप से कौरव्य (कुरुवंश का) कहा गया है। पाण्डवों के बहुपति-प्रथायुक्त विवाहों से हम यह नहीं कह सकते कि वे कुरुवंशीय नहीं थे। मध्यदेशीय कुरुओं में प्रचलित नियोग की प्रथा उनकी पैतृक बहुपतियुक्त विवाह-प्रथा से अधिक भिन्न नहीं थी।[५] साथ ही साथ उत्तरी कुरुओं के विवाह-सम्बन्धी नियम निश्चित रूप से उदार थे, जबकि वे वैवाहिक धर्म का आदर करते थे।[६]

आश्वलायन के 'गृह्यसूत्र'[७] के समय तक वैशम्पायन 'महाभारताचार्य' के रूप में प्रसिद्ध हो चुके थे। तैत्तरीय आरण्यक[८] तथा पार्णिनि की अष्टाध्यायी[९] में भी वैशम्पायन का उल्लेख मिलता है। इस समय यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि महाभारत का मूल गायक जनमेजय का समकालीन था, या नहीं; किन्तु, वैदिक साहित्य में मुझे ऐसी कोई वस्तु नहीं मिली जो महाभारत की विरोधी हो। इसमें सन्देह नहीं की वैदिक साहित्य के प्राचीन अंशों में महाभारत का उल्लेख नहीं मिलता,

---

१. *The Religions of India*, p. 388.

२. IV. 1.4.

३. *Ind. Ant.*, I, p. 350.

४. जातक नं० 495.

५. *Political History*, pp. 95-96; *Journal of the Department of Letters* (Calcutta University), Vol. IX भी देखिये। इसके अलावा *Early History of the Vaishnava Sect*, Second Edition, pp. 43-45; महाभारत, I, 103, 9-10; 105, 37-38; *JRAS*, 1897. 755 ff.; आपस्तम्ब, II. 27.3; बृहस्पति, XXVII भी देखिये। यद्यपि पांडुवंश में बहुपति-प्रथा थी, किन्तु द्रौपदी के अलावा किसी के भी कई पति नहीं थे। इनके वंशजों में भी कोई ऐसा उदाहरण नहीं मिलता। महाभारत में कुरुओं और पांडवों का उल्लेख अलग-अलग ही हुआ है। इसी प्रकार विद्वानों ने Plantagenet, York and Lancaster; Capet, Valois, Bourbon and Orleans; Chaulukya and Vaghela देशों को भी संबंधित कहा है।

६. महाभारत, I. 122.7.

७. III. 4.

८. I. 7. 5.

९. IV. 3. 104.

किन्तु 'इतिहासों'[१] शब्द उनमें भी मिलता है। यह सर्वविदित है कि वैशम्पायन द्वारा जनमेजय को सुनाई गई कथा को सर्वप्रथम 'इतिहास' की संज्ञा दी गई थी तथा बाद में उसे राजा के पूर्वज पाण्डवों की विजयगाथा के रूप में जय[२] अथवा विजयगान की संज्ञा दी गई थी।

मुच्यते सर्वपाप्पेभ्यो राहुणा चन्द्रमा यथा
जयो नामेतिहासोऽयं श्रोतव्यो विजिगीषुणा।[३]

"इस कथा को सुनने वाला व्यक्ति समस्त प्रकार के पापों से उसी प्रकार बच जाता है जिस प्रकार चन्द्रमा राहु से। इस इतिहास को जय की संज्ञा दी गई है और विजय की अभिलाषा रखने वाले सभी व्यक्तियों को इसका श्रवण करना चाहिए।"

शतपथ ब्राह्मण[४] तथा शांखायन श्रौत सूत्र[५] में कहा गया है कि जनमेजय के भाई भीमसेन, उग्रसेन तथा श्रुतसेन ने भी अश्वमेध यज्ञ किया था।[६] बृहदारण्यक उपनिषद् के समय लोगों में उनके जीवन और उनकी मृत्यु के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने की प्रबल जिज्ञासा थी। यहाँ तक कि विद्वानों में भी इस सम्बन्ध में बड़ी जिज्ञासापूर्ण चर्चाएँ हुआ करती थीं। स्पष्ट है कि परीक्षित-वंश का सूर्य बृहदारण्यक उपनिषद् काल[७] के पूर्व ही अस्त हो चुका था। यह भी स्पष्ट है कि परीक्षित के वंशज कुछ पापों के भागी सिद्ध हुए थे जिनके निवारण-हेतु उन्होंने अश्वमेध यज्ञ किया था। शतपथ ब्राह्मण में लिखा है—

पारिक्षिता यजमाना अश्वमेधैः परोऽवरम्
अजहुः कर्म पापकम् पुण्याः पुण्येन कर्मणा।[८]

---

[१] अथर्ववेद, XV. 6.11-12.

[२] *Cf.* C. V. Vaidya, *Mahabharat : A Criticism*, p.2; and S. Levi in *Bhand. Com. Vol.*, pp. 99 sqq.)।

[३] महाभारत, आदि पर्व, 62,20; *Cf.* उद्योग, 136,18.

[४] XIII.5.4.3.

[५] XVI. 9.7.

[६] क्या इन तीनों भाइयों ने जनमेजय के यज्ञों में भाग लिया था? महाभारत (I.3.1.) में इनके भाग लेने का स्पष्ट उल्लेख मिलता है।

[७] इस प्रश्न से कि 'आखिर परीक्षित लोग कहाँ गये' यह नहीं सिद्ध होता कि उनका विनाश हो गया था। पार्जिटर के अनुसार, यह प्रश्न कुछ और ही संकेत करता है। 'अश्वमेध यज्ञ करने वाले कहाँ गये' का अभिप्राय यह भी था कि वे लोग बड़े ही प्रतापी या वरदान-प्राप्त लोग थे (*AIHT*, 114.)। रामायण में जनमेजय का नाम भी उन राजाओं की सूची में रखा गया है जो बड़े ही ऐश्वर्यशाली थे।

[८] शतपथ ब्राह्मण, XIII. 5.4.3.; *Cf.* महाभारत, XII. 152,38. महाभारत के अनुसार, परीक्षित-वंश के लोगों पर ब्रह्महत्या तथा भ्रूणहत्या का

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अर्थात्, "सत्यनिष्ठ परीक्षित वंशीय राजाओं ने अश्वमेध यज्ञ करते हुए अपने पुण्य कार्यों से अपने पापकर्मों से मुक्ति प्राप्त की।"

यहाँ इस बात की कल्पना की जा सकती है कि इस यज्ञ के माध्यम से धर्माचार्यों के झगड़े का अन्त हुआ और कुरुदेश में कुछ समय तक राजाओं एवम् पुरोहितों में पारस्परिक प्रेम बना रहा। पुराणों के अनुसार, जनमेजय का उत्तराधिकारी शतानिक था तथा उसके पुत्र एवम् उत्तराधिकारी का नाम अश्वमेधदत्त था। वायु तथा मत्स्य पुराणों के प्रसिद्ध अधिसीमाकृष्ण इसी अश्वमेधदत्त की संतान थे। अधिसीमाकृष्ण का पुत्र निचक्षु था। कहा जाता है कि निचक्षु के शासन-काल में हस्तिनापुर गंगा की बाढ़ में बह गया और राजा ने हस्तिनापुर के स्थान पर कौशाम्बी (इलाहाबाद के समीप) या कोसम को अपनी राजधानी बनाया था।[1]

वैदिक साहित्य में जनमेजय के किसी भी उत्तराधिकारी का अथवा हस्तिनापुर नगर का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं है, जबकि महाभारत एवम् पुराणों के अनुसार, हस्तिनापुर कुरुओं की प्रमुख महानगरी थी। फिर भी, पाणिनि[2] की कृतियों से हस्तिनापुर की प्राचीनता स्पष्ट रूप से प्रमाणित होती है। जहाँ तक राजाओं का प्रश्न है, ऋग्वेद में अश्वमेध नामक एक (भरतवंशीय) राजा का उल्लेख है[3], किन्तु ऐसा कोई संकेत नहीं है कि अश्वमेध और अश्वमेधदत्त एक ही व्यक्ति के नाम थे। ऐतरेय ब्राह्मण तथा शतपथ ब्राह्मण में शतानीक सात्राजित को एक शक्तिशाली राजा कहा गया है जिसने काशी के राजकुमार धृतराष्ट्र को हरा कर उसके अश्वमेध यज्ञ का घोड़ा छीन लिया था। वह राजा भी सम्भवतः भरतवंशीय था[4], किन्तु सात्राजित गोत्र सम्भवतः इस बात की ओर संकेत करता है कि वह जनमेजय के पुत्र शतानीक से भिन्न था। पंचविंश ब्राह्मण, जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण, तथा छान्दोग्य उपनिषद् में अभिप्रतारिण कक्षसेनि नामक एक कुरु राजा की चर्चा की गई है जो गिरीक्षित औच्चमन्यव, शौनक कापेय तथा दृति ऐन्द्रोत का समकालीन था। चूंकि दृति जनमेजय

पाप था (*Ibid.*, 150, Verses 3 and 9)। *Cf.* also शतपथ ब्राह्मण, XIII. 5.4.1.

[1] गंगयापहृते तस्मिन्नगरे नागसाह्वये

त्यक्त्वा निचक्षु नगरम् कौशम्ब्याम् सो निवत्स्यति।

'जब नागसाह्वय नगर (हस्तिनापुर) गंगा की लहरों में बह जायगा तो निचक्षु कौशाम्बी में रहने लगेगा।'

Pargiter, *Dynasties of the Kali Age*, p. 5

रामायण (II.68.13) के अनुसार हस्तिनापुर गंगा के किनारे बसा था। महाभारत (I.128) तथा महाभाष्य (अनुगंगम् हास्तिनपुरम्) का भी यही मत है।

[2] VI. 2,101.

[3] V. 27.4-6.

[4] शतपथ ब्राह्मण, XIII. 5. 4. 19-23.

के पुरोहित इन्द्रौत दैवाप (दैवापी) शौनक का पुत्र एवम् उत्तराधिकारी था[१], अतः कक्षसेन का पुत्र अभिप्रतारिण, उस महान् राजा (जनमेजय) का उत्तराधिकारी रहा होगा। हम जानते हैं कि महाभारत[२] में कक्षसेन का उल्लेख जनमेजय के भाई के रूप में आया है, अतः अभिप्रतारिण जनमेजय का भतीजा था। ऐतरेय ब्राह्मण तथा शांखायन श्रौत सूत्र[३] में वृद्धद्युम्न अभिप्रतारिण नामक एक राजकुमार का उल्लेख मिलता है जो सम्भवतः अभिप्रतारिण का पुत्र था। ऐतरेय ब्राह्मण[४] में सम्भवतः उसके पुत्र रथगृत्स तथा पुरोहित शुचिवृक्ष गौपालायन[५] का उल्लेख आया है। शांखायन श्रौत सूत्र[६] के अनुसार, यज्ञ के समय वृद्धद्युम्न से कोई त्रुटि हो गई थी जिस पर एक ब्राह्मण ने श्राप दिया कि एक दिन कुरुक्षेत्र से कुरवंश निष्काषित कर दिया जायेगा और फिर हुआ भी ऐसा ही।

जनमेजय के राज्य-काल में भी यज्ञों से राजवंश पर गम्भीर विपत्तियों की आशंका बनी रहती थी। कुरुराज्य में उपयुक्त व्यक्तियों द्वारा कर्मकाण्डों के समुचित निर्वाह में उतनी ही रुचि दिखाई जाती थी जितनी कि विदेह के दरबार में दार्शनिक परिचर्चाओं पर। यहाँ तक कि चतुर्थ शताब्दी ईसापूर्व में भी चन्द्रगुप्त मौर्य को उस समय भी यज्ञों में भाग लेना पड़ता था, जबकि युद्ध अथवा प्रशासन के कार्यों में उनकी उपस्थिति परमावश्यक हुआ करती थी। यज्ञ में भूल—विशेषतया ब्राह्मण कर्मकाण्ड के गढ़ प्राचीन कुरुप्रदेश में ऐसे कार्यों में भूल—होना कोई साधारण बात न थी। इन दिनों धार्मिक अनाचरण के फलस्वरूप राज्य को दैवी विपत्तियों का सामना करना पड़ता था और जनता उनके दुष्परिणामों से कष्ट उठाती थी। हम गंगा की बाढ़ में हस्तिनापुर के बह जाने की पौराणिक कथा का उल्लेख कर चुके हैं। छान्दोग्य उपनिषद् में भी इसी प्रकार की एक कथा का उल्लेख मिलता है जिसके अनुसार कुरु राज्य में ओलों अथवा टिड्डियों से फसलें नष्ट हो गई थीं और उषस्ति चाक्रायण के परिवार को विवश होकर पड़ोस के किसी सामन्त के गाँव में तथा बाद में विदेह के जनक के यहाँ शरण लेनी पड़ी थी।[७]

---

[१] वंश ब्राह्मण, *Vedic Index*, Vol. I, pp. 27,373.

[२] I. 94.54.

[३] XV. 16. 10-13.

[४] Trivedi's translation, pp. 322-23.

[५] एक गौपालायन कुरु के यहाँ 'स्थपित' नामक ऊंचे पद पर था (बौद्ध श्रौत सूत्र, XX. 25; *Vedic Index*, 1. 128)। शुचिवृक्ष और उसके संबंध के बारे में कुछ पता नहीं चलता।

[६] XV. 16. 10-13.

[७] छान्दोग्य, I. 10. 1; बृहद् उपनिषद्, III, 4. पूर्वप्रसंग के लिए इसके अलावा ऋग्वेद, X. 98 (शांतनु के समय का अकाल) तथा महाभारत, I. 94 (संवरण की कथा) भी देखिये। छांदोग्य उपनिषद् में लिखा है—**मटचीहतेषु कुरुष्वाटिक्या सहजायया उषस्तिर्ह चाक्रायण इभ्यग्रामे प्रद्राणक उवास।** 'जब कुरुप्रदेश में ओले पड़े थे और टिड्डियों का प्रकोप हुआ था तो उषस्ति चाक्रायण तथा उनकी पत्नी को बड़ा कष्ट उठाना पड़ा था।' इस ब्राह्मण तथा उसकी पत्नी की यह दशा

पंचविंश ब्राह्मण[१] में कुरुवंश की एक शाखा के राजा 'अभिप्रतारिण' की राजधानी का पता चलता है । यह वही राजा है जिसके शासन-काल में उन दुर्घटनाओं का सूत्रपात हुआ था जिनके फलस्वरूप कुरुवंश का विनाश हुआ । हमें यह भी पता चलता है कि सम्भवतः कक्षसेन के पुत्र अभिप्रतारिण के पुरोहित दृति ने खाण्डव[२] में एक यज्ञ कराया था । इस ग्रन्थ[३] में अभिप्रतारिण-शाखा के राजाओं को "अपने सम्बन्धियों में सबसे शक्तिशाली" राजा कहा गया है । यह एक महत्त्वपूर्ण संकेत है । इससे पता चलता है कि अभिप्रतारिण तथा उसके उत्तराधिकारियों के समय जनमेजय जीवित नहीं थे तथा कुरु के राजवंश में अभिप्रतारिण-वंश ही सबसे अधिक चमका था । इस विवरण से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि उस समय कुरुवंश की अन्य अनेक शाखाएँ भिन्न-भिन्न स्थानों पर राज्य कर रही थीं । इनमें एक शाखा हस्तिनापुर पर राज्य करती थी और उसने बाद में हस्तिनापुर के स्थान पर कौशाम्बी को अपनी राजधानी बनाया था । पुराणों में इसी शाखा का उल्लेख आया है । दूसरी शाखा ने इषुकार[४] पर राज्य स्थापित किया था । तीसरी तथा सबसे शक्तिशाली शाखा, जैसा कि हम देख चुके हैं, खाण्डव के सर्वप्रसिद्ध राज्य पर शासन करती थी । महाभारत के अनुसार, इन्द्रप्रस्थ इसी की राजधानी थी । यह नगर वर्तमान दिल्ली के समीप बसा हुआ था और जातकों में इसे उन राजाओं की राजधानी के रूप में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है जो अपने आपको "युधिट्ठिर या युधिष्ठिर गोत्र" के राजा कहा करते थे ।

अभिप्रतारिण का राज्य-वैभव अल्पकालीन था । कुरुओं पर तरह-तरह की विपत्तियाँ आईं और राज्य का तीव्र गति से विघटन हो गया ।[५] ब्राह्मणों तथा राजाओं सहित अधिकांश प्रजा को विवश होकर देश छोड़ना पड़ा और वे पूर्वी भारत में जा बसे । कुरु अथवा भरत वंश की एक शाखा द्वारा अपनी राजधानी को कौशाम्बी ले

परीक्षित-कालीन कुरुवासियों की दशा से भिन्न थी । टीकाकारों ने 'मटची' का अर्थ ओले, पत्थर या टिड्डियों का दल माना है । 'देवी भागवतम्' में भी लिखा है—**मटचि युथवत्तेषाम् समुदयास्तु निर्गताः** (X.13. 110) । किटल के शब्दकोश में यही अर्थ मिलता है (Jacob, *Scraps from Shaddarshan*, *JRAS*, 1911, 510; *Vedic Index*, II. 119; *Bhand. Carm. Lec.*, 1918, 26-27; Bagchi, *IHQ*, 1933, 253) ।

[१] XXV. 3. 6.

[२] XIV. 1, 12.

[३] II. 9. 4, Caland's ed., p. 27.

[४] *SBE*, xlv. 62.

[५] *Cf.* जैमिनीय ब्राह्मण, III. 156; *JAOS*, 26.61. "जब अभिप्रतारिण वृद्ध हो गया तो उसके लड़कों ने जायदाद का बँटवारा कर लिया और आपस में लड़ने-झगड़ने लगे ।"

जाने की पुष्टि भाष्य के नाटकों से भी होती है। स्वप्नवासवदत्ता नामक ऐसे ही एक नाटक में कौशाम्बी-नरेश उदयन को भरतवंशीय कहा गया है।[1]

भरतानां कुले जातो विनीतो ज्ञानवाञ्छुचिः
तन्नार्हसि बलाद्धर्तुं राजधर्मस्य देशिकः।

"तुमने भरत-वंश में जन्म लिया है। तुम आत्म-अनुशासित, शुद्ध एवं प्रबुद्ध हो। चूँकि तुम्हें राजधर्म का प्रतीक होना चाहिये, अतः बलपूर्वक उसे (स्त्री को) रोकना तुम्हें शोभा नहीं देता।"

परीक्षित-वंश की वंशावली

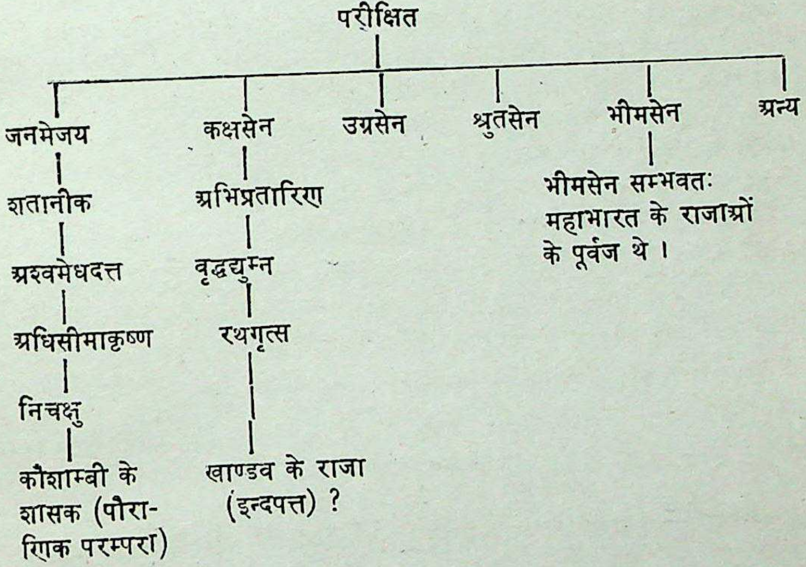
परीक्षित
जनमेजय
शतानीक
अश्वमेधदत्त
अधिसीमाकृष्ण
निचक्षु
कौशाम्बी के शासक (पौराणिक परम्परा)
कक्षसेन
अभिप्रतारिण
वृद्धद्युम्न
रथगृत्स
खाण्डव के राजा (इन्दपत्त) ?
उग्रसेन
श्रुतसेन
भीमसेन
भीमसेन सम्भवतः महाभारत के राजाओं के पूर्वज थे।
अन्य

२. जनक-काल

सर्वे राज्ञो मैथिलस्य मैनाकस्येव पर्वताः
निकृष्टभूता राजानो........

—महाभारत[2]

---

[1] Ed. गणपति शास्त्री, p. 140, Trans. V. S. Sukthankar, p. 79. *Cf*. प्रतिज्ञायौगन्धरायण, '**वेदाक्षर समवाय-प्रविष्टो भारतो वंशः**", "**भारत कुलोपभुक्तम् वीणारत्नम्**", Act II.

भारतानाम् कुले जातो
वत्सानामूर्जितः पतिः, Act. IV.

[2] III. 134. 5. जिस प्रकार सभी पर्वत मैनाक पर्वत से निम्नकोटि के हैं, उसी प्रकार मिथिला-नरेश के मुक़ाबले में सभी राजागण भी निम्न स्तर के हैं।

हम देख चुके हैं कि एक के बाद एक विपत्ति ने कुरुवंश को बुरी तरह अपंगु बना डाला था। सम्पूर्ण राज्य छिन्न-भिन्न हो गया और एक राजा को तो देश भी छोड़ना पड़ा। तत्पश्चात् राजनीति में कुरुवंश के लोगों ने कोई महत्वपूर्ण भूमिका नहीं निभायी।

उत्तर कुरु-काल का सर्वाधिक उल्लेखनीय व्यक्ति विदेह के दार्शनिक राजा जनक थे जिन्हें वेदों में उद्दालक आरुणि तथा याज्ञवल्क्य का समकालीन कहा गया है। कुरुओं की ह्रासोन्मुख तथा विदेहों की बढ़ती हुई शक्ति का आभास तो इसी तथ्य से होता है कि ब्राह्मण ग्रन्थों[१] में कुरुओं को राजन् कहा गया है, जबकि विदेह के जनक को सम्राट् की उपाधि दी गई है। शतपथ ब्राह्मण[२] के अनुसार, राजन् की अपेक्षा सम्राट् की पदवी अधिक प्रतिष्ठित मानी जाती थी।

इसमें सन्देह नहीं कि राजा जनक परीक्षित-वंश के बाद हुए थे। आगे चल कर हम देखेंगे कि (यदि पौराणिक परम्पराओं को स्वीकार किया जाये तो) राजा जनक सम्भवतः निचक्षु के समकालीन थे। उषस्त अथवा उषस्ति चाक्रायण—जिनके समय में कुरुओं पर विपति आई थी—के तो वह निश्चित रूप से समकालीन थे। हम देखते हैं कि जनक के शासन-काल में भी प्रजा में परीक्षित-वंश की महत्वपूर्ण भूमिका एवं उनके रहस्यमय भाग्य की स्मृति बनी हुई थी। यहाँ तक कि मिथिला के राजदरबार में भी बड़े जिज्ञासापूर्ण ढंग से उन पर विचार-विमर्श हुआ करता था। बृहदारण्यक उपनिषद् में भुज्यु लाह्यायनी ने एक प्रश्न पूछ कर जनक के दरबारी रत्न याज्ञवल्क्य की परीक्षा ली थी। कहा जाता है कि प्रश्नकर्त्ता ने किसी मद्र-कन्या के माध्यम से एक दैवी शक्ति से प्रश्न का उक्त प्राप्त कर रखा था। प्रश्न था—

क्व पारिक्षिता अभवन् ?[३] (परीक्षित-वंश के लोग कहाँ गये ?)

याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया—"वहाँ, जहाँ अश्वमेध यज्ञ करने वाले निवास करते हैं।" इससे स्पष्ट है कि उस समय परीक्षित-वंश के लोग समाप्त हो चुके थे, फिर भी उनके जीवन-मरण की स्मृति बनी हुई थी और देश के विभिन्न भागों में स्त्री-पुरुष इस विषय पर वार्तालाप करते समय आत्मविभोर हो उठते थे।[४]

यह सम्भव नहीं कि जनमेजय तथा जनक के बीच काल-सम्बन्ध का बिलकुल ठीक-ठीक निरूपण किया जा सके। महाभारत तथा पौराणिक परम्पराओं के अनुसार तो वे दोनों समकालीन लगते हैं। महाभारत में कहा गया है कि जनक के प्रमुख दरबारी उद्दालक तथा उनके पुत्र श्वेतकेतु ने जनमेजय के सर्प-सत्र में (नाग-यज्ञ में) भाग लिया था—

---

१. ऐतरेय ब्राह्मण, VIII. 14. पंचविंश, XIV. 1. 12. etc.

२. V. I. 1, 12-13.

३. बृहद् उपनिषद्, III. 3. 1; E. Roer, बृहद् उपनिषद्, p. 20.

४. Weber, *Ind. Lit.*, 126 ff. In the *Journal of Indian History*, April, 1936, p. 20, edited by Dr. S. Krishnasvami

सदस्यश्चाभवद् व्यासः पुत्र-शिष्य सहायवान्
उद्दालकः प्रमतकः श्वेतकेतुश्च पिंगलः ।[1]

"व्यास ने अपने पुत्र तथा शिष्य उद्दालक, प्रमतक, श्वेतकेतु तथा पिंगल के साथ पौरोहित्य-कार्य सम्पन्न किये ।"

विष्णुपुराण में कहा गया है कि जनमेजय के पुत्र शतानीक को याज्ञवल्क्य ने वेदपाठ कराया ।[2]

इस सम्बन्ध में महाभारत तथा पुराणों की अविश्वसनीयता वैदिक साक्षी के आधार पर सिद्ध होती है । शतपथ ब्राह्मण[3] से हमें पता चलता है कि इन्द्रोत दैवाप अथवा दैवापि शौनक जनमेजय के समकालीन थे । जैमिनीय उपनिषद् तथा वंश-ब्राह्मणों के अनुसार, दृति ऐन्द्रोत अथवा ऐन्द्रोति उनके शिष्य थे । दृति का शिष्य पुलुष प्राचीन-योग्य था[4] जिसने पौलुषी सत्ययज्ञ को शिक्षा दी थी । छान्दोग्य उपनिषद्[5] से हमें पता चलता है कि पौलुषी सत्ययज्ञ जनक के दो दरबारियों[6] अश्वतराश्वि तथा उद्दालक आरुणि के समकालीन थे । अतः सत्ययज्ञ निश्चित रूप से विदेह के जनक के समकालीन थे । सत्ययज्ञ, जनक के समकालीन होते हुए भी आयु में उनसे बड़े थे, क्योंकि शतपथ ब्राह्मण[7] में लिखा है कि सत्ययज्ञ के शिष्य सोमशुष्म सत्ययाज्ञी प्राचीनयोग्य ने जनक से भेंट की थी । चूँकि सत्ययाज्ञी, इन्द्रोत दैवापि शौनक के बहुत बाद हुए थे, इसलिए उनके समकालीन जनक इन्द्रोत के समकालीन जनमेजय के काफ़ी समय बाद हुए होंगे ।

हमें शतपथ ब्राह्मण के दसवें भाग के अन्त में तथा बृहदारण्यक के छठे अध्याय में दी गई गुरुओं की सूची भी ध्यान में रखनी चाहिये । इन ग्रन्थों में जनमेजय के पुरोहित तुराकावषेवय को एक प्राचीन संन्यासी कहा गया है और सूची के अनुसार वे सांजीवीपुत्र के ९ पीढ़ी पूर्व पड़ते हैं, जबकि जनक के समकालीन याज्ञवल्क्य तथा उद्दालक आरुणि सांजीवीपुत्र के पूर्व क्रमशः चौथे तथा पाँचवें पड़ते हैं ।

Aiyangar and Others, "ऐसा लगता है कि श्री रायचौधरी ने Weber के नाम का बिना उल्लेख किये हुए उसके विचारों को अपना बनाकर रखने का प्रयास किया है ।" A perusal of the *Bibliographical Index* (pp. 319, 328) appended to the first ed. of the *Political History* and p. 27 of the text; बाद के संस्करणों की भूमिका से *JIH* में छपे लेखक की सच्चाई पर काफ़ी प्रकाश पड़ता है ।

[1] महाभारत, आदिपर्व, 53. 7.

[2] विष्णु पुराण, IV. 21. 2.

[3] XIII. 5. 4. 1.

[4] *Vedic Index*, II. p. 9.

[5] V. 11. 1. 2.

[6] बृहदारण्यक उपनिषद्, V. 14. 18: "जनको वैदेहो बुडिलम् आश्वतराश्विम्, उवाच ।" and III. 7. 1.

[7] XI. 6. 2. 1-3.

जनमेजय	तुराकावषेय	
यज्ञवचस	राजस्तम्बायन	
कुश्रि	कुश्रि वाजश्रवस[1]	
शांडिल्य	उपवेशी	
वात्स्य	अरुण	
वामकषायण	उद्दालक आरुणि	राजा जनक
महित्थि	याज्ञवल्क्य	
कौत्स	आसुरि	
माण्डव्य	आसुरायण	
माण्डूकायनी	प्राश्नीपुत्र आसुरिवासिन	
संजीवीपुत्र	संजीवीपुत्र	

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि राजा जनक जनमेजय से पाँच या छः पीढ़ी बाद हुए थे।[2] इतिहासकार जैकोबी तथा रीज डेविड्स[3] दोनों इस प्रश्न पर सहमत हैं कि प्राचीन काल की एक गुरु-परम्परा या पीढ़ी की औसत अवधि ३०

---

[1] *IC*, III. 747.

[2] विभिन्न इतिहासकारों के मतानुसार, जनमेजय को जनक से एक दर्जा ऊपर ही रखा जाना चाहिए। इन लोगों ने ऊपर लिखे **'क्व पारिक्षिता अभवन्'** प्रश्न की व्याख्या की है। इन लोगों ने गोपथ ब्राह्मण की कथा का उल्लेख करते हुए दन्ताबल धौम्र को जनमेजय का समकालीन कहा है। जनमेजय के समय के इस दन्ताबल धौम्र की समानता जैमिनीय ब्राह्मण के दन्ताल धौम्य से की गई है। इसे जनक के समय का भी कहा जा सकता है। इतिहासकारों ने यह सुझाव दिया है कि किसी ब्राह्मण ग्रन्थ में आया नाम भाल्लवेय वस्तुतः इन्द्रद्युम्न का ही नाम था (*JIH.*, April 1936, 15 ff., etc.)। उक्त तथ्य के प्रभाव से वैदिक साहित्य में लङ् तथा लिट् का प्रयोग कभी-कभी एक ही अर्थ में किया जाता था। यह भी ध्यान देने योग्य है कि **'क्व पारिक्षिता अभवन्'** का प्रश्न सर्वप्रथम जनक के दरबार में नहीं उठा था। इसे मूर्धाभिषिक्त उदाहरण माना जाता है तथा यह किसी दैवी सत्ता के लिए प्रयुक्त होता था। यह भी नहीं कहा जा सकता है कि जनमेजय परीक्षित तथा विदेह जनक के समय में यह घटना घटी है। दूसरी ओर ऊपर ही संकेत किया जा चुका है कि बौद्धायन श्रौत सूत्र में धौम्र तथा धौम्य को कश्यप-ग्रुप के दो भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के रूप में माना गया है। जनमेजय की मृत्यु दृति तथा अभिप्रतारिण के समय में ही हो गई होगी (See *ante*, p. 46. See also *IHQ*, Vol. VIII, 1932. 600, ff)। जहाँ तक भाल्लवेय नाम का प्रश्न है, यह नाम पितृनाम या गोत्रनाम है, जैसे आत्रेय या भारद्वाज आदि। मुख्य नाम के अभाव में जिन भाल्लवेय का नाम आये, हम उसे इन्द्रद्युम्न ही समझें, यह भी ठीक नहीं है, जैसे कि हर आत्रेय को उदमय तथा हर भारद्वाज को द्रोण या पिण्डोल नहीं कहा जा सकता।

[2] परिशिष्टपर्वन्, 2nd Ed., xviii and *Buddhist Suttas*, Introduction, p. dclvii.

वर्ष होती थी। अतः इन्द्रोत से लेकर सोमशुष्म तक और तुरकावषेय से लेकर उद्दालक आरुणि तक और जनक तक की पाँच या छः गुरु-परम्पराओं या पीढ़ियों की कुल अवधि १५० या १८० वर्ष रही होगी।[१] अतः अब यह मानना तर्कसंगत होगा कि राजा जनक का जन्म जनमेजय के १५० या १८० वर्ष बाद तथा परीक्षित के दो शताब्दी बाद हुआ था। यदि पौराणिक परम्परा को स्वीकार करते हुए हम परीक्षित को १४वीं शताब्दी ईसापूर्व में मानें तो जनक का काल १२वीं शताब्दी ईसापूर्व में पड़ता है। इसके विपरीत, शांखायन आरण्यक के अनुसार, यदि हम उद्दालक के शिष्य के शिष्य गुणाख्य शांखायन को छठी शताब्दी ईसापूर्व में मानें तो परीक्षित का आविर्भाव ९वीं शताब्दी ईसापूर्व में तथा जनक का सातवीं शताब्दी ईसापूर्व में हुआ होगा।

ऐसा प्रतीत होता है कि जनक के राज्य विदेह का सर्वप्रथम उल्लेख यजुर्वेद[२] की संहिताओं में हुआ है। यह राज्य उत्तर विहार[३] के आधुनिक तिरहुत के बराबर था। विदेह तथा कोशल के बीच सदानीरा नामक नदी थी। सम्भवतः आधुनिक गण्डक ही उस समय की सदानीरा नदी थी। गण्डक नेपाल से निकलकर पटना के समीप गंगा नदी में मिल जाती है।[४] परन्तु श्री ओल्डेनबर्ग[५] का मत है कि महाभारत में सदानीरा और गण्डकी को भिन्न भिन्न माना गया है—'**गण्डकीञ्च महाशोणम् सदानीरा तथैव च।**' अतः पार्जिटर ने आधुनिक राप्ती[६] को सदानीरा माना है।

---

१. कुछ आलोचकों का कहना है कि यह आवश्यक नहीं कि शिष्य गुरुओं की अपेक्षा आयु में उनसे कम ही हों। यह भी हो सकता है कि कभी-कभी शिष्य गुरु के बराबर की उम्र का या अधिक उम्र का भी हो सकता है; किन्तु यह भी नहीं कहा जा सकता कि गुरुओं तथा शिष्यों की परम्परा में सभी शिष्यों को गुरुओं से अधिक आयु का ही मान लिया जाय, केवल उस स्थिति में नहीं जब कि गुरु अपने शिष्य का पिता भी हो। कभी-कभी अधिक आयु के शिष्यों द्वारा गुरु का स्थान ले लेने से Jacobi और Rhys Davids ने गुरु और शिष्य की एक पीढ़ी की जो औसत अवधि रखी है, वह ग़लत नहीं कही जा सकती।

२. *Vedic Index*, II. 298.

३. पार्जिटर (*JASB*, 1897, 89) के अनुसार, "विदेह-सीमा गोरखपुर में राप्ती के किनारे से दरभंगा तक थी। पश्चिम में कोशल तथा पूर्व में आन्ध्र राज्य के उत्तर में पहाड़ी तक तथा दक्षिण में वैशाली की सीमा तक विदेह राज्य फैला हुआ था।"

४. *Vedic Index*, II. 299.

५. *Buddha*, p. 398n. *Cf.* Pargiter, *JASB*, 1897. 87. महाभारत, II. 20. 27.

६. यदि महाभारत (II. २०. २७) में आये 'क्रमेण' शब्द का यह अर्थ भी निकाला जा सकता है कि नदियों का नाम भी क्रमबद्ध ही रखा गया है तो तत्कालीन सदानीरा नदी आज की बूढ़ी गण्डक कही जा सकती है। यह गण्डक नदी से भिन्न है (*Cf.* map in *JASB*, 1895)।

सुरुचि जातक[1] से पता चलता है कि सम्पूर्ण विदेह राज्य कुल ९०० मील क्षेत्र में फैला हुआ था। इसमें १६,००० ग्राम थे।[2]

वैदिक साहित्य में विदेह की राजधानी मिथिला का उल्लेख नहीं मिलता, परन्तु जातकों तथा महाकाव्य में इसका बार-बार उल्लेख किया गया है। इसे मुजफ़्फ़रपुर तथा दरभंगा ज़िलों की सीमा के उत्तर में नेपाल राज्य के भीतर अवस्थित जनकपुर के छोटे से नगर के अनुरूप माना गया है। सुरुचि तथा गांधार[3] जातकों में कहा गया है कि यह नगर सात लीग अर्थात् २१ मीलों में फैला हुआ था। इस नगर के चारों द्वारों पर एक-एक हाट थी।[4] महाजनक जातक[5] में मिथिला नगर का वर्णन इस प्रकार है—

"मिथिला नगरी की भवन-निर्माण-कला रेखा चित्रों एवं नक़्क़ाशियों के कारण बड़ी ही दर्शनीय है। नगर के भीतर सुन्दर सड़कें तथा गलियाँ हैं। नगर-द्वार, दीवारें तथा सामरिक दृष्टि से बनाये गये गुम्बद बड़े ही सुन्दर हैं। विदेह राज्य की इस यशस्विनी राजधानी में वीरों तथा योद्धाओं की भी कमी नहीं है। ये वीर अपने अस्त्र-शस्त्र तथा ध्वजाएँ भी फहराते हैं। इनकी पोशाक सिंहचर्म की होती है। मिथिला के ब्राह्मण काशी-वेश धारण करते हैं तथा सुगन्धित चन्दन लगाये रहते हैं। मिथिला के राजमहलो की रानियाँ सदैव राजसी वेशभूषा तथा बहुमूल्य रत्नों से अलंकृत रहती हैं।"[6]

रामायण[7] के अनुसार, मिथिला के राजवंश की स्थापना निमि नामक राजा ने की थी। निमि के पुत्र का नाम मिथि था तथा मिथि के पुत्र जनक-प्रथम थे। तत्पश्चात् महाकाव्य में राजवंश की सूची (जनक-द्वितीय, सीता के पिता तथा उनके भाई तथा सांकाश्य-नरेश कुशध्वज) तक दी गई है। वायु[8] तथा विष्णुपुराण[9] में राजा नेमि या निमि को इक्ष्वाकु का पुत्र कहा गया है तथा उनके नाम के साथ विदेह[10] का विशेषण लगाया गया है। उक्त दोनों पुराण निमि के पुत्र को ही जनक-प्रथम कहते हैं। तत्पश्चात् राजवंश की सूची को सीरध्वज तक ले जाया गया है और उन्हें सीता का पिता कहा गया है। इसी राजा को हम रामायण का जनक (सीता का पिता) कह सकते हैं। पुराणों में सीरध्वज से आगे सम्पूर्ण वंश का उल्लेख किया गया है। इस वंश के अन्तिम राजा कृति थे और वंश का नाम जनक-वंश रखा गया था।

---

१. जातक, नं० 489.

२. जातक, नं० 406.

३. जातक, नं० 489 and 406.

४. जातक, नं० 546.

५. No. 539; Cowell's जातक, Vol. VI, p. 30.

६. मिथिला के अन्य विवरण के लिए महाभारत (III, 206. 6-9) देखिये।

७. I. 71.3.

८. 88. 7-8; 89. 3-4.

९. IV. 5. 1.

१०. स शापेन वशिष्ठस्य विदेहः संपद्यत—वायु पुराण। बृहद्देवता (vii. 59) में भी वशिष्ठ द्वारा विदेह के राजा को शाप देने की कथा मिलती है।

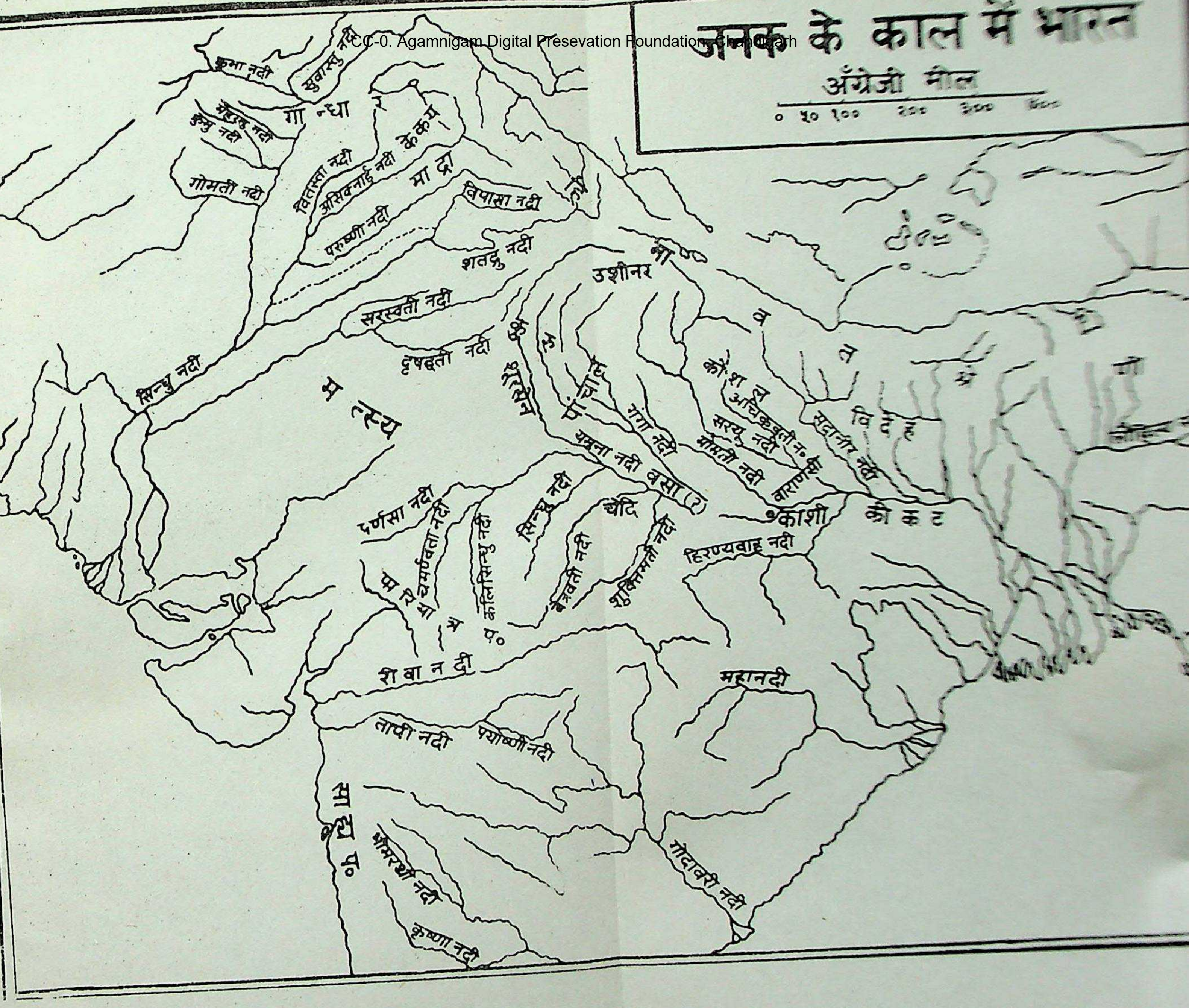

जनक के काल में भारत

अँग्रेजी मील
० ५० १०० २०० ३०० मील
कुभा नदी
सुवास्तु नदी
गान्धार
मेहत्नु नदी
क्रुमु नदी
गोमती नदी
वितस्ता नदी
असिक्नाई नदी
केकय
माद्रा
परुष्णी नदी
विपासा नदी
शतद्रु नदी
सरस्वती नदी
दृषद्वती नदी
सिन्धु नदी
मत्स्य
कुरु
शूरसेन
पंचाल
उशीनर
कौशल
अचिरवती न०
सरयु नदी
गोमती नदी
वाराणसी
काशी
सदानीरा नदी
विदेह
कीकट
यमुना नदी
गंगा नदी
वत्सा
चेदि
सिन्धु नदी
पर्णसा नदी
चर्मण्वती नदी
कालिसिन्धु नदी
वेत्रवती नदी
शुक्तिमती नदी
हिरण्यवाह नदी
परिमात्र प०
शवा नदी
महानदी
तापी नदी
पयोष्णीनदी
सह्य प०
भीमरथी नदी
कृष्णा नदी
गोदावरी नदी

धृतेस्तु बहुलाश्वोऽभूद् बहुलाश्व-सुतः कृतिः
तस्मिन् संतिष्ठते वंशो जनकानां महात्मनाम् ।[1]

वेदों में भी नामिसाप्य[2] नामक राजा को विदेह का राजा कहा गया है, परन्तु उन्हें कहीं भी मिथिला के राजवंश का संस्थापक नहीं कहा गया है । इसके विपरीत, शतपथ ब्राह्मण से ऐसा प्रतीत होता है कि विदेह राज्य की स्थापना सरस्वती[3] तट से आये विदेघ माथव नामक राजा ने की थी । कथा है कि एक बार अग्नि-देवता सरस्वती के तट से पूर्व की ओर बढ़े और उत्तरी पर्वतों (हिमालय) से प्रवाहित होने वाली सदानीरा नदी तक पहुँचे । माथव तथा उनके पुरोहित गौतम राहूगण भी अग्नि के पीछे-पीछे गये थे । अग्निदेव ने नदी को नहीं जलाया । इसलिए प्राचीन काल में ब्राह्मण लोग नदी को पार नहीं करते थे । उस समय सदानीरा नदी के पूर्व का भाग जंगली तथा कृषिविहीन पड़ा था[4], परन्तु माथव के पहुँचने के बाद अन्य ब्राह्मण भी वहाँ पहुँचे और उन्होंने यज्ञों द्वारा अग्नि प्रज्वलित कर उसकी प्रसन्नता के लिए वहाँ कृषि करना प्रारम्भ किया । अग्नि-देवता के प्रकट होने पर माथव विदेघ ने उनसे पूछा कि—"हम लोग कहाँ रहें ?" अग्नि-देवता ने उत्तर दिया—"नदी के पूर्वी तट को अपना निवास-स्थान बनाओ ।" शतपथ ब्राह्मण के रचयिता लिखते हैं कि आज भी यह नदी विदेह तथा कोशल राज्यों के बीच सीमारेखा का काम करती है । महाकाव्य तथा पौराणिक सूचियों में द्वितीय स्थान के राजा मिथि विदेह का नाम माथव विदेघ की याद दिलाता है ।

यदि माथव विदेघ मिथिला के राजवंश के संस्थापक थे तो नामिसाप्य को यह सौभाग्य प्राप्त नहीं हो सकता । मज्झिम निकाय[5] तथा निमि जातक के अनुसार, मखादेव मिथिला के राजवंश के पूर्वपुरुष थे तथा निमि का जन्म वहीं से राजवंश को समाप्त करने के निमित्त हुआ था । इस प्रकार बौद्ध साहित्य से पता

---

[1] १. वायु पुराण (89, 23) के अनुसार, जनक एक वंश का नाम था, इसके लिए (महाभारत, III. 133, 17; रामायण, I. 67.8) देखिये । 'जनकानाम्', 'जनकैः' आदि आये शब्दों से लगता है कि ऐसा आवश्यक नहीं था कि हर नाम के साथ जनक शब्द रखा जाय । इक्ष्वाकूनाम् (रामायण, I. 5. 3.) से उन लोगों का बोध होता है जो इक्ष्वाकु-वंश के थे, या उससे प्रभावित थे (I. 1. 8); रघुनाम् अन्वयम्, आदि ।

[2] २. *Vedic Index*, I. 436.

[3] ३. Macdonel, *Sanskrit Literature*, pp. 214-15; *Vedic Index*, II. 298; शतपथ ब्राह्मण, 1.4.1, etc.; Oldenberg, *Buddha*, pp. 398-99; Pargiter, *JASB*, 1897, p. 86 *et seq*.

[4] ४. इस प्रदेश को महाभारत में 'जलोद्भव' कहा गया है (महाभारत, II. 30.4.; Pargiter, *Ibid.*, 88n) ।

[5] ५. II. 74-83.

चलता है कि निमि नाम राजवंश के प्रथम राजा ने नहीं, वरन् बाद के किसी राजा अथवा राजाओं ने ग्रहण किया था।[1]

चूँकि उत्तर वैदिक साहित्य में मिथिला के राजवंश को जनक-वंश कहा गया है (**वंशो जनकानां महात्मनां**) और उनमें अनेक ने जनक नाम धारण किया था। अतः इस बात का पता लगाना कठिन है कि आरुणि तथा याज्ञवल्क्य के समकालीन तथा वैदिक साहित्य के जनक महान् कौन थे, परन्तु एक तथ्य ऐसा है जिसके आधार पर उन्हें पौराणिक सूची का सीरध्वज माना जा सकता है और वह तथ्य है "सीता का पिता होना।" रामायण की नायिका सीता के पिता जनक केकय-नरेश अश्वपति (भरत के नाना[2]) से आयु में छोटे तथा उनके समकालीन थे और चूँकि वैदिक साहित्य के अनुसार, उद्दालक आरुणि तथा बुडिल आश्वतराश्वि केकय-नरेश तथा जनक दोनों के दरबार में जाया करते थे, अतः वैदिक साहित्य के राजा जनक भी केकय-नरेश अश्वपति के समकालीन थे।[3] परन्तु चूँकि भरत के मामा[4] का नाम भी अश्वपति था, अतः ऐसा प्रतीत होता है कि जनक नाम की भाँति यह कोई व्यक्तिगत नाम न होकर उपाधि अथवा पारिवारिक नाम रहा होगा।[5] ऐसी स्थिति में यह कहना कठिन होगा कि वैदिक साहित्य के राजा जनक को सीता के पिता के अनुरूप मानना कहाँ तक उचित होगा। फिर भी ऐसा प्रतीत होता है कि भवभूति ने भी यह स्वीकार किया है कि वैदिक जनक ही सीता के पिता थे। कवि ने अपने महावीर-चरित[6] में सीता के पिता का उल्लेख करते हुए कहा है—

तेषामिदानीं दायादो वृद्धः सीरध्वजो नृपः
याज्ञवल्क्यो मुनिर्यस्मै ब्रह्म पारायणम् जगौ।[7]

हम जिस जनक का उल्लेख कर रहे हैं, उन्हें बौद्ध साहित्य के जनक नाम के

---

[1] बृहद्देवता (vii. 59) के अनुसार, विदेह के राज्य सरस्वती के तट पर स्थित अपनी जन्मभूमि के सम्पर्क में हमेशा रहे हैं—पंचविंश ब्राह्मण, XXV. 10. 16-18 (नामि साप्य की कथा)।

[2] रामायण, II. 9. 22.

[3] *Vedic Index.*, II, 69; छांदोग्य उपनिषद्, V. 11. 1-4; बृहद् उपनिषद्, III. 7.

[4] रामायण, VII. 113. 4.

[5] अश्वपति एक वंश का ही नाम है। इस मत के विरोध में यह कहा जा सकता है कि महाभारत (vii. 104. 7; 123.5) के अनुसार केकय के सामन्त या बृहत्क्षत्र के साथ ऐसा कोई विशेषण नहीं था।

[6] Act I, Verse 14.

[7] *Cf.* Act II, Verse 43; उत्तर-चरित, Act IV, Verse 9. महाभारत (III. 133, 4) में उद्दालक और कहोड के समकालीन को ऐन्द्रद्युम्नि कहते थे (*AIHT*, 96)। महाभारत (XII. 310. 4; 3. 8. 95) में याज्ञवल्क्य के समकालीन को दैवराति कहा गया है। शतपथ ब्राह्मण इसी याज्ञवल्क्य को कहा जाता है (*Ibid.*, XII. 318. 11f.)। किन्तु, इन ऐन्द्रद्युम्नि तथा दैवराति शब्दों से किसी राजा का कुछ पता नहीं चल सकता

किसी भी राजा के अनुरूप सिद्ध करना और भी कठिन हो जाता है। प्रोफ़ेसर रीज़ डेविड्स[१] जातक न० ५३९ में आये महाजनक को ही विदेह का जनक मानते हैं। उस जातक के महाजनक-द्वितीय ने एक स्थान पर कहा है कि "मिथिला के सभी राज-महल जल सकते हैं, परन्तु मेरे महल में आग नहीं लग सकती।" उक्त कथन से विदेह के दार्शनिक राजा जनक का स्मरण हो आता है।

महाभारत[२] के अनुसार, उक्त कथन मिथिला के जनक 'जनदेव' ने कहा था, जबकि जैन ग्रन्थ उत्तराध्ययन के अनुसार वही वाक्य राजा नमी द्वारा कहा गया था।[३] इस तथ्य से तथा साथ ही साथ विष्णुपुराण[४] में नेमि एवम् अरिष्ट के नामों के पास-पास रखे जाने से इस बात के संकेत मिलते हैं कि नमी अथवा नेमि अरिट्ठा के पुत्र महाजनक-द्वितीय के अनुरूप थे। यदि महाजनक-द्वितीय ही राजा नेमि थे तो उन्हें जनक नहीं समझा जा सकता, क्योंकि वैदिक साहित्य के अनुसार नेमि तथा जनक में अन्तर था। हो सकता है कि इस परिस्थिति में हम वैदिक जनक को जातक का महाजनक-प्रथम समझ बैठें, परन्तु इसके लिए हमारे पास प्रमाणों का अभाव है।

शतपथ ब्राह्मण, बृहदारण्यक तथा महाभारत[५] में जनक को सम्राट् कहा गया है। इससे स्पष्ट है कि वे साधारण राजा से उच्चतर थे। यद्यपि वैदिक साहित्य में यह कहीं नहीं मिलता कि राजाओं के राजा को सम्राट् कहते हैं तो भी शतपथ ब्राह्मण में स्पष्ट लिखा है कि सम्राट् राजन् से बड़ा होता है। राजसूय यज्ञ करने से राजा का पद मिलता है और वाजपेय यज्ञ करने से सम्राट् की उपाधि प्राप्त होती है। राजा का पद निम्न तथा सम्राट् का पद उच्च होता है।[६] आश्वलायन श्रौत सूत्र में जनक को महान् यज्ञकर्ता कहा गया है।[७]

परन्तु राजा जनक की ख्याति एक राजा अथवा यज्ञकर्ता के रूप में उतनी न थी जितनी कि साहित्य एवम् दर्शन-प्रेमी के रूप में। उनके दरबार में कोशल, कुरु, पांचाल और सम्भवतः मद्रदेश के ब्राह्मण भी आया करते थे। उदाहरणार्थ अश्वल, जारत्कारव, आर्तभाग, भुज्यु लाह्यायनी, उषस्त या उषस्ति चाक्रायण, कहोड

---

[१] *Buddhist India*, p. 26.

[२] XII. 17. 18-19; 219. 50.

"मिथिलायाम् प्रदीप्तायाम् न मे दह्यति किञ्चन।"
"अपि च भवति मैथिलेन गीतम् नगरम् उपाहितम् अग्निनाभिवीक्ष्य
न खलु मम हि दह्यतेऽत्र किञ्चित्
स्वयं इदम् आह किल स्म भूमिपालः।"

"अपने नगर में आग लगी देखकर मिथिला के राजा ने कहा कि इन लपटों में मेरी कोई भी चीज़ नहीं जल रही है।"

[३] *SBE*, XLV. 37.

[४] IV. 5. 13.

[५] III. 133. 17.

[६] शतपथ ब्राह्मण, V, 1. 1. 12-13; XII, 8. 3. 4; XIV, 1. 3.8.

[७] X. 3. 14.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कौषीतकेय, गार्गी, वाचकनवी, उद्दालक आरुणि तथा विदग्ध शाकल्य आदि विद्वान् राजा जनक के दरबारी थे । जनक के दरबार में विद्वानों के बीच जो वाद-विवाद हुआ करता था, उसे बृहदारण्यक उपनिषद् के तृतीय अध्याय में प्रमुख स्थान दिया गया है । उद्दालक आरुणि[1] के शिष्य याज्ञवल्क्य वाजस्नेय इन विद्वानों में प्रमुख थे । कुरु-पांचाल के ब्राह्मणों से जनक के सम्पर्क का उल्लेख करते हुए ओल्डेनबर्ग[2] ने कहा है—"पश्चिमी राज्यों के साहित्य के प्रति रुचि रखनेवाले पूर्वी देश के राजा ने पश्चिमी राज्यों के विद्वानों को अपने दरबार में ठीक उसी प्रकार एकत्रित कर रखा था जिस प्रकार एथेन्स के विद्वान् मेसीडोनिया के दरबार में आश्रय पाया करते थे ।"

ब्राह्मण-ग्रन्थों तथा उपनिषदों में जनक-महान् के समय उत्तर भारत की राजनीतिक स्थिति पर कुछ प्रकाश डाला गया है । इन ग्रन्थों से हमें पता चलता है कि उन दिनों विदेह के अतिरिक्त उत्तर भारत में ९ अन्य महत्त्वपूर्ण राज्य थे—

१. गान्धार
२. केकय
३. मद्र
४. उशीनर
५. मत्स्य
६. कुरु
७. पंचाल
८. काशी
९. कोशल

वैदिक साहित्य में उपर्युक्त राज्यों की कोई निश्चित भौगोलिक सीमा नहीं दी गई है । अतः इनकी स्थिति जानने के लिए हमें वेदों के बाद के साहित्य पर दृष्टि डालनी पड़ेगी । महाभारत के कवियों द्वारा गान्धार-निवासियों को उत्तरापथ (भारत के सब से उत्तरी भाग) के निवासियों में ही सम्मिलित कर लिया गया था—

उत्तरापथ जन्मान: कीर्तयिष्यामि तान् अपि,
यौन काम्बोज गान्धारा: किराता बर्बरै: सह ।[3]

गान्धार देश सिन्धु नदी के दोनों ओर अवस्थित था ।[4] इस राज्य के दो

---

[1] बृहदारण्यक उपनिषद्, VI. 5. 3.

[2] *Buddha*, p. 398.

[3] महाभारत, XII. 207. 43.

[4] रामायण, VII. 113. 11; 114. 11—सिन्धोर-उभयतः पार्श्वे । जातक नं० 406 के अनुसार, गान्धार राज्य में कश्मीर भी शामिल था । Hekataios of Miletus (549-486 ईसापूर्व) के अनुसार, गन्धारिक शहर का पुराना नाम कस्पाप्यरोस था । Stein (*JASB*, 1899, extra no. 2, 14) के अनुसार, यह नगर वहाँ बसा था जहाँ से सिन्ध नदी में नावें आदि चलना शुरू होती हैं, अर्थात् प्राचीन गान्धार में कस्पात्यरोस वही जगह है जहाँ कि Darius द्वारा भेजे गये Skylax के नेतृत्व में लोगों ने सिन्धु नदी के मार्ग की छानबीन की थी । Stein को यह सिद्धान्त नहीं स्वीकार है कि कस्पाप्यरोश संस्कृत का कश्यपपुर है और इसी नाम से कश्मीर शब्द बनाया गया है । अलबेरूनी भी इस स्थान को जानता था, किन्तु उसके अनुसार, यह मुल्तान का ही एक नाम था । कश्मीर से कश्यपपुर के परम्परागत सम्पर्क का उल्लेख राजतरंगिणी (1.27) में मिलता है ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

महान् नगर थे—तक्षशिला और पुष्करावती। कहा जाता है कि इनकी स्थापना महाभारत के दो प्रसिद्ध वीरों ने करवायी थी—

> गन्धार-विषये सिद्धे, तयोः पुर्यौ महात्मनोः
> तक्षस्य दिक्षु विख्याता रम्या तक्षशिला पुरी
> पुष्करस्यापि वीरस्य विख्याता पुष्करावती।[1]

उक्त पंक्तियों में वर्णित भूभाग पश्चिमी पंजाब के रावलपिंडी ज़िले तथा उत्तर-पश्चिमी सीमान्त प्रदेश के पेशावर ज़िले तक फैला हुआ था। तक्षशिला की प्रसिद्ध नगरी वाराणसी[2] से ६ हज़ार मील (२ हजार लीग) दूर तथा रावलपिण्डी से कुछ मील उत्तर-पश्चिम की ओर स्थित थी। इस नगर के ध्वंसावशेष आज भी रावलपिण्डी से २० मील उत्तर-पश्चिम के सराय काला रेलवे जंकशन के उत्तर-पूर्व या पूर्व में थोड़ी ही दूरी पर देखे जा सकते हैं। जिस घाटी में ये ध्वंसावशेष पड़े हैं, वहाँ हारो नदी का प्रवाह है। इस घाटी के भीतर तथा एक दूसरे से तीन मील की दूरी के भीतर ही तीन अलग-अलग नगरों के अवशेष प्राप्त हुए हैं। सबसे दक्षिणी (और सबसे प्राचीन) नगर एक ऊँचे पठार पर बसा था जिसे स्थानीय लोग भीरटीला कहकर पुकारते हैं।[3]

पुष्करावती या पुष्कलावती नगर पेशावर से १७ मील उत्तर-पूर्व की ओर स्वात नदी पर स्थित था। इसे अब प्रांग और चारसद्दा भी कहा जाता है (प्राकृत में इसे पुक्कलाओती कहा जाता था और एरियन ने इसी आधार पर इसे प्यूकेलाओटीज़ कहा था)।[4]

ऋग्वेद एवं अथर्ववेद में जिन लोगों को गान्धारी कहा गया है, उन्हीं लोगों को बाद में गान्धार की संज्ञा दी गई थी। ऋग्वेद[5] में यहाँ के आदिवासियों की भेड़ों के अच्छे ऊन की भी चर्चा है। अथर्ववेद[6] में गान्धारियों को मुजावत नामक जाति के साथ दिखाया गया है जिसका अर्थ है कि वे निम्न जाति के लोग थे। ब्राह्मण ग्रन्थों में गन्धार के राजा नग्नजित तथा उसके लड़के स्वरजित का उल्लेख मिलता है। नग्न-

---

[1] वायु पुराण, 88. 189-90; *Cf.* रामायण, VII. 114. 11.

[2] तेलपट्ट और सुसीम जातक, Nos. 96. 163.

[3] Marshall, *A Guide to Taxila*, pp. 1-4; *AGI*, 1924, 120, 128 f.

[4] Schoff, *The Periplus of the Erythraean Sea*, pp. 183-84; Foucher, *Notes on the Ancient Geograply of Gandhara*, p. 11; *Cf.* V. A. Smith, *JASB*, 1889. 111; Cunnigham; *AGI*, 1924, 57 f; Strabo (XV. 26) extends Gandaritis westwards to the Choaspes (Kunar ?).

[5] I. 126. 7.

[6] V. 22. 14, *Cf.* महाभारत, VIII. 44. 46; 45. 8 etc.

जित को ब्राह्मणों के समान प्रतिष्ठा प्रदान की गई थी, परन्तु धार्मिक विषयों पर इस परिवार के सदस्यों के विचारों के प्रति लोगों की धारणा अच्छी न थी।[१] कालान्तर में मध्यदेश (मध्य भारत) के लोगों का दृष्टिकोण बदला और गन्धार की राजधानी में तीन वेदों तथा अठारह पुराणों[२] के अध्ययन हेतु बड़े-बड़े विद्वान् एकत्रित होने लगे।

छान्दोग्य उपनिषद्[३] के एक प्रमुख अनुच्छेद में वैदिक जनक के समकालीन उद्दालक आरुणि ने एक उदाहरण के रूप में गन्धार का उल्लेख करते हुए लिखा है कि जिस प्रकार कोई पथभ्रष्ट व्यक्ति उचित निर्देशन मिलने पर अन्ततोगत्वा गन्धार पहुँच जाता है, उसी प्रकार सद्गुरु को प्राप्त करने वाला व्यक्ति भी गुरु के सम्पर्क में आकर अपने मार्ग का ज्ञान प्राप्त करता है। वह सांसारिक बन्धनों से मुक्त हो जाता है तथा मोक्ष प्राप्त करता है। उक्त अनुच्छेद इस प्रकार है—

"यथा सोम्य पुरुषं गन्धारेभ्योऽभिनद्धाक्षम् आनीय तं ततोऽतिजने विसृजेत्, स यथातत्र प्रां च उदन् वाधरां वा प्रत्यं वा प्रध्मायती—अभिनद्धाक्ष आनीतोऽभिनद्धाक्षो विसृष्टः। तस्य यथाभिनहनं प्रमुच्य प्रब्रूयाद् एतां दिशम् गन्धारा एतां दिशम् व्रजेति। स ग्रामाद् ग्रामं पृच्छन् पण्डितो मेधावी गन्धारान् एवोपसमपद्येत, एवं एवेहाचार्यवान् पुरुषो वेद।"

"ओ मेरे बच्चे! संसार में जब मनुष्य को उसकी आँखों पर पट्टी बाँध कर गंधार से दूर किसी एकाकी स्थान पर छोड़ दिया जाता है तो वह चिल्लाता है—'मैं यहाँ आँख में पट्टी बाँध कर लाया गया हूँ।' उसका यह स्वर पूर्व, पश्चिम, उत्तर तथा दक्षिण, चारों दिशाओं में प्रतिध्वनित होता है। इसी समय कोई दयालु आकर उसकी आँख खोल कर कहता है—'यह गंधार का मार्ग है। तू इसी मार्ग से आगे बढ़।' बुद्धिमान मनुष्य गाँव-गाँव होते हुए तथा मार्ग पूछते आगे बढ़ता है और अन्त में गन्धार प्रान्त में पहुँच जाता है। इसी प्रकार सद्गुरु के सम्पर्क में आकर कोई भी व्यक्ति अपना मार्ग ढूँढ़ लेता है।"[४]

उक्त उद्धरण उस समय और भी स्पष्ट हो जाता हैं जब हम उद्दालक जातक[५] की यह कथा स्मरण करते हैं कि उद्दालक आरुणि तक्षशिला गये थे और वहाँ उन्होंने एक विश्वविख्यात गुरु से शिक्षा प्राप्त की थी। सेतकेतु जातक[६] में कहा गया है कि उद्दालक के पुत्र श्वेतकेतु ने तक्षशिला जाकर सभी कलाओं का अध्ययन किया था।

---

[१] ऐतरेय, vii 34; शतपथ ब्राह्मण, viii, 1. 4. 10; *Vedic Index*, i. 432.

[२] *Cf.* Rhys Davids and Stede, *Pali-English Dictionary*, 76 **विज्जट्ठानाम्**; वायु, 61. 79; ब्रह्माण्ड, 67. 82; मिलिंद, I, 9. mentions 19 *Sippas*; *Cf.* IV, 3, 26.

[३] VI, 14.

[४] *Cf.* डॉक्टर आर० एल० मित्र द्वारा अनुवादित छांदोग्य उपनिषद्, p. 114.

[५] No. 487.

[६] No. 377.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

शतपथ ब्राह्मण में लिखा है कि उद्दालक आरुणि उत्तर भारत[1] के लोगों को वहाँ जाने की प्रेरणा दिया करते थे। कौषीतक ब्राह्मण[2] में कहा गया है कि ब्राह्मण लोग विद्याध्ययन के हेतु उत्तर की ओर जाते थे। जातक कथाओं के विविध उल्लेखों में तक्षशिला को विश्वविद्यालय की नगरी कहा गया है। पाणिनि जो स्वयं गंधार के निवासी थे, ने अपने एक सूत्र[3] में इस नगर की चर्चा की है। कौटिल्य कदाचित् तक्षशिला की ही प्रारम्भिक देन थे।[४]

केकय जाति पश्चिमी पंजाब में गन्धार तथा व्यास के मध्यवर्ती भाग में बसी हुई थी। रामायण[५] से हमें पता चलता है कि केकय राज्य विपाशा अथवा व्यास नदी से भी आगे तक फैला हुआ था और इसकी सीमा गन्धर्व अथवा गन्धार विषय (राज्य) की सीमा से मिली हुई थी। महाभारत[६] में इस देश को मद्र (**मद्राश्च सह केकयैः**) से सम्बद्ध किया गया है। इतिहासकार एरियन[७] के अनुसार, केकय जाति के लोग रावी की एक सहायक नदी सारंग के तटवर्ती भूभाग पर बसे हुए थे।

वैदिक साहित्य में केकय देश की राजधानी का उल्लेख नहीं किया गया है, परन्तु रामायण के अनुसार इस राज्य की राजधानी राजगृह अथवा गिरिव्रज थी—

उभौ भरत-शत्रुघ्नौ केकयेषु परन्तपौ,
पुरे राजगृहे रम्ये मातामह-निदेशने।[८]

'शत्रुओं का दमन करने वाले भरत और शत्रुघ्न दोनों ही केकय की सुन्दर राजधानी तथा भरत के ननिहाल राजगृह में निवास करते हैं।'

'गिरिव्रजम् पुरवरं शीघ्रं आसेदुर् अंजसा।[९]

'केकय देश को भेजे गये दूत शीघ्र ही नगरों में सर्वश्रेष्ठ नगर गिरिराज पहुँच गये'।

अयोध्या से केकय राज्य की राजधानी ६५० मील दूर थी और वहाँ का रास्ता सात दिन का था। अयोध्या से विदेह जाने के लिए चार दिनों की यात्रा करनी पड़ती थी जबकि दोनों की कुल दूरी केवल २०० मील थी। पार्जिटर के अनुसार, सड़कें अच्छी न होने के कारण ही उक्त स्थानों तक पहुँचने में इतना समय लगता था। इतिहास-

---

१. शतपथ ब्राह्मण, XI. 4. 1.1, *et seq.*—**उदीच्यांवृतो धावयाम् चकार।**

२. VII. 6; *Vedic Index*, II. 279.

३. सूत्र, IV. 3. 93; *AGI* (1924), 67.

४. Turnour, महावंश, Vol. I (1837), p. xxxix.

५. II. 68. 19-22; VII. 133-14.

६. VI. 61. 12; VII. 19. 7. **मद्र-केकयाः**

७. *Indika*, iv; *Ind. Ant.*, V. 332; McCrindle, *Megasthenes and Arrian*, 1926, pp. 163, 196.

८. रामायण. II. 67. 7.

९. रामायण, II. 68. 22.

कार कनिंघम झेलम के किनारे के आधुनिक गिर्जक अथवा जलालपुर को केकय राज्य की राजधानी मानते हैं ।[१]

एक अन्य राजगृह—गिरिव्रज मगध में था, जबकि ह्वेनसांग ने पो-हो अथवा बल्ख में राजगृह नाम के तीसरे नगर का उल्लेख किया है ।[२] केकय राज्य के नगर तथा मगध की राजधानी में अन्तर को स्पष्ट करने के लिए बाद वाले को "मगध का गिरिव्रज" कहा गया है ।[३]

पुराणों[४] में केकय, माद्रक तथा उशीनर राजवंशों को ययाति के पुत्र अनु के ही कुटुम्ब की शाखाओं के रूप में माना गया है । ऋग्वेद[५] में भी अनु-वंश का यत्र-तत्र उल्लेख मिलता है । ऋग्वेद के अष्टक मण्डल[६] के एक श्लोक में कहा गया है कि अनु-वंश पुरुष्णी के समीप (मध्य पंजाब में) रहता था और यही भूभाग बाद में केकय तथा माद्रक राजवंशों के अधिकार में चला गया था ।

वैदिक जनक के समकालीन केकय-नरेश का नाम अश्वपति था । यही नाम भरत के नाना और मामा का भी था ।[७] शतपथ ब्राह्मण[८] तथा छान्दोग्य उपनिषद्[९] के अनुसार, केकय नरेश एक विद्वान् राजा थे और उन्होंने कितने ही ब्राह्मणों को शिक्षा दी थी । उदाहरणार्थ, अरुण औपवेशी गौतम, सत्ययज्ञ पौलुषी, महाशाल जाबाल, बडिल, आश्वतराश्वि, इन्द्रद्युम्न भाल्लवेय, जन शार्कराक्ष्य, प्राचीनशाल औपमन्यव तथा उद्दालक आरुणि उनके पढ़ाये हुए थे । अरुण औपवेशी, उद्दालक से आयु में बड़े थे, अतः उनके उल्लेख से इस बात का पता चलता है कि अश्वपति भी विदेह के महान् दार्शनिक सम्राट् के समकालीन होते हुए भी आयु में बड़े थे ।

जैन विद्वानों के अनुसार, केकय राज्य की आधी प्रजा आर्य जाति की थी । उन्होंने केकय राज्य के सेयविया[१०] नगर का भी उल्लेख किया है । ऐसा प्रतीत होता है कि केकय-वंश के कुछ लोग दक्षिण भारत में जा बसे थे और उन्होंने मैसूर में अपना राज्य स्थापित किया था ।[११]

मद्र जाति अनेक भागों में बँटी हुई थी—उत्तरी, दक्षिणी, पश्चिमी, पूर्वी, मुख्य मद्र इत्यादि । ऐतरेय ब्राह्मण में कहा गया है कि उत्तरी अथवा उत्तर मद्र के लोग

---

१. रामायण, I. 69. 7; II. .71. 18; *AGI*, 1924, 188; *JASB*, 1895. 250 ff.

२. Beal, *Si-yu-ki*, Vol. 1, p. 44.

३. *SBE*, XIII. p. 150.

४. मत्स्य, 48. 10. 20; वायु, 99. 12-23.

५. I. 108.8; VII. 18. 14; VIII. 10.5.

६. 74.

७. रामायण, II. 9,22; VII. 113.4.

८. X. 6.1.2.

९. V. 11. 4. *et seq.*

१०. *Ind. Ant.*, 1891, p. 375.

११. *AHD*, 88, 101.

हिमवत् श्रेणी के पार उत्तर कुरु के समीप बसे हुए थे। ज़िमर तथा मैक्डोनेल का अनुमान है कि यह स्थान काश्मीर राज्य में था। पूर्वी मद्र जाति सम्भवतः स्यालकोट ज़िले से पूर्व किसी ऐसे स्थान पर बसी हुई थी जो त्रिगर्त या काँगड़ा से अधिक दूर नहीं था।[1]

दक्षिणी मद्र के लोग इरावती अथवा रावी नदी के पश्चिमी भूभाग, अर्थात् मध्य पञ्जाब में बसे हुए थे।[2] कालान्तर में इस राज्य की पूर्वी सीमा का विस्तार हुआ और गुरु गोविन्द सिंह[3] के समय का अमृतसर ज़िला भी मद्रदेश में सम्मिलित था। मद्र की प्राचीन राजधानी शाकल या सागल नगर (आधुनिक स्यालकोट) थी। महाभारत[4] तथा अनेक जातक ग्रन्थों[5] में भी इस नगर का उल्लेख आया है और सम्भवतः इस बात की ओर संकेत करता है कि जनक के दरबार में 'शाकल्य' नामक वैदिक विद्वान् को इसी नगर के नाम पर ही शाकल्य नाम दिया गया था। वह सम्भवतः इसी नगर के निवासी थे। यह नगर आपगा[6] नदी के तट पर था। दो नदियों के बीच में होने के कारण ही कदाचित् इसे शाकल द्वीप[7] भी कहते थे। आजकल यह प्रदेश रेचना-दोआब का एक भाग है।

उत्तर वैदिक काल के प्रारम्भिक साहित्य के अनुसार मुख्य मद्र राज्य में राजतन्त्र-शासन-प्रणाली थी। राजा जनक के समय मद्र राज्य का शासक कौन था, इस सम्बन्ध में हमें कोई जानकारी नहीं है। राजनीतिक दृष्टि से यह प्रदेश अधिक महत्त्वपूर्ण न था, किन्तु उपर्युक्त उत्तर मद्र राज्य की भाँति यह राज्य भी मद्रगार, शौंगायनी तथा काप्य पंतवल[8] आदि प्रसिद्ध विद्वानों एवम् गुरुओं का गढ़ था। काप्यपंतचल उद्दालक आरुणि[9] के गुरुओं में से एक थे। प्राचीन महाभारत के अनुसार, मद्र का राजवंश बड़ा ही चरित्रवान् था।[10] किन्तु कालान्तर में मद्रदेश देहातियों एवम् छल-कपटपूर्ण रीति-रिवाज़ों वाले व्यक्तियों के देश के रूप में बदनाम हो गया।[11]

---

[1] पाणिनि, IV. 2. 107-8; *Cf.* 'Association of Madras and Trigarttas, महाभारत, VI. 61. 12. In I. 121. 36 the number of 'Madras' is given as four.

[2] *Cf.* महाभारत, VIII. 44. 17.

[3] Malcolm, *Sketch of the Sikhs*, p. 55.

[4] II. 32. 14—ततः शाकलमभ्येत्य मद्राणां पुटभेदनम्।

[5] *E. g.* कालिंगबोधि जातक, नं० 479; और कुश जातक, No. 531.

[6] महाभारत, VIII. 44. 10; Cunningham, *AGI*, 1924, 211f. कनिंघम ने इस आपगा के बारे में कहा है कि यह अयक नदी जम्मू की पहाड़ियों से निकल कर चिनाब में मिलती है।

[7] महाभारत, II. 26. 5.

[8] Weber, *Ind. Lit.*, 126.

[9] बृहदारण्यक उपनिषद्, III. 7. 1.

[10] *Cf.* अश्वपति तथा उसकी पुत्री सावित्री।

[11] मद्र देशवासियों के बारे में विशेष विचार के लिए देखिए, Dr. H. C. Ray in *JASB*, 1922, 257; Law, *Some Kshatriya Tribes of Ancient*

उशीनर जाति मध्यदेश अथवा मध्यभारत में बसी हुई थी । ऐतरेय ब्राह्मण[१] में कही गई 'अस्यां ध्रुवायां मध्यमायां प्रतिष्ठायां दिशि' उक्ति से स्पष्ट है कि "इस दृढ़तापूर्वक स्थापित मध्य भाग में, अर्थात् मध्य भारत में कुरु, पांचाल, वाश तथा उशीनर राज्य थे ।" कौषीतकि उपनिषद् में भी उशीनर को मत्स्य, वाश तथा कुरु-पांचाल से सम्बन्धित दिखाया गया है । वे सम्भवतः मध्यदेश के सुदूर उत्तरी क्षेत्र में बसे हुए थे, क्योंकि गोपथ ब्राह्मण में भी उशीनरों तथा वाशों को उदीच्य (उत्तर-वासियों) के पूर्व स्थान दिया गया है ।[२] 'कुरु पंचलेषु अंग मगधेषु काशी कौसल्येषु शाल्व मत्स्येषु स वश उशीनरेषु-उदीच्येषु ।'

महाभारत में उशीनर को यमुना के समीप[३] दो छोटे जलाशयों के तट पर यज्ञ करते हुए दिखाया गया है । कथासरित्सागर के अनुसार, जहाँ कनखल के पास गंगा पर्वतों से उतर कर मैदान में आती है[४], वहीं उशीनर पर्वत था । आजकल यह एक तीर्थस्थान है । यह पर्वत निश्चित रूप से दिव्यावदान[५] का उशीगिरि तथा विनय-ग्रन्थों[६] का उशीरध्वज रहा होगा । पाणिनि ने अपने कई सूत्रों[७] में उशीनर देश की चर्चा की है । इसकी राजधानी भोज नगर थी ।[८]

ऋग्वेद[९] में उशीनराणी नामक एक रानी का उल्लेख है तथा महाभारत, अनुक्रमणी और अनेक अन्य जातकों में राजा उशीनर तथा उनके पुत्र शिबि[१०] की चर्चा है । जनक के समकालीन उशीनर-नरेश को हम नहीं जानते । कौषीतकि उपनिषद् से पता चलता है कि काशी-नरेश अजातशत्रु तथा विदेह के राजा जनक के समकालीन गर्ग्यबालाकि कुछ समय तक उशीनर देश में रहे थे ।

India, p. 214. Mr. S. N. Mitra ने संकेत किया है कि परमत्थ-दीपनि (p.127) (wrongly) के अनुसार, सागल नगर मगध-रट्ठ में था । अपदान (p. 131) के अनुसार, इस बात में तनिक भी संदेह नहीं कि माद्रा ही उस देश का नाम था जिसकी राजधानी सागल (शाकल) थी ।

१. VIII. 14.

२. गोपथ ब्राह्मण, II. 9.

३. महाभारत, III. 130.21.

४. पंडित दुर्गाप्रसाद तथा काशीनाथ पाण्डुरंग द्वारा संपादित, तृतीय संस्करण, p. 5. उत्तर प्रदेश के सहारनपुर ज़िले में हरद्वार के पास कनखल है (*Cf.* also महाभारत, V. III. 16-23) ।

५. P. 22.

६. Part II, p. 39. See Hultzsch, *Ind. Ant.*, 1905, p. 179.

७. II. 4. 20; IV. 2. 118.

८. महाभारत, V. 118. 2. For Ahvara, a fortress of the Ushinaras, see *Ind. Ant.*, 1885, 322.

९. X, 59. 10.

१०. महाभारत, XII. 29. 39; *Vedic Index*, Vol. I, p. 103; महानारद कस्सप जातक, महाकन्ह जातक, No. 469; निमि जातक, No, 541; महानारद कस्सप जातक, No 544, etc.

महाभारत के राजा विराट् के राज्य मत्स्य का विस्तार प्रायः अलवर, जयपुर तथा भरतपुर तक माना जाता है। पाण्डवों ने अपने वनवास का अन्तिम वर्ष छद्मवेश में इसी राजा के दरबार में व्यतीत किया था।[1] परन्तु जहाँ तक अलवर का प्रश्न है, ऐसा प्रतीत होता है कि यह क्षेत्र शाल्व जाति के अधीन था।[2] मत्स्य राज्य दिल्ली के कुरुराज्य के दक्षिण तथा मथुरा के शूरसेन राज्य के पश्चिम में था। हो सकता है कि दक्षिण में इसका विस्तार चम्बल नदी तक रहा हो! परन्तु पश्चिम में यह सरस्वती नदी तक फैला हुआ था। महाभारत में अपर मत्स्य जाति का उल्लेख मिलता है जो इतिहासकार पार्जिटर के अनुसार, चम्बल के उत्तरी तट की पहाड़ियों में रहती थी। रामायण में भी सरस्वती तथा गंगा के प्रसंग में वीर मत्स्य जाति का उल्लेख मिलता है।[3] कनिंघम[4] के अनुसार, जयपुर राज्य की बैराट नगरी प्राचीन मत्स्य राज्य की राजधानी थी। पार्जिटर[5] के अनुसार, मत्स्य की राजधानी उपप्लव्य थी, किन्तु टीकाकार नीलकण्ठ के अनुसार, उपप्लव्य राजधानी नहीं, वरन् उसके समीप की एक नगरी थी (**विराट नगर समीपस्थ नगरान्तरम्**)।[6]

मत्स्य जाति का सर्वप्रथम उल्लेख ऋग्वेद के एक अनुच्छेद[7] में मिलता है जहाँ इस जाति को ऋग्वेद-काल की महान् विजेता जाति सुदा के शत्रुओं के साथ-साथ दिखाया गया है। शतपथ ब्राह्मण[8] में ध्वसन द्वैतवन नामक एक मत्स्य राजा का नाम आया है। उसने सरस्वती के निकट अश्वमेध यज्ञ किया था। शतपथ ब्राह्मण में लिखा है—

चतुर्दश द्वैतवनो राजा संग्रामजिद्दहयान्
इन्द्राय वृत्रघ्नेऽबधनात्तस्माद् द्वैतवनम् सर (इति)।

---

[1] भण्डारकर, *Carmichael Lectures*, p. 53.

[2] *Cf. Ind. Ant.*, 1919; N. L. Dey's *Geographical Dictionary*, p. ii.

[3] महाभारत, II. 31. 2-7; III. 24.25; IV. 5.4; रामायण, II, 71. 5. पार्जिटर (*JASB*, 1895, 250ff) ने संकेत किया है कि मत्स्य देश खाण्डवप्रस्थ (दिल्ली) से दक्षिण की ओर है। पाण्डव-कुमारों की विराट यात्रा के वर्णन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इसकी स्थिति शूरसेन के पश्चिम मथुरा में है। वीर लोग दशार्ण के उत्तर और पांचाल के दक्षिण से लगी सीमा के देश यमुना के पार से गुजरे और फिर यकृल्लोम और शूरसेन देशों से बढ़ते हुए मत्स्य देश पहुँचे। फिर वे मत्स्य राज्य के देहात उपप्लव्य से हस्तिनापुर जो कुरु के वंशजों की राजधानी थी, रथयात्रा द्वारा दो रोज में पहुँचे। पहले ही दिन संध्या समय तक वृकस्थल जो कि रास्ते में है, पहुँचा जा सकता है।

[4] *AGI*, 1924, 387, I; *J.A.V.* 179. दक्षिण भारत में विराट नगर के लिए देखिये, *Bomb. Gaz.*, I, ii, 558.

[5] *JASB*, 1895. 252.

[6] महाभारत, IV. 72. 14. *Cf. Ind. Ant.*, 1882. 327.

[7] VII. 18. 6.

[8] XIII. 5. 4. 9.

"युद्ध में विजयश्री मिलने पर राजा द्वैतवन ने इन्द्र वृत्रहन के लिए १४ घोड़े तैयार किये थे। इसी से द्वैतवन झील को यह नाम प्राप्त हुआ था।" महाभारत में द्वैतवन नामक झील एवम् वन दोनों का ही उल्लेख है। द्वैतवन सरस्वती नदी के तट के साथ-साथ फैला हुआ था।[1]

मत्स्य का उल्लेख गोपथ ब्राह्मण[2] में शाल्व के साथ कौषीतकि उपनिषद्[3] में कुरु-पांचाल के साथ तथा महाभारत में जालन्धर दोआब के त्रिगर्त[4] के साथ एवं मध्य भारत[5] के चेदि वंश के साथ मिलता है। मनुसंहिता[6] के अनुसार कुरुक्षेत्र, पांचाल तथा शूरसेनक प्रदेशों को मिलाकर पूरे भूभाग को ब्रह्मर्षि देश कहा जाता था।

जनक के समकालीन मत्स्य-नरेश का नाम ज्ञात नहीं है, किन्तु कौषीतकि उपनिषद् से इतना स्पष्ट हो जाता है कि विदेह के महान् दार्शनिक राजा के समय में भी मत्स्य एक महत्वपूर्ण राज्य था।

कुरु—जनक के समय में भी कुरु राज्य ने ब्राह्मण संस्कृति के देश के रूप में अपना महत्त्व बनाये रखने का भरसक प्रयास किया था, परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि इस देश के विद्वान् यज्ञ की विधियों से सम्बन्धित धार्मिक ज्ञान का विशेषज्ञ बनने की अपेक्षा दार्शनिक ज्ञान प्राप्त करने की लालसा रखने लगे थे। इससे सम्भवतः उनके सामाजिक जीवन में नये मोड़ का पता चलता है और सामाजिक दृष्टिकोण में परिवर्तन की यह घटना परीक्षित-युग की समृद्धि से आर्थिक विषमताओं की उस स्थिति तक पहुंचने की घटना को दर्शाती है जिसकी ओर छांदोग्य उपनिषद्[7] में संकेत किया गया है। जनक के समय कुरुदेश के लोग पूर्वी भारत में पनपने वाले शास्त्र-विरोधी प्रचार को ग्रहण करने के लिए भी प्रायः तैयार हो गये थे। जहाँ तक तत्कालीन समय का प्रश्न है, कुरु ब्राह्मणों ने (उदाहरणार्थ, उषस्ति चाक्रायण ने) विदेह के दरबार में ब्रह्म एवं आत्मा पर वाद-विवाद में सक्रिय भाग लिया था। इस समय कुरुओं और सम्भवतः पांचालों के निष्क्रमण से पूर्वी राज्य का बौद्धिक स्तर काफी ऊंचा उठा होगा और यह विकास ठीक उसी प्रकार का होगा जिस प्रकार १५वीं शताब्दी में कुस्तुनतुनिया से विद्वानों के निष्क्रमण से पश्चिमी यूरोप के देशों का बौद्धिक जीवन काफ़ी समृद्ध हो गया था।

यदि पुराणों में दी गई जनमेजय के उत्तराधिकारियों की सूची ऐतिहासिक मान ली जाये तो जनक के समय सम्भवतः निचक्षु हस्तिनापुर के राजा थे।

---

[1] महाभारत, III. 24-25.

[2] 1. 2. 9.

[3] IV. 1.

[4] महाभारत, Bk. IV. 30. 1-2; 32. 1-2.

[5] V. 74. 16.

[6] II. 19.

[7] 1.10, 1-7.

१. जनमेजय	१. इन्द्रोत दैवाप सौनक
२. शतानीक	२. दृति ऐन्द्रौत (पुत्र तथा शिष्य)
३. अश्वमेधदत्त	३. पुलुष प्राचीनयोग्य (शिष्य)
४. अधिसीमाकृष्ण	४. पुलुषि सत्ययज्ञ (शिष्य)
५. निचक्षु	५. सोमशुष्म सत्ययाज्ञी (शिष्य) जनक के समकालीन

विचित्र बात है कि पुराणों के अनुसार निचक्षु ही वह राजा थे जिन्होंने अपनी राजधानी हस्तिनापुर से कौशाम्बी स्थानान्तरित की थी। हमारे पास इस बात के कुछ प्रमाण हैं कि जनक के समय कौशाम्बी का अस्तित्व था।[1] शतपथ ब्राह्मण में प्रीति कौशाम्बेय को उद्दालक आरुणि का समकालीन कहा गया है जो जनक के दरबार में जाया करते थे। अतः यह भी स्पष्ट है कि कौशाम्बेय जनक के समकालीन थे। अपनी शतपथ ब्राह्मण की टीका में भी हरिस्वामी ने कौशाम्बेय को "कौशाम्बी नगर का निवासी" माना है।[2] अतः यह सोचना वांछनीय है कि जनक के समय कौशाम्बी और निचक्षु दोनों का अस्तित्व था। अतः अब पौराणिक कथन को स्वीकार करने में कोई कठिनाई नहीं रह जाती। पुराणों के अनुसार, गंगा की बाढ़ के कारण राजधानी स्थानान्तरित की गई थी। मटची द्वारा कुरु राज्य को नष्ट करने की घटना सम्भवतः राजधानी के स्थानान्तरण का प्रमुख कारण थी। यह भी सम्भव है कि अभिप्रतारिण-शाखा के यज्ञ-सम्बन्धी दृष्टिकोण का भी इससे कुछ सम्बन्ध हो। ऐसा प्रतीत होता है कि इस समय तक कुरु जाति अपने राज्य के भीतर भी अपनी राजनीतिक महत्ता खो चुकी थी। उनका राजनीतिक पतन हो चुका था, परन्तु भरत-वंश के ऐश्वर्य एवम् उनकी शक्ति की स्मृति शतपथ ब्राह्मण की रचना के समय तक बनी हुई थी।[3]

पांचाल राज्य में बरेली, बदायूँ, फर्रुखाबाद, रुहेलखण्ड के समीपवर्ती ज़िले तथा उत्तर प्रदेश के मध्यवर्ती दोआब का क्षेत्र सम्मिलित था। ऐसा प्रतीत होता है कि इस राज्य की पूर्वी सीमा गोमती तथा दक्षिणी सीमा चम्बल नदी थी। पश्चिम में याकृल्लोम तथा मथुरा के शूरसेन थे। सघन वन इसे एक ओर गंगा से और दूसरी ओर उत्तर-पश्चिम में कुरु राज्य से अलग करते थे। उत्तर में गंगोत्री[4] के समीपवर्ती

---

[1] *Cf*. Weber, *Ind. Lit*., p. 123; *Vedic Index*, I. 193.

[2] कौशाम्बेय को, कुशाम्ब का भी वंशज कहा जा सकता है, किन्तु इस वंश के राजा को, जो इस नगर के नाम पर अपना नाम धारण करता है, उसे अलग नहीं किया जा सकता (*Cf*. क्रमदीश्वर, p. 794—**कुशाम्बेन निर्वृत्ता कौशाम्बी-नगरी**)।

[3] XIII. 5. 4, 11-14; 21-23.

महदद्य भरतानाम् न पूर्वे नापरे जनाः
दिव्यं मर्त्य इव पक्षाभ्याम् नोदापुः सप्तमानवा (इति)।

[4] ऋग्वेद, V. 61. 17-19; महाभारत, I. 138.74; 150f; 166; IV. 5.4; IX. 41.

जंगलों तक पांचाल राज्य की सीमा थी। वैदिक साहित्य, महाभारत या जातकों में कहीं भी पांचाल के उत्तरी या दक्षिणी भाग का उल्लेख नहीं मिलता, परन्तु वैदिक लेखकों को इसके पूर्वी खण्ड का ज्ञान था, क्योंकि संहिता उपनिषद् ब्राह्मण में प्राच्य (पूर्वी) पांचाल[१] की चर्चा की गई है। वैदिक साहित्य में आये 'त्र्यनिक' शब्द में पांचाल के दो अन्य भागों का पता चलता है।[२] पांचाल की पुरानी राजधानियों में से एक राजधानी काम्पिल्य सम्भवतः बदायूँ और फर्रुखाबाद[३] के बीच कम्पिल नामक स्थान पर थी। शतपथ ब्राह्मण[४] में पांचाल की दूसरी राजधानी को परिवक्रा या परिचक्रा कहा गया है। वीबर ने इसे महाभारत में उल्लिखित 'एकचक्रा' नगर स्वीकार किया है।[५]

पांचालों में, जैसा कि उनके नाम से ही प्रकट होता है—कृवि, तुर्वश, केसिन, शृञ्जय तथा सोमक पाँच वंश शामिल थे।[६] वैदिक साहित्य के अनुसार, वंश के एक या एक से अधिक राजा हुए थे। उदाहरणार्थ, कृवि में क्रव्य पांचाल, तुर्वश अथवा तौर्वश में सोनसात्रासह, केसिन में दाल्भ्य, शृञ्जय-वंश में दैववात, प्रस्तोक, वीतहव्य, सहदेव सारंजय तथा दुष्तरितु आदि थे। सोमक-वंश के सोमक साहदेव्य थे। उपर्युक्त राजाओं के प्रथम तीन निश्चित रूप से पांचालों से सम्बन्धित थे।

कृवि-वंश का उल्लेख ऋग्वेद के एक श्लोक में सिन्धु तथा असिक्नी (चिनाब नदी) के साथ आया है। किन्तु, कृवि-वंश के वास्तविक निवास-स्थान का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। शतपथ ब्राह्मण[७] के अनुसार, यही लोग परिवक्रा नगर के पांचाल राजा थे।

इसी ग्रन्थ[८] की एक गाथा में कहा गया है कि "(पंचाल-नरेश) सात्रासह ने जिस समय अश्वमेघ यज्ञ में आहुति दी तो ६ हजार ६ उर्वश उठ खड़े हुए थे।"

---

[१] *Vedic Index*, I. 469. *Cf.* also पंतजलि (Kielhorn's ed., Vol. I, p. 12) and Ptolemy's Prasiake (vii. 1. 53)। इसमें अदिस्दर नगर (अहिछत्र ?) तथा कनगोर (कन्नौज ?) भी आ जाता था।

[२] *Vedic Index*, I. 187.

[३] *Vedic Index*, I. 149; Cunningham in *JASB*, 1865, 178; *AGI*, 1924. 413.

[४] XIII. 5.4.7.

[५] *Vedic Index*, I. 494.

[६] पुराणों (ब्राह्मण पुराण, XIII. 94f. *Cf.* मत्स्य, 50.3) के अनुसार मुद्गल, शृञ्जय, बृहदिषु, यवीनर तथा कृमिलाश्व पांचाल जनपद के ही भाग थे।

[७] xiii, 5. 4. 7—**कृवय इति ह वै पुरा पंचालान् आचक्षते।** *Vedic Index*, I. 198, According to Kasten Ronnow, *Acta Orientalia*, XVI, iii, 1937, p. 165. Krivis were named after a dragon-demon who was their tribal divinity.

[८] Oldenberg, बुद्ध, p. 404; शतपथ ब्राह्मण, XIII. 5.4.16. H.K. Deb. (*Vedic India and Mediterranean Men*, Verlag Otto Harrassowitz, Leipzig) के अनुसार, 'तुर्वश' शब्द 'तेरेस' या 'तुर्ष' के लिए ही आया है जो

सात्रासहे यजमानेऽस्वमेधेन तौर्वशाः
उदीरते त्रयस्त्रिशाः षट्सहस्राणि वरमिणां ।

उपर्युक्त पंक्तियों से पांचालों तथा तुर्वशों के बीच घनिष्ट सम्बन्ध का संकेत मिलता है। पुराणों के अनुसार, मारुत-वंश के बाद तुर्वशु (तुर्वश) वंश-परम्परा पौरव-वंश मे विलीन हो गई।[१] पांचाल लोग पौरवों के ही वंशज थे। अतः पांचालों व तुर्वशों का विलय असम्भव नहीं लगता। ऐसा लगता है कि राजा शोन का वंश बाद में बरेली[२] के अहिच्छत्र के सम्पर्क में भी आया था।

केसिन-वंश[३] जो वैदिक साहित्य के अनुसार, पांचालों से सम्बन्धित था, सम्भवतः गोमती के तटवर्ती भूभाग में निवास करता था। उत्तर वैदिक परम्परा में शृञ्जय[४] व पांचाल वंश एक दूसरे से सम्बन्धित थे। महाभारत में[५] उत्तमौज वंशवालों को पांचाल्य तथा शृञ्जय दोनों नामों से पुकारा गया है। महाभारत-काल[६] में यह वंश यमुना के तटवर्ती प्रदेश में रहता था। जहाँ तक सोमक-वंश का प्रश्न है, पांचालों से उनके सम्बन्ध का समूचे महाभारत में उल्लेख मिलता है।[७] वे काम्पिल्य एवं उसके समीपवर्ती भूभाग में रहते थे।

वीरगाथाओं में पांचालों के राजवंश को भरत-वंश[८] की शाखा कहा गया है। दिवोदास, सुदास तथा द्रुपद इसी वंश के राजा थे। दिवोदास एव सुदास का उल्लेख ऋग्वेद में भी मिलता है। इस ग्रन्थ के अनुसार, वे भरतवंशीय राजाओं के निकट

एक मित्र व्यक्ति था तथा मिस्र के फरओह मेर्नेप्तह या मेनेप्तह से युद्ध भी किया था (C. 1234-25B. C.)। Breasted ने 'तेरेष' को तिरिसेनियन या एत्रुस्कन कहा है (*A History of Egypt*, p. 467)।

१. *AIHT*, p. 108. **तुर्वसो पौरवम् वंशम् प्रविवेश पुरा किल** (वायु, 99.4)।

२. *Camb. Hist. Ind.*, I, p. 525.

३. *Vedic Index*, I, 186-187. 'केसिन दाल्भ्य' शब्द केसिन और दाल्भ्य के बीच घनिष्ठ संबंध की ओर संकेत करता है। ऋग्वेद (V, 61.17-19) के अनुसार, ये गोमती के निवासी थे। महाभारत (IX. 41. 1-3) से स्पष्ट है कि दाल्भ्य लोगों में संबंधित गोमती नैमिष से दूर नहीं होगी। यह पंचालों से भी संबंधित रही होगी। संभवतः यह नदी गुमती रही है जो निमसार (प्राचीन) सीतापुर के पास से बहती है।

४. Pargiter, मार्कण्डेय पुराण, p. 353; महाभारत, I. 138. 37; V. 48. 41; ब्रह्म पुराण, XIII, 94f.

५. महाभारत, VIII. 11. 31; 75. 9.

६. महाभारत. iii. 90. 7. with commentary.

७. *Cf.* महाभारत, I. 185. 31; 193. 1; II. 77. 10—**धृष्टद्युम्नः सोमकानाम् प्रवर्हः सौमकिर् यज्ञसेन इति।**

८. महाभारत, आदि, 94. 33; मत्स्य, 50. 1-16; वायु, 99. 194-210.

सम्बन्धी थे।[1] किन्तु इन्हें पांचाल-वंशीय नहीं कहा गया है। महाभारत में द्रुपद को यज्ञसेन भी कहा गया है। उनके एक पुत्र का नाम शिखण्डिन था।[2] कौशीतकि ब्राह्मण[3] में भी शिखण्डिन यज्ञसेन का उल्लेख मिलता है। परन्तु इस उल्लेख से यह स्पष्ट नहीं होता कि वह एक राजा था अथवा पंचाल-नरेश केसिन दाल्भ्य का पुरोहित था।

जहाँ तक पांचालों के बाह्य इतिहास का प्रश्न है, यह कुरुवंश से हुए युद्धों तथा सन्धियों से परिपूर्ण है। महाभारत में इन दो महान् वंशों के पारस्परिक युद्धों का विवरण मिलता है। इस महाकाव्य से हमें पता चलता है कि कुरुओं ने उत्तर पंचाल का क्षेत्र पांचालों से छीन कर अपने गुरुओं को सौंप दिया था।[4] यह एक कौतूहल का विषय है कि सोमनस्स जातक[5] में उत्तर पचाल नगर को कुरुरथ (कुरुराज्य) का अंग कहा गया है। एक समय ऐसा भी आया, जब कुरु और पांचाल वंश के सम्बन्ध बड़े अच्छे थे और पारस्परिक वैवाहिक सम्बन्ध भी हुए थे। पांचाल राजा दाल्भ्य अथवा दार्भ्य, कुरुवंश के राजा उच्चैःश्रवा[6] की बहन के पुत्र थे। महाभारत के अनुसार, एक पांचाल राजकन्या का विवाह पाण्डवों से हुआ था और पाण्डव कुरु राजवंश की ही एक शाखा थे।

वैदिक साहित्य में वर्णित प्रवहण जैवालि नामक प्रसिद्ध पांचाल राजा निश्चित रूप से जनक के समकालीन थे। उपनिषदों के अनुसार, प्रवहण जैवालि जनक के दरबारी पंडितों आरुणि, श्वेतकेतु, शिलक शालावत्य तथा चैकितायन दाल्भ्य से शास्त्रार्थ किया करते थे।[7] और हम जानते हैं कि इनमें प्रथम दो पंडित वैदिक जनक के समकालीन थे।

काशी राज्य ३०० लीग अथवा लगभग १४४० किलोमीटर क्षेत्र में फैला हुआ था।[8] इस राज्य की राजधानी वाराणसी थी जिसे केतुमती, सुरुन्धन, सुदस्सन, ब्रह्मवद्धन, पुप्फावती, रम्य तथा मोलिनी भी कहा जाता था।[9] नगर के चारों ओर ३६ मील लम्बी दीवार थी।[10]

---

[1] *Vedic Index*, I, p. 363; II. pp. 59. 454.

[2] महाभारत, आदि पर्व, 166. 24; भीष्म, 190, *et. seq.*

[3] VII. 4.

[4] महाभारत, i. 166.

[5] No. 505. जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण (III. 7. 6.) में कुरु पंचाल-एकता की ओर संकेत किया गया है।

[6] *Vedic Index*, I. 84, 187, 468. महाभारत में दी गई वंशावली में उच्चैःश्रवा नाम के एक राजकुमार का उल्लेख आया है।

[7] बृहदारण्यक उपनिषद्, VI. 2; छान्दोग्य उपनिषद्, 1. 8. 1; V. 3. 1.

[8] A stock phrase, घजविहेठ जातक, No. 391.

[9] *Dialogues*, Part III, p. 73. *Carmichael Lectures*, 1918, pp. 50-51. 'वाराणसी' शब्द उन दो छोटी नदियों पर आधारित है जिनके बीच यह नगर बसा है—**वरणायास्तथा च आस्या मध्ये वाराणसी पुरी** (पाद्म, स्वर्ग खण्ड, xvii, 50)।

[10] तण्डुलनालि जातक, No. 5.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अथर्ववेद के परिवर्धित संस्करणों में ही काशी की जनता का सर्वप्रथम उल्लेख किया गया है।[1] कौशल तथा विदेह की जनता से इनके निकट सम्बन्ध थे। शांखायन श्रौत-सूत्र[2] के अनुसार, जल जातुकर्ण्य को जनक के समकालीन श्वेतकेतु के जीवन-काल में ही काशी, विदेह तथा कौशल तीनों का पुरोहित बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। सत्तुभस्त जातक[3] में भी जनक नाम के एक राजा का उल्लेख मिलता है जिसे काशी-नरेश कहा गया है। यह व्यक्ति उपनिषदों का जनक नहीं हो सकता, क्योंकि इन ग्रन्थों के आधार पर हम जानते हैं कि उस समय काशी में अजातशत्रु का राज्य था।

अजातशत्रु के पूर्वजों के सम्बन्ध में हमें बहुत थोड़ी जानकारी है। पुराणों में दी गई काशी के शासकों की सूची[4] में न तो अजातशत्रु का नाम है और न ही काशी-नरेश धृतराष्ट्र का, जिसे शतानीक सात्राजित ने परास्त किया था। इसी पराजय के फलस्वरूप काशीवासियों ने शतपथ ब्राह्मण के समय तक यज्ञ नहीं किया। महागोविन्द सुत्तन्त[5] में धृतराष्ट्र के वंश का संकेत मिलता है। इस ग्रन्थ में उन्हें धतराट्ठ कहा गया है और उन्हें भरतवंशीय बतलाया गया है। पुराणों में काशी के राजवंश को भरत-वंश के परम्परागत पूर्वज पुरूरवा के वंश की एक शाखा कहा गया है। पुराणों में वर्णित राजाओं में केवल दो ही नाम (दिवोदास तथा उसके पुत्र अथवा उत्तराधिकारी दैवदासी प्रतर्दन) वैदिक साहित्य में मिलते हैं, परन्तु उत्तरवैदिक साहित्य में उन्हें नैमिर्षीय का शासक कहा गया है, काशी का नहीं।[6]

जातकों से इस बात का पता चलता है कि काशी के राजवंश में उत्तराधिकारी का जन्म न होने से (**अपुत्तकं राजकुलम्**) अथवा अयोग्य शासकों के स्थान पर अन्य परिवारों के योग्य व्यक्तियों के शासक बनाये जाने से राजवंश में प्रायः परिवर्तन हुए थे। अतः यह स्पष्ट है कि काशी के शासक किसी एक राजवंश से सम्बन्धित नहीं थे। इनमें से कुछ मगध के थे[7] और सम्भवतः अन्य अनेक राजा विदेह के थे। इनमें से अनेक राजा 'ब्रह्मदत्त' थे। श्री हरित कृष्णदेव[8] के अनुसार, 'ब्रह्मदत्त' किसी एक शासक-विशेष का नाम नहीं था। वायु तथा मत्स्य पुराणों में लगभग सौ राजाओं को 'ब्रह्मदत्त' की उपाधि या विशेषण से अभिहित किया गया है—

शतम् वय ब्रह्मवत्तानाम्
वीराणां कुरुवः शतम्।[9]

---

१. *Vedic Index*, II. 116n.
२. XVI. 29. 5.
३. No. 402.
४. वायु, 99. 21-74; विष्णु, IV, 8. 2-9.
५. Rhys Davids, *Dialogues of the Buddha*, Part II, p. 270.
६. कौशीतकि ब्राह्मण, xxvi. 5.
७. *Cf.* जातक, 378. 401, 529.
८. इस सुझाव को डॉ॰ डी॰ आर॰ भण्डारकर ने भी स्वीकार कर लिया है (*Carmichael Lectures*, 1918, p. 56)।
९. मत्स्य, Ch. 273, 71; वायु, Ch. 99, 454.

महाभारत[१] में भी सौ ब्रह्मदत्तों की चर्चा है। दुम्मेध जातक[२] के अनुसार, राजा एवं राजकुमार दोनों के साथ 'ब्रह्मदत्त' शब्द जोड़ा जाता था।[३] गंगमाल जातक[४] के अनुसार, एक पच्छेक बुद्ध ने बनारस के राजा उदय को ब्रह्मदत्त कहा था। इस प्रसंग से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि 'ब्रह्मदत्त' एक कुल नाम अथवा उपाधि थी।

कुछ भी हो, ब्रह्मदत्त नामधारी शासक किसी एक वंश के नहीं थे। दरीमुख जातक का मनोनीत राजा मगध का राजकुमार था। कुछ दूसरे ब्रह्मदत्त नामधारी राजा विदेह के राजवंश के थे। मातिपोसक जातक[५] के अनुसार, काशी के एक ब्रह्मदत्त का विवरण इस प्रकार है—

मुत्तोऽम्हि कासिराजेन वेदेहेन यसस्सिनाति।

सम्बुल जातक[६] में काशी के राजा ब्रह्मदत्त के पुत्र सोत्थिसेन को विदेहपुत्र कहा गया है—

यो पुत्त कासिराजस्स सोत्थिसेनो ति तम् विदू
तस्साहम् सम्बुला भरिया एवं जानाहि दानव,
वेदेहपुत्तो मद्दन ते वने वसति आतुरा।

सम्भव है, जनक के समकालीन काशी के राजा अजातशत्रु ब्रह्मदत्त ही रहे हों। यद्यपि उनकी वंश-परम्परा अज्ञात है, फिर भी उपनिषदों से पता चलता है कि वे उद्दालक आरुणि के समकालीन थे। उद्दालक जातक में कहा गया है कि उद्दालक के समय में काशी के राजा को 'ब्रह्मदत्त' कहा जाता था।

उपनिषदों में अजातशत्रु तथा गार्ग्य बालाकि के बीच शास्त्रार्थ का उल्लेख मिलता है। कौषीतकि उपनिषद् में कहा गया है कि अजातशत्रु विद्वानों के संरक्षक के रूप में राजा जनक की ख्याति के कारण उनसे ईर्ष्या करते थे। शतपथ ब्राह्मण[७] में भद्रसेन अजातशत्रव नामक व्यक्ति का उल्लेख मिलता है जिसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि वह उद्दालक आरुणि से अत्यन्त प्रभावित था। मैक्डोनेल के अनुसार, वह व्यक्ति काशी का राजा हो था। सम्भव है यह व्यक्ति अजातशत्रु का पुत्र अथवा उत्तराधिकारी रहा हो।[८]

कोशल[९] राज्य प्रायः आधुनिक अवध के बराबर था। ऐसा प्रतीत होता है कि उत्तर में इसकी सीमा नेपाल की पहाड़ियों के नीचे तक फैली हुई थी। पूर्व में सदा-

---

[१] II. 8. 23.

[२] No. 50; Vol. I, p. 126.

[३] *Cf*. सुशीम जातक (411), कुम्म सपिंड जातक (415), अट्ठान जातक (425), लोमस कस्सप जातक (433) आदि।

[४] 421.

[५] No. 455.

[६] No. 519.

[७] V. 5. 5. 14.

[८] *SBE*, XLI, p. 141.

[९] गोपथ ब्राह्मण में कोशल का उल्लेख आया है (*Vedic Index*, 7. 195)।

नीरा नदी इसे विदेह से अलग करती थी। यह नदी एक समय में आर्य-जगत् की पूर्वी सीमा थी। इसके दूसरी ओर विस्तृत जंगल था। ब्राह्मण लोग इस प्रदेश में नहीं जाते थे, परन्तु माथव विदेघ द्वारा इस प्रदेश को जीतने की घटना के पश्चात् यहाँ विदेह के समृद्ध राज्य की स्थापना हुई थी। माथव विदेघ की कथा से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि कोशल राज्य पर ब्राह्मणों का आधिपत्य सरस्वती नदी के तटवर्ती क्षेत्रों के बाद, किन्तु विदेह से पूर्व हुआ था। कोशल के दक्षिण में सर्पिका अथवा स्यन्दिका[1] नामक नदी थी और पश्चिम में गोमती, जो प्रसिद्ध नैमिषारण्य से होकर बहती थी और कोशल तथा पांचाल सहित[2] अन्य राज्यों के बीच सीमारेखा का काम करती थी।

महाभारत में मुख्य कोशल निवासियों को उत्तर कोशल-निवासियों, वेनवा (वेनगंगा) तट पर बसी कोशल जाति और प्राक्कोशल निवासियों से भिन्न बताया गया है। वेनगंगा और प्राक्कोशलवासियों को स्पष्ट रूप से दक्षिण भारत[3] में दिखाया गया है। पूर्वी कोशल के निवासी जो दक्षिण के प्राक्कोशल निवासियों से भिन्न थे, सरयू और मिथिला नदियों के मध्यवर्ती भूभाग में बसे हुए थे।[4]

वैदिक साहित्य में कोशल के किसी नगर का उल्लेख नहीं है। यदि रामायण पर विश्वास किया जाय तो जनक के समय कोशल (कोशलपुर) की राजधानी अयोध्या थी। यह नगर सरयू के तट पर बसा था। इसका क्षेत्र १२ योजन में फैला हुआ था।[5] ऋग्वेद में भी सरयू नदी का उल्लेख है तथा इसके तट पर किसी आर्य नगरी की चर्चा है।[6] यहाँ बसने वाले आर्यों में चित्ररथ नामक व्यक्ति का उल्लेख मिलता है और रामायण में भी दशरथ के समकालीन चित्ररथ का नाम आया है।[7] ऋग्वेद के स्तोत्रों में दशरथ की प्रशंसा की गई है।[8] किन्तु उनमें यह स्पष्ट नहीं कहा गया है कि वे ही सीरध्वज जनक के समकालीन इक्ष्वाकु-वंश के राजा थे। रामायण के अनुसार, दशरथ के सबसे बड़े पुत्र राम ने जनक की पुत्री सीता से विवाह किया था।

---

१. रामायण, II. 49. 11-12; 50. 1; *Cf.* सुन्दरिका, *Kindred Sayings*, I. 209.

२. रामायण, II. 68. 13; 71. 16-18; VII. 104. 15. (कोशल के राजा ने गुमती के नैमिषारण्य में यज्ञ किया था); *Cf.* महाभारत, XII. 355.2; IX. 41.3 (पंचाल नैमिष से दूर नहीं था)। ऋग्वेद (V. 61. 17-19) में दाल्भ्य तथा पांचाल गोमती के निवासी कहे गये हैं।

३. महाभारत, II. 30.2-3;31.12-13.

४. महाभारत, II. 20. 28.

५. रामायण, I.55.7. यह अवध के फ़ैजाबाद ज़िले में है। कोसलपुर नाम के लिए रामायण, II. 18.38. देखिये।

६. IV.30.18.

७. II.32.17.

८. I.126.4.

ऋग्वेद[1] में राम नामक एक असुर (शक्तिशाली जीव) की चर्चा है। किन्तु कोशल से उसका कोई सम्बन्ध नहीं दिखाया गया है। दशरथ जातक में दशरथ और राम को वाराणसी का राजा कहा गया है, किन्तु जनक और सीता के सम्बन्ध को अस्वीकार किया गया है।

कोशल सम्भवतः जनक के पुरोहित आश्वल की जन्मभूमि थी। प्रश्न उपनिषद् के अनुसार, पुरोहित आश्वल, सुकेशा भारद्वाज तथा कोशल के राजकुमार हिरण्यनाभ के समकालीन पिप्पलाद के शिष्य आश्वलायन कौशल्य[2] के पूर्वज रहे होंगे। कोशल के विस्तृत इतिहास पर अगले अध्याय में चर्चा की जायेगी।

३. मिथिला के अन्य विदेहवंशीय शासक

निमि तथा कराल

भवभूति ने सीरध्वज जनक[3] को याज्ञवल्क्य[4] का समकालीन माना है। पुराणों में उनके उत्तराधिकारियों की एक लम्बी सूची दी गई है, परन्तु इनमें एक अथवा दो को छोड़कर शेष किसी भी शासक को वैदिक, बौद्ध तथा जैन साहित्य में दी गई सूची से पहचाना नहीं जा सकता है। अतः यह कहना कठिन है कि यह सूचियाँ कहाँ तक विश्वसनीय हैं। वीर गाथाओं में आये राजाओं में किसी की भी वैदिक जनक से समानता स्थापित करना तो और भी कठिन समस्या है। भवभूति के मत के समर्थन में दिये जा सकने वाले तर्कों का उल्लेख हम पहले ही कर चुके हैं। सीरध्वज का नाम सूची में काफ़ी ऊपर है, किन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि वे राजवंश के अन्त के बहुत पहले हुए थे। इस प्रसंग में यह स्मरण रखना चाहिये कि प्रद्योत जो वस्तुतः मगध के राजा बिम्बिसार के समकालीन थे, उन्हें पौराणिक सूची में बिम्बिसार से ९ पीढ़ी पूर्व रखा गया है और इक्ष्वाकु-सूची के राजा सिद्धार्थ को जो कोशल के राजा प्रसेनजित का समकालीन था, इसी सूची में प्रसेनजित का पितामह कहा गया है। विष्णु पुराण[5] से ऐसे संकेत मिलते हैं कि यदा-कदा ऐसे अवसर भी आये थे जब अनेक समानान्तर राजवंशों में जनक नाम के राजा एक दूसरे के समकालीन थे। इसलिए सीरध्वज-सम्बन्धी निर्णय को अभी विचाराधीन ही समझना चाहिए। चूंकि सूची में सीरध्वज की पहचान एवं उसके वास्तविक स्थान का प्रश्न अभी अनिर्णीत है, अतः यह कह सकना कठिन है कि पौराणिक सूचियों में वर्णित विदेह के राजाओं में से कौन-कौन राजा आरुणि तथा याज्ञवल्क्य के समकालीन विदेह-नरेश से पश्चात् हुए थे।

---

[1] X. 93.14.

[2] **अश्वलस्यापत्यम् आश्वलायनः** [प्रश्न उपनिषद् (1.1) की शंकर की टीका]।

[3] वायु, 89,18-23; विष्णु, IV. 5.12-13.; 4th ed. of this work, pp. 67. ff.

[4] महावीर-चरित, I, Verse 14; II, Verse 43; उत्तर रामचरित, IV, Verse 9.

[5] VI. 6.7ff. *Cf.* रामायण, I. 72.18.

जातकों में राजा निमि को विदेह का अन्तिम राजा का पूर्ववर्ती शासक कहा गया है और इस प्रकार जातकों के अनुसार वे जनक के बाद हुए थे। पार्जिटर[1] ने पौराणिक सूची में बहुलाश्व तक सभी राजाओं को महाभारत-युद्ध से पूर्वकाल के राजा स्वीकार किया है और बहुलाश्व के पुत्र कृति को महाभारत[2] का कृतक्षण माना है और उन्हें युधिष्ठिर का समकालीन कहा है। परन्तु, चूंकि युधिष्ठिर के बाद भी "जनक" नाम के राजा हुए थे और साथ ही साथ दो पुराणों में भी कृति को जनक-वंश का अन्तिम राजा[3] कहा गया है, अतः इस जाति के अन्तिम राजा कृति को कृतक्षण कहना उचित प्रतीत नहीं होता। अच्छा तो यह होगा कि कृति को हम कराल जनक स्वीकार करें जिसके साथ ही विदेह के तत्कालीन राजवंश का अन्त हुआ था। इस विवरण को हम आगे चलकर स्पष्ट करेंगे। उपर्युक्त सुझाव के विरोध में एकमात्र आपत्ति यह हो सकती है कि कराल को राजा निमि का पुत्र कहा गया है, जबकि कृति, बहुलाश्व का पुत्र था। किन्तु, यह भी तो हो सकता है कि इस वंश के कई राजा अपने नाम में 'निमि' शब्द जोड़ते रहे हों और बहुलाश्व भी उनमें से एक रहे हों। एक विकल्प यह भी हो सकता है कि कराल और कृति को जनक-वंश की दो भिन्न-भिन्न शाखाओं का अन्तिम राजा स्वीकार किया जाये।

वैदिक साहित्य में जनक और माथव के अतिरिक्त नमी साप्य तथा पर-आह्लार को भी विदेह का राजा कहा गया है। मैक्डोनल तथा कीथ ने आह्लार को कोशल राज्य का पर-आटणार कहा है। इस विषय पर आगे चल कर विचार किया जायेगा। नेमिसाप्य को पंचविंश अथवा ताण्ड्य ब्राह्मण[4] में प्रसिद्ध यज्ञकर्ता कहा गया है। उत्तराध्ययन सूत्र[5] के नमी, विष्णु पुराण के नेमि, कुम्भकार[6] तथा निमि जातक[7] और मज्झिम निकाय के मखादेव सुत्त के नमी से नेमि साप्य की समानता स्थापित करना निस्सन्देह एक समस्या है। निमि जातक में कहा गया है कि निमि मैथिल-वंश के अन्तिम राजा के पूर्व हुए थे। कुम्भकार जातक तथा उत्तराध्ययन सूत्र के अनुसार, राजा नेमि या नमी पांचाल के राजा दुम्मुख (द्विमुख), गंधार के राजा नग्गजी (नग्गति) तथा कलिंग के राजा करण्डु (करकण्डु) के समकालीन थें। दुम्मुख का पुत्र बृहदुक्थ[8] वामदेव का पुत्र था।[9] वामदेव सहदेव के पुत्र सोमक के समकालीन थे।[10] सोमक विदर्भ के राजा भीम तथा गन्धार के राजा नग्नजित(नग्गजी) के निकट सम्बन्धी थे।[11] इससे यह

---

[1] *AIHT*, p. 149.

[2] *AIHT*, pp. 96,330.

[3] II. 4.27.

[4] XXV. 10. 17-18.

[5] *SBE*, XLV. 87.

[6] No. 408.

[7] No. 541.

[8] *Vedic Index*, I. 370.

[9] *Ibid.*, II. 71.

[10] ऋग्वेद, IV. 15. 7-10 अनुक्रमणी सहित।

[11] ऐतरेय ब्राह्मण, VII. 34.

सम्भव प्रतीत होता है कि दुम्मुख, नग्नजित के समकालीन रहे होंगे। यही तथ्य हमें कुम्भकार जातक व उत्तराध्ययन सूत्र में भी मिलते हैं।

निमि जातक में कहा गया है कि "निमि का जन्म राजवंश का अन्त करने के लिए हुआ था।" निमि के पूर्ववर्ती राजा को सम्बोधित करते हुए ज्योतिषी ने कहा था : "राजन् ! इस राजकुमार का जन्म आपके परिवार का अन्त करने के लिये हुआ है। आपका यह संन्यासी परिवार अब आगे नहीं चलेगा।"

कहा जाता है कि निमि के पुत्र कलार जणक[1] की मृत्यु के बाद सचमुच ही यह वंश समाप्त हो गया। प्रत्यक्षतः इस राजा को महाभारत[2] के कराल जनक के अनुरूप माना गया है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में कहा गया है कि "दाण्डक्य नाम से प्रख्यात राजा भोज एक ब्राह्मण-कन्या का कौमार्य नष्ट करने के प्रयास के फलस्वरूप अपने राजपाट तथा बन्धु-बान्धवों सहित सदा के लिए विनष्ट हो गये। यही अन्त विदेह के कराल का हुआ था।"[3] हो सकता है कि यही कराल ही राजा कलार रहा हो जिसके साथ ही, निमि जातक के अनुसार, विदेह के राजवंश का अन्त हो गया था। विदेहों के पतन से रोम के टार्क्विस की याद आती है, क्योंकि ऐसे ही अपराध के फलस्वरूप उन्हें रोम से निकाला गया था। राजतन्त्र की समाप्ति पर रोम की भाँति विदेह में भी गणतन्त्र-शासन प्रणाली (वज्जियन गणतन्त्र) का उद्भव हुआ था।

विदेह के राजवंश को समाप्त करने में काशी के राजवंश का भी हाथ था, इस कथन पर विश्वास करने के पर्याप्त कारण हैं। जनक के समकालीन काशी-नरेश अजातशत्रु जनक की चतुर्दिक् कीर्ति से जलते थे। "**यथा काश्यो वा वैदेहो वा उग्र-पुत्र उज्ज्यम् धनुर्-अधिज्यं कृत्वा धी वाणवन्तौ सपत्नातिव्याधिनौ हस्ते कृत्वोपतिष्ठेद्**।"[4] इस कथन से काशी और विदेह के योद्धाओं में यदा-कदा हुए संघर्षों का संकेत मिलता है। महाभारत[5] में एक प्राचीन कथा (**इतिहासं पुरातनम्**) आती है जिसके अनुसार रामायण[6] में वर्णित काशी-नरेश प्रतर्दन तथा मिथिला के राजा जनक में संघर्ष हुआ था। पालि-टीका "परमत्थजोतिका"[7] में कहा गया है कि लिच्छवि, जिन्होंने जनक-वंश के पश्चात् उत्तर भारत के सर्वाधिक शक्तिशाली राजवंश की स्थापना की थी और जो विज्जियन गणतन्त्र का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंग थे, वे सभी काशी की ही एक राजकन्या की सन्तान थे। इससे उत्तर काल के इस विश्वास की

---

[1] मखादेव सुत्त (मज्झिम निकाय), II. 82; निमि जातक।

[2] XII. 302. 7.

[3] अश्वघोष के बुद्धचरित (IV. 80) से अर्थशास्त्र की प्रामाणिकता सिद्ध होती है। "कराल जनक ने ब्राह्मण-कन्या से प्रेम किया, जाति से वंचित हुआ, किन्तु प्रेम का परित्याग नहीं किया।"

[4] बृहदारण्यक उपनिषद्, III. 8.2. "उग्र के पुत्र ने काशी या विदेह से धनुष-बाण खींचा था।" (Winternitz, *Ind. Lit.*, translation, I, 229 with slight emendations)।

[5] XII. 99. 1-2.

[6] रामायण, VII. 48. 15.

[7] Vol. I, pp. 158-165.

पुष्टि होती है कि काशी-राजवंश के लोगों ने ही विदेह पर अधिकार कर लिया था।

४. उत्तर विदेह-शासकों के समय में दक्षिण भारत

'दक्षिणापदा' शब्द ऋग्वेद[१] में आता है और इससे उस प्रदेश का बोध होता है जहाँ लोग निर्वासित होने पर जाया करते थे। कतिपय विद्वानों के मतानुसार 'दक्षिणापदा' का अर्थ सर्वमान्य आर्य-प्रदेश की सीमा से बाहर दक्षिण का भाग था। पाणिनि[२] ने भी 'दाक्षिणात्य' शब्द का प्रयोग किया है। बौधायन में दक्षिणापथ तथा सुराष्ट्र[३] का उल्लेख साथ-साथ आया है। यह कहना कठिन है कि पाणिनि के 'दाक्षिणात्य' तथा बौधायन में आये 'दक्षिणापथ' का क्या अर्थ है? प्रारम्भिक पालि साहित्य में 'दक्षिणापथ' शब्द को यदा-कदा अवन्ती (मालवा) के साथ जोड़ दिया गया है और एक ग्रन्थ में तो इसे गोदावरी का तटवर्ती नगर कहा गया है। महाभारत के 'नलोपाख्यान' में 'दक्षिणापथ' को अवन्ती और विन्ध्य से भी आगे और विदर्भ एवं दक्षिणी कोशल के भी दक्षिण में कहा गया है। दक्षिणी कोशल-निवासी वर्धा और महानदी के तटवर्ती भूभाग पर बसे हुए थे। दिग्विजय-पर्व में 'दक्षिणापथ' को वर्तमान मद्रास प्रेसीडेन्सी के दक्षिणी छोर पर स्थित पाण्ड्यन राज्य से भिन्न दिखाया गया है। गुप्त-काल में दक्षिणापथ कोशल राज्य की सीमा से लेकर कांची राज्य तक फैला हुआ था। बाद में इसमें सेतु (ऐडम्स ब्रिज—रामेश्वरम्) से लेकर नर्मदा तक का सम्पूर्ण भूभाग सम्मिलित था।[४]

उपर्युक्त 'दक्षिणापथ' का अर्थ चाहे जो भी रहा हो, इतना निश्चित है कि उत्तर विदेहों के अन्तिम राजा निमि तथा कराल के समय में आर्य लोग विन्ध्याचल पर्वत-माला को पारकर रेवा अथवा नर्मदा से गोदावरी तक अनेक राज्य स्थापित कर चुके थे। इन्हीं राज्यों में से विदर्भ भी एक था। इसमें आधुनिक बरार (आइने-अकबरी का वरदा-तट) तथा वर्धा (वरदा) एवं वैनगंगा के बीच मध्यप्रान्त का अधिकांश भाग सम्मिलित था। उत्तर में, यह राज्य ताप्ती की सहायक पयोषिणी नदी तक फैला हुआ था।[५] निमि के समय में विदर्भ निश्चित रूप से एक प्रख्यात राज्य था। कुम्भकार जातक तथा उत्तराध्ययन से हम देख चुके हैं कि निमि गान्धार के राजा नग्नजित के समकालीन थे और ऐतरेय ब्राह्मण[६] के अनुसार, नग्नजित विदर्भ के राजा भीम के समकालीन थे।

---

[१] X. 61.8; *Vedic Index*, I. 337.

[२] IV. 2. 98.

[३] बौद्धायन सूत्र, I. 1. 29.

[४] *DPPN*, 1, 1050; महाभारत, II. 31. 16-17; III. 61. 21-23. इलाहाबाद का समुद्रगुप्त का स्तम्भ-लेख; Fleet, *Dynasties of the Kanarese Districts*, 341n. The *Periplus* distinguishes Dachinabades (दक्षिणापथ) from Damirica (तमिलनाडु)।

[५] महाभारत, III. 61. 22-23. 120. 31.

[६] VII. 34.

"एतमु हैव प्रोचतुः पर्वत-नारदौ सोमकाय साहदेव्याय सहदेवाय सारंजयाय बभ्रवे दैवावृधाय भीमाय वैदर्भाय नग्नजिते गान्धाराय ।"

अतः विदर्भ निमि के समय में एक स्वतन्त्र राज्य था। पौराणिक उल्लेखों से ज्ञात होता है कि विदर्भ में यदुवंश[१] के लोग राज्य करते थे। जैमिनीय ब्राह्मण[२] में भी इस राज्य का उल्लेख मिलता है। विदर्भ 'माकलस' नामक पशु के लिए प्रसिद्ध था। यह पशु सम्भवतः एक प्रकार का कुत्ता था जो चीतों को परास्त कर दिया करता था।[३] **"विदर्भेषु माकलास् सारमेया अपीह शारदुलान् मारयन्ति ।"** प्रश्न उपनिषद्[४] में आश्वलायन के समकालीन विदर्भ के ऋषि भार्गव का नाम आता है। बृहदारण्यक उपनिषद्[५] में एक अन्य ऋषि विदर्भी कौण्डिन्य का भी नाम आता है। यह नाम 'कुण्डिन' शब्द का ही एक रूप है जो विदर्भ की राजधानी का नाम था।[६] आजकल अमरावती[७] के चाण्डूर तालुके में वारधा के तट पर बसे कौण्डिन्यपुर नामक स्थान को ही प्राचीन कुण्डिन नगर कहा जा सकता है। विदर्भ तथा कुण्डिन के एकसाथ उल्लेख से स्पष्ट है कि वैदिक साहित्य में आया विदेह दक्षिण में ही था, न कि किसी अज्ञात स्थान पर, जैसा कि एक प्रसिद्ध विद्वान् ने अनुमान लगाया है।[८]

यदि कुम्भकार जातक पर कुछ भी विश्वास किया जा सकता है तो इस ग्रन्थ में वर्णित विदेह के राजा निमि को, गन्धार के राजा नग्नजित को तथा विदर्भ के राजा भीम को निश्चित रूप से कलिंग के करण्डु का समकालीन कहा जाना चाहिए। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि निमि के समय या ब्राह्मण-काल में कलिंग राज्य का भी अस्तित्व था। जातक के उक्त कथन की पुष्टि उत्तराध्ययन सूत्र से भी होती है। महागोविन्द सुत्तन्त[९] के अनुसार, कलिंग के राजा सत्तभु, मिथिला के राजा रेणु तथा

---

[१] मत्स्य पुराण, 44, 36; वायु पुराण, 95. 35-36.

[२] II. 440; *Vedic Index*, II. 297.

[३] *JAOS*, 19, 100.

[४] I. 1; II. 1.

[५] *Vedic Index*, II. 297.

[६] महाभारत, III. 73. 1-2; V. 157. 14; हरिवंश, विष्णुपर्व, 59-60.

[७] गजेटियर, अमरावती, Vol. A, p. 406.

[८] *Indian Culture*, July, 1936, p. 12. इसी लेखक ने पुराणों की उक्ति को स्वीकार किया है तथा वैदिक साहित्य की जातियों को अनैतिहासिक माना है। इसने ऐतरेय ब्राह्मण के सत्वातों को यादव माना है और उन्हें मथुरा तथा समीपवर्ती ज़िलों का कहा है। उसने ऐसा कोई तथ्य नहीं दिया जिसमें सत्वातों की समानता किसी से की गई हो तथा उन्हें मथुरा के आसपास का माना गया हो।

[९] *Dialogues of the Buddha*, II. 270.

शतपथ ब्राह्मण[1] में वर्णित काशी के राजा धृतराष्ट्र के समकालीन थे। अतः अब इसमें सन्देह नहीं रहा कि ब्राह्मण-काल में कलिंग राज्य का स्वतन्त्र अस्तित्व था। पाणिनि[2] तथा बौधायन[3] में भी ऐसा ही वर्णन मिलता है। अन्तिम ग्रन्थ के अनुसार, कलिंग एक अशुद्ध देश था, परन्तु आर्य लोग भी वहाँ आया-जाया करते थे।[4] महाभारत के अनुसार कलिंग राज्य उड़ीसा में वैतरणी नदी[5] से लेकर आन्ध्र की सीमा तक समुद्र-तट के साथ-साथ फैला हुआ था। राज्य की दक्षिणी सीमा स्पष्ट रूप से निर्धारित नहीं थी, फिर भी यह विजयनगरम् ज़िले में येल्लामनचिलि तथा चिपुरुपल्ले तक फैली हुई थी। कभी-कभी तो गोदावरी नदी के उत्तर-पूर्व में स्थित पिष्टपुर या पिथपुरम् नगर भी राज्य-अंग बन जाया करते थे, परन्तु गोदावरी नदी कलिंग राज्य में नहीं थी। पार्जिटर के अनुसार, पूर्वी घाट (महेन्द्र पर्वत-श्रेणी) तथा समुद्र के बीच का भाग ही कलिंग राज्य का क्षेत्र था। किन्तु ऐसा लगता है कि कलिंग के राजा का आधिपत्य समुद्र-तट से दूर देश की भीतरी पहाड़ियों पर बसनेवाली जातियाँ भी स्वीकार करती थीं, क्योंकि नर्मदा के उद्गम-स्थल, अर्थात् अमरकंटक को भी कलिंग का पश्चिमी भाग कहा गया है। पालि ग्रन्थों में कलिंगारण्य के उल्लेख से लगता है कि कलिंग राज्य में काफ़ी पहाड़ियाँ व जंगल आदि थे। कालिदास के समय में राजधानी के महलों की खिड़कियों से समुद्र दिखाई पड़ता था और लहरों के उद्घोष से नगर में बजनेवाले नगारों का शोर दब जाता था।[6] युवान च्वांग के समय में तो कलिंग बहुत छोटा राज्य था। इसे उत्तर में वू-तू (उड़ीसा) तथा कुंग-यू-तो (गंजाम ज़िले के कोंगोद) से और दक्षिण में अन-तो लो (आन्ध्र अथवा वेंगी) से पृथक् दिखलाया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि गंजाम तथा विजगापटम ज़िलों के कुछ भाग इस राज्य में सम्मिलित थे। जातकों में दन्तपुर नगर को कलिंग की राजधानी कहा गया है[7], जबकि महाभारत

---

१. XIII. 5. 4. 22.

२. IV. I. 170.

३. I, i, 30-31.

४. अशोक के समय में कलिंग में काफ़ी ब्राह्मण बसते थे (*Cf*. Edict, XIII.)।

५. महाभारत, III. 114. 4

६. *Ind. Ant.*, 1923, 67; *Ep. Ind.*, XII. 2; *JASB*, 1897, 98 ff; कूर्म p, II., 39, 9; पाद्म, स्वर्ग-खण्ड, VI. 22; वायु, 77, 4-13; Malalasekera, *DPPN*, 584; रघुवंश, vi. 56.

७. *Cf. Ep. Ind.*, XIV, p. 361. दन्तपुर वासकात्; दन्तकूर, महाभारत, V, 48, 76. दण्डगुल (Pliny, M'Crindle, *Megasthenes and Arrian*, 1926, p. 144)। संभवतः गंजाम ज़िले के चिकाकोल के दन्तवक्त्र किले के नाम पर भी इसी नाम की छाया है। इसी ज़िले में कलिंग की राजधानियाँ हैं, जैसे चिकाकोल के पास सिंहपुर (सिंगुपुरम्) है। *AHD*, p. 94; कलिंग नगर (वंशधरा का मुखलिंगम्) (*Ep. Ind.*, IV. 187); कलिंगपातम् (*Ind. Ant.* 1887, 32; *JBORS*, 1929, pp. 623 f)।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के अनुसार, इसकी राजधानी राजपुर थी।[१] महावस्तु[२] में सिंहपुर तथा जैन ग्रन्थों में कंचनपुर नगर का उल्लेख आता है।[३]

महागोविन्द सुत्तन्त[४] में गोदावरी के तट पर स्थित अस्सक या अश्मक राज्य का भी उल्लेख मिलता है। यह राज्य राजा रेणु तथा धृतराष्ट्र के समय में भी था। इस राज्य का राजा ब्रह्मदत्त था और उसकी राजधानी पोतन थी।

ऐतरेय ब्राह्मण[५] में दक्षिण के राजाओं का उल्लेख मिलता है। यहाँ राजाओं को भोज और इनकी प्रजा को सत्वात कहा गया है—**"दक्षिणस्यां दिशि ये के च सत्वतां राजानो भौज्यायैव तेऽभिषिच्यन्ते भोज-एत्ये-नान् अभिषिक्तानाचक्षत।"** अर्थात्, दक्षिण में सत्वातों के राजा जो कोई भी हों, उन्हें भौज्य कहा जाता है। शतपथ ब्राह्मण[६] में राजा भरत द्वारा सत्वातों की पराजय एवं उनके अश्वमेध यज्ञ के घोड़े को छीन कर ले जाने की घटना का उल्लेख मिलता है। ये सत्वात भरत के राज्य के समीप, अर्थात् गंगा-यमुना के समीप रहे होंगे।[७] किन्तु, ऐतरेय ब्राह्मण के समय में वे सम्भवतः अधिक दक्षिण की ओर चले गये थे, क्योंकि ऐतरेय ब्राह्मण में उन्हें कुरु, पांचाल एवं कुछ अन्य समीपवर्ती जातियों के "निर्धारित मध्य क्षेत्र" से आगे दक्षिण दिशा में दिखाया

---

१. XII. 4.3.

२. Senart's edition, p. 432.

३. *Ind. Ant.*, 1891, p. 375. पद्मपुराण के भूमि-खंड (47.0) में श्रीपुर को कलिंग का एक नगर माना गया है।

४. सुत्त निपात 977; *SBE*, X, pt, ii, 184; *Cf.* Asmagi (*Bomb. Gaz*. I. 1., p. 532; *Megasthenes and Arrian* (1926, 145)। अश्मक का उल्लेख पाणिनि ने भी किया है (IV. I. 173)। इस नाम से कुछ पथरीले देश का संकेत मिलता है। *Camb. Hist. of India* (Vol. I) में 'अश्वक' शब्द को संस्कृत 'अश्व' तथा ईरानी 'अस्प' के समान कहा है जिसका अर्थ घोड़ा होता है। टीकाकार भट्टस्वामिन् ने अश्मक को महाराष्ट्र माना है। इसकी राजधानी पोतलि या पोतन थी—चुल्ल-कालिंग जातक, नं० 301; अस्सक जातक (207); D.2.235; परिशिष्ट-पर्वन्, I. 92. नगरे पोतनाभिधे, *Bomb. Gaz.*, I. 1. 535; Law, *Heaven and Hell in Buddhist Perspective*, 74; महाभारत, 1, 177.47; *Cf.* Padan of Luders' List, 616, and N. G. Majumder's List, 658 (*Monuments*, p. 365—विसाखस पादांयस)। डॉक्टर सुक्थांकर ने संकेत किया है कि महाभारत का पौदन्य बाद का अपभ्रंश है। पहले की पांडुलिपियों में पोतन या पोदन नाम आया है। इस काल से निज़ाम के गोदावरी तथा मंजिरा के संगम के नाम की याद आती है। इस नगर को इक्ष्वाकु-वंश के किसी राजकुमार ने बसाया था जो अश्मक देश का भी विजेता था। पड़ोस के मूलक लोग भी अपने को इक्ष्वाकु देश का ही कहते थे (वायु, 88.177-178)।

५. VIII, 14.

६. XIII. 5.4.21

७. *Ibid.*, XIII. 5.4.11.

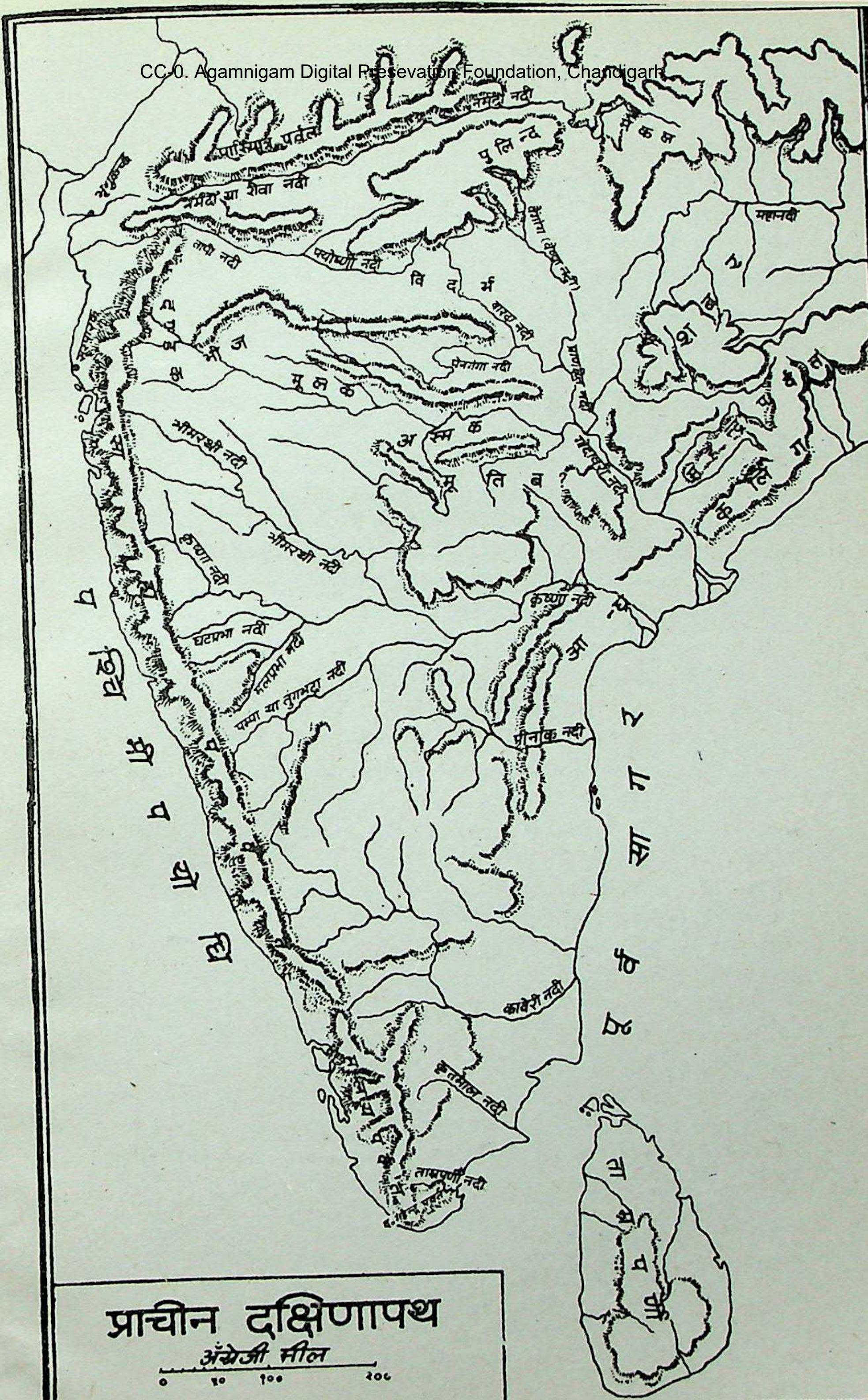
नर्मदा नदी
पारियात्र पर्वत
पुलिन्द
मेकल
भृगुकच्छ
नर्मदा या रेवा नदी
महानदी
वैनगंगा (वेण्वा नदी)
ताप्ती नदी
पयोष्णी नदी
विदर्भ
वरदा नदी
भोज
पैनगंगा नदी
प्राणहित नदी
मूलक
शूर्पारक
अस्मक
भीमरथी नदी
मूतिब
गोदावरी नदी
भीमरथी नदी
कृष्णा नदी
कृष्णा नदी
घटप्रभा नदी
मलप्रभा नदी
पम्पा या तुंगभद्रा नदी
आन्ध्र
पश्चिमी पयोधि
पीनाक नदी
पूर्व सागर
कावेरी नदी
कृतमाल नदी
ताम्रपर्णी नदी
ताम्रपर्णी

प्राचीन दक्षिणापथ

अँग्रेजी मील

० ५० १०० २००

गया है। महाभारत के अनुसार, पांचाल राज्य चम्बल नदी तक फैला हुआ था।[1] अतः इस बात की पूरी-पूरी सम्भावना है कि ऐतरेय ब्राह्मण में वर्णित "दक्षिणापथ के सत्वात" लोग उस नदी से पार रहे होंगे। उनके राजाओं को भोज कहा जाता था। सत्वातों एवं उनके राजाओं से सम्बन्धित ब्राह्मण ग्रन्थों का विवरण पौराणिक विवरण से मिलता है। पुराणों में कहा गया है कि सत्वात तथा भोज यमुना-तट पर रहने वाले यदु-वंश की शाखा थे।[2] पुराणों से हमें ऐसे भी तथ्य मिलते हैं जिनके अनुसार, सत्वात तथा भोज दक्षिणी विदर्भों के सगोत्रीय सिद्ध होते हैं।[3] हमें विदर्भ राज्य से भोज नामधारी राजाओं के घनिष्ट सम्बन्धों के भी प्रमाण मिलते हैं।

महाभारत[4] तथा हरिवंश[5] दोनों में भोजकट नामक स्थान का उल्लेख है। वाकाटक राजा प्रवरसेन-द्वितीय के चम्मक-अनुदान से इस बात का स्पष्ट पता चलता है कि (प्राचीन विदर्भ के एक भाग) बरार का इलिचपुर ज़िला भोजकटक की सीमा में सम्मिलित था।[6] डॉ० स्मिथ का मत है कि भोजकटक, अर्थात् "राजा भोज का दुर्ग" नाम से इस बात का पता चलता है कि इस प्रान्त का नाम किसी ऐसे सुदृढ़ दुर्ग के नाम पर पड़ा होगा जहाँ सम्राट् अशोक के लेखों में वर्णित भोज नामक प्राचीन राजवंश का आधिपत्य रहा होगा।[7] महाकवि कालिदास ने भी अपने रघुवंश[8] में विदर्भ के राजा को भोज[9] की संज्ञा दी है।

भोजवंश केवल विदर्भ तक ही सीमित न था। ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार, दक्षिण में भी भोज राजाओं का फैलाव था और दण्डक पर भी भोजों का ही अधिकार रहा होगा। कौटिल्य अर्थशास्त्र[10] में एक अनुच्छेद है—"**दाण्डक्यो नाम भोजः कामात् ब्राह्मण कन्यां अभिमन्यमानस सबन्धु राष्ट्रो विननाश।**" अर्थात्, दाण्डक्य नामक भोज राजा ब्राह्मण कन्या पर कुदृष्टि डालने के फलस्वरूप अपने राज्य तथा बन्धु-बान्धवों सहित विनष्ट हो गया। सरभग जातक[11] से पता चलता है कि दण्डकी (दण्डक) राज्य

---

[1] महाभारत, I. 138.74; **दक्षिणांश्चापि पांचालान् यावच् चर्मण्वती नदी।**

[2] मत्स्य, 43, 48; 44. 46-48; वायु, 94.52; 95. 18; 96. 1-2; विष्णु, IV. 13. 1-6.

[3] मत्स्य पुराण, 44.36; वायु, 95. 35-36.

[4] V. 157. 15-16.

[5] विष्णु पर्व, 60.32.

[6] *JRAS*, 1914, p. 329.

[7] *Ind. Ant.*, 1923, 262-63 में भोजकट सम्भवतः अमरावती ज़िले का भतकुली स्थान था।

[8] V. 39-40.

[9] *Cf.* Also महाभारत, V. 48. 74; 157.17; हरिवंश, विष्णु पर्व, 47.5.

[10] Ed. 1919, p. 11.

[11] No. 522.

की राजधानी का नाम कुम्भवती था। रामायण[1] के अनुसार, राजधानी का नाम मधुमन्त तथा महावस्तु[२] के अनुसार गोवर्द्धन (नासिक) था।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि विदेह के अन्तिम राजाओं तथा ब्राह्मण ग्रन्थों की रचना के समय दक्षिण में आर्यों एवं अनार्यों के अनेक राज्य थे। आर्य राज्यों में, विदर्भ, अश्मक तथा कलिंग थे। दण्डक भी सम्भवतः आर्य राज्य था। इन बड़े-बड़े तथा सुसंगठित राज्यों के अतिरिक्त विन्ध्याचल पर्वत-श्रेणियों के दक्षिण का सम्पूर्ण भारत आन्ध्र, शबर, पुलिन्द तथा मूतिब[३] नामक अनार्य (दस्यु) जातियों के अधिकार में था।

इतिहासकार डॉक्टर स्मिथ के अनुसार, आन्ध्र लोग द्रविड़ थे। वे गोदावरी तथा कृष्णा नदियों के डेल्टे में रहते थे। उनकी भाषा तेलुगु थी। श्री पी० टी० श्रीनिवास आयंगर का कथन है कि आन्ध्र लोग मूलतः विन्ध्य-क्षेत्र जातियों में से ही थे और उनका राज्य पश्चिम से पूर्व की ओर गोदावरी और कृष्णा की घाटियों तक फैला हुआ था।[४] डॉ० भण्डारकर का कथन है कि सेरिवाणिज जातक में जिस अन्धपुर का उल्लेख मिलता है, वह आन्ध्र राजाओं की राजधानी थी। यह नगर तेलवाह नदी पर बसा था। आजकल इसे तेल अथवा तेलिगिरि[५] कहते हैं। किन्तु, यदि "श्री-राज्य"[६] में गंगराज्य की चर्चा है तो तुंगभद्रा या कृष्णा का नाम ही तेलवाह नदी रहा होगा और आन्धपुर बेज़वाड़ा अथवा किसी समीपवर्ती नगर[७] का नाम रहा होगा। पल्लव शासक शिवस्कन्द वर्मन के समय के प्राप्त कुछ धातुपत्रों (Mayidavolu) से सिद्ध होता है कि आन्ध्र राज्य कृष्णा की घाटी तक फैला हुआ था और धन्नकड़, अर्थात् बेज़वाड़ा अथवा कृष्णा के दक्षिणी तट[८] पर स्थित कोई समीपवर्ती नगर इसकी राजधानी रहा होगा। युवान

---

१. VII. 92. 18.

२. Senart's Edition, p. 363.

३. ऐतरेय ब्राह्मण, VII. 18.

४. *Ind. Ant.*, 1913, pp. 276-78.

५. *Ind. Ant.*, 1918, p. 71. दक्षिण भारत में टेर (Ter) नाम की भी एक नदी है (*Ep. Ind*, XXII. 29)।

६. *Mysore and Coorg from Inscriptions*, 38. 'Seri' may also refer to श्री विजय या श्री विषय (सुमात्रा ?)।

७. तेलवाह (oil carrier) से एक अनुच्छेद याद आता है—**विख्यात कृष्णावेर्णा (=कृष्णा) तैल-स्नेहोपलब्ध सरलत्व** (*IA*, VIII. 17; *Cf. Ep.* XII. 153);—"with a smoothness caused by sesame oil of the famous (river) Krishna."

८. हल्ट्ज़ (*Ep. Ind.*, VI. 85) ने अमरावती नगर से इसका तादात्म्य किया है। बर्गेस ने बेज़वाड़ा से १८ मील दूर धरणीकोट को सुझाव दिया है। यह कृष्णा नदी के किनारे था। फ़र्गुसन, सेवेल तथा वाटर्स ने बेज़वाड़ा को ही प्राथमिकता दी है (*Yuan Chwang*, II. 216)। चीनी यात्री ऐन-तो-लो के समय में इसकी (आन्ध्र की) राजधानी पिंग-की-लो या कृष्णा ज़िले का वेंगीपुर थी।

च्वांग ने एलोर के समीप पिंग-की-लो (वेंगीपुर) के समीपवर्ती ज़िले को अन-तो-लो (आन्ध्र) नाम दिया था। बाद में आन्ध्र-खण्ड गोदावरी से कलिंग तक फैल गया था (**आरभ्य गौतमनदीतटम् आकलिंगम्**) तथा पिठापुरी (**पिथपुरम्**) भी इसी राज्य में सम्मिलित था।[१]

मत्स्य तथा वायु पुराणों में शवरों एवं पुलिन्दों को 'दक्षिणापथ-वासिनः', अर्थात् दक्षिण के निवासी कहा गया है

> **तेषाम्परे जनपदा दक्षिणापथ-वासिनः।**
> × × ×
> **कारूषाश्च सह इषीका आट्व्याः शवरास् तथा**
> **पुलिन्दा विन्ध्य पुषिका (?) वैदर्भा दण्डकैः सह।**[२]
> **आभीराः सह च इषीकाः आटव्याः शवराश्च ये**
> **पुलिन्दाः विन्ध्य मूलिका वैदर्भा दण्डकैः सह।**[३]

महाभारत के अनुसार भी आन्ध्र, पुलिन्द तथा शवर दक्षिणापथ के निवासी थे।

> **दक्षिणापथ जन्मानः सर्वे नरवर-आन्ध्रकाः**
> **गुहाः पुलिन्दाः शवराश् चचुका मद्रकैः (?) सह।**[४]

ब्राह्मण-काल में शवरों के देश की वास्तविक स्थिति क्या थी, यह नहीं बताया जा सकता। किन्तु, सामान्यतः उन्हें प्लिनी की सुआरी, तोलेमी की सबराय जाति के अनुरूप माना जाता है। विजगापट्टम पहाड़ियों की सबरालु अथवा सौरस जाति तथा ग्वालियर राज्य की सवारी जाति ही सम्भवतः प्राचीन काल की शवर जाति थी।[५]

पुलिन्दों की राजधानी (पुलिन्द नगर) सम्भवतः दशार्ण के दक्षिण-पूर्व में थी। ये लोग (दशार्ण)[६] बुन्देलखण्ड[७] की दसान अथवा धसान नदी के तट पर रहते थे।

---

१. Watters, II. 209 f; *IA*, xx, 93; *Ep. Ind.*, IV. 357.

२. मत्स्य, 114, 46-48.

३. वायु, 45, 126.

४. महाभारत, XII. 207. 42.

५. *Ind. Ant.*, 1879, p. 282; कनिंघम, *AGI*, नया संस्करण, pp. 583, 586; ,*Imp. Gaz The Indian Empice*, *I*, 384; रायपुर के दक्षिणी-पूर्वी भाग में (*JASB*, 1890, 289), सम्बलपुर और गंजाम में (*Ibid.*, (1891, 33), कटक के पश्चिमी भाग के साथ ही विजगापट्टम के उत्तरी-पश्चिमी भाग में (*Gbid.* 1897, 321) शबर जाति पायी जाती है।

६. महाभारत, II. 5-10.

७. *JASB*, 1895, 253; कालिदास ने इसे विदिशा या भिलसा में कहा है (मेघदूत, 24-25)।

ऐतरेय ब्राह्मण में आन्ध्र, पुलिन्द व शवर जातियों के साथ-साथ मूतिब नामक दस्यु जाति का भी उल्लेख मिलता है, परन्तु इनके प्रदेश के सम्बन्ध में अभी तक निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सका है। प्लिनी ने 'मोदुबाय' नामक जाति का उल्लेख किया और उन्हें गंगा नदी से घिरे एक विशाल प्रदेश की मोदोगलिंगाय तथा आन्ध्र (अन्दाराय) जातियों के मध्यवर्ती क्षेत्र में बसा हुआ कहा है।[1] मोदुबाय जाति को मोलिन्दाय तथा यूबेराय जातियों से सम्बन्धित किया गया है। ये जातियाँ सम्भवतः वही थीं जिन्हें ऐतरेय ब्राह्मण में पुलिन्द तथा शवर कहा गया है। शांखायन श्रौत सूत्र[2] में मूतिब जाति को मूवीप अथवा मुशीप भी कहा गया है। यह भी सम्भव है कि हैदराबाद-दक्कन के समीप की मुशी नदी से भी मुशीप जाति का कुछ सम्बन्ध रहा हो।[3]

---

[1] M'Crindle, *Megasthenes and Arrian*, 1926, p. 139-140

[2] XV. 26. 6.

[3] *Cf.* मूषिक, Pargiter, मार्कंडेय पुराण, p. 366.

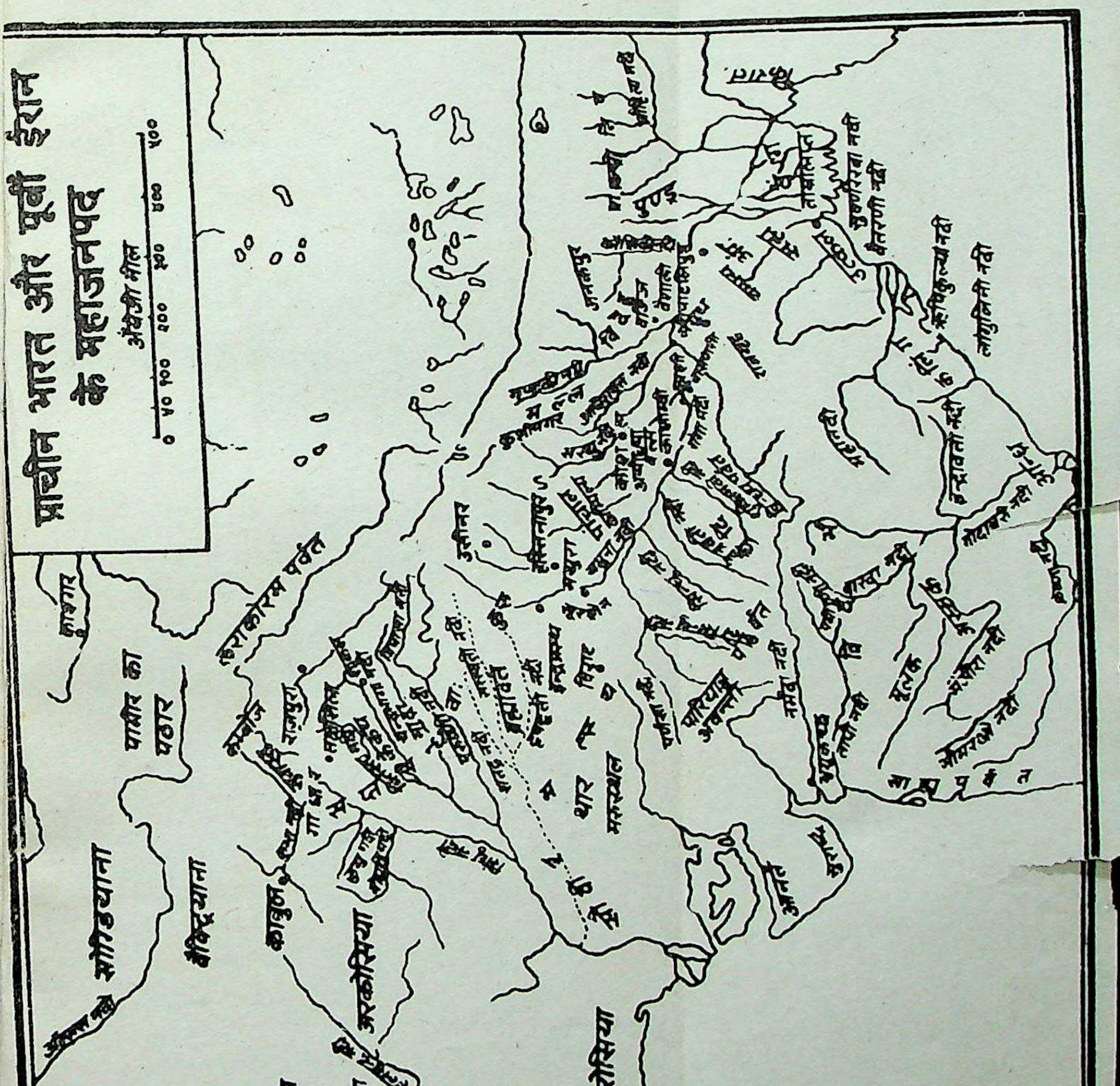
प्राचीन भारत और पूर्वी ईरान के महाजनपद
अंग्रेजी मील
0 50 100 200 300 400 500
पामीर का पठार
कराकोरम पर्वत
सोगडियाना
बैक्ट्रियाना
काबुल
अरकोसिया
गदरोसिया
थार मरुस्थल
उशीनर
हस्तिनापुर
मथुरा
पुण्ड्र
अवन्ति
मूलक
नर्मदा नदी
गोदावरी नदी
कावेरी नदी

३

महाजनपद तथा राजतन्त्र

१. सोलह महाजनपद

वैदिक साहित्य में विदेह में राजतन्त्र के पतन, अर्थात् छठी शताब्दी ईसापूर्व के प्रारम्भिक समय से लेकर इसी शताब्दी के मध्य में बिम्बिसार के श्वसुर महाकोशल के नेतृत्व में कोशल राज्य के उदय के बीच के समय की राजनीतिक स्थिति पर कोई प्रकाश नहीं डाला गया है। किन्तु, बौद्ध ग्रन्थ "अंगुत्तर निकाय" से पता चलता है कि इसी बीच 'सोलस महाजनपद'[1] नामक सोलह बड़े-बड़े तथा शक्तिशाली राज्य थे। वे १६ महाजनपद ये थे—

१. कासी (काशी)
२. कोसल (कोशल)
३. अंग
४. मगध
५. वज्जि (वृजि)
६. मल्ल
७. चेतिय (चेदि)
८. वंस (वत्स)
९. कुरु
१०. पंचाल
११. मच्छ (मत्स्य)
१२. शूरसेन
१३. अस्सक (अश्मक)
१४. अवन्ती
१५. गंधार
१६. कम्बोज

ये महाजनपद विदेह के कराल जनक के बाद तथा महाकोशल राज्य के उदय के पूर्व हुए थे, क्योंकि इनमें से एक महाजनपद वज्जि का उदय सम्भवत: विदेह में राजतन्त्र के पतन के तुरन्त बाद हुआ था जबकि काशी नामक महाजनपद महाकोशल के समय से पूर्व ही अपनी स्वतन्त्रता खो चुका था और छठी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में यह कोशल राज्य का अभिन्न अंग बन चुका था।

---

[1] *PTSI*, 213; IV, 252, 256, 260, महावस्तु (I. 34) में भी इसी प्रकार की लिस्ट दी गई है, किन्तु उसमें गन्धार और कम्बोज का नाम न देकर शिबि और दशार्ण (पंजाब और राजपूताना में) के नाम हैं। इसी प्रकार की एक अधूरी सूची जनवसभ-सुत्तन्त में मिलती है।

जैन ‘भगवती सूत्र’[1] नामक ग्रन्थ में महाजनपदों की सूची कुछ भिन्न प्रकार से दी गई है जो इस प्रकार है—

१. अंग
२. बंग (वंग)
३. मगह (मगध)
४. मलय
५. मालव (क)
६. अच्छ
७. वच्छ (वत्स)
८. कोच्छ (कच्छ ?)
९. पाढ (पाण्ड्य या पौण्ड्र)
१०. लाढ (लाट या राढ)
११. बज्जि (वज्जि)
१२. मोली (मल्ल)
१३. कासी (काशी)
१४. कोशल
१५. अवाह
१६. सम्भुत्तर (सुम्होत्तर ?)

उपर्युक्त सूचियों के अवलोकन से स्पष्ट है कि अंग, मगध, वत्स, वज्जि, काशी तथा कोशल के नाम दोनों सूचियों में समान हैं। भगवती सूची का मालव राज्य अंगुत्तर सूची का अवन्ती लगता है। ‘मोली’ सम्भवतः ‘मल्ल’ शब्द का ही अपभ्रंश है। इनके अतिरिक्त भगवती सूची में जिन राज्यों के नाम आये हैं, वे नये हैं और उनसे पता चलता है कि जैन लेखकों को सुदूर पूर्व तथा सुदूर दक्षिण भारत की जानकारी थी। भगवती सूची के विस्तृत क्षेत्र से ऐसा लगता है कि यह सूची अंगुत्तर-सूची[2] के बाद की है। अतः जनक-वंश के पतन के पश्चात् भारत की राजनीतिक स्थिति जानने के लिये बौद्ध सूची को ही हम सही और प्रामाणिक मानेंगे।

काशी—उपर्युक्त सोलह महाजनपदों में शुरू में सम्भवतः काशी सर्वाधिक शक्तिशाली था। हम देख चुके हैं कि विदेह के राजतन्त्र को समाप्त करने में काशी राज्य का प्रमुख हाथ रहा है। अनेक जातकों में भी भारत के अन्य नगरों की अपेक्षा काशी राज्य की राजधानी वाराणसी को अधिक गरिमावान् नगर कहा गया है। इन जातकों में काशी के शासकों की महत्त्वाकांक्षाओं की ओर भी संकेत मिलता है। गुत्तिल जातक[3] में वाराणसी को भारत भर के नगरों में प्रमुख नगर कहा गया है। वाराणसी नगर का विस्तार ३६ मील था[4], जबकि मिथिला तथा इन्दपत्त में से प्रत्येक का विस्तार

---

१. *Saya*, xv, उद्देस्स I (Hoernle, उवासगदसाव, II, Appendix), W. Kirfel, *Die Kosmographie Der Inder*, 225.

२. Mr. E. J. Thomas ने *History of Buddhist Thought*, p. 6 में संकेत किया है कि जिस जैन लेखक ने उत्तरी गन्धार और कम्बोज के बजाय दक्षिण भारत के प्रदेशों का नाम सूची में लिखा है, उसने दक्षिण भारत में ग्रन्थ तैयार किया है तथा केवल उन्हीं देशों का उल्लेख किया है जिन्हें वह जानता था। यदि कोई लेखक मालववासियों को नहीं जानता तो इसका अर्थ है कि वह पंजाब का नहीं, वरन् मध्य भारत का रहा होगा। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि वह लेखक बहुत बाद का रहा होगा।

३. No. 243.

४. “द्वादश योजनिकम् सकल-वाराणसी-नगरम्”—सम्भव जातक, No 515; सरभ-मिग जातक, 483; भूरिदत्त जातक, 543.

केवल २१ मील[१] में था। काशी के कई राजाओं की इस इच्छा का भी वर्णन है कि उन्हें विभिन्न राजाओं के बीच "मुख्य राजा" (सब्बराजुनम् अग्गराजा) का सम्मान प्राप्त हो तथा वे समूचे भारत (सकल जम्बुदीप)[२] के सम्राट् माने जायें। 'महावग्ग' में भी कहा गया है कि काशी राज्य महान्, समृद्धिशाली तथा प्रभूत साधनों से सम्पन्न था—

"भूतपब्बं भिक्खवे बाराणसियम् ब्रह्मदत्तो नाम कासिराजा अहोसि अड्ढो महद्धनो महाभोगो महद्बलो महावाहनो महाविजितो परिपुण्णकोस कोट्ठागारो।"[३]

जैन लोग भी काशी राज्य की महानता की पुष्टि करते हैं तथा वाराणसी के राजा अश्वसेन को अपने तीर्थंकर पार्श्व का पिता मानते हैं जिनका देहावसान महावीर से २५० वर्ष पूर्व या लगभग ७७७ वर्ष ईसापूर्व में हुआ था।

इसके पूर्व ब्राह्मण-काल में काशी के राजा धृतराष्ट्र ने एक बार अश्वमेध यज्ञ करने का प्रयास किया था, किन्तु शतानीक सात्राजित ने उन्हें परास्त कर दिया जिसके फलस्वरूप शतपथ ब्राह्मण-काल तक काशी-निवासियों ने यज्ञाग्नि प्रज्वलित करना छोड़ दिया था।[४] काशी के कुछ राजा अधिक भाग्यशाली सिद्ध हुए। ब्रह्माचत्त जातक[५] के अनुसार, काशी के राजा ने एक बड़ी सेना के साथ कोशल पर आक्रमण किया था और नगर में प्रवेश कर वहाँ के राजा को बन्दी बना लिया था। 'कोशाम्बी जातक'[६], 'कुनाल जातक'[७] तथा 'महावग्ग'[८] में काशी के ब्रह्मदत्त राजाओं[९] द्वारा कोशल को अपने अधीन कर लेने का उल्लेख मिलता है। अस्सक जातक[१०] में गोदावरी के तट पर बसी अस्सक की राजधानी पोतलि को काशी राज्य की एक नगरी कहा गया है। स्पष्ट है कि अस्सक के शासक ने काशी की अधीनता स्वीकार कर ली होगी। सोननन्द जातक[११] के अनुसार, काशी के राजा मनोज ने कोशल, मगध और अंग राज्य के राजाओं को अपने अधीन कर लिया था। महाभारत[१२] के अनुसार, काशी के राजा

---

[१] सुरुचि जातक, 489; विधुर पंडित जातक, 545.

[२] भद्दसाल जातक, 465; धोनमाख जातक, 353.

[३] महावग्ग, X, 2.3; विनय पिटकम्, I, 342.

[४] शतपथ ब्राह्मण, XIII. 5. 4. 19.

[५] No. 336.

[६] No. 428.

[७] No. 536.

[८] *SBE*, Vol. XIII, pp. 294-99.

[९] महाभारत (I. 105. 47. ff; 106. 2, 13;113. 43; 114. 3 f; 126, 16; 127, 24) में काशी की राजकुमारियों, धृतराष्ट्र की माँ और पाण्डु को कौशल्य के रूप में लिखा गया है। इससे ज्ञात होता है कि महाभारत-काल में काशी और कोशल के बीच सम्बन्ध था। गोपथ ब्राह्मण में भी काशी-कोशल का उल्लेख मिलता है (*Vedic Index*. I. 195)।

[१०] No. 207.

[११] No. 532.

[१२] XIII. 30.

प्रतर्दन ने वीतहव्य या हैहय[1] राजाओं को कुचल दिया था। समुचित प्रमाणों के अभाव में जातक में उल्लिखित विभिन्न राजाओं की व्यक्तिगत सफलताओं तथा जीतों को पूर्ण विश्वसनीय नहीं माना जा सकता। फिर भी विभिन्न जातकों तथा महावग्ग में समान रूप से आये उल्लेखों से स्पष्ट है कि काशी का साम्राज्य किसी समय में बहुत बड़ा तथा अपने पड़ोसी राज्यों जैसे कोशल आदि से बहुत अधिक शक्तिशाली था।

भोजाजानिय जातक[2] में लिखा है कि पड़ोसी राज्य वाराणसी पर हमेशा अपनी आँख गड़ाये रहते थे। एक बार तो काशी के सात पड़ोसी राज्यों ने एकसाथ मिलकर काशी को घेर लिया था।[3] तत्कालीन वाराणसी की तुलना प्राचीन काल के बेबीलोन तथा मध्यकालीन रोम से की जा सकती है, क्योंकि इस पर सदैव लड़ाकू तथा अर्धसभ्य देश ललचाये रहते थे।

2· **कोशल**—जैसा कि हम पहले ही जान चुके हैं, कोशल राज्य के पश्चिम में गोमती, दक्षिण में सर्पिका या स्यन्दिका अर्थात् सई नदी[4], पूर्व में विदेह से कोशल को अलग करने वाली सदानीरा तथा उत्तर में नेपाल की पहाड़ियाँ थीं। कोशल राज्य के अन्तर्गत गोमती के तट पर स्थित केसपुत्त[5] का कालामस भूभाग तथा शकों का देश कपिलवस्तु भी आ जाता था। सुत्त निपात[6] में महात्मा बुद्ध कहते हैं : "हिमालय (हिमवन्त) के बिल्कुल पास स्थित कोशल प्रदेश[7] के रहने वाले लक्ष्मी-सम्पन्न हैं। ये लोग वंश से आदिच्च[8] तथा जन्म से शाकिय हैं। यहीं के एक परिवार से मैं परिभ्रमण के लिए निकला हूँ। मुझे ऐन्द्रिक मुखों की तनिक भी लालसा नहीं है।" मज्झिम निकाय[9] में भी बुद्ध को कोशल का ही कहा गया है।

'भगवा प कोसलको अहम् पि कोसलको'

---

[1] डॉक्टर भण्डारकर ने काशी के जिन जातक राजाओं का उल्लेख किया है, पुराणों में भी उनके नाम मिलते हैं। उदाहरणार्थ, जातक नं० २६३ के विस्ससेन, जातक नं० ४५८ के उदय तथा जातक नं० ५०४ के भल्लाटीय राजाओं के नाम पुराणों में विश्वकसेन, उदकसेन तथा भल्लाट के रूपों में आए हैं। मत्स्य, 49. 57 *et. seq.*; वायु, 99. 180 *et. seq.*; विष्णु, IV. 19. 13.

[2] No. 23.

[3] जातक, 181.

[4] रामायण, II, 49. 11-12; 50. 1; VII, 104. 15.

[5] अंगुत्तर निकाय, I. 188 (*PTS*); *IC.* II. 808. ऋग्वेद (V. 61,) में दाल्भ्य-वंश जो केशिन-वंश से सम्बन्धित थे, उनका स्थान गोमती के तट पर था।

[6] *SBE*, X, Part II, 68-69.

[7] **कोसलेसु निकेतिनी** : Rhys Davids और Stede ने 'निकेतिन' शब्द का अर्थ 'निवास' लगाया है। *Cf.* J. III, 432—**दुमसाखा निकेतिनी**।

[8] आदित्य से सम्बन्धित (सूर्यवंश), *Cf. Luders*, Ins., 929, i.

[9] II, 124.

अग्गञ्ञ सुत्तन्त[1] तथा भद्दसाल जातक[2] के आरम्भ के अध्यायों से स्पष्ट है कि छठी शताब्दी ईसापूर्व के उत्तरार्ध में शाक्य लोग कोशल के राजा की अधीनता स्वीकार कर चुके थे।

मुख्य कोशल में सेतव्या[3] तथा उक्कट्ठ[4] जैसे छोटे नगरों के अतिरिक्त अयोध्या, साकेत तथा श्रावस्ती या सावत्थी, तीन प्रमुख नगर थे। अयोध्या (अवध) नगर सरयू नदी के तट पर बसा था। आजकल यह फ़ैजाबाद ज़िले में पड़ता है। प्रायः अयोध्या को ही साकेत कहा जाता है, किन्तु प्रोफ़ेसर रीज़ डेविड्स के अनुसार, बौद्ध-काल में दोनों नगरों का अलग-अलग अस्तित्व था। सम्भवतः अयोध्या और साकेत वैसे ही रहे होंगे जैसे कि आजकल लन्दन और वेस्टमिन्स्टर हैं।[5] सावत्थी या श्रावस्ती अचिरावती (या राप्ती) नदी के दक्षिणी किनारे पर बसा था तथा इसे साहेट-माहेट भी कहते थे। मौजूदा उत्तर प्रदेश के गोंडा तथा बहराइच जिलों की सीमा पर आज भी प्राचीन श्रावस्ती का उजड़ा हुआ रूप विद्यमान है।[6]

रामायण तथा पुराणों के अनुसार, कोशल के राजाओं के पूर्वपुरुष इक्ष्वाकु थे। इक्ष्वाकु के ही वंशज कुसिनारों[7], मिथिला[8] तथा वैशाली[9] (या विशाला) में राज्य करते थे। ऋग्वेद[10] में भी एक जगह इक्ष्वाकु नामक एक राजा का उल्लेख मिलता है। अथर्ववेद[11] में भी इनका या इनके वंश के किसी अन्य राजा का प्राचीन 'योद्धा' के रूप में उल्लेख आया है। पुराणों में दी गई इक्ष्वाकु-वंश की सूची में इक्ष्वाकु से लेकर बिम्बिसार के समकालीन राजा प्रसेनजित तक का नाम मिलता है। इनमें से अनेक राजाओं के नाम तो वैदिक साहित्य में भी मिलते हैं। उदाहरण के लिए, गोपथ ब्राह्मण[12] में मन्धातृ युवनाश्व[13] का नाम आया है। पुरुकुत्स[14] का नाम ऋग्वेद[15]

---

[1] दीघ निकाय, III (*PTS*), 83; *Dialogues*, III, 80.

[2] No. 465; *Fousboll*, IV. 145.

[3] पायासि सुत्तन्त।

[4] अम्बट्ठ सुत्त।

[5] *Buddhist India*, p. 39.

[6] Cunningham, *Ancient Geography of India*, 1924, p. 469; Smith, *EHI*, 3rd., p. 159. श्रावस्ती के राजमहल से अचिरावती की उपेक्षा हो जाती है (*DPPN*, II, 170 n)।

[7] कुश जातक, No. 531, महावत्सु (III. 1) में इक्ष्वाकु को बनारस का कहा गया है—**अभूषि राजा इक्ष्वाकु वाराणस्याम् महाबलो।**

[8] वायु पुराण, p. 89, 3.

[9] रामायण, I. 4. 11-12.

[10] X, 60, 4.

[11] XIV, 39, 9.

[12] I. 2. 10. *et. seq.*

[13] वायु, 88,67.

[14] वायु, 88, 72.

[15] I, 63, 7; 112. 7. 14; 174. 2, VI. 20. 10.

में है। शतपथ ब्राह्मण[१] में इसी राजा को ऐक्ष्वाक[२] त्रसदस्यु[३] कहा गया है, यद्यपि ऋग्वेद[४] में भी इस नाम का उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद[५] में ही त्र्यरुण[६] नाम भी आया है। पंचविंश ब्राह्मण[७] में इस राजा को ऐक्ष्वाक त्रिशंकु[८] कहा गया है तथा तैत्तरीय उपनिषद् में भी यह नाम आया है।[९]

ऐतरेय ब्राह्मण[१०] में राजा हरिश्चन्द्र[११] को भी ऐक्ष्वाक राजा कहा गया है तथा इस ग्रन्थ में उनके पुत्र रोहित[१२] (रोहिताश्व) का भी नाम आया है।[१३] जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण में भगीरथ[१४] का नाम 'भगेरथ'[१५] के रूप में आया है तथा उनको 'एकराट्' अर्थात् 'एक मात्र राजा' कहा गया है। ऋग्वेद[१६] में भगीरथ को 'भजेरथ' लिखा गया है। इसी वेद[१७] में राजा अम्बरीष[१८] का भी नाम आया है। 'ऋतुपर्ण'[१९] नाम बौद्धायन श्रौत सूत्र[२०] में आया है। दशरथ और राम[२१] के भी नाम ऋग्वेद[२२] में आये हैं। उपर्युक्त नामों में से कुछ वैदिक साहित्य में नहीं मिलते और न उनके इक्ष्वाकु-वंश या कोशल से सम्बद्ध होने की ही चर्चा कहीं मिलती है।

प्रश्न उपनिषद् में हिरण्यनाभ कौशल्य[२३] को राजपुत्र कहा गया है।[२४] शतपथ

---

१. XIII. 5, 4, 5.
२. *Cf.* reference, ऋग्वेद, IV, 42. 8.
३. वायु, 88. 74.
४. IV. 38. 1; VII, 19. 3, etc.
५. V. 27.
६. वायु, 88, 77.
७. XIII. 3.12.
८. वायु, 88. 109.
९. 1. 10. 1.
१०. VII, 13. 16.
११. वायु, 88, 117.
१२. वायु, 88. 119.
१३. VII, 14.
१४. वायु, 88. 167.
१५. IV, 6. 1 ff.
१६. X, 60. 2.
१७. I. 100. 17.
१८. वायु, 88. 171.
१९. वायु, 88. 173.
२०. XVIII, 12 (Vol. II, p. 357)
२१. वायु, 88. 183-84.
२२. I. 126. 4; X. 93. 14.
२३. वायु, 88. 207.
२४. VI. 1. जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण (II, 6.) (*Cf.* शांखायन श्रौत सूत्र XVI, 9. 13) में उसे या उसके लड़के को (शतपथ ब्राह्मण, XII. 5. 4. 4.) महाराजा

ब्राह्मण,[1] शांखायन श्रौत सूत्र[2] और साथ ही साथ जैमिनीय उपनिषद्[3] के एक पद्य में उसे निश्चित रूप से कौशलीय विदेह राजा पर-आटणार (आह्लार) से सम्बद्ध बताया गया है। शतपथ ब्राह्मण की गाथा में पर-आटणार को "हैरण्यनाभ" के पैतृक उपनाम से सम्बोधित किया गया है, जबकि श्रौत सूत्र में पर और हिरण्यनाभ को एक ही व्यक्ति माना गया है, परन्तु यह कहना कठिन है कि मूल गाथा में पर-आटणार को हिरण्यनाभ कहा गया है अथवा हैरण्यनाभ के पैतृक उपनाम से पुकारा गया है। शतपथ ब्राह्मण अन्य दो ग्रन्थों से पुराना है। अतः सम्भव है कि श्रौत सूत्र की अपेक्षा उसका मूल रूप अधिक विश्वसनीय हो। प्रश्न उपनिषद् के अनुसार, हिरण्यनाभ (पिता) सुकेशा भारद्वाज[4] के समकालीन थे जो स्वयं कौशल्य आश्वलायन[5] के समकालीन थे। यदि यह सत्य है (जैसा कि सम्भव भी है) कि कोशल के आश्वलायन मज्झिम निकाय[6] में गौतम के समकालीन के रूप में उल्लिखित सावत्थी के आस्सलायन के समकालीन थे तो उनका काल छठी शताब्दी ईसापूर्व मानना होगा। इस निष्कर्ष के फलस्वरूप हिरण्यनाभ (पिता) तथा हैरण्यनाभ (पुत्र) दोनों ही निश्चित रूप में छठी शताब्दी ईसापूर्व में हुए होंगे।

पौराणिक सूची के कुछ राजाओं, जैसे शाक्य, शुद्धोदन, सिद्धार्थ, राहुल तथा प्रसेनजित का नाम बौद्ध साहित्य में भी आया है। यह नहीं पता कि छठी शताब्दी ईसापूर्व में हुए हिरण्यनाभ (तथा हैरण्यनाभ) का प्रसेनजित से क्या सम्बन्ध था? पौराणिक इतिहासकारों ने हिरण्यनाभ को प्रसेनजित का पूर्वज कहा है, परन्तु पौराणिक वशसूची[7] में उसकी वास्तविक स्थिति के सम्बन्ध में वे निश्चयात्मक ढंग से कुछ भी नहीं कह सके। आगे चलकर प्रसेनजित को राहुल का पुत्र तथा सिद्धार्थ (बुद्ध) का पौत्र कहा गया है। किन्तु, यह एक बेतुकी बात है, क्योंकि प्रसेनजित बुद्ध का समकालीन था तथा इक्ष्वाकु-वंश की एक अन्य शाखा से सम्बद्ध था। तिब्बत के लोग प्रसेनजित को ब्रह्मदत्त का पुत्र मानते हैं।[8] अतः यह स्पष्ट है कि प्रसेनजित के पूर्वजों

कहा गया है। राजपुत्र उपाधि के साथ कोई अधिक महत्त्व नहीं जोड़ना चाहिए। महाभारत में बृहद्बल को कोशल का राजा कहा गया है। इसी ग्रन्थ में एक जगह इस राजा के बारे में—'**कोशलानामधिपतिम् राजपुत्रं बृहद्बलम्**' की उक्ति मिलती है।

[1] XIII 5. 4.4.

'अटनारस्य परः पुत्रोऽस्वम् मेध्यमबन्धयत्
हैरण्यनाभः कौशल्योविशः पूर्णा अमंहत (इति)।'

[2] XVI, 9.13.

[3] II. 6.

[4] VI. I.

[5] प्रश्न I.1.

[6] II147 *et. seq.*

[7] *AIHT*, 173.

[8] *Essay on Gunadhya*, p. 173.

तथा वंशसूची में हिरण्यनाभ की स्थिति के सम्बन्ध में कोई भी सर्वमान्य प्रथा सुरक्षित नहीं रखी जा सकी। हिरण्यनाभ अथवा उसके पुत्र ने अश्वमेध यज्ञ किया था और इस प्रकार वह प्रत्यक्ष रूप से एक महान् विजेता था। क्या हिरण्यनाभ को ही बौद्ध परम्परा में "महाकोशल" का नाम दिया गया है? यदि हिरण्यनाभ छठी शताब्दी ईसापूर्व में हुए थे तो हो सकता है, इन्हीं का नाम 'महाकोशल' रहा हो।

इतिहासकार पार्जिटर ने स्वीकार किया है कि अनेक पौराणिक अनुच्छेदों में हिरण्यनाभ को (और इसलिए उसके पुत्र को भी) महाभारत युद्ध[1] का पश्चातवर्ती राजा कहा गया है। प्राचीन राजाओं में सिर्फ हिरण्यनाभ ही एक ऐसे राजा थे जिन्हें वैदिक साहित्य में विदेह तथा कोशल दोनों कहा गया है। यह विवरण हिरण्यनाभ को ही राजा महाकोशल सिद्ध करते हैं, क्योंकि बौद्ध साहित्य में महाकोशल की पुत्री तथा अजातशत्रु की माता को ही कोशल देवी और साथ ही साथ वेदेही (वैदेही) कहा गया है।

पौराणिक सूचियों की उपादेयता के बारे में यहां एक बात कही जा सकती है। यद्यपि इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है कि इन सूचियों में अनेक राजाओं तथा राजकुमारों का सही उल्लेख मिलता है तो भी ये सूचियां कहीं-कहीं इतनी दोषपूर्ण हो गई हैं कि प्राचीन भारत के इतिहास के जिज्ञासुओं या विद्वानों को इनकी उपेक्षा कर देनी पड़ती है।

१. इक्ष्वाकु-वंश की विभिन्न शाखाओं के राजाओं, जैसे पुरुओं[2] के त्रसदस्यु, शफाल[3] के ऋतुपर्ण, कपिलवस्तु के शुद्धोदन तथा श्रावस्ती के प्रसेनजित को इस प्रकार एक-दूसरे में समेट दिया गया है कि ये सब एक ही वंश के शासक लगते हैं तथा ऐसा लगता है कि क्रम से एक के बाद दूसरे ने राज्य किया था।

२. इन सूचियों में समकालीन राजाओं को एक-दूसरे का उत्तराधिकारी और सहवर्ती राजाओं को वंशज के रूप में दिखाया गया है, जैसे श्रावस्ती के प्रसेनजित को सिद्धार्थ तथा राहुल का उत्तराधिकारी कहा गया है, जबकि प्रसेनजित सिद्धार्थ के समकालीन थे तथा इक्ष्वाकु-वंश की एक अन्य शाखा के थे।

३. कुछ राजाओं, जैसे हरिश्चन्द्र के पिता या पूर्वज राजा वेध, 'पर-आटणार' (यदि वह हिरण्यनाभ नहीं है तो) तथा महाकोशल आदि की चर्चा ही नहीं की गई है।

४. वंश-सूची में वंश-नाम 'शाक्य' व्यक्ति का नाम माना गया है तथा सिद्धार्थ (बुद्ध) को शासक कहा गया है, जबकि उन्होंने राज्य किया ही नहीं।

यह पता लगा सकना आसान नहीं है कि पौराणिक सूचियों में आये राजाओं में से कितने कोशल के वास्तविक राजा थे। रामायण[4] में अयोध्या के राजाओं

---

[1] *AIHT*, 173.

[2] ऋग्वेद, IV, 38. 1; VII. 19. 3.

[3] बौधायन श्रौत सूत्र, XVIII, 12 (Vol. II, p. 357), आपस्तम्बीय श्रौत सूत्र (XXI, 20.3), फिर भी ऋतुपर्ण को ऐक्ष्वाक नहीं कहा गया है। किन्तु यह नाम बहुत कम मिलता है, इसलिए हो सकता है इस नाम से महाभारत या पुराणों के समय के किसी राजा का भी अर्थ निकाला जाय।

[4] I. 70.

की जो सूची दी गई है, उसमें पुरुकुत्स, त्रसदस्यु, हरिश्चन्द्र, रोहित, ऋतुपर्ण तथा कई अन्य राजाओं का नाम तक इन सूचियों में नहीं मिलता। वैदिक साहित्य से हमें पता चलता है कि उपर्युक्त राजाओं में से कई ने कोशल के बाहर राज्य किया था। वैदिक साहित्य तथा बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार, पौराणिक सूची के केवल तीन राजा हिरण्यनाभ[1], प्रसेनजित तथा शुद्धोदन ही ऐसे थे जिन्होंने कोशल पर या कोशल के कुछ बाह्य भाग पर राज्य किया था।

बौद्ध-ग्रन्थों में कोशल के कई अन्य राजाओं के भी नाम मिलते हैं, किन्तु पुराणों तथा रामायण में उनका पता नहीं चलता। इन राजाओं में से कुछ की राजधानी अयोध्या, कुछ की साकेत तथा शेष की श्रावस्ती थी। घट जातक[2] के अनुसार, अयोध्या के राजाओं में एक नाम कालसेन भी था। नन्दियमिग जातक[3] के अनुसार, कोशल का एक राजा साकेत में रहता था। वंक, महाकोशल तथा कई अन्य राजाओं[4] की राजधानी सावत्थी या श्रावस्ती थी। लगता है कि पहले अयोध्या कोशल की राजधानी थी, किन्तु बाद में साकेत को वह महत्त्व प्राप्त हुआ। श्रावस्ती सबसे बाद में कोशल की राजधानी बनी। बौद्ध-काल[5] तक अयोध्या नगर एक छोटा-सा क़स्बा मात्र रह गया था, किन्तु साकेत तथा श्रावस्ती की गणना भारत के छः बड़े नगरों में की जाती रही।[6]

प्राचीन कोशल राज्य के बारे में जो भी विवरण प्राप्त होता है, वह बड़ा ही असमञ्जसपूर्ण है। यदि पुराणों पर विश्वास किया जाय तो राजा परीक्षित के वंशज अधिसीम-कृष्ण के समय में दिवाकर नाम के राजा ने अयोध्या पर अधिकार कर लिया था। किन्तु जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, जिन राजाओं को उक्त राजा कहा गया है, वे उत्तरोत्तर उसी भूभाग पर शासन करने वाले राजाओं की एक क्रमबद्ध शृंखला के राजा नहीं थे। अतः केवल परम्परागत वंशसूचियों के आधार पर ही दिवाकर तथा बुद्ध के काल की दूरी निकालने का प्रयास व्यर्थ ही होगा। यह भी ठीक ज्ञात नहीं कि प्राचीन राजधानियों के स्थान पर श्रावस्ती को कब राजधानी बनाया गया था, किन्तु यह घटना प्रसेनजित के राज्यारोहण से पूर्व हुई

---

[1] शतपथ ब्राह्मण (XIII, 5.4, 4-5) में हैरण्यनाभ को कौशल्यराज कहा गया है, किन्तु ऐक्ष्वाक नहीं माना गया है। इसके विपरीत, पुरुकुत्स दौर्गह को ऐक्ष्वाक-राजा माना गया है, किन्तु कौशल्यराज नहीं माना गया, जैसे कि कौशल्यराज और ऐक्ष्वाक में अन्तर माना गया है। इसलिए दोनों प्रकार के राजाओं को एक ही वंश तथा एक ही देश का शासक नहीं कहा जा सकता। वस्तुतः त्रसदस्यु पूरुष देश का राजा था। वार्ष्ण नामक राजा ऐक्ष्वाकीय वृष्णि से संबन्धित था। जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण (1.5.4) में इसका उल्लेख भी है।

[2] No. 454.

[3] No. 385.

[4] *E. g.* the Kosalraja *of J.* 75; अत्त (336); सब्बमित्त (512); और प्रसेनजित।

[5] *Buddhist India*, p. 34.

[6] महापरिनिब्बान सुत्त, *SBE*, XI, p. 99.

होगी। प्रसेनजित बुद्ध, बिम्बिसार तथा अधिसीम-कृष्ण के वंशज माने जाने वाले कौशाम्बी-नरेश उदयन के समकालीन थे।

महावग्ग[1] से हमें पता चलता है कि काशी के प्रारम्भिक ब्रह्मदत्त नामक राजाओं के समय में कोशल एक निर्धन, छोटा तथा सीमित साधनों वाला राज्य था (**दीघीति नाम कोशलराजा अहोसि दलिद्दो अप्पधनो अप्पभोगो अप्पबलो अप्पवाहनो अप्पविजितो अपरिपुण्ण कोसं कोट्ठागारो**)।

परन्तु, छठी तथा पाँचवीं शताब्दी ईसापूर्व में कोशल एक शक्तिशाली राज्य था जिसने गंगा की ऊपरी घाटी पर अपना आधिपत्य स्थापित करने के लिये सर्वप्रथम काशी से और बाद में मगध से लोहा लिया था। इन युद्धों के इतिहास पर अगले अध्यायों में चर्चा की जायेगी। जहाँ तक मगध से शत्रुता का प्रश्न है, इसका अन्त तभी हो सका जब कोशल को मगध राज्य में मिला लिया गया।

3 **अंगराज्य**—अंगराज्य मगध से पूर्व स्थित था। इसके पश्चिम में राजमहल की पहाड़ियों पर बसे छोटे-छोटे शासकों के राज्य थे। (मोदागिरि एवम् मुंगेर सहित) मगध तथा अंगराज्य के बीच चम्पा (आधुनिक चांदन[2]) नदी सीमा का कार्य करती थी। किसी समय मगध भी अंगराज्य का एक भाग था तथा राज्य की सीमा समुद्र की लहरों को छूती थी। विधुर पंडित जातक[3] में राजगृह को अंगराज्य का नगर कहा गया है। महाभारत[4] के शान्तिपर्व में एक अंगराजा का उल्लेख है जिसने विष्णुपद पर्वत (सम्भवतः गया में) पर यज्ञ किया था। सभापर्व[5] में कहा गया है कि अंग और बंग दो भूभागों को मिलाकर एक राज्य स्थापित हुआ था। कथा-सरित्सागर[6] के अनुसार, अंगराज्य का विटंकपुर नगर समुद्र-तट पर बसा था। ऐतरेय ब्राह्मण[7] में अंगराज्य के वैभव-काल का स्पष्ट चित्रण मिलता है। इस वर्णन में **'समन्तम् सर्वतः पृथिवीं जयन्'** के रूप में अंग-नरेश की दिग्विजय का उल्लेख भी मिलता है जिस अवसर पर वह राजा उच्च घरानों की रूपवती कन्याओं को साथ लाया था।

---

[1] *SBE*, XVII, p. 294.

[2] इतिहासकार पार्जिटर (*JASB*, 1897, 95) के अनुसार, प्राचीन अंगराज्य में आजकल के भागलपुर और मुंगेर ज़िले शामिल थे। उत्तर की ओर यह कौशिकी या कोशी नदी तक फैला हुआ था। पूर्निया ज़िले का पश्चिमी भाग भी अंगराज्य में भी आ जाता था। काश्यप विभाण्डक की कुटी नदी के तट पर तपोवन में थी। इनके लड़के ऋष्यश्रृंग को राजमहल की सुन्दरियों ने भुलावा देकर नाव से राजधानी उठा ले गई थीं। महाभारत (II, 30. 20-22) के अनुसार मोदागिरि, (मुंगेर) तथा कौशिकी-कच्छ में भी शासक थे जो अंग के शासक कर्ण से भिन्न थे। कर्ण का राज्य मगध तथा पर्वतवासिन् के राज्य के बीच था।

[3] No. 545.

[4] 29, 35, *JASB*, 1897, 94.

[5] 44. 9; *Cf*. VI. 18. 28, अंग और प्राच्य।

[6] 25. 35; 26. 115. 82. 3-16.

[7] ऐतरेय ब्राह्मण, VIII. 22.

अंग की सुप्रसिद्ध राजधानी चम्पा नगरी चम्पा[1] तथा गंगा[2] नदियों के संगम पर स्थित थी। कनिंघम के कथनानुसार, आजकल भी भागलपुर के समीप चम्पानगर तथा चम्पापुर नाम के दो गाँव हैं, जो सम्भवतः प्राचीन अंगराज्य की राजधानी चम्पा नगरी के ही ध्वंसावशेष कहे जा सकते हैं। महाभारत, पुराणों तथा हरिवंश के अनुसार, चम्पा का प्राचीन नाम मालिनी था।[3]

चम्पस्य तु पुरी चम्पा
या मालिन्य भवत् पुरा।

जातक कथाओं के अनुसार, चम्पा नगरी का नाम 'काल-चम्पा' भी था। महाजनक जातक[4] के अनुसार, चम्पा नगरी मिथिला से १८० मील दूर थी। इसी जातक में चम्पा नगरी के द्वारों, घण्टाघरों तथा दीवालों का वर्णन मिलता है। गौतम बुद्ध की मृत्यु के समय तक चम्पा भारत की ६ प्रमुख नगरियों में से एक थी। चम्पा के अलावा राजगृह, श्रावस्ती, साकेत, कौशाम्बी तथा वाराणसी, अन्य बड़े नगर थे।[5] चम्पा नगरी अपने धन-वैभव के साथ-साथ व्यापार-वाणिज्य के लिए भी प्रख्यात थी। यहाँ के व्यापारी अपने वाणिज्य-व्यवसाय के सिलसिले में सुवर्ण-भूमि[6] (गंगा के पार) की ओर भी जाते थे। दक्षिणी अन्नम तथा कोचीन-चीन की यात्रा करने वाले विस्थापित हिन्दुओं ने सम्भवतः इसी चम्पा नगरी के नाम पर अपनी बस्तियों का नामकरण किया था।[7] अंगराज्य के दूसरे प्रसिद्ध नगरों में अस्सपुर (अश्वपुर) तथा भद्दिय (भद्रिक)[8] विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

---

१. जातक, 506.

२ महाभारत, III, 84, 163; 307, 26 (**गंगायाः सूतविषयम् चम्पामनुययौ पुरीम्**); Watters, *Yuan Chwang*, II, 181; दशकुमारचरित, II, 2.

३. मत्स्य, 48. 97; वायु, 99. 105-106; हरिवंश, 31.49; महाभारत, XII. 5. 6-7; XIII 42. 16.

४. No 539.

५. महापरिनिब्बान सुत्त।

६. जातक, 539, Fausboll's Ed. VI, p. 34.

७. *Ind. Ant.*, VI. 229; Itsing, 58; Rhys Davids, *Buddhist India*, p. 35; Nundolal Dey, *Notes on Ancient Anga*, *JASB*, 1914; चम्पा में हिन्दुओं की बस्ती के लिए देखिए, Eliot, *Hinduism and Buddhism*, Vol. III, pp. 137 ff. and R. C. Majumdar, *Champa*; The oldest Sanskrit inscription (that of Vo-can) dates, according to some scholars, from about the third century A. D. इस शिलालेख में श्री-मार राजवंश के एक राजा का उल्लेख है।

८. मलालसेकर, *DPPN*, 16; धम्मपद टीका, Harvard Oriental Series, 29. 59. *Cf.* भद्दिय (भद्रिक या भद्रिका, जैन लेखक के अनुसार)। सम्भवतः यह स्थान भागलपुर से ८ मील दूर का भदरिया स्थान ही है (*JASB*, 1914, 337)।

अंगराज्य का सर्वप्रथम उल्लेख अथर्ववेद[१] में मिलता है। इस ग्रन्थ में गंधार, मुजावत एवं मगध निवासियों के सम्बन्ध में अंग प्रदेश की चर्चा की गई है। रामायण में इस जनपद की स्थापना के सम्बन्ध में एक अर्थहीन कथा आती है। इस कथा के अनुसार, भगवान शिव के अप्रसन्न हो उठने पर कामदेव मदन अथवा अनंग उनकी क्रोधाग्नि से बचने के लिए उनके आश्रम से भाग खड़े हुए और जिस क्षेत्र में उनका शरीर भस्म हुआ, उसी क्षेत्र को ही अंग कहा जाने लगा।[२] महाभारत तथा पुराणों के अनुसार, इस राज्य की स्थापना अंग नामक एक राजा[३] ने की थी। चूंकि ऐतरेय ब्राह्मण[४] में अंग राज्य के राजाओं की सूची में अंग-वैरोचन का नाम भी सम्मिलित है जिसका राज्याभिषेक आर्य-पद्धति से हुआ था, अतः महाभारत एवं पुराणों की उपर्युक्त कथा को प्राचीन माना जा सकता है। किन्तु वैरोचन के राज्याभिषेक की घटना कुछ आश्चर्यजनक भी है, क्योंकि एक ओर यदि बौद्धायन धर्मसूत्र में अंग जाति को मिश्रित जातियों में सम्मिलित किया गया है तो दूसरी ओर महाभारत में भी एक अंग राजा की चर्चा है जिसे कर्ण से भिन्न और हाथियों को नियन्त्रण में रखने में निपुण म्लेच्छ कहा गया है। मत्स्य पुराण में उक्त अंग राजा के पिता को 'दानवर्षभः', अर्थात् 'दानवों में प्रधान' कहा गया है।[५]

अंग के राजवंशीय इतिहास के सम्बन्ध में हमारा ज्ञान सीमित है। महागोविन्द सुत्तन्त में अंग के राजा 'धतरट्ठ'[६] की चर्चा की गई है। बौद्ध ग्रन्थों में 'गग्गरा' नाम की एक रानी का उल्लेख आया है जिसके नाम पर चम्पा नगर की एक झील का नाम 'गग्गरा' रखा गया था। पुराणों[७] में अंगराज्य के प्रारम्भिक शासकों की सूची मिलती है। इस सूची के एक राजा दधिवाहन का ज्ञान जैन लेखकों को भी था। पुराणों एवं हरिवंश[८] के अनुसार, वह राजा अंग का पुत्र एवं उत्तराधिकारी था। जैन

---

१. V. 22. 14.

२. *JASB*, 1914, p. 317; रामायण, I. 23. 14.

३. महाभारत, 1. 104, 53-54; मत्स्य पुराण, p. 43. 19.

४. VIII. 22; *Cf.* Pargiter, *JASB*, 1897, 97. अंगराज्य के दानों में अवचत्नुक नामक स्थान का उल्लेख आया है—

दशनागसहस्राणि दत्वात्रेयोऽवचत्नुके
श्रांतः पारिकुटान प्रैप्सद् दानेनांगस्य ब्राह्मण.।

'वैरोचन' शब्द से मत्स्य पुराण (p. 48, 53) का 'वैरोचनी' शब्द याद आता है।

५. बौद्धायन धर्म सूत्र, I. 1. 29: महाभारत VIII. 22. 18-19; मत्स्य पुराण, 48. 60.; वायु पुराण (62, 107-23) में अंगों और निषादों का सम्बन्ध। पुराण, में इस राजवंश को 'अत्रिदश-समुत्पन्न' कहा गया है। ऐतरेय ब्राह्मण में एक आत्रेय को राजा अङ्ग का पुरोहित कहा गया है। अंगवंश की उत्पत्ति के लिये देखिये— S. Levi, *Pre-Aryen et Pre-Dravidien dans l'Inde*, J. A, Juillet-septembre, 1923.

६. *Dialogues of the Buddha*, II. 270.

७. मत्स्य, 48. 91. 108; वायु, 99. 100-112.

८. 32. 43.

ग्रन्थों में उसका काल छठी शताब्दी ईसापूर्व निर्धारित किया गया है। महावीर के 'कैवल्य'[१] प्राप्त करते ही उसकी पुत्री चन्दना अथवा चन्द्रबाला जैन धर्म ग्रहण करने वाली प्रथम स्त्री थी। कहा जाता है कि इलाहाबाद के समीप कौशाम्बी के वत्स राजा शतानीक ने चम्पा पर आक्रमण किया था और उस आक्रमण के फलस्वरूप उत्पन्न अव्यवस्था के समय चन्दना किसी डाकू के हाथ पड़ गई, किन्तु उसने उस समय भी जैन धर्म के सिद्धान्तों का पूर्ण पालन किया।

अंग तथा वत्स देशों के बीच मगध देश था। मगधवासी अपेक्षाकृत कमजोर पड़ते थे। इस राज्य तथा इसके सशक्त पूर्वीय पड़ोसी के बीच[२] सदैव संघर्ष चलता रहता था। विधुर पंडित जातक[३] में मगध की राजधानी राजगृह को अंगराज्य का नगर कहा गया है जबकि महाभारत में अंग राजा द्वारा किये गये यज्ञ का स्थान 'गया' कहा गया है। इन तथ्यों से लगता है कि अंग के शासक मगध को अपने राज्य में मिलाने में सफल रहे। फलस्वरूप इस राज्य की सीमा वत्स राज्य तक हो गई थी। सम्भवतः इसी खतरे के फलस्वरूप वत्स के शासक ने चम्पा नगरी पर आक्रमण किया था। उभर रहे मगध राज्य से सशंक होकर अंग के राजा कौशाम्बी के राजा से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध रखना चाहते थे। श्री हर्ष के कथनानुसार, अंग के राजा दृढ़वर्मन ने अपनी कन्या का विवाह शतानीक[४] के पुत्र उदयन से करके अपना राज्य पुनः प्राप्त करने में उनकी सहायता ली थी।

अंगराज्य की सफलता या उसका वैभव बहुत दिनों तक नहीं रह सका। कहा जाता है कि मगध के युवराज बिम्बिसार श्रेणिक ने छठी शताब्दी ईसापूर्व के मध्य में अंगराज्य के अन्तिम राजा ब्रह्मदत्त को मार डाला। बिम्बिसार श्रेणिक अंग की राजधानी चम्पा पर अधिकार करके वहाँ अपने पिता के प्रतिनिधि के रूप में रहने लगा[५] और इसी समय से अंगराज्य विस्तारशील मगध राज्य का एक अभिन्न अंग बन गया।

4· **मगध**—प्राचीन मगध राज्य मोटे तौर से आजकल के दक्षिणी बिहार के पटना और गया जिलों तक था। मगध राज्य के उत्तर में गंगा और पश्चिम में सोन नदी बहती थी। दक्षिण में विन्ध्याचल की पहाड़ियाँ थीं तथा पूर्व में चम्पा नदी थी जो अंगराज्य की राजधानी चम्पा के समीप गंगा में मिलती थी।[६] मगध की राजधानी गिरिव्रज

---

[१] *JASB*, 1914, pp. 320-21. चन्दनबाला के लिए *Indian Culture*, II, pp. 682 ff. भी देखिए।

[२] चम्पेय्य जातक।

[३] Cowell, VI, 133.

[४] प्रियदर्शिका, Act. IV

[५] Hardy, *A Manual of Buddhism*, p. 163n (account based on the Tibetan *Dulva*), *JASB*, 1914, 321.

[६] महाभारत, II. 20. 29; महापरिनिब्बान सुत्तन्त (*Dialogues* II. 94) और *DPPN*, I. 331 से पता चलता है कि वृजि देश की सीमा गंगा के उत्तरी तट उक्काबेला या उक्कचेला से आरम्भ होती है। यह स्थान वृजि देश में ही था। चम्पेय्य जातक (506); Fleet, *CII*, 227; *DPPN*, 403. महाभारत-काल में मगध की

(या राजगृह) थी जो गया की समीपवर्त्ती पहाड़ियों पर बसी थी।[१] महावग्ग[२] में इस नगर को 'गिरिब्बज' नगर कहा गया है ताकि वह केकय राज्य के गिरिव्रज नगर से भिन्न माना जाय। महाभारत में इस नगर को केवल गिरिव्रज ही नहीं वरन् राजगृह[३], बार्हद्रथपुर[४] तथा मागधपुर[५] भी कहा गया है। यह नगर पाँच पहाड़ियों वैहार, ग्रैण्ड राक (विपुलः शैलो), वराह, वृषभ, ऋषिगिरि तथा चैत्यक[६] (रक्षन्तीवाभिसंहत्य संहतंगा गिरिव्रजम्) से घिरा हुआ था। यही कारण है कि किसी भी ओर से नगर पर आक्रमण नहीं हो सकता था। इसकी स्थिति के सम्बन्ध में महाभारत में कहा गया है—पुरं दुराधर्षम् समन्ततः। रामायण में वसुमती[७] नाम से इस नगर का उल्लेख आया है। ह्वेनसांग ने अपने लेखों में इस नगर को कुशाग्रपुर[८] कहा है। बौद्ध-ग्रन्थों में इस नगर का सातवाँ नाम बिम्बिसारपुरी[९] भी आया है।

ऋग्वेद[१०] में कीकट नाम के भूभाग पर प्रभगन्द नाम के एक सामन्त के शासन का उल्लेख मिलता है। यास्क[११] के अनुसार, कीकट भूभाग अनार्य प्रदेश था। बाद के ग्रन्थों में 'कीकट' शब्द को मगध का ही पर्याय कहा गया है।[१२]

यास्क की भाँति बृहद्धर्म पुराण के लेखक ने भी कीकट प्रदेश को अपवित्र देश कहा है। फिर भी उन्होंने इस प्रदेश के कुछ पवित्र स्थलों की ओर संकेत किया है—

सीमा चम्पा नदी से आगे नहीं गई रही होगी, क्योंकि मोदागिरि (मुंगेर) दूसरे राज्य में पड़ता था।

१. मोटे तौर से *JASB*, 1872, 299. पंचन नदी के तट पर बसे गिर्येक को भी गिरिव्रज माना जाता रहा है। यह गया से ३६ मील उत्तर-पूर्व में तथा राजगिर से ६ मील पूर्व में है। (Pargiter in *JASB*, 1897. 86)।

२. *SBE*, XIII. 150,

३. महाभारत, I. 113.27; 204. 17; II. 21. 34; III. 84. 104.

४. II. 24.44.

५. **गोरथम् गिरिमासाद्य ददृशुर मागधम् पुरम्** —II, 20. 30; 21. 13.

६. पालि भाषा (*DPPN*, II, 721) में पांडव, गिज्झकूट, वेभार, इसीगिलि तथा वेपुल्ल (या वंकक) के नाम मिलते हैं। पालि-सामग्री से लगता है कि महाभारत में आया 'विपुल' शब्द नाम है, उपाधि नहीं। डॉक्टर जे० वेंगर के अनुसार, 'चैत्यकपंचकाः' (पाँच चैत्यक) शब्द 'चैत्यकपंचमा' के लिए आया है। विशेष विवरण के लिए देखिए, *IHQ*, 1939, 163-64 (Keith)।

७. I. 32.8.

८. P. 113. Apparently named after an early Magadhan prince (वायु 99. 224; *AIHT*, 149)।

९. Law, बुद्धघोष, 87 n.

१०. III. 53.14.

११. निरुक्त, VI. 32.

१२. **कीकटेषु गया पुण्या पुण्यम् राजगृहम् वनम्**
च्यावनस्याश्रमम् पुण्यम् नदी पुण्या पुनःपुना।

कीकटे नाम देशोऽस्ति काक कर्णाख्यको नृपः
प्रजानां हितकृन्नित्यं ब्रह्म द्वेषकरस्तथा
तत्र देशे गयानाम् पुण्य देशोऽस्ति विश्रुतः
नदी च कर्णदा नाम् पित्रोणां स्वर्गदायिनी[१]
कीकटे च मृतोऽप्येष पापभूमौ न संशयः ।[२]

उपर्युक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि कीकट प्रदेश में गया ज़िला भी सम्मिलित था, परन्तु इस प्रदेश के अधिकांश भाग को पापभूमि कहा जाता था। प्रथम पंक्ति में आया 'काक-कर्ण' शब्द शैशु नाग-वंश के काक-वर्ण के लिए ही प्रयुक्त हुआ होगा।

'मगध' शब्द का उल्लेख सर्वप्रथम अथर्ववेद[३] में आया है। मगध की गाथाओं की प्राचीनता के सम्बन्ध में कहा जाता है कि ये उतनी ही पुरानी हैं जितना कि यजुर्वेद।[४] वैदिक साहित्य में मगधवासियों की बड़ी उपेक्षा की गई है। अथर्व संहिता[५] के व्रात्य भाग में ब्राह्मण-सीमा के बाहर रहने वाले व्रात्य (भारतीय) को पुंश्चली (वेश्या) व मगध से सम्बन्धित कहा गया है। "पूर्वी प्रदेश (प्राच्यां दिशि) में वेश्या होना ही वहाँ के निवासियों का धर्म है और मगध उनका मित्र।"[६] श्रौत सूत्र में मगध में रहने वाले ब्राह्मणों अथवा 'ब्रह्मबन्धु मागधदेशीय'[७] को आर्य ब्राह्मण समुदाय में प्रवेश मिलने पर व्रात्य कहा गया है। इस प्रकार मगध के ब्राह्मणों को ब्रह्मबन्धु[८] कह कर उनकी अवमानना की गई है। इसके विपरीत, शांखायन आरण्यक में मगध-वासी ब्राह्मण का उल्लेख सम्मान के साथ किया गया है। इतिहासकार ओल्डेनबर्ग[९] के अनुसार, वेदों में मगध के ब्राह्मणों को इसलिये निम्न कोटि का कहा गया है कि उनके संस्कार ब्राह्मण-विधियों के अनुसार नहीं हुए थे। पार्जिटर[१०] का मत है कि मगध

Cf. वायु, 108. 73; 105. 23; भागवत पुराण, 1, 3. 24—**बुद्धो नम्नांजन-सुतः कीकटेषु भविष्यतिः 'कीकटा मगधाह्वयाः'**; कीकट के सम्बन्ध में *EP. Ind.*, II. 222 भी देखिए जहाँ इस नाम का एक राजकुमार मौर्यवंश में कहा गया है। 'कीकटेयक' (*Monuments of Sanchi*, I. 302) भी देखिए।

[१] मध्य खण्डम्, XXVI. 22, 22.

[२] XXVI. 47; *Cf.* वायु पुराण, p. 78. 22. पाद्म पातालखण्ड, XI. 45.

[३] V. 22. 14.

[४] वाजसनेयी संहिता, XXX 5; *Vedic Index*, II. 116. मागधों और मगध के सम्बन्ध के लिए वायु पुराण, 62. 147 भी देखिए।

[५] XV. ii, 5—**श्रद्धा पुंश्चली मित्रो मागधो**....etc; Griffith, II, 186.

[६] *Cf.* Weber, *History of Indian Literature*, p. 112.

[७] *Vedic Index*, II. 116.

[८] '**राजानः क्षत्रबन्धवः**' शब्द पुराणों में मागधों के लिए आया है (Pargiter, *Dynasties of the Kali Age*, p. 22)।

[९] *Buddha*, 400n.

[१०] *JASB*, 1897, 111; *JRAS*, 1908, pp. 851-53; *Bodh. Dh. Sutra*, I. i, 29. अंगों और मागधों को 'संकीर्ण-योनयः' (of mixed origin) कहा गया है।

में आर्यों का सम्पर्क पूरब से समुद्र-मार्ग से आये आक्रमणकारियों से हुआ और वे उनके साथ बिल्कुल घुल-मिल गये। यही कारण था कि उन्हें निम्न कोटि का समझा जाता था।

वैदिक साहित्य में प्रमगन्द के अतिरिक्त मगध के किसी भी अन्य राजा का उल्लेख नहीं मिलता। महाभारत[1] तथा पुराणों के अनुसार, मगध के आदि वंश की स्थापना बृहद्रथ ने की थी। बृहद्रथ जरासन्ध का पिता तथा वसु चैद्य-उपरिचर का पुत्र था। रामायण[2] में वसु को ही गिरिव्रज अथवा वसुमती का संस्थापक माना गया है। ऋग्वेद[3] में बृहद्रथ का दो बार उल्लेख आया है, परन्तु इस ग्रन्थ में कहीं भी ऐसी चर्चा नहीं है जिसके आधार पर बृहद्रथ को जरासन्ध का पिता माना जा सके। पुराणों में जरासन्ध के पुत्र सहदेव से लेकर रिपुजन्य तक "बृहद्रथ राजाओं" की सूची दी है और सहदेव से सातवीं पीढ़ी के राजा सेनाजित को परीक्षित-वंश के अधिसीमकृष्ण एवं इक्ष्वाकु-वंश के दिवाकर का समकालीन माना है, परन्तु किसी स्वतन्त्र पुष्टिकरण के अभाव में पौराणिक तैथिकी-क्रम को तथा उत्तरोत्तर शासकों की सूची को प्रामाणिक स्वीकार करना निरापद होगा।[4] कहते हैं कि जिस समय पुलिक (या पुणिक) ने अपने पुत्र प्रद्योत को अवन्ती[5] (उज्जैन राज्य) के सिंहासन पर बिठाया था, बृहद्रथ-वंश तथा मध्य भारत के कुछ अन्य शासक समाप्त हो चुके थे। प्रद्योत गौतम बुद्ध के समकालीन थे। पुराणों में कहा गया है—**'बृहद्रथेष्वति-तेषु वीतित्रेषु अवन्तिषु।'** इससे इस बात का स्पष्ट संकेत मिलता है कि छठी शताब्दी ईसापूर्व के अन्त तक बृहद्रथ-वंश का अन्त हो चुका था।

---

[1] I. 63.30. [2] I. 32, 7. [3] I. 36. 18; X. 49.6.

[4] *Cf.* सुप्र, pp. 80 f, 104. में विदेह तथा कोशल राजाओं की चर्चा भी आती है। भावी बृहद्रथ की संख्या १६, २२ या ३२ दी गई है और उनका शासन-काल ७२३ या १००० वर्ष दिया गया है (*DKA*, 17.68)। अन्तिम राजा का नाम रिपुञ्जय या अरिञ्जय था जिससे पालि भाषा के अरिन्दम की याद आती है (*DPPN*, II. 402)।

[5] *Dynasties of Kali Age*, p. 18 : *Cf. IHQ*, 1930, p. 683. कथा-सरित्सागर तथा पुराणों के रूपान्तरित या अशुद्ध अनुच्छेदों की इस बात पर विश्वास नहीं किया जा सकता (*IHQ*, 1930, pp. 679-691) कि मगध के प्रद्योत और अवन्ती के महासेन अलग-अलग थे, क्योंकि ब्राह्मण-ग्रन्थों तथा बौद्ध-लेखकों ने महासेन को भी प्रद्योत ही कहा है। पुराणों में 'अवन्तीषु' शब्द आया है (*DKA*, 18)। इसमें पुलिक द्वारा वंश-सम्बन्धी क्रान्ति की भी चर्चा है। पुराणों के प्रद्योत तथा अवन्ती के महासेन की समानता तथा प्रद्योतों के साथ 'प्रनत सामन्त' का विशेषण तथा 'नयवर्जित' शब्द के उपयोग से चण्ड प्रद्योत महासेन (अवन्ती) के बारे में संदेह की गुंजाइश नहीं रहती। बौद्ध ग्रन्थों में भी इसका उल्लेख है। इन सबसे सिद्ध है कि पुराणों के प्रद्योत और अवन्ती के प्रद्योत में कोई अन्तर नहीं था।

जैन-ग्रन्थों में राजगृह के दो शासकों—समुद्रविजय तथा उसके पुत्र गया[१] का उल्लेख मिलता है। कहते हैं राजा गया जैन धर्म में वर्णित पूर्णत्व को प्राप्त कर चुका था, किन्तु प्रामाणिक पुष्टिकरण के अभाव में इस कथन पर भरोसा नहीं किया जा सकता।

पुराणों में मगध के एक दूसरे राजवंश की भी चर्चा आई है जिसे 'शैशुनाग' कहा गया है। इस वंश की स्थापना शिशुनाग ने की थी। गौतम बुद्ध के समकालीन बिम्बिसार इसी वंश के थे। अश्वघोष[२] ने अपने बुद्धचरित[३] में बिम्बिसार को शैशुनाग-वंश का नहीं, वरन् हर्यक-कुल का कहा है। महावंश में 'शैशुनाग' वंश के संस्थापक शिशुनाग को 'सुसुनाग' कहा गया है। स्वयं पुराणों में कहा गया है कि प्रद्योत-कालीन वैभव शिशुनाग को प्राप्त होगा। कुछ सूत्रों के अनुसार, प्रद्योत भी बिम्बिसार के समकालीन कहे जाते हैं—

अष्ट त्रिंशच्छतम् भाव्याः
प्रद्योताः पंच ते सुताः
हत्वा तेषां यशः कृत्स्नं
शिशुनागो भविष्यति।[४]

यदि उपर्युक्त कथन सत्य है तो शिशुनाग प्रद्योत-प्रथम के बाद हुए थे। पालि-ग्रन्थों में प्रद्योत-प्रथम का नाम चण्ड प्रद्योत महासेन लिखा गया है तथा संस्कृत भाषा के कवियों एवं नाटककारों[५] ने इन्हें बिम्बिसार तथा उनके पुत्र का समकालीन कहा है। इससे पता चलता है कि शिशुनाग उक्त राजाओं के बाद हुए थे। किन्तु हम देख चुके हैं कि पुराणों में शिशुनाग को बिम्बिसार का पूर्वज माना गया है तथा उन्हें बिम्बिसार के वंश का संस्थापक कहा गया है। परन्तु इस विवरण के समर्थन में स्वतन्त्र प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं। वाराणसी[६] तथा वैशाली के शिशुनाग के राज्य[७] में मिलाये जाने के उल्लेख से सिद्ध होता है कि शिशुनाग

---

[१] *SBE*, XLV. 86. महाभारत (VII. 64) में गया नाम के एक राजा का उल्लेख आया है किन्तु उसे अमूर्तरयस का पुत्र भी कहा गया है।

[२] अश्वघोष कनिष्क के समकालीन था (C. 100 A. D.)। (Winternitz, *Ind. Lit.*, II. 257)। इसके विपरीत, पुराणों में गंगा की घाटी में भी गुप्त राज्य के होने की बात कही गई है।

[३] XI. 2; रायचौधरी, *IHQ*, I (1925), p. 87.

[४] वायु पुराण, 99; 314.

[५] *Indian Culture*, VI. 411.

[६] हम यदि और थोड़ा आगे बढ़ें तो पुराणों के कथनों को स्वयं में ही विरोधी पायेंगे। इस प्रकार (क) प्रद्योत का तब राज्याभिषेक हुआ, जबकि वीतिहोत्र का अन्त हो चुका था। (ख) शिशुनाग ने प्रद्योतों का मान-मर्दन करके उनसे राज्य छीन लिया था। (ग) इन शिशुनाग राजाओं के समय में ही २० वीतिहोत्र राजा भी हुए थे—**एते सर्वे भविष्यन्ति, एककालं महीक्षितः** (*DKA*, 24)।

[७] *Dynasties of the Kali Age*, 21; *SBE*, XI, p. xvi.

बिम्बिसार तथा अजातशत्रु के बाद हुए थे। सर्वप्रथम इन्हीं शासकों ने मगध शासन की नींव डाली थी। मालालंकारवत्थु नामक पालि-ग्रन्थ अपेक्षतया आधुनिक है, परन्तु इस ग्रन्थ में प्राचीन ग्रन्थों का अधिक अनुकरण किया गया है। इस ग्रन्थ से पता चलता है कि राजा शिशुनाग वैशाली में रहते थे तथा वहीं बाद में उनके राज्य की राजधानी बन गई।[1] "शिशुनाग ने अपनी माता के जन्म की कथा[2] से परिचित होने पर भी वैशाली का पुनरुद्धार किया और उसे अपनी राजधानी बनाया।" उसी समय से राजगृह नगरी राजधानी होने के सम्मान से वंचित हो गई और बाद में भी पुनः यह सम्मान उसे प्राप्त न हो सका। उक्त कथन से यह संकेत मिलता है कि शिशुनाग का उद्भव राजगृह के विजय-काल, अर्थात् बिम्बिसार एवं अजातशत्रु के समय के बाद हुआ था। पुराणों में वैशाली नहीं, वरन् गिरिव्रज (**वाराणस्यां सुतम् स्थाप्य श्रयिष्यति गिरिव्रजम्**) को शिशुनाग की राजधानी कहा गया है, परन्तु चूंकि अजातशत्रु के पुत्र उदायिन ने ही सर्वप्रथम उस सुदृढ़ नगर के स्थान पर पाटलिपुत्र के नवनिर्मित नगर को अपनी राजधानी बनाया था, अतः प्राचीन राजधानी में शिशुनाग के निवास से इस बात का संकेत मिलता है कि शिशुनाग पाटलिपुत्र के प्रसिद्ध नगर के संस्थापक से पूर्व हुआ था। परन्तु हम जानते हैं कि शिशुनाग के पुत्र कालाशोक ने पाटलिपुत्र पर शासन किया था और इस तथ्य से पता चलता है कि उसका शासन-काल पाटलिपुत्र के संस्थापक उदायिन के बाद हुआ था। उसके शासन-काल में भी राजधानी-हस्तांतरण[3] की घटना (इसे हस्तांतरण की द्वितीय घटना समझा जाना चाहिये) से इस बात का भी पता चलता है कि उसके पूर्वज ने शरण-स्थल के रूप में प्राचीन राजधानी को पुनः अपना निवास-स्थान बनाया था। '**श्रयिष्यति गिरिव्रजम्**' शब्दों में जिस घटना का उल्लेख किया गया है, उससे यह सिद्ध नहीं होता कि गिरिव्रज, शिशुनाग के समय तक निरन्तर राजधानी थी।

अश्वघोष के अनुसार, बिम्बिसार जिस हर्यंक कुल के थे, उस वंश की उत्पत्ति अभी तक बिलकुल अनिश्चित-सी है। हरिवंश[4] तथा अन्य पुराणों में कहा गया है कि चम्पा में भी एक हर्यंक-वंश था। किन्तु, हर्यंक-वंश तथा चम्पा के हर्यंक-वंश को एक समझने या एक दूसरे से सम्बन्धित समझने के हमारे पास तर्कयुक्त कारण नहीं हैं। मन्दसोर-शिलालेख में लिखे गये 'औलिकर लांछन आत्म-वंश' के अनुसार, हर्यंक-कुल तो केवल एक वंश-विशेष का उपनाम या विशेषण कहा जा सकता है।[5] बिम्बिसार इस वंश का संस्थापक नहीं था। महावंश में कहा गया है कि जिस समय बिम्बिसार

---

१. यदि 'द्वात्रिंशत्-पुत्तलिका' पर विश्वास किया जाय तो वैशाली में नन्द के समय तक कोई न कोई राजा हुआ करता था।

२. महावंश-टीका (Turnour, महावंश, xxxvii) के अनुसार शिशुनाग वैशाली के लिच्छवि राजा का पुत्र था। वह एक नगरशोभिनी का पुत्र था तथा एक सरकारी अधिकारी ने उसका पालन-पोषण किया था।

३. *SBE*, XI, p. xvi.

४. 31, 49; वायु पुराण, 99, 108; J. C. Ghosh in *ABORI*, 1938 (xix), pp. i. 82.

५. हरि को पीला, घोड़ा, शेर तथा साँप का ज्ञान था।

को उसके पिता ने सिंहासन सौंपा, उसकी आयु केवल १५ वर्ष की थी।[1] अंगराज ने बिम्बिसार के पिता[2] को परास्त किया था। बिम्बिसार ने इसका बदला लिया और मगध को विजय एवं राज्य-विस्तार के उस मार्ग पर ला खड़ा किया जिसका अन्त अशोक की कलिंग-विजय के पश्चात् हिंसा के परित्याग के बाद ही हो सका।

5⟹ वज्जि या वृजि प्रदेश गंगा के उत्तर नेपाल की पहाड़ियों तक फैला हुआ था। पश्चिमी सीमा पर सम्भवतः गण्डक नदी प्रवाहित होती थी जो वज्जि प्रदेश को मल्ल राज्य या कोशल से अलग करती थी। पूर्व में कोसी नदी तथा महानन्दा तक सीमा का विस्तार था। इस गणतन्त्र में आठ छोटे-छोटे राजवंश शामिल थे जिनमें विदेह, लिच्छवि, ज्ञात्रिक तथा वृजि प्रमुख हैं। शेष राजवंशों का ठीक-ठीक पता नहीं चलता। फिर भी इतना कहा जा सकता है कि उग्र, भोग, ऐक्ष्वाक तथा कौरव वंश ज्ञात्रिक तथा लिच्छवि वंशों से सम्बद्ध थे और एक ही गुट के सदस्य थे।[3] अंगुत्तर निकाय[4] में भी वज्जि गणतन्त्र की राजधानी वैशाली तथा उग्र वंश को एक-दूसरे से सम्बन्धित कहा गया है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, प्राचीन विदेह की राजधानी मिथिला थी, जो आजकल नेपाल की सीमा में जनकपुर नामक कस्बे के रूप में है। रामायण में वैशाली[5] तथा मिथिला के बीच भिन्नता रखी गई है; किन्तु बौद्ध तथा जैन ग्रन्थों में उक्त भिन्नता का ध्यान न देकर 'विदेह'[6] शब्द का विस्तृत अर्थ में प्रयोग किया गया है जिसके अनुसार जनकपुर भी इस राज्य में सम्मिलित था।

लिच्छवि-वंश की राजधानी वैशाली थी, जो आजकल बिहार के मुजफ़्फ़रपुर

---

[1] Geiger's translation, p. 12. डॉक्टर भण्डारकर के मतानुसार, बिम्बिसार अपने वंश का संस्थापक था। उसने अपनी वीरता से वज्जि लोगों को हराकर अपने राज्य की स्थापना की थी।

[2] Turnour, N. L. Dey तथा अन्य लोगों ने भातिय या भट्टिय को पिता माना है। तिब्बत के लोग उसे महापद्म कहते हैं। Turnour, महावंश, I. p. 10; *JASB*, 1872, i, 298; 1914, 321; गुणाढ्य पर निबन्ध, p. 173; पुराणों में हेमजित, क्षेमजित, क्षेत्रौजा या क्षत्रौजा को बिम्बिसार का पिता माना गया है। यदि पुराणों की उक्ति सही है तो 'भातिय' या 'भट्टिय' शब्द सेनिय या 'कुणिय' का जो क्रमशः बिम्बिसार तथा अजातशत्रु से सम्बन्धित थे, दूसरा नाम या उपाधि थी। किन्तु अपर्याप्त प्रमाणों के कारण पुराणों की उक्ति पर विश्वास नहीं किया जा सकता और ख़ास कर तब, जबकि उपर्युक्त नामों में एकरूपता भी न हो।

[3] *SBE*, XLV, 339. *Cf*. Hoernle. उवासगदसाव, II. p. 138; fn. 304.

[4] I. 26; III. 49; IV. 208.

[5] रामायण, I. 47-48.

[6] आचारांग सूत्र (II. 15, § 17; *SBE*, XXII. Intro.)। उदाहरणार्थ, कुण्डग्राम के 'सन्निवेश' को विदेह में वैशाली के निकट का माना गया है। महावीर तथा अजातशत्रु की माताओं को विदेहदत्ता, वेदेही (वैदेही) कहा जाता था।

ज़िले में गंडक नदी के तट पर बेसढ़ के नाम से विद्यमान है । रामायण में सम्भवतः इसी वैशाली को 'विशाला' नगरी कहा गया है ।[1]

विशालां नगरीं रम्यां दिव्यां स्वर्गोपमां तदा ।

एकपण्ण जातक[2] के आरम्भ में कहा गया है कि वैशाली नगरी तीन दीवालों से घिरी थी तथा एक दीवाल दूसरी से तीन मील की दूरी पर थी । वहाँ तीन बड़े-बड़े राजद्वार तथा तीन घंटाघर भी थे । लिच्छवि राज्य की सीमा सम्भवतः नेपाल तक थी और सातवीं शताब्दी ईसापूर्व तक यथावत् बनी रही ।

ज्ञात्रिक वंश के लोग सिद्धार्थ तथा उनके पुत्र महावीर के वंशज थे । ये लोग वैशाली के उपनगर कोल्लाग तथा कुण्डग्राम (या कुण्डपुर) में रहते थे । महापरिनिब्बान सुत्तन्त[3] में "नादीकों" (जिन्हें जेकोबी ने नातिक अथवा ज्ञात्रिक[4] कहा है) के निवास-स्थान को कोटिगाम (कुण्डग्राम ?) से भिन्न माना गया है । उपनगरों के निवासी होने पर भी महावीर एवं उसके वंशजों को 'वेसालि', अर्थात् वैशाली का निवासी कहा गया है ।[5]

पाणिनि[6] ने भी वृज्जि की चर्चा की है । कौटिल्य[7] ने भी वृज्जि को लिच्छवि से भिन्न माना है । युवान च्वांग[8] ने भी फू-ली-चिह(वृज्जि) तथा फेई शी-ली (वैशाली) को भिन्न भिन्न नगर माना है । वृजि केवल समूचे गणतन्त्र का ही नाम नहीं था, वरन् गणतन्त्र में सम्मिलित एक वंश को भी वृजि कहा जाता था । किन्तु, लिच्छवि-वंश की तरह वृजि-वंश के लोग भी वैशाली से सम्बद्ध थे । वैशाली केवल लिच्छवि-वंश की ही नहीं, वरन् समूचे वृजि गणतन्त्र की राजधानी थी ।[9] इतिहासकार रॉकहिल[10] के कथनानुसार, उक्त नगर के अन्तर्गत तीन ज़िले आते थे । तीनों ज़िलों में तीन भिन्न-भिन्न राजवंशों की राजधानियाँ थीं । गणतन्त्र के शेष वंश जैसे उग्र, भोग, कौरव तथा ऐक्ष्वाक, उपनगरों तथा गाँवों में रहते थे । उदाहरणार्थ, हत्थिगाम या भोगनगर आदि भिन्न-भिन्न वंशों के रहने के स्थान थे ।[11]

---

१. रामायण, आदिपर्व, 45. 10. २. No. 149. ३. Ch. 2.
४. *SBE*, XXII. Intro. ५. Hoernle, उवासगदसाव, II. p. 4 n.
६. IV. 2. 131.
७. अर्थशास्त्र, मैसूर संस्करण, 1919, p. 378.
८. Watters, II. 81. *Cf.* also *DPPN*, II 814; *Gradual Sayings*, III. 62; IV. 10. स्मिथ के अनुसार (Watters, II. 340) वृजि देश दरभंगा ज़िले के उत्तरी तथा नेपाल की तराई के समीपवर्त्ती भूभाग को कहते थे ।
९. *Cf.* मज्झिम निकाय, II, 101. *The Book of Kindred Sayings*, I. (संयुक्त निकाय) द्वारा श्रीमती Rhys Davids, p. 257.—वज्जि-वंश का कोई भाई कभी वैशाली के निकटवर्त्ती जंगलों में भी निवास करता था ।
१०. *Life of Buddha*, p. 62.
११. उग्रों और भोगों के लिए Hoernle का उवासगदसाव देखिये (II. p. 139., §210); बृहदारण्यक उपनिषद्, III. 8, 2; *SBE*, XLV, 71 n.; अंगुत्तर निकाय में I 26. (निपात, I. 14.6); उग्रों का सम्बन्ध वैशाली से

हम देख चुके हैं कि ब्राह्मण-काल में विदेह (मिथिला) का संविधान राजतान्त्रिक था। रामायण[1] तथा पुराणों[2] के अनुसार 'विशाला' राज्य में भी पहले राजतान्त्रिक शासन था। रामायण के अनुसार, इक्ष्वाकु के पुत्र विशाल ने वैशालिक-वंश की स्थापना की थी। पुराणों के अनुसार विशाल इक्ष्वाकु के भाई नभाग के वंशज थे। राजा विशाल ने अपने ही नाम पर अपनी राजधानी का नाम रखा। विशाल के बाद हेमचन्द्र, सुचन्द्र, धूम्राश्व, शृञ्जय, सहदेव, कुशाश्व, सोमदत्त, काकुत्स्थ तथा सुमति इस वंश के मुख्य शासक थे। हम यह नहीं जानते कि इनमें से कितने राजाओं ने उत्तरी बिहार के इस राज्य पर शासन किया और इतिहास उन्हें मान्यता प्रदान करता है। शतपथ ब्राह्मण[3] में सहदेव सारंजय नामक एक राजा का उल्लेख है। ऐतरेय ब्राह्मण[4] में उक्त राजा को सोमक साहदेव्य कहा गया है। वैदिक साहित्य में इनमें से किसी भी राजा को वैशाली से सम्बद्ध नहीं कहा गया है। महाभारत में एक शृञ्जय के पुत्र सहदेव का उल्लेख आया है। कहा गया है कि उन्होंने गण्डक नहीं, वरन् जमुना[5] के तट पर यज्ञ किया था। सूत्रकृतांग में भी कहा गया है कि इक्ष्वाकु-जैसे वंश के लोग भी वृजि गणतन्त्र में सम्मिलित थे।

वृजि गणतन्त्र का गठन निश्चित रूप से विदेह के राजवंश के पतन के बाद हुआ होगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राचीन भारत की राजनीतिक कायापलट यूनान के राजनीतिक घटना-क्रम के समकक्ष चलती है। यूनान के वीरकाल के राजतन्त्र के बाद गणतन्त्रों का युग आया था। इतिहासकार बरी ने यूनान की राजनीतिक उथल-पुथल का कारण बताते हुए लिखा है कि "कुछ स्थानों पर तो कुशासन के फलस्वरूप राजाओं को बलपूर्वक गद्दी से उतार दिया गया। कहीं-कहीं बालकों (नाबालिग़ों) के हाथ में या नीच वंश के लोगों के हाथ में राजसत्ता के आने पर राज्य के अमीरों ने राजतंत्र को उखाड़ फेंका। कहीं-कहीं राजाओं के अधिकार बिल्कुल सीमित कर दिये गए और वे नाम मात्र को राजा रह गये। वे केवल मुक़दमे तय करते थे, वास्तविक शासन-सत्ता किसी अन्य के हाथ में रहती थी। यूनान के केवल

भी था (**उग्गो गहपति वेशालिको**) तथा IV. 212 में हत्थिगाम के साथ। धम्मपद-टीका में 'उग्ग' नाम के एक नगर का उल्लेख आया है (Harvard Oriental Series, Vol. 30, 184.) Hoernle ने (उवासगदसाव, II, App. III, 57) भोगनगर नाम के एक शहर की चर्चा की है। महापरिनिब्बान सुत्तन्त में भण्डगाम, हत्थिगाम, अम्बगाम, जम्बुगाम तथा भोगनगर को वैशाली से पावा के रास्ते में बताया गया है (*Digha*, II. 122-26. *Cf.* also सुत्त निपात, 194)। वज्जि-वंश के साथ कौरवों के एक दल का सम्बन्ध भी दिलचस्प है। कुरु ब्राह्मण, जैसे उषस्ति चाक्रायण ने बौद्ध धर्म के उदय के बहुत पहले ही विदेह को राजधानी बनाना आरम्भ कर दिया था। वैशाली के ऐक्ष्वाकों के लिए रामायण (I. 47. 11.) भी देखिये।

[1] I. 47. 11. 17.

[2] वायु, 37. 16-22; विष्णु, IV. 1. 18.

[3] II. 4. 4. 3-4.

[4] VII. 34. 9.

[5] महाभारत, III. 90. 7. टीकासहित।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

स्पार्टा नामक राज्य में बहुत सीमित राजतन्त्र बाद तक बना रहा। जहाँ तक राजा को केवल न्यायालय के अधिकारों तक सीमित रखने का प्रश्न है, इस प्रकार का राजतन्त्र एथेन्स के आर्कन बेसीलियस में मिलता है।"

मिथिला में राजतन्त्र के बाद गणतन्त्र कैसे आया, इस सम्बन्ध में चर्चा पहले की जा चुकी है। 'विशाला' राज्य में यह परिवर्तन कैसे हुआ, इस सम्बन्ध में हम कुछ नहीं जानते।

कुछ विद्वानों ने इस बात को सिद्ध करने का भरसक प्रयास किया है कि वृजि गणतन्त्र[1] (**वज्जि रट्ठवासि हि पसत्था**) की सर्वशक्तिमान् शाखा, लिच्छवि-वंश के लोग विदेशी थे। डॉ० स्मिथ का मत है कि वे तिब्बती लोग थे। उन्होंने उपर्युक्त निष्कर्ष लिच्छवियों की न्याय-प्रणाली तथा शव-संस्कार के आधार पर निकाला था। लिच्छवि-वंश के लोग शव का अन्तिम संस्कार उसे जंगली जानवरों[2] के सामने फेंक कर करते थे। पंडित एम० सी० विद्याभूषण के अनुसार, लिच्छवि (मनु का निच्छिवि) नाम फ़ारस के निसिबिस नगर[3] से लिया गया था। इसके विपरीत, उपर्युक्त कथन की अप्रामाणिकता की ओर अनेक विद्वानों ने संकेत किया है।[4] प्राचीन, भारतीय परम्परा के अनुसार, लिच्छवि-वंश के लोग क्षत्रिय-वंश के थे। महापरिनिब्बान सुत्तन्त में लिखा है—"जब वैशाली के लिच्छवियों ने सुना कि महाप्रभु का कुशीनर (कुसिनार) में देहावसान हो गया तो उन्होंने मल्ल राज्य को संदेश भेजा कि

---

१. *DPPN*, II. 814.

२. *Ind. Ant.*, 1903, p. 233 ff. तिब्बत के सम्बन्ध में तीन अदालतों की चर्चा है। इसके अलावा लिच्छवियों की भी सात अदालतें (tribunals) थीं, जैसे विनिच्छय महामत्त (inquiring magistrates), वोहारिक (jurist judges), सुत्तधार (masters of sacred code), अट्ठकुलक (the eight clans, possibly a federal courts), सेनापति (general), उपराज (viceroy, vice-consul) तथा राजा (the ruling chief) जो पवेणि-पोत्थक (Book of Precedents) के आधार पर निर्णय करता था। इसके अलावा हम, जैसा कि यस० सी० दास ने भी स्पष्ट किया है, तिब्बत के इतिहास के बारे में और नहीं जानते। अट्ठकथा में ऐसा ही संकेत मिलता है। तिब्बती और वज्जियन रीति-रिवाज़ों की तुलना में हमें इसका ध्यान रखना चाहिए। इस सम्बन्ध में सिन्धुवासियों के रिवाज़ों पर भी ध्यान देना आवश्यक है (Vats, *Excavations of Harappa*, I. Ch. VI. तथा महाभारत, IV. 5. 28-33)।

३. *Ind. Ant.*, 1902, 143 ff; 1908, p. 78. विद्याभूषण में निच्छिवि तथा निसिबिस नामों में समानता का उल्लेख है। Achaemenids के शिलालेखों में पूर्वी भारत में पाँचवीं या छठी शताब्दी में Persian Settlement का कोई उल्लेख नहीं है। लिच्छवि लोग ईरानी देवी-देवताओं की अपेक्षा महावीर तथा बुद्ध के उपदेशों में अधिक आस्था रखते थे।

४. *Modern Review*, 1919, p. 50; Law, *Some Kshatriya Tribes*, 26 ff.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

चूँकि महाप्रभु क्षत्रिय थे और हम लोग भी क्षत्रिय हैं, इसलिए उनका कुछ अस्थि-अवशेष हमें भी मिलना चाहिए।" जैन-ग्रन्थ कल्पसूत्र में वैशाली के चेटक की बहन त्रिशाला को क्षत्रियाणी कहा गया है।[1]

मनु ने भी कहा है कि लिच्छवि लोग राजन्य या क्षत्रिय-वंश के थे[2]—

झल्लो मल्लश्च राजन्याद् व्रात्यान् निच्छिविरेव
च नटश्च करणश्चैव खसो द्राविड एव च।

यह कहा जा सकता है कि चाहे लिच्छवि लोग विदेशी या अनार्य ही क्यों न रहे हों, किन्तु वे ब्राह्मण-क्षेत्र में आकर क्षत्रिय मान लिये गये, जैसा कि मनु के उक्त श्लोक के अनुसार द्रविड़ को तथा मध्यकाल में गुर्जर, प्रतिहार आदि को क्षत्रिय मान लिया गया था। लिच्छवि-वंश के लोग हिन्दू-धर्म की रूढ़ियों के उतने समर्थक नहीं थे जितने कि प्रतिहार तथा द्रविड़। इसके विपरीत, वे जैन तथा बुद्ध धर्म जैसे ब्राह्मणेतर मतों की ओर अधिक आकृष्ट थे। मनु ने लिच्छवियों को 'व्रात्य राजन्यस' का पुत्र कहा है। मध्यकाल के राजपूत-परिवारों के बारे में कभी ऐसी बात नहीं कही गई। इसके विपरीत, उन्हें राम, लक्ष्मण, यदु तथा अर्जुन आदि का वंशज माना जाने लगा। भारत में प्रविष्ट पर, ब्राह्मण-धर्म तथा ब्राह्मण-विधियों को स्वीकार न करने वाले विदेशी, क्षत्रियों की कोटि में नहीं रखे जा सकते थे। अतः निष्कर्ष यही निकलता है कि लिच्छवि लोग भी क्षत्रिय थे, किन्तु ब्राह्मण-विधियों की अवहेलना करने के फलस्वरूप उन्हें व्रात्य कहकर निम्न कोटि का मान लिया गया। रामायण में, जैसा कि हम देख चुके हैं, वैशालिका के शासकों को इक्ष्वाकु-वंश का कहा गया है। पालि की टीका परमत्थजोतिका[3] में इनकी उत्पत्ति वाराणसी से मानी गई है। यद्यपि लिच्छवियों की 'तावतिंस' देवों से तुलना की गई है। किन्तु इससे यह नहीं सिद्ध होता कि ये लोग चिपटी नाक वाले तिब्बतियों से सम्बन्धित थे।[4]

लिच्छवि-वंश की स्थापना का काल कुछ निश्चित नहीं हो सका है, किन्तु इतना निश्चित है कि छठी शताब्दी के उत्तरार्ध में महावीर तथा गौतम के समय में यह वंश पूर्णरूपेण जम चुका था और इसके बाद अगली शताब्दी लिच्छवियों के पराभव की शताब्दी रही।

बौद्ध-ग्रन्थों में प्रख्यात लिच्छवि-राजाओं—अभय, ओट्ठद्ध (महालि), सेनापति सीह एवं अजित—के नाम मिलते हैं। इन ग्रन्थों में दुम्मुख और सुनक्खत्त[5] का भी

---

[1] *SBE*, XXII, pp. xii. 227.

[2] X. 22.

[3] Vol. I, pp. 158-65.

[4] *SBE*, XI, p. 32; *DPPN*, II. 779.

[5] अंगुत्तर निकाय निपात, III, 74 (P. T. S., Part I, p. 220 f); महालि सुत्त, *Dialogues of the Buddha*, Part I, p. 198, Part III, p. 17; महावग्ग, *SBE*, XVII, p. 108; मज्झिम निकाय, I. 234, 68; II, 252; *The Book of the Kindred Sayings*, I, 295. लिच्छवियों के बारे में और जानकारी के लिए देखिए, Law, *Some Kshatriya Tribes of Ancient India*.

नाम मिलता है। एकपण्ण[१] तथा चुल्ल कालिंग[२] जातक के आरम्भ के अध्यायों में ही कहा गया है कि लिच्छवि-राजवंश की कुल संख्या ७ हज़ार ७०७ थी।[३] इनके अतिरिक्त इनके सेनापतियों, प्रतिनिधियों तथा कोषाध्यक्षों की भी संख्या इतनी ही थी। इन संख्याओं पर ही अधिक बल न देना चाहिये, क्योंकि यह तो इस बात का एक संकेत मात्र है कि लिच्छवि-वंश में शासकों की संख्या काफ़ी थी।[४] प्रशासन का उत्तरदायित्व तथा विशेष रूप से विदेश-नीति का दायित्व तो राज्य के ९ गणराजाओं की एक विशेष समिति पर था। जैन-कल्पसूत्र[५] के अनुसार, उपर्युक्त ९ लिच्छवि-शासकों, मल्ल के ९ मल्लकों तथा काशी व कोशल के १८ वंशाधिपतियों ने एक आपसी संगठन बना रखा था। निरयावली सूत्र से पता चलता है कि किसी समय उक्त राज्यों के संगठन का नेतृत्व चेटक नामक राजा ने किया था। इसी चेटक की बहन त्रिशाला या विदेहदत्ता महावीर की माँ थी। इसकी कन्या का नाम चेल्लना या वैदेही था, जो कूणिक-अजातशत्रु की माँ थी।

लिच्छवि, मल्ल, काशी तथा कोशल का उपर्युक्त संगठन मगध राज्य का विरोधी था। ऐसा कहा जाता है कि बिम्बिसार के समय में भी वैशाली के शासक इतने ढीठ थे कि वे गंगा के पार[६] वाले अपने पड़ोसी राज्य पर आक्रमण करने की धृष्टता प्रायः करते थे। अजातशत्रु के समय में पासा बिल्कुल पलट गया और वैशाली गणतन्त्र सदा-सदा के लिए समाप्त हो गया था।[७]

6· **मल्ल**—महाभारत[८] का मल्ल-राष्ट्र (या मल्ल-रट्ठ) मुख्यतः दो भागों में बँटा हुआ था। इनमें से एक भाग की राजधानी कुसावती या कुसीनारा तथा दूसरे भाग की पावा[९] थी। सम्भवतः काकुत्था नदी जिसे आजकल कुकु कहते हैं, दोनों भागों को एक-दूसरे से अलग करती थी।[१०] महाभारत[११] में भी मल्ल के दो भागों—मुख्य मल्ल तथा दक्षिण मल्ल—का उल्लेख मिलता है। कुसीनारा नगर की ठीक-ठीक स्थिति के बारे में विद्वानों में एक मत नहीं है। महापरिनिब्बान सुत्तन्त में कहा गया है कि कुसीनारा

---

[१] 149.

[२] 301.

[३] एक अन्य Tradition में यह संख्या ६८,००० दी गयी है (*DPPN*, II. 781 n)। धम्मपद की टीका (Harvard Oriental Series, 30, 168) से हमें पता चलता है कि ये राजा लोग बारी-बारी से शासन करते थे।

[४] *Cf.* वज्जि महल्लका का उल्लेख दीघ निकाय (II, 74) तथा अंगुत्तर निकाय (IV, 19) में भी मिलता है।

[५] § 128.

[६] सि-यू-की, Bk. IX.

[७] *DPPN*, II. 781-82.

[८] VI, 9. 34.

[९] कुस जातक, No. 531; महापरिनिब्बान सुत्तन्त, *Dialogues of the Buddha*, Part II, pp. 136 ff., 161-62.

[१०] *AGI* (1924), 714.

[११] महाभारत, II. 30. 3 and 12.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

नगर का 'साल' उपवन (उपवत्तन)[1] हिरण्यवती नदी के समीप था। स्मिथ के अनुसार, गण्डक का नाम ही हिरण्वती था और कुशीनगर अथवा कुसीनारा छोटी राप्ती अथवा गण्डक[2] के मिलन-बिन्दु के समीप की पहाड़ियों के उस पार नेपाल में था, फिर भी उन्होंने इस बात को स्वीकार किया है कि गोरखपुर ज़िले के पूर्वी भाग में छोटी गण्डक के तट पर बसे कसिया नगर के समीप निर्वाण मन्दिर के पीछे बने एक विशाल स्तूप से **"परिनिर्वाण चैत्ये ताम्रपट्ट इति"**[3] शब्दों सहित एक ताम्रपत्र की खोज से श्री विलसन द्वारा प्रतिपादित तथा श्री कनिंघम द्वारा स्वीकृत मत का समर्थन होता है कि कसिया के निकटवर्ती खण्डहर कुशीनगर की ओर संकेत करते हैं।

मल्ल राज्य का दूसरा प्रमुख नगर 'पावा' था जो इतिहासकार कनिंघम[4] के अनुसार, कसिया से उत्तर, उत्तर-पूर्व में १२ मील की दूरी पर था। आजकल इसे पडरौना कहा जाता है। यहाँ पर मल्ल राज्य के दोनों भागों को एक-दूसरे से अलग करने वाली ककुत्था नदी थी जिसे अब 'बाढी नाला' कहते हैं। इसके विपरीत, कार्लाइल का कहना है कि कसिया से १० मील दूर फ़ाज़िलपुर नामक स्थान पर प्राचीन काल का पावा नगर स्थित था।[5] संगीत सुत्तन्त में पावा-मल्ल के उब्भटक का उल्लेख मिलता है।[6]

मल्ल राज्य वालों तथा लिच्छवियों को मनु ने व्रात्य क्षत्रिय कहा है। ये लोग भी अपने पूर्वीय पड़ोसियों की तरह बौद्धमत के कट्टर अनुयायी थे।

विदेह की भाँति मल्ल में भी पहले राजतन्त्र था। कुक्क जातक में ओक्काक (इक्ष्वाकु) नाम के एक मल्ल राजा का उल्लेख मिलता है। इस नाम से यह संकेत मिलता है कि शाक्यों[7] की भाँति मल्ल-राजकुमार भी अपने को इक्ष्वाकु-वंश का ही कहते थे। उक्त तथ्य की पुष्टि उस समय और भी हो जाती है जब महापरिनिब्बान सुत्तन्त में उन्हें 'वासेट्ठ' अर्थात् वशिष्ठ-गोत्रीय कहा गया है।[8] महासुदस्सन सुत्त में महासुदस्सन[9] नाम का भी एक राजा मिलता है। हो सकता है कि ओक्काक या महासुदस्सन इतिहास की दृष्टि से मान्य न हों, किन्तु इनके नाम से सम्बन्धित कथाओं से यह तो सिद्ध होता ही है कि किसी समय मल्ल राज्य राजाओं द्वारा शासित था। महाभारत[10] में भी मल्ल राजाओं का उल्लेख हुआ है, जिससे उपर्युक्त तथ्य की पुष्टि हो जाती है।

---

१. *JRAS*, 1906, 659; दीघ निकाय, II, 137.

२. *EHI*, third ed., p. 159 n.

३. *ASI, AR*. 1911-12, 17 ff; *JRAS*, 1913, 152.
कसिया एक गाँव है जो गोरखपुर से क़रीब ३५ मील दूर है (*AGI*, 493).

४. *AGI*, 1924, 498.

५. कुकुत्था; *AGI*, 1924, 714.

६. *DPPN*, II, 194.

७. *Cf. Dialogues of the Buddha*, Part I, pp. 114-15.

८. *Dialogues of the Buddha*, Part II, pp. 162, 179, 181.
रामायण में वशिष्ठ को इक्ष्वाकु का पुरोहित कहा गया है।

९. *SBE*, XI, p. 248.

१०. II. 30. 3.

मल्ल राज्य के राजतन्त्र के काल में कुसावती नगर इसकी राजधानी थी तथा अनुपिया और उरुवेलकप्प अन्य दो प्रमुख नगर थे।[1]

बिम्बिसार के पूर्व राजतन्त्र के स्थान पर गणतन्त्र[2] की स्थापना हो गई थी और राजधानी जल-प्लावित हो चुकी थी।[3] उस समय इसे कुसीनारा कहा जाता था।

मल्लों तथा लिच्छवियों का आपसी सम्बन्ध कभी शत्रुतापूर्ण और कभी मैत्रीपूर्ण था। भद्दसाल जातक[4] की एक कथा में कोशल राज्य के मल्ल सेनापति बन्धुल तथा ५ सौ लिच्छवियों के बीच तनातनी की चर्चा की गई है। इसके विपरीत, जैन ग्रन्थ कल्पसूत्र में नौ मल्ल शासकों की चर्चा की गई है जिन्होंने लिच्छवियों तथा काशी-कोशल के अधिपतियों से मिलकर कूणिक अजातशत्रु के विरुद्ध मोर्चाबन्दी की थी, क्योंकि मैसेडन के राजा फ़िलिप की तरह कूणिक अजातशत्रु भी पड़ोसी गणतन्त्रों को समाप्त कर उनको अपने राज्य में मिलाने का प्रयास कर रहे थे। अन्ततः, मल्ल राज्य मगध में मिल ही गया। तीसरी शताब्दी ईसापूर्व में मल्ल, मगध के मौर्य-साम्राज्य का ही एक अंग था।

7. **चेदि**—चेदि राज्य एक ऐसा राज्य था जो कुरु के चतुर्दिक् (परीतः कुरून्) यमुना[5] के समीप फैला हुआ था। चम्बल के पास मत्स्य राज्य से भी इसका सम्बन्ध था। इसके अतिरिक्त यह काशी तथा शोन की घाटी[6] के कारुषों से भी सम्बन्धित था।[7] आधुनिक बुंदेलखंड तथा उसके समीपवर्त्ती प्रदेश को हम प्राचीन चेदि राज्य कह सकते हैं।[8] मध्यकाल में तो इस राज्य का विस्तार नर्मदा (मेकल-सुता) तक हो गया था—

---

[1] Law, *Some Kshatriya Tribes*, p. 149; *Dialogues of the Buddha*, Part III (1921), 7; *Gradual Sayings*, IV. 293. अनुपिया अनोमा के तट पर है तथा कपिलवस्तु से काफ़ी दूर (३० लीग) है। यहीं पर बुद्ध ने क्षौरकर्म कराकर संन्यास ग्रहण किया था (*DPPN*, *I*, 81, 102)।

[2] *Cf. SBE*, XI, p. 102; कौटिल्य का अर्थशास्त्र, 1919, p. 378.

[3] **खुद्द-नगरक, उज्जंगल-नगरक, साखा-नगरक।**

[4] No. 465.

[5] पार्जिटर, *JASB*, 1895, 253ff; महाभारत, I. 63. 2-58; IV. i, 11.

सन्तिरम्या जनपदा बह्वन्नाः परितः कुरून्
पंचालाश्-चेदि-मत्स्याश्च शूरसेनाः पटच्चराः
दशार्णा नवराष्ट्राश्च मल्लाः साल्वा युगन्धराः।

[6] महाभारत, V. 22. 25; 74. 16; 198. 2; VI. 47. 4; 54. 8.

[7] दशार्ण की राजकुमारियों की शादी विदर्भ के भीम और चेदि के वीरबाहु या सुबाहु के साथ हुई थी (महाभारत, III. 69. 14-15)।

[8] पार्जिटर (*JASB*, 1895, 253) के अनुसार, चेदि राज्य जमुना के

नदीनाम् मेकलसुता नृपाणाम् रणविग्रहः
कवीनां च सुरानन्दश चेदि मण्डल मण्डनम् ।[1]

चेतिय जातक[2] के अनुसार, चेदि राज्य की राजधानी सोत्थिवती नगर थी। महाभारत में इस नगर का संस्कृत नाम शुक्तिमती या शुक्ति-साह्वय[3] भी आया है। महाभारत में शुक्तिमती नामक नदी का भी नाम आया है जो चेदि राजा उपरिचर की राजधानी से होकर बहती थी।[4] पार्जिटर ने आधुनिक केन नदी को ही प्राचीन शुक्तिमती कहा है। उनके मतानुसार, यह नगर आधुनिक बाँदा शहर के समीप था।[5] इसके अतिरिक्त सहजाति[6] तथा त्रिपुरी[7] चेदि राज्य के अन्य प्रमुख नगर थे।

चेदि राज्य उतना प्राचीन माना जाता है जितना कि ऋग्वेद, क्योंकि दान-स्तुति के स्तोत्र के अन्त में कसु चैद्य का नाम आया है।[8] रैप्सन ने राजा कसु को ही महाभारत का 'वसु' माना है।

चेतिय जातक में चेदि-राजाओं की सूची दी गई है। यह सूची महासम्मत तथा मान्धाता नामों से आरम्भ की गई है। चेदि-वंश के एक राजा उपचर के पाँच पुत्र थे, जिनके बारे में कहा जाता है कि उन्होंने हत्थिपुर, अस्सपुर, सीहपुर, उत्तर पंचाल तथा दद्दरपुर नामक नगर बसाये थे।[9] सम्भवतः उपर्युक्त राजा उपचर ही चेदि राज्य के पौरव राजा उपरिचर वसु थे। इन्हीं का महाभारत[10] में उल्लेख आया

किनारे था। उत्तर-पश्चिम में चम्बल तथा दक्षिण-पूर्व में करवी था। दक्षिण में इसकी सीमा मालव तथा बुन्देलखण्ड की पहाड़ियों तक पहुँची हुई थी।

[1] जाह्लण की सूक्ति-मुक्तावली (राजशेखर), *Ep. Ind.*, IV. 280.; Konow कर्पूरमंजरी, p. 182.

[2] No. 422.

[3] III. 20. 50; XIV. 83. 2; N. L. Dey, *Ind. Ant.*, 1919, p. vii of *Ceographical Dictionary*.

[4] I. 63. 35.

[5] *JASB*, 1895, 255; मार्कण्डेय पुराण, p. 359.

[6] अंगुत्तर निकाय, III. 355 (P.T.S.)—**आयस्मा महाचुन्दो चेतिसु विहरति सहजातियम्**। सहजाति गङ्गा के तट पर व्यापार-मार्ग में रहते थे (*Buddhist India*, p. 103)। इलाहाबाद से १० मील दूर भीटा में (*Arch. Expl. Ind.*, 1909-10, by Marshal, *JRAS*, 1911, 128 f.—**सहिजितिये निगमश**, *JBORS*, XIX, 1933, 293) भी देखिये।

[7] त्रिपुरी जबलपुर के पास स्थित थी। हेमकोश में इसे चेदि नगरी कहते थे (*JASB*, 1895, 249)। महाभारत (III, 253. 10) में भी इसका उल्लेख है।

[8] VIII, 5, 37-39.

[9] हत्थिपुर की समानता हत्थिनीपुर या हास्तिनपुर से की जा सकती है। अस्सपुर नाम का नगर अंग राज्य में तथा सीहपुर नगर लाल स्थान पर था जहाँ से विजय ने लंका को प्रस्थान किया था। पश्चिमी पंजाब में एक दूसरा सिंहपुर भी था (Watters, I. 248)। रुहेलखण्ड का अहिच्छत्र ही उत्तर पंचाल था। दद्दरपुर हिमालय-क्षेत्र में था (*DPPN*, I. 1054)।

[10] I. 63. 1-2.

है तथा इन्हीं पाँच पुत्रों ने पाँच विभिन्न राजवंशों की स्थापना की थी ।[१] किन्तु, महाभारत में वसु के वंशजों को कौशाम्बी, महोदय (कन्नौज) तथा गिरिव्रज से सम्बन्धित माना गया है ।[२]

महाभारत में चेदि राजा दमघोष, उनके पुत्र शिशुपाल सुनीथ तथा उनके पुत्र धृष्टकेतु और शरभ की चर्चा आयी है । ये राजा उस समय भी शासनारूढ़ थे जबकि महाभारत की लड़ाई हुई थी । किन्तु, अन्य विश्वसनीय प्रमाणों के अभाव में महाभारत तथा जातकों से चेदि-राजाओं के सम्बन्ध में जो विवरण हमें मिलता है, उसे हम वास्तविक इतिहास के रूप में स्वीकार नहीं कर सकते ।

वेदब्भ जातक[३] से हमें पता चलता है कि काशी से चेदि राज्य को जाने वाला राजमार्ग बिल्कुल निरापद नहीं था, क्योंकि रास्ते में लुटेरों के आक्रमणों का भय बना रहता था ।

8· **वंश या वत्स**—वंश या वत्स राज्य गंगा[४] के दक्षिण की ओर था । इलाहाबाद के समीप यमुना के तट पर कौशाम्बी (आधुनिक कोसाम) नगर वत्स की राजधानी था ।[५] इतिहासकार ओल्डेनबर्ग[६] ने ऐतरेय ब्राह्मण में आये 'वशस्' शब्द को ही वंश या वत्स माना है । किन्तु, अपने कथन की पुष्टि में कोई प्रमाण प्रस्तुत नहीं किया गया है । शतपथ ब्राह्मण में शिक्षक प्रोति कौशाम्बेय[७] का नाम आया है । टीकाकार श्री हरिस्वामिन् के मतानुसार, वह कौशाम्बी[८] के रहने वाले थे । महाभारत की परम्परा के अनुसार, किसी चेदि राजा[९] ने ही कौशाम्बी नगर की स्थापना की थी । कुछ भी हो, वत्स-वंश की उत्पत्ति काशी के राजा[१०] से मानी गई है । पुराणों में कहा गया है कि जब गंगा के प्रवाह के फलस्वरूप हस्तिनापुर बह गया तो जनमेजय के वंशज राजा निचक्षु ने अपनी राजधानी कौशाम्बी को स्थानान्तरित कर दिया । हम पहले ही देख चुके हैं कि कौशाम्बी के भरत या कुरु वंशीय राजाओं की उत्पत्ति भास के दो नाटकों से प्रमाणित हो चुकी है । कौशाम्बी के राजा उदयन को स्वप्न-वासवदत्ता एवं प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण[११] में भरत-कुल का वंशज कहा गया है ।

---

१. I. 63. 30.

२. रामायण, I. 32. 6-9; महाभारत, I. 63. 30-33.

३. No. 48.

४. रामायण, II. 52. 101.

५. Nariman, Jackson and Ogden, प्रियदर्शिका, lxxvi; बृहत् कथा श्लोक-संग्रह (4. 14. *Cf.* 8. 21) में स्पष्ट उल्लेख है कि कौशाम्बी कालिन्दी या जमुना के तट पर था (Malalasekera, *DPPN*, 694) । प्राचीन काल में इसे गङ्गा के तट पर माना जाता था और वह भी इसलिए कि यह गङ्गा-जमुना के सङ्गम के समीप था ।

६. *Buddha*, 393n.

७. शतपथ ब्राह्मण, XII. 2. 2. 13.

८. See p. 70 *ante*.

९. रामायण, I, 32. 3-6; महाभारत, I. 63. 31.

१०. हरिवंश, 29. 73; महाभारत, XII. 49. 80.

११. स्वप्न-वासवदत्ता, ed. गणपति शास्त्री, p. 140; प्रतिज्ञा, pp. 61, 121.

पुराणों में निचक्षु के उत्तराधिकारियों (क्षेमक तक) की सूची दी गई है, इस सम्बन्ध में निम्न श्लोक आया है—

"ब्रह्मक्षत्रस्य[1] यो योनिर्वंशो देवर्षि सत्कृतः
क्षेमकम् प्राप्य राजानम् संस्थाम् प्राप्स्यति वै कलौ ।"

"देवताओं तथा ऋषियों (या देवर्षियों) द्वारा सम्मानित जिस वंश से ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों का उद्भव हुआ, वह वंश कलियुग में क्षेमक के बाद समाप्त हो जायगा ।"

इस पुस्तक में इक्ष्वाकु तथा मगध के राजवंशों की सूची की जो टीका की गई है, वह पौरव-भरत-राजवंश पर भी वैसे ही लागू होती है । यहाँ भी हमें अर्जुन तथा अभिमन्यु नामक राजाओं के नाम मिलते हैं, किन्तु उन्हें छत्रधारी राजा नहीं माना जा सकता । सम्भावना इस बात की है कि इक्ष्वाकु-वंश तथा मगध एवं अवन्ती के शासकों की भाँति यहाँ भी समकालीन राजाओं को एक-दूसरे का उत्तराधिकारी या वंशज मान लिया गया है । इस वंश के अन्तिम शासकों में सबसे प्रसिद्ध राजा उदयन के निकटवर्ती पूर्वजों के बारे में भी कोई सर्वमान्य मत नहीं स्थापित हो सका है । कौशाम्बी के भरत-वंश के तिथिकी-क्रम एवं उत्तराधिकार-क्रम को निश्चित करते समय उपर्युक्त तथ्यों को ध्यान में रखना होगा । हम पौराणिक सूची के (भरत-वंशीय) जिस प्राचीनतम शासक के सम्बन्ध में निश्चित रूप से जानते हैं, वह थे राजा शतानीक-द्वितीय । पुराणों के अनुसार, उनके पिता का नाम वसुदान तथा भास के अनुसार सहस्रानीक था । शतानीक को परन्तप[2] भी कहा जाता था । चूंकि उनके पुत्र को वैदेहीपुत्र[3] कहा जाता था, अतः हम इस बात का अनुमान लगा सकते हैं कि परन्तप का विवाह विदेह की राजकुमारी से हुआ था । कहते हैं कि दधिवाहन[4] के समय में उन्होंने चम्पा पर आक्रमण किया था । उनके पुत्र तथा उत्तराधिकारी उदयन थे । वे बुद्ध तथा अवन्ती के प्रद्योत के समकालीन थे । इस प्रकार वे मगध के बिम्बिसार तथा अजातशत्रु के भी समकालीन थे ।

सुंसुमारगिरि का भग्ग (भर्ग) राज्य वत्स[5] के अधीन था । यद्यपि 'अपदान' के अनुसार, भर्ग राज्य कारूष[6] से सम्बन्धित था, तो भी महाभारत[7] तथा हरिवंश[8]

---

[1] *Cf.* 'ब्रह्म-क्षत्रियाणाम्' कुल का उल्लेख शिलालेखों में मिलता है । ये शिलालेख सेन राजाओं के थे जो अपने को भरतों की तरह कुरुवंश का कहते थे ।

[2] *Buddhist India*, p. 3.

[3] स्वप्न-वासवदत्ता, Act VI, p. 129.

[4] *JASB*, 1914, p. 321.

[5] जातक, नं० 353; *Carm. Lec.*, 1918, p. 63.

[6] *DPPN*, II. 345.

[7] II. 30. 10-11.

वत्सभूमिञ्च कौन्तेयो विजिग्ये बलवान् बलात्
भर्गाणामधिपञ्चैव निषादाधिपतिम् तथा ।

"कुन्ती के बलशाली पुत्र (भीमसेन) ने बलपूर्वक वत्स देश जीता था ।"

[8] 29. 73. **प्रतर्दनस्य पुत्रौ द्वौ, वत्सभर्गौ बभूवतुः** — "प्रतर्दन के वत्स और भर्ग नामक दो पुत्र थे ।"

के अनुसार, वत्स और भर्ग एक-दूसरे से सम्बन्धित तो थे ही, इसके अतिरिक्त सामन्त निषाद से भी इनकी कुछ घनिष्ठता थी। प्राप्त प्रमाणों के अनुसार, यमुना तथा शोन की घाटी के बीच का भाग सुंसुमारगिरि कहा जाता था।

9· **कुरु**—महासुतसोम जातक[1] के अनुसार, कुरु राज्य का विस्तार ९०० मील में था। पालि-ग्रन्थों के अनुसार, इस राज्य पर युधिष्ठिला-वंश (युधिष्ठिर के वंश)[2] के राजा राज्य करते थे। आधुनिक दिल्ली के पास इन्दपत्त या इन्दपत्तन (इन्द्रप्रस्थ या इन्द्रपत) कुरु राज्य की राजधानी थी।[3] इसके अतिरिक्त हम हत्थिनीपुर[4] नाम भी सुनते हैं। निश्चय ही यह महाभारत का हस्तिनापुर था। राजधानी के अलावा अनेक निगम तथा गाँव भी थे, जिनमें से थुल्लकोट्ठित, कम्मास्सदम्म, कुण्डी तथा वारणावत मुख्य हैं।[5]

जातकों में कुरु राजाओं को धनञ्जय कोरव्य,[6] कोरव्य[7] तथा सुतसोम[8] नामों से विभूषित किया गया है, किन्तु अन्य प्रमाणों के अभाव में हम इनकी ऐतिहासिकता को स्वीकार नहीं कर सकते।

जैन-ग्रन्थ 'उत्तराध्ययन सूत्र' में इषुकार नामक एक राजा का उल्लेख आया है। यह राजा कुरु राज्य[9] के इषुकार नगर का शासक था। ऐसा लगता है कि कुरु-वंश के बड़े घराने के हस्तिनापुर से कौशम्बी चले जाने तथा अभिप्रतारिणों का पतन हो जाने के बाद कुरु राज्य छोटे-छोटे टुकड़ों में बँट गया। इनमें इन्दपत्त तथा इषुकार राज्य सबसे महत्त्वपूर्ण माने जाते थे। बुद्ध के समय तक इन राज्यों में राजाओं का उल्लेख मिला है। इनमें से एक ने कुरु राजा के पुत्र रट्ठपाल से भेंट की, जिन्होंने शाक्य मुनि को अपना गुरु मान लिया था। बाद में छिन्न-भिन्न कुरु राज्य के छोटे-छोटे टुकड़े पुनः आपस में संगठित हुए और सम्भवतः गणतन्त्र के रूप में बदल गये।[10]

पंचाल—जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, पंचाल राज्य रुहेलखण्ड तथा मध्य दोआब-क्षेत्र में था। महाभारत, जातकों तथा दिव्यावदान[11] में इस राज्य को दो

---

[1] No. 537.

[2] धूमकारि जातक, नं० 413; दस ब्राह्मण जातक, नं 495.

[3] जातक, Nos. 537, 545.

[4] *The Buddhist Conception of Spirits, DPPN,* II. 1319.

[5] महाभारत (V. 31. 19; 72. 15 etc.) में चार गाँवों का उल्लेख मिलता है, जैसे अविस्थल, वृकस्थल, माकन्दी, वारणावत।

[6] कुरुधम्म जातक, No. 276; धूमकारि जातक, No. 413; सम्भव जातक, No. 515; विधुर पण्डित जातक, No. 545. धनञ्जय अर्जुन का ही नाम है।

[7] दस ब्राह्मण जातक, No. 495; महासुतसोम जातक, No. 537.

[8] महासुतसोम जातक; *Cf.* महाभारत (I. 95. 75) में 'सुतसोम' भीम के पुत्र का नाम था।

[9] *SBE.* XLV. 62.

[10] अर्थशास्त्र, 1919. 378.

[11] p. 435.

भागों में विभाजित कहा गया है। ये भाग हैं—उत्तर पंचाल तथा दक्षिण पंचाल। महाभारत के अनुसार, गंगा नदी दोनों भागों की विभाजक रेखा थी।[१] उत्तर पंचाल की राजधानी अहिच्छत्र या छत्रवती थी जिसे अब बरेली जिले में आंवला के पास स्थित रामनगर कहते हैं। दक्षिणी पंचाल की राजधानी काम्पिल्य थी और पंचाल का यह भाग गंगा से चम्बल[२] तक फैला हुआ था। प्राचीन काल में उत्तर पंचाल को प्राप्त करने के हेतु कुरुओं तथा पांचालों में बड़ा युद्ध हुआ था। जब कभी उत्तर पंचाल कुरु राष्ट्र[३] में चला जाता था तो इसकी राजधानी हस्तिनापुर[४] हो जाती थी, वैसे यह भाग काम्पिल्य राष्ट्र[५] के ही अन्तर्गत रहता था। काम्पिल्य के राजा कभी तो अपना दरबार उत्तर पंचाल नगर में लगाते थे और कभी उत्तर पंचाल के नरेश अपना दरबार काम्पिल्य में लगाते थे।[६]

प्रवाहण जैवल या जैवलि की मृत्यु से लेकर मगध के बिम्बिसार तक पंचाल राज्य का इतिहास बिल्कुल अनिश्चित-सा ही है। इस काल में पंचाल के केवल एक शासक दुर्मुख (या दुम्मुख) का नाम मिलता है जो कि मिथिला[७] के प्रायः अन्तिम (अन्तिम से एक पहले) राजा निमि[८] का समकालीन था। कुम्भकार जातक में केवल इतना कहा गया है कि राजा दुर्मुख के राज्य का नाम उत्तर पंचाल राष्ट्र था तथा राज्य की राजधानी अहिच्छत्र नहीं, वरन् मिथिला की काम्पिल्य नगरी थी। यह राजा कलिंग के करण्डु, गंधार के नग्गजि (नग्नजित) तथा विदेह के राजा निमि का समकालीन था। ऐतरेय ब्राह्मण[९] में दुर्मुख को एक विजेता कहा गया है तथा बृहदुक्थ को उनका पुरोहित बताया गया है—

"एतं ह वा ऐन्द्रम् महाभिषेकम् बृहदुक्थ ऋषिर्दुर्मुखाय पंचालाय प्रोवच तस्माद् दुर्मुखः पंचालो राजा सन् विद्यया समन्तम् सर्वतः पृथिवीम् जयान् परीयाय।"

'पुरोहित बृहदुक्थ द्वारा कराये गये राजा दुर्मुख के इन्द्र-महाभिषेक से राजा को सिद्धि प्राप्त हुई तथा उन्होंने दिग्विजय-यात्रा की और चतुर्दिक् विजय प्राप्त की।'[१०]

---

१. महाभारत, I. 138. 70. वैदिक काल के विवरण के लिए देखिये 70f *ante*.

२. महाभारत, I. 138. 73-74.

३. सोमनस्स जातक, नं० 505; महाभारत, I. 138.

४. दिव्यावदान, p. 435.

५. ब्रह्मदत्त जातक, नं० 323; जयद्दिस जातक, नं० 513; गण्डतिन्दु जातक, न० 520.

६. कुम्भकार जातक, नं० 408.

७. जातक, नं० 541.

८. जातक, नं० 408.

९. VIII. 23.

१०. Keith, ऋग्वेद ब्राह्मण (Harvard Oriental Series), Vol. 25.

महाउम्मग्ग जातक[1], उत्तराध्ययन सूत्र[2], स्वप्न-वासवदत्ता[3] तथा रामायण[4] में पंचाल-राजा चुलानि ब्रह्मदत्त का उल्लेख आया है। रामायण के अनुसार, चुलानि ब्रह्मदत्त ने कुशनाभ की कन्याओं से विवाह किया था जिन्हें वायु (वैश्वाना) देवता ने कुब्जा (कुबड़ी) बना दिया था। जातक के अनुसार, ब्रह्मदत्त के मंत्री केवत्त ने उन्हें समूचे भारत का सम्राट् बनाने की योजना बनायी थी और राजा ब्रह्मदत्त ने स्वयं भी मिथिला पर घेरा डाला था। उत्तराध्ययन सूत्र में भी ब्रह्मदत्त को विश्वजनीन सम्राट् कहा गया है, किन्तु इस राजा की कथा को एक कहानी मात्र मानना होगा और कुछ नहीं। इस राजा से सम्बन्धित रामायण की कथा में केवल इतना ही महत्त्वपूर्ण है कि प्राचीन पंचाल-राजाओं ने कान्यकुब्ज (कन्याकुब्ज, कन्नौज) नामक प्रसिद्ध शहर की नींव डाली थी।[5]

उत्तराध्ययन सूत्र में काम्पिल्य के राजा संजय का नाम आया है जिन्होंने अपना राजपद त्याग दिया था और जैन धर्म ग्रहण कर लिया था।[6] हमें यह नहीं पता कि संजय के राज्य-त्याग के बाद क्या हुआ? किन्तु, इस तथ्य पर विश्वास किया जा सकता है कि विदेह, मल्ल तथा कुरु राज्यों की भाँति पंचाल में भी संघीय शासन (**राज-शब्दोपजीविन्**) की स्थापना हुई थी।[7]

१०. **मत्स्य**—मत्स्य राज्य बड़ा विस्तृत था तथा चम्बल की पहाड़ियों से सरस्वती नदी के समीपवर्त्ती जंगलों तक फैला हुआ था। विराट नगर (जयपुर राज्य का बैराट) मत्स्य राज्य का केन्द्र था। इस राज्य के इतिहास पर पहले भी कुछ प्रकाश पड़ चुका है। मगध के बिम्बिसार से पूर्व मत्स्य राज्य पर कैसे-कैसे संकट आए, इस सम्बन्ध में कुछ भी पता नहीं चलता।[8] अर्थशास्त्र में मत्स्य को उन राज्यों में नहीं रखा गया जहाँ पर राजतन्त्र की बजाय गणतन्त्र बने थे। सम्भवतः मत्स्य की स्वतंत्रता छिनने के समय तक यहाँ राजतन्त्र ही बना रहा। एक बार मत्स्य राज्य चेदि राज्य में मिला लिया गया था। महाभारत[9] में ऐसा उल्लेख है कि सहज नाम का एक राजा कभी मत्स्य तथा चेदि दोनों राज्यों पर राज्य करता था। अन्त में इसे मगध साम्राज्य में मिला लिया गया था। अशोक के कुछ सुप्रसिद्ध शिलालेख बैराट में भी मिलते हैं।

---

[1] 546.

[2] *SBE*, XLV. 57-61.

[3] Act. V.

[4] I. 32.

[5] *Cf.* Watters, *Yuan Chwang*, I. 341-42. रतिलाल मेहता ने इस बात की उपेक्षा कर दी है (*Pre-Buddhist India*, 43n)। कन्याकुब्ज या कान्यकुब्ज का महाभारत में जिक्र है (I. 175. 3; V. 119. 4)। महाभाष्य [IV. 1. 2. (233)] में कान्यकुब्जियों तथा अहिच्छत्रियों का उल्लेख। पालि ग्रन्थों में 'कण्णकुज्ज' शब्द मिलता है (*DPPN*, I. 498)।

[6] *SBE*, XLV. 80-82.

[7] अर्थशास्त्र, 1919, p. 378. इस प्रकार के वयोवृद्ध राजा कहे जाते थे। इनमें से एक राजा विशाख पंचालीपुत्र का पितामह था। वह बुद्ध का शिष्य था (*DPPN*, II. 108)।

[8] 66 ff. *ante*.

[9] V. 74. 16; *Cf.* VI. 47. 67; 52.9.

मध्यकाल में मत्स्य-राजवंश की एक शाखा विजगापट्टम में जा बसी।[1] यह भी पता चलता है कि उत्कल देश के राजा जयतसेन ने मत्स्य-वंश के सत्यमार्तण्ड को अपनी कन्या प्रभावती ब्याह कर उन्हें ओड्डवादि देश का शासक नियुक्त किया था। २३ पीढ़ियों के बाद सन् १२६९ ईसवी में हुए यहाँ के राजा का नाम अर्जुन था।

११. **शूरसेन**—शूरसेन देश की राजधानी मथुरा थी, जो कौशाम्बी की भाँति यमुना के तट पर बसी थी। वैदिक साहित्य में इस देश का या इसकी राजधानी का कोई उल्लेख नहीं मिलता, परन्तु यूनानी लेखकों ने अपनी कृतियों में इस राज्य को सौरसेनोय (Sourasenoi) कहा है और इस प्रदेश के दो नगरों का उल्लेख किया है। बौद्ध अध्यात्मवादियों की शिकायत है कि मथुरा में समुचित सुविधाएँ नहीं मिलतीं। यह लोग यहाँ के दमामे[2], शाटक (garments) तथा कार्षपण (coins) से अधिक दिलचस्पी नहीं रखते थे जिनका उल्लेख पंतजलि ने अपने महाभाष्य[3] में किया है। यह नगर एक चौड़ी सड़क द्वारा वेरांजा नामक स्थान से जुड़ा हुआ था, जबकि वेरांजा श्रावस्ती से एवं उस मार्ग से जुड़ा हुआ था जो सोरेय्या, संकस्स, कन्नकुज्ज (कन्याकुब्ज, कन्नौज) और पयाग-पतिट्ठान (इलाहाबाद) से गुजरता था।[4]

महाभारत तथा पुराणों में मथुरा के राजवंश को यदु या यादव-वंश कहा जाता था। यादव-वंश मुख्यतः दो घरानों में बँटा हुआ था। ये घराने थे वीतिहोत्र तथा सात्वत।[5] सात्वत घराना भी कई कुटुम्बों में बँटा हुआ था। इन कुटुम्बों में दैवावृद्ध, अन्धक, महाभोज तथा वृष्णि प्रमुख थे।[6]

ऋग्वेद में यदु और यदुवंश का उल्लेख कई बार आया है। ये लोग तुर्वश, द्रुह्यु, अनु तथा पूरु से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित कहे गये हैं।[7] महाभारत तथा पुराणों की कथाओं से भी इन सम्बन्धों की पुष्टि हुई है। इन कथाओं में यदु तथा तुर्वश को एक ही माँ-बाप की सन्तान कहा गया है तथा द्रुह्यु, अनु और पूरु को उनका सौतेला भाई बताया गया है।

ऋग्वेद[8] से हमें पता चलता है कि यदु तथा तुर्वश किसी दूरस्थ प्रदेश से यहाँ आये थे। यदु का सम्बन्ध तो मुख्यतः फ़ारस[9] से स्थापित किया गया है। वैदिक

---

[1] दिव्बिद प्लेट, *Ep. Ind.*, V. 108.

[2] *Gradual Sayings*, II. 78; III. 188.

[3] I. 2. 48 (Kielhorn, I. 19)।

[4] *Gradual Sayings*, II. p. 66; *DPPN*, II. 438, 930, 1311.

[5] मत्स्य, 43-44; वायु, 94-96.

[6] विष्णु, IV, 13. 1; वायु, 96. 1-2.

[7] I, 108. 8.

[8] I. 36. 18; VI. 45. 1.

[9] VIII. 6. 46. कुछ प्रमाणों के आधार पर पश्चिमी एशिया और भारत का सम्बन्ध ईसापूर्व से पहले का लगता है। ऋग्वेद के कुछ देवता, जैसे सूर्य, मरुत, इन्द्र, मित्र, वरुण, नासत्य तथा दक्ष (*Dakash*, star, *CAH*, I.553) का उल्लेख बाद के ग्रन्थों में भी मिलता है।

साहित्य में सत्वातों का भी उल्लेख आया है। शतपथ ब्राह्मण[१] में कहा गया है कि एक बार भरत-वंश वालों ने सत्वातों से उनका यज्ञ का घोड़ा छीन लिया था। भरत-वंश द्वारा सरस्वती, यमुना तथा गंगा[२] के तट पर यज्ञ किये जाने के उल्लेख से भरत-वंश के राजाओं के राज्य की भौगोलिक स्थिति बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है। इसी के आसपास सत्वातों का राज्य भी रहा होगा। इस प्रकार महाभारत व पुराणों में सत्वातों के मथुरा से सम्बन्धित होने की पुष्टि हो जाती है। बाद में सत्वातों का एक घराना दक्षिण की ओर चला गया, क्योंकि ऐतरेय ब्राह्मण[३] में सत्वातों को दक्षिण का कहा गया है। ये लोग कुरु-पंचाल देश से आगे, अर्थात् चम्बल नदी के पार रहते थे और भोज राजाओं द्वारा शासित थे। पुराणों में भी भोज राजाओं को सत्वातों की ही एक शाखा कहा गया है[४]—

"भजिन-भजमान दिव्यान्धक देवावृद्ध-महाभोज वृष्णि संज्ञः सात्वतस्य पुत्रा बभूवुः............महाभोजस्त्वति धर्मात्मा तस्यान्वे भोज-मार्तिकावता बभूवुः।"

आगे कहा गया है कि दक्षिण में माहिष्मती, विदर्भ आदि कई राज्यों की स्थापना भी यदुवंशियों ने ही की थी।[५] वैदिक साहित्य में भोज ही नहीं, वरन् सत्वात-वंश की देवावृध शाखा का भी उल्लेख मिलता है। ऐतरेय ब्राह्मण[६] में बभ्रु दैवावृध[७] को विदर्भ के भीम तथा गन्धार के नग्नजित का समकालीन कहा गया है। पाणिनि की अष्टाध्यायी[८] में अन्धकों और वृष्णि का उल्लेख आया है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र[९]

---

१. XIII. 5. 4. 21. **शतानीकः समन्तासु मेध्यम् सात्राजितो हयम्**
आदत्त यज्ञं काशीनम् भरतः सत्वतामिव।

महाभारत, VII. 66.7 (**मा सत्वानि विजीजहि**) में ब्राह्मण-ग्रन्थों की गाथा नहीं आ सकी है।

२. शतपथ ब्राह्मण, XIII. 5. 4. 11; ऐतरेय ब्राह्मण, VIII. 23; महाभारत, VII. 66. 8.

अष्टासप्ततिम् भरतो दौःषन्तिर्यमुनामनु
गंगायाम् वृत्रघ्ने ऽबध्नात् पंचपंचाशतम् हयान्
महाकर्म (variant **महदद्य**) **भरतस्य न पूर्वे नापरे जनाः**
दिव्यं मर्त्य इव हस्ताभ्याम् (variant **बाहुभ्याम्**)
नोदापुः पंच मानवा (**इति**)।
सो ऽश्वमेधशतेनेष्ट्वा यमुनामनु वीर्यवान्
त्रिशतास्वान् सरस्वत्याम् गंगामनु चतुःशतान्।

३. VIII. 14.3.

४. विष्णु, IV. 13. 1-6; महाभारत, VIII. 7.8. सत्वात-भोज लोग आनर्त्त (गुजरात) के रहने वाले थे।

५. मत्स्य पुराण, 43. 10-29; 44. 36; वायु, 94. 26; 95.35.

६. वायु, 96.15; विष्णु, 13. 3-5.

७. VII. 34.

८. IV. 1. 114; VI. 2.34.

९. P. 12.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

में वृष्णि-वंश की चर्चा संघ या गणतंत्र के रूप में की गई है। महाभारत में भी वृष्णि, अन्धक, तथा अन्य वंशों को संघ[1] कहा गया है। वृष्णि राजा वासुदेव को संघ-मुख्य की संज्ञा प्रदान की गई है। कुछ सिक्कों में वृष्णि गणराज्य का नाम मिलता है।[2] महाभारत तथा पुराणों में कहा गया है कि यूनान के पीसिस्ट्रेटस (Peisistratus) की भाँति कंस ने मथुरा में अत्याचार तथा बल-प्रयोग द्वारा यदुवंशियों को समाप्त करने का प्रयास किया था, किन्तु वृष्णि के वंशज कृष्ण-वासुदेव ने उसे मार डाला। घट जातक[3] तथा पतंजलि द्वारा भी कृष्ण द्वारा कंस के वध का उल्लेख किया गया है। घट जातक में कृष्ण-वासुदेव के मथुरा (उत्तर मधुरा)[4] से सम्बन्धित होने की पुष्टि की गई है।

---

[1] XII. 81. 25.

[2] Majumdar, *Corporate Life in Ancient India*, p. 119; Allan, *CCAI*, pp. elvf. 281.

[3] No. 454.

[4] दक्षिण भारत की मदुरा नगरी से भिन्न दर्शाने के उद्देश्य से ही मथुरा को उत्तर मधुरा कहा गया है। कृष्ण-वासुदेव के ऐतिहासिक अस्तित्व के प्रश्न पर मैं अपनी पुस्तक *'Early History of the Vaishnava Sect'*, 1st ed., pp. 26-35; 2nd. ed; pp. 51 ff. तथा *Political History of Ancient India*, 1st ed., 1923, p. 312 में विचार कर चुका हूँ।

अनेक विद्वानों ने महाभारत के श्रीकृष्ण को छान्दोग्य उपनिषद् (III. 17) का ऐतिहासिक कृष्ण मानने से इन्कार किया है, परन्तु इस सम्बन्ध में हमें निम्न बातों को ध्यान में रखना चाहिये—

(क) दोनों कृष्ण देवकीपुत्र कहे गये हैं। प्राचीन युग में इस प्रकार की समानता दुर्लभ है।

(ख) उपनिषद् के कृष्ण को एक ऐसे परिवार (आंगिरस) से सम्बद्ध कहा गया है जो महाभारत के कृष्ण के सम्बन्धी भोज-वंश (ऋग्वेद, III, 53,7) के सहयोगी थे।

(ग) उपनिषद् के कृष्ण तथा उनके गुरु घोर आंगिरस सूर्य देवता के उपासक थे। महाभारत के शान्तिपर्व (335. 19) से हमें पता चलता है कि महाभारत के श्रीकृष्ण द्वारा प्रतिपादित सात्वत-विधि "प्राक्-सूर्यमुख निःसृत" ही थी।

(घ) उपनिषद् के कृष्ण के गुरु आंगिरस गोत्र के थे। महाभारत के कृष्ण ने (महाभारत, VIII. 69. 85) आंगिरसी श्रुति को 'श्रुतीनामुत्तमा श्रुतिः' कहा है।

(ङ) उपनिषद् के कृष्ण को सूर्य की उपासना की शिक्षा दी गई है (ज्योतिर्-उत्तममिति तथा तमसस्परि)। गीता (XIII. 18) में भी इसकी तुलना मिलती है—
ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमः उच्यते।

(च) उपनिषद् के कृष्ण को भौतिक पुरस्कार को महत्त्व न देकर **'तपोदानम् आर्जवम् अहिंसा सत्यवचनम्'** गुणों को ग्रहण करने को कहा गया है। गीता में भी फल की चिन्ता किये बिना कर्म पर बल दिया गया है। गीता (XVI. 1.2) में उपनिषद् में प्रतिपादित गुणों का ही विशेष उल्लेख है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वृष्णि-वंश के पतन का मुख्य कारण इस वंश के लोगों द्वारा ब्राह्मणों[1] के प्रति अनादरपूर्ण आचरण था। यह बात उल्लेखनीय है कि महाभारत के द्रोणपर्व[2] में वृष्णि तथा अन्धक दोनों वंशों को व्रात्य कहा गया है। यह ध्यान देने योग्य है कि ऐतिहासिक युग में भी वृष्णि, अन्धक, मल्ल तथा लिच्छवि आदि व्रात्य परिवार के लोग 'ध्रुवा मध्यमा दिश' के दक्षिणी व पूर्वी क्षेत्रों में बसे हुए थे। जहाँ कुरु व पंचाल के अतिरिक्त दो और राजवंश के लोगों का निवास था। यह असम्भव नहीं कि ये लोग भारत में प्रविष्ट होने वाले आर्यों के प्रथम जत्थे के साथ ही आये हों और कुरु-पंचाल के पूर्वज पुरु व भरत वंशों द्वारा दक्षिण की ओर खदेड़ दिये गये हों। स्मरण रहे कि शतपथ ब्राह्मण में भरत-वंशीय राजाओं द्वारा वृष्णि-अंधक के पूर्वज सत्वातों को हराये जाने की चर्चा की गई है। महाभारत में कहा गया है कि मगध के पौरवों तथा कुरुओं की शक्ति तथा उनके दबाव के फलस्वरूप ही यदुवंशी लोग दक्षिण की ओर चले गये थे।[3]

बौद्ध-ग्रन्थों में शूरसेन के राजा अवन्तीपुत्त की चर्चा आई है। ये शाक्यमुनि के प्रमुख शिष्य महाकच्चान[4] के समय में हुए थे। इन्हीं के माध्यम से मथुरा-क्षेत्र

पुराणों में घोर के स्थान पर सांदीपनि को कृष्ण का गुरु कहा गया है, परन्तु यहाँ इस बात को ध्यान में रखना होगा कि विष्णु पुराण (V. 21. 19) के अनुसार कृष्ण अस्त्र-शिक्षा के लिए गुरु सांदीपनि के पास गये थे।

ततः सान्दीपनिम् काश्यम् अवन्तीपुरवासिनाम्
अस्त्रार्थम् जगमतुर्वीरौ बलदेव-जनार्दनौ।

हरिवंश (विष्णु पर्व, 33.4ff.) से हमें पता चलता है कि श्रुतिधर बनने के बाद भी कृष्ण ने सांदीपनि के साथ इसलिए निवास किया था ताकि वे धनुर्विद्या का ज्ञान प्राप्त कर सकें। उन्होंने इस गुरु से अखिल वेद अथवा त्रयी की ही नहीं, वरन् सांग वेद की भी शिक्षा ली थी। यहाँ पर केवल धनुर्वेद का ही स्पष्ट उल्लेख किया गया है। भागवत तथा ब्रह्मवैवर्त पुराणों में समस्त वेदों, उपनिषदों, विधि, दर्शन इत्यादि से सम्बन्धित संहिताओं का विस्तृत विवरण है, परन्तु विष्णु पुराण में इनका उल्लेख नहीं है। बंकिम चन्द्र चट्टोपाध्याय जैसे आलोचकों ने विष्णुपुराण को ही प्राचीन एवं अधिक विश्वसनीय ग्रन्थ माना है। अतः सांदीपनि के साथ निवास का इस तथ्य से कोई विरोध नहीं है कि कृष्ण ने केवल धार्मिक एवं दर्शनशास्त्र की शिक्षा के उद्देश्य से ही घोर को गुरु बनाया था। सांदीपनि जानते थे कि कृष्ण श्रुतिधर, अर्थात् श्रुति एवं वेदों के ज्ञाता थे। (हरिवंश, विष्णु पर्व. 33.6)

कुछ नामों के सम्बन्ध में वेदों एवं महाभारत के विवरण में वास्तविक विरोधाभास का पता चलता है, परन्तु इसे वैदिक आख्यान एवं महाभारत के समवर्ती विवरण की समरूपता पर सन्देह करने का पर्याप्त कारण नहीं समझ लेना चाहिये।

[1] महाभारत, मौशल पर्व (I. 15-22; 2. 10); अर्थशास्त्र, 1919, p. 12; जातक, Eng. trans., IV. pp. 55-56.

[2] 141. 15.

[3] *Cf.* **बहु-कुरुचरा मथुरा**, पतंजलि, IV. 1. 1; *GEI.*, p. 395n.

[4] M. 2.83; DPPN, II, 438.

में बुद्धधर्म का प्रचार हुआ था। राजा अवन्तीपुत्त के नाम से लगता है कि ये अवन्ती के राजवंश से भी सम्बन्धित थे। काव्य-मीमांसा[१] में कुविन्द नामक राजा का भी उल्लेख आया है। शूरसेन मेगास्थनीज़ के समय तक एक सशक्त तथा प्रभावशाली राष्ट्र के रूप में विद्यमान थे। किन्तु, इस समय वे निश्चित रूप से मौर्य-राज्य के अधीन हो गये रहे होंगे।

12. **अस्सक**—अस्मक (या अश्मक) राज्य गोदावरी[२] के तट पर बसा हुआ था। हैदराबाद निज़ाम के क्षेत्र में पड़ने वाले बोधन नाम को हम अस्मक की राजधानी कह सकते हैं। इसका प्राचीन नाम पोतलि, पोतन या पोदन था।[३] इससे लगता है कि यह स्थान मूलक तथा कलिंग[४] के बीच था। सोननन्द जातक में अस्मक को अवन्ती से सम्बन्धित कहा गया है। इससे यह संकेत मिलता है कि उन दिनों अस्सक राज्य में मूलक तथा समीपवर्त्ती ज़िले तो शामिल थे ही, साथ ही अस्सक का राज्य भी अवन्ती की दक्षिणी सीमा तक फैला हुआ था।[५]

वायु पुराण[६] में अश्मक तथा मूलक को इक्ष्वाकु का वंशज कहा गया है तथा महाभारत में राजर्षि अश्मक को पोदन नगर का संस्थापक माना गया है। इससे सिद्ध होता है कि अश्मक और मूलक राज्यों की स्थापना इक्ष्वाकु-वंश के लोगों ने की, जैसे यदुवंश के लोगों ने विदर्भ तथा दण्डक राज्यों की नींव डाली। महागोविन्द सुत्तन्त में अस्सक राजा ब्रह्मदत्त का उल्लेख करते हुए उसे कलिंग के सत्ताभु, अवन्ती के वेस्सभु, सोवीर के भरत, विदेह के रेणु, अंग तथा काशी के राजा धतरट्ठ का समकालीन कहा गया है।[७]

अस्सक जातक[८] के अनुसार, किसी समय पोतलि नगर काशी राज्य के अन्तर्गत था। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि अस्सक का राजा भी काशी के अधीनस्थ ही रहा होगा। चुल्ल कालिंग जातक में अस्सक के एक राजा का नाम

---

[१] तृतीय संस्करण, p. 50. उन्होंने कठोर संयुक्त व्यंजनों के प्रयोग को प्रोत्साहन नहीं दिया।

[२] सुत्त निपात, 977.

[३] चुल्ल-कालिंग जातक, No. 301; D. 2. 235; Law, *Heaven and Hell in Buddhist Perspective*, 74; महाभारत, I. 177. 47. जैसा कि डॉ॰ सुक्थान्कर का कहना है कि पहले की पांडुलिपियों में पोतन या पोदन नाम आया है, पौदन्य नहीं। यह कथन महागोविन्द सुत्तन्त (अस्कानाञ्च पोतनम्) तथा परिशिष्ट-पर्वन् (I, 92—नगरे पोतनाभिधे) की तत्सम्बन्धी दृष्टियों से मेल भी खाता है।

[४] सुत्त निपात, 977; जातक, नं॰ 301.

[५] *Cf.* भण्डारकर, *Carm. Lec.*, 1918, pp. 53-54. महागोविन्द सुत्तन्त से ऐसा लगता है कि किसी समय अवन्ती नगर दक्षिण की ओर नर्मदा की घाटियों तक फैला हुआ था। उसमें माहिष्मती नगर भी था जो नर्मदा के किनारे बसा था।

[६] 88. 177-78; महाभारत, I. 177. 47.

[७] *Dialogues of the Buddha*, Part II, p. 270. अन्तिम राजा का नाम शतपथ ब्राह्मण (XIII. 5. 4. 22) में भी आया है।

[८] No. 207.

अरुण तथा उसके मन्त्री का नाम नन्दिसेन कहा गया है। यह भी उल्लेख्य है कि इस राजा ने एक बार कलिंग के राजा पर विजय प्राप्त की थी।

13 **अवन्ती**—मोटे तौर से अवन्ती राज्य समूचे उज्जैन-क्षेत्र में फैला हुआ था। मान्धाता से लेकर महेश्वर तक नर्मदा की घाटी भी अवन्ती राज्य में आ जाती थी। जैन ग्रन्थकारों ने ग्वालियर राज्य के गुना ज़िले के एरान से ५० मील दूर स्थित तुम्बवन को भी अवन्ती के ही अन्तर्गत कहा है।[1] विन्ध्याचल पहाड़ के कारण राज्य दो भागों में विभाजित हो गया था। अवन्ती राज्य के उत्तरी भाग में सिप्रा तथा अन्य नदियाँ बहती थीं तथा इसकी राजधानी उज्जैन थी। दक्षिणी भाग नर्मदा की घाटी में ही था और माहिस्सती या माहिष्मती[2] जो कि मान्धाता द्वीप[3] भी मानी जाती थी, इसकी राजधानी थी।

बौद्ध तथा जैन ग्रन्थकारों ने अवन्ती के कुछ अन्य नगरों का भी उल्लेख किया है। इन नगरों में कुररघर, मक्करकट तथा सुदर्शनपुर[4] प्रमुख हैं। महागोविन्द सुत्तन्त में माहिस्सती को अवन्ती की राजधानी तथा वेस्सभु को अवन्ती का राजा कहा गया है। महाभारत में अवन्ती तथा माहिष्मती को अलग-अलग कहा गया है परन्तु अवन्ती के विन्द और अनुविन्द को नर्मदा-तट पर बसे नगर कहा है।[5]

पुराणों के अनुसार, माहिष्मती, अवन्ती तथा विदर्भ की स्थापना यदुवंश के लोगों ने ही की थी। ऐतरेय ब्राह्मण में भी सत्वातों तथा भोजों को दक्षिण में फैली हुई यदुवंश की शाखा का कहा गया है।[6]

---

[1] इह इव जम्बूद्वीपेऽपाग् भरतार्धं विभूषणम्
अवन्तिरिति देशोऽस्ति स्वर्गदेशीय ऋद्धिभिः
तत्र तुम्बवनमिति विद्यते सन्निवेशनम्।
—परिशिष्टपर्वन्, XII. 2.3.

तुम्बवन के लिये *Ep. Ind.*, XXVI. 115 ff. भी देखिए।

[2] J. V. 133 (*DPPN*, I. 1050) में अवन्ती को दक्षिणापथ में कहा गया है। इससे यह बड़ी कठिनाई से समझा जा सकता है कि 'दक्षिणापथ' का अर्थ केवल दक्षिणी भाग ही था (भण्डारकर, *Carm. Lec.*, 54)।

[3] Pargiter, मार्कण्डेय पुराण; Fleet (*JRAS*, 1910, 444f.)। इसे स्वीकार करने में एक कठिनाई है। 'मान्धाता' पारियात्र पर्वत (पश्चिमी विन्ध्य) के दक्षिण में था। 'माहिष्मती' विन्ध्य और ऋक्ष के बीचोबीच था—विन्ध्य के उत्तर तथा ऋक्ष के दक्षिण। टीकाकार नीलकंठ के अनुसार भी यही उल्लेख मिलता है (हरिवंश, II. 38. 7-19)। महेश्वर जहाँ कि होल्कर वंश के लोग भी कुछ समय तक रहे हैं, उसके लिए *Ind. Ant.*, 1875, 346ff. देखिए। मान्धाता के लिए *Ibid.*, 1876, 53 देखिए।

[4] Luder's Ins., No. 469; *Gradual Sayings*, V. 31; Law, *Ancient Mid-Indian Kshatriya Tribes*, p. 158; *DPPN*, I. 193; कथाकोश, 18.

[5] **नर्मदामभितः**, महाभारत, II. 31. 10.

[6] मत्स्य, 43-44; वायु, 95-96; ऐतरेय ब्राह्मण, VIII. 14.

पुराणों में माहिष्मती राज्य के प्रथम राजवंश को हैहय[1] कहा गया है। उक्त वंश का नाम कौटिल्य के अर्थशास्त्र[2] में आया है। इसके अतिरिक्त, महाभारत की षोड्शराजिका कथा में भी इसका उल्लेख हुआ है। कहते हैं नर्मदा की घाटी[3] के मूलवासी नागवंशियों को हैहयों ने ही वहाँ से भगाया था। मत्स्य पुराण के अनुसार, हैहय-वंश की पाँच प्रमुख शाखायें थीं। ये शाखायें वीतिहोत्र, भोज, अवन्ती, कुण्डीकेर तथा तालजंघ थीं।[4] अवन्ती के वीतिहोत्र-वंश का अन्त इस प्रकार हुआ कि राजा के मंत्री पुलिक (पुणिक) ने अपने स्वामी की हत्या करके अपने पुत्र प्रद्योत को राज्य-सिंहासन पर बिठाया। अवन्ती का यह राजनीतिक परिवर्त्तन क्षत्रियों की आँखों के सामने ही हुआ था।[5] चौथी शताब्दी ईसापूर्व में अवन्ती राज्य मगध साम्राज्य का एक अंग हो गया।

14· **गंधार**—प्राचीन गंधार राज्य में कश्मीर की घाटी तथा महत्त्वपूर्ण एवं प्रख्यात नगर तक्षशिला सम्मिलित थे। तक्षशिला नगर वाराणसी[6] से ६००० मील अथवा २००० लीग की दूरी पर था, फिर भी दूर-दूर देशों के लोग अध्ययनार्थ यहाँ आया करते थे।

पुराणों में गंधार के राजा को द्रुह्यु[7] का वंशज कहा गया है। ऋग्वेद में अनेक बार इस राजा एवं उसकी प्रजा की चर्चा की गई है और प्रत्यक्ष रूप से उन्हें उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र का निवासी माना गया है।[8] यह विवरण पौराणिक विवरण से मिलता है। गंधार के राजा नग्नजित को विदेह के राजा निमि, पंचाल के दुर्मुख, विदर्भ[9] के भीम तथा कलिंग के करकुण्ड का समकालीन कहा जाता है, इसकी चर्चा

---

[1] मत्स्य, 43, 8-29; वायु, 94, 5-26.

[2] अर्थशास्त्र, p. 11; महाभारत, VII. 68. 6 etc.; सौन्दरानन्द, VIII. 45.

[3] *Cf.* नागपुर; और *Ind. Ant.*, 1884, 85; *Bomb. Gaz.*, I., 2. 313 etc.

[4] 43. 48-49.

[5] हमें इससे यह नहीं समझना चाहिए कि पुणिक का वंश एक छोटी जाति (चरवाहे) से उत्पन्न हुआ था। पुराणों के अनुसार, वंश-परिवर्त्तन एक अमात्य (civil functionary) के द्वारा हुआ था, न कि सेनापति द्वारा। इसी कारण सेना (kshatriyas) ने अधिक ध्यान भी नहीं दिया। अमात्य लोग निस्संदेह ही क्षत्रियों की तरह एक सम्मानित वर्ग थे (*Cf.* also Fick, Ch. VI)। तिब्बत के लोग अनन्तनेमि को प्रद्योत का पिता कहते हैं (*Essay on Gunadhya*, p. 173)।

[6] जातक, नं० 406; तेलपट्ट जातक, नं० 96.; सुसीम जातक, नं० 163.

[7] मत्स्य, 48. 6; वायु, 99. 9.

[8] *Vedic Index*, I. 385.

[9] कुम्भकार जातक; ऐतरेय ब्राह्मण, VII. 34; शतपथ ब्राह्मण, VIII. 1.4.10; उत्तराध्ययन सूत्र। महाभारत (V. 48. 75) में एक नग्नजित का उल्लेख आया है जो कृष्ण का समकालीन तथा गंधारवासी था, किन्तु महाभारत में ही शकुनि को भी पांडवों तथा कृष्ण के समकालीन तथा गंधार का राजा कहा गया है।

हम पहले ही कर चुके हैं । जैन ग्रन्थकारों का कहना है कि उक्त राजागण जैन मत में दीक्षित थे ।[1] चूंकि पार्श्व (७७७ ईसापूर्व ?) सम्भवतः जैन धर्म स्वीकार करने वाला प्रथम ऐतिहासिक राजा था, अतः नग्नजित—यदि यह सत्य है कि उन्होंने जैनधर्म स्वीकार कर लिया था—७७७ ईसापूर्व से ५४४ वर्ष ईसापूर्व के बीच हुआ होगा । यह बिम्बिसार के समकालीन गंधार-नरेश पुक्कुसाति का समय था । नग्नजित द्वारा जैन मत स्वीकार करने का उल्लेख न तो जातक में निहित उस कथा से मेल खाता है जिसमें नग्नजित तथा उसके परामर्शदाताओं को 'पच्चेक बुद्ध' की उपाधि से विभूषित किया गया है और न ही ब्राह्मण-संस्कारों में उनकी एवं उनके पुत्र स्वर्जित[2] की रुचि ही इस तर्क का समर्थन करती है । फिर भी इस बात को ध्यान में रखना होगा कि धर्म-सम्बन्धी इन मामलों में इस परिवार के विचारों को अधिक आदर की दृष्टि से नहीं देखा जाता था । विभिन्न सम्प्रदायों के प्रतिद्वन्द्वी दावों को भी अधिक गम्भीरतापूर्वक नहीं लिया जाना चाहिए । उपर्युक्त बातों से यही निष्कर्ष निकलता है कि यह परिवार धार्मिक मामलों में रुचि रखता था, परन्तु उनके विचार कट्टर ब्राह्मणपन्थी विचारधारा से मेल नहीं खाते थे ।

छठी शताब्दी के मध्य में गंधार के सिंहासन पर राजा पुक्कुसाति आसीन थे । उन्होंने अपना एक राजदूत मगध के दरबार में भेजा था तथा अवन्ती के राजा प्रद्योत से युद्ध करके उसे परास्त किया था ।[3] कहा जाता है कि पाण्डवों ने, जो तोलेमी के समय तक पंजाब में बने हुए थे, राजा पुक्कुसाति को काफ़ी परेशान किया था । छठी शताब्दी ईसापूर्व के उत्तरार्ध में गंधार पर फ़ारस के शासक का अधिकार स्थापित हो गया था । दारियस के बहिस्तान-शिलालेख (*cir.*520-518 B.C) गंधारवासी (अथवा गदर) अकीमेनिडन साम्राज्य की प्रजा थे ।[4]

15· **कम्बोज**—विविध साहित्य तथा शिलालेखों[5] में कम्बोज तथा गंधार को एक-दूसरे से सम्बद्ध कहा गया है । गन्धार की भाँति कम्बोज भी उत्तरापथ (सुदूर उत्तर भारत)[6]

---

१. *SBE*, XLV. 87.

२. शतपथ ब्राह्मण, VIII. 1. 4. 10. *Vedic Index*, I. 432.

३. *Buddhist India*, p. 28; *DPPN*, II. 215; *Essay on Gunadhya*, p. 176.

४. See "*Ancient Persian Lexicon and the Texts of the Achaemenidan Inscriptions*" by Herbert Cushing Tolman, Vanderbilt Oriental Series, Vol. VI; *Old Persian Inscriptions*, by Sukumar Sen; *Camb. Hist. Ind.*, I. 334. 338.

५. महाभारत, XII. 207. 43; अंगुत्तर निकाय, P. T. S., I. 213; 4.252; 256, 261. अशोक के पाँचवें शिलालेख के अनुसार, कम्बोज को गन्धार से सम्बन्धित किया जा सकता है जो कि अपनी अच्छी क़िस्म की ऊन के लिए प्रसिद्ध था (ऋग्वेद, V. 1. 126. 7), जिसे कम्बोज लोग कम्बल के रूप में उपयोग करते थे (यास्क, II. 2) ।

६. *Cf*. महाभारत, XII. 207. 43; राजतरंगिणी, IV. 163-165; उत्तरी कश्मीर में कम्बोज नामक स्थान का ऐतिहासिक वृत्तान्त नहीं मिलता है । सामान्य रूप में यह स्थान उत्तरापथ के राज्य में, स्पष्टतया सुदूर उत्तर दिशा में, तुखारों (Tukharas) के देश से अलग स्थित है ।

का राज्य था। अतः इसे इण्डो-चीन के कम्बोडिया[१] राज्य से भिन्न समझा जाना चाहिए और इसकी भौगोलिक स्थिति के लिये हमें भारत-पाकिस्तान के उत्तर-पश्चिमी भूभाग और गन्धार के समीप किसी स्थान की कल्पना करनी चाहिए। महाभारत में कम्बोजों को राजपुर[२] नामक स्थान (**कर्ण राजपुरम् गत्वा काम्बोजा निर्जिता स्त्वया**)[३] से सम्बन्धित कहा गया है। महाभारत में उल्लिखित राजपुर नामक स्थान पुंछ के दक्षिण-पूर्व में था। युवान च्वांग[४] ने भी इसी नाम के एक स्थान की चर्चा की है। कम्बोज राज्य की सीमा काफिरिस्तान की ओर थी। एलफिन्सटन के अनुसार, यहाँ के आदिवासियों में अभी तक कॉमोजी, कैमोज़ तथा कमोज़ नाम के लोग मिलते हैं जिनसे प्राचीन 'कम्बोज' शब्द की याद सहज हो आती है।[५]

---

[१] हिन्दुओं की बस्ती 'कम्बुज' के लिए इलियट का *Hinduism and Buddhism*, III, pp. 100 ff. देखिए; B. R. Chatterji, *Indian Cultural Influence in Cambodia*; R. C. Majumdar, *Kambujadesha* भी देखिए।

[२] महाभारत, VII. 4. 5.

[३] "Karna *having gone to* (गत्वा) Rajapura"—कम्बोजों को पराजित किया। यह उद्धरण इस बात को सूचित नहीं करता है कि कर्ण (Karna) 'कम्बोज' वाया 'राजपुर' (Rajapura) तक बढ़ा हो। इस सम्बन्ध मे यह भी संकेत करना बिलकुल निरर्थक प्रतीत होता है कि 'बैक्ट्रिया' (Bactria) देश के 'राजगृह' (Rajagriha) से 'राजपुर' (Rajapura) का कुछ लगाव रहा है, जैसा कि एक लेखक के लेख (*Proceedings and Transactions of the Sixth Oriental Conference*, Patna, p. 109) में दर्शित है। 'कम्बोज' (Kamboja) को 'बाल्हिक' (Balhika) या (Bactria) से एकदम पृथक् माना गया है। इस संदर्भ में रामायण (1.6. 22), महाभारत (VII, 119. 14.26) और मुद्राराक्षस (II) देखा जा सकता है।

[४] Watters, *Yuan Chwang*, Vol. I, p. 284; प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता 'कनिंघम' (Cunningham) (*AGI*, 1924, p. 148) प्रमाणित करता है कि कश्मीर के दक्षिणी भाग में स्थित 'राजोरी' (Rajaori) के नायकत्व में राजपुर (Rajapura) रहा है। यथार्थतः महाभारत (II. 27) में कम्बोज और अभिहार को बिलकुल पृथक् माना गया है और अभिसार (Abhisar) जिसे 'राजोरी' (Rajaori) क्षेत्र में प्रमाणित किया जाता है, कोई भी अर्थ नहीं रखता है कि दोनों स्थान उस काल में बिलकुल स्वतन्त्र रूप से नामधारी अथवा अधिकारी रहे हों। क्या 'ग्रेट एपिक' (*Great Epic*, II. 30, 24-25) 'सुह्म' (Suhma) और 'ताम्रलिप्ति' (Tamralipti) दोनों में पृथक्त्व नहीं प्रदर्शित करता है? क्या 'दशकुमार-चरित' (*Dashakumara-Charita*) 'दामलिप्त' (Damlipta) जो 'सुह्म' (Suhma) देश में स्थित है, पर समान रूप से ज़ोर देता है, अथवा निश्चयता प्रकट करता है? सत्य तो यह है कि 'राजोरी' (Rajaori) 'कम्बोज' (Kamboja) के केवल एक भाग के रूप में रहा है और जो कि अन्य क्षेत्र भी अपने में निहित करता है। परवर्ती काल में 'राजोरी' या 'राजौरी' के शासक परिवार के लोग 'खश' (Khasa) जाति के रहे हैं (*JASB*, 1899, Extra No. 2.28)।

[५] Elphinstone, *An Account of the Kingdom of Kabul*, Vol. II. pp. 375-377; *Bomb. Gaz.*, I. 1. 498n; *JRAS*, 1843, 140;

हो सकता है उत्तर-वैदिक काल में कम्बोज ब्राह्मण-विद्या का केन्द्र रहा हो। वंश ब्राह्मण में काम्बोज औपमन्यव[१] नाम के गुरु का उल्लेख आया है। मज्झिम निकाय[२] में कम्बोज में आर्यों का होना स्वीकार किया गया है, परन्तु यास्क के समय तक भारतवर्ष के अन्दर के आर्यों से कम्बोजों को भिन्न माना जाने लगा था।[३] दोनों की भाषा में भी अन्तर था। आगे चलकर और परिवर्तन भी हुए थे और भूरिदत्त जातक[४] में कम्बोजों को अनार्य (या जंगली) कहा गया है—

एते हि धम्मा अनरिय रूपा
कम्बोजकानम् वितथा बहुन्नन् ति।[५]

उपर्युक्त पंक्तियाँ युवान च्वांग के उस वर्णन से पूर्णरूपेण मेल खाती हैं; जो उसने कम्बोजों के सम्बन्ध में लिखा है। युवान च्वांग लिखता है—"लम्पा से राजपुर तक के क्षेत्र में बसने वाले देखने में सरल और कड़े स्वभाव के लगते हैं। बोली से काफ़ी तेज और असंस्कृत मालूम होते हैं। ये लोग वास्तव में भारतवासी नहीं हैं, बल्कि सीमावर्ती क्षेत्र के निम्न कोटि के लोग हैं।"[६]

महाभारत-काल में सम्भवतः राजपुर ही कम्बोज़ों का मुख्य नगर था। प्रोफेसर रीज़ डेविड्स के अनुसार, आरम्भिक बुद्धकाल में द्वारका कम्बोज़ों की राज़धानी थी। किन्तु द्वारका कम्बोज राज्य में नहीं थी, बल्कि कम्बोज से द्वारका को एक सड़क जाती थी।[७] लूडर-शिलालेखों (१७६ तथा ४७२) में उल्लिखित नन्दि नगर ही कम्बोज का वास्तविक नगर था।

वैदिक साहित्य में किसी भी कम्बोज राजा का उल्लेख नहीं मिलता। किन्तु, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, वैदिक साहित्य में काम्बोज औपमन्यव नामक गुरु का उल्लेख मिलता है जो सम्भवतः कम्बोज प्रदेश के ही थे। महाभारत के अनुसार, कम्बोज में राजतन्त्र शासन-प्रणाली थी।[८] महाभारत में कम्बोज राजा चन्द्रवर्मन तथा

JASB, 1874, 260n; Wilson, विष्णु पुराण, III. 292. पालि-ग्रन्थों में
कम्बोजों के प्रसंग में '**अस्सानम् आयतनम्**' का उल्लेख, जिसका अर्थ 'घोड़ों का देश'
है, मिलता है (*DPPN*, I. 526; *Cf*. महाभारत, vi. 90. 3)। इसकी तुलना
अस्पासिओई तथा अस्साकेनोई शब्दों से की जा सकती है जो विभिन्न ग्रन्थकारों ने
सिकन्दर के समय में अलिशंग तथा स्वात की घाटियों में रहने वालों के लिए लिखा
है (*Camb. Hist. Ind.*, I. 352n)।

[१] *Vedic Index*, I. 127, 138; यास्क, II. 2.

[२] II. 149.

[३] II. 2; *JRAS*, 1911, 801f.

[४] No. 543.

[५] जातक, VI. 208.

[६] Watters, I. 284; कम्बोजों के लिए S. Levi, "*Pre-Aryen et Pre-Dravidien dans l'Inde*", *JA*, 1923 भी देखिए।

[७] *DPPN*, I. 526; *Cf*. Law, *The Buddhist Conception of Spirits*. pp. 80-83.

[८] *Cf*. I. 67. 32; II. 4. 22; V. 165. 1-3; VII. 90. 59, etc.

सुदक्षिण के नाम मिलते हैं। कालान्तर में यहाँ भी राजतन्त्र के स्थान पर संघ-शासन की व्यवस्था हो गयी थी। कौटिल्य के अर्थशास्त्र[1] में कम्बोजों के सम्बन्ध में **'वार्त्ता शास्त्रोपजीविन्'** शब्दावली मिलती है। सम्भवतः कम्बोज कृषकों, पशुपालकों, व्यापारियों तथा सैनिकों का गणतंत्र था। महाभारत में कम्बोजों के बारे में **'कम्बोजानाञ्च ये गणः'** वाक्य मिलता है।[2]

२. महाभारत तथा महाजनपद

महाभारत[3] के कर्ण पर्व में कुछ महाजनपदों की विशेषताओं का बड़ा ही रोचक वर्णन मिलता है। इस वर्णन में कुरु, पंचाल, मत्स्य, कोशल, काशी, मगध, चेदि तथा शूरसेन महाजनपदों की प्रशंसा की गई है तथा अंग राज्य का भी उल्लेख हुआ है—

कुर्वः सह पंचालाः शाल्वा मत्स्या स-नैमिषाः[4]
कोशलाः काशयोऽगाश्च कलिंगा मागधास्तथा
चेदयश्च महाभागा धर्मम् जानन्ति शाश्वतम्
ब्राह्मम् पंचालाः कौरव्येयास्तु धर्मम्
सत्यं मत्स्याः शूरसेनाश्च यज्ञम् ।

"कौरवों के साथ-साथ पंचाल, शाल्व, मत्स्य, नैमिष, कोशल, काशी, अंग, तथा चेदि राज्य के रहने वाले बड़े भाग्यशाली हैं तथा सदाचार का अर्थ जानते हैं। पंचाल-वासी वैदिक नियमों का पालन करते हैं। कौरव लोग सदाचार, मत्स्य लोग सत्य तथा शूरसेन-वासी यज्ञ की विधियों के अनुसार चलते हैं।"

मगध-वासी संकेतों को समझते थे। कोशल के लोग किसी वस्तु को देखकर ही उसे जान लेते थे। इसी प्रकार कुरु और पांचाल लोग आधी से भी पूरी बात समझ लेते थे। केवल शाल्व-वासी पूरी तरह समझाने पर ही पूरी बात समझ पाते थे।

इंगितज्ञाश्च मगधाः प्रेक्षितज्ञाश्च कोशलाः
अर्द्धोक्ताः कुरु पंचालाः शाल्वाः कृत्स्नानुशासनाः ।

अंग राज्य वालों के बहुत से निन्दक थे। मद्र तथा गन्धार वासियों की तरह अंगवासियों की भी बड़ी निन्दा की गई है—

आतुराणाम् परित्यागः सदारसुत विक्रयः
अंगेषु वर्तते कर्ण येषाम् अधिपतिर्भवान् ।

"ऐ कर्ण! अंग राज्य के तुम राजा हो, वहाँ दुःखियों व पीड़ितों को त्याग दिया जाता है (उदासीनता दिखाना) तथा बच्चों और गृहणियों को बेच दिया जाता है।"

---

[1] P. 378.

[2] VII. 89. 38.

[3] महाभारत, VIII. 40. 29; 45. 14-16; 28; 34. 40.

[4] सीतापुर से २० मील दूर गोमती के बायें त पर निमसार में नैमिष लोग रहते थे (Ayyar, *Origin and Early History of Saivism in South India*, 91)।

मद्रकेषु च संसृष्टम्
शौचम् गाधारकेषु च,
राज-याजक-याज्ये च
नष्टम् दत्तम् हविर्भवेत् ।

"जिस प्रकार मद्रवासियों में मित्रता की भावना नहीं रही, उसी तरह गन्धारवासियों में स्वच्छता नहीं रह गई । यज्ञ-कुण्ड में हवन या आहुति करने के समय राजा ही यज्ञकर्त्ता तथा पुरोहित दोनों रहता है ।"

ऊपर जो श्लोक उद्धृत किये गये हैं, उनसे उत्तर भारत के महाजनपदों के निवासियों के प्रति मध्यदेश के कवियों की धारणा स्पष्ट हो जाती है ।

३. काशी का पतन तथा कोशल का प्रभुत्व

कोशलो नाम् मुदितः स्फीतो जनपदो महान् ।

—रामायण

पाँचवीं तथा छठी शताब्दी ईसापूर्व में सोलह महाजनपदों का उत्थान-काल समाप्त हो गया । उसके बाद का इतिहास यों है कि सोलहों महाजनपद छिन्न-भिन्न होकर कतिपय राज्यों के रूप में बदल गये और अन्त में ये राज्य मगध साम्राज्य के अंग बन गये ।

इन राज्यों में काशी का पतन सबसे पहले हुआ । महावग्ग तथा जातकों में काशी का पड़ोसी राज्यों से, और विशेष कर कोशल से, संघर्ष का उल्लेख मिलता है । इस संघर्ष से संबंधित विवरण अभी तक अनिश्चित-सा है । इन संघर्षों में पहले तो काशी राज्य को सफलता मिली, किन्तु बाद में कोशल राज्य की ही जीत रही ।

महावग्ग[१] और कोशाम्बी जातक[२] में कहा गया है कि काशी के राजा ब्रह्मदत्त ने कोशल के राजा दीघति का राज्य छीन कर उनका वध कर डाला । कुनाल जातक[३] में भी कहा गया है कि काशी के राजा ब्रह्मदत्त ने अपनी सेना के साथ कोशल को घेर लिया । उसने कोशल के राजा का वध करके उनकी रानी को छीन लिया तथा उसे अपनी रानी बना लिया । कोशल पर काशी के राजा की विजय का उल्लेख ब्रहाचत्त[४] तथा सोननन्द जातकों[५] में भी किया गया है ।

फिर भी काशी[६] राज्य की यह विजय स्थायी न हो सकी । महासीलव जातक[७] के अनुसार काशी के राजा महासीलव का राज्य कोशल नरेश ने छीन लिया

---

[१] *SBE*, XVII, 294-99.
[२] No. 428.
[३] No. 536.
[४] No. 336.
[५] No. 532.
[६] *Cf.* जातक, नं० 100.
[७] No. 51.

था । घट[1] तथा एकराज जातक[2] के अनुसार, कोशल के वंक और दब्बसेन राजाओं ने काशी पर विजय पायी थी । काशी पर कोशल की अन्तिम जीत सम्भवतः राजा कंस के समय में हुई थी, क्योंकि कस को बारानसिग्गहो, अर्थात् बनारस का विजेता भी कहा जाता है ।[3] काशी पर कंस के विजय-काल तथा बौद्ध-काल में कोई अधिक अन्तर नहीं लगता, क्योंकि बौद्ध-काल में भी लोगों के मस्तिष्क में काशी के वैभव-काल की स्मृति हरी थी । अंगुत्तर निकाय की रचना के समय भी लोगों को काशी का उत्कर्ष-काल भली प्रकार याद था ।

राजा महाकोशल के समय (छठी शताब्दी ईसापूर्व के मध्य) में काशी कोशल राज्य का एक अंग था । राजा महाकोशल ने जब मगध के राजा के साथ अपनी पुत्री कोशला देवी का विवाह किया तो काशी राज्य का एक गाँव मगध को दे दिया । इस गाँव की मालगुज़ारी १ लाख रुपये होती थी । कोशल-नरेश ने गाँव देते समय कहा कि इस गाँव का राजस्व मेरी पुत्री के हमाम तथा सौन्दर्य-प्रसाधनों पर व्यय किया जायगा ।[4]

महाकोशल के पुत्र पसेनदि या प्रसेनजित के समय भी काशी कोशल राज्य का ही एक भाग रहा । लोहिच्च सुत्त[5] नामक बौद्ध ग्रन्थ में गौतम बुद्ध के एक प्रश्न के उत्तर में लोहिच्च ने काशी को कोशल राज्य का एक अंग कहा है ।[6] महावग्ग[7] में कहा गया है कि प्रसेनजित का भाई काशी में कोशल के वायसराय के रूप में रहता था ।

संयुक्त निकाय[8] के अनुसार, प्रसेनजित पाँच राजाओं के एक गुट का नेतृत्व करता था । इनमें से एक तो उसका भाई ही था । वह काशी में रहता था । शेष अन्य राजाओं एवं सामन्तों में सेतव्या के राजन्य पायासि सुत्तन्त[9] तथा केसपुत्त के कालामस को सम्मिलित मानना चाहिये ।[10]

इस गुट के दूसरे राजाओं में कपिलवस्तु के शाक्य सामन्त भी थे । कई ग्रन्थों

---

[1] No. 355.

[2] No. 303.

[3] सेय्य जातक, No. 282; तेसकुन जातक, No. 521; *Buddhist India*, p. 25.

[4] हरित मात जातक, No. 239; वड्ढकि सूकर जातक, No. 283.

[5] *Dialogues of the Buddha*, Part I, 288-97.

[6] *Cf. Gradual Sayings*, V. 40. "ज्यों-ज्यों कोशल-नरेश ने पसेनदि का राज्य बढ़ाया, त्यों-त्यों कोशलवासी आगे बढ़ते गये । कोशल का राजा ही मुख्य शासक था ।"

[7] *SBE*, XVII, 195.

[8] *The Book of the Kindred Sayings*, translated by Mrs. Rhys Davids I, 106.

[9] *Cf. Milinda*, IV. 4. 14: विमान-वत्थु की टीका; Law, *Heaven and Hell*, 79, 83. सहेत-महेत शिलालेख में 'पयासि' नाम का एक गाँव आया है । इसके लिये Ray, *DHNI*, I, p. 521 भी देखिए ।

[10] *Indian Culture*, II. 308; अंगुत्तर, I, 188.

से सिद्ध होता था कि ये कोशल के राजाओं की अधीनता स्वीकार करते थे।[1] हो सकता है कि देवदह के राजा भी कोशल के ही अधीनस्थ राजाओं में से एक थे।[2]

सम्भवतः महाकोशल के ही शासन-काल में मगध के राजा बिम्बिसार का राज्याभिषेक हुआ था। इस घटना के साथ ही हम बिम्बिसार से पूर्व की घटनाओं का विवरण समाप्त करते हैं।

४. राजतन्त्र

पिछले पृष्ठों में मोटे तौर पर हम लोगों ने राजा परीक्षित के सिंहासन पर आरूढ़ होने से लेकर बिम्बिसार के राज्याभिषेक तक के उत्तर भारत तथा दक्षिण भारत के राजनीतिक उत्थान-पतन का अध्ययन किया। अब हम उपर्युक्त युग की उन कतिपय प्रवृत्तियों पर भी दृष्टि डालेंगे जिनके बिना राजनीतिक इतिहास पूर्ण नहीं माना जा सकता। हमने देखा कि उपर्युक्त युग के अधिकांश में भारत के विभिन्न भागों में राजतन्त्र का ही प्राधान्य रहा। बाद के वैदिक साहित्य तथा अन्य शास्त्रों से हमें भारत के विभिन्न भागों के राजाओं के राजनीतिक प्रभुत्व एवं अधिकारों तथा उनके सामाजिक महत्त्व का थोड़ा-बहुत विवरण मिलता है। इन विवरणों से राजाओं के चयन, उनके संस्कारों, परिवार के मुख्य सदस्यों, नागरिक व सैनिक व्यवस्था, राजा के अधिकारों की सीमा तथा राजकाज-संचालन के बारे में भी काफ़ी जानकारी प्राप्त होती है। जानकारी के समस्त स्रोतों की छानबीन करने पर भी उपर्युक्त युग का जो चित्र हमें प्राप्त होता है, वह धुँधला ही कहा जायगा। पाँच सौ वर्ष ईसापूर्व के पहले के इतिहास के बारे में केवल वैदिक स्रोतों पर ही विश्वास किया जा सकता है। किन्तु, फिर भी इन स्रोतों से प्राप्त जानकारी की पुष्टि मगध के उत्थान से पूर्व तैयार किये गये उत्तर-वैदिक साहित्य से की जायगी।

भारत के विभिन्न भागों में प्रचलित शासन-प्रथाओं का उल्लेख ऐतरेय ब्राह्मण[3] में इस प्रकार हुआ—

"एतस्यां प्राच्यां दिशि ये के च प्राच्यानां राजानः साम्राज्यायैव तेऽभिशिच्यन्ते सम्राट्-इत्येनान्-अभिषिक्तानाचक्षत एतामेव देवानां विहितिमनु।

एतस्यां दक्षिणायां दिशि ये के च सत्वतां राजानो भौज्यायैव तेऽभिषिच्यन्ते भोज-एत्येनान् अभिषिक्तानाचक्षत एतामेव देवानाम् विहितिमनु।

एतस्यां प्रतीच्यां दिशि ये के च नीच्यानां राजानो येऽपाच्यानां स्वाराज्यायैव तेऽभिषिच्यन्ते स्वराट्-इत्येनान् अभिषिक्तानाचक्षत एतामेव देवानां विहितिमनु।

एतस्यां उदीच्यां दिशि ये के च परेण हिमवन्तम् जनपदा उत्तर-कुरव उत्तर-मुद्रा इति वैराज्यायैव तेऽअभिषिच्यन्ते विराट-इत्येनान् अभिषिक्तानाचाक्षत एतामेव देवानां विहितिमनु।

---

[1] सुप्र, p. 99.

[2] कपिलवस्तु, देवदह तथा कोलिय को तीन विभिन्न रूपों में कहा गया है (*DPPN*, I, P. 102n)। शाक्यों पर कोशलाधीश के प्रभुत्व से यह भी कहा जा सकता है कि देवदह जो कि शाक्यों का नगर था, उस पर भी कोशलाधीश का ही प्रभुत्व था।

[3] VIII. 14.

एतस्यां ध्रुवायां मध्यमायां प्रतिष्ठायां दिशि ये के च कुरु-पंचालानां राजानः स वाश्-ओशीनराणां राज्यायैव तेऽभिषिच्यन्ते राज-एत्येनान्-अभिषिक्तानाचक्षत एतामेव देवानाम् विहितिमनु ।''

''पूर्वी हिस्से में जो भी राजा हुए, वे सम्राट्-रूप में गद्दी पर बैठे । वे अपने को सम्राट् समझते थे तथा देवताओं की इच्छा से शासनारूढ़ होते थे । दक्षिणी भाग के राजा सत्वातों के राजा थे और देवताओं की इच्छा से शासनारूढ़ होने पर 'भौज्य' कहे जाते थे । पश्चिमी हिस्से में जो राजा होते थे और देवताओं की इच्छा से शासनारूढ़ होते थे, वे स्वशासक कहे जाते थे । उत्तरी क्षेत्र (उत्तर कुरु तथा उत्तर मद्र) के राजा जब देवताओं की इच्छा से शासनारूढ़ होते थे तो वे सार्वभौम कहे जाते थे ।''[1]

कुछ विद्वानों का मत है कि 'वैराज्य' राज्य का अर्थ है राजाविहीन राज्य । ऐतरेय ब्राह्मण[2] में इन्द्र के समान उत्साह से राज्याभिषेक कराने वाले राजा को विराट कहा गया है और उसे 'वैराज्य' की उपाधि ग्रहण करने का अधिकारी भी माना गया है । इस ग्रन्थ के अनुसार, पुनराभिषेक होने पर प्रत्येक राजा वैराज्य एवं अन्य राजकीय उपाधियाँ प्राप्त करने की कामना करता है । सायण के अनुसार, राजाओं में सर्वश्रेष्ठ राजा को ही वैराज्य की उपाधि से विभूषित किया जाता था । डॉ० कीथ भी 'वैराज्य' शब्द का यही अर्थ स्वीकार करते हैं ।

शुक्रनीति[3] में 'विराट' शब्द को 'उच्चतर राजा' बताया गया है । महाभारत में कृष्ण को सम्राट्, विराट, स्वराट तथा सुरराज[4] आदि नामों से विभूषित किया गया है । यदि उत्तर कुरु तथा उत्तर मद्र को गणतंत्र माना जाता है तो इसलिए नहीं कि उनके प्रसंग में 'वैराज्य' शब्द का प्रयोग किया गया है, बल्कि इसलिए गणतंत्र माना जाता था कि वे राज्य नहीं, बल्कि जनपद थे । यह स्मरण रखना चाहिए कि ब्राह्मण-काल में उत्तर कुरु देवक्षेत्र कहा जाता था तथा वहाँ नश्वर जीवों की पहुँच असम्भव मानी जाती थी ।[5]

ब्राह्मण-काल में शासन-तंत्र को साम्राज्य, भौज्य, स्वराज्य, वैराज्य, तथा राज्य आदि अनेक प्रकारों का कहा गया है । ये सब शासन-तंत्र के ही प्रकार हैं, इसका निर्णय करना आसान नहीं है। किन्तु, शतपथ ब्राह्मण[6] में साम्राज्य तथा राज्य को अलग-अलग प्रकार का बतलाया गया है ।

---

[1] ऋग्वेद ब्राह्मण, translated by Keith, Harvard Oriental Series, Vol. 25.

[2] VIII. 17.

[3] B. K. Sarkar's Translation, p. 24; कौटिल्य (VIII. 2) के अनुसार, 'वैराज्य' का अर्थ एक ऐसी शासन-प्रणाली है जो शक्ति के बल पर देश पर कब्जा करती हो । ऐसा राज्य वैध राजा से शोषण के अभिप्राय से उसका राज्य छीनता है ।

[4] XII. 43. 11; *Cf*. 68. 54.

[5] ऐतरेय ब्राह्मण, VIII. 23; ऋग्वेद, V. I. 23,8; II. 23, 1; X. 34, 12; 112. 9; शतपथ ब्राह्मण (XIII. 2. 8. 4 etc.) में गणों तथा गणज्येष्ठों का उल्लेख मिलता है ।

[6] V. 1. 1. 12-13; *Cf*. कात्यायन श्रौत सूत्र, XV. 1. 1. 2.

"राजा वै रजसूयेनेष्ट्वा भवति, सम्राड् वाजपेयेन-आवरम् हि राज्यं परम् साम्राज्यम् । कामयेत वै राजा सम्राड् भवितुं अवरम् हि राज्यम् परम् साम्राज्यम् । न सम्राट् कामयेत राजा भवितुं अवरम् हि राज्यम् परम् साम्राज्यम् ।"

"एक शासक 'राजसूय' करने से राजा तथा 'वाजपेय' करने से सम्राट् माना जाता है। राजा का पद छोटा तथा सम्राट् का पद बड़ा है। स्वभावतः राजा की इच्छा सम्राट् बनने की हो सकती है, किन्तु सम्राट् भला राजा क्यों बनना चाहेगा।"

ऋग्वेद[1] में तथा उसके बाद पुराणों में भी 'भोज' शब्द संज्ञा के रूप में आया है। ब्राह्मण ग्रन्थों में 'भोज' शब्द को राजसी उपाधि कहा गया है, जिसका प्रयोग दक्षिण भारत[2] के राजाओं के सिंहासनारूढ़ होने के बाद उनके लिए किया जाता था। 'सीजर' शब्द कुछ इसी प्रकार की अर्थध्वनि देता है। आरम्भ में 'सीजर' रोम के तानाशाह का नाम था। बाद में उसके परिवार वालों व वंशजों की यही उपाधि हो गई। उसके बाद तो 'सीज़र' शब्द जर्मनी तथा रोम दोनों राज्यों के राजाओं की पदवी के रूप में प्रयोग में आने लगा। इसी प्रकार 'स्वराज्य' शब्द है, जिसका अर्थ है अनियंत्रित राज्य। अतः स्वराज्य और राज्य में अन्तर है।[3]

यद्यपि सदा ही नहीं, किन्तु प्रायः क्षत्रिय ही राजा होता था। ब्राह्मण लोग राजकाज के योग्य नहीं समझे जाते थे। शतपथ ब्राह्मण में लिखा है कि राजा का सम्बन्ध राजसूय से होता है। राजसूय करने के बाद ही राजा की पदवी प्राप्त हो सकती है। राजसूय से क्षत्रिय राजा हो सकता है, जिसके योग्य ब्राह्मण नहीं होते।[4]

"राज्ञ एव राजसूयम् । राजा वै राजसूयेनेष्ट्वा भवति न वै ब्राह्मणो राज्यायालम् अवरम् वै राजसूयम् परम् वाजपेयम् ।"

ऐतरेय ब्राह्मण[5] में एक जगह एक ब्राह्मण राजा की चर्चा है। इसी प्रकार एक शूद्र राजा का भी उल्लेख है। आयोगव तथा अन्य अनार्य राजाओं का प्रसंग वैदिक ग्रन्थों में मिलता है। छांदोग्य उपनिषद्[6] में जानश्रुति पौत्रायण को शूद्र राजा कहा गया है। शतपथ ब्राह्मण[7] में मरुत्त आविक्षित को आयोगव राजा कहा

---

१. III. 53. 7.

२. 'भोज' शब्द का उल्लेख राजा या सामन्त के अर्थ में भी आया है। अपनी प्रजा का रक्षक भी इसका अर्थ कहा जा सकता है (विशामत्ता)। दक्षिणी भारत के कुछ शिलालेखों के अनुसार, यह एक सरकारी ओहदा भी था (*Ind. Ant.*, 1876, 177; 1877, 25-28)। महाभारत (I. 84. 22) में ऐसे राजा के लिए भी यह शब्द आया है जो अपने परिवार के साथ कुछ शाही सुविधाओं से वंचित रहता है (**अराजा भोजशब्दम् त्वम् तत्र प्राप्स्यसि सान्वयः**)।

३. काठक संहिता, XIV. 5; मैत्रायणि संहिता, 1. 11. 5, etc.; *Vedic Index*, II. 221.

४. V. I. I. 12; *SBE*, XLI; Eggeling, शतपथ ब्राह्मण, Part III, p. 4.

५. VIII. 23 (Story of Atyarati's offer to Vasishtha Satyahavya)।

६. IV. 2. 1-5. सम्भवतः इस काल में कुछ शूद्र राजा भी थे।

७. XIII. 5. 4. 6.

गया है। आयोगव का अर्थ विधि-संहिताओं में 'मिश्रित जाति का' बताया गया है। ये लोग वैश्य पत्नी[१] तथा शूद्र राजा के वंशज माने गये हैं। श्रौत सूत्र और रामायण में निषाद स्थपति (सामन्तराज) का उल्लेख आया है। जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण में लिखा है कि अनार्य भी राजपद पा सकता है।[२] इसका अर्थ या तो यह है कि पहले अनार्य राजा होते थे, या आर्य राजाओं के साथ अनार्य राजाओं की भी गणना होती रही है। महाकाव्य तथा जातक कथाओं में ब्राह्मण तथा अन्य जातियों के राजाओं का उल्लेख आया है।[३]

प्रायः राजा का पद पैतृक या पुश्तैनी हुआ करता था। ऐसे राजाओं की वंश-परम्परा की खोजबीन आसान है। इस प्रसंग में राजा जनक तथा राजा परीक्षित का नाम लिया जा सकता है। शतपथ ब्राह्मण[४] में 'दशपुरुषम् राज्य' (दस पीढ़ियों वाले राजवंश) शब्द के उल्लेख से पैतृक राजपद की पुष्टि होती है, किन्तु निर्वाचन-पद्धति द्वारा राजा के चुनाव की प्रथा से भी वे अनभिज्ञ नहीं थे।[५] राजा का निर्वाचन या तो जनता करती थी, या उसके मंत्रीगण। जैसा कि यास्क[६] द्वारा वर्णित कौरव-वंशीय राजा देवापी और शान्तनु की कथाओं से स्पष्ट है, राजा का चुनाव राजवंश के लोगों के बीच से ही होता था। काशिराज के उपोसथ और संवर राजकुमारों से सम्बन्धित कथाओं से भी इसी बात की पुष्टि होती है। संवर जातक[७] में कहा गया है कि राजा के मरते समय उसके मंत्रीगण पूछते थे, "श्रीमान् आपकी मृत्यु के पश्चात् किसको श्वेतछत्र (उत्तराधिकार) दिया जाय?" राजा उत्तर देता था, "मंत्रियो! मेरे सभी बेटे राजपद के योग्य हैं, किन्तु आप उसे ही यह पद दें जिससे आप सन्तुष्ट हों।"

---

[१] मनु-संहिता, X. 12.

[२] *Vedic Index*, I. 454; रामायण, II. 50. 32; 84. 1; जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण, 1. 4. 5.

[३] *Cf*. जातक, 73, 432; महाभारत, i. 100. 49f; 138. 70.

[४] XII, 9. 3. 1-3; *Cf*. शासन के उत्तराधिकारी के जन्म का भी उल्लेख (ऐतरेय ब्राह्मण, VIII. 9), राजा को राजपिता कहा जाता था (VIII. 17), मिलता है।

[५] इस प्रसंग में ऐतरेय ब्राह्मण (VIII. 12) के अनुच्छेद का उल्लेख किया जा सकता है जिसमें ईश्वरीय शासक के चयन और उसके राज्याभिषेक का वर्णन मिलता है (Ghoshal, *A History of Hindu Political Theories*, 1927, p. 26)। वैदिक काल के बाद साहित्य में राजा के चुनाव का जो उल्लेख है, वह भी बहुत पहले का विवरण लगता है (महाभारत, I, 94. 49—**राजत्वे तम् प्रजाः सर्वा धर्मज्ञ इति वव्रिरे**)। राजकर्त्रि (ऐतरेय ब्राह्मण, VIII, 17; शतपथ ब्राह्मण, III, 4. 1. 7.) शब्द के प्रयोग से ऐसा लगता है कि राजा के चुनाव में राजकर्मचारियों तथा गांवों के मुखियों का बड़ा हाथ होता था। नैतिक गुणों के होने पर जोर दिया गया है। जो राजा होता था, उसे ओजिष्ठ, बलिष्ठ, सहिष्ठ, सत्तमः, पारयिष्णुतम एवं धर्मज्ञ कहा जाता था। ईसा की चौथी शताब्दी पूर्व पंजाब के एक भाग में शारीरिक सौन्दर्य पर राजा का चुनाव होता था।

[६] निरुक्त, II. 10; *Vedic Index*, II. 211.

[७] No. 462.

कभी-कभी प्रजा ऐसे व्यक्तियों को राजा चुन लेती थी जो राजवंश से सम्बन्धित नहीं होते थे। शृंजयों द्वारा स्थपति के साथ-साथ अपने पुश्तैनी राजा को अपदस्थ किये जाने की घटना भी सम्भवतः जनता की सर्वोपरि सत्ता का उदाहरण थी।[१] जातक कथाओं में राजवंश के बाहर के आदमी के राजा चुने जाने के स्पष्ट उल्लेख मिलते हैं। उदाहरणार्थ, पादंजलि जातक[२] में कहा गया है कि एक बार बनारस के किसी राजा के मर जाने पर उनके धार्मिक मामलों के मंत्री को राजा बनाया गया, क्योंकि राजा का पादंजलि नामक पुत्र बड़ा ही आलसी और आवारा था। सच्चंकिर जातक[३] में एक कथा है जिसके अनुसार ब्राह्मणों तथा अन्य वर्णों के संभ्रांत लोगों ने एक बार अपने राजा का वध करके एक साधारण आदमी को राजा के पद पर प्रतिष्ठित किया था। कभी-कभी तो देश के बाहर के व्यक्ति को भी राजा बनाया जाता था। दरीमुख[४] तथा सोनक[५] जातक में कहा गया है कि बनारस के राजा के उत्तराधिकारी की असफलता पर जनता ने मगध के राजकुमार को राजा बनाया था।

ब्राह्मण-काल में आम तौर से राजा को चार पत्नियाँ रखने का अधिकार होता था। ये पत्नियाँ महिषी, परिवृक्ती, वावाता तथा पालागली कही जाती थीं। शतपथ ब्राह्मण[६] के अनुसार सबसे बड़ी या सर्वप्रथम विवाहित पत्नी को 'महिषी' कहते थे। 'परिवृक्ती' उस पत्नी को कहते थे जो परित्यक्ता हो, या सम्भवतः जिसके कोई पुत्र न हो। 'वावाता' राजा की परमप्रिय पत्नी को कहते थे। 'पालागली' राजमहल के निम्नवर्गीय किसी दरबारी की लड़की होती थी।[७] ऐतरेय ब्राह्मण[८] में तो यहाँ तक कहा गया है कि राजा हरिश्चन्द्र के सौ रानियाँ थीं। जातक-काल में कई राजाओं के अन्तःपुर (ज़नानखाने) इससे भी अधिक बड़े होते थे। कुस जातक[९] में कहा गया है कि राजा ओक्काको (इक्ष्वाकु) के १६ हज़ार रानियाँ थीं। उनकी सबसे बडी रानी शीलवती थी। दशरथ जातक[१०] के अनुसार, बनारस के राजा के अन्तःपुर में भी इतनी ही रानियाँ थीं। सुरुचि जातक[११] में मिथिला का राजा कहता है कि "मेरा राज्य काफ़ी बड़ा और विस्तृत है। ऐसे राजा को कम से कम १६ हज़ार रानियाँ तो अपने यहाँ रखनी ही चाहिए।" यह १६ हज़ार की संख्या कुछ अतिशयोक्तिपूर्ण मालूम होती है, किन्तु इतना तो स्पष्ट ही है कि जातक-काल के राजा लोग बहुपत्नीवादी थे जो चार पत्नियों की सीमा को तो पार कर ही जाते थे। कभी-कभी तो सौ पत्नियों की सीमा भी लांघ जाते थे।

---

[१] शतपथ ब्राह्मण, XII. 1. 3. 1ff.

[२] No. 247.

[३] No. 73.

[४] No. 378; *Cf*. No. 401.

[५] No. 529.

[६] VI. 5. 3. 1. *Vedic Index*, I. 478.

[७] Weber and Pischel in *Vedic Index*, 1. 478.

[८] VII. 13.

[९] No. 531.

[१०] No. 461. रामायण (II. 34.13) में इसके लिए कहा गया है कि इस राजा को पटरानियों के अलावा ७५० रानियों के रखने का अधिकार था।

[११] No. 482.

उत्तराधिकार पा जाने या चुने जाने के बाद राजा का विधिवत् राज्याभिषेक किया जाता था। राज्याभिषेक शतपथ ब्राह्मण[१] तथा वैदिक संहिताओं में लिखे मंत्रों द्वारा किया जाता था। ऐसे लोग जो राज्याभिषेक करवाते थे, उन्हें राजकर्त्तृ या राजकृत कहते थे, और राजा की प्रशंसा के गीत गाने वाले, इतिहासकार, सारथी आदि सूत तथा गांवों के नेता ग्रामणी[२] कहे जाते थे। प्रोफ़ेसर राधाकुमुद मुकर्जी[३] के अनुसार, "राज्याभिषेक के समारोह में सरकारी और ग़ैर-सरकारी सभी प्रकार के तत्त्वों का प्रतिनिधित्व रहता था।" वाजपेय राजसूय यज्ञ पुनर्भिषेक तथा ऐन्द्र-महाभिषेक इस अवसर के प्रमुख कार्यक्रम माने जाते थे।

वाजपेय यज्ञ करने वाले राजा का पद बढ़ जाता था और उसे सम्राट् की पदवी प्राप्त हो जाती थी, जबकि राजसूय यज्ञ करने वाला साधारण राजा ही माना जाता था।[४] पुनर्भिषेक के फलस्वरूप ये राजा राज्य, साम्राज्य, भौज्य, स्वराज्य, वैराज्य, पारमेष्ठ्य, महाराज्य, आधिपत्य, स्वावश्य तथा आतिष्ठत्व आदि के सम्मान से विभूषित किये जाने योग्य समझे जाते थे।[५]

ऐन्द्र महाभिषेक के उद्देश्य के बारे में निम्न उल्लेख मिलता है—

"स य इच्छेद् एवंवित् क्षत्रियं अयं सर्वाजितीर्जयेतायं सर्वाल्लोकान् विन्देतायं स्वासर्वेषां राज्ञां श्रैष्ठ्यम्, अतिष्ठाम्, परमताम् गच्छेत, सम्राज्यम्, भौज्यम्, समन्त-राज्यस्, वैराज्यम्, पारमेष्ठ्यम्, राज्यम्, महाराज्यम्, आधिपत्यम्, अयम् समन्तपर्यायि स्यात् सार्वभौमः सार्वायुष आऽन्तादा परार्द्धात् पृथिव्यै समुद्र-पर्यन्ताया एकराट् इति तमेतेन ऐन्द्रेण महाभिषेकेण क्षत्रियम् शापयित्वाऽभिषिन्चेत्।"[६]

अर्थात्, 'जो क्षत्रिय सर्वविजेता, सर्वश्रेष्ठ, सार्वभौम, शक्ति-सम्पन्न तथा धरती के एक कोने से सागर के तट तक अपना राज्य-विस्तार चाहता है, उसे राजा इन्द्र की तरह अपना ऐन्द्र-महाभिषेक कराना चाहिए।'[७]

इतिहासकार एजेलिंग के मतानुसार, वाजपेय-समारोह[८] में १७ रथों की दौड़ भी शामिल रहती थी। इस दौड़ में यज्ञ करने वाले को विजयी हो जाने दिया जाता

---

[१] III. 4.1. 7; XIII. 2. 2. 18.

[२] ग्रामणी का अर्थ साधारणतया वैश्य होता था (*Vedic Index*, I. 247; II. 334; *Camb. Hist. Ind.*, 131; शतपथ ब्राह्मण, V. 3. 1. 6)।

[३] *The Fundamental Unity of India*, I. 83.

[४] राज्य, *Cf.* शतपथ ब्राह्मण, V. I. 1, 12-13. कुछ ग्रन्थों में वाजपेय यज्ञ को स्वीकार करते हुए कहा गया है कि राजसूय यज्ञ 'वरुण-सव' होता है। तैत्तरीय संहिता (V. 6. 2. 1) और ब्राह्मण (II. 7. 6.1); शतपथ ब्राह्मण, V. 4. 3. 2; Keith, *The Religion and Philosophy of the Veda and Upanishads*, 340; महाभारत, Bk. II. 12, 11-13. etc.

[५] ऐतरेय ब्राह्मण, VIII. 6. इन शब्दों के अर्थ के लिए Keith के किये अनुवादों 'भौज्य' और 'वैराज्य' को देखिए।

[६] ऐतरेय ब्राह्मण, VIII. 15.

[७] Keith, *HOS*, Vol. 25.

[८] शतपथ ब्राह्मण, V. 1. 1. 5ff; *SBE*, xli; *Vedic Index*, II. 281; Keith, *Black Yajus*, cviii-cxi; *RPV U*, 339f.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

था। रथों की दौड़ से ही इस समारोह का नाम वाजपेय पड़ा। प्रोफ़ेसर हिलब्रैण्ड के कथनानुसार, इसी को प्राचीन भारत के राष्ट्रीय समारोह की संज्ञा दी जाती थी। इसे हम तत्कालीन भारतीय ओलम्पिक खेल के रूप में समझ सकते हैं। रथों की इस दौड़ के बाद एक और मनोरंजक प्रदर्शन होता था। दौड़ के विजेता को एक बांस पर चढ़ना होता था जिसकी चोटी पर गेहुएँ रंग का एक चक्र[१] रहता था। वहीं से वह सपत्नीक धरती माता को अर्घ्य देता था। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार जो राजा बांस के शिखर पर, अर्थात् हवा में आसन ग्रहण कर लेता था, वह सर्वोपरि हो जाता था[२] और सिंहासन का अधिकारी समझ लिया जाता था। यज्ञकर्त्ता जब नीचे उतरता था तो उसे सिंहासन पर बैठाला जाता था जिस पर बकरे का चर्म बिछा होता था। यज्ञकर्त्ता से अध्वर्यु (अर्थात् पुरोहित) कहता था—"अब तुम शासक हुए, तुम दृढ़प्रतिज्ञ (ध्रुव, धरुण) हो।" शासक भी कहता था—"मैं कृषि-उन्नति, शान्तिपूर्ण जीवन (क्षेम), धन (रयि), समृद्धि (पोष), जन-कल्याण तथा जनहित के हेतु आसन ग्रहण करता हूँ।"[३]

राजसूय यज्ञ इससे अधिक समय तक चलता था और उसके अन्तर्गत कई समारोह होते थे। यज्ञ फाल्गुण मास के प्रथम दिन आरम्भ होता था और दो वर्ष या इससे कुछ अधिक ही चलता था।[४] शतपथ ब्राह्मण[५] में इस यज्ञ का विस्तृत वर्णन मिलता है। इस यज्ञ में पुरोहित-कार्यविधि-सम्बन्धित कृत्यों के साथ-साथ अनेक लोकप्रिय उत्सव मनाये जाते थे। राजसूय यज्ञ की मुख्य विशेषतायें इस प्रकार हैं—

१. राजमहल की मुख्य महारानी तथा प्रमुख दरबारी द्वारा राज-परिवार के कुल-पूज्यों को हीरे-जवाहिरात (रत्निनां हवींषि)[६] का अर्पण।

२. 'अभिषेचनीय'[७] समारोह।

३. 'दिग्व्यास्थापन'[८]। राजा विभिन्न दिशाओं में गमन करता था। यह क्रिया उसके विश्वव्यापी शासन का प्रतीक मानी जाती थी।

४. यज्ञकर्त्ता का व्याघ्र-चर्म[९] से वेष्ठन। इसका अभिप्राय है कि व्यक्ति व्याघ्र के समान ही सशक्ति एवं शौर्यवान् है।

---

[१] *Gaudhumam Chashalam* (गौधूमम् चशालम्) "a wheaten head-piece. (Eggeling)", "a wheel-shaped garland of meal." (*SBE*, xli. 31; Keith, *RPVU*, 339; शतपथ ब्राह्मण, V. 2. 1.6)।

[२] शतपथ ब्राह्मण, V. 2. 1. 22.

[३] शतपथ ब्राह्मण, V. 2. 1 25; *The Fundamental Unity of India*, p. 80.

[४] Keith, *Black Yajus*, pp. cxi-cxiii; *RPVU*, 341; *Vedic Index*, II. 219; *SBE*, xli, p. xxvi.

[५] V. 2. 3.9 (*et seq.*); *SBE*, xli, 42-113.

[६] शतपथ ब्राह्मण, V. 3. 1; M. Louis Renou says—"Les offrandes ne sont pas faites aux *ratnin* mais aux divinites dans les maisons de chaque *ratnin*."

[७] शतपथ ब्राह्मण, V. 3 3-4.

[८] शतपथ ब्राह्मण, V. 4. 1.3; Keith, *Black Yajus*, *op. cit.*

[९] शतपथ ब्राह्मण, V. 4. 1. 11.

५. होतृ (पुरोहित) द्वारा शुनःशेप[1] की कथा।

६. किसी सम्बन्धी[2] पर नकली गाय का आक्रमण तथा राजवंश के इस व्यक्ति[3] और पशु के बीच बनावटी युद्ध।

७. सिंहासनारोहण।[4]

८. कौड़ी-चौपड़ का खेल, जिसमें राजा को विजयी बनाया जाता था।[5]

इस अवसर पर जो लोग सम्मानित किये जाते थे, वे राजवंश के पूज्य होते थे। प्रायः ये लोग राजघराने के प्रमुख जन तथा नागरिक और सैनिक सेवा के लोग होते थे। इनके नाम हैं—

१. सेनानी (सेना का सेनापति)[6]
२. पुरोहित
३. महिषी (राजा की मुख्य महारानी)
४. सूत (सारथी एवं भाट)[7]
५. ग्रामणी (गाँवों का नेता या मुखिया)[8]
६. क्षत्री (अन्तर्वंश का अग्रज)[9]
७. संग्रहीत्रि (कोषाध्यक्ष), अर्थशास्त्र के सन्निधात्रि का अग्रज
८. भागदुघ (कर वसूलने वाला)
९. अक्षवाप (चौपड़ खेल का रक्षक)[10]
१०. गो-निकर्त्तन (दौड़ में राजा का साथी)
११. पालागल (दूत का अग्रज)[11]

---

१. ऐतरेय ब्राह्मण, vii. 13 ff; Keith, *RPVU*, 341n.

२. *RPVU*, 342; *Cf*. शतपथ ब्राह्मण, V. 4. 3. 3. *et seq.*

३. *Cf*. तैत्तरीय संहिता, 1. 8. 15 टीकासहित; *Vedic Index*, II. 219; *SBE*, xli, 100, n. I.

४. शतपथ ब्राह्मण, V. 4. 4. 1.

५. शतपथ ब्राह्मण, V. 4. 4. 6; Keith, *Religion and Philosophy of the Veda*, etc., p. 342.

६. *Cf*. सेनापति, ऐतरेय ब्राह्मण, viii, 23.

७. इस पद की महत्ता सुमन्त्र और संजय के उदाहरणों से अधिक स्पष्ट होती है। महाभारत (XV. 16. 4) में इन्हें महामात्र कहा गया है।

८. प्रश्न उपनिषद् (III. 4.) में शासक द्वारा गाँवों में प्रधानों की नियुक्ति का उल्लेख मिलता है।

९. कुरु के दरबार में विदुर एक क्षत्रिय थे (महाभारत, I. 200. 17; II, 66. 1. etc.)। विभिन्न टीकाकारों के मत के लिए देखिए (*Vedic Index*, I. 201)।

१०. मत्स्य कोर्ट में कंक (युधिष्ठिर) की स्थिति देखिये।

११. काफ़ी उत्सुकता का प्रसंग है कि इस सूची में स्थपति को जो कि स्थायीन शासक था तथा जिसका शतपथ ब्राह्मण (V. 4. 4. 17) में उल्लेख है, 'रत्नों' की सूची में नहीं रखा गया है। शतपथ ब्राह्मण में इसका उल्लेख राजसूय यज्ञ के समापन-समारोह के समय आया है। बलिदान की तलवार जो राजा को पुरोहित से मिलती थी, राजा के भाई को बाद में प्राप्त होती थी। गुप्त-काल में प्रान्तों के

अभिषेक की प्रथा राजसूय यज्ञ की सबसे आवश्यक प्रथा थी। यह प्रथा सविता सत्यप्रसव, अग्नि गृहपति, सोम वनस्पति, बृहस्पति वाक्, इन्द्र ज्येष्ठ, रुद्र पशुपति, मित्र सत्य और वरुण धर्मपति जैसे देवताओं को अर्घ्यदान के बाद पूरी की जाती थी। अभिषेक का जल (अभिषेचनीया आपः) १७ प्रकार के द्रवों का मिश्रण होता था। इन द्रवों में सरस्वती नदी, समुद्र, भँवर, सरोवर, कुएँ तथा ओस का पानी भी रहता था। अभिषेक की क्रिया ब्राह्मण पुरोहित, राजवंश के सदस्य या राजा के भाई-मित्र, राजे-महाराजे तथा वैश्य द्वारा सम्पन्न होती थी। पुनर्भिषेक तथा ऐन्द्र-महाभिषेक, ये दो अभिषेक के सबसे महत्त्वपूर्ण प्रकार होते थे।

'पुनर्भिषेक' का विस्तृत विवरण ऐतरेय ब्राह्मण[१] में मिलता है। यह समारोह क्षत्रियों पर विजय प्राप्त करने वाले राजाओं के लिए होता था। इसमें सबसे पहले राजा सिंहासन ग्रहण करता था। सिंहासन को आसन्दी कहते थे। यह उदुम्बर नामक लकड़ी का बना होता था और इसका 'विवयन' कहा जाने वाला भाग मूँज (घास) का होता था। इसके बाद अभिषेक होता था। पुरोहित कहता था—"तुम राजाओं के राजा बनो; महान् जनता तथा कृषक वर्ग[२] के महान् शासक बनो" **(राज्ञां त्वम् अधिराज भवेह महानतम् त्वा महीनाम् सम्राराजम् चर्षणीनाम्)**।[३] इसके बाद राजा अपने सिंहासन से उतर कर पुरोहित (ब्राह्मण) के समक्ष नतमस्तक होता था। राजा कहता था—**"ब्रह्मण येव तत् क्षत्रम् वशम् येति तद् यत्र वै ब्रह्मणः क्षत्रम् वशम् येति तद् राष्ट्रम् समृद्धम् तद् वीरवदाहास्मिन् वीरो जायते।"**[४] अर्थात्, 'राजसत्ता (क्षत्र) धर्म की सत्ता के प्रभाव के अन्तर्गत आ जाती है। केवल धर्म की सत्ता के प्रभाव की राजसत्ता के अन्तर्गत ही देश समृद्ध होता है तथा वहाँ वीर पुरुष जन्म लेते हैं।'[५] इस कथन से निरंकुशता पर नियंत्रण का आभास मिलता है।

परीक्षित के पुत्र जनमेजय का पुनर्भिषेक हुआ था।[६]

ऐन्द्र-महाभिषेक[७] में मुख्य रूप से ५ विधियाँ सम्पन्न होती थीं। सर्वप्रथम मनोनीत राजा को पुरोहित द्वारा शपथ ग्रहण कराई जाती है।[८] इसके पश्चात्

गवर्नरों को 'स्थपति' की उपाधि से विभूषित किया जाता था (Fleet, *CII*, p. 120)। तैत्तरीय उपनिषद् में भी रत्नों की सूची मिलती है। पंचविंश ब्राह्मण (*Camb Hist. Ind.*, I. 131) में आठ वीरों का उल्लेख आया है। शतपथ ब्राह्मण (XIII, 5. 4. 6) में अश्वमेध के प्रसंग में परिवेष्टृ, क्षत्री या सभासद् का उल्लेख आया है।

१. VIII. 5-11.

२. Keith, *HOS*, 25 (slightly emended)।

३. ऐतरेय ब्राह्मण, VIII. 7.

४. ऐतरेय ब्राह्मण, VIII. 9.

५. Keith.

६. ऐतरेय ब्राह्मण, VIII, 11. प्राचीन ग्रन्थों में लंका के राजा 'देवानांपिय तिस्स' के द्वितीय राज्याभिषेक का उल्लेख मिलता है। (गाइगर द्वारा अनूदित महावंश, p. xxxii)।

७. ऐतरेय ब्राह्मण, viii. 12-23.

८. Keith; ऐतरेय ब्राह्मण, VIII. 15.

आरोहण या सिंहासनासीन होने की रीति निभाई जाती थी। आरोहण के बाद 'उत्क्रोशन'[1] या उद्‌घोषण की विधि पूरी की जाती थी। राजा को राजपद प्रदान करने वाले कहते थे—"जो क्षत्रिय उद्‌घोषण द्वारा राजा नहीं बना, वह अपनी शक्ति का प्रयोग नहीं कर सकता।" अतः इस प्रकार की उद्‌घोषणा आवश्यक है। इसके उत्तर में जन-समुदाय 'एवमस्तु' कहता था। राजा को राजपद पर प्रतिष्ठित करने वाले कहते थे—

'हे जनता-जनार्दन! क्या तुम राजा को राजा तथा राजाओं का पिता मानते हो। सभी प्राणियों के सार्वभौम स्वामी (विश्वस्य भूतस्य अधिपति) का आविर्भाव हो गया है। विशामत्ता (eater of the follk) का जन्म हो चुका है। शत्रुओं को विनष्ट करने वाला (अमित्राणां हन्ता) अस्तित्व में आ गया है। ब्राह्मणों का रक्षक (ब्राह्मणानां गोप्ता) तथा धर्म का संरक्षक (धर्मस्य गोप्ता) अवतरित हो गया है।"

यहाँ पर हमें राजतंत्र की कुछ प्रमुख विशेषताएँ ज्ञात होती हैं। 'विश्वस्य भूतस्य अधिपति' शब्दों से राजा की सार्वभौमिकता एवं उसके साम्राज्य-वैभव का संकेत मिलता है। 'विशामत्ता' शब्द राजा के कर वसूलने के अधिकार का परिचायक है। 'अमित्राणां हन्ता' से स्पष्ट है कि अपने शत्रुओं के विरुद्ध राजा को अपनी सारी शक्ति लगा देने का अधिकार था। राजा के लिए 'ब्राह्मणानां गोप्ता' कहा जाता था। इसी से प्रकट होता है कि वह कुलीन वर्ग का कितना ध्यान रखता था। साथ ही 'धर्मस्य गोप्ता' से यह स्पष्ट है कि कानून के पालन, कुशल प्रशासन तथा जन-कल्याण (योगक्षेम) की दिशा में राजा कितनी निष्ठा रखता था।

राजा के राज्याभिषेक की उद्‌घोषणा के बाद अभिमन्त्रण की विधि सम्पन्न होती थी, या अभिमन्त्रण की बारी आती थी।[2]

जिन राजाओं का ऐन्द्र-महाभिषेक हुआ, वे जनमेजय परीक्षित, शारयात मानव, शतानीक सात्राजित, आम्बाष्ठ्य, युधांश्रौष्टि औग्रसैन्य, विश्वकर्मा भौवन, सुदास पैजवन, मरुत आविक्षित, अंग वैरोचन और भरत दौःष्यन्ति थे।[3] प्रथम राजा, और सम्भवतः तृतीय, चतुर्थ, पंचम तथा नवम राजा भी परीक्षितोत्तर काल के रहे।[4] दुर्मुख पांचाल तथा अत्यराति जानन्तपि को ऐन्द्र-महाभिषेक का महात्म्य बताया गया था। पहले राजा ने उस जानकारी का सदुपयोग किया, किन्तु दूसरे ने पुरोहितों का निरादर किया, उत्तर कुरुओं पर आक्रमण कर दिया और अन्ततः शिवि-वंश के किसी राजा द्वारा मारा गया। क्योंकि उत्तर कुरुओं के बारे में कहा जाता था कि उन्हें कोई नश्वर सत्ता हरा नहीं सकती थी।

---

[1] ऐतरेय ब्राह्मण, VIII. 17.

[2] ऐतरेय ब्राह्मण, VIII. 18.

[3] ऐतरेय ब्राह्मण, VIII. 21-23.

[4] शतानीक ने काशी के धृतराष्ट्र को पराजित किया जो कि महागोविन्द सुत्तन्त के अनुसार, कलिंग के सत्तभु तथा अस्सक के ब्रह्मदत्त का समकालीन था। जैसा कि परीक्षित के पूर्व के ग्रन्थों में दक्षिण के राज्यों की कोई चर्चा नहीं मिलती, इसलिए हो सकता है कि शतानीक और उसके समकालीन लोग परीक्षित के बाद हुए हों। आम्बाष्ठ्य तथा युधांश्रौष्टि पर्वत और नारद के समकालीन थे जो

ऐन्द्र-महाभिषेक से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित एक और यज्ञ होता था जिसे अश्वमेध कहते थे। ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार, जिन राजाओं का ऐन्द्र-महाभिषेक हो जाता था, उनके बारे में यह भी माना जाता था कि उन्होंने अश्वमेध भी किया होगा और दिग्विजय के हेतु विश्व-परिक्रमा भी की होगी (**समन्तम् सर्वतः पृथ्वीं जयन् परीयायाश्वेन च मेघ्येनेजे**)। शतपथ ब्राह्मण[1] के अनुसार, अश्वमेध यज्ञ करने वाले राजाओं में परीक्षित-वंश के भीमसेन, उग्रसेन तथा श्रुतसेन; कोशल-राजाओं में पर-आटणार हैरण्यनाभ; इक्ष्वाकु राजा पुरुकुत्स दौर्गह; पांचालों में क्रैव्य तथा शोन सात्रासाह; और मत्स्य-राजाओं में ध्वसन द्वैतवन और श्विक्न राजाओं में प्रमुख थे। आपस्तम्ब श्रौत्र सूत्र में कहा गया है कि सार्वभौम राजा ही अश्वमेध यज्ञ कर सकता था।[2] अश्वमेध का घोड़ा एक वर्ष तक घूमता रहता था। उसके साथ सौ राजकुमार, सौ सरहार, सौ सारथी, सौ मुखिया तथा सौ बड़े-बड़े योद्धा भी घूमा करते थे।[3] यह दल सभी प्रकार के शस्त्रास्त्रों से लैस होता था। यदि घोड़ा १ वर्ष तक निर्बाध ढंग से घूमता रहता था तो फिर उसको बलिदान कर दिया जाता था और यज्ञकर्त्ता हर्षोत्सव मनाता था। यज्ञ करने वाले राजा तथा उसके पूर्वजों की वन्दना में बाँसुरी-वादन के साथ गीत गाये जाते थे। इस समारोह में यज्ञकर्त्ता राजा भी बाँसुरी पर तीन गीत गाता था। इसके बाद 'पारिप्लव आख्यान'[4] कार्यक्रम के अन्तर्गत कथाएँ

नग्नजित के काल के आसपास थे तथा संभवतः विदेह के पूर्व और निमि के समकालीन रहे होंगे। अंग सम्भवतः दधिवाहन के पूर्वज थे जो कि जैन-ग्रन्थकारों के अनुसार ईसा से पूर्व छठी शताब्दी में हुए रहे होंगे।

[1] XIII, 5. 4. 1-23.

[2] XX. i. 1. विभिन्न ग्रन्थों के विभिन्न पाठों को स्वीकार नहीं किया जा सकता है (**अप्य-सार्वभौमः**), *Baudh.*, XV. I. भवभूति के समय तक (अर्थात् ईसा की आठवीं शताब्दी तक) अश्वमेध यज्ञ को किसी राजा की शक्ति तथा उसकी सेना के युद्ध-कौशल का मापदण्ड माना जाता रहा है (**अश्वमेध इति विश्व-विजयिनाम् क्षत्रियाणामूर्जस्वलः सर्व-क्षत्रिय-परिभावि महानुत्कर्ष निष्कर्षः** (उत्तर रामचरितम्; Act IV, विनायक सदाशिव पटवर्धन द्वारा अनुवादित)। इसके पूर्व भी पापकर्मों के प्रायश्चित्त-स्वरूप यह यज्ञ किया जाता था। इस यज्ञ का वैष्णव रूप भी था। उसमें पशुबलि नहीं होती थी तथा देवार्पण की वस्तुएँ आरण्यक के अनुसार तैयार की जाती थीं। महाभारत (Ch. 335-339 के शान्ति-पर्व में आयी उपरिचर की कथा पढ़िए; Raychaudhuri, *EHVS*, 2nd. ed., 132)। अश्वमेध के महत्त्व के लिए डी० सी० सरकार द्वारा *Indian Culture* (I, pp. 311. ff; II. 789 ff.) का नोट देखिए।

[3] शतपथ ब्राह्मण, XIII. 4.2.5.

"तस्यैते पुरस्तादृक्षितार उपक्लिप्ता भवन्ति। राजपुत्राः कवचिनः शतम्, राजन्या निषङ्गिनः शतम्, सूतग्रामण्यां पुत्रा इषुपर्षिणः शतम् छात्र संग्रहीतृणाम् पुत्रा दण्डिनः शतमश्वशतम् निरष्टम् निरमणं यस्मिन्नेनमपिश्रिज्य रक्षन्ति।"

[4] *SBE*, xliv, pp. 298 ff; पारिप्लव आख्यान (शतपथ ब्राह्मण, XIII. 4. 3.2); Keith, *Black Yajus*, pp. cxxxii f; *RPVU*, 343 f; हॉप्किन्स *GEI*, 365, 386.

चलती थीं। कथाओं का कार्यक्रम वर्ष भर चलता रहता था और प्रत्येक बैठक १० दिन की होती थी।

ब्राह्मण ग्रन्थों का राजा केवल 'पैतृक राज्याध्यक्ष' ही नहीं था। उसे मुख्य सामन्त, सामन्तों में सर्वप्रथम, अर्थात् प्रधानों की परिषद् का अध्यक्ष नहीं समझा जाना चाहिए। अथर्ववेद में एक स्थल पर कुरु राजा को 'देव' कहा गया है और कहा गया है कि राजा नश्वर जगत् से परे होता है। सिंहासनारूढ़ राजा सभी जीवों से ऊपर माना जाता था। उसे **'विश्वस्य भूतस्य अधिपति'** कहा जाता था। उसे 'विशामत्ता'[1] भी कहते थे। **'राजा त एकम् मुखम् तेन मुखेन विशोऽत्सि।'**[2] उसके चतुर्दिक् सदैव राजवंश के सशस्त्र रक्षक रहा करते थे।[3] राजा अपनी इच्छानुसार ब्राह्मणों को भी देशनिकाला दे सकता था। वैश्यों से रुपया ले सकता था, या उन पर अधिकार कर सकता था। वह शूद्रों से सेवा करा सकता था या उनका बध कर सकता था।[4] इसके अतिरिक्त उसे मनचाहे व्यक्ति को राज्य देने का भी अधिकार था। बृहदारण्यक उपनिषद् के अनुसार, एक बार जनक ने याज्ञवल्क्य से कहा—**'सोऽहं भगवते विदेहान् ददामि माञ्चापि सह दास्यायेति।'**[5]

फिर भी व्यावहारिक रूप से राजा निरंकुश तानाशाह नहीं होता था। सर्वप्रथम राजा की सत्ता पर ब्राह्मणों का नियंत्रण होता था। हम देख चुके हैं कि पुनराभिषेक विधि द्वारा सिंहासनारूढ़ सर्वशक्तिमान् शासकों को भी धर्मसत्ता (ब्राह्मणों) के सम्मुख होना पड़ा। उस युग में ब्राह्मणों को संस्कृति एवं शिक्षा का अधिष्ठाता माना जाता था। ऐतरेय ब्राह्मण[6] तथा कौटिल्य के अर्थशास्त्र[7] से स्पष्ट ज्ञात होता है कि जनमेजय जैसे शक्तिशाली राजा को भी ब्राह्मणों के सामने नतमस्तक होना पड़ा था। ब्राह्मण-कन्या के साथ दुराचरण के फलस्वरूप कराल जनक का विनाश हुआ था। ब्राह्मणों का निरादर करने वाला वृष्णि-वंश भी नष्ट हो गया था।[8] इससे स्पष्ट है कि केवल राजा ही नहीं, वरन् गणराज्यों (संघीय सरकारों) को भी ब्राह्मणों से मैत्रीपूर्ण संबंध रखना पड़ता था।

राजा की सत्ता पर दूसरा नियंत्रण, व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से, मंत्रियों का होता था। राज्याभिषेक में राजा का सहायक रहने वाला और महत्त्वपूर्ण अवसरों पर राजा को परामर्श देने वाला गाँव का मुखिया भी राजा पर कुछ न कुछ नियंत्रण रखता था। वेदों में सूत तथा ग्रामणी को राजकर्तृ (king-maker) कहा

---

[1] ऐतरेय ब्राह्मण, VIII. 17.

[2] कौशीतकि उपनिषद्, II. 6.

[3] ऐतरेय ब्राह्मण, iii. 48. 'कुरु के पुत्र तथा पौत्र कुल मिला कर ६४ सशस्त्र योद्धा होते थे।' जब पंचाल-नरेश यज्ञ करता था तो ६ हज़ार, तीन और तीस सैनिक तैयार रहते थे (शतपथ ब्राह्मण, XIII. 5. 4. 16; *Cf.* 4. 2. 5)।

[4] ऐतरेय ब्राह्मण, VII. 29.

[5] बृहदारण्यक उपनिषद्, IV. 4. 23.

[6] VII. 27.

[7] Ed. 1919, p. 11.

[8] *Cf.* वैतहव्य का विवरण भी देखिए, (*Camb. Hist. Ind.*, I. 121)।

गया है। वेदों में उसके संबंध में '**राजकृतः सूत-ग्रामण्याः**'[१] मिलता है । इसके नाम से ही राज्य के ढांचे में इसके महत्त्व का आभास मिलता है। प्रारम्भिक राजसी समारोहों में इन लोगों (king makers) तथा अन्य दरबारियों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती थी।

वेदों में 'सभासद्' शब्द आया है। इससे स्पष्ट है कि उस समय राजसभा का अस्तित्व होता था। राजा मरुत्त आविक्षित[२] की कथा में 'सभासद्' शब्द का उल्लेख मिलता है। रामायण[३] के अनुसार, सभा एक ऐसी संस्था थी जिसमें राजकर्त्रियों को भी अमात्यों एवं पुरोहितों के साथ-साथ स्थान प्राप्त होता था। पालि-ग्रन्थों में बिम्बिसार के समय तक के सम्बन्धित विवरण से पता चलता है कि अमात्य एवं मुखिया दोनों से ही परामर्श किया जाना आवश्यक था। महावग्ग में कहा गया है कि काशी का राजा ब्रह्मदत्त काशी में अपने मंत्रियों व सभासदों से पूछता था[४]—"महाशयो ! यदि आप कोशलाधीश दीघीति के पुत्र दीघायु से मिलेंगे तो क्या कहेंगे ?" महा-अस्सारोह जातक[५] में कहा गया है कि राजा नगर भर में ढिंढोरा पिटवा कर अपनी सभा के सभासदों को एकत्र करता था। चुल्ल-सुतसोम जातक में एक राजा का उल्लेख है, जिसके ८० हज़ार सभासद थे और राजा का सेनापति सबों का नेतृत्व करता[६] (**सेनापति एमुखानि असीती अमच्च सहास्सानि**)। पादंजलि, संवर तथा सोनक जातकों के अनुसार, सभासदों का किसी भी युवराज को पदच्युत करने या नया राजा चुनने का अधिकार था। इन जातकों में गाँवों के मुखियों की विशेष सभा का भी उल्लेख मिलता है। हमें यह भी पता चलता है कि जब मगध के राजा सेणिय बिम्बिसार ने ८० हज़ार मुखियों (ग्रामिकों) की सभा बुलायी थी तो उन्होंने शोण कोलिविस को भी संदेश भेजा था।[७]

राजा की राजसत्ता पर एक नियंत्रण और था। उपनिषदों[८] में इसे समिति या परिषद् कहा गया है। यह समिति या परिषद् सभासदों या मंत्रियों की समिति से भिन्न जनता (जन, महाजन) की सभा होती थी। ऐतरेय ब्राह्मण[९] के उत्क्रोशन अनुच्छेद के अनुसार, जनता (जनाः) और राजकर्त्ता अलग-अलग थे। शतपथ ब्राह्मण[१०] के अनुसार, सूत

---

१. शतपथ ब्राह्मण, III. 4. 1. 7; XIII. 2. 2. 18; रामायण, II. 67. 2; 79. 1. द्विजातयः ।

२. ऐतरेय ब्राह्मण, VIII, 21; शतपथ ब्राह्मण, XIII. 5.4.6.

३. II. 67. 2-4.

४. *SBE*, XVII. 304; विनयपिटकम् (Oldenberg), I. (1879), p. 348; *Cf*. रामायण, II. 79. **सामात्याः सपरिषदः** ।

५. No. 302.

६. Cowell's जातक, V, p. 97. (No. 525); ८० हज़ार संख्या नाम मात्र की ही है।

७. महावग्ग, *SBE*, XVII. p. 1.

८. जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण (II. 11. 4) में परिषद्, सभा और संसद् के ल्लेख मिलते हैं। स्पष्ट नहीं है कि ये कैसी संस्थाएँ थीं। अथर्ववेद में सभा और मिति में अन्तर बताया गया है।

९. VIII, 17; *Cf*. शतपथ ब्राह्मण, V. 33. 12.

१०. III. 4. 1. 7; XIII. 2. 2. 18.

और ग्रामणी[1] भी राजकृत वर्ग में सम्मिलित थे। **"भूयिष्ठाः कुरु-पंचालास्सागता भवितारः"**[2], **"पंचालानां समितिम् एयाय"**, **"पंचालानां परिषदम् आजगाम"**, **"समग्गा शिवयोहुत्वा।"** उल्लेखों से स्पष्ट है कि समिति या परिषद् पूर्णरूपेण जनता की संस्था होती थी। छान्दोग्य उपनिषद्[3] में वर्णित पंचाल में जनता की समिति थी, जिसकी अध्यक्षता राजा प्रवाहण जैवलि स्वयं करता था—**'श्वेतुकेतुर्हं-अरुणेयः पंचालानां समितिम् एयाय; तम ह प्रवाहणो जैवलिर्-उवाच।'** बृहदारण्यक उपनिषद्[4] में समिति के स्थान पर 'परिषद्' शब्द का ही प्रयोग किया गया है—**'श्वेतकेतुरः ह वा आरुणेयः पंचालानां परिषदमाजगाम्।'** बौद्ध-ग्रंथों मे उल्लिखित लिच्छवि-परिषा (परिषद्) या अन्य परिषदों से पता चलता है कि तत्कालीन कुरु तथा पंचाल राजाओं की सभाएँ मात्र दार्शनिक विषयों पर ही शास्त्रार्थ नहीं करती थीं। जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण[5] में इन सभाओं की चर्चा के प्रसंग में विवाद (संवाद) तथा गवाही 'उपद्रष्ट्रि' शब्दों का भी उल्लेख हुआ है। इससे लगता है कि कुरु और पंचाल सभाओं की परम्परायें शूद्रों की परम्पराओं से भिन्न थीं। ये लोग राजसी समारोहों में भाग लेते थे।[6] दुम्मेध जातक[7] में मंत्रियों, ब्राह्मणों तथा अन्य लोगों की संयुक्त सभा का प्रसंग आया है।

अथर्ववेद[8] की इस उक्ति से भी राजा की निरंकुशता पर नियंत्रण का संकेत मिलता है कि राजा की समृद्धि के लिए भी राजा तथा उसकी परिषद् के बीच सामञ्जस्य आवश्यक है। हमारे पास इस संबंध में भी तथ्य हैं कि कभी-कभी जनता ने अपने राजा को उसके कलंकित दरबारियों के साथ या तो राज्य से निकाल दिया है, या उन सबों को एकसाथ फाँसी के तख्ते पर झुला दिया। शतपथ ब्राह्मण[9] में लिखा है—"दुष्टरीतु पौंसायन को उसके राज्य से निकाल दिया गया, जबकि उसके पूर्वज १० पीढ़ी से उसी राज्य में राज्य करते थे। इसी प्रकार शृञ्जय लोगों ने रेवोत्तरस पाटव चाक्र स्थपति[10] को भी राज्य से निकाल दिया था।" ऐतरेय ब्राह्मण[11] के अनुसार, जिन ऐसे कुछ लोगों को राज्य से निकाल दिया गया था, उन्होंने पुनर्भिषेक द्वारा, सिंहासनारूढ़ राजाओं की सहायता से, अपना राज्य वापस पाने का प्रयास किया था। इन लोगों का उक्त प्रयास फ्रांस के उन निष्कासित लोगों की तरह था जिन्होंने

---

[1] जातक (525) में महाजन देखिए, Vol. V, p 187; जातक (542, 547), Vol. VI, p. 156, 489 etc.; *Cf*. शतपथ ब्राह्मण, V. 3. 3. 12.

[2] जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण. III. 7. 6.

[3] V 3. 1.
[4] VI. 2. 1.

[5] III. 7. 6.
[6] ऐतरेय ब्राह्मण, VIII. 17.

[7] No. 50; *Cf*. वेसन्तर जातक (No. 547), Vol. VI, pp. 490 ff. सभी शिवि लोग सार्वजनिक महत्त्व के प्रश्न पर विचार के लिए इकट्ठे होते थे और राजकुमार को दण्ड देने के लिए राजा को परामर्श भी देते थे।

[8] VI. 88. 3.

[9] XII. 9. 3. 1. *etc. seq*; Eggeling, V. 269.

[10] 'स्थपति' उपाधि के लिए देखिए, *ante*, p. 167.

[11] VIII. 10.

हप्सबर्ग तथा हो एनजोलर्न्स[१] के सैनिकों की सहायता से पुनः फ्रांस पर अधिकार करने की कोशिश की थी। हमें वेस्सन्तर जातक[२] से पता चलता है कि एक बार शिवि राजा को देश की जनता का निर्णय कार्यान्वित करने के लिए राजकुमार वेस्सन्तर को देश से निकालना पड़ा था (**सवीनम् वचनत्थेन सम्हारट्ठा निरज्जति**)। राजा से कहा गया--

"सचे त्वं न करिस्ससि सिवीनं वचनं इदम्,
मन्ने तं सह पुत्तेन सिवीहत्थे करिस्सरे ति।"

'यदि आपने सिवि-जनता को मानने से इन्कार किया तो मैं समझता हूँ कि वह आपके पुत्र और आपके विरुद्ध कदम उठायेगी।'

राजा ने उत्तर दिया--

"एसो चे सिवीनम् छन्दो छन्दम् न पनुदामसे!"

'देखो, यह जनता की इच्छा है, मैं इसके विपरीत कुछ नहीं कर सकता।'

पदकुशलमानव जातक[३] में एक कथा है जिसके अनुसार एक बार देश की जनता ने एक जगह इकट्ठा होकर (**जानपदा निगमा च समागता**) अपने राजा और पुरोहित को मौत के घाट उतारा था। उस राजा से देशवासियों का तनिक भी कल्याण न था, उल्टे हर ओर विपत्तियाँ उमड़ती रहती थीं। इसीलिए जनता ने राजा को मार कर एक दूसरे व्यक्ति को राजा बनाया। सच्चंकिर जातक[४] में भी इसी प्रकार की एक कथा आती है। खण्डहाल जातक[७] में भी एक कथा है कि देश की जनता ने राजा के मंत्री का वध किया, राजा को पदच्युत तथा जातिच्युत किया और उसके राजकुमार को गद्दी पर बिठाया। भूतपूर्व राजा को नगर की सीमा में प्रवेश का अधिकार नहीं था। इतिहासकार फ़िक[१] के संकेतानुसार, तेलपत्त जातक में तक्षशिला के राजा ने कहा था कि "मेरी प्रजा पर मेरा कोई अधिकार कहीं है।"[२] स्पष्ट है कि राजा जनक के बाद के काल में उत्तरी-पश्चिमी भारत के राज्यों में राजा की अधिकार-सत्ता बहुत कुछ घट गयी थी।[३]

---

१. *Cf.* Lodge, *Modern Euorope*, p. 517.

२. No. 547; Text, VI. 490-502. ऐतरेय ब्राह्मण (xiii, 23) में भी शिबि लोगों का उल्लेख मिलता है।

३. No. 432.

४. No. 73.

५. No. 542.

६. *The Social Organisation in North-East India*, trans. by Dr. S. K. Maitra, pp. 113-114. Dr. D. R. Bhandarkar follows him in *Carmichael Lectures*, 1918, 134f.

७. P. 172—"**भगवते विदेहान् ददामि**"।

८. सिकन्दर-काल के इतिहासकारों ने लिखा है कि ईसा से पूर्व चौथी शताब्दी में निर्वाचित राजा होते थे। ब्राह्मण-काल में अम्बष्ठ लोग सशक्त शासक थे (ऐतरेय ब्राह्मण, viii. 21)। सिकन्दर के समय में लोकतान्त्रिक संविधान था (*Inv. Alex.*, 252)।

भाग २

(बिम्बिसार के राज्याभिषेक से गुप्त-वंश के अन्त तक)

४

प्रस्तावना

१. प्राक्कथन

अगले पृष्ठों में बिम्बिसार-काल से लेकर गुप्त-काल तक का राजनीतिक इतिहास दिया गया है। इस काल से सम्बन्धित साहित्यिक शास्त्रोक्तियों का उल्लेख पुस्तक के प्रथम भाग में किया जा चुका है। इनके अतिरिक्त हमें प्रामाणिक ऐतिहासिक सामग्री भी उपलब्ध है जिसे मुख्य रूप से निम्न सूत्रों से प्राप्त किया गया है—शिलालेख, मुद्राएँ, विदेशी विद्वानों का विवरण तथा ऐसे भारतीय लेखकों का विवरण जिनकी तिथि एवं विवरण की प्रामाणिकता के बारे में किसी प्रकार का सन्देह नहीं है।

शिलालेख तथा ताम्रपत्रों पर खुदे लेख निःसन्देह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण लेख हैं। परन्तु, ऐसी मुद्राएँ भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं जिन्हें ईसापूर्व की द्वितीय एवं प्रथम शताब्दी के राजाओं एवं गणतन्त्रों के इतिहास का एक मात्र साक्षी होने का श्रेय प्राप्त है।

जहाँ तक भारतीय इतिहास के घटना-क्रम तथा उसके काल का प्रश्न है, यूनानी कूटनीतिक प्रतिनिधियों, नाविकों तथा चीनी यात्रियों के लेख महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुए हैं। प्राचीन भारत के विद्वानों के विभिन्न ग्रन्थ भी इतिहास के विभिन्न कालों पर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं। परन्तु, ये ग्रन्थ अब दुर्लभ से हो गये हैं। इनमें पतञ्जलि का महाभाष्य, कुमारलात की कल्पनामण्डितिका, परमार्थ की कृति वसुबन्धु तथा बाणभट्ट का हर्षचरित मुख्य हैं।

जहाँ तक बिम्बिसार से लेकर अशोक के समय तक के इतिहास का प्रश्न है, इन पंक्तियों का लेखक अधिक मौलिकता का दावा नहीं कर सकता। इस संबंध में रीज डेविड्स और स्मिथ ने काफ़ी लिखा है। इसके अलावा गेगर, भण्डारकर, रैप्सन, जायसवाल, मलालसेकेरा, जैक्सन, हर्ज़फ़ेल्ड तथा हल्ट्ज़ आदि विद्वानों ने भी इस काल पर काफ़ी प्रकाश डाला है। इस लेखक ने उपर्युक्त विद्वानों के ग्रन्थों से उपलब्ध सामग्री का उपयोग करने के साथ-साथ जैन, बुद्ध एवं अन्य शास्त्रों से प्राप्य नवीन सामग्री को भी सम्मिलित किया है। उदाहणार्थ, अश्वघोष द्वारा बिम्बिसार को दिये गये नाम हर्यङ्क का उल्लेख सर्वप्रथम इस पुस्तक के लेखक ने ही किया है। शिशुनाग-वंश के दुःखद अन्त तथा नन्द-वंश के उद्भव से सम्बन्धित जो सामग्री हर्षचरित एवं जैन-ग्रन्थों में मिलती है, उसकी तुलना यूनानी तथा लैटिन विद्वानों की कृतियों से करने का प्रयास भी सर्वप्रथम इसीं पुस्तक में किया गया है। इसके अतिरिक्त, लेखक ने मगध साम्राज्य के उत्थान की व्याख्या में अशोक के शिलालेखों में वर्णित कम्बोज एवं

पुलिन्द जातियों के अस्तित्व एवं स्त्र्यध्यक्ष, बिहार-यात्रा तथा अनुसंयान इत्यादि शब्दों की व्याख्या के सिलसिले में पौराणिक विवरण का समुचित लाभ उठाया गया है। इस पुस्तक में पुराने तथ्यों को नये रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसके अतिरिक्त अन्य लेखकों से इस लेखक के निष्कर्ष भी प्रायः भिन्न हैं।

उत्तर मौर्य-काल पर लिखे गये अध्याय में इस लेखक ने मौर्य-साम्राज्य के विघटन के कारणों पर प्रकाश डाला है तथा पाठकों का ध्यान गार्गी संहिता एवं हाऊ हंशू, आदि की ओर आकृष्ट किया है। साथ ही साथ मौर्य-साम्राज्य के पतन के इस सिद्धान्त को अनर्गल सिद्ध करने का प्रयास किया गया है कि मौर्यों के पतन के लिए ब्राह्मणों का प्रतिक्रियावाद सबसे अधिक उत्तरदायी है।[1]

प्रस्तुत पुस्तक में उत्तर मौर्य-काल के आरम्भिक समय तथा सीथियन काल के बारे में विचार करते समय पहले के लेखकों से भिन्न मत प्रकट किया गया है, यद्यपि यह मत पूर्णतः मौलिक नहीं है। पुष्यमित्र की परम्परा तथा कुछ अन्य देशों के बारे में प्रचलित कतिपय धारणाओं को ज्यों-का-त्यों स्वीकार नहीं किया जा सकता। मुख्यतः सातवाहनों, शाकल के यूनानियों तथा उत्तरापथ के शक-पह्लवों के संबंध में तो ये धारणायें सर्वथा अस्वीकार्य हैं। इस पुस्तक के लेखक ने सन् १९२३ में यमुना की घाटी और पूर्वी मालवा के नागाओं को उत्तर कुशाण-काल से सम्बन्धित किया है, जबकि अनेक प्रसिद्ध पुस्तकों में भी इस तथ्य की चर्चा नहीं की गई है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में गुप्त-काल पर जो कुछ लिखा गया है, उसमें बूहलर, फ़्लीट, स्मिथ तथा एलेन की पुस्तकों के प्रकाशन के बाद उपलब्ध होने वाली सामग्री का भी यथोचित उपयोग किया गया है। इस अध्याय में प्राचीन पुरालेखों एवं साहित्य में वर्णित उन सर्वाधिक शक्तिशाली राजवंशों की ओर ध्यान दिया गया है जिन्हें अन्य पुस्तकों में स्थान नहीं दिया गया। साथ ही साथ वाकाटकों इत्यादि दक्षिणी राजवंशों के सम्बन्धों की चर्चा की गई है और उत्तर-गुप्त सम्राटों[2] का एक क्रमबद्ध इतिहास प्रस्तुत करने का प्रयास भी किया गया है।

२. स्थानीय स्वशासन तथा राज्य की एकता

उत्तर-बिम्बिसार-काल के राजनीतिक इतिहास की विशेषता यह है कि उस समय दो विरोधी—अन्तर्मुखी तथा बहुमुखी—शक्तियाँ साथ-साथ काम कर रही थीं. अर्थात् एक ओर तो स्थानीय जनपदों के स्वायत्त शासन के प्रति प्रेम की और दूसरी ओर समूचे देश को एक राजतन्त्र के अधीन एकता के सूत्र में बाँधने की भावना थी। पहला आदर्श मनु के शब्दों में इस प्रकार था—'**सर्वम् परवशम् दुःखम्, सर्वम् आत्मवशम् सुखम्**'।[3] स्वायत्त शासन के प्रति प्रेम की भावना सम्भवतः भौगोलिक परिस्थितियों के कारण थी। अनेकानेक गहरी नदियों, घुमावदार पर्वत-शृंखलाओं

---

[1] उत्तर मौर्य-वंश पर वह अध्याय जो *JASB*, 1920 (No. 18, p. 305 ff) में प्रकाशित हुआ था।

[2] तथाकथित अंतिम गुप्त-शासकों पर वह अध्याय जो *JASB*, 1920 (No. 19, p. 313 ff.) में प्रकाशित हुआ था।

[3] मनुसंहिता, IV. 160.

एवं भयानक रेगिस्तान अथवा विकट जंगलों से विभाजित देश के प्रत्येक भाग में अकेलेपन की भावना पनप गई थी और देश अनेकानेक राजनीतिक इकाइयों में बँट गया था। इन इकाइयों की परस्पर भिन्नता वहाँ की स्थानीय परिस्थितियों के कारण अधिक विषम हो गई थी। फिर भी हिमालय एवं पश्चिमी घाट से बहनेवाली नदियों की जीवनदायिनी शक्ति ने उत्तर के विस्तृत मैदानी भूभाग में तथा दक्षिण भारत के विशाल पठार में एक विरोधी भावना को जन्म दिया था और यह भावना थी एकता एवं सम्मिलन के प्रति झुकाव की। यद्यपि सरस्वती रेणुका-कणों से पटी रहती थी, लौहीत्य सदैव बाढ़ पीड़ित रहता था तथा महाटवी निरन्तर विपदाग्रस्त रहती थी तो भी इन तीनों में से कोई भी बाधा एकता की भावना के विरुद्ध प्रभावशाली बाधा नहीं बन सकी। गिरिव्रज की पाँचों पहाड़ियाँ साम्राज्य-स्थापना के इच्छुक किसी भी विजेता को रोक नहीं सकीं। गंगा नदी की घाटी की सभ्यता का प्रचार गोदावरी तथा ताम्रपर्णी तक करने वाले ऋषि के सम्मुख विन्ध्याचल पर्वत को भी नतमस्तक होना पड़ा था।

किसी एक राजनीतिक सत्ता के अन्तर्गत एकताबद्ध होने की इच्छा ब्राह्मण-काल में भी पाई जाती थी। निम्न विवरण में इसी भावना का संकेत मिलता है— "राजा चतुर्दिक् व्याप्त हो जाये, सारी धरती का स्वामी हो जाये, सागर-परिवेष्ठित धरती के एक छोर से दूसरे छोर तक की सजीवता उसे प्राप्त हो तथा वह एक मात्र राजा (एकराट्) हो।"

उपर्युक्त आदर्श हमारे समय में भी है तथा उससे कवियों तथा राजनीतिक दार्शनिकों को भी प्रेरणा मिली है। इन दार्शनिकों ने हिमालय से लेकर समुद्र तक फैले भूभाग को सहस्र योजन का माना है और इस भूभाग को अपने अधिकार में करनेवाले को चक्रवर्ती कहा है। साथ ही साथ वे ऐसे राजाओं की प्रशंसा करते हैं जो गंगा-रूपी माला तथा हिमवत एवं विन्ध्य जैसे दो कर्ण-फूलों से युक्त एवं चतुर्दिक् सागर से घिरी धरती की रक्षा करता था।

साम्राज्य की एकता के समर्थकों को भी प्रान्तीय एवं जातीय स्वायत्त शासन की भावना को स्वीकार करना पड़ा था। दोनों ही विरोधी विचारधाराएँ घड़ी के पेण्डुलम की भाँति उत्तरोत्तर एक-दूसरे का स्थान ग्रहण करती रहीं। भारतीय राजनीति में बाह्य आक्रमणों के भय का तत्त्व सदैव प्रभावशाली रहा है, परन्तु समूचे देश की एकता इस तत्त्व के कारण नहीं थी, वरन् 'जब पृथ्वी को बर्बर जातियों (म्लेच्छैरुद्वेज्यमाना) ने भयभीत किया तो उसने चन्द्रगुप्त मौर्य की शरण ली। भारतीय इतिहास में चन्द्रगुप्त मौर्य को प्रथम ऐतिहासिक सम्राट् कहा जाता है और निःसन्देह उसके राज्य की सीमाएँ आर्यावर्त की सीमाओं के पार फैली हुई थीं। दक्षिण के प्रारम्भिक साम्राज्य-संस्थापकों में एक राजा ने अपने देश को सीथियन, यूनानी तथा पार्थियन जातियों से मुक्त कराया था (शक, यवन, पह्लव-निशूदन)। इसी प्रकार ईसवी काल की चौथी और पाँचवीं शताब्दियों में गंगा के तटवर्ती राष्ट्रों को साम्राज्य का गौरव प्रदान करने वाले शासक भी वही लोग थे जिन्होंने "सूर्यपुत्र" सीथियनों का दमन किया था तथा शकों के बर्बर आक्रमणों का सफलतापूर्वक सामना किया था। हमारी धार्मिक गाथाओं के अनुसार, प्रलय के समय विष्णु ने

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वराह-अवतार लेकर पृथ्वी को नष्ट होने से बचाया था। यहाँ यह बात महत्त्वपूर्ण बन जाती है कि गुप्त-चालुक्य-काल में भी वराह-अवतार की उपासना का अधिक प्रचलन था। कवि विशाखदत्त ने उस व्यक्ति का वर्णन किया है जिसने म्लेच्छों से पृथ्वी की रक्षा की थी। उसके अनुसार, स्वयं परमात्मा ने ही वराह-रूप धारण कर अपने देश (पृथ्वी) को दासता के बन्धन से मुक्त कराया था। उत्तर तथा दक्षिण भारत के शक्तिशाली सम्राट् वराह का गुणगान किया करते थे और उनमें सर्वाधिक शक्तिशाली सम्राट्—जो देश को अरबों के चंगुल से मुक्त रखता था—'आदि-वराह' की उपाधि धारण करता था। उस युग में वराह-अवतार को भारतीय संस्कृति को नष्ट करनेवाले विदेशियों के विरुद्ध भारतीयों के सफल अभियान का प्रतीक माना जाता था।

५

मगध का उत्थान

सर्वमूर्द्धाभिषिक्तानामेष मूर्द्धनि ज्वलिष्यति
प्रभाहरोऽयम् सर्वेषाम् ज्योतिषामिव भास्करः
एनमासाद्य राजानः समृद्ध-बलवाहना
विनाशमुपयास्यन्ति शलभा इव पावकम् । —महाभारत[1]

१. ५४४ ईसापूर्व से ३२४ ईसापूर्व के बीच की मुख्य प्रवृत्तियाँ

इतिहास का यह युग बिम्बिसार के राज्याभिषेक (५४५-५४४ ईसापूर्व[2]) से आरम्भ होकर सिकन्दर-महान् के आक्रमण के बाद चन्द्रगुप्त मौर्य के सम्राट् होने के समय में आकर समाप्त होता है। इस युग की प्रमुख विशेषता यह रही कि भारत के उप-महाद्वीप के पूर्वी भाग में एक नये साम्राज्य की स्थापना हुई। इस साम्राज्य का संस्थापक एक ब्राह्मण था। उपर्युक्त श्लोक में उसी साम्राज्य का गुणगान किया गया है।

उस समय भारत के पूर्वी भाग (प्राच्यां दिशि) में जो भी राजा हुए, उनका राज्याभिषेक सम्राट् के रूप में हुआ। राज्याभिषेक के बाद वे महान् सम्राट् माने जाते थे। प्राचीन ग्रन्थों में प्राच्य अथवा पूर्वी जातियों को दक्षिण, उत्तर तथा मध्यदेशीय लोगों से भिन्न दिखाया गया है, फिर भी हम इस बात को मान्य स्वीकार कर सकते हैं कि ऐतरेय ब्राह्मण में इस जाति के लिए प्रयुक्त शब्द ग्रीको-रोमन लेखकों की Prasii जाति के लिए ही था। ब्राह्मण उपनिषद्-काल में भारत के पूर्वी भाग के राज्यों में काशी, कोशल एवं विदेह प्रमुख थे, परन्तु इसी समय एक अन्य राज्य का उदय हुआ। यह राज्य था मगध। बिम्बिसार तथा नन्द जैसे शक्तिशाली शासकों के समय भारतीय राजनीति में मगध का वही स्थान था जो पूर्व-नार्मन इंगलैंड में वेसेक्स का और जर्मनी में प्रसिया का।

इस नवीन साम्राज्यवादी शक्ति के उत्थान में अनेक परिस्थितियों ने योग दिया था जो इस प्रकार थीं—यह राज्य उत्तर भारत के विशाल तटवर्ती मैदानों के ऊपरी एवं निचले भागों के मध्य अति सुरक्षित स्थिति में था। पाँच पहाड़ियों के मध्य एक दुर्गम स्थान पर स्थित होने के कारण भी यहाँ शत्रुओं का पहुँचना प्रायः असम्भव था। यह राज्य व्यापार एवं वाणिज्य का केन्द्र था। यहाँ की भूमि अत्यन्त उपजाऊ थी और साथ ही साथ इस राज्य के पास एक विशाल एवं शक्तिशाली सेना थी। प्राचीन लेखक इस सेना से अत्यन्त प्रभावित हुए थे।

किन्तु, अच्छी सामरिक स्थिति तथा भौतिक समृद्धि ही किसी राष्ट्र को ऊँचा उठाने के लिए काफ़ी नहीं हैं। बर्क के अनुसार, तत्कालीन प्रजा की यह विशेषता

---

[1] II. 19, 10-11.

[2] आगे देखिये खण्ड ७।

थी कि वह अपने सम्राटों को अपना जीवन तथा सर्वस्व अर्पित कर देती थी, जैसा कि कुछ अटलान्टिक देशों में है। प्राचीन मगध में भी कई जातियाँ एक-दूसरे से मिल-जुल गई थीं। जिस प्रकार मध्यकालीन फ्रांस में केल्ट (Celts) जाति लैटिन और ट्यूटन में समाहित हो गई थी, उसी प्रकार प्राचीन भारत के उत्तरी भाग में कीकट जाति अन्य उन्नतिशील जातियों में मिल-जुल गई थी। जिस राष्ट्र में बड़े-बड़े लड़ाकुओं और योद्धाओं ने जन्म लिया, जिस राष्ट्र में जरासन्ध, अजातशत्रु, महापद्म तथा कलिंग-विजय करने वाले चण्डाशोक और संभवतः समुद्रगुप्त जैसे महान् योद्धा पैदा हुए, उसी राष्ट्र के राजाओं ने प्रातिबोधीपुत्र, वर्द्धमान महावीर तथा गौतम बुद्ध के उपदेशों को स्वीकार किया तथा समूचे भारत में अपना साम्राज्य फैलाने के साथ-साथ विश्व-धर्म का प्रचार भी किया। इसी युग में देश में अजातशत्रु का जन्म हुआ और महात्मा बुद्ध को बुद्धत्व प्राप्त हुआ। राजगृह में अजातशत्रु और महात्मा बुद्ध की भेंट वैसी ही रही, जैसे कि वॉर्म्स (Worms) में चार्ल्स-पंचम तथा मार्टिन लूथर की। इसी देश में और इसी युग में आक्रामक साम्राज्यवादी लिप्सा तथा नैतिकता और उदारता के प्रतीकों का आविर्भाव हुआ। फिर, दोनों विचारधाराएँ अधिक समय तक अलग-अलग न रह सकीं। दोनों में समन्वय हुआ और धर्म-अशोक नामक बाजीगर ने दोनों प्रवृत्तियों को अपने में समा लिया। एक ओर उसने अपने पूर्वजों की तरह साम्राज्य की परम्परा अक्षुण्ण रखी तो दूसरी ओर शाक्य-संन्यासी की अध्यात्म-भावना को भी ग्रहण किया।

मगध राष्ट्र की एक मुख्य विशेषता यह थी कि वहाँ के लोगों के व्यवहार में एक प्रकार का लचीलापन था। यह गुण सरस्वती व दृषद्वती के तटवर्त्ती प्रदेशों के लोगों में नहीं था। इन प्रान्तों में ब्राह्मण लोग व्रात्य-वर्ग का सम्पर्क स्वीकार कर लेते थे तथा राजा लोग अपने महलों में शूद्र-कन्याओं को भी स्थान दे देते थे। वैश्यों व यवनों को भी शासकीय पदों पर नियुक्त कर दिया जाता था। यही नहीं, कभी-कभी नगरशोभिनी की सन्तान के कारण ऊँचे घरानों या पैतृक राजवंशों के शासकों को भी राज्य से निकाल दिया जाता रहा। राजा का सिंहासन एक साधारण नाई की भी पहुँच के अन्दर होता था।

मगध के वस्सकार (वर्षकार) जैसे राजा तथा कौटिल्य जैसे मंत्री अपने कार्यों में बहुत अधिक अनैतिक या मिथ्यावादी नहीं होते थे। वे किसी भी राज्य को विनष्ट करने या उसे छिन्न-भिन्न करने में पाश्चात्य दार्शनिक मैकियावली के समान नीतियों का ही अनुसरण करते थे। ये राजा तथा मंत्री एक ऐसी व्यावहारिक प्रशासन-पद्धति निकाल लिया करते थे जिसमें राजा, मंत्री व गाँवों के मुखियों का समान रूप से हिस्सा होता था। चौथी शताब्दी ईसापूर्व में भारत में आये विदेशी राजदूत तथा यात्रियों ने तत्कालीन राजाओं की न्याय-बुद्धि, आतिथ्य-भावना, दानशीलता तथा जनहित की चिन्ता का उल्लेख और उनकी प्रशंसा की है। तत्कालीन राजा एक सुसंगठित जम्बूद्वीप (बृहत्तर भारत) की कल्पना को साकार करने के लिए अनवरत प्रयास करते रहते थे। वे समूचे भारत को राजनीतिक तथा भावनात्मक धागे में बाँध देना चाहते थे। मगध के राज-दरबार में, गिरिव्रज के शासकों के पास तथा पाटलिपुत्र में भी ऐसे वफ़ादार लोग थे, जो देशभर में अपनी इच्छा के अनुकूल जनमत तैयार कर सकते थे। इन

बन्दीजनों या दरबारी प्रशंसकों की कहानियाँ आज भी प्राचीन भारत के इतिहास के विद्यार्थी के लिए महत्त्वपूर्ण सामग्री हो सकती हैं।

मगध के उत्थान के समय मध्यदेश के लोग भारत के बाह्य भागों—विशेषतया पश्चिमी एव दक्षिणी भागों—की ओर खिसकने लगे। पौराणिक साहित्य भी इस बात की पुष्टि करता है कि यदुवंशियों को अपने स्थान से हट कर अन्यत्र जाना पड़ा था। हम यह भी जानते हैं कि काठियावाड़ में द्वारिका के वृष्णि एवं दक्षिण भारत के कुछ परिवार यदुवंशी होने का दावा करते हैं। हम जिस युग की चर्चा यहाँ कर रहे हैं, उसी समय से ही व्याकरणवेत्ताओं एवं कूटनीतिज्ञों ने भारत के सुदूर दक्षिणी राज्यों की ओर ध्यान देना प्रारम्भ किया था। इन विद्वानों में कुछ मगध-दरबार में रहते थे। सप्तसिन्धु ने अन्ततोगत्वा जम्बूद्वीप का रूप धारण कर लिया था और वह समय भी अधिक दूर नहीं था जब संस्कृति एवं राजनीति के क्षेत्र में भी भारत एकता के सूत्र में बँध गया।

अपने को समूचे उपमहाद्वीप भारत में शक्तिमान् सिद्ध करने के लिए मगध के महान् राजवंशों के सामने तीन समस्याएँ थीं। पहली समस्या उत्तरी सीमा पर स्थित गणतन्त्रों की, दूसरी राप्ती, चम्बल और यमुना के तटवर्ती राजतन्त्रों की, तथा तीसरी समस्या पंजाब और सिन्ध के प्रान्तों पर विदेशी प्रभाव की थी। हम सर्वप्रथम गणतन्त्रों की समस्या का अध्ययन करेंगे।

२. बिम्बिसार-कालीन गणतंत्र

रीज़ डेविड्स पहला विद्वान् था जिसने बुद्ध तथा बिम्बिसार के समकालीन गणतंत्रों तथा राजतंत्रों पर प्रकाश डाला है।[१] इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण उत्तरी बिहार का वृजियन, कुसीनारा (कुशीनगर) का मल्ल राज्य तथा पावा राज्य थे। उनके सम्बन्ध में ऊपर लिखा जा चुका है।[२] छोटे गणतंत्रों में हमें कपिलवस्तु के शाक्य, देवदह और रामगाम के कोलिय, सुंसुमार पहाड़ियों के भग्ग (भर्ग) राज्य, अल्लकप्प के बुलि राज्य, केसपुत्त के कालामस और पिप्पलिवन के मोरिय राज्य के उल्लेख मिलते हैं।

शाक्य राज्य की उत्तरी सीमा पर हिमालय की पर्वत-श्रेणियाँ थीं। पूर्वी सीमा पर रोहिणी[३] नदी तथा पश्चिमी और दक्षिणी सीमाओं पर राप्ती[४] नदी बहती थी। शाक्य राज्य की राजधानी कपिलवस्तु सुप्रसिद्ध लुम्बिनीवन[५] से आठ मील दूर रोहिणी के तट पर स्थित थी। यहीं पर बुद्ध पैदा हुए थे तथा यहीं बुद्ध के एक महान् अनुयायी

---

१. *Buddhist India*, p. 1.

२. सुप्र, pp. 118 ff., 126 ff.

३. राप्ती नदी की एक सहायक नदी (देखिये ओल्डेनबर्ग-कृत *Buddha*, p. 96); कनिंघम (*AGI*, नवीन संस्करण, 476) के अनुसार यह 'कोबान' था।

४. रैप्सन-कृत *Ancient India*, p. 161; ओल्डेनबर्ग, *Buddha*, pp. 95-96.

५. *AGI*, नवीन संस्करण, 476.

का स्तम्भ था।[1] महाभारत[२] के तीर्थयात्रा-खण्ड में कपिलावट के नाम से उक्त स्थान का उल्लेख मिलता है। इस स्थान से कोशल तथा वृजि की राजधानियों को राजमार्ग बने थे। इस प्रकार यह राज्य तत्कालीन बड़े नगरों से जुड़ा हुआ था। शाक्यों के राज्य में देवदह नाम का भी नगर था जिसमें कदाचित् पड़ोसी कोलिय राज्य का भी हिस्सा था। शाक्य लोग कोशल के राजा की प्रभुसत्ता को भी पसन्द और स्वीकार करते थे। कोशल के राजवंश की भाँति शाक्य भी सूर्यवंशी और इक्ष्वाकु-वंशीय होने का दावा करते थे।

कोलिय के राजवंश का कहना था कि वे लोग बनारस के शाही परिवार से सम्बन्धित थे। रामगाम तथा देवदह[३] नगरों से भी इनका सम्बन्ध था, ऐसा उल्लेख आया है। रोहिणी नदी कोलिय तथा शाक्य दोनों राज्यों की विभाजक सीमारेखा थी और दोनों राज्यों के भूभाग की सिंचाई इस नदी से होती थी।[४] एक बार जबकि दोनों राज्यों में खेतों की फ़सलें अपनी जवानी पर थीं, वहाँ के किसान एक जगह इकट्ठा हुए। इन लोगों में नदी के पानी के लिए झगड़ा हुआ। खून-खच्चर हो जाता, किन्तु महात्मा बुद्ध ने बीच-बचाव कर दिया।[५] इस अवसर पर कोलिय तथा शाक्यों ने आपस में जो आरोप-प्रत्यारोप किये, उनसे पता चलता है कि शाक्यों में अपनी बहन से भी विवाह कर लेने की प्रथा थी। कनिंघम ने कोलिय राज्य को कोहान और औमि (अनोमा) नदियों के बीच बताया है। अनोमा ऐसी नदी थी जो एक ओर कोलिय और दूसरी ओर मल्ल और मोरिय राज्यों के बीच सीमारेखा बनाती थी।

ऐतरेय ब्राह्मण[६] तथा पाणिनि[७] की अष्टाध्यायी में भग्ग (भर्ग) राज्य की चर्चा आई है। ऐतरेय ब्राह्मण में भार्गायण राजकुमार कैंऋषि सुत्वन का उल्लेख आया है। छठी शताब्दी ईसापूर्व के उत्तरार्ध में भग्ग राज्य वत्स राज्य के अधीन था। धोनसाख जातक[८] की प्रस्तावना में लिखा है कि वत्स के राजा उदयन के पुत्र राजकुमार बोधि, सुंसुमारगिरि में रहते थे और उन्होंने एक महल बनवाया था, जिसे कोकनद कहा जाता था। महाभारत और हरिवंश पुराण के अध्ययन से भी पता चलता है कि वत्स और भग्ग राजाओं में आपस में सम्बन्ध था और उनका निषादों से भी सम्पर्क था।

---

१. कहा जाता है कि कभी कपिलवस्तु, बस्ती ज़िले के उत्तर में 'पिपरावा' नामक स्थान का नाम था। कभी यह भी कहा जाता है कि यह स्थान 'पिपरावा' से १० मील उत्तर-पश्चिम की ओर 'तिलौरा कोट' तथा तराई में उसके आसपास के स्थान को कहते थे। (स्मिथ, *EHI*, तृतीय संस्करण, p. 159)।

२. III, 84. 31.

३. *DPPN*, I, 689f. कोलिय राजधानी रोहिणी के पूर्वी तट के निकट ही थी।

४. कुणाल जातक (भूमिका वाला भाग)।

५. *DPPN*, I, 690; कनिंघम, *AGI* (नवीन संस्करण), 477; 491 ff.

६. VIII, 28.

७. IV. i. III. 177.

८. No. 353.

महाभारत या 'अपदान' के अनुसार ये राज्य विन्ध्य-क्षेत्र में यमुना और शोन[१] नदियों के बीच अवस्थित थे।

बुलि राज्य और कालामस राज्यों के बारे में बहुत थोड़ा ही विवरण मिलता है। धम्मपद की टीका[२] में बुलि राज्य का उल्लेख अल्लकप्प राज्य के रूप में आया है। टीका में यह भी कहा गया है कि यह राज्य सिर्फ़ ३० मील (१० लीग) की लम्बाई में था। इस राज्य के राजाओं के बारे में प्राप्त विवरण से पता चलता है कि इनका वेठदीपक राजा से घनिष्ठ संबंध था। अतः यह माना जा सकता है कि अल्लकप्प वेठदीप से अधिक दूर नहीं था। वेठदीप में ही वह प्रसिद्ध ब्राह्मण रहता था, जिसने बुद्ध की जन्मभूमि[३] में उनकी अस्थियों को प्रस्तर-खण्डों से आच्छादित किया था। कालामस कदाचित् उस प्रसिद्ध दार्शनिक के वंशज थे, जिसका नाम आलार था और जो बुद्ध के सम्बोधि[४] प्राप्त करने के पहले तक उनका शिक्षक था। कालामस के निगम (नगर) केसपुत्त से हमें केशिन-वंश की याद आती है जिनका उल्लेख शतपथ ब्राह्मण[५] में मिलता है। इनका उल्लेख सम्भवतः पाणिनि[६] की अष्टाध्यायी में भी है। ये लोग ऋग्वेद[७] के पांचाल और दाल्भ्यों से भी संबंधित थे। यही बाद में गोमती के तट पर आ बसे। केसपुत्त बाद में कोशल में शामिल कर लिया गया और यहाँ के लोगों ने कोशल[८] जैसे शक्तिशाली राज्य की सत्ता स्वीकार कर ली।

मोरिय-वंश वही था जिसने मगध को मौर्य-वंश जैसा राजवंश प्रदान किया था।[९] इनको कभी-कभी शाक्य-वंश से भी उद्भूत कहा जाता है, किन्तु इसकी पुष्टि का अभाव है। तत्सम्बन्धी प्राप्त सामग्री में दोनों वंशों[१०] को अलग-अलग माना गया है। मोरिय नाम मयूर से बना है। कहते हैं मोरिय-वंश के लोग जहाँ बसे थे, वहाँ हमेशा मोरों का स्वर गूँजता रहता था। मोरिय-वंश की राजधानी पिप्पलिवन को न्याग्रोधवन या बरगदों का कुंज भी कहा जाता था। ह्वेनसांग ने भी अपने लेखों में इसकी चर्चा

---

१. महाभारत, II. 30. 10-11; हरिवंश, 29. 73; *DPPN*, II, 345; सुप्र, p. 133.

२. Harvard Oriental Series, 28, p. 247.

३. मजूमदार शास्त्री वेठदीप को कसिया बताते हैं (*AGI*, 1924, 714); देखिये फ़्लीट, *JRAS*, 1906, p. 900n; Hoey के अनुसार, वेठदीप बिहार के चम्पारन ज़िले में 'बेतिया' नामक स्थान का नाम था।

४. बुद्धचरित, XII, 2.

५. *Vedic Index*, Vol. I, p. 186.

६. VI. 4. 165.

७. V. 61.

८. अंगुत्तर निकाय (PTS, I, 188; निपात, III, 65)।

९. "तदुपरान्त ब्राह्मण चाणक्य ने मौर्यों के उत्तम कुल में उत्पन्न चन्द्रगुप्त नामक एक सुन्दर सजीले युवक को जम्बुदीप का शासक बनाया।"—गेगर, महावंश p. 27; *DPPN*, II. 673.

१०. महापरिनिब्बान सुत्तन्त।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

की है। यहाँ पर एम्बर-स्तूप[१] भी था, जिसके बारे में फाहियान ने लिखा है कि यह स्थान कुसीनारा[२] से १२ योजन या ५४ मील पश्चिम में है।

यहाँ पर इन गणतन्त्रों के अन्दरूनी संगठन पर थोड़ा विचार कर लेना अप्रासंगिक न होगा, यद्यपि यहाँ इतनी गुंजाइश नहीं है कि इनका विशद् वर्णन दिया जाय। यह गणतन्त्र दो प्रकार के थे; एक, जहाँ शाक्य, कोलिय, कुसीनारा तथा पावा के मल्ल इत्यादि एक ही जाति का शासन था तथा दूसरे, जहाँ वृजियों तथा यादवों की भाँति अनेक जातियों का संयुक्त शासन था। इन राज्यों में सबसे विशेष बात यह थी कि इनमें कोई ऐसा पुश्तैनी राजा न था जो पूरे राज्य पर शासन करता। इन राज्यों में बैसीलियस नामक राजा यदि हुआ भी होगा तो उसने केवल न्याय-प्रशासन का ही संचालन किया होगा। इन देशों का सबसे प्रभावशाली व्यक्ति अध्यक्ष (गणपति, गणज्येष्ठ, गणराज तथा संघमुख्य) एवं उसकी मन्त्रि-परिषद् थी। शासक-वर्ग के लोग ही मन्त्रि-परिषद् में होते थे। वैशाली का चेटक भी ऐसा ही गणपति या संघमुख्य था।[३] जैन-ग्रन्थों के अनुसार विदेशी एवं सैन्य-सम्बन्धी मामलों में राज्य की सर्वशक्तिमान् कार्यकारिणी (Supreme Executive) के सदस्यों की संख्या ९ हुआ करती थी।[४] इनके अतिरिक्त उपराजा और सेनापति भी होते थे जो न्याय तथा सेना का काम देखते थे। राज्य-परिषद् के इन सदस्यों के लिए ही पालि-ग्रन्थों में 'महालक' तथा वायु पुराण[५] में 'महत्तर' शब्द का प्रयोग किया गया है और सर्वसाधारण को कहा गया है कि वे इनका आदर एवं समर्थन करें।

उस समय कुछ ऐसे भी राजवंश थे जिनमें एक स्वस्थ न्याय-व्यवस्था थी, तथा अधिकारियों की अनेक श्रेणियाँ हुआ करती थीं। कोलिय-राजवंश में तो पुलिस भी होती थी जो जनता पर ज़ोर-जुल्म करने और उनसे पैसा ऐंठने के लिए बदनाम थी।[६] परम्परा एवं धर्म के प्रति निष्ठा उस युग की एक ऐसी विशेषता थी जो प्राचीन बेबीलोन एवं आधुनिक निप्पान में धर्म के योगदान की याद दिलाती है।

तत्कालीन स्वतन्त्र गणतन्त्रों की मुख्य संस्था का नाम परिषा था। यह एक लोकप्रिय सभा होती थी जहाँ सभी बूढ़े व युवक एक-दूसरे से मिलते, निर्णय लेते तथा

---

[१] रीज़ डेविड्स, *Buddhist Suttas*, p. 135; वाटर्स, *Yuan Chwang*, II, pp. 23, 24; कनिंघम, *AGI*, नवीन संस्करण, pp. 491f, 496f.

[२] *AGI*, नवीन संस्करण, 491; Legge, *Fa Hien*, p. 79; वाटर्स, I. 141; देखिये *JRAS*, 1903. चूँकि गोरखपुर से ३५ मील पूर्व की ओर कसिया (कुसीनारा, कुशीनगर) है, अतः मौर्यों का नगर कुशीनगर से बहुत अधिक दूर न रहा होगा। ऐसा प्रतीत होता है कि अनोमा के पार कोलियों तथा उसी नदी के तट पर अनुपिया के मल्लों से भी मौर्यों का अधिक निकट का सम्पर्क था।

[३] ऋग्वेद, I. 23.8; देखिये, II. 23. 1.

[४] नव मल्लई, नव लेच्छई, आदि। सुप्र, p. 125. नीसा (Nysa) में शासन करने वालों की संख्या ३०० थी। क्षुद्रकों के द्वारा नगर के गणमान्य व्यक्तियों को सन्धि आदि करने का अधिकार था। परन्तु, यह नहीं ज्ञात है कि इनकी संख्या क्या थी?

[५] वायु पुराण, 96, 35.

[६] *DPPN*, I. 690.

उसे कार्यान्वित करते थे। जनता को सभा-स्थल पर एकत्र करने के लिए एक सरकारी अफ़सर नगाड़ा[1] बजा कर एलान करता था। पालि-ग्रन्थों में सभा-स्थल को सन्थागार कहते हैं। यह सभा उसी प्रकार होती थी, जिस प्रकार जैमिनीए उपनिषद् में वर्णित कुरु-पांचाल सभा होती थी। बौद्ध-ग्रन्थ विनयपिटक तथा महागोविन्द सुत्तन्त में भी ऐसी सभाओं का उल्लेख मिलता है। ऐसी सभाओं में सभी सदस्य आकर शान्तिपूर्वक बैठते थे। सभापति सभा में प्रस्तावित कार्यक्रम सबके सामने रखता था और सदस्य-गण अपने-अपने विचार प्रकट करते थे। अन्त में सर्वसम्मति[2] से जो निर्णय होता था, वही मान्य होता था। यदि कोई विवाद (इसे संवाद भी कहते थे) खड़ा हो जाता था तो मामला मध्यस्थों के सुपुर्द कर दिया जाता था। इन स्वतन्त्र राज्यों की उपर्युक्त सभाओं में प्रयुक्त होने वाले 'आसन प्रज्ञापक' (seat betokener), 'ज्ञात्ति' (ज्ञप्ति, motion), 'शलाका-गाहापक' (ballot-collector), 'गणपूरक' (whip), तथा 'उब्बाहिका' (referendum) शब्दों का भी उल्लेख मिलता है। वर्तमान गणतान्त्रिक प्रणाली में इन शब्दों को सम्भवतः वहीं से लिया गया है।

३. छोटे रजवाड़े तथा बड़े राज्य

युगों से भारतीय इतिहास की मुख्य विशेषता यह रही है कि समूचा देश छोटी-छोटी रियासतों में बँटा हुआ था। इन अनेकानेक राज्यों के शासक तत्कालीन राजनीतिक प्रवाह से दूर किसी वनीय क्षेत्र, पर्वतीय स्थल अथवा मरुस्थल में अपना-अपना दरबार लगाते थे, या किसी व्यापारिक केन्द्र को अपनी राजधानी बना लिया करते थे। ये सभी राज्य पर्वत-श्रेणियों, नदियों, वन अथवा मरुस्थल के कारण एक-दूसरे से अलग-अलग थे। बिम्बिसार के समय में इन छोटे-छोटे राज्यों के उत्थान एवं पतन की घटनाओं की चर्चा करना अथवा उनकी निश्चित संख्या बताना कठिन है, फिर भी इनमें से कुछ एक का उल्लेख आवश्यक है। ऐसे राज्यों में निम्न राज्यों का उल्लेख किया जा सकता है—१. गंधार—जहाँ आम्भी के पूर्वज पौष्करसारिन अथवा पुक्कुसाति का शासन था। २. मद्र—यहाँ बिम्बिसार की रानी खेमा के पिता का राज्य था। ३. रोरुक (सौवीर या सिन्धु घाटी के निचले भाग में स्थित) पर रुद्रायन[3] का शासन था; सुबाहु अथवा उसके समान समझा जाने वाला अवन्तिपुत्त, शूरसेन का शासक था तथा अंग पर दृढ़वर्मन और ब्रह्मदत्त का शासन था।

इन शासकों के जातिगत सम्बन्धों के बारे में कुछ कह सकना बड़ा कठिन-सा है। किन्तु, इनके नामों से ऐसा संकेत मिलता है कि या तो ये लोग स्वयं आर्य थे, अथवा आर्य-संस्कृति से पूर्ण-प्रभावित थे। कुछ राजे तो निश्चित रूप से निषाद कहे जाते थे। पालि-ग्रन्थों में वर्णित आलवक-वंश के लोग, जो यक्षों के देश में घने जंगलों के निवासी थे, निश्चित रूप से अनार्य थे।

---

१. *Kindred Sayings*, II. 178. नगाड़े का प्रयोग दशार्ह-वंशज भी करते थे (महाभारत, I. 220. 11)।

२. जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण, III, 7.65; *Camb. Hist. Ind.*, I. 176; देखिये *Carm. Lec.*, 1918, 180 ff.

३. दिव्यावदान, p. 545.

इन राज्यों में आलवक[1] पर थोड़ा-सा प्रकाश डालना जरूरी है, क्योंकि तीव्र गति से लुप्त होती हुई प्राचीन सभ्यता का हमें कुछ संकेत मिलता है। यह छोटी-सी रियासत गंगा के समीप स्थित थी। कदाचित् इसी स्थान पर चंचु प्रदेश था जहाँ कि एक बार ह्वेनसांग गया था। कनिंघम और स्मिथ के अनुसार, वर्त्तमान ग़ाज़ीपुर[2] ही आलवक राज्य था। इसकी राजधानी आलवी[3] (सं० अटवी, दे० आटविक) या आलभिया[4] थी। कदाचित् एक बहुत बड़े जंगल के समीप बसी होने के कारण ही राजधानी का नाम आलवी रखा गया था।[5] अभिधानप्पदीपिका में 'आलवी' देश के बीस प्रमुख नगरों में एक मानी गई है। इस सूची में वाराणसी, सावत्थी, वैशाली, मिथिला, आलवी, कोशाम्बी, उज्जैनी, तक्कसिला, चम्पा, सागल, सुंसुमारगिर, राजगह, कपिलवत्थु, साकेत, इन्दपट्ट, उक्कट्ठ[6], पाटलिपुत्तक, जेत्तुत्तर[7], संकस्स[8] तथा कुसीनारा सम्मिलित थे। चुल्लवग्ग[9] में कहा गया है कि आलवी में अग्गालव मंदिर था जिसे भगवान् बुद्ध ने अपने पदार्पण से गौरवान्वित किया था। यह स्थान कोशल और मगध के बीच रास्ते में ही पड़ता था। उवासगदसाव में आलभिया के राजा का नाम जियासत्तू (जितशत्रु, conqueror of enemies) बताया गया है। लेकिन, ऐसा लगता है कि जियासत्तू उस राज्य-विशेष के राजाओं की उपाधि हुआ करती थी।[10] इसी प्रकार बाद के युग में 'देवानांपिय' की भी उपाधि शासकों[11] में प्रचलित थी। महावीर के समकालीन सावत्थी, कम्पिल, मिथिला, चम्पा, वाणियगाम, वाराणसी तथा पोलसपुर

---

[1] सुत्त निपात, *SBE*, X, II, 29-30.

[2] वाटर्स, *Yuan Chwang*, II, p. 61, 340.

[3] सुत्त निपात, *The Book of the Kindred Sayings*, Vol. I, p. 275.

[4] उवासगदसाव, II, p. 103; परिशिष्ट, pp. 51-53.

[5] देखिये, *The Book of the Kindred Sayings*, Vol. I, p. 160. हार्नले ने यह विचार प्रकट किया कि 'अटवी' से इस नगर का नाम लिया गया है तथा इसका उल्लेख 'अभिधानप्पदीपिका' में भी मिलता है। अशोक तथा समुद्रगुप्त के लेखों में जंगली राज्य तथा वहाँ के निवासियों के रहन-सहन आदि के सम्बन्ध में भी देखिये।

[6] कोशल राज्य का एक नगर (*Dialogues of the Buddha*, I, 108)।

[7] चित्तौड़ के निकट (N. L. Dey)।

[8] संस्कृत सांकाश्य अथवा कपित्थिका जो कनिंघम के अनुसार, उत्तर प्रदेश के फ़र्रुखाबाद ज़िले की इक्क्षुमती नदी के तट पर स्थित 'संकिस' का ही नाम था (देखिये कनिंघम *AGI*, नवीन संस्करण, pp. 422f, 706)।

[9] VI. 17; देखिये *Gradual Sayings*, IV. 147; *DPPN*, I. 295.

[10] ऐतरेय ब्राह्मण में देखिये 'अमित्राणाम् हन्ता'। *The Essay on Gunadhya* (189) में हत्थालवक को आलवी का शासक बताया गया है।

[11] बेबीलोन में 'देवताओं के प्रिय' की उपाधि हम्मुरली के समय में ही पायी गयी है (*Camb. Hist. Ind.*, I, p. 511; *IC*, April-June, 1946, p. 241)।

आदि के राजाओं को 'देवनांपिय' की उपाधि प्राप्त थी।[1] बौद्ध-लेखकों ने आलवक[2] के समीप यक्ख राज्य का भी उल्लेख किया है।

इस युग के इतिहास में न तो जंगल में बसने वाली छोटी-छोटी रियासतों का और न नन्हे-नन्हे गणतंत्रों का ही कोई महत्त्व था। इस काल के राजनीतिक इतिहास में सर्वाधिक महत्त्व उन चार विशाल राज्यों का था जिन्हें कोशल, वत्स, अवन्ती और मगध कहा जाता था।

कोशल के राजा महाकोशल के बाद उनका पुत्र पसेनदि (प्रसेनजित) गद्दी पर बैठा। कोशल राज्य बहुत विस्तृत था। कदाचित् कोशल राज्य गोमती से लेकर छोटी गण्डक और नेपाल की तराई से लेकर गंगा तक फैला था। कैमूर की पहाड़ियों के पूर्वी भाग में भी कोशल का विस्तार था। कोशल के अधीन कई राजा[3] भी हो गये थे। काशी, शाक्य और कालामस राज्य भी कोशल ही के अधीन थे। कोशल राज्य में दो मल्ल, बन्धुल तथा राजा का भतीजा दीर्घ चारायण[4] प्रभावशाली अधिकारी थे। इन्होंने कोशल-नरेश को छोटी गण्डक के उस पार भी अपना प्रभाव जमाने में बड़ी मदद की होगी। जैन-ग्रन्थों के अनुसार, ९ मल्ल रियासतें भी काशी-कोशल की मैत्री स्वीकार करती थीं। कोशल-नरेश की मित्रता मगध के राजा सेनिय बिम्बिसार[5] तथा विसालिका-लिच्छवी से भी थी। इसी मैत्री के फलस्वरूप कोशल का राज्य पूर्व की ओर काफ़ी फैल गया था तथा राजा ने अपने राज्य को खूब संगठित कर रखा था। साकेत से सावत्थि के राजमार्ग पर लूटमार मचाने वाले डाकुओं को भी कोशल-नरेश ने कड़ाई से दबा रखा था। ये लुटेरे साधुओं व पुजारियों के शान्तिपूर्ण जीवन में व्यवधान उपस्थित किया करते थे।

यहाँ यह आवश्यक हो जाता है कि हम उस राजा के चरित्र का मूल्यांकन करें जो अपने समय का एक प्रमुख शासक था, जिसने तक्षशिला में शिक्षा प्राप्त की थी और जिसे गौतम बुद्ध से मित्रता का सौभाग्य प्राप्त था। सौभाग्य से रीज़ डेविड्स ने इस महान् चरित्र पर काफी प्रकाश डाला है।

"कोशल-नरेश संसार में अपने ही वर्ग के अनेक शासकों की भाँति एक अच्छे 'पारिवारिक व्यक्ति' के गुणों से युक्त होने पर भी कामुक व्यक्ति था। वह खाने-पीने

---

[1] Hoernle, उवासगदसाव, II, pp. 6, 64, 100, 103, 106, 118, 166. शास्त्री द्वारा सम्पादित 'आर्य मंजुश्री-मूलकल्प', पृ० ६४५ में एक गौड़ राजा को जितशत्रु कहा गया है। यह कहना बड़ी भारी मूर्खता होगी, जैसा कि हार्नले ने पृ० १०३n पर किया है कि जियसत्तू (जितशत्रु), प्रसेनजित तथा चेदग एक ही थे (देखिये *Indian Culture*, II, p. 806)।

[2] देखिये सुत्त निपात, *SBE*, Vol. X. ii, p. 45.

[3] राजाओं के सम्बन्ध में जानने के लिये देखिये, *ante*, pt. I, 155f.

[4] मज्झिम निकाय, II, p. 118. कौटिल्य के अर्थशास्त्र तथा लेखों (नीति-विजित चारायणः, *Ep. Ind.*, III. 210) में वर्णित इसी नाम का व्यक्ति कदाचित् यही था। इन लेखों के अनुसार, वह अर्थशास्त्र का लेखक तथा वात्स्यायन के अनुसार काम-विषय का पंडित था।

[5] मज्झिम निकाय, II, p. 101.

का शौकीन होते हुए भी अपने स्वास्थ्य के प्रति जागरूक था। उसे कूटनीतिक दाँव-पेंचों से बड़ी घृणा थी। वह मान-मर्यादा का ध्यान रखता था। अपने व्यवहार में ईमानदार था, फिर भी राज्य-विस्तार एवं धन-संग्रह की लालसा उसे बनी रहती थी। धन खो जाने का उसे मलाल रहता था। पराजित शत्रु के प्रति उसका व्यवहार यदि गौरवपूर्ण होता था तो बलिवेदी पर किये जाने वाले रक्तपात एवं अपराधियों को दण्ड देने के मामले में वह अत्यधिक कठोरता का परिचय दिया करता था। उसके चरित्र की विशेषता यह भी थी कि एक ओर तो वह साधारण स्वप्न के फल-दोष की सत्यता से भयभीत रहता था, दूसरी ओर वह सभी धार्मिक समुदायों के अथवा धर्मों के प्रति राजनीतिक समानता एवं विश्वास का प्रदर्शन भी करना चाहता था, भले ही इनकी सत्यनिष्ठा एवं प्रामाणिकता पर उसे विश्वास हो या नहीं।"[1]

कोशल-नरेश के पारिवारिक जीवन का प्रभाव राजकार्य पर भी पड़ा। उसने मगध की एक राजकुमारी से विवाह कर लिया और सम्भवतः इसी विवाह के फलस्वरूप ही बिम्बिसार से उसकी घनिष्ठ मित्रता हो गई थी। बदले में बिम्बिसार को भी विवाह में एक कोशल-कन्या मिली थी। राजा प्रसेनजित की एक अन्य रानी वासभक्खत्तिया, महानामन नामक एक शाक्य की कन्या थी। इस रानी की माता दासी थी।[2] महानामन तथा उसकी दासी रानी की दो सन्तानें थीं। पुत्र विडूडभ (अथवा विदुरथ) जो अपने पिता का सेनापति[3] था और बाद में उसका उत्तराधिकारी[4] बना तथा पुत्री वजिरा अथवा वजिरी कुमारी।[5] इस कन्या का विवाह बिम्बिसार के उत्तराधिकारी अजातशत्रु से हुआ था। राजकुमार एवं राजकुमारी का जीवन अनेक स्मरणीय घटनाओं से जुड़ा हुआ है। उदाहरणार्थ, कोशल-नरेश एवं अजातशत्रु के बीच युद्ध छिड़ गया, अपने पुत्र के विद्रोह के फलस्वरूप कोशल-नरेश को राज्य से हाथ धोना पड़ा और आगे चलकर शाक्यों को कोशल के राज-परिवार में एक दासी कन्या को भेजने के अपराध में भयानक प्रतिशोध का सामना करना पड़ा।

मगध से युद्ध के फलस्वरूप राजा पर बड़ी विपत्ति आई। उन्हीं दिनों उसने एक माली की लड़की 'मल्लिका' से विवाह कर लिया। मल्लिका ने जीवन-पर्यन्त अपने पति के जीवन को माधुर्यमय बनाये रखा और उसने अपने दान-कार्यों के परिणाम-

---

[1] *Sage and King in Kosala-Samyutta, Bhandarkar Commemoration Volume*, p. 134.

[2] *DPPN*, II. 171, 857.

[3] राजकुमारों की नियुक्ति सेनानायकों के रूप में होती थी। इस विषय में कौटिल्य का अर्थशास्त्र, मैसूर संस्करण, 1919, pp. 34; 346 देखिये।

[4] पौराणिक पांडुलिपियों में विडूडभ का नाम बहुधा छोड़ दिया गया है। पुराणों में सुरथ नामक राजा का उल्लेख अवश्य मिलता है। पार्जिटर (*DKA* 12, 63n) का कथन है कि विष्णु पुराण में सुरथ के स्थान पर विदुरथ का नाम मिलता है। परन्तु, यह प्रसेनजित का प्रपौत्र था। इसी प्रकार पुराणों में उदायिन को अजातशत्रु का पौत्र कहा गया है। इन उदाहरणों के कारण यह आवश्यक हो जाता है कि पुराणों का अध्ययन भली प्रकार किया जाये।

[5] मज्झिम निकाय, II, p. 110.

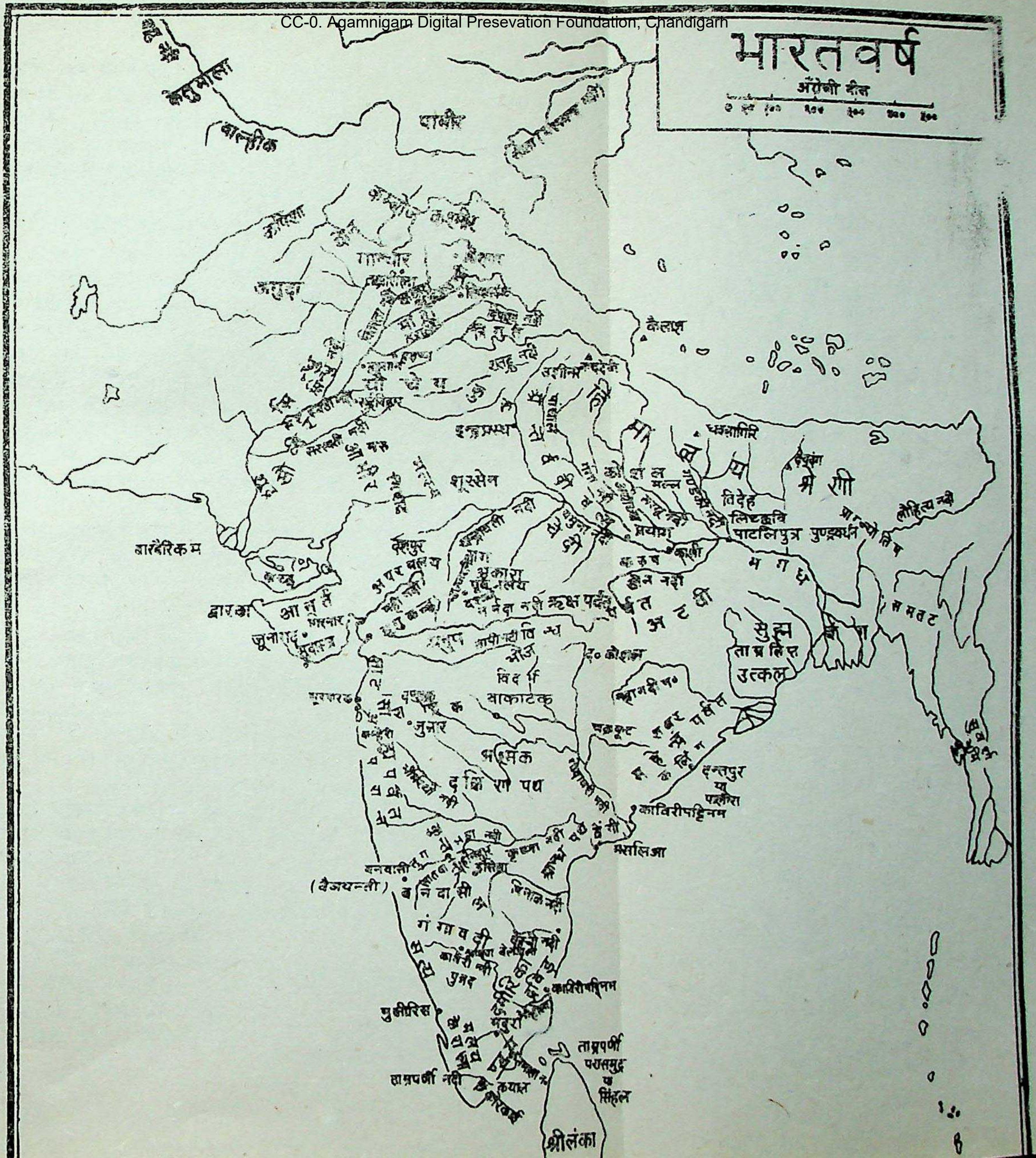

भारतवर्ष

अँग्रेजी मील
बाल्हीक
गान्धार
तक्षशिला
कैलाश
शतद्रु नदी
सरस्वती नदी
इन्द्रप्रस्थ
शूरसेन
धवलागिरि
कोशल
मल्ल
विदेह
लिच्छवि
पाटलिपुत्र
पुण्ड्रवर्धन
लौहित्य नदी
प्रयाग
काशी
मगध
समतट
सुह्म
ताम्रलिप्त
उत्कल
वारबेरिकम
द्वारका
आनर्त
गिरनार
जूनागढ़
दशपुर
अपरमलय
पूर्वमलय
नर्मदा नदी
ऋक्षपर्वत
अटवी
शोण नदी
विदर्भ
वाकाटक
जुन्नार
अश्मक
दक्षिणापथ
दन्तपुर
कावेरीपट्टिनम
मसलिआ
वनवासी
(वैजयन्ती)
कृष्णा नदी
कावेरी नदी
मदुरा
मुजीरिस
ताम्रपर्णी नदी
ताम्रपर्णी
परासमुद्र
व
सिंहल
श्रीलंका

स्वरूप स्वयं भी काफी ख्याति अर्जित की। 'मल्लिकारम' नामक उद्यान का निर्माण ऐसा ही एक कार्य था। इस उद्यान को धार्मिक वार्त्तालाप के लिए सुरक्षित कर दिया गया था।[1] उसका झुकाव महात्मा बुद्ध की ओर था, परन्तु राजा ने इस सम्बन्ध में दूरदर्शिता का परिचय दिया और ब्राह्मणों को भी संरक्षण प्रदान करता रहा।[2] राजा की दो बहनें थीं[3] जिनके नाम मल्लिका तथा सुमना थे। ये दोनों बहनें अशोक के समय की कारुवाकी और हर्ष के समय की राज्यश्री की स्मृति दिलाती हैं जो अपनी दानशीलता एवं बुद्धधर्म में रुचि के लिए विख्यात थीं।

कोशल राज्य के अन्दरूनी संगठन के अध्ययन से भी काफ़ी महत्त्वपूर्ण सामग्रियाँ मिलती हैं। समूचे राज्य की एक केन्द्रीय मंत्रि-परिषद् होती थी। किन्तु, राजा की इच्छाओं पर मंत्रि-परिषद् का तनिक भी नियंत्रण नहीं होता था। कुछ ग्रन्थों में कोशल के मंत्रियों के नाम दिये गये हैं जो इस प्रकार हैं--मृगधर[4], उग्ग, सिरिवड्ढ, काल तथा जुन्ह। सेनापति के रूप में युवराज स्वयं तथा कई मल्ल-योद्धा हुआ करते थे। सिविल पुलिस का कार्य भी सैनिकों से लिया जाता था। राज्य का कुछ भाग ब्राह्मणों को दे दिया जाता था और वे उस भाग पर राजा की तरह रहते थे। किन्तु, उक्त प्रकार के संगठन की कमज़ोरी जल्द ही उभर कर सामने आई और राज्य का पतन हो गया। राजा के जो मंत्री अधिक दानशील या उदार होते थे, उनकी अपेक्षा मितव्ययी नीति का मंत्री अधिक पसन्द किया जाता था। एक बार तो एक मितव्ययी मंत्री से प्रसन्न होकर राजा ने सात दिन के लिए उसे अपना राजपाट तक सौंप दिया था। ब्राह्मणों को अधिक अधिकार दे देने से राज्य में कुछ विकेन्द्रीकरण की भावना आ गई थी, किन्तु सेनापतियों व अफ़सरों के कड़े व्यवहार तथा राजा होने पर युवराज के निर्दयतापूर्ण कार्यों से राज्य का विनाश जल्दी ही हो गया।

वत्स राज्य में जो इस समय सम्भवतः कोशल की दक्षिणी सीमा पर था, राजा शतानीक परन्तप के बाद उनका लड़का उदयन गद्दी पर बैठा। प्राचीन कहानियों में नायक के रूप में उदयन[5] को श्री रामचन्द्र, नल तथा पाण्डवों का प्रतिद्वन्द्वी कहा

---

[1] *DPPN*, II. 455-57. कहा जाता है कि जेतवन नामक प्रसिद्ध स्थान का नाम प्रसेनजित के एक पुत्र के नाम से लिया गया है।

[2] *Dialogues of the Buddha*, I, pp. 108, 288. पसेनदि ने बुद्ध तथा उनके शिष्यों के लिए क्या किया, यह जानने के लिये गग्ग जातक नं० 155 देखिये। महान् यज्ञ के लिये की गई तैयारी के विषय में *Kindred Saynigs*, I. 102 का अध्ययन कीजिये।

[3] *DPPN*, II, 168ff, 172, 1245.

[4] देखिये Hoernle, उवासगदसाव, II, Appendix, p. 56; *DPPN*, I, 332, 572, 960; II, 1146.

[5] इस दन्तकथा का सम्पूर्ण विवरण जानने के लिए प्रो० फ़ेलिक्स लकोट द्वारा लिखित तथा Rev. A. M. Tabard द्वारा अनूदित *Essay on Gunadhya and the Brihatkatha* देखिये; इसी सम्बन्ध में और भी देखिये *Annals of the Bhandarkar Institute*, 1920-21; गुणे, "*Pradyota, Udayana and*

जा सकता है। धम्मपद की टीका में यह बताया गया है कि अवन्ती के राजा प्रद्योत की कन्या वासुलदत्ता या वासवदत्ता किस प्रकार उदयन की रानी बनी। इसमें वत्स के राजा की दो अन्य पत्नियों की चर्चा भी की गई है। इनमें एक तो कुरु-ब्राह्मण की कन्या मागन्दिया[1] थी तथा दूसरी कोषाधिकारी घोषक की दत्तक पुत्री सामावती थी। मिलिन्दपञ्हो नामक ग्रन्थ में गोपाल-माता[2] नामक एक किसान-कन्या का उल्लेख है। यह भी राजा की एक पत्नी थी। 'स्वप्नवासवदत्ता' तथा कुछ अन्य ग्रन्थों में मगध के राजा दर्शक की बहन पद्मावती को भी उदयन की रानी कहा गया है। 'प्रियदर्शिका' में कहा गया है कि अंग राज्य के राजा दृढ़वर्मन की पुत्री आरण्यका के साथ उदयन का विवाह हुआ था। 'रत्नावली' के अनुसार, एक बार राजा उदयन अपनी बड़ी रानी वासवदत्ता की दासी सागरिका के प्रेमपाश में बँध गया था। कालिदास के **'प्राप्य-आवन्तिम् उदयन कथा-कोविद ग्राम-वृद्धान्'** (मेघदूत) शब्दों से स्पष्ट है कि कालिदास के समय में अवन्ती भर में वृद्धजनों द्वारा उदय की कहानियाँ कही और सुनी जाती थीं। जातकों में भी राजा उदयन के चरित्र पर कुछ प्रकाश डाला गया है। मातङ्ग जातक की प्रस्तावना में कहा गया है कि एक बार मदिरा के नशे में उदयन ने पिण्डोल भारद्वाज को बड़ा उत्पीड़न दिया था। उनके शरीर पर काटने वाली चींटियों का भीटा बँधवा दिया था। ग्यारहवीं शताब्दी के विद्वान् सोमदेव द्वारा लिखित 'कथा-सरित्सागर' में उदयन की दिग्विजय[3] का वर्णन किया गया है। श्रीहर्ष-लिखित प्रियदर्शिका[4] में कहा गया है कि उदयन ने कलिंग पर विजय प्राप्त की थी और अपने श्वसुर दृढ़वर्मन का खोया हुआ राजपाट वापस लाकर उन्हें पुनः सिंहासनासीन किया था। दृढ़वर्मन अंग राज्य के राजा थे। यद्यपि लोककथाओं से ऐतिहासिक तत्त्व निकालना काफ़ी कठिन-सा काम है, तो भी इतना तो स्पष्ट ही है कि उदयन एक महान् राजा था जिसने अनेक देशों को जीता और मगध, अंग तथा अवन्ती की राजकुमारियों से विवाह किया। उदयन का सितारा बड़ी तेजी से बुलन्दी पर चढ़ा। उदयन के बाद कोई योग्य उत्तराधिकारी न रहा। राजमहिषी का पुत्र बोधि शान्तिपूर्ण जीवन का प्रेमी था और उसने अशान्तिपूर्ण राजनीतिक जीवन की अपेक्षा घने जंगलों में जाकर मनन-चिन्तन का मार्ग चुना। बोधि संसुमारगिरि पर चला गया। अनेकानेक युद्धों से जर्जर उदयन का राज्य अन्ततः पड़ोसी राज्य अवन्ती के शासकों की राजलिप्सा का शिकार हो गया और उज्जैन के शासक यहाँ राज्य करने लगे।[5]

Srenika—A Jain Legend"; J. Sen, *"The Riddle of the Pradyota Dynasty"* (*IHQ*, 1930, pp. 678-700); Nariman, Jackson and Ogden, प्रियदर्शिका, lxii ff; *Aiyangar Com. Vol.*, 352 ff; *Malalasekera*, *DPPN*, I. 379-80; II, 316, 859.

[1] देखिये अनुपमा, दिव्यावदान, 36.

[2] IV, 8. 25; *DPPN*, I, 379-80.

[3] त्वानी द्वारा अनूदित, Vol. I, pp. 148 ff.

[4] Act IV.

[5] देखिये 'आवश्यक कथानक' में मणिप्रभ की कथा; जैकोबी, परिशिष्ट-पर्वन्, द्वितीय संस्करण, xii; कथा-सरित्सागर, II. p. 484. भद्रेश्वर ने अपनी पुस्तक 'कहावली' में, जिसे उन्होंने आवश्यक कथानक (IV) से उद्धृत किया है, लिखा है कि

उदयन के समय में अवन्ती में चण्ड प्रद्योत महासेन राज्य करता था जिसकी कन्या वासवदत्ता उदयन की बड़ी रानी थी। प्रद्योत के बारे में महावग्ग में कहा गया है कि वह एक निर्दयी शासक था।[1] पुराणों में उसे 'नयर्वजित' कहा गया है। यद्यपि उसकी नीति ठीक न थी, किन्तु पड़ोसी राजे उसके अधीन थे—स वै प्रनत सामन्तः। एक बार उसने वत्स के राजा को क़ैद कर लिया था तथा मथुरा के सिंहासन पर अपने किसी निकट सम्बन्धी को बिठाया था। मज्झिम निकाय[2] में कहा गया है कि बिम्बिसार के पुत्र अजातशत्रु ने राजगृह के चतुर्दिक् क़िलेबन्दी करा रखी थी, क्योंकि उसे भय था कि कहीं प्रद्योत आक्रमण न कर दे। इससे स्पष्ट है कि अवन्ती का प्रद्योत अपने पड़ोसियों के लिए भी डर का कारण बना था। प्रद्योत ने तक्षशिला के राजा पौष्करसारिन पर भी आक्रमण किया था।[3]

४. मगध का चन्द्रमा—बिम्बिसार

जैन-कथाओं के अनुसार, एक बार अवन्ती के प्रद्योत ने बिम्बिसार[4] के जीवन-काल में ही राजगृह पर आक्रमण किया था। ऐतिहासिक काल में मगध साम्राज्य की स्थापना करने वाला बिम्बिसार दक्षिणी बिहार के एक छोटे से सामन्त का पुत्र था। ऐसा प्रतीत होता है कि इस सामन्त का नाम तक भुला दिया गया है। कतिपय ग्रन्थों में एक काल्पनिक नाम देकर इस दोष को दूर करने का प्रयास किया गया है।[5] एक प्राचीन विद्वान् ने बिम्बिसार के वंश को हर्यङ्क-कुल कहा है और हम देख चुके हैं[6] कि पौराणिक विवरण के स्थान पर इस विवरण को अस्वीकार करना उचित नहीं है। कहा जाता है कि बालक बिम्बिसार को जिसे सेणिय अथवा श्रेणिक की उपाधि से भी पुकारा जाता था—उसके पिता ने स्वयं सिंहासनासीन किया था जबकि उस समय उसकी आयु केवल १४ वर्ष थी।[7] बिम्बिसार का राज्याभिषेक इस कारण भी स्मरणीय है कि उसके ९ सौ वर्ष बाद पुनः एक राजा ने अपने राजकुमार को गोद में लेकर मगध के राज-सिंहासन पर बिठाया और उससे राज्य की रक्षा करने का आग्रह किया।

प्रद्योत का प्रपौत्र मणिप्रभ कौशाम्बी का शासक था, जबकि उसका भाई अवन्तिसेन उज्जैन अथवा अवन्ती का शासक था।

[1] *SBE*, XVII, p. 187.

[2] III. 7.

[3] प्रद्योत इस युद्ध में असफल रहा। पुष्करसारिन तथा पांडव के बीच युद्ध हो जाने से ही उसका सम्पूर्ण विनाश होते-होते बचा (*Essay on Gunadhya*, 176)।

[4] वह राजकुमार अभय की चालाकियों का शिकार हुआ देखिये, *Annals of the Bhandarkar Institute*, 1920-21, 3; *DPPN*, I, 128)।

[5] अनेक स्वर्गीय लेखकों द्वारा जो नाम दिये गए हैं, उनमें से कुछ के नाम हैं—भाटियो (भट्टिय, बोधिस), महापद्म, हेमजित, क्षेमजित, क्षेत्रोजा अथवा क्षेत्रौजा।

[6] सुप्र, p. 115 ff.

[7] महावंश, गेगर द्वारा अनूदित, p. 12.

नये राजा को अपने समय की राजनीतिक स्थिति की स्पष्ट जानकारी थी। उत्तर में वृजि (वज्जि) की सैनिक शक्ति दिनोंदिन बढ़ती जा रही थी। पास-पड़ोस के महत्त्वाकांक्षी राजे अपने राज्य-विस्तार की नीति पर चल रहे थे। मुख्यतया श्रावस्ती और उज्जैन से उक्त आक्रामक नीति का अविर्भाव हुआ था। इन दिनों उज्जैन के क्रूर तथा चरित्रहीन राजा और तक्षशिला के पौष्करसारिन में परस्पर शत्रुता थी। तक्षशिला के राजवंश को उसके कई दुश्मनों ने परेशान कर रखा था। पंजाब के शाकल तक फैले हुए अज्ञात पांडव भी तक्षशिला को डराते-धमकाते रहते थे। अतः तक्षशिला के राजा ने मगध से सहायता माँगी। राजा बिम्बिसार अपने गंवार देश के मित्र राजा को कृतार्थ करना चाहता था, परन्तु उसे अपने पूर्व के पड़ोसियों से चल रहे झगड़े को भी समाप्त करना था, और इस परिस्थिति में वह प्रद्योत या किसी अन्य सैन्य-सामन्त से शत्रुता मोल नहीं लेना चाहता था।

एक बार अवन्ती के राजा को पाण्डु रोग हो गया तो बिम्बिसार ने उसकी चिकित्सा के लिए वैद्यराज जीवक को भेजा था। यूरोप के हैप्सबर्ग तथा बोरबन्स की तरह बिम्बिसार भी राजवंशों से वैवाहिक सम्बन्धों का समर्थक था। उसने मद्र[1], कोशल[2] तथा वैशाली से वैवाहिक सम्बन्ध क़ायम भी किये। बिम्बिसार की यह नीति बहुत ही महत्त्वपूर्ण थी। उसके द्वारा उपर्युक्त सैन्य-शक्ति-प्रधान राज्य बिम्बिसार से सन्तुष्ट ही नहीं रहे, वरन् उन्होंने मगध को पश्चिम तथा उत्तर की ओर फैलने में भी मदद दी। कोशल से आई बिम्बिसार की रानी अपने साथ काशी ग्राम भी लाई। काशी से १ लाख का भू-राजस्व प्राप्त हुआ। कोशल की ओर से राजकुमारी के 'स्नान व शृङ्गार'[3] के ख़र्च को पूरा करने के लिए उक्त ग्राम मगध को मिला था। वैशाली से हुए सम्बन्धों में अगले शासक के शासन-काल पर महान् प्रभाव पड़ा।

---

[1] कहा जाता है कि शाकल (मद्र) की राजकुमारी खेमा ही बिम्बिसार की मुख्य रानी (प्रेमिका) थी। क्या तोलेमी के समय में शाकल में पाये जाने वाले पाण्डवों से भी उसका कोई सम्बन्ध था ?

[2] *Dhammapada Commentary* (Harvard, 29, 60; 30, 225) के अनुसार, बिम्बिसार तथा पसेनदि एक-दूसरे की बहन से विवाह कर वैवाहिक सूत्र में बँधे थे।

[3] देखिये जातक संख्या 239, 283, 492। तुस जातक (338) तथा मूषिक जातक (373) के अनुसार, कोशल की राजकुमारी ही अजातशत्रु की माता थी। 'जातक' की भूमिका में कहा गया है कि "अजातशत्रु के गर्भ में आने के समय, कोशल-कुमारी की यह तीव्र उत्कण्ठा हुई कि वह महाराज बिम्बिसार के दाहिने घुटने का रक्तपान करे।" संयुक्त निकाय (*Book of the Kinderd Sayings*, 110) में कोशल के पसेनदि ने अजातशत्रु को अपना भानजा कहा है। *Book of the Kindred Sayings*, Vol. I, p. 38n में मद्दा (मद्रा) अजातशत्रु की माता का नाम प्रतीत होता है। तिब्बत के एक लेखक ने उसे वासवी कहा है (देखिये *DPPN*, I. 34)। जैन-लेखकों ने वैशाली के चेटक की पुत्री चेलणा (छलना) को कूणिक-अजातशत्रु की माता बताया है। निकायों में अजातशत्रु को वैदेहीपुत्र (विदेह की राजकुमारी का पुत्र) कहा गया है। यह कथन जैन-कथन की पुष्टि करता है, क्योंकि विदेह वैशाली ही में था। बुद्धघोष के अनुसार, 'वेदेही' वेद-इह, वेदेन इहति, या मानसिक प्रयत्न, अर्थात्

अपनी कुशल कूटनीति के फलस्वरूप ही बिम्बिसार को अपने शत्रु अंग से संघर्ष करने का अवसर मिला और अन्त में बिम्बिसार ने ब्रह्मदत्त[1] को हराकर अंग राज्य पर अधिकार जमा ही लिया। महावग्ग[2] तथा शोणदण्ड सुत्त, दोनों ग्रन्थों से भी बिम्बिसार की अंग राज्य पर विजय की पुष्टि होती है। इन ग्रन्थों में लिखा है कि राजा बिम्बिसार ने चम्पा नगर से प्राप्त होने वाली आय ब्राह्मण शोणदण्ड को समर्पित कर दी थी। जैन-ग्रन्थों में मिलता है कि अंग राज्य एक अलग प्रान्त था और मगध के युवराज द्वारा शासित था। चम्पा इसकी राजधानी थी।[3] राजा स्वयं राजगृह-गिरिव्रज[4] में निवास करता था। इस प्रकार कूटनीति और ताकत के बल पर बिम्बिसार ने अंग राज्य तथा काशी के एक भाग को मगध में मिला लिया था। फिर तो मगध निरन्तर विस्तार की ओर बढ़ता गया, और तब तक बढ़ता गया जब तक कि महान् अशोक ने कलिंग के बाद अपनी तलवार रख नहीं दी। महावग्ग में लिखा है कि बिम्बिसार के राज्य में ८० हजार[5] नगर थे।

बिम्बिसार के समय की इन सफल विजय-यात्राओं का एक कारण यह भी है कि राज्य का प्रशासन बड़ा ही कुशल और सशक्त था। बिम्बिसार अपने अफ़सरों[6] पर बड़ी कड़ाई से हुकूमत करता था। वह प्रायः गलत सलाह देने वाले अफ़सरों को बर्खास्त कर देता और जिस अधिकारी की सलाह उसे पसन्द आ जाती, उसे पुरस्कृत करता था। राजा की उक्त नीति के कारण वस्सकार और सुनीथ जैसे अधिकारियों को ऊँचा स्थान प्राप्त हुआ। राज्य के उच्च अधिकारी (राजभट) कई वर्गों में विभाजित थे। वे वर्ग इस प्रकार थे--(१) सब्बत्थक (सामान्य मामलों का कर्त्ता-धर्त्ता), (२) सेनानायक महामत्त, तथा (३) वोहारिक महामत्त (न्यायाधीश-वर्ग)।[7] हमें 'विनय' नामक ग्रन्थ में तत्कालीन न्यायाधीशों के कार्य-कलाप के सम्बन्ध में काफ़ी वर्णन मिलता है। इस ग्रन्थ में यह भी बताया गया है कि अपराधियों को किस प्रकार उनके

वह उन्नत मस्तिष्क वाली राजकुमारी का पुत्र था। इस सम्बन्ध में हमें याद रखना चाहिए कि कोशल के राजा पर-आटणार की उपाधि 'विदेह' थी, अतः महाकाव्य में अनेक राजकुमारियों को कौशल्य कहा गया है। अतः वैदेहीपुत्र कहने मात्र से ही यह सिद्ध नहीं हो जाता कि वह कोशल-राजकुमारी का पुत्र नहीं था। एक अन्य स्रोत के अनुसार, "वेला" (छलना) को भी वैदेही कहा गया है, क्योंकि वह विदेह से लाई गई थी (*AIU*, II, 20)।

१. देखिये *JASB*, 1914, p. 321.

२. देखिये *SBE*, XVII, p. 1.

३. देखिये हेमचन्द्र द्वारा लिखित परिशिष्टपर्वन् (VII, 22), और भगवती सूत्र तथा निरयावली सूत्र (वारेन द्वारा सम्पादित, p. 3)। राजा सेणिय एवं वेलनादेवी का पुत्र राजा कूणिय जम्बूदीप में, भारतवर्ष में चम्पा नगरी का शासक था।

४. सुत्त निपात, *SBE*, X, ii, 67.

५. सम्भवतः स्टॉक की संख्या।

६. विनय पिटक (VII, 3.5) का चुल्लवग्ग देखिये; विनय पिटक, 1, 73, 74 f; 207, 240.

७. पालि-ग्रन्थों में वर्णित न्यायाधिकारी (*Kindred Sayings*, II, 172)।

अपराध का त्वरित दण्ड दिया जाता था। कारावास के अलावा बेंत लगाने, दागने, सर काटने तथा पसली तोड़ देने आदि की सजाएँ दी जाती थीं। उपर्युक्त तीन वर्गों के अलावा अफ़सरों का एक चौथा वर्ग भी होता था। चतुर्थ वर्ग का अधिकारी गाँव के मुखिया (ग्रामभोजक अथवा ग्रामकूट) की भाँति किसानों की पैदावार पर दशांश कर लगाने व वसूलने के लिये उत्तरदायी था।[1]

प्रान्तों में काफ़ी मात्रा में स्वशासन स्थापित था। हम चम्पा में एक उपराजा का उल्लेख देख चुके हैं। इसके अतिरिक्त मध्यकालीन यूरोप में जिस प्रकार अर्ल और काउन्ट हुआ करते थे, बिम्बिसार के युग में उसी प्रकार मण्डलिक राजा[2] हुआ करते थे। बिम्बिसार हमेशा William the Conqueror की तरह बहिर्मुखी प्रवृत्तियों का दमन करता था। यह कार्य वह प्रायः अपने राज्य के ८० हज़ार नगरों से आये ग्राम-प्रधानों (ग्रामिकों) की सहायता से करता था।

बिम्बिसार ने यातायात और संचार-व्यवस्था को भी विकसित करने का प्रयत्न किया। नये राजमहल की नींव डाली गई। ह्वेनसांग ने अपने यात्रा-वर्णन में बिम्बिसार-मार्ग तथा बिम्बिसार-सेतु का उल्लेख किया है। ह्वेनसांग ने यह भी लिखा है कि जब पुराने राजगृह में आग लगी तो राजा ने श्मशान में नये नगर का निर्माण कराया। फ़ाहियान के कथनानुसार, नये राजगृह के निर्माण का श्रेय अजातशत्रु को था। राजदरबार में जीवक जैसे राजवैद्य का होना यह सिद्ध करता है कि बिम्बिसार के समय में औषध-विज्ञान की उपेक्षा नहीं की जाती थी।

एक अर्थ में बिम्बिसार अभागा था। प्रसेनजित की तरह वह भी अपने युवराज के षड्यन्त्र का शिकार हुआ। युवराज को उसने चम्पा[3] का वाइसराय (उपराजा) ही नहीं बनाया था, वरन् अपने पिता[4] का ही अनुकरण करते हुए उसने युवराज को राजा के भी अधिकार प्रदान कर रखे थे। इतिहास जिसे अजातशत्रु, कूणिक तथा अशोकचन्द[5] अनेक नामों से जानता है, उस कृतघ्न पुत्र के सम्बन्ध में कहा जाता है कि उसने अपने पिता को मौत के घाट उतारा। युवराज के इस जघन्य अपराध से मगध और कोशल के भी सम्बन्ध खराब हुए। डॉक्टर स्मिथ का कहना है कि उक्त हत्या युवराज की धार्मिक चर्चाओं से घृणा की प्रवृत्ति का परिणाम है। किन्तु, इससे पालि तथा अन्य स्रोतों से प्राप्त सामग्री के प्रति संदेह होता है। परन्तु रीज़ डेविड्स

---

[1] *Camb. Hist. Ind.*, 199.

[2] *DPPN.* II, 898.

[3] देखिये भगवती सूत्र, निरयावली सूत्र, परिशिष्टपर्वन्, IV, 1-9; VI, 22; तथा कथाकोश, p. 178.

[4] चुल्लवग्ग, VII. 3. 5. राज्य-कार्य में बिम्बिसार ने अपने अन्य पुत्रों से भी सहायता ली थी। इनमें से एक अभय (उज्जैन की पद्मावती अथवा नन्दा का पुत्र) ने प्रद्योत के षड्यंत्र को विफल करने में अपने पिता को सहायता दी थी। अम्बपाली का पुत्र विमल कोण्डन्न; चेल्लना (छलना) के पुत्र हल्ल और वेहल्ल, तथा अन्य स्त्रियों से काल, सीलवत, जयसेन तथा पुत्री चुन्दी का भी उल्लेख मिलता है।

[5] कथाकोश, औपपातिय सूत्र में उसे 'देवनुंपिय' कहा गया है (*IA*, 1881, 108)। यह उपाधि ई० पू० तीसरी शताब्दी के 'देवनांपिय' से मिलती है।

तथा गेगर (Geiger) ने पालि-ग्रन्थों को विश्वसनीय सिद्ध किया है और स्वतन्त्र प्राच्य एवं जैन लेखकों ने भी उनके निष्कर्षों की प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से पुष्टि की है।[1]

५. कूणिक-अजातशत्रु

कूणिक-अजातशत्रु ने चाहे जिस ढंग से सिंहासन प्राप्त किया हो, किन्तु वह बड़ा ही सशक्त शासक सिद्ध हुआ। राजगृह की किलेबन्दी करवा कर उसने प्रतिरक्षा की व्यवस्था दृढ़ की तथा शोन और गंगा के संगम के समीप उसने पाटलिग्राम की नींव डाली, जो उसके राज्य का नया गढ़ बना। प्रसिया (या प्रशा, यूरोप में) के फ्रेडरिक-द्वितीय की तरह अजातशत्रु ने अपने पिता की नीति का ही पालन किया, यद्यपि पिता से उसके सम्बन्ध कभी भी अच्छे नहीं रहे। उसका शासन हर्यंक-वंश का चरमोत्कर्ष-काल था। उसने कोशल को ही नतमस्तक नहीं किया, काशी का ही कुछ भाग मगध में नहीं मिलाया, वरन् उसने वैशाली को भी हड़प लिया। उसकी तथा कोशल की लड़ाई का उल्लेख बौद्ध-ग्रन्थों[2] में मिलता है। कहते हैं, जब अजातशत्रु ने राजा बिम्बिसार की हत्या की तो बिम्बिसार की रानी कोसलादेवी की भी मृत्यु उसके वियोग में हो गई। रानी की मृत्यु के बाद भी मगध को काशीग्राम का राजस्व मिलता रहा। यह ग्राम रानी के शृंगार-व्यय के हेतु दहेज में मिला था। किन्तु, कोशलाधीश प्रसेनजित का कहना था कि पिता की हत्या करने वाले को उक्त ग्राम नहीं मिलना चाहिए। युद्ध आरम्भ हो गया। कभी तो प्रसेनजित काफ़ी भूभाग पर कब्ज़ा कर लेता और कभी अजातशत्रु कोशल के किसी भाग पर कब्ज़ा कर लेता। एक बार अपनी पराजय के बाद राजा प्रसेनजित श्रावस्ती भाग गया था। एक बार उसने अजातशत्रु को बन्दी बना लिया था, किन्तु चूँकि वह रिश्ते में भान्जा होता था, इसलिए छोड़ भी दिया गया। यद्यपि अजातशत्रु की फ़ौज पर भी वह कब्ज़ा कर चुका था, किन्तु बाद में उसे प्रसन्न करने के लिए उसने अपनी पुत्री वजिरा का विवाह अजातशत्रु के साथ कर दिया। राजकुमारी और अजातशत्रु के विवाह के बाद काशी-ग्राम पुनः मगध राज्य को दहेज में मिल गया और शान्ति स्थापित हो गई। किन्तु, राजकुमारी का पिता[3] तीन वर्षों से अधिक समय तक चैन से न रह सका। एक बार वह दौरे पर था कि कोशल के प्रधान सेनापति दीर्घचारायण ने राजकुमार विडूडभ को सिंहासन[4] पर बिठाल दिया। भूतपूर्व राजा, विडूडभ के मुकाबले अजातशत्रु की मदद पाने के विचार से राजगृह की ओर भागा, किन्तु मगध की राजधानी पहुँचने के पूर्व ही उसे ठण्डक लग गई और उसकी मृत्यु हो गई।

---

[1] जैनियों ने इस बात का प्रयत्न किया है कि कूणिक को पिता की हत्या करने से मुक्त किया जाये। जैकोबी ने भद्रबाहु के कल्पसूत्र (1879, p. 5) को लिखते समय निरयावली सूत्र का उल्लेख किया है।

[2] *The Book of the Kindred Sayings*, I, pp. 109-110; देखिये संयुक्त निकाय, हरितमात, वड्ढकी-सूकर, कुम्मा सपिण्ड, तच्छ सूकर तथा भद्दसाल जातक।

[3] *DPPN*, II, 172.

[4] भद्दसाल जातक।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मगध और वैशाली के युद्ध का वर्णन जैन-ग्रन्थकारों ने आंशिक रूप से अपने ग्रन्थों में सुरक्षित कर दिया है। कहा जाता है कि राजा सेणिय बिम्बिसार ने वैशाली के राजा चेटक की कन्या तथा अपनी रानी चेल्लणा (छलना) के पुत्रों हल्ल और वेहल्ल को अपना प्रसिद्ध हाथी सेयणग (सेचनक—अभिषेक करने वाला) तथा १८ लड़ियों का हीरे का एक हार भेंट कर दिया। अपने पिता से राज्य छीनने के बाद कूणिय (अजातशत्रु) ने अपने छोटे भाइयों से उक्त दोनों उपहारों को वापस करने को कहा। अजातशत्रु ने अपनी पत्नी पऊमावई (पद्मावती)[1] के उकसाने पर ऐसा किया। छोटे भाइयों ने हाथी और हार वापस देने से इन्कार कर दिया और अपने नाना चेटक के यहाँ भाग गये। अजातशत्रु सीधे तरीक़े से हाथी और हार वापस न पा सका। फलस्वरूप उसने वैशाली-नरेश चेटक[2] से युद्ध छेड़ दिया। बुद्धघोष की टीका सुमंगल-विलासिनी[3] के अनुसार, लिच्छवियों द्वारा विश्वासघात मगध और वैशाली के बीच युद्ध का कारण था। यह विश्वासघात कुछ क़ीमती हीरे-जवाहरात के प्रश्न को लेकर हुआ था।

कतिपय पालि-ग्रन्थों[4] में भी वैशाली और मगध के युद्ध का उल्लेख मिलता है। महावग्ग में कहा गया है कि एक बार मगध के दो मंत्री सुनीध (सुनीथ) और वस्सकार वज्जियों के विरोध के लिए एक क़िले का निर्माण कर रहे थे। महापरिनिब्बान सुत्तन्त में कहा गया है कि "राजगृह की एक पहाड़ी पर वह परम सौभाग्यशाली (महात्मा बुद्ध) रहा करता था। उस समय मगध का राजा अजातशत्रु वज्जियों पर आक्रमण करने का इच्छुक था। उसने कहा भी—मैं वज्जियों का उन्मूलन कर दूँगा, चाहे वे कितने ही बली और ताक़तवर क्यों न हों। मैं इन वज्जियों को उजाड़ दूँगा, मैं इन्हें नेस्तनाबूद करके रहूँगा।"

अजातशत्रु ने मगध के महामात्य ब्राह्मण वस्सकार को बुलाया—"ब्राह्मण! इधर आओ, जाकर उस सौभाग्यशाली (बुद्ध) से कहो कि अजातशत्रु ने वज्जियों का उन्मूलन करने का निश्चय किया है।" राजा की बात सुनकर महामात्य ने जाकर बुद्ध से ज्यों-का-त्यों वह सुनाया।

निरयावली सूत्र में कहा गया है कि जब अजातशत्रु ने वैशाली के चेटक पर आक्रमण की पूरी तैयारी कर ली तो चेटक ने लिच्छवि, मल्लक, काशी तथा कोशल

---

[1] मगध-वंश में पद्मावती का उल्लेख इतनी बार हुआ है कि मानो यह किसी एक व्यक्ति-विशेष का नाम न होकर कोई उपाधि रही हो। राजकुमार अभय की माता, अजातशत्रु की एक रानी, दर्शक की एक बहन आदि का भी यही नाम था। कामसूत्र में कहा गया है कि पद्मिनी हर प्रकार से पूर्ण एवं सुन्दर स्त्री को ही कहा गया है। हो सकता है कि यह नाम पौराणिक कथाओं से लिया गया हो।

[2] उवासगदसाव, II, परिशिष्ट, p. 7; देखिये त्वानी, कथाकोश, p. 176 ff.

[3] बर्मी संस्करण, Part II, p. 99. देखिये बी० सी० लॉ की *Buddhistic Studies*, p. 199; *DPPN*, II, 781.

[4] *SBE*, XI, p. 1-5, XVII, 101; *Gradual Sayings*, IV, 14 etc.

के १८ गणराज्यों[1] का आह्वान किया और उनसे कहा कि आप लोग चाहें तो अजातशत्रु की लालसा पूरी करें और नहीं तो उसके खिलाफ़ युद्ध करने को तैयार हों। मज्झिम निकाय[2] में कोशल और वैशाली के बीच काफ़ी अच्छे सम्बन्धों का उल्लेख मिलता है। इसलिए जैन-ग्रन्थों का यह तथ्य सन्देह से परे है कि काशी और कोशल के अलावा वैशाली तथा अन्य राज्यों में इस प्रश्न पर एकता हो गई। काशी, कोशल और वैशाली के अतिरिक्त अजातशत्रु के अन्य शत्रुओं ने भी इस बार संयुक्त रूप से उससे मोर्चा लिया। मगध-कोशल और मगध-वज्जि के युद्ध इक्का-दुक्का युद्ध की घटनाएं नहीं थीं, वरन् मगध के बढ़ते प्रभाव के विरोध में चल रहे आन्दोलन के प्रतीक भी थे। जिस प्रकार एक बार रोम के प्रभाव के विरुद्ध सैमनाइटों, इट्रस्कनों तथा गॉलों को संघर्षरत होना पड़ा था, उसी प्रकार मगध के विरुद्ध धुधुआते धुएँ ने भी युद्ध की लपटों का रूप ग्रहण कर लिया।[3]

कूणिय-अजातशत्रु के बारे में कहा जाता है कि उसने वैशाली के युद्ध में महासिलाकण्टग तथा रथमुसल युद्ध-यन्त्रों का प्रयोग किया था। महासिलाकण्टग एक प्रकार का इंजन होता था, जो बड़े-बड़े पत्थरों को लेकर भीड़ पर फेंकने का काम करता था। इसी प्रकार रथमुसल एक प्रकार का रथ होता था, जिसमें गदा लगी होती थी। रथ जिस ओर से होकर गुज़रता था, गदा उसी ओर सैकड़ों का काम तमाम कर देती थी।[4] प्राचीन रथमुसल की तुलना आजकल के युद्धों में प्रयोग किये जाने वाले टैंकों से की जा सकती है।

वैशाली के इस युद्ध में आजीविक सम्प्रदाय के गुरु गोसाल मंखलिपुत्त भी मारे गये। लगभग १६ वर्ष बाद महावीर की मृत्यु के समय भी मगध का विरोध करने वाले गणतंत्रों का अस्तित्व था। 'कल्प-सूत्र' के अनुसार, जिस समय महावीर की मृत्यु हुई, उस समय मगध के शत्रु गणतंत्रों ने एक बड़ा महोत्सव[5] किया जो १५ वर्ष

---

[1] Chiefs of the republican clans, *Cf.* 125 *ante.*

[2] Vol. II, p. 101.

[3] कहा जाता है कि अवन्ती के प्रद्योत ने भी अपने मित्र बिम्बिसार की मृत्यु का बदला लेने के लिए तैयारी की थी (*DPPN*, I, 34)।

[4] उवासगदसाव, Vol. II, परिशिष्ट, p. 60; कथाकोश, p. 179.

[5] *SBE*, xxii, 266 (अनुच्छेद 128)। जैसा कि जैकोबी ने कहा है (भद्रबाहु का कल्पसूत्र, 6ff) कि महावीर के निर्वाण की तिथि विक्रम से ४७० वर्ष पूर्व (ई० पू० ५८) थी। श्वेताम्बर इसे सही मानते हैं, जबकि दिगम्बरों के अनुसार, विक्रम से ६०५ वर्ष पूर्व थी। कहा जाता है कि दिगम्बरों के 'विक्रम' का अर्थ शालिवाहन (७८ ई०) से है। हेमचन्द्र ने हमारे समक्ष एक दूसरी ही बात रखी कि महावीर के महानिर्वाण के १५५ वर्ष पश्चात् चन्द्रगुप्त शासक बना—

एवम् च श्री महावीर मुक्तेर् वर्षास्ते गते
पञ्चपन्चाशदधिके चन्द्रगुप्तोऽभवन् नृपः।

—स्थविरावलीचरित, परिशिष्टपर्वन्, VIII, 339.

चन्द्रगुप्त का राज्याभिषेक जनश्रुति के अनुसार, ३२६ या ३१२ ई० पू० में हुआ था; हेमचन्द्र के परिशिष्टपर्वन् के अनुसार, महावीर की मृत्यु ४८१ से ४६७ ई० पू०

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

पूर्व वैशाली के युद्ध की किसी विजयपूर्ण घटना की स्मृति में मनाया गया था। ऐसा निरयावली सूत्र में भी कहा गया है। इससे स्पष्ट है कि मगध तथा उसके शत्रु गणतंत्रों के बीच छिड़ा युद्ध १६ वर्ष से अधिक समय तक चला। 'अट्ठकथा' में कहा गया है कि वैशाली तथा उनके मित्रों को विघटित व समाप्त[1] करने के लिए मगध के वस्सकार आदि राजनीतिज्ञों ने मैकियावली[2] की कूटनीति से काम लिया था।

वैशाली को पूरी तरह से हड़प लेने एवं कोशल व वज्जि की लड़ाइयों के समाप्त हो जाने के बाद काशी का कुछ भाग मगध में आ जाने से मगध के महत्त्वाकांक्षी शासक की अवन्ती के एकछत्र शासक से सीधी-सीधी मुठभेड़ हो गई। मज्झिम निकाय की यह उक्ति पहले ही उद्धृत की जा चुकी है कि अवन्ती के प्रद्योत के आक्रमण के भय से अजातशत्रु ने अपनी राजधानी की क़िलेबन्दी करवा ली थी। यह ज्ञात नहीं कि प्रद्योत ने कभी आक्रमण किया था, या नहीं। ऐसा उल्लेख कहीं भी नहीं मिलता है कि अजातशत्रु अवन्ती को दबा पाने में कभी भी सफल हुआ। अजातशत्रु के उत्तराधिकारियों ने ही अवन्ती पर विजय प्राप्त की।

अजातशत्रु के ही शासन-काल में बौद्ध धर्म के प्रवर्त्तक महात्मा बुद्ध तथा जैन धर्म के प्रवर्त्तक महावीर को निर्वाण प्राप्त हुआ था। महात्म गौतम बुद्ध की मृत्यु के

में होनी चाहिए। प्राचीन बौद्ध-साहित्य (*Dialogues of the Buddha*, III p. 111, 203; मज्झिम, II, 243) के अनुसार, जैन प्रचारक की मृत्यु बुद्ध से पूर्व हुई थी। इस प्रकार आधुनिकतम सूत्रों से यही ज्ञात होता है कि शाक्यमुनि का परिनिर्वाण ई० पू० ४८६ में हुआ था (Cantonese tradition, Smith, *EHI* 4th. ed., 49)। सिंहली लेखकों के अनुसार, शाक्यमुनि का निर्वाण अजातशत्रु के शासन के ८वें वर्ष में हुआ था। इसके अनुसार, बिम्बिसार का राज्याभिषेक ४९३ ई० पू० में होना चाहिए। जैन-लेखक, कूणिक के राज्याभिषेक तथा अपने स्वामी की मृत्यु के बीच का अन्तर १६ तथा 'X' वर्ष बताते हैं। बौद्ध-लेखकों के अनुसार दोनों के बीच का समय ८ वर्ष से भी कम होना चाहिए। जैन एवं बौद्ध साहित्य की विभिन्न तिथियों में तभी एकरूपता आ सकती है जब हम यह स्वीकार करें कि जैनियों ने कूणिक के चम्पा के शासक बनने के समय से तथा बौद्ध-साहित्यिकों ने अजातशत्रु के राजगृह के सिंहासन पर बैठने के समय से तिथि-गणना की है। बौद्ध-परम्परा के अनुसार, परिनिर्वाण से १ वर्ष पूर्व वस्सकार, बुद्ध से वृजि-दुर्घटना के सम्बन्ध में मिले। तीन वर्ष के पश्चात् (*DPPN*, I, 33-34), अर्थात् ४८४ ई० पू० में वृजि-शक्ति का विघटन हुआ, परन्तु इस पर बहुत अधिक विश्वास नहीं किया जा सकता।

[1] देखिये *Modern Review*, July, 1919, p. 55-56. गणपति शास्त्री द्वारा सम्पादित आर्य-मंजुश्री-मूलकल्प (Vol. I, p. 603 f) के अनुसार, अजातशत्रु के राज्य में मगध के अतिरिक्त अंग, वाराणसी तथा उत्तर में वैशाली नगर भी थे। जायसवाल के अनुसार, पर्खम-मूर्त्ति अजातशत्रु की समकालीन मूर्त्ति है। परन्तु, निस्संदेह पर्खम के कूणिक राजा नहीं थे (ल्यूडर्स सूची, सं० 150)।

[2] कूटनीति (उपलापन) तथा सम्बन्ध-विच्छेद (मिथुभेद)—*DPPN*, II 846; *JRAS*, 1931; *Cf. Gradual Sayings*, IV, 12. "अपनी चालाकी तथा मित्रता को तोड़ करके, अतिरिक्त अन्य किसी भाँति भी वृजिवासी पराजित नहीं किये जा सकते।"

कुछ ही दिन बाद सन्तों तथा साधुओं का एक सम्मेलन हुआ, जिसमें बुद्ध की अमृत-वाणियों तथा उनके उपदेशों के संकलन का निश्चय किया गया।

६. अजातशत्रु के उत्तराधिकारी—राजधानी का स्थानान्तरण तथा अवन्ती का पतन

पुराणों के अनुसार अजातशत्रु के बाद दर्शक मगध का उत्तराधिकारी हुआ, पर कुछ इतिहासकारों के अनुसार दर्शक को अजातशत्रु का उत्तराधिकारी मानना भूल होगी। इन लोगों का कहना है कि अजातशत्रु के पुत्र का नाम उदायिभद्द था तथा वही अजातशत्रु का उत्तराधिकारी था। कथाकोश[1] तथा परिशिष्टपर्वन्[2] में उदय या उदायिन को कूणिक का पुत्र तथा उत्तराधिकारी कहा गया है। उदायिन अजातशत्रु की रानी पद्मावती[3] का पुत्र था।

भास-रचित 'स्वप्नवासवदत्ता' के एक प्रसंग के अनुसार दर्शक का, मगध का शासक तथा उदयन का समकालीन होना कुछ सम्भव भी लगता है, किन्तु बौद्ध तथा जैन ग्रन्थों की तत्सम्बन्धी सामग्री को देखते हुए यह विश्वासपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि दर्शक अजातशत्रु के बाद ही मगध के सिंहासन का उत्तराधिकारी हो गया था। हो सकता है कि वह भी विशाख-पाञ्चालीपुत्र की ही तरह मण्डलिक राजा रहा हो। मगध शासकों की सूची में उसकी गणना भी उसी प्रकार की रही होगी जिस प्रकार इक्ष्वाकु-वंश में शुद्धोदन की गणना की जाती है। कुछ इतिहासकार लङ्का में प्राप्त लेखों के आधार पर उसे बिम्बिसार के वंश का अन्तिम शासक नागदासक मानते हैं। फिर भी, बिम्बिसार के वंशजों की सूची[4] प्रस्तुत करते हुए 'दिव्यावदान'[5] में दर्शक का नाम कहीं भी नहीं दिया गया है। इस प्रकार बौद्ध ग्रन्थ भी दर्शक की वंश-परम्परा तथा राजा की स्थिति के बारे में एकमत नहीं हैं।

उदायिन—गद्दी पर बैठने के पूर्व अजातशत्रु का पुत्र उदायिन या उदायिभद्द अपने पिता की ओर से चम्पा[6] का वाइसराय (उपराजा) था। परिशिष्ट-पर्वन् मे पता

---

[1] P. 177.

[2] P. 42.

[3] बौद्ध-लेखकों के अनुसार, प्रसेनजित की पुत्री वजिरा को उदायि की माता कहा गया है।

[4] उदाहरण के लिये, डॉ० डी० आर० भण्डारकर। इस सम्बन्ध में पूर्व-संस्करणों में 'सी-यु-की' के एक भाग का उल्लेख किया गया था (देखिये, बील द्वारा अनूदित, II, p. 102)—'प्राचीन संघाराम से लगभग १०० ली दूर 'ती-लो-शी-किया' का संघाराम बिम्बिसार-वंश के अन्तिम शासक ने बनवाया था।" कहा जाता है कि यह अन्तिम शासक दर्शक था, जिसे बिम्बिसार का वंशज कहा गया है। परन्तु, अब मेरा यह विचार है कि ऐसा सोचना एक भ्रम होगा (देखिये वाटर्स, II, p. 106 f)

[5] p. 369.

[6] जैकोबी, परिशिष्टपर्वन्, p. 42.

चलता है कि उसने गंगा के तट पर पाटलिपुत्र[1] नाम की एक नयी राजधानी का निर्माण करवाया था। इस कथन की पुष्टि गार्गी संहिता[2] तथा वायु पुराण के उन अंशों से होती है, जिनमें कहा गया है कि अपने शासन-काल के चतुर्थ वर्ष में उसने कुसुमपुर (पाटलिपुत्र) का निर्माण कराया था। नयी राजधानी के लिए यह जगह इस लिए चुनी गई, क्योंकि यह राज्य के मध्य में स्थित थी। इसके अलावा गंगा और शोन जैसी बड़ी नदियों के संगम पर पाटलिपुत्र के निर्माण के समय व्यापारिक तथा सामरिक दृष्टिकोणों से भी सोचा गया होगा। इस प्रसंग में यह जान लेना अपेक्षित है कि कौटिल्य के अर्थशास्त्र में नदियों के संगम पर ही राजधानी बनवाने की चर्चा मिलती है।

परिशिष्टपर्वन्[3] में अवन्ती के राजा की चर्चा उदायिन के शत्रु के रूप में ही की गई है। इस बात को देखते हुए यह असम्भव नहीं लगता कि अवन्ती के राजा प्रद्योत के भय से उदायिन के पिता अजातशत्रु ने राजधानी की क़िलेबन्दी करवाई थी। अंग तक वैशाली राज्यों का पतन तथा कोशल के पराभव से अब केवल अवन्ती राज्य ही मगध का सबल प्रतिद्वन्द्वी बच रहा था। अवन्ती ने पूर्वी भारत के विभिन्न राज्यों व गणतन्त्रों को अपने में समाविष्ट कर लिया था। इसके विपरीत, यदि 'कथा-सरित्सागर' और 'आवश्यक कथानक'[4] पर विश्वास किया जाय तो उस समय कौशाम्बी राज्य को अवन्ती के राजा पालक ने अपने में मिला लिया था। पालक प्रद्योत का पुत्र था। अवन्ती में मिलाए जाने के बाद अवन्ती का ही कोई राजकुमार कौशाम्बी पर शासन करता था। मगध और अवन्ती दोनों राज्य एक दूसरे की निगाह पर आ गये थे।[5] उक्त दोनों राज्यों के बीच अजातशत्रु के समय से ही प्रतिद्वन्द्विता आरम्भ

---

[1] VI, 34; 175·180.

[2] Kern, बृहत्संहिता, 36.

[3] Pp. 45-46; Text VI. 191—अभूदनोनित्यम् अवन्तिशोऽपि-उदायिनः।

[4] देखिये, सुप्र, III, p. 204.

[5] उदायिन तथा अवन्ती के राजा के बीच हुए युद्ध का विवरण जानने के लिये, देखिये *IHQ*, 1929, 399.

डॉ० जायसवाल के अनुसार पटना-मूर्त्तियों में से एक, जो कि भारतीय संग्रहालय की भरहुत-गैलरी में रखी है, उदायिन की ही मूर्त्ति है (*Ind. Ant.*, 1919, p. 29 ff)। उनके अनुसार, मूर्त्ति पर निम्नलिखित शब्द लिखे हैं—*Bhage ACHO Chhonidhise.* वह *ACHO* को भागवत सूची में दिये गये अज का रूप बताते हैं और मत्स्य, वायु तथा ब्रह्माण्ड सूची में दी गई सूची में उदायिन को। डॉ० जायसवाल द्वारा दिये गये इस विचार को बहुत से विद्वानों ने जैसे बार्नेट, डॉ० चन्दा, डॉ० आर० सी० मजूमदार तथा डॉ० स्मिथ आदि ने नहीं माना, तथा उसे पूर्वमौर्यकालीन मूर्त्ति बताया है। अपनी पुस्तक 'अशोक' के तृतीय संस्करण में डॉ० स्मिथ ने डॉ० जायसवाल के मत को सही माना है। इन मूर्त्तियों पर बारीक़ अक्षरों के लेख को पढ़ना असम्भव है, अतः उनके आधार पर कोई फ़ैसला नहीं किया जा सकता। अभी इस समस्या को हम पूर्ण रूप से हल हुआ नहीं समझते। कनिंघम के अनुसार, वह यक्ष की मूर्त्ति है। डॉ० चन्दा के अनुसार, वह वैश्रवण (जिसकी राजधानी अखण्ड हो) की मूर्त्ति है (देखिये *Indian Antiquary*, March, 1919)। डॉ० मजूमदार के अनुसार, उस पर लिखा है—गते (यखे ?) लेच्छै (वि) 40. 4 (*Ind. Ant.*, 1919)।

हो चुकी थी। यह प्रतिद्वन्द्विता उदायिन के समय में भी यथावत् चली तथा अन्त में जैन-ग्रन्थों[१] के अनुसार शिशुनाग या नन्द के समय में इसका फैसला हो सका।

पुराणों के अनुसार नन्दिवर्धन तथा महानन्दिन, उदायिन के उत्तराधिकारी थे, परन्तु जैनियों[२] के अनुसार कोई उत्तराधिकारी नहीं था। कुछ इतिहासकार उदायिन के बाद अनुरुद्ध, मुण्ड तथा नागदासक का नाम लेते हैं। अंगुत्तर निकाय में मुण्ड[३] को पाटलिपुत्र का राजा माना गया है। इससे भी उक्त कथन की पुष्टि होती है। दिव्यावदान में भी मुण्ड का नाम दिया गया है, किन्तु अनुरुद्ध और नागदासक का नाम नहीं मिलता। अंगुत्तर निकाय में पाटलिपुत्र को मुण्ड की राजधानी कहा गया है। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि मुण्ड के शासन-काल के पूर्व ही मगध की राजधानी राजगृह से कुसुमपुर अथवा पाटलिपुत्र को स्थानान्तरित कर दी गई थी।

श्रीलंका के बौद्ध ग्रन्थों में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि अजातशत्रु से लेकर नागदासक तक मगध के सभी राजाओं ने अपने पिता की हत्या[४] की थी और नागरिकों ने क्रोधवश पूरे के पूरे राज-परिवार को निष्कासित करके अमात्य को सिंहासन पर बिठाया था।

शिशुनाग—ऐसा लगता है कि यह नया राजा[५] बनारस में मगध का वाइसराय (उपराजा) था। कभी-कभी अमात्य-वर्ग के लोगों की गवर्नर या जिला-अधिकारी के रूप में नियुक्ति कोई आश्चर्य की बात न थी। यह प्रथा गौतमीपुत्र शातकर्णि तथा रुद्रदामन-प्रथम के समय तक चली आई थी। पुराणों में 'अपने पुत्र को बनारस में रखकर राजधानी गिरिव्रज के जीर्णोद्धार' की बात आई है। राजा की द्वितीय राजधानी वैशाली[६] भी थी जो बाद में उसकी वास्तविक राजधानी हो गई थी। राजा शिशुनाग अपनी माँ की उत्पत्ति[७] को जानता था और शायद इसीलिये उसने वैशाली की पुनर्स्थापना करके उसे राजधानी का रूप दे दिया था। इसी समय से राजगृह-गिरिव्रज का मान घटने लगा और पुनः प्राप्त न किया जा सका।

---

१. *Ind. Ant.*, II, 362.

२. परिशिष्टपर्वन्, VI, 236.

३. अंगुत्तर निकाय, III, 57. "पाटलिपुत्र के निकट पूज्य नारद का निवास-स्थान था। इसी समय मुण्ड के राजा की प्रिय रानी भद्दा का देहान्त हो गया। राजा को अत्यधिक शोक हुआ। लोहे के बने बर्तन में तेल भर कर रानी का शरीर उसमें रख दिया गया। पियक नामक एक कोषाधिकारी का भी उल्लेख मिलता है (*Gradual Sayings*, III, 48)।

४. जैन-जनश्रुतियों में भी अजातशत्रु की मृत्यु का वर्णन है (जैकोबी, परिशिष्टपर्वन्, द्वितीय संस्करण, p. xiii)।

५. पौराणिक तथा श्रीलङ्का की सूचियों में दिये गये राजाओं के नाम तथा उनके महत्त्वपूर्ण स्थान आदि के विषय में प्रथम भाग में ही तर्क दिया जा चुका है।

६. *SBE*, *XI*, p. xvi. यदि 'द्वातृंशत् पुत्तलिका' का विश्वास किया जाये तो नन्द के समय तक वैशाली दूसरी राजधानी के रूप में बनी रही।

७. महावंशटीका (टर्नर का महावंश, xxxvii) के अनुसार, शिशुनाग वैशाली के लिच्छवि राजा का पुत्र था। किसी नगरशोभनी का पुत्र था तथा राज्याधिकारी द्वारा उसका पालन-पोषण हुआ था।

शिशुनाग की सबसे महत्त्वपूर्ण सफलता यह रही कि उसने अवन्ती के राजा प्रद्योत के वंश की सारी शान-शौकत मिट्टी में मिला दी। प्रद्योत के बाद उसके पुत्रों—गोपाल और पालक—ने राजपाट सँभाला तथा विशाख और आर्यक ने गोपाल और पालक का उत्तराधिकार प्राप्त किया। विष्णुपुराण के अतिरिक्त पुराणों में गोपाल का नाम नहीं आता।[1] जैन-ग्रन्थों के अनुसार, महावीर के देहावसान के आसपास पालक का अस्तित्व माना जाता है। वह एक अत्याचारी शासक के रूप में प्रसिद्ध था। विशाखभूप (जो अधिकांश पौराणिक साहित्य में विशाखयूप के रूप में आया है) सम्भवतः पालक[2] का पुत्र था। पुराणों के अलावा अन्यत्र इस राजा का नाम न आने से लगता है कि या तो यह किसी दूर के ज़िले में राज्य करता था (सम्भवतः माहिष्मती जिले में) या राजा आर्यक के पक्ष में यह राजसिंहासन से हट गया था। आर्यक, पालक के तुरन्त बाद गद्दी पर बैठा। पुराणों में आर्यक या अजक के बाद नन्दिवर्धन या वर्तिवर्धन का नाम आया है; और आगे कहा गया है कि शिशुनाग राजा होगा तथा प्रद्योत की मान-मर्यादा को धूल में मिला देगा। डॉ० जायसवाल के अनुसार, अवन्ती-सूची का अजक तथा नन्दिवर्धन ही पुराणों की सूची के अज-उदायिन तथा नन्दिवर्धन थे। इसके विपरीत, डॉ० डी० आर० भण्डारकर का कहना है कि आर्यक या अजक, पालक के बड़े भाई गोपाल[3] का पुत्र था। कथा-सरित्सागर[4] के अनुसार, नन्दिवर्धन या वर्तिवर्धन शब्द अवन्तिवर्धन के ही बिगड़े हुए रूप हैं। बृहत्कथा[5] के अनुसार ये शब्द गोपाल के नाम हैं। 'आवश्यक कथानक'[6] के अनुसार ये नाम पालक के पौत्र अवन्तिसेन के पर्याय हैं। सम्भवतः अवन्तिवर्धन के काल में ही राजा शिशुनाग ने प्रद्योत-वंश का मान-मर्दन किया होगा। मगध की इस विजय के ही उपलक्ष्य में सम्भवतः एक क्रान्ति हुई, जिसके फलस्वरूप आर्यक उज्जैन के सिंहासन पर आरूढ़ हुआ था।

---

१. *Essay on Gunadhya*, p. 115. बृहत्कथा, स्वप्नवासवदत्ता, प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण, मृच्छकटिक आदि में गोपाल एवं पालक का उल्लेख मिलता है। हर्षचरित से कुमारसेन नामक राजा का पता चलता है। नेपाली बृहत्कथा (कथा-सरित्सागर, XIX. 57) के अनुसार, गोपाल महासेन का उत्तराधिकारी था, परन्तु (प्रद्योत ने उसके भाई पालक के लिये राज्य त्याग दिया) पालक ने गोपाल के पुत्र अवन्तिवर्धन के लिये राज्य त्यागा। आवश्यक कथानक (परिशिष्टपर्वन्, द्वितीय संस्करण, xii) में अवन्तिसेन को पालक का पौत्र कहा गया है।

२. *DKA*, 19n, 29. कल्कि पुराण (I. 3. 32 f) में विशाखयूप नामक राजा का उल्लेख आया है, जो प्राचीन अवन्ती के निकट माहिष्मती में शासन करता था।

३. *Carm. Lec.*, 1918, 64f. परन्तु जे० सेन ने ठीक ही कहा है (*IHQ*, 1930, 699) कि मृच्छकटिक में आर्यक को ग्वालपुत्र कहा गया है जो क्रूर पालक को हटा कर सिंहासनारूढ़ हुआ।

४. देखिये त्वानी का अनुवाद, II, 485; *Cf. Camb. Hist. Ind.*, I, 311.

५. *Essay on Gunadhya*, 115.

६. परिशिष्टपर्वन्, द्वितीय संस्करण, p. xii.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पुराणों के अनुसार शिशुनाग[1] के बाद उसका पुत्र काकवर्ण उसका उत्तराधिकारी हुआ। सीलोनीज़ क्रॉनिकल के अनुसार, शिशुनाग का उत्तराधिकारी उसका लड़का कालाशोक था। जैकोबी, गेगर और भण्डारकर के मतानुसार, कालाशोक[2] (काला अशोक) तथा काकवर्ण (कौए के वर्ण का) एक ही व्यक्ति के दो नाम थे। यह कथन अशोकावदान की इस उक्ति से मेल खाता है कि मुण्ड के बाद काकवर्णिन नामक राजा हुआ था। अशोकावदान में कालाशोक का नाम नहीं है। नये राजा ने सम्भवतः बनारस और गया में रहकर राजकाज के संचालन की शिक्षा पाई थी। इस राजा के शासन-काल में दो महत्त्वपूर्ण घटनायें घटीं। एक तो वैशाली में बौद्धों की सभा का दूसरा अधिवेशन हुआ; दूसरे, राजधानी अन्तिम रूप से पाटलिपुत्र को स्थानान्तरित की गई।

बाण ने अपने हर्षचरित[3] में राजा काकवर्ण की मृत्यु के बारे में एक उत्सुकतामूलक कहानी लिखी है। कहानी में कहा गया है कि राजधानी के समीप ही किसी ने राजा के गले में खंजर घुसेड़ कर उसे मार डाला। राजा के दुःखद अन्त की इस कहानी की पुष्टि तत्सम्बन्धी यूनानी सामग्री से भी हो जाती है।

कालाशोक के पश्चात् उसके दस पुत्र सिंहासन के उत्तराधिकारी हुए। कहा

प्रद्योत की वंशावली

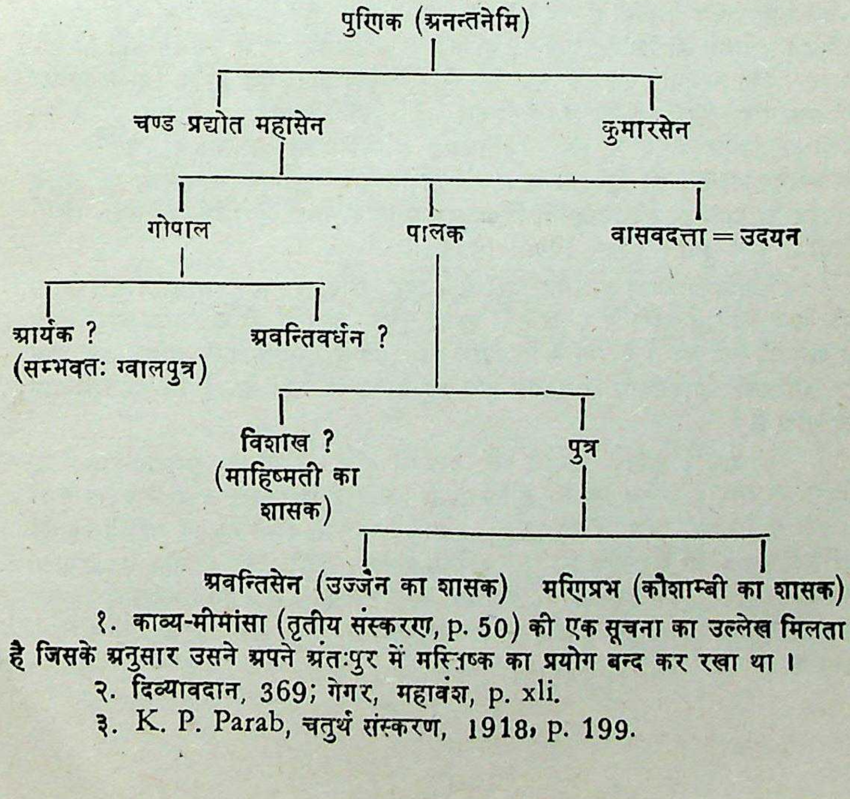
पुणिक (अनन्तनेमि)
चण्ड प्रद्योत महासेन
कुमारसेन
गोपाल
पालक
वासवदत्ता = उदयन
आर्यक ?
(सम्भवतः ग्वालपुत्र)
अवन्तिवर्धन ?
विशाख ?
(माहिष्मती का शासक)
पुत्र
अवन्तिसेन (उज्जैन का शासक)
मणिप्रभ (कौशाम्बी का शासक)

---

[1] काव्य-मीमांसा (तृतीय संस्करण, p. 50) की एक सूचना का उल्लेख मिलता है जिसके अनुसार उसने अपने अंतःपुर में मस्तिष्क का प्रयोग बन्द कर रखा था।

[2] दिव्यावदान, 369; गेगर, महावंश, p. xli.

[3] K. P. Parab, चतुर्थ संस्करण, 1918, p. 199.

जाता है कि सभी पुत्रों ने एकसाथ राज्य किया। महाबोधिवंश के अनुसार, इन पुत्रों के नाम भद्रसेन, कोरण्डवर्ण, मंगुर, सर्वञ्जह, जालिक, उभक, सञ्जय, कोरव्य, नन्दिवर्धन तथा पञ्चमक[1] थे।

इनमें से केवल नन्दिवर्धन का नाम पौराणिक सूची[2] में मिलता है। पिछले कुछ वर्षों में इस राजा ने इतिहासकारों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया है। उक्त राजा का नाम पटना में प्राप्त एक मूर्त्ति[3] पर लिखा मिला है। इसके अलावा हाथिगुम्फा

---

[1] द्विव्यावदान (p. 369) में काकर्वाणिन के उत्तराधिकारियों की एक दूसरी ही सूची दी गई है। उसके अनुसार, वे सहालिन, तुलकुची, महामण्डल तथा प्रसेनजित थे। प्रसेनजित के पश्चात् सिंहासन नन्द के हाथों में चला गया।

[2] देखिये भंडारकर-कृत *Carm., Lec.*, 1918, 83.

[3] डॉ० जायसवाल का कथन है कि जिस समय वे लिख रहे थे, भारतीय संग्रहालय की भरहुत-गैलरी में जो 'पटना-मूर्त्ति' बिना सिर के थी, वह इसी राजा की थी। उनके अनुसार, मूर्त्ति पर लिखा है: "सप (सव) खते वट नंदि।" उनके अनुसार, 'वट नंदि' वर्तिवर्धन (वायु-सूची में नंदिवर्धन) तथा नंदिवर्धन का सूक्ष्म रूप है। *Journal of the Bihar and Orissa Research Society*, 1919 के जून अंक में डॉ० आर० डी० बनर्जी लिखते हैं कि 'वट नंदि' पढ़ने में दो मत नहीं हो सकते। श्री चन्दा ने इसे यक्ष की मूर्त्ति बताया तथा उस पर पढ़ा 'यख स (?) एवट नंदि'। डॉ० मजूमदार कहते हैं कि लेख इस प्रकार पढ़ा जा सकता है—"यखे सं वजिनां ७०" उन्होंने इस लेख को दूसरी शताब्दी का बताया और कनिंघम एवं चन्दा के मत से सहमति प्रकट की कि यह यक्ष की मूर्त्ति है। वे इस विचार से सहमत नहीं हो सके कि वह मूर्त्ति शिशुनाग की थी तथा उस लेख में कुछ अक्षर ऐसे भी थे जिनके आधार पर महाराजा शिशुनाग का नाम निकलता है। डॉ० जायसवाल के मत का उल्लेख करते हुए कि 'वट नंदि' दो शब्दों (वर्तिवर्धन व नंदिवर्धन) से बना है; उन्होंने कहा कि चन्द्रगुप्त-द्वितीय को 'देवगुप्त' तथा विग्रहपाल को 'सूर्यपाल' कहा गया है, परन्तु चन्द्रदेव या देवचन्द्र, सूर-विग्रह या विग्रह-सूर आदि दो शब्दों से मिलकर बना नाम किसी ने नहीं सुना है (*Ind. Ant.*, 1919)।

महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री ने 'वट नंदि' का अर्थ 'व्रात्य नंदि' लगाया और कहा कि उस मूर्त्ति में अनेक ऐसी वस्तुएँ तथा वस्त्र थे जो कात्यायन द्वारा व्रात्य क्षत्रियों को दिये गये। पुराण में शिशुनाग को क्षत्रबन्धु, अर्थात् व्रात्य क्षत्रिय कहा गया है। इस प्रकार जायसवाल से सहमत होते हुए इनका भी यही मत है कि यह शिशुनाग की मूर्त्ति है।

श्री अर्धेन्दु कुमार गांगुली इसे यक्ष की मूर्त्ति बताते हुए हमारा ध्यान महामयूरी की ओर आकर्षित करते हैं कि उसमें लिखा है कि 'नंदि च वर्धनस चैव नगरे नंदिवर्धने' (*Mod. Rev.*, Oct.1919)। डॉ० बार्नेट भी इससे सहमत नहीं हैं कि यह मूर्त्ति शिशुनाग की है। डॉ० स्मिथ ने अपनी पुस्तक 'अशोक' के द्वितीय संस्करण में स्वीकार किया है कि जायसवाल का मत सम्भवतः ठीक है। हम समझते हैं कि इस समस्या का अभी कोई हल नहीं है। अतः प्रमाणों को देखते हुए इसे फ़िलहाल शिशुनाग की ही मूर्त्ति कहेंगे।

के शिलालेख में भी इस नाम का उल्लेख है। यह भी प्रयास किया गया है कि खारवेल के रिकार्ड का नन्दराज ही नन्दिवर्धन मान लिया जाय। इसके अलावा पूर्वनन्द का भी उल्लेख मिला है, किन्तु पूर्वनन्द को नवनन्द से अलग समझा जाना चाहिये। उसे पुराणों[1] में वर्णित नन्दिवर्धन तथा महानन्दिन के वंश का ही एक शासक समझा जाना चाहिये। क्षेमेन्द्र और सोमदेव ने पूर्वनन्द और नवनन्द को तो अलग-अलग नहीं किया, किन्तु पूर्वनन्द और योगनन्द को अलग-अलग ही लिखा है।[2] पुराणों तथा सीलोनीज़ क्रॉनिकल में सिर्फ़ एक नन्द-वंश के होने की बात कही गई है। जैन-ग्रन्थों में 'नव' शब्द का अर्थ नया नहीं, वरन् नौ[3] कहा गया है। इन ग्रन्थों में नन्दिवर्धन को शिशुनाग-वंश का कहा गया है। शिशुनाग-वंश नन्द-वंश से बिल्कुल अलग था। पुराणों में ऐसी कोई बात नहीं कही गई जिसके आधार पर नन्दिवर्धन को कलिंग से सम्बन्धित किया जा सके।[4] "इसके विपरीत, हम यह भी जानते हैं कि जब मगध पर शिशुनाग एवं उसके वंश का शासन था, उस समय में कलिंग में ३२ राजाओं ने राज्य किया था। नन्दिवर्धन नहीं, वरन् महापद्मनन्द वह शासक था जिसने सबों को अपने अधीन किया और क्षत्रियों का उन्मूलन किया। इसलिए हाथिगुम्फा के शिलालेखों के नन्दराज को जिसने कलिंग पर अधिकार किया था: महापद्मनन्द अथवा उसके किसी पुत्र के अनुरूप समझा जाना चाहिये।"

७. हर्यंक-शिशुनाग राजाओं का तिथिक्रम

बिम्बिसार (हर्यंक) तथा शिशुनाग-वंश के तिथिक्रम के सम्बन्ध में पुराणों तथा सीलोनीज़ क्रॉनिकल में काफ़ी विषमता है। यहाँ तक कि पुराणों[5] में दी गई तिथियों को स्मिथ और पार्जिटर जैसे इतिहासकारों ने भी एक ओर से स्वीकार नहीं किया है। सिंहली प्रमाणों के अनुसार, बिम्बिसार ने ५२ वर्ष, अजातशत्रु ने ३२, उदयन ने १६, अनुरुद्ध और मुण्ड ने ८, नागदासक ने २४, शिशुनाग ने १८, कालाशोक ने २८ तथा कालाशोक के पुत्रों ने २२ वर्ष तक राज्य किया। गौतम बुद्ध की मृत्यु अजातशत्रु[6] के शासन के आठवें वर्ष में हुई, अर्थात् (५२ + ८) बिम्बिसार के सिंहासनासीन होने

---

[1] जायसवाल (आर० डी० बनर्जी द्वारा सहमति-प्राप्त), *The Oxford History of India*, संशोधित एवं परिवर्धित, *JBORS*, 1918, 91.

[2] देखिये, कथा सरित्सागर (दुर्गा प्रसाद और पारब का संस्करण), p. 10.

[3] जैकोबी, परिशिष्टपर्वन्, VIII, 3; App. p. 2—**नन्द वंशे नवमो नन्दराया।**

[4] Chanda, *Memoirs of the Archaeological Survey of India*, No. I, p. 11.

[5] पार्जिटर (*AIHT*, pp. 286-87) ने मत्स्य पुराण के आधार पर शिशुनाग-वंशजों को १६३ वर्ष से घटा कर १४५ वर्ष किया है। इस प्रकार हर एक का राज्य औसतन १४$\frac{१}{२}$ वर्ष था। उसने शिशुनाग के वंश का आरम्भ (जिसमें बिम्बिसार के कुछ वंशज भी हैं) ई० पू० ५६७ को मानकर २८७n को अस्वीकार किया है (देखिये भण्डारकर, *Carm Lec.*, 1918, p. 68)। "दश नरेशों के ३६३ वर्ष का लगातार राज्य, अर्थात् औसतन ३६.३ वर्ष का राज्य प्रत्येक राजा के लिए था।"

[6] महावंश, Chap. 2 (अनुवाद, p. 12)।

के ६० वर्ष (५९ से कुछ अधिक) बाद बुद्ध की मृत्यु हुई थी। सिंहली गणना के अनुसार यह घटना ५४४ वर्ष ईसापूर्व की है। तत्त्व-सम्बन्धी कुछ रिकार्ड संघभद्र द्वारा चीन लाये गए थे। इन पर आधारित एक चीनी विवरण के अनुसार, महात्मा बुद्ध की निर्वाण-प्राप्ति की घटना ४८६ वर्ष ईसापूर्व की है। ५४४ वर्ष ईसापूर्व वाली बात सिंहली इतिहास की उस गाथा से भी मेल नहीं खाती, जिसमें कहा गया है कि गौतम बुद्ध की निर्वाण-प्राप्ति के २१८ वर्ष बाद प्रियदर्शन (अशोक मौर्य) गद्दी पर बैठा था। उक्त तथ्य एवं कुछ चोल तथा चीन सामग्री के अध्ययन से कुछ इतिहासकारों का यह मत हो गया कि ५४४ वर्ष ईसापूर्व महात्मा बुद्ध के निर्वाण की धारणा पुरानी नहीं, नयी है। इन इतिहासकारों का एक यह भी मत है कि बुद्ध की मृत्यु ४८३ वर्ष[1] ईसापूर्व में हुई थी। किन्तु, इन इतिहासकारों द्वारा प्रस्तुत चोल-सामग्री को स्वीकार करना भी आसान नहीं है। सन् ४२८ ईसवी में सिंहल के सम्राट् महानामन ने इस सम्बन्ध में कुछ सामग्री चीन के तत्कालीन सम्राट् के पास भेजी थी। यह सामग्री भी उपर्युक्त इतिहासकारों के मत का समर्थन नहीं करती। कुछ अन्य प्रमाणों के अनुसार ५४४ वर्ष ईसापूर्व में बुद्ध के निर्वाण की तिथि ही युक्तिसंगत लगती है। इन प्रमाणों में ४८३ या ४८६ वर्ष ईसापूर्व को ज़रा भी प्राथमिकता नहीं दी गई है। सिंहली प्रमाणों के आधार पर हिसाब लगाने से चन्द्रगुप्त मौर्य का राज्याभिषेक ५४४-१६२ = ३८२ वर्ष ईसापूर्व होना चाहिये तथा अशोक मौर्य का सिंहासनारोहण ३२६ वर्ष ईसापूर्व में निकलता है। उपर्युक्त तिथियाँ यूनानी लेखकों तथा अशोक के अभिलेखों में प्राप्त सामग्री से पूरा-पूरा मेल नहीं खातीं। प्राचीन विद्वानों के अनुसार, चन्द्रगुप्त सिकन्दर-महान् (३२६ ईसापूर्व) तथा सेल्यूकस (३१२ वर्ष ईसापूर्व) का समकालीन था। अशोक के तेरहवें शिलालेख में कुछ यूनानी राजाओं के जीवित होने की चर्चा है। चूंकि इनमें से एक की मृत्यु २५८ वर्ष ईसापूर्व से पूर्व ही हुई थी (कुछ अन्य विद्वानों के अनुसार २५० वर्ष ईसापूर्व) और चूंकि सदाचार-सम्बन्धी शिलालेख अशोक के राज्याभिषेक से १२ वर्ष बाद लिखे गये थे, अतः उसका सिंहासनारोहण २६९ (अथवा २६१) वर्ष ईसापूर्व के बाद में नहीं हुआ होगा। किसी भी हालत में अशोक का राज्याभिषेक २७७ वर्ष ईसापूर्व के पूर्व नहीं हो सकता, क्योंकि उसके पितामह चन्द्रगुप्त को ३२६ वर्ष ईसापूर्व के बाद सिंहासन प्राप्त हुआ था। उस वर्ष सिकन्दर-महान् से चन्द्रगुप्त ने एक मामूली नागरिक के रूप में भेंट की थी। चन्द्रगुप्त ने २४ वर्ष तक राज्य किया। उसके बाद २५ वर्ष तक अशोक के पूर्वज बिन्दुसार ने शासन किया (३२६ वर्ष ईसापूर्व–४९ = २७७ वर्ष ईसापूर्व)। इससे तय हो गया कि अशोक का राज्याभिषेक २७७ तथा २६१ वर्ष ईसापूर्व के बीच ही हुआ था। चूंकि हम ऊपर देख चुके हैं कि अशोक का राज्याभिषेक बुद्ध के निर्वाण के २१८ वर्ष बाद हुआ, इसलिए बुद्ध के निर्वाण की तिथि ४९५ तथा ४७९ वर्ष ईसापूर्व के बीच ही हो सकती है। इसलिये परिनिर्वाण की सिंहली तिथि (५४४ वर्ष ईसापूर्व) उपर्युक्त तथ्यों से मेल नहीं खाती, और कुछ इतिहासकारों (Geiger, etc.) द्वारा दी गई परिनिर्वाण की तिथि ४८६ वर्ष ईसापूर्व या ४८३ वर्ष ईसापूर्व ही सही मालूम होती है। राजा मेघवर्ण ने कुछ चीनी सामग्री समुद्रगुप्त को भेजी थी। इसके अलावा राजा कासप्पा (किया-चे) ने कुछ लेख

---

[1] महावंश, गेगर का अनुवाद, p. xxviii: *JRAS*, 1909, p. 1-34.

आदि ५२७ ईसवी में चीन भेजे थे । इन लेखों से भी बुद्ध के परिनिर्वाण की तिथि ४८६ या ४८३ वर्ष ईसापूर्व ही पुष्ट होती है । परन्तु विश्वसनीय गाथाओं से गेगर के मत की पुष्टि नहीं होती । एल० डी० स्वामी कन्नू पिल्लै[1] परिनिर्वाण की तिथि १ अप्रैल (मंगलवार) ४७८ वर्ष ईसापूर्व मानते हैं । यह तिथि भी विश्वसनीय नहीं है । अतः मगध के प्रारम्भिक राजवंशों के तिथिक्रम-निर्धारण के लिए हमें चीनी तिथि को ही स्वीकार करना होगा । उपर्युक्त विविध तथ्यों एवं तर्कों से बिम्बिसार का राज्याभिषेक ५४५ वर्ष ईसापूर्व (४८६+५९) में पड़ता है । यह तिथि निर्वाण-सम्बन्धी सिंहली तिथि (५४४ वर्ष ईसापूर्व) के काफ़ी समीप पड़ती है । किसी काल के प्रचलित नाम से उसकी उत्पत्ति के बारे में कोई निश्चय नहीं किया जा सकता । यह हो सकता है कि सिंहली तिथिक्रम बिम्बिसार के राज्याभिषेक से ही आरम्भ हुआ हो और बाद में उसका नामकरण महात्मा बुद्ध के परिनिर्वाण के आधार पर हो गया हो ।

बिम्बिसार के शासन के समय गंधार एक स्वतन्त्र राज्य था तथा पौष्करसारिन (पुक्कुसाति) यहाँ राज्य करता था । ५१९ वर्ष ईसापूर्व के पहले ही गन्धार ने अपनी स्वतन्त्रता खो दी और फ़ारस के अधीन हो गया । इससे यह स्पष्ट हो गया कि पौष्करसारिन तथा उसके समकालीन बिम्बिसार, दोनों ५१९ वर्ष ईसापूर्व के पहले ही हुए रहे होंगे । इस तिथि के हिसाब से बिम्बिसार का राज्याभिषेक ५४५-५४४ वर्ष ईसापूर्व में ही पड़ता है ।

सम्भावित तिथिक्रम-चक्र

ई० पू०	घटना
५६५—	बुद्ध का जन्म
५६०—	बिम्बिसार का जन्म
५५८—	साइरस का राज्याभिषेक
५४५-४४—	बिम्बिसार का राज्याभिषेक—सीलोन-काल
५३६—	बुद्ध का संन्यास लेना
५३०-२९—	बुद्ध का बिम्बिसार से मिलना
५२७—	महावीर का निर्वाण-काल
५२२—	डेरियस-प्रथम का राज्याभिषेक
४९३—	अजातशत्रु का राज्याभिषेक
४८६—	बुद्ध का परिनिर्वाण, डेरियस-प्रथम की मृत्यु, राजगृह में सभा
४६१—	उदायिभद्रक का राज्याभिषेक
४५७—	पाटिलपुत्र (कुसुमपुर) का जन्म
४४५—	अनिरुद्ध (अनुरुद्ध) तथा मुण्ड
४३७—	नागदासक
४१३—	शिशुनाग

---

[1] *An Indian Ephemeris*, I, Pt. 1. 1922, pp. 471 ff.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

३९५— कालाशोक (काकवर्ण)
३८६— वैशाली की सभा
३६७— कालाशोक के पुत्र तथा महापद्मनन्द का राज्य
३४५— शिशुनाग-वंश का अन्त

८. नन्द-वंश

शिशुनाग-वंश को गद्दी से उतार कर नन्द-वंश[1] मगध में सिंहासनासीन हुआ। मगध के इस नये राजवंश तक पहुँचने के बाद पूर्वी भारत के इतिहास के बारे में विविध शास्त्रीय स्रोतों से अपनी जानकारी को और समृद्ध करने के लिए हमें प्रामाणिक सामग्री मिल सकती है। खारवेल के हाथिगुम्फा-रिकार्ड में प्रथम या द्वितीय शताब्दी के कलिंग के प्रसंग में नन्दराज का नाम दो बार आया है—

> **पञ्चमे चेदानि वसे नन्दराज तिवस-सत ओघाटितम्**
> **तनसुलिय-वाटा पनाडि (म्) नगरम् पवेस (यति)........।**

अर्थात्, 'तब पाँचवें वर्ष खारवेल ने राजा नन्द द्वारा ३०० वर्ष[2] पूर्व बनवाई गई नहर को तनसुलिय-मार्ग से राजधानी की ओर मोड़ा।'

---

[1] जैनियों के अनुसार, उदायिन की मृत्यु के पश्चात् तथा वर्धमान के निर्वाण के ६० वर्षों के पश्चात् नन्द को राजा घोषित किया गया (परिशिष्टपर्वन्, VI. 243)। नन्द के इतिहास के लिये देखिये *Age of the Nandas and Mauryas*, pp. 9-26; एन० शास्त्री, रायचौधरी तथा अन्य।

[2] 'तिवससत' का यह अर्थ पुराण के अर्थ से मिलता है तथा नन्द एवं सातकर्णि, जो खारवेल के, उसके राज्य के द्वितीय वर्ष में, समकालीन थे, के वंश के बीच का था (१३७ वर्ष मौर्य + ११२ शुंग + ४५ कण्व = २९४ वर्ष)। यदि इसका अर्थ, जैसा कि बहुत से विद्वान् मानते हैं, १०३ वर्ष से है तो खारवेल का राज्याभिषेक नन्दराज के १०३–५ = ९८ वर्ष के पश्चात् हुआ था। राज्याभिषेक के नौ वर्ष पूर्व (९८–९ = ८९ वर्ष) नन्द के पश्चात् वह युवराज हुआ था। इस प्रकार यह तिथि ३२४–८९ = २३५ ई० पू० हुई। खारवेल का ज्येष्ठ साथी राजगद्दी पर था। परन्तु अशोक के लेख से ज्ञात होता है कि उस समय कलिंग में मौर्य 'कुमार' का शासन था जो स्वयं अशोक के प्रति उत्तरदायी था। अतः 'तिवससत' का अर्थ १०३ न होकर ३०० होना चाहिये। प्रो० एस० कोनोव (*Acta Orientalia, I*, 22-26) इसे ३०० ही पढ़ते हैं तथा उनके अनुसार यह नन्द तथा खारवेल के मध्यान्तर को न बता कर नन्द-वंश की किसी तिथि की ओर संकेत करता है, जिसकी गणना किसी अज्ञात तिथि से हुई है। परन्तु, इस प्रकार की किसी तिथि का उस युग तथा नगर में होना सिद्ध नहीं होता। अशोक के समान खारवेल ने भी अपने लिए उसी प्रकार की तिथि का प्रयोग किया है। अतः, इस पुस्तक में जो धारणा बनाई गई है, उसकी पुष्टि पुराणों से भी होती है।

खारवेल के शासन के बारहवें वर्ष के विवरण में भी **'नन्दराज-नीतम् कलिंग जिन सन्निवेशं'**[१] प्रसंग आया है, जिसमें कहा गया है कि कलिंग[२] में एक मंदिर या अड्डा अथवा एक जैन मन्दिर ऐसा था जिसे नन्द ने अपने कब्ज़े में ले लिया था। **'नन्दराज-नीतम् कलिंग जिन सन्निवेशम्'** को **'नन्दराज-जित कलिंग-जन-सं (नि) (वे) सम्'** भी कहा गया है।

शिलालेख या अभिलेख यद्यपि शास्त्रीय स्रोतों से प्राप्त सामग्री के समान ही महत्त्वपूर्ण हैं, किन्तु वे समकालीन नहीं हैं। हमें समकालीन सामग्री के हेतु यूनानी लेखकों की कृतियों को देखना चाहिए। जिस ज़ेनोफ़न की मृत्यु लगभग ३५५ वर्ष ईसापूर्व के पश्चात् हुई, उसकी कृति साइरोपीडिया[३] में लिखा है कि भारतीय राजा बहुत धनी होता था। ज़ेनोफ़न की इस उक्ति से हमें उस राजा नन्द की याद आ जाती है जिसे संस्कृत, तमिल, सिंहली तथा चीनी सभी भाषाओं के प्राचीन ग्रन्थों में अत्यधिक धनी[४] कहा गया है। ३२६ वर्ष ईसापूर्व के आसपास मगध पर शासन

---

[१] देखिये बरुआ, खारवेल के हाथिगुम्फा-लेख (*IHQ*, XIV, 1938, pp. 259 ff.)। कोश के अनुसार, 'सन्निवेश' का अर्थ भीड़, ठहरने की जगह, अथवा किसी नगर के निकट का खुला मैदान है। एक आलोचक के अनुसार, इसका अर्थ कारवाँ अथवा जलूस के ठहरने का स्थान है। विदेह में कुण्डग्राम सन्निवेश था (*SBE*, XXII, जैन सूत्र, Vol. 1, भूमिका)। इस लेख में नन्दराज द्वारा कलिंग में किसी स्थान की न तो विजय की गई और न किसी पवित्र वस्तु को वहाँ से हटाया गया। अतः यह सिद्ध होता है कि वह वहाँ का स्थानीय शासक नहीं था (*Camb. Hist. Ind.*, 538)।

[२] डॉ० बरुआ के अनुसार, कलिंग के किसी भाग पर भी अधिकार नहीं था, क्योंकि अशोक के राज्य के ७वें वर्ष तक वह अविजित प्रांत था। परन्तु, जहाँगीर के समान मौर्य का कथन केवल उनके गर्व की घोषणा करता है कि "इस प्रान्त पर अब तक किसी भी नरेश का शासन नहीं हो सका था।" पुराणों के अनुसार, कलिंग शिशुनाग का समकालीन था तथा उस पर सर्व-क्षत्रान्तक नन्द का अधिकार हो गया था।

[३] देखिये, III, ii, 25 (वाल्टर मिलर द्वारा अनूदित)।

[४] देखिये, महापद्मपति तथा धननन्द के नाम। कथा-सरित्सागर में कहा गया है कि राजा के पास ९९ करोड़ सोने की सिलें थीं (देखिये टॉनी द्वारा अनूदित, Vol, I, p. 21)। डॉ० आयंगर कहते हैं कि एक तमिल कविता में नन्द राजाओं के धन के विषय में लिखा है कि "पाटलि में सर्वप्रथम एकत्र हो उसने अपने को गंगा की बाढ़ में छिपा लिया।" (*Beginnings of South Indian History*, p. 89)। एन० शास्त्री के विचार जानने के लिये देखिये *ANM*, pp. 253ff.

सीलोन की जनश्रुति के अनुसार, "उग्रसेन के पुत्रों में सबसे छोटा धननन्द था, और उसे धन एकत्र करने की आदत थी।....उसने ८० कोटि धन एकत्र कर गंगा की घाटी में एक पहाड़ी खुदवा कर वहीं दबा दिया। दूसरी वस्तुओं पर, जैसे खाल, गोंद, वृक्ष, पत्थर आदि पर कर लगा कर फिर धन एकत्र किया तथा उसी प्रकार उसे भी छिपा दिया (टर्नर, महावंश, p. xxxix)।

करने वाले राजाओं तथा सिकन्दर के समकालीनों ने विद्वानों को काफ़ी सामग्री प्रदान की है। इसी ऐतिहासिक सामग्री के आधार पर कर्टियस, डायोडोरस तथा प्लूटार्क ने अपनी-अपनी कृतियाँ तैयार की थीं। दुर्भाग्यवश प्राचीन लेखकों ने कहीं भी नन्दवंश का नाम नहीं लिखा है। जस्टिन की कृतियों में जहाँ 'अलेक्ज़ेन्ड्रम' लिखा है, उसे 'नन्द्रम' पढ़ना सर्वथा अनुचित और निरर्थक है।

उक्त वंश के विशद अध्ययन के लिये हमें भारतीय शास्त्रों पर ही अधिक निर्भर करना होगा। भारतीय विद्वान् नन्द-वंश के प्रति और अधिक आकृष्ट मालूम होते हैं—कुछ तो इसलिए कि इस वंश ने तत्कालीन सामाजिक जीवन में एक नयी क्रान्ति उत्पन्न कर दी थी और साम्राज्य की एकता की भावना को एक नया रूप प्रदान किया था। दूसरे, इसलिए कि इसी समय से जन-जीवन में जैन-विचारधारा समाविष्ट होने लगी थी। इसके अतिरिक्त प्राचीन विद्वान् चन्द्रगुप्त की कथा में भी रुचि रखते थे। चन्द्रगुप्त-कथा के विभिन्न अंश विभिन्न स्थानों पर प्राप्त होते हैं। प्राय: मिलिन्दपञ्हो, महावंश, पौराणिक तिथिक्रम, वृहत्कथा, मुद्राराक्षस तथा अर्थशास्त्र के सूत्रों में चन्द्रगुप्त-कथा मिलती है।

पुराणों के अनुसार, महापद्म या महापद्मपति[1] नन्द-वंश का प्रथम नन्द था। महाबोधि-वंश के अनुसार प्रथम नन्द का नाम उग्रसेन था। पुराणों में महापद्म को अन्तिम क्षत्रबन्धु का पुत्र कहा गया है। कहते हैं वह शूद्र-कन्या का पुत्र था (शूद्रा-गर्भोद्भव)। जैन-ग्रन्थ परिशिष्टपर्वन्[२] के अनुसार, नन्द गणिका माँ तथा नाई पिता का पुत्र था। उक्त कथन की पुष्टि सिकन्दर के समकालीन मगध के शासकों की वंशावली से भी हो जाती है। यही लोग चन्द्रगुप्त मौर्य के पूर्वज थे। इस राजकुमार (Agrammes) की चर्चा करते हुए कर्टियस ने लिखा है कि "इसका पिता नाई था। बेचारा अपनी रोज़ाना की कमाई से किसी तरह जीवन-यापन करता था। लेकिन, चूँकि देखने-सुनने में काफ़ी ख़ूबसूरत था, इसलिए महारानी उसे बहुत मानती थीं। रानी के प्रोत्साहन के फलस्वरूप ही वह राजा के भी समीप पहुँच गया और राजा का विश्वासपात्र बन गया। एक दिन उसने छल से राजा की हत्या कर दी। अपने को राजकुमारों का अभिभावक घोषित करते हुए उसने राजा के सभी अधिकार अपने हाथ में कर लिये; कई राजकुमारों की हत्या भी की और नया राजकुमार (Agrammes) पैदा किया।"

शास्त्रकारों के इस रिकार्ड की, कि नन्द-वंश का पूर्वज एक नाई था, नन्द-वंश-सम्बन्धी जैन-कथाओं से पुष्टि होती है। यह बात निर्विवाद है कि सिकन्दर तथा नवयुवक चन्द्रगुप्त के समय में मगध की गद्दी पर नन्द राजा ही राज्य करता था। कठिनाई तो उसके बारे में कोई निर्णय लेने में होती है। सम्भवत: वह पहला नन्द राजा नहीं

चीनी यात्री ह्वेनसांग राजा नंद के ५ कोषों का वर्णन करते हुए ७ अत्यन्त मूल्यवान् वस्तुओं का उल्लेख करता है।

[१] एक आलोचक के अनुसार वह 'अतुल धनराशि का स्वामी' था (देखिये विल्सन, विष्णु पुराण, Vol. IX, 184n)। महाभारत (VII, 553. 1) के अनुसार महापद्मपुर नामक एक स्थान का पता चलता है।

[२] P. 46; *Text*, VI, 231-32.

था। सिकन्दर के समकालीन राजकुमार (Agrammes) की चर्चा करते हुए कर्टियस ने कहा है कि "यह राजकुमार ऐसे पिता के पुत्र-रूप में पैदा हुआ था जिसने रानी का प्रेम प्राप्त कर पूरे साम्राज्य की अधिकार-सत्ता प्राप्त कर ली थी।" कर्टियस का यह कथन नन्द-वंश के उस संस्थापक के बारे में नहीं लागू होता, जो जैन-प्रमाणों के अनुसार एक साधारण गणिका तथा नाई पिता का पुत्र था, और जिसके नाई पिता को किसी भी प्रकार के शासकीय अधिकार प्राप्त नहीं थे।

वधित राजा सम्भवतः कालाशोक-काकवर्ण था, जैसा कि हर्षचरित में लिखा है। बाण ने लिखा है कि शिशुनाग-वंश के काकवर्ण राजा को राजधानी के समीप किसी ने उसके गले में खंजर चुभा कर मार डाला। जिन राजकुमारों का वर्णन इतिहासकार कर्टियस ने किया है, वे सम्भवतः काकवर्ण के ही पुत्र थे। राजकुमार Agrammes के उत्थान का जो रूप हमें यूनानी कृतियों में मिलता है, वह शिशुनाग-वंश के अंत तथा नन्द-वंश के उत्थान-सम्बन्धी सिंहली वर्णन से बिल्कुल मेल खाता है। लेकिन, यह कहानी पौराणिक स्वरूप से काफ़ी भिन्न है। पुराणों में कहा गया है कि शिशुनाग-वंश का अंतिम राजा ही प्रथम नन्द था और वह शूद्र-कन्या का पुत्र था। उसके अलावा पुराणों में अन्य राजकुमारों की कोई भी चर्चा नहीं मिलती है। राजकुमार का नाम Agrammes भी सम्भवतः उग्रसेन[१] के पुत्र औग्रसैन्य (संस्कृत) का बिगड़ा हुआ रूप है। हम देख चुके हैं कि महाबोधिवंश के अनुसार, उग्रसेन प्रथम नन्द राजा था। उसके लड़के का नाम स्वभावतः औग्रसैन्य हो सकता है, जिसका रूप यूनानी लेखकों ने बिगाड़ कर Agrammes कर दिया, और वही बाद में बिगड़ते-बिगड़ते Xandrames[२] हो गया।

पुराणों में महापद्म को पहला नन्द राजा कहा गया है। पुराणों के अनुसार महापद्म ने सभी क्षत्रियों को समाप्त कर अपना एकछत्र (एकराट) राज्य स्थापित किया था। उसे 'सर्वक्षत्रान्तक' कहा गया है, अर्थात् महापद्म ने अपने समकालीन इक्ष्वाकु, पंचाल, काशी, हैहय, कलिंग, अश्मक, कुरु, मैथिलि, शूरसेन तथा वीतिहोत्र[३] आदि

---

[१] ऐतरेय ब्राह्मण (viii, 21) में औग्रसैन्य का उल्लेख मिलता है।

[२] कुछ लेखकों के अनुसार, Xandrames (संस्कृत-रूप चन्द्रमस) मगध-अधिकारी सिकन्दर का समकालीन चन्द्रगुप्त बिल्कुल ग़लत है। प्लूटार्क ने सिकन्दर की जीवनी में दोनों को स्पष्ट रूप से भिन्न-भिन्न बताया है। उसके कथन की पुष्टि जस्टिन ने भी की है। Xandrames अथवा Agrammes अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् उत्पन्न हुआ तथा प्रासी (Prasii) का शासक बना, जबकि चन्द्रगुप्त अपने वंश का प्रथम शासक हुआ और उसने एक नये वंश की स्थापना की। Xandrames के पिता नाई थे, अतः किसी राजवंश से उनका कोई सम्बन्ध नहीं था, जबकि बौद्ध एवं ब्राह्मण लेखकों ने एक स्वर से क्षत्रिय कहा है, यद्यपि उसके वंश के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न मत हैं। जैनियों ने तो स्पष्ट लिखा है कि यह नाई नापितकुमार अथवा नापितसू था जिसने नन्द-वंश की स्थापना की थी (परिशिष्टपर्वन्, VI, 231, 244)।

[३] जिन जातियों अथवा वंश का यहाँ उल्लेख हुआ है, उनकी कुछ भूमि पर मगध-नरेशों ने अधिकार कर लिया था, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि वे प्राचीन वंश समाप्त हो गए थे। वास्तव में इससे उनका यश कम हो गया तथा विजेता की प्रभुता

राज्यों को अपने अधीन कर लिया था। जैन-प्रमाणों के अनुसार भी नन्द-राज्य बड़ा विस्तृत था। नन्द-वंश के अन्तर्गत भारत के अधिकांश भागों को एकताबद्ध किया गया। भारत के प्राचीन शास्त्रकार भी इस प्रश्न पर प्रायः एकमत हैं। इसके अतिरिक्त शास्त्रों में रेगिस्तानों के पार बहादुर जातियों के निवास का भी उल्लेख मिलता है। यह संकेत सम्भवतः राजपूताना व समीपवर्ती क्षेत्रों की ओर है। इन ग्रन्थों में यह भी कहा गया है कि प्रासी (पूर्वी प्रदेश के लोग) तथा गंगा की घाटी के निवासी एक ही सम्राट् द्वारा शासित थे। इनके साम्राज्य की राजधानी पाटलिपुत्र[1] (पालिबोथ्र) थी। प्लिनी[2] लिखता है कि शक्ति एवं वैभव के मामले में प्रासी जाति (पूर्वी प्रदेश के लोग) सम्पूर्ण भारत में श्रेष्ठ थी। उनकी राजधानी पालिबोथ्र थी और गंगा के तटवर्ती भूभाग के निवासी अपने आपको पालिबोथ्री कहने लगे थे। किन्तु, इस उक्ति से ऐसा लगता है कि यह कथन नन्द-काल के बारे में नहीं, वरन् मौर्य-काल के सम्बन्ध में कहा गया है। पूर्वी प्रदेश ने जो उन्नति मौर्य-काल में की थी, वह उनके पूर्वजों द्वारा प्राप्त उपलब्धियों के फलस्वरूप ही सम्भव हो सकी थी। इनकी उन्नति तथा वैभव का रिकार्ड हमें सिकन्दर के समकालीन इतिहासकारों की कृतियों से प्राप्त होता है। कथा-सरित्सागर[3] के एक अनुच्छेद में नन्द-वंश के किसी राजा का नाम आया है

बढ़ गई थी। इससे वंश के सम्पूर्ण विनाश का अर्थ उस समय तक नहीं निकल सकता जब तक कि स्पष्ट शब्दों में यही न लिखा जाये। अतः यह कुछ अतिशयोक्ति मालूम होती है। यहाँ तक कि अजातशत्रु भी शक्तिशाली जाति वज्जियों को भी पूर्ण रूप से पराजित नहीं कर सका था तथा गुप्त-काल तक लिच्छवि-वंश चलता रहा। तीसरी-चौथी शताब्दी में कृष्णा के दक्षिण में इक्ष्वाकु-वंशज पाये गये हैं, जिससे सिद्ध होता है कि इनकी एक शाखा इस ओर चली गई होगी। जिस राजकुमार को शिशुनाग ने बनारस का शासक बनाया था, उसी के उत्तराधिकारियों में काशि-राजवंश रहा होगा, जिसे नन्द ने पराजित किया था। हैहयों के अधिकार में नर्मदा घाटी का एक भाग था। हाथिगुम्फा-लेख के अनुसार, नन्द ने कलिंग पर विजय प्राप्त की थी, साथ ही उसने अश्मक तथा गोदावरी की घाटी-स्थित नौ-नन्द-देहरा पर भी अधिकार जमाया था (मैक्लिफ़, *Sikh Religion*, V, p. 236)। अवन्ती के प्रद्योतों के उदय के पूर्व ही वीतिहोत्रों की शक्ति नष्ट हो चुकी थी। परन्तु, यदि पुराणों को सत्य माना जाये तो इस वाक्य से कि "उपर्युक्त राजा (शिशुनाग) के समकालीन वीतिहोत्र थे", सिद्ध होता है कि शिशुनाग ने कुछ प्राचीन राजाओं के लिये पुनः मार्ग बना दिया था। वायु पुराण (94, 51-52) के अनुसार वीतिहोत्र, हैहय के पाँच गणों में से एक थे। अजातशत्रु द्वारा विजित वज्जि राज्य के उत्तर में मैथिलों का राज्य था। पंचाल, कुरु तथा सूरसेन ने गंगा के मैदान तथा मथुरा पर अधिकार कर लिया था, परन्तु आगे चल कर उन पर मगध का अधिकार ई० पू० ३२६ में यूनानी प्रमाणों के अनुसार हुआ।

[1] देखिये *Inv. Alex.*, 221, 281; McCrindle, *Megasthenes and Arrian*, 1926, p. 67, 141, 161.

[2] *Megasthenes and Arrian*, 1926, p. 141.

[3] त्वानी का अनुवाद, p. 21.

और कहा गया है कि उसने अयोध्या में पड़ाव डाला था। इसी आधार पर यह भी कल्पना की जाने लगी है कि मगध ने इक्ष्वाकु के राज्य कोशल को भी कभी अपने अन्तर्गत कर लिया था। मैसूर में प्राप्त कतिपय शिलालेखों में यह उल्लेख है कि कुन्तल प्रदेश में कभी नन्द-वंश का राज्य था।[1] कुन्तल प्रदेश में दक्षिणी बम्बई तथा उत्तरी मैसूर का भाग आता है। किन्तु, उपर्युक्त अभिलेख कुछ बाद के मालूम होते है, इसलिये इन पर अधिक भरोसा नहीं किया जा सकता। इससे अधिक महत्त्वपूर्ण हाथिगुम्फा के शिलालेख हैं। इन लेखों में कलिंग में नन्द राजा के कार्यों की चर्चा मिलती है। नन्द राजा की अनेक जीतों का भी उल्लेख इनमें मिलता है। नन्द राजाओं द्वारा कलिंग-विजय को देखते हुए अश्मक-विजय तथा दक्षिण भारत के अन्य छोटे-छोटे भागों की जीत कोई असम्भव बात प्रतीत नहीं होती। गोदावरी के तट पर 'नौ-नन्द-देहरा' (नन्देर)[2] नामक एक नगर था। इससे लगता है कि नन्द राजाओं ने दक्षिण भारत का भी काफ़ी भाग अपने अधिकार में कर लिया था।

मत्स्य पुराण के अनुसार प्रथम नन्द ने ८८ वर्ष राज्य किया। इसके लिए अष्टाशीति (८८) शब्द का प्रयोग किया गया है। किन्तु, ऐसा लगता है कि अष्टाविंशति (२८) को भूल से अष्टाशीति पढ़ लिया गया है। वायु पुराण में कहा गया है कि यह समय केवल २८ वर्ष का है। तारनाथ के अनुसार नन्द ने २९ वर्ष[3] राज्य किया। सिंहली अभिलेखों के अनुसार नन्दों का शासन सिर्फ़ २२ वर्ष चला। पुराणों में दी गई २८ वर्ष की अवधि में सम्भवतः वह काल भी मिला लिया गया है जबकि नन्द सिंहासन प्राप्त किये बिना ही पूरे राज्य के वास्तविक शासक थे।

महापद्म उग्रसेन के बाद उसके आठ पुत्रों को उत्तराधिकार मिला, जो बारी-बारी से गद्दी पर बैठे। पुराणों के अनुसार, इन लोगों का शासन-काल १२ वर्ष का था। सिंहली प्रमाणों के अनुसार, जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं, पूरे नन्द-वंश का शासन केवल २२ वर्ष का रहा। पुराणों में महापद्म के एक पुत्र सुकल्प[4] का नाम विशेष रूप से आया है। महाबोधिवंश में कुछ और नाम मिलते हैं, जो इस प्रकार हैं—पण्डुक, पण्डुगति, भूतपाल, राष्ट्रपाल, गोविषाणक, दशसिद्धक, कैवर्त्त तथा घन। सम्भवतः अन्तिम शासक ही Agrammes था, जो बाद में Xandrmes के नाम से भी पुकारा गया है। जैसा कि हम देख चुके हैं, संस्कृत शब्द औग्रसैन्य ही सम्भवतः बिगड़ कर Agrammes हो गया है।

---

[1] Rice, *Mysore and Coorg from the Inscriptions*, p. 3; फ्लीट, *Dynasties of the Kanarese Districts*, 284n. 2.

[2] मैकलिफ़, *Sikh Religion*, V, p. 236.

[3] *Ind. Ant.*, 1875, p. 362.

[4] इस नाम के अनेक रूप हैं, उनमें से एक साहल्य है। डॉ० बरुआ का मत है कि दिव्यावदान (p. 369; पार्जिटर, *DKA*, 25 n. 24; बौद्धधर्म-कोश, 44) का साहलिन वही था। बौद्ध-ग्रन्थों में इस सम्बन्ध में दिये गये तर्क, कि साहलिन और काकवर्ण के बीच सम्बन्ध था, को स्वीकार नहीं किया जा सकता। इसमें बहुधा गलती पाई गई है। इसमें पुष्यमित्र को अशोक का वंशज कहा गया है (p. 433)।

प्रथम नंद ने अपने उत्तराधिकारियों के लिए एक बड़ा साम्राज्य ही नहीं छोड़ा, वरन् एक बड़ी सेना तथा भारी ख़जाना भी छोड़ा । यदि प्राचीन ग्रन्थों पर विश्वास किया जाय तो प्रथम नन्द से उसके पुत्रों को सरकार चलाने की एक स्वस्थ मशीनरी, अर्थात् अच्छे कर्मचारी भी मिले । कर्टियस के अनुसार, औग्रसैन्य (Agrammes) ने अपनी सीमाओं की रक्षा के लिए २० हज़ार घुड़सवार, २ लाख पैदल सेना तथा २००० रथों की सेना को तैनात किया था । इसके अलावा उन दिनों सशक्त मानी जाने वाली ३ हज़ार हाथियों की गजसेना भी देश की रक्षा के लिए तैनात की गई थी । डायोडोरस और प्लूटार्क ने भी इसी का वर्णन किया है । किन्तु, डायोडोरस ने गजसेना में गजों की संख्या ४००० तथा प्लूटार्क ने ६००० दी है । बौद्ध-ग्रन्थों[१] में एक सेनापति भद्दसाल का नाम भी आया है ।

नन्द-वंश के अपार धन-वैभव के सम्बन्ध में ऊपर चर्चा की जा चुकी है । कलिंग में सिंचाई-योजना चलाने का श्रेय नन्द-वंश को ही है । नन्द-वंश ने ही **'नन्दोपक्रमाणि मानानि'**[२] का भी आविष्कार किया था । ब्राह्मण तथा जैन ग्रन्थों में कहा गया है कि नन्द के दरबार में एक से एक अच्छे और योग्य मन्त्री थे, किन्तु अन्त में वे उन लोगों का मुकाबला नहीं कर सके जिनका नाम नन्द-वंश के पतन से एवं उससे भी अधिक प्रतिभाशाली शासकों के उत्थान से सम्बद्ध है ।

नन्द-वंश के बाद के नये वंश के उद्भव या इस सत्ता-परिवर्तन के बारे में अधिक विवरण नहीं मिल पाता । नन्द राजाओं के पास अकूत धनराशि थी । इससे सिद्ध होता है कि ये लोग जनता से काफ़ी धन ऐंठते थे । हमें अनेक ग्रन्थों में यह भी लिखा मिलता है कि सिकन्दर के समकालीन नन्द-वंश के राजा औग्रसैन्य (Agrammes) से जनता घृणा करती थी और उसे ओछे क़िस्म का आदमी समझती थी । जनता की यह धारणा उसके सत्तारूढ़[३] होने के ढंग पर आधारित थी ।

मगध की क्रान्ति[४] के बारे में पुराणों में अग्रलिखित पंक्तियाँ मिलती हैं—

उद्धरिष्यति तां सर्वान् कौटिल्यो वै द्विजर्षभः
कौटिल्याश्चन्द्रगुप्तं तु ततो राज्ये भिषेक्ष्यति ।[५]

---

[१] मिलिन्दपञ्हो, *SBE*, xxxvi, p. 147-48.

[२] एस० सी० वसु द्वारा अनूदित अष्टाध्यायी (पाणिनि-कृत) में देखिये सूत्र II, 4,21.

[३] देखिये, मैक्रिंडल-कृत, *The Invasion of India by Alexander*, p. 222; *Cf*. नन्द का लोभ, *DKA*, 125; परिशिष्टपर्वन्, vi, 244.

[४] इस वंश-परिवर्तन का उल्लेख कौटिल्य के अर्थशास्त्र, कामंदकीय नीतिसार, मुद्राराक्षस, चन्द कौशिक तथा सिंहली क्रॉनिकल के विवरणों आदि में भी मिलता है ।

[५] कुछ पाण्डुलिपियों में 'द्विजर्षभः' के स्थान पर 'द्विरष्टभिः' मिलता है । डॉ० जायसवाल (*Ind. Ant.*, 1914,124) इसे 'विरष्ट्राभिः' में परिवर्तित करना चाहते हैं । 'विरष्ट्रा' का अर्थ उन्होंने 'आरट्ट' से लगाया तथा कहा कि जस्टिन के 'डाकुओं के गिरोह' आरट्ट ने ही कौटिल्य की सहायता की थी (कनिंघम, (*Bhilsa*

मिलिन्दपञ्हो[1] में नन्दों तथा मौर्यों के बीच एक युद्ध की घटना की चर्चा की गई है। नन्द की सेना में भद्दसाल नामक एक सैनिक था, जिसने राजा चन्द्रगुप्त के विरुद्ध लड़ाई छेड़ी थी। कहते हैं, इन लड़ाइयों में अस्सी बार युद्धक्षेत्र में 'शवों का नर्त्तन' हुआ था। यह भी कहा जाता है कि जब एक बार 'प्रचण्ड आहुति' (Holocaust) हो जाती थी तो वीरगति-प्राप्त योद्धाओं के सिरविहीन शव युद्धक्षेत्र में नाचने लगते थे। एक बार की 'प्रचण्ड आहुति' में दस हज़ार हाथियों, एक लाख घोड़ों, पाँच हज़ार रथों तथा सौ कोटि सैनिकों का सफ़ाया समझा जाता था। इस अनुच्छेद में पौराणिक अलंकार का पर्याप्त पुट है, किन्तु इससे हमें यह तो पता चल ही जाता है कि नन्द-वंश तथा मौर्य-वंश[2] के बीच जमकर घमासान युद्ध हुआ था।

Topes, pp. 88-89)। पार्जिटर का मत है कि द्विजर्शभः (दो बार जन्म लेने वालों में सर्वोत्तम, अर्थात् ब्राह्मण) ही द्विरष्टभिः का सही रूप है (*Dynasties of the Kali Age*, pp. 26, 35)।

[1] IV, 8.26; *Cf. SBE*, xxxvi, p. 147-48.

[2] *Ind., Ant.*, 1914, p. 124n.

६

फ़ारस और मैसीडोनिया के आक्रमण

१. सिन्ध की ओर फ़ारस का प्रसार

इधर एक ओर भारत के अनेक राज्य और गणतन्त्र मगध के राज्य में विलय होते जा रहे थे, और उधर उत्तरी-पश्चिमी भारत (आधुनिक पाकिस्तान) तरह-तरह की मुसीबतों का सामना कर रहा था। छठी शताब्दी ईसापूर्व के प्रथमार्ध में भारत के अन्य भागों की तरह देश का उत्तरी क्षेत्र अनेक छोटे-छोटे टुकड़ों में विभाजित था। इन छोटे-छोटे राज्यों में कम्बोज, गन्धार, और मद्र के राज्य प्रमुख थे। भारत के इस भाग में पूर्वी भारत के उग्रसेन महापद्म की तरह कोई भी ऐसा न निकला जो आपस में कलहरत राज्यों को एकता के सूत्र में आबद्ध कर सकता। यह पूरा का पूरा क्षेत्र धनी, किन्तु बड़ा ही असंगठित था। दुर्बल व असंगठित होने के कारण यह भाग फ़ारस (ईरान) में उदय हो रहे शाहों का शिकार हो गया।

फ़ारस के साम्राज्य के संस्थापक कुरुष या साइरस (५५८-५३० ईसापूर्व)[1] ने एक बार भारत के विरुद्ध अभियान आरम्भ किया, किन्तु उसे बाद में अपनी योजना स्थगित करनी पड़ी और वह बड़ी कठिनाई से ही अपने सात साथियों तथा अपने-आप को बचा सका।[2] किन्तु, उसे क़ाबुल की घाटी में अधिक सफलता मिली। साइरस द्वारा घोरबंद और पंजशिर के संगम पर बसे कापिशी के बरबाद किये जाने का उल्लेख इतिहास में मिलता है। एरियन[3] के कथनानुसार, सिंध के पश्चिमी ज़िलों से लेकर कोफ़ेन (क़ाबुल) नदी तक कुछ भारतीय जातियाँ बसी थीं, जिन्हें ऐस्टेसीनियन (आष्टक)[4] और एस्सेसीनियन (अश्वक) कहते थे। आरम्भ में ये लोग असीरियन के और बाद में मेदियों के तथा अन्त में फ़ारस के अधीन हो गये। ये लोग बादशाह साइरस की प्रशंसा करते थे और उसे अपने मुल्क का बादशाह मानते थे। स्ट्रैबो के कथनानुसार, एक बार फ़ारसवालों ने पंजाब की कुछ मज़दूर जातियों (क्षुद्रकों) को अपने यहाँ बुला लिया था।

डेरियस-प्रथम (५२२–४८६ ईसापूर्व) के बहिस्तान-शिलालेख में गंधार-वासियों को भी ईरान के साम्राज्य का नागरिक माना गया है। किन्तु, इस लेख में

---

१. *A Survey of Persian Art*, p. 64 के अनुसार ५५०-५२९ ई० पू० है।

२. H. and F., *Strabo*, p. 74.

३. Chinnock, *Arrian's Anabasis*, p. 399.

४. पतंजलि (IV. 2.2) ने इसे 'आष्टकं नाम धन्व' कहा है (देखिये ल्यूडर्स, 390 में हस्तनगर तथा अठकनगर)।

हिन्दुओं का उल्लेख कहीं भी नहीं आया। 'हमदन' शिलालेख में इसके विपरीत उल्लेख है। उसमें गन्धारवासियों के साथ-साथ सिंधु की घाटी में रहने वालों (हिन्दुओं) को भी फ़ारस का नागरिक कहा गया है। डेरियस के मक़बरे नक़्श-इ-रुस्तम[1] पर भी ऐसा ही लेख मिलता है। इससे यह धारणा बनाई जा सकती है कि ५१९ वर्ष ईसापूर्व तथा ५१३ वर्ष ईसापूर्व[2] के बीच (बहिस्तान-लेख[3] के अनुसार) भारतीयों पर विजय प्राप्त की गई थी। इस जीत की बुनियादी बातों का इतिहासकार हेरोडोटस[4] ने भी उल्लेख किया है—"सिंधु नदी में घड़ियाल बहुत होते हैं। इस दृष्टि से क्रम में वह दूसरी है। बादशाह डेरियस-प्रथम यह जानने का इच्छुक था कि यह नदी समुद्र में कहाँ गिरती है। इसके लिए उसने जहाज़ रवाना किये, ताकि उसे सही जानकारी मिल सके। ये लोग पकतीक (पक्थस ?)[5] प्रदेश के कैस्पाटीरस[6] नगर से पूर्व की ओर, नदी के बहाव के साथ-साथ रवाना हुए। समुद्र से वे पश्चिम को चल पड़े और तीस महीने की यात्रा के बाद ऐसी जगह पहुँचे, जहाँ से मिस्र का राजा अपने कुछ आदमियों को लीबिया की यात्रा पर भेज रहा था। फिर, जब डेरियस के आदमी यात्रा से वापस लौट आये तो उसने भारतीय भागों पर कब्ज़ा कर लिया।"

हेरोडोटस ने भारत के बारे में आगे लिखा है कि भारत, ईरानी साम्राज्य का बड़ी घनी आबादी वाला प्रदेश था तथा इससे काफ़ी आय भी होती थी (सोने के ३६० सिक्के जो युद्ध के पूर्व के २ लाख ९० हज़ार पौंड के बराबर होते थे)। यह कहने में कोई तुक नहीं है कि यह सोना बैक्ट्रिया या साइबेरिया से आया था। भारत की पश्चिमोत्तर सीमा पर सोने की खानें थीं। इसके अलावा, नदी की बालू से भी सोना प्राप्त किया जाता था। कुछ मात्रा में तिब्बत[7] से आने वाले भोटिया व्यापारियों से

---

[1] H. C. Tolman, *Ancient Persian Lexicon and the Text of the Achaemenidan Inscriptions*; Rapson, *Ancient India*; Herzfeld, *MASI*, 34, pp. 1 ff.

[2] ऑमस्टेड, *History of the Persian Empire*, p. 145. हर्ज़फ़ेल्ड के अनुसार, प्राचीन फ़ारसी लेखों में 'थतगुश' का उल्लेख सिद्ध करता है कि पंजाब का कुछ भाग (जैसे गंधार) साइरस-महान् के समय से ही फ़ारस का अंग था।

[3] जैक्सन (*Camb. Hist. Ind.*, I, 334) के अनुसार बहिस्तान-शिलालेख, पाँचवें कॉलम को छोड़कर, ई० पू० ५२० से ५१८ में लिखा गया था। रैप्सन के अनुसार, यह तिथि ५१६ ई०पू० तथा हर्ज़फ़ेल्ड के अनुसार ५१९ ई०पू० थी (*MASI*, No. 34, p. 2)।

[4] मैक्रिंडल, *Ancient India as Described in Classical Literature*, pp. 4-5.

[5] देखिये *Ibid.*, 82, 339. पकतीक आधुनिक पठान देश का प्राचीन नाम है। यह भारत की उत्तर-पश्चिमी सीमा पर था।

[6] देखिये *Camb. Hist. of India*, I. 336. सम्भवतः यह नगर प्राचीन गंधार में स्थित था (Herodotus, IV. 44)।

[7] Crooke, *The North-Western Provinces of India*, 1897 p. 10; अमृत बाजार पत्रिका, 19-7-39, p. 6; Watters, *Yuan Chwang*. I. 225, 239.

भी सोना मँगाया जाता था। गन्धार ईरानी साम्राज्य का ७वाँ तथा भारत २०वाँ प्रान्त था। भारत के बारे में हेरोडोटस ने जो कुछ लिखा है, उससे स्पष्ट है कि सिंधु की घाटी और राजपूताना का पश्चिमी भाग भारत माना जाता था। इतिहासकार कर्टियस ने लिखा है कि "भारत के पूर्व में बालू ही बालू है। वे भारतवासी जिन्हें हम जानते हैं, एशियावासियों में सबसे पूर्व में बसने वाले लोग हैं।"

साम्राज्य को प्रान्तों में विभाजित करने की ईरानी प्रथा आगे आने वाले राजवंशों के लिए अनुकरणीय वस्तु बन गई और शक तथा कुषाण जातियों ने इस पद्धति का यथासम्भव लाभ उठाया था। गुप्त-काल की देश-गोप्त्रि भी इसी सत्रप (क्षत्रपावन) प्रणाली का नमूना थी।

ईरानी विजेताओं ने भौगोलिक अनुसन्धानों तथा व्यापारिक गतिविधियों को अधिक प्रोत्साहन दिया। इसी काल में ईरानी लोग यहाँ से काफ़ी मात्रा में सोना ही नहीं ले गये; वरन् वे क़ीमती लकड़ी व हाथीदाँत भी यहाँ से ले गये। इसके अलावा यहाँ की जनशक्ति से भी इन लोगों ने पूरा-पूरा फ़ायदा उठाया। विभिन्न जातियों से सैनिकों का भी काम लिया गया। पूर्व और पश्चिम के इस सम्पर्क से सांस्कृतिक क्षेत्र में भी काफ़ी विकास हुआ। ईरानियों ने यूनान को यदि भारतीय धनुर्धारियों एवं भाला फेंकने वालों का परिचय दिया तो उन्होंने यूनान एवं मेसीडोन के शासकों को विजयों एवं सांस्कृतिक हस्तक्षेप का मार्ग भी दिखाया था।

क्षयार्षा या Xerxes (४८६–४६५ ईसापूर्व) डेरियस-प्रथम का बेटा तथा उत्तराधिकारी था। उसने भी भारतीय भूमि पर अपना कब्ज़ा क़ायम रक्खा। उसकी बृहत् सेना में गंधार और भारत का भी प्रतिनिधित्व था। हेरोडोटस के कथनानुसार, गंधार के सिपाही तीर-कमान और छोटे भाले अपने पास रखते थे। भारतीय सिपाही सूती वर्दी पहनते थे तथा बेंत का धनुष धारण करते थे। उनके तीरों के सिरों पर लोहा लगा रहता था। खुदाई से प्राप्त सामग्री से पता चलता है कि क्षयार्षा (Xerxes) ने कुछ देवताओं के मन्दिरों को खुदवा डाला था और यह आदेश दे दिया था कि देवताओं की पूजा नहीं की जायगी। जहाँ अभी तक देवताओं की पूजा होती थी, वहाँ राजा ने 'अहुरमज़दा' (Ahuramazda) और प्रकृति की पूजा आरम्भ करवा दी। भारत में उस समय ईरानी राजाओं में धार्मिक उन्माद लहरें लेता था।

क्षयार्षा (Xerxes) की मृत्यु के बाद ईरानी साम्राज्य का पतन आरम्भ हो गया। किन्तु, यदि Artaxerxes II के दरबारी Ktesias (४०५-३५८ ईसापूर्व) पर विश्वास किया जाय तो चौथी शताब्दी[1] ईसापूर्व में भी ईरानी बादशाह को भारत से बहुमूल्य तोहफ़े मिला करते थे। (South Tomb Inscription) के अनुसार भी सत्तागीदियन (Sattagydians) के साथ गंधार-निवसियों का और ईरानियों के साथ भारत के हिन्दुओं का भी उल्लेख मिलता है। मीडियन और सूसियन (Medians and Susians) की भी चर्चा आई है।

तक्षशिला के शिलालेखों में भी भारत पर ईरानी शासन के महत्त्वपूर्ण प्रमाण

---

[1] *Ind. Ant.*, Vol. X (1881), pp. 304-310.

मिलते हैं। ये प्रमाण चौथी या पाँचवीं[1] शताब्दी ईसापूर्व के बताये जाते हैं। लेकिन, हर्ज़फ़ेल्ड (Herzfeld)[2] के अनुसार, उक्त रिकार्ड में 'प्रियदर्शन' शब्द भी आता है जो अशोक के शासन-काल की ओर संकेत करता है, न कि ईरानी शासन की ओर। खरोष्ठी लिपि का श्रेय भी ईरानियों को ही दिया जाता है। अशोक के शिलालेखों में 'दिपि' (rescript) और 'निपिष्ट' (written) शब्द भी मिलते हैं। इस प्रकार अशोक के अभिलेखों की पृष्ठभूमि या भूमिका में ईरानी प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगत होता है।

२. अकीमेनिड्ज़ तथा अलेक्ज़ेण्डर का अन्त

आर्टाज़रक्सीज़ (Artaxerxes) की मृत्यु ३५८ वर्ष ईसापूर्व या इसके आसपास हुई। कुछ दिनों की अव्यवस्था तथा कुशासन के बाद डेरियस-तृतीय कोडोमेनस (३३५-३३० ई० पू०) गद्दी पर बैठा। यही वह राजा था जिसके विरुद्ध मैसिडन के राजा सिकन्दर ने चढ़ाई की थी। इस प्रकार कई लड़ाइयाँ हुईं, जिसमें ईरानी फ़ौजें निरन्तर पराजित होती गईं। अतः सिकन्दर अपने दुश्मनों को दबाता हुआ बूमोड्स नदी के मैदानी भाग तक पहुँच गया।

उन दिनों ईरानी शाह की फ़ौज में तीन भारतीय जातियाँ मुख्य रूप से थीं। उन दिनों बीसस (Bessus) नाम का सूबेदार ईरान की ओर से भारत के एक हिस्से पर शासन करता था। इसी के नेतृत्व में सोग्डियनियन, बैक्ट्रियन तथा बैक्ट्रियन से मिलती-जुलती एक अन्य जाति के लोग ईरानी फ़ौज की मदद करने फ़ारस गये थे। इनके बाद सैसियन और सीथियन जाति के लोग भी फ़ारस की मदद को गये। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे लोग भी गये, जिन्हें पहाड़ी भारतीय कहा जाता था। सिधु के इस पार रहने वाले भारतीयों के पास केवल कुछ ही (लगभग पन्द्रह) हाथी थे। कुछ सेना डेरियस के नेतृत्व में भी गई थी। ये लोग अरबेला के निकट बूमोडस नदी से थोड़ी दूर गौगमेला[3] नामक स्थान पर जा कर जम गए। परन्तु इस समय तक उत्तर-पश्चिमो भारत पर ईरानी साम्राज्य का प्रभाव काफ़ी कम हो गया था और उत्तर-पश्चिमी भारत अनेक रियासतों तथा गणतंत्रों में बंट गया था, इनमें अधिक प्रसिद्ध राज्यों के नाम इस प्रकार हैं—

१. **आस्पेसियन** (अलिशग-कूनार-बाजौर घाटी)—यह राज्य काबुल नदी के उत्तर के पहाड़ी भागों में फैला था। यहाँ खोईज़ (Khoes) अथवा आधुनिक अलिशंग तथा यूअस्पला अथवा कूनार नदियाँ प्रवाहित होती थीं। इस राज्य का नाम ईरानी शब्द 'अस्प' तथा संस्कृत शब्द 'अश्व' या 'अश्वक' (घोड़ा) से लिया गया है। अतः आस्पेसियन लोग अश्वकों[4] की ही पश्चिमी शाखा के लोग थे। इस राज्य का सामन्त हाईपार्क, यूअस्पला नदी के तट पर बसे एक नगर में रहता था। इसी नदी को 'कूनार' कहते हैं। यह काबुल नदी की सहायक नदी थी। अन्दक और ऐरीजिमम[5] आस्पेसियन राज्य के अन्य प्रमुख नगर थे।

---

[1] *JRAS*, 1915, I, pp. 340-347.

[2] *Ep. Ind.*, XIX, 253.

[3] Chinnock, *Arrian's Anabasis*. pp. 142-143.

[4] *Camb. Hist. Ind.*, 325 n. 3; देखिये अस्सानम्, आयतनम्, 1494, *ante*,

[5] Chinnock, *Arrian*, pp. 230-231.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

२. **गुरेअन्स प्रदेश**—इस प्रदेश में गुरेअस, गौरी या पंचकोरा नदी बहती है। मुख्यतः यह भाग आस्पेसियन और अस्सकेनियन (अश्वक) राज्यों के बीच स्थित था।

३. **अस्सकेनोस राज्य**—यह राज्य सिन्धु नदी तक फैला था और मस्सगा इसकी राजधानी थी। यद्यपि मस्सगा कहाँ पर थी, इसका ठीक-ठीक पता नहीं चल सका है, किन्तु सम्भवतः मालकन्द दर्रे के उत्तर में थोड़ी दूर पर ही यह नगरी थी। 'अस्सकेनियन' शब्द 'अश्वक' (या घोड़ों के देश) शब्द का ही रूपान्तर है। इससे 'अश्मक' (या प्रस्तर-देश) का बोध नहीं होता। इस प्रदेश में जो जाति निवास करती थी, उसे विभिन्न युगों में विभिन्न नामों से पुकारा गया है। अभी तक इस प्रदेश के निवासियों के 'सुवास्तु', 'उद्यान' तथा कुछ के अनुसार 'ओड्डियान' नाम मिल सके हैं। इन अश्वकों का दक्षिण के अश्मकों[1] से कोई सम्बन्ध था, इसका कोई आधार नहीं मिलता। पाणिनि ने अश्वक जाति का कहीं उल्लेख नहीं किया है। मार्कण्डेय पुराण तथा बृहत्संहिता के ग्रन्थकारों ने अश्वकों को उत्तरी-पश्चिमी प्रदेश का निवासी बतलाया है। अस्सकेनियन राजा के पास २० हज़ार घुड़सवार तथा ३० हज़ार पैदल सेना थी। इसके अलावा गजसेना भी थी। सिकन्दर-महान् के आक्रमण के समय यहाँ पर जो राजा राज्य करता था, उसे यूनानियों ने अस्सकेनोस नाम से पुकारा है। क्लियोफ़िस उसकी माँ थी। अस्सकेनोस के एक भाई[2] था, जिसका नाम कर्टियस ने ईरिक्स (Eryx) और डायोडोरस[3] ने एफ्रिक्स (Aphrikes) लिखा है। महाकवि बाण ने दक्षिण भारत की गोदावरी के एक तटवर्त्ती अश्मक राजा शरभ के दुःखद अन्त की कहानी लिखी थी। किन्तु, उत्तरी-पश्चिमी अश्वकों व दक्षिण भारतीय अश्वकों का कोई सम्बन्ध था, यह निराधार है।

४. **नीसा** (Nysa)—यह पहाड़ी राज्य कोफ़ेन, या क़ाबुल और सिन्धु नदियों[4] के बीच मेरोस पर्वत की तलहटी में आबाद था। यहाँ गणतंत्रीय शासन-प्रणाली थी। कहते हैं कि सिकन्दर[5] के आक्रमण से भी पूर्व कुछ यूनानी उपनिवेशवादियों ने इसकी

---

[1] IV. I. 173.

[2] *Invasion of Alexander*, p. 378.

[3] प्रसिद्ध दुर्ग औरनस के भागते हुए रक्षकों का उसने यूनानियों के विरुद्ध नेतृत्व किया (*Camb. Hist. Ind.*, I, 356)। सर औरेल स्टीन के अनुसार, 'औरनस' स्वात तथा सिन्धु के मध्य ऊना पर्वत पर स्थित था (देखिये, *Alexander's Campaign on the Frontier*, *Benares Hindu University Magazine*, Jan., 1927) इस दुर्ग के दक्षिणी भाग को सिन्धु नदी छूती थी (देखिये, *Inv. Alex.*, 271)।

[4] *Inv. Alex.*, 79, 193.

[5] McCrindle, *Invasion of Alexander*, p. 79; Hamilton and Falconer, *Strabo*, Vol. III, p. 76. डॉ० के० पी० जायसवाल ने मुझे सूचित किया है कि उन्होंने नीसियन भारतीय-यूनानियों का उल्लेख सन् १९१९ में अपने एक भाषण में किया था।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

स्थापना की थी। एरियन[1] के कथनानुसार, नीसा राज्य के निवासी भारतीय नहीं थे, वरन् ये डायोनीसस के साथ इधर आयी जातियों के वंशज थे। मज्झिम निकाय[2] में लिखा है कि अस्सलायन व गौतम बुद्ध के समय कम्बोज तथा योन (यूनानी) राज्य तरक़्क़ी कर रहे थे—'योन कम्बोजेसु द्वेव वण्णा अय्यो क्ऽएव दसोक' (योन तथा कम्बोज जातियों में दो ही सामाजिक वर्गीकरण थे—एक आर्य, और दूसरे दास)।

इतिहासकार होल्डिच के अनुसार, प्राचीन नीसा नगर स्वात देश के कोहीमोर पर्वत की तलहटी में बसा था।[3] सिकन्दर के आक्रमण के समय आकूफ़िस नीसा गणतन्त्र का सभापति था तथा ३०० सदस्यों की एक शासक परिषद् थी।[4]

५. **प्यूकेलाओटिस**—यह राज्य क़ाबुल से सिन्ध जाने वाली सड़क के समीपवर्ती प्रदेश में फैला था और आज के (पाकिस्तान के) पेशावर ज़िले में था। प्यूकेलाओटिस में मालन्तस, सोअस्तुस तथा गुरेअस भी शामिल थे। 'प्यूकेलाओटिस' शब्द सम्भवतः संस्कृत के पुष्करावती का ही एक रूप है। यह पहले प्राचीन गन्धार राज्य का पश्चिमी भाग था। इतिहासकारों ने इस क्षेत्र के रहने वालों को 'अस्तकेनोइ' नाम भी दिया है। एरियन की सोअस्तुस, वैदिक साहित्य की सुवास्तु तथा आधुनिक समय की स्वात नदी पर स्थित पेशावर से १७ मील उत्तर-पूर्व को आधुनिक ज़ियारत एवं चारसद्दा नामक स्थान है। यहीं इस राज्य की प्राचीन राजधानी थी।

सिकन्दर के आक्रमण के समय यहाँ पर आस्टेस[5] नाम का राजा था, जिसे 'हस्ती' या 'अष्टक' भी कहा गया है। सिकन्दर के एक सेनापति हेफ़ीस्चन (Hephaestion) ने उक्त राजा को पराजित कर उसे जान से मार डाला था।

६. **तक्षशिला** (रावलपिंडी ज़िले में)—स्ट्रैबो[6] के कथनानुसार, तक्षशिला नगर सिन्धु और झेलम के बीच था, तथा यहाँ की शासन-प्रणाली बड़ी अच्छी थी। आसपास के प्रदेश बड़े ही घने आबाद तथा उपजाऊ थे। तक्षशिला राज्य प्राचीन गन्धार राज्य का पूर्वी भाग था।

३२७ ईसापूर्व में तक्षशिला में बेसीलियस राज्य करता था, जिसे यूनानियों ने टैक्साइल्स कहा है। जब मैसिडोन का बादशाह सिकन्दर यहाँ आया तो उसने तक्षशिला के राजा को मिलने का संदेश भिजवाया। तक्षशिला का राजा बहुमूल्य उपहारों के साथ सिकन्दर से मिला भी। राजा के मरने के बाद उसका बेटा मोफ़िस या ओम्फ़िस (आम्भी—संस्कृत) गद्दी पर बैठा। महावंशटीका के अनुसार, कौटिल्य—अर्थ-

---

[1] Chinnock, *Arrian*, p. 399.

[2] II, 149.

[3] Smith, *EHI*, 4th ed., p. 57; *Camb. Hist. Ind.*, I. p. 353.

[4] *Invasion of Aiexander*, p. 81.

[5] Chinnock, *Arrian* p. 228.

[6] हैमिल्टन एवं फ़ाल्कनर का अनुवाद, III, p. 90.

शास्त्र का प्रसिद्ध लेखक—भी तक्षशिला का ही रहने वाला था। उसने तक्षशिला में दर्शनशास्त्र के आम्भीय स्कूल का उल्लेख किया है। डॉक्टर एफ़० डब्ल्यू० थॉमस ने भी तक्षशिला[1] से इस नाम का सम्बन्ध जोड़ा है।

७. **आर्सकेस राज्य**—उक्त राज्य को संस्कृत में 'उरशा' कहते थे और यह कभी आजकल के हज़ारा जिले में पड़ता था। अबीसेयर्स प्रदेश की भाँति यह राज्य भी कम्बोज राज्य का एक भाग था। कतिपय खरोष्ठी शिलालेखों में भी उरशा नाम का उल्लेख आया है और तोलेमी के समय तक्षशिला का पड़ोसी राज्य भी इसका एक भाग था।

८. **आभिसार**—स्ट्रैबो[2] के कथनानुसार, तक्षशिला के उत्तर की ओर के पहाड़ों के मध्यवर्ती प्रदेश को आभिसार राज्य कहते थे। स्टीन ने इस प्रदेश की चर्चा करते हुए 'दार्वाभिसार'[3] शब्द का प्रयोग किया है; और लिखा है कि यह प्रदेश झेलम और चिनाब के बीच में स्थित था। यह भाग आजकल के कश्मीर के पुंछ जिले तथा उत्तर-पश्चिमी सीमान्त प्रदेश के हज़ारा जिले में पड़ता है। सम्भवतः यह प्रदेश प्राचीन कम्बोज राज्य का एक भाग था। सिकन्दर का समकालीन राजा अबीसेयर्स सार्डीनिया के चार्ल्स-तृतीय की तरह बड़ा ही कूटनीतिज्ञ शासक था। ज्योंही सिकन्दर इस प्रदेश में पहुँचा, राजा ने उसे सन्देश भेजा कि वह अपने समूचे राज्य के साथ सिकन्दर-महान् के समक्ष आत्म-समर्पण करने को तैयार है। फिर भी, जब सिकन्दर और राजा पुरु के बीच युद्ध हुआ तो एक बार अबीसेयर्स ने भी राजा पुरु[4] के साथ सिकन्दर से मोर्चा लेने की सोची।

९. **ज्येष्ठ पुरु का राज्य**—यह प्रदेश झेलम और चिनाब के बीच पड़ता था। आजकल के गुजरात और शाहपुर के जिलों[5] में ही यह राज्य फैला हुआ था। स्ट्रैबो[6] के अनुसार, यह राज्य बड़ा ही उपजाऊ था तथा राज्य भर में लगभग ३ सौ नगर थे। डायोडोरस[7] के अनुसार, ज्येष्ठ पुरु के पास ५ हजार पैदल, ३ हज़ार घुड़सवार, १ हजार रथ तथा १३० हाथियों की सेना भी थी। ज्येष्ठ पुरु तथा अभिसार के राजा के बीच मैत्री-सम्बन्ध थे।

'पोरस' शब्द संस्कृत के पुरु या पौरव का ही एक रूप है। ऋग्वेद में सरस्वती के तट पर पुरुओं के होने की बात आई है। सिकन्दर के समय में हम पुरुवंश को झेलम के तट पर पाते हैं। बृहत्संहिता[8] में पौरवों को माद्रक तथा मालवों से सम्बन्धित कहा

---

[1] बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र, भूमिका, p. 15.

[2] हैमिल्टन एवं फ़ाल्कनर का अनुवाद, III, p. 90.

[3] महाभारत, VII, 91, 43.

[4] Chinnock, *Arrian*, p. 276; *Inv. Alex.*, p. 112.

[5] इसमें प्राचीन केकय प्रदेश भी सम्मिलित था।

[6] हैमिल्टन एवं फ़ाल्कनर का अनुवाद, III, p. 91.

[7] *Invasion of Alexander*, p. 274.

[8] XIV, 27.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

गया है। महाभारत[1] में **'पुरम् पौरव रक्षितं'** नगर का उल्लेख आया है, जो कश्मीर से दूर नहीं था। वैदिक सूची[2] में कहा गया है कि या तो पुरु लोग मूलतः झेलम के पास के ही रहने वाले थे और अपनी जाति के अधिकांश व्यक्तियों के पश्चिम की ओर जाने पर वे वहीं रह गये थे, या उत्तर-कालीन पुरुओं ने पूर्व की ओर से आकर पश्चिम पर अधिकार कर लिया था।

१०. **ग्लौगनिकाई प्रदेश**—वह प्रदेश चिनाव नदी के पश्चिम में था और इसकी सीमा तथा पुरु-राज्य की सीमा एक ही थी।[3] इस देश के रहने वालों को इतिहासकार अरिस्टोबुलस ने ग्लौगनिकाई[4] (या ग्लागनीसियन) तथा तोलेमी ने ग्लासियन कहा है। इस राज्य भर में ३७ नगर थे, जिनमें सबसे छोटे नगर की आबादी ५ हज़ार थी। इसके अलावा बहुत से नगर ऐसे थे जिनकी आबादी १० हज़ार से अधिक थी।

११. **गान्दारिस** (रेचना दोआब में)—यह छोटा राज्य चिनाव और रावी के मध्य स्थित था। और यदि स्ट्रैबो ने इस देश का सही-सही नाम दिया है तो सम्भवतः यह राज्य गन्धार[5] महाजनपद का ही पूर्वी भाग था। इस प्रदेश में झेलम और चिनाब के मध्यवर्ती नगर पर शासन करने वाले राजा पुरु का भतीजा राज्य करता था। उसे भी पुरु कहा जाता था।

१२. **आद्रेस्ताई** (बारी-दोआब[6])—यह राज्य रावी के पूर्व की ओर था तथा पिम्प्रमा इसकी राजधानी थी।

१३. **कथैओई या कथेयन्स**—इतिहासकार स्ट्रैबो[7] के अनुसार, यह राज्य भी झेलम और चिनाब के बीच में ही पड़ता था। अन्य लेखकों ने इसे चिनाव और रावी के बीच माना है। यह प्रदेश राजा पुरु के भतीजे की राज्य-सीमा से मिला हुआ था, जिसे सिकन्दर ने क़ैद कर लिया था। 'कथैओई' शब्द संम्भवतः संस्कृत के ही कठ, काठक[8],

---

[1] II. 27, 15-17.

[2] Vol. II, pp. 12-13.

[3] Chinnock, *Arrian*, p. 276; *Inv. Alex.*, p. 112. यह देश पोरस को राज्य करने के लिया दिया गया था।

[4] इस नाम के दूसरे भाग अनीक से गुप्त-काल के सनकानीक की सेना का बोध होता है। डॉ० जायसवाल ने निरसंदेह वेबर को *I.A* (ii, 1873, p. 147) में सही माना है और चाहा है कि यह नाम ग्लौचुकायनक पढ़ा जाये, परन्तु वे उपर्युक्त तथ्य की ओर ध्यान नहीं देते।

[5] देखिये *Camb. Hist. Ind.*, I, 370 n. 4. प्राचीन काल में इसका नाम मद्र था।

[6] अद्रिजों? महाभारत, VII. 159. 5—**यौधेयान् अद्रिजान् राजन् मद्रकान् मालवान् अपि।**

[7] हैमिलटन एवं फ़ाल्कनर का अनुवाद, III, p. 92.

[8] Jolly, *SBE*, VII. 15; *Ep. Ind.* III. 8.

कन्थ[1], काथ[2] आदि शब्दों का ही एक रूप है। ये सब उन प्रमुख जातियों के नाम हैं जो इस प्रदेश में सांगल या सांकल के ही आसपास रहती थीं। यह नगर गुरुदासपुर ज़िले में पड़ता था। कुछ इतिहासकारों के अनुसार, सांगल नगर अमृतसर के पूर्व में जन्दिअयाल के स्थान पर था।[3]

कथैओई प्रदेश के रहने वाले अपने साहस तथा युद्धकला-प्रवीणता के लिए विख्यात थे। इतिहासकार ओनेसीक्रिटोस का कहना है कि कथैओई प्रदेश में सबसे सुन्दर पुरुष को ही राजा चुना जाता था।[4]

१४. सोफ़ाइटस (सौभूति) **का राज्य**—यह राज्य संभवत झेलम के तट पर ही था। स्मिथ के मतानुसार, यह राज्य ऐसी जगह था जहाँ नमक का एक ऐसा पहाड़ था जिससे पूरे देश को नमक मिल सकता था। अतः स्ट्रैबो[5] के मतानुसार, यह राज्य झेलम से सिन्ध तक फैली नमक की पहाड़ियों में फैला हुआ था। किन्तु, हमने यह भी देखा है कि प्राचीन ग्रन्थकारों ने सोफ़ाइटस के राज्य को झेलम के पूर्व की ओर बताया है। इतिहासकार कर्टियस[6] के कथनानुसार, यह प्रदेश सोफ़ाइटस द्वारा शासित था और बहुत ही व्यवस्थित था। परम्परा तथा क़ानून उत्तम कोटि के थे। इस प्रदेश में बच्चों का लालन-पालन केवल माँ-बाप की इच्छा पर ही नहीं निर्भर करता था, वरन् सरकार की ओर से डॉक्टर तैनात थे। वे बच्चों का मुआइना करते थे। यदि किसी बच्चे का कोई अंग भंग होता या बच्चे किसी दृष्टि से अपंग होते तो डॉक्टर उनको मार डालने तक का आदेश दे सकता था। विवाह के समय ये लोग जाति-पाँति या खानदान नहीं देखते थे। केवल सौन्दर्य ही विवाह का आधार होता था। सुन्दर व सुडौल बच्चों की बड़ी प्रशंसा की जाती थी। स्ट्रैबो[7] के कथनानुसार, इस प्रदेश के कुत्ते बड़े साहसी होते थे। सोफ़ाइटस के समय के जो सिक्के मिले हैं, उनमें एक ओर राजा का तथा दूसरी ओर मुर्ग़े[8] का चित्र मिलता है। स्मिथ के मतानुसार, पक्षी का होना सम्भवतः एथेन्स के उल्लुओं का प्रतीक था। स्ट्रैबो ने

---

[1] देखिये पाणिनि, II, 4. 20.

[2] महाभारत, VIII. 85. 16.

[3] *Camb. Hist. Ind.*, I. 371.

[4] McCrindle, *Ancient India as Described in Classical Literature*, p. 38.

[5] H. and F., III, p. 93.

[6] *Invasion of India by Alexander*, p. 219.

[7] H. and F., III, p. 93.

[8] ह्वाइटहेड (*Num. Chron.*, 1943, pp. 60-72) सोफ़ाइटस को सौभूति मानने से इन्कार करते हैं। कोई भी ऐसा ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है जिसके अनुसार कहा जा सके कि सौभूति नामक कोई स्थान भी था। सुभूति (कदाचित् सौभूति नाम पड़ा है) भारतीय साहित्य में अधिक प्रयुक्त हुआ है (*The Questios of King Milinda*, Pt. II; *SBE*, XXXVI, pp. 315, 323; गेगर, महावंश, 151n, 275)। यह असम्भव नहीं है कि कोई हिन्दू राजा अपना नाम हेलन के अनुसार रखे। आगे चल कर बहुत से राजाओं ने इस प्रथा को अपनाया है।

सोफ़ाइटस को 'नोमार्क' कहा है, जिसका अभिप्राय होता है कोई स्वतंत्र राजा नहीं, वरन् किसी दूसरे राजा का वाइसराय या उपराजा ।[1]

१५. **फ़ेगेलास** (फीगिअस—बारी दोआब में) यह राज्य रावी और व्यास के मध्य[2] स्थित था । राजा का नाम फ़ेगेलास सम्भवतः संस्कृत शब्द 'भागल' का ही रूपान्तर है, जो क्षत्रिय राजाओं की उपधि होती थी, ऐसा गणपाठ[3] में लिखा है ।

१६. **सिबोई**—ये लोग झंग ज़िले के शोरकोट-क्षेत्र के रहने वाले थे । यह भाग झेलम और चिनाब[4] के संगम के नीचे पड़ता था । शायद ये लोग ऋग्वेद[5] में वर्णित शिव जाति के ही लोग थे । ऋग्वेद के अनुसार अलिन, पक्थ, भलानसे तथा विशाणिन लोगों की तरह ये लोग सुदास[6] द्वारा पराजित हुए थे । जातकों में शिवि देश की तथा उसके नगरों अरिट्ठपुर[7] और जेतुत्तर[8] की भी चर्चा आई है । सम्भवतः शिव, शिवि, शिबि तथा सिबोई एक ही जाति का नाम था । पाणिनि के एक भाष्यकार ने लिखा है कि शिवपुर उत्तरी क्षेत्र का एक स्थान था ।[9] यह नगर निस्सन्देह वोगेल (Vogel) द्वारा सम्पादित शोरकोट के शिलालेखों में वर्णित शिबिपुर ही है । उक्त विद्वान् के मत से जहाँ आज शोरकोट का टीला है, यही वह जगह है जहाँ पुराना शिबि नगर था ।[10]

सिबोई जाति के लोग जंगली जानवरों की खाल से अपनी वेशभूषा सुसज्जित करते थे तथा हथियारों में गदा धारण करते थे ।

महाभारत[11] में भी शिवि का नाम एक राष्ट्र के रूप में आया है, जहाँ पर राजा उशीनर राज्य करता था । यह प्रदेश यमुना[12] से दूर नहीं था । यह ऐसा कुछ

---

[1] क्या यह पश्चिमी एशिया अथवा भारत का कोई शक्तिशाली शासक था ? अन्य राजाओं में बड़े पोरस के भतीजे तथा सामन्त Spitaces का भी उल्लेख आवश्यक है (*Camb. Hist. Ind.*, 36, 365, 367) ।

[2] *Inv. Alex.*, pp. 281, 401.

[3] *Invasion of Alexander*, p. 401. देखिये क्रमदीश्वर, 769.

[4] *Inv. Alex.*, p. 232.

[5] VII. 18. 7.

[6] *Vedic Index*, Vol. II. pp. 381-82. ऐतरेय ब्राह्मण (VIII. 23; *Vedic Index*, 1. 31) में 'शैव्य' का उल्लेख मिलता है ।

[7] उम्मदन्ती जातक, No. 527; पाणिनि, VI, 2. 100.

[8] वेस्सन्तर जातक, No. 547; *ante*, p. 198, n6.

[9] पतञ्जलि, IV, 2. 2; *Vedic Index*, II, p. 382; *IHQ*, 1926, 758.

[10] देखिये *Ep. Ind.*, 1921, p. 16.

[11] III, 130-131.

[12] देखिए, शिब (कनिंघम, *AGI*, संशोधित संस्करण, pp. 160-161) ।

अजब नहीं कि शिवि लोग कभी उशीनर[१] देश के भी निवासी रहे हों। हम उन्हें सिन्ध का भी निवासी पाते हैं। चित्तौड़[२] (राजपूताना) के पास मध्यमिका (तम्बवती नगरी) तथा 'दशकुमारचरित' के अनुसार कावेरी[३] के तट पर भी शिवि लोग रहते थे।

१७. **आगलस्सोई**—ये लोग सिबोई देश के ही पड़ोसी थे। इनके पास ४० हज़ार की पैंदल तथा ३ हज़ार घुड़सवारों की सेना थी।

१८. **सूद्रके (या आक्सीड्रकाई)**—इतिहासकार कर्टियस और डायोडोरस[४] के कथनानुसार, ये लोग भी सिबोई देशवालों के ही पड़ोसी थे तथा झेलम और चिनाब के संगम के समीपवर्त्ती प्रदेश में रहते थे। इसी झेलम और चिनाब के संगम पर सिकन्दर अपनी फ़ौज की आपंक्ति को तैनात कर सूद्रके और मालव प्रदेश की ओर बढ़ा था। सूद्रके सम्भवतः झंग और लायलपुर ज़िलों में रहते रहे होंगे। सूद्रके या आक्सीड्रकोई शब्द संस्कृत के क्षुद्रक[५] का ही रूपान्तर है। ये लोग पंजाबवासी भारतीयों में सबसे अधिक लड़ाकू माने जाते थे। एरियन ने एक जगह इन लोगों के बारे में लिखा है कि यह जाति तथा इसके शासक देश के अगुवा हैं। इन शब्दों से इस जाति की अन्दरूनी खूबियों पर कुछ रोशनी पड़ती है।

१९. **मल्लोई**—ऐसा लगता है कि इन लोगों ने पहले रावी के दायें तट पर अधिकार जमाया था और बाद में ब्राह्मणों के नगर की ओर चले गये। इन्हीं के भूभाग में चिनाब नदी सिन्धु[६] से मिली है। सम्भवतः 'मल्लोई' शब्द संस्कृत के मालव का ही रूपान्तर है। वेबर के अनुसार, आपिशलि (तथा जायसवाल के अनुसार कात्यायन) क्षौद्रक और मालवों के एक संयुक्त राज्य का प्रतिनिधित्व करते हैं। महाभारत में भी कहा गया है कि कुरुक्षेत्र[७] के युद्ध में ये लोग कौरवों की ओर थे। कर्टियस[८] के कथनानुसार, सूद्रके और मालवों के पास ९० हज़ार पैदल, १० हज़ार घुड़सवार तथा ९ सौ रथ सेना थी।

सर आर० जी० भण्डारकर ने लिखा है कि पाणिनि के अनुसार, मालव जाति का पेशा ही युद्ध था।[९] बाद में ये लोग राजपूताना में भी रहने लगे थे; यों ये लोग अवन्ती और मही घाटी में रहते थे।

---

[१] देखिये p. 65-66 *ante.*

[२] Vaidya, *Med. Hind. Ind.*, I, p. 162; *Carm. Lec.*, 1918, p. 173. Allan, *Coins of Anc. Ind.*, cxxiii.

[३] दक्षिण के शिवि सम्भवतः चोल-राजवंश के थे (Kielhorn, *List of Southern Inscripion*, No. 685)।

[४] *Inv. Alex.*, 233-34, 286-87.

[५] देखिये महाभारत, II. 52. 15; VII. 68. 9.

[६] *Megasthenes and Arrian*, 2nd ed., p. 196. इस कथन की **सत्यता में सन्देह है। मल्लोई राज्य में** लायलपुर के दक्षिणी भाग, **पश्चिमी माण्टगोमरी, तथा कदाचित् उत्तरी मुल्तान के अतिरिक्त** झांग जिला भी सम्मिलित था।

[७] *EHI*, 1914, p. 94 n.; महाभारत, VI. 59, 135.

[८] *Invasion of Alexander*, 234.

[९] *Ind. Ant.*, 1913, p. 200.

२०. **आबस्टनोई**—इन लोगों को डायोडोरस सम्बस्टई,[१] एरियन अबस्टनोई, कर्टियस सबर्के तथा ओरोसियस सबग्रे कहता था। ये लोग मालव देश के नीचे तथा चिनाब और सिन्धु के संगम के ऊपरी प्रदेश में बसे थे। इनका नाम संस्कृत के 'अम्बष्ठ' या 'आम्बष्ठ'[२] शब्द का रूपान्तर है। आम्बष्ठों की चर्चा कई पालि तथा संस्कृत ग्रन्थों में भी मिलती है। ऐतरेय ब्राह्मण[३] में एक आम्बष्ठ राजा की चर्चा है, जिसके पुरोहित नारद स्वयं थे। महाभारत[४] में उत्तर भारत की शिवि, क्षुद्रक, मालव और अन्य उत्तरी-पश्चिमी जातियों के साथ आम्बष्ठों का भी उल्लेख है। पुराणों में इन्हें आनव क्षत्रिय तथा शिवियों[५] का घनिष्ठ सम्बन्धी माना गया है। बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र[६] में सिन्धु के पास ही आम्बष्ठ देश स्थित बताया गया है—

काश्मीर-हून्-आम्बष्ठ-सिन्धवः।

अम्बट्ठ सुत्त[७] में अम्बट्ठ को ब्राह्मण कहा गया है। इसके विपरीत, स्मृति-साहित्य में आम्बष्ठ को ब्राह्मण तथा वैश्य का संयुक्त वंशज माना गया। चतुर्थ जातक ३६३ के अनुसार आम्बष्ठ लोग किसान थे। ऐसा लगता है कि पहले आम्बष्ठ जाति एक लड़ाकू जाति ही थी, किन्तु बाद में इन लोगों ने पुरोहित, किसान, स्मृतिकार तथा वैद्य का पेशा भी अपना लिया (**अम्बष्ठानां चिकित्सितम्**[८])।

---

[१] *Inv. Alex.*, p. 292.

[२] डॉ० सूर्यकान्त आम्बष्ठ तथा अम्बष्ठ में यह कहकर अन्तर बताते हैं कि प्रथम शब्द स्थान का तथा दूसरा जाति का नाम है। इसका अर्थ 'हाथी को चलाने वाले, क्षत्रिय, की एक मिश्रित जाति' है(*B. C. Law*, Vol. II, pp. 127 ff.)। हमारे मत में यह अंतर केवल शब्द-भेद पर ही आधारित है।

[३] VIII. 21.

[४] II. 52. 14-15.

[५] पार्जिटर, *AIHT*, pp. 108-109.

[६] एफ़० डब्ल्यू० थॉमस द्वारा सम्पादित, p. 21.

[७] *Dialogues of the Bnddha*, part. *I*, p. 109.

[८] देखिये मनु, X. 47. डॉ० सूर्यकान्त का मत है कि इसको 'च हास्तिनम्' पढ़ा जाये (*Law*, Vol. II, 134)। अपने इस विचार का विश्लेषण करते हुए उन्होंने कहा है कि सम्भवतः 'अम्बष्ठ' शब्द संस्कृत से लिया गया है जिसका अर्थ कृषक है। यह भी सम्भव है कि इसका अर्थ 'महामात्र' से हो, क्योंकि 'अम्भस्' का अर्थ 'बड़ी लम्बाई वाला', 'हाथी'; अतः 'अम्बष्ठ' का अर्थ 'हाथी पर बैठने वाला' अर्थात् महावत, स्वामी, सामन्त या क्षत्री। वे सदैव युद्ध में रहते थे तथा सम्भवतः गजारोह (पताका लेने वाले) थे। 'अम्बष्ठ' तथा 'आम्बष्ठ' में अन्तर बताया गया है। आम्बष्ठ स्थान का नाम है तथा यहाँ पर आम्ब के वृक्ष अधिक मिलते हैं। इस विषय पर अन्य टिप्पणी के लिए देखिये प्रबासी, 1351 B. S.; I, 20 6; *JUPHS*, July-Dec., 1945, pp. 148 ff, *History of Bengal* (D. U.), pp. 568 ff.

सिकन्दर के समय में आम्बष्ठ बहादुर तथा लोकतांत्रिक शासन-प्रणाली वाली एक जाति थी। इनके पास ६० हज़ार पैदल, ६ हज़ार घुड़सवार तथा ५ सौ रथों की सेना थी।[1]

बाद में आम्बष्ठ लोग दक्षिण-पूर्वी भारत की मेकल पर्वत-श्रेणी के पास तथा बिहार और बंगाल में भी पाये गये।[2]

२१-२२. **ज़ाथ्रोई या ओसेडिओई**—इतिहासकार मैक्रिंडल[3] के अनुसार, 'ज़ाथ्रोई' शब्द संस्कृत के 'क्षत्रि' शब्द का ही एक रूप है। मनुस्मृति में वर्णसंकर जाति के लिए क्षत्री शब्द प्रयुक्त किया गया है। वी० डी० सेन्ट मार्टिन के कथनानुसार, 'ओसेडिओई' शब्द महाभारत[4] में प्रयुक्त 'वसाति' का ही रूप है तथा ये लोग शिवियों और सिन्धु-सौवीरों के मित्र थे। आबस्सटनोई लोगों की तरह ये लोग भी पहले चिनाव के तटवर्ती भागों के निवासी थे। यह प्रदेश चिनाव व रावी तथा सिन्धु व चिनाव के संगमों के बीच फैला हुआ था।

२३-२४. **सोद्रई (सोग्दोई) और मस्सनोई**—यह प्रदेश उत्तरी सिंध, बहावलपुर राज्य तथा सिन्धु की सहायक नदियों के संगम के नीचे पड़ता है। उक्त दोनों जातियों के प्रदेश सिन्धु नदी के दोनों किनारों पर फैले हुए हैं। सोद्रई तो संस्कृत का सूद्र है और ये लोग (जो आभीर जाति से सम्बन्धित थे) सरस्वती[5] के तट पर बसने वाले

---

[1] *Invasion of Alexander*, p. 352.

[2] *Cf*. Ptolemy *Ind. Ant.*, XIII, 361; बृहत्संहिता, XIV, 7; मार्कण्डेय पुराण का 'मेखलामृष्ट' (lviii, 14) वास्तव में मेकल-आम्बष्ठ का अशुद्ध रूप है। देखिये बिहार के अम्बष्ठ कायस्थ; अकबर के काल का सुर्जनचरित (*DHNI*, II, 1061, n 4) में गौड़ अम्बष्ठ तथा बंगाल के वैद्य, जिन्हें भरत-मल्लिका में अम्बष्ठ कहा गया है। भरत अथवा अन्य पुराणों में इस सम्बन्ध में जो कुछ भी कहा गया है, उसके उचित-अनुचित पर तर्क करने का यह सही स्थान नहीं है। बंगाल में वैद्यों की अथवा किसी भी जाति की उत्पत्ति का प्रश्न अत्यन्त जटिल है, तथा उस पर अलग से ही विचार किया जा सकता है। यहाँ पर लेखक का अभिप्राय केवल इस शब्द के सम्बन्ध में प्राप्त प्राचीन तथा अर्वाचीन मत देने का है। कुछ अम्बष्ठ तथा ब्राह्मणों ने वैद्यक का पेशा अपनाया, इसका प्रमाण मनु तथा अत्रि (संहिता, 378) तथा बोपदेव के लेखों में मिलता है। यह भी स्पष्ट है कि जिस ढंग से वैद्य की समस्या को कुछ आधुनिक पुस्तकों में हल करने का प्रयत्न किया गया है, वह सम्भव नहीं। इससे सम्बन्धित ऐतिहासिक तथ्यों पर विचार करना ही पड़ेगा, जैसे मेगस्थनीज़, कुछ प्राचीन चालुक्य, पाण्डच तथा दूसरे लेख इत्यादि (देखिये तालमञ्ची पट्ट, *Ep. Ind.*, IX, 101; भण्डारकर की सूची, 1371, 2061 इत्यादि)।

[3] *Invasion of Alexander*, p. 156n.

[4] VII, 19. 11; 89, 37; VIII, 44, 99.

[5] पतञ्जलि, 1.2.3; महाभारत, VII, 19. 6; IX. 37. 1.

कहे जाते थे। इनकी राजधानी सिन्धु के तट पर थी तथा सिकन्दर अपने आक्रमण के बाद लौटते समय सिकन्दरिया की स्थापना कर गया था।

२५. **मौसिकनोस**[१]—इस राज्य में आज का अधिकांश सिन्ध प्रदेश शामिल था। सक्खर (Sukkur) ज़िले के ऐलोर नामक स्थान पर इस राज्य की राजधानी थी। स्ट्रैबो के कथनानुसार इस प्रदेश के निवासियों की निम्न विशेषताएँ[२] थीं—

ये लोग सामूहिक रूप से भोजन करते थे। इनका यह सामूहिक भोजन सार्वजनिक भी होता था। ये शिकारी थे। इनके भोजन में मुख्यतया मांस आदि की प्रधानता रहती थी। यद्यपि इनके क्षेत्र में सोने-चाँदी की खानें थीं, किन्तु ये सोने-चाँदी का इस्तेमाल नहीं करते थे। ये लोग गुलामों के बजाय मेहनती नौजवानों को नौकर रखा करते थे। ये लोग वैद्यकी या डॉक्टरी[३] के अलावा और कोई भी विद्या नहीं पढ़ते थे, क्योंकि उनका विचार था कि युद्धकला की भाँति अन्य कलाओं का अध्ययन केवल बुराई की ओर ले जाता है। इनका स्वभाव अपराधशील था। इन लोगों के कानून में हत्या व बलात्कार के अलावा और किसी अपराध के लिये दण्ड नहीं था। इनके अनुसार चूँकि राज्य का विधान हर नागरिक के हित में होता है, इसलिए हर एक को अपने साथ की जा रही ग़लतियों को बर्दाश्त करना आवश्यक था। विश्वासघात से सावधान रहना आवश्यक था। यदि किसी पर विश्वास किया जाता है तो एहतियात भी रखनी चाहिए। नित्यप्रति छोटे-छोटे झगड़ों के साथ अदालत में पहुँचकर नगर की शांति-व्यवस्था नहीं भंग करनी चाहिये।

एरियन ने इन लोगों के बारे में जो कुछ लिखा है, उससे पता चलता है कि देश में ब्राह्मणों का अच्छा प्रभाव था। ब्राह्मणों ने ही यूनानी हमलावर (सिकन्दर)[४] के खिलाफ़ जनता को उभाड़ा था।

२६. **ऑक्सीकनोस**—कर्टियस ने ऑक्सीकनोस की प्रजा को प्रास्ती (प्रोष्ठस ?)[५] नाम दिया है। स्ट्रैबो और डायोडोरस ने ऑक्सीकनोस स्वयं को पोर्टिकनोस कहा है। कनिंघम के कथनानुसार, उसका क्षेत्र सिन्ध के पश्चिम लरखान[६] के आसपास था।

२७. **सम्बोस**[७]—मौसिकनोस के पास के पहाड़ी इलाक़ों का शासक सम्बोस था।

---

[१] *Camb. Hist., Ind.* p. 377 में लॉसेन (*Inv. Alex.*, 157n) को मानते हुए वेवन 'मूषिक' नाम ही स्वीकार करते हैं। डॉ॰ जायसवाल ने 'हिन्दू पॉलिटी' में इस शब्द को 'मुचुकर्ण' कहा है। देखिये मौषिकार (पतञ्जलि, IV. i, 4)।

[२] H. & F., III, p. 96.

[३] यह आदत उन्होंने अम्बष्ठों से ही सीखी थी (देखिये मनु, X, 47)।

[४] Chinnock, *Arrian*, p. 319; *Cf.* स्ट्रैबो, xv, i, 66—"नेयरकॉस का कथन है कि ब्राह्मण राजा के मंत्री के रूप में दरबार में जाते थे।"

[५] महाभारत, VI, 9. 61.

[६] *Invasion of Alexander*, 158; *AGI*, संशोधित संस्करण, p. 300.

[७] वेवन (*Camb. Hist. Ind.*, 377) ने शम्भु के स्थान पर शाम्ब का प्रयोग सम्भव माना है।

दोनों में परस्पर झगड़ा रहता था। सम्बोस की राजधानी सिन्दीमान थी। सिंधु[१] के तट पर बसे सेहवान को ही पुराना सिन्दीमान कहा जाता है। डायोडोरस के अनुसार जब राजा सम्बोस पर आक्रमण हुआ तो ब्राह्मणों के नगर (ब्राह्मणवाट) में भी उथल-पुथल-सी मच गई।[२]

२८. **पटलेन**—यह प्रदेश सिंधु के डेल्टे में फैला था। बहमणाबाद के निकट पाटल नगर ही पटलेन की राजधानी था। डायोडोरस[३] ने लिखा है कि तौला (अर्थात् पाटल) का संविधान वैसा ही था, जैसा कि स्पार्टा का। स्पार्टा में युद्धकालीन सत्ता वहाँ के पैतृक राजाओं के हाथ में रहती थी, तथा साधारण समय ज्येष्ठ जनों की परिषद् देश पर शासन करती थी। सिकन्दर के आक्रमण के समय यहाँ के एक राजा का नाम मोरेस (Moeres)[४] था।

ऊपर जिन-जिन राज्यों की चर्चा की गई है, उनमें आपस में संगठित होने की प्रवृत्ति का अभाव था। कर्टियस[५] के कथनानुसार, तक्षशिला के राजा आम्भी का, अबीसेयर्स और पुरु राज्य के शासकों के साथ, युद्ध चलता था। एरियन के कथनानुसार पुरु और अबीसेयर्स के राजा केवल तक्षशिला ही नहीं, वरन् अन्य पड़ोसी राज्यों के भी शत्रु थे। एक बार तो इन दोनों राजाओं ने क्षुद्रकों व मालवों[६] पर भी आक्रमण कर दिया था। एरियन ने यह भी बताया है कि राजा पुरु तथा उनके भतीजे के आपसी सम्बन्ध भी अच्छे नहीं थे। सम्बोस और भौसिकनोस में भी तनातनी ही थी। यहाँ की छोटी-छोटी रियासतों में इस प्रकार झगड़ा व कलह के कारण ही किसी भी बाहरी आक्रमणकारी का कभी भी संगठित विरोध नहीं हो सका। उल्टे, आक्रमणकारी को यही उम्मीद रहती थी कि इन रियासतों के सामन्त अपने पड़ोसी प्रतिद्वन्द्वी शासक को नीचा दिखाने के उद्देश्य से हमला करने वाले का ही साथ दे सकते हैं।

मगध में शासन कर रहे नन्द-वंश के लोगों ने उत्तरापथ (उत्तर-पश्चिमी भारत) की इन रियासतों को अपने अधीन करने का कभी प्रयास ही नहीं किया। इनकी संख्या कम करने का काम आक्रमणकारी सिकन्दर को ही करना पड़ा। एरियन के अलावा अन्य कई इतिहासकारों ने सिकन्दर के हमले की चर्चा की है। इन इतिहासकारों में कर्टियस, रुफ़स, डायोडोरस, सिकुलस, प्लूटार्क तथा जस्टिन प्रमुख हैं। कर्टियस ने लिखा है कि सीथियन (Scythians) और डाहे (Dahae) सिकन्दर की सेना[७] में सम्मिलित थे। सिकन्दर-महान् की यह विजय-यात्रा शकों व यवनों का एक

---

१. McCrindle, *Invasion, of Alexander* p. 404; *AGI*, संशोधित संस्करण, 302 ff.

२. डायोडोरस, XVII, 103, 1; देखिये अल्बेरूनी (I. 316; II, 262)।

३. *Inv. Alex.*, p. 296.

४. *Inv. Alex.*, p. 256—देखिये 'मौर्य'।

५. *Inv. Alex.*, p. 202.

६. Chinnock, *Arrian*, p. 279.

७. *Inv. Alex.*, p. 208.

प्रकार से संयुक्त अभियान थी। सिकन्दर के सामने ऐसी कोई भी संगठित शक्ति बाधा बनकर नहीं आई, जैसी ताक़त का मुक़ाबला कूणिक अजातशत्रु को करना पड़ा। इसके विपरीत तक्षशिला, पुष्करावती, और क़ाबुल के शासकों से सिकन्दर को सहायता ही मिली।[1] आक्रमणकारी सिकन्दर के खिलाफ़ केवल पुरु राज्य, अबीसेयर्स, मालव, क्षुद्रक तथा इनके पड़ोसियों ने ही आगे आने की हिम्मत की। फिर भी इन लोगों के व्यक्तिगत ईर्ष्या-द्वेष के कारण कोई विशेष परिणाम न निकल सका। सिकन्दर को सबसे पहले आस्टेस (हस्ती या अष्टक), आस्पेशियन, अस्सकेनियन, ज्येष्ठपुर, कथाई, आक्सीड्रके तथा मौसिकनोस के ब्राह्मणों से लोहा लेना पड़ा। अस्सकेनियनों की राजधानी मस्सगा पर बड़ी कठिनाई से कब्ज़ा हो सका। ३२६ ई० पू० में झेलम के तट पर राजा पुरु परास्त हुए। मल्लोई और आक्सीड्रके के लोगों को भी सिकन्दर ने दबा दिया। लेकिन, सिकन्दर को भारतीय सिपाही थके हुए ईरानी सिपाहियों से कहीं अधिक अजेय मालूम पड़े। मस्सगा में सिकन्दर ने बड़ी धोखेबाज़ी से लोगों को क़त्ल किया। वहाँ उसने देखा कि यदि पुरुष युद्ध के मैदान में मारे जाते और गिर जाते थे तो उनकी स्त्रियाँ उनके हथियार लेकर शत्रुओं से जूझ पड़ती थीं।[2] यह सूचना डायोडोरस के लेखों से प्राप्त होती है। राजा पुरु ने देखा कि उसकी सेना तितर-बितर हो गई, हाथियों की सेना मरने लगी या उनके सवार लड़ाई में काम आ गये, किन्तु फिर भी वह एक विशालकाय हाथी पर चढ़ा युद्ध करता ही रहा। क़ैद किये जाने के पूर्व तक पुरु[3] को ९ घाव लगे। मल्लोई की लड़ाई में तो सिकन्दर क़रीब-क़रीब मार ही डाला गया था। लेकिन, इतना होते हुए भी इस सारी मेहनत का कोई परिणाम नहीं निकला।

प्राचीन यूरोप के महान् योद्धा, सेनापति सिकन्दर के मुक़ाबले भारत की असंगठित फ़ौजें टिक न सकीं। यद्यपि सिकन्दर ने ईरानी साम्राज्य के गन्धार और भारत कहे जाने वाले प्रान्तों को अपने अधिकार में कर लिया, किन्तु वह पूर्वी भारत के मगध या गंगा के तटवर्त्ती अन्य राज्यों की ओर न बढ़ सका। उस समय नंद-वंश का अन्तिम शासक औग्रसैन्य (Agrammes) मगध के सिंहासन पर राज्य कर रहा था। प्लूटार्क के कथनानुसार, राजा पुरु से हुई लड़ाई में ही यूनानियों के छक्के छूट गये थे। यूनानी सिपाही थक गये थे और उन्होंने आगे बढ़ने से इन्कार कर दिया था। इसके अलावा सिकन्दर का मुक़ाबला करने के लिये २ लाख पैदल, ८० हजार घोड़ों, ८ हजार रथों तथा ६ हजार हाथियों की एक और सेना भी सिकन्दर की प्रतीक्षा कर रही थी। यूनानी सिपाही काफ़ी भयभीत हो गये थे। सही बात तो यह है कि जब सिकन्दर करमानिया होते हुए वापस जा रहा था तो उसे रास्ते में ही खबर मिली थी कि उसके द्वारा नियुक्त उत्तर-पश्चिमी भारत का गवर्नर फ़िलिप्पोस मार डाला गया है (३२४ ई० पू०) और उसकी सेना भी हरा दी गई है। इसके बाद उत्तरी भाग के लिए एक और गवर्नर नियुक्त किया गया, जिसके बाद फिर किसी अन्य गवर्नर की नियुक्ति नहीं हो पाई। बाद में ३२१ ई० पू० में सिकन्दर के उत्तराधिकरों ने यह स्वीकार किया कि पंजाब के भारतीय राजाओं को बिना अच्छी सेना और योग्य सेना-

---

[1] *Inv. Alex.*, p. 112.

[2] *Inv. Alex.*, p. 270.

[3] देखिये बरी-कृत, *History of Greece for Beginners*, pp. 428-29.

पति के हराया नहीं जा सकता। भारतीय राजा पुरु की धोखा देकर हत्या कर दी गई। यह कार्य यहाँ पर टिके यूनानी अफ़सर यडेमोस ने किया। बाद में ३१७ ई० पू० में यह अफ़सर यूनान बुला लिया गया। इस प्रकार यवनों द्वारा भारत में अपना साम्राज्य स्थापित करने का पहला प्रयास असफल हो गया।

सिकन्दर-महान् के आक्रमण का स्थायी परिणाम यह हुआ कि उत्तरापथ में कुछ यवन-बस्तियाँ अवश्य बस गईं, जो निम्न थीं—

१. क़ाबुल के क्षेत्र में सिकन्दरिया[1] शहर बस गया।

२. झेलम के पूर्वी तट पर बूकेफल नाम की बस्ती बस गई।

३. सिकन्दर व पोरस के बीच हुए युद्ध के स्थान पर निकाइया नामक बस्ती बसी।

४. सोद्रई और मस्सनोई के उत्तर-पूर्व में चिनाव और सिंधु के संगम के समीप सिकन्दरिया नाम की एक बस्ती और बसी।

५. सिन्ध तथा पंजाब की अन्य नदियों के संगम के नीचे सोग्डियन अलेक्ज़ेण्ड्रिया[2] की बस्ती बसी।

सम्राट् अशोक ने भी अपने साम्राज्य के उत्तरी-पश्चिमी भाग में यवनों का अस्तित्व माना और (यवनराज तुषास्फ़[3] जैसे) कुछ यवनों को उसने ऊँचे पदों पर भी नियुक्त किया। बूकेफल-सिकन्दरिया ने बाद में तरक़्क़ी की, ऐसा उल्लेख मिलता है। महावंश[4] में एक अलेक्ज़ेंड्रिया (अलसन्द) की चर्चा आई है।

सिकन्दर के हमले का एक अप्रकट परिणाम भी हुआ। जिस प्रकार डैनिश आक्रमण से नार्थम्ब्रिया और मर्सिया की स्वतन्त्रता खत्म हुई और वेसेक्स के नेतृत्व में इंगलैण्ड संगठित हुआ, उसी प्रकार सिकन्दर के आक्रमण से उत्तरी-पश्चिमी भारत की छोटी-छोटी रियासतें भी समाप्त हो गईं, और इससे भारतीय एकता को काफ़ी बल मिला। पूर्वी भारत में यदि उग्रसेन महापद्म मगध की गद्दी पर चन्द्रगुप्त मौर्य का अग्रज रहा तो उत्तर-पश्चिमी भारत में सिकन्दर स्वयं सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य का अग्रज शासक था।

---

[1] टार्न (*The Greeks in Bactria and India*, Ist ed., 462) के अनुसार सिकन्दरिया नगर पंजषिर-घोरबंद के पश्चिमी तट पर था जिसके सामने पूर्वी तट पर 'कपिशा' बसी थी। आजकल इसका आधुनिक नाम 'बेग्राम' है।

[2] *Inv. Alex.*, pp. 293, 354; बरी, *History of Greece for Beginners*, p. 433; *Camb. Hist. Ind.*, I. 376 f.

[3] तुषास्फ की राष्ट्रीयता एवं महत्त्व के लिए 'यवन' शब्द देखिये (रायचौधरी, *Early History of the Vaishnava Sect*, द्वितीय संस्करण, pp. 28f. 314 *post*)।

[4] गेगर का अनुवाद, p. 194

७ मौर्य-साम्राज्य : दिग्विजय का युग

१. चन्द्रगुप्त मौर्य

म्लेच्छैरुद्वेज्यमाना भुजयुगमधुना संशृता राजमूर्त्तेः
स श्रीमद्बन्धु भृत्यश्चिरमवतु महीम् पार्थिवश्चन्द्रगुप्तः।

—मुद्राराक्षस

३२६ ईसा पूर्व में पंजाब की छोटी-छोटी रियासतें यूनानी आक्रमण के सम्मुख नत-मस्तक हो चुकी थीं और मध्य देश के लिए ख़तरा उत्पन्न हो गया था। औग्रसैन्य (Agrammes) को भी उसी प्रकार के संकटों का सामना करना पड़ा जिस प्रकार रोमन सेनाओं के विरुद्ध आर्मीनियस को और चार्ल्स मार्टल को करना पड़ा था। प्रश्न केवल इतना था कि भारत को यूनानी प्रभुत्व का क्षेत्र बनाया जाये, अथवा नहीं।

औग्रसैन्य का सौभाग्य था कि वह सिकन्दर के आक्रमण से बच गया। किन्तु, यह सन्देहजनक था कि मौक़ा आ पड़ने पर भी औग्रसैन्य में आर्मीनियस या चार्ल्स मार्टेल का पार्ट अदा कर सकने की क्षमता है या नहीं, अथवा वह ऐसा करना पसन्द भी करेगा या नहीं। किन्तु, इसी समय एक अन्य भारतीय योद्धा भी मौजूद था जो किसी और धातु का बना था। यह योद्धा चन्द्रगुप्त था। इसे प्राचीन लेखकों ने 'साण्ड्रोकोप्टोस' का भी नाम दिया है। इतिहासकार जस्टिन[1] ने चन्द्रगुप्त के उत्थान की चर्चा इस प्रकार की है—

"सिकन्दर-महान् की मृत्यु के बाद भारत ने एक बार पुनः करवट बदली, गुलामी का जुआँ उतार फेंका तथा यूनानी गवर्नरों की हत्या कर डाली। इस स्वतन्त्रता-संग्राम का सूत्रधार साण्ड्रोकोप्टोस ही था। यद्यपि यह व्यक्ति एक निम्न कुल में ही पैदा हुआ था तो भी दैवी प्रेरणावश सिंहासनारूढ़ होने की महत्त्वाकांक्षा रखता था। एक बार साण्ड्रोकोप्टोस (चन्द्रगुप्त) की स्पष्टवादिता से सिकन्दर[2] नाराज़ हो गया और उसने चन्द्रगुप्त के वध किये जाने का आदेश दे दिया। चन्द्रगुप्त अपनी

---

[1] देखिये, वॉटसन का अनुवाद, p. 142, तनिक संशोधन के साथ।

[2] कुछ आधुनिक विद्वान् 'अलेक्ज़ेन्ड्रम' के स्थान पर 'नन्द्रम' (नन्द) पढ़ते हैं। आधुनिक विद्वानों के द्वारा इस प्रकार अर्थ किये जाने से विद्यार्थियों को बड़ी हानि उठानी पड़ती है, क्योंकि वे वास्तविक तथ्यों तक नहीं पहुँच पाते, और इस प्रकार चन्द्रगुप्त के प्रारम्भिक जीवन को और भी जटिल बना देते हैं (*Indian Culture*, Vol. II, No.3, p. 558; 'साहस के साथ बोलने के लिए' देखिये Grote, XII. 141—क्लीटस का केस तथा p. 147 ff. कैलिस्थेनीज़ का केस)।

सर्तकता के फलस्वरूप बच गया। एक बार चन्द्रगुप्त कहीं थका हुआ सो रहा था और उसका शरीर पसीने से लथपथ था कि एक दीर्घकार्य सिंह आकर उसके शरीर को चाटने लगा। ज्यों ही चन्द्रगुप्त की निद्रा टूटी, सिंह धीरे-धीरे टहलता हुआ एक ओर चला गया। इस विलक्षण कौतुक से भी प्रेरित होकर चन्द्रगुप्त ने सिंहासनारूढ़ होने की आकांक्षा मन में पा ली। वह कुछ दस्यु-गिरोहों[1] के संसर्ग में आया। उसने भारतीय नागरिकों से अपनी सत्ता[2] स्वीकार करने का आग्रह किया। एक बार चन्द्रगुप्त सिकन्दर के सेनापतियों से युद्ध करने जा रहा था कि एकाएक जंगली हाथी उसके सामने आ गया। उसने बड़ी सरलता व विनम्रता से चन्द्रगुप्त को अपनी पीठ पर बिठाल लिया। फिर क्या था? युद्ध में उसी हाथी ने चन्द्रगुप्त का मार्गदर्शन किया। इस प्रकार चन्द्रगुप्त उस समय सिंहासनारूढ़ हुआ जबकि सिकन्दर का सेनापति सेल्युकस अपनी भावी महानता की नींव डाल रहा था।

उपर्युक्त विवरण अलंकार-युक्त है, पर यह इतना तो सिद्ध करता ही है कि चन्द्रगुप्त राजघराने का राजकुमार तो नहीं था। फिर भी, उसने अपने को सिकन्दर की दासता में पड़े लोगों का सम्राट् बना लिया। सिकन्दर की मृत्यु के बाद चन्द्रगुप्त ने उसके सेनापतियों को हराया। इस प्रकार भारत की दासता का बन्धन टूटा और झेलम के तट की पराजय विजय में बदल गई।[3]

चन्द्रगुप्त के पूर्वजों के बारे में कुछ भी निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है। हिन्दू-ग्रन्थों में चन्द्रगुप्त को मगध के नन्द-वंश[4] से ही सम्बन्धित बताया गया है। अभी

---

१. जस्टिन ने जिस मूल स्रोत से इसे लिया है, उसके अर्थ 'किराये के सैनिक' तथा 'दस्यु' दोनों ही हैं, जैसा कि हेमचन्द्र ने परिशिष्टपर्वन् (VIII, 253-54) में लिखा है। प्रथम अर्थ ही उचित मालूम होता है—

धातुवादोपार्जितेन द्रविणेन चणिप्रसूः
चक्रेपत्यादि सामग्रीं नन्दमुच्छेत्तुमुद्यतः।

अर्थात्, भूगर्भ से प्राप्त धन के द्वारा चाणक्य ने चन्द्रगुप्त के लिए सेना एकत्र की, जिससे कि वह नन्द-राज्य का विनाश कर सके।

२. हल्ट्ज़ ने इसका जो अर्थ स्वीकार किया है, वह यह है कि उसने सरकार को पलट देने के लिए 'लोगों को उकसाया।'

३. चन्द्रगुप्त तथा जिन लोगों ने उसका साथ दिया, उन्होंने यूनानियों के विरुद्ध सर्वप्रथम विद्रोह सिन्ध में आरम्भ किया। ३२१ ई० पू० के पहले ही वहाँ के यूनानी क्षत्रप हट गये। पश्चिमी तथा मध्य पंजाब तथा ३२१ ई० पू० में हुए त्रिपरादेसोस-सन्धि के अनुसार आसपास की भूमि पर आम्भी तथा पुरु का शासन था।

४. मुद्राराक्षस (Act II, श्लोक ६) में उन्हें न केवल मौर्यपुत्र, वरन् नन्दान्वय (Act IV) भी कहा है। क्षेमेन्द्र तथा सोमदेव ने 'पूर्वनन्द-सूत' कहा है, अर्थात् वे वास्तविक नन्द (योगनन्द के नहीं) के पुत्र थे। विष्णु पुराण के आलोचक (IV, 24—विल्सन, IX, 187) ने कहा है कि चन्द्रगुप्त, नन्द तथा उसकी पत्नी मुरा का पुत्र

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तक प्राप्त मध्यकालीन शिलालेखों के अनुसार मौर्यवंश सूर्यवंशियों[1] से सम्बन्धित था। सूर्यवंशियों के एक राजकुमार मान्धातृ से मौर्यवंश का उद्भव हुआ। राजपूताना गज़ेटियर[2] में मोरिस (मौर्यों) को राजपूत कहा गया है। जैन-ग्रन्थ परिशिष्टपर्वन्[3] में कहा गया है कि चन्द्रगुप्त मयूर-पोषकों[4] के गाँव के मुखिया की पुत्री से उत्पन्न हुआ था। महावंश[5] के अनुसार चन्द्रगुप्त उस क्षत्रिय-वश का था, जो बाद में मौर्य कहलाने लगा। दिव्यावदान[6] में चन्द्रगुप्त के पुत्र बिन्दुसार ने अपने को 'क्षत्रिय-मूर्धाभिषिक्त' घोषित किया है। उसी ग्रन्थ[7] में बिन्दुसार के पुत्र अशोक ने भी अपने को क्षत्रिय कहा है। महापरिनिब्बान सुत्त[8] में मौर्यों को पिप्पलिवन का शासक और क्षत्रिय-वंश माना गया है। चूंकि महापरिनिब्बान सुत्त सबसे प्राचीन बौद्ध-ग्रंथ है। इसलिए बाद के ग्रन्थों की अपेक्षा इसकी सामग्री पर अधिक भरोसा किया जा सकता है। इस प्रकार यह निश्चित हो गया कि चन्द्रगुप्त क्षत्रिय-वंश (मौर्य) का ही था।

छठवीं शताब्दी ईसापूर्व में मौर्य लोग पिप्पलिवन गणतन्त्र राज्य के शासक थे। यह राज्य नेपाल की तराई के रुम्मिनिदेई और गोरखपुर के कसिया के बीच फैला हुआ था। पूर्वी भारत के अन्य राज्यों की तरह यह राज्य भी मगध के साम्राज्य में विलीन हो गया होगा। प्राचीन ग्रन्थ इस प्रश्न पर सहमत हैं कि चौथी शताब्दी ईसा-पूर्व में छोटे राज्यों की संख्या घट गई थी और चन्द्रगुप्त मयूर-पोषकों के वंश का था। ये मयूर-पोषक विन्ध्य-वनों के शिकारी या पशुपालक भी थे। शेर तथा हाथी से हुई चन्द्र-गुप्त की लड़ाई की कहानी से चन्द्रगुप्त की जन्मभूमि के वातावरण की एक झलक मिलती

था, अतः वह और उसके उत्तराधिकारी मौर्य कहलाये। मुद्राराक्षस के आलोचक ढुण्डिराज ने बताया कि वह मौर्य [नन्द राजा सर्वार्थसिद्धि तथा वृषल (शूद्र) की कन्या मुरा] का सबसे ज्येष्ठ पुत्र था।

[1] देखिये *Ep. Ind.*, II, 222; महावंशटीका के अनुसार, मौर्यों का सम्बन्ध शाक्यों से था जो आदित्य (सूर्य) के वंशज थे (देखिये अवदान-कल्पलता, संख्या ५.९)।

[2] II A, मेवाड़ रेज़ीडेन्सी, मेजर के० डी० असंकीन द्वारा संकलित, p. 14.

[3] P. 56; VIII, 229 f.

[4] बौद्ध-जनश्रुति में भी मोरिय (मौर्य) तथा मोर या मयूर में कुछ सम्बन्ध दिखाई पड़ता है (टर्नर, महावंश, xxxix f)। एलियन (Aelian) कहते हैं कि पाटलिपुत्र के उद्यानों में पालतू मयूर रखे जाते थे। प्रो० मार्शल के अनुसार सांची के पूर्वी द्वार तथा अन्य भवनों को सजाने के लिए मोरों की तस्वीर बनाई गई थी (*A Guide to Sanchi*, p. 41,62)। फूचर (*Monuments of Sanchi*, 231) का मत है कि ये पक्षी मौर्य-वंश के प्रतीक-चिह्न नहीं हैं। उनके अनुसार, मोर जातक से ही ये अधिक सम्बन्धित हैं।

[5] गेगर का अनुवाद, p. 27 **'मोरियानं खत्तियानं वंशे जात'**।

[6] कॉवेल तथा नेल का संस्करण, p. 370.

[7] p. 409.

[8] *SBE*, XI, p. 134-35

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

है । औग्रसैन्य (Agrammes) के बदनाम शासन-काल में, जबकि उसकी प्रजा उससे असन्तुष्ट थी, चन्द्रगुप्त के नेतृत्व में मौर्यवंश काफ़ी लोकप्रिय हुआ । उस समय ये लोग कहीं के शासक नहीं, वरन् मगध की ही प्रजा थे । इसलिए यदि इतिहासकार जस्टिन चन्द्रगुप्त को छोटे परिवार का कहता है तो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। प्लूटार्क और जस्टिन दोनों लिखते हैं कि चन्द्रगुप्त ने सिकन्दर-महान् से भेंट की थी । प्लूटार्क[1] ने लिखा है—"एण्ड्रोकोट्टस (चन्द्रगुप्त) ने सिकन्दर से मुलाक़ात की। उस समय वह बिल्कुल किशोर ही था। चन्द्रगुप्त कहा करता था कि सिकन्दर बड़ी आसानी से समूचे भारतवर्ष पर कब्जा कर सकता था, क्योंकि यहाँ के राजा से उसकी प्रजा उसके दुर्गुणों के कारण नफ़रत करती थी। उक्त अंश से यह अनुमान लगाना ग़लत नहीं होगा कि चन्द्रगुप्त ने मगध के अत्याचार से भरे शासन को समाप्त करने के लिए सिकन्दर से भेंट की होगी । यहाँ चन्द्रगुप्त के इस कार्य की तुलना राणा संग्रामसिंह से कर सकते हैं, जिसने इब्राहीम लोदी[2] की हुकूमत को ख़त्म करने के लिए बाबर को निमंत्रित किया था। किन्तु, चन्द्रगुप्त को सिकन्दर, औग्रसैन्य (Agrammes) जैसा ही सख्त शासक लगा, क्योंकि उसने भारत के इस किशोर सेनानी का वध किये जाने की आज्ञा में देर नहीं लगाई। बाद में चन्द्रगुप्त ने भारत को यूनान तथा भारत के अत्याचारियों (सिकन्दर और औग्रसैन्य) से मुक्त करने का निश्चय किया। कहा जाता है कि चन्द्रगुप्त ने तक्षशिला के एक ब्राह्मण के पुत्र कौटिल्य की (जिसे चाणक्य या विष्णुगुप्त भी कहते हैं) सहायता से नंदवंश के बदनाम राजा को गद्दी से उतार ही दिया। चन्द्रगुप्त तथा नंदवंश के अन्तिम राजा के बीच चला संघर्ष मिलिन्दपञ्हो, मुद्राराक्षस, महावंशटीका तथा जैन-परिशिष्टपर्वन् में मिलता है। मिलिन्दपञ्ह[3] में लिखा है कि उस समय नन्द की सेना का कमाण्डर भद्दसाल था। काफी ख़ून-खच्चर के बाद नन्द की सेना परास्त हुई। मिलिन्दपञ्हो में इस लड़ाई का वर्णन बड़े ही अतिशयोक्तिपूर्ण ढंग से मिलता है।

सिंहासनारूढ़ होने के कुछ समय बाद चन्द्रगुप्त ने सिकन्दर के सेनापतियों[4] से युद्ध छेड़ा और सबको पराजित कर दिया।

मौर्य-सम्राट् चन्द्रगुप्त को नंदवंश के उन्मूलन तथा पंजाब की मुक्ति का ही श्रेय नहीं मिला; बल्कि प्लूटार्क[5] ने लिखा है कि चन्द्रगुप्त ने ६ लाख की सेना लेकर समूचे भारत को अपने साम्राज्य का अंग बना लिया। जस्टिन[6] के कथनानुसार भी

---

[1] *Life of Alexander*, lxii.

[2] संग्रामसिंह के व्यवहार के लिए देखिये टॉड-कृत 'राजस्थान', Vol. I, p. 240, n (२); A. S. Beveridge कृत 'बाबरनामा' (अंग्रेज़ी में), Vol. II. p. 529.

[3] *SBE*, Vol. XXXVI, p. 147.

[4] देखिए, स्मिथ-कृत 'अशोक', तृतीय संस्करण, p. 14 n; सत्ता ग्रहण करने तथा नायकों से युद्ध करने की वास्तविक तिथियों के लिए देखिये, *Indian Culture*, II, No. 3, pp. 559 ff; *Age of the Nandas and Mauryas*, p. 137.

[5] *Inv Alex.*, lxii.

[6] Chap. II., *Cf. JRAS*, 1924, 666.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

समूचा भारत चन्द्रगुप्त के कब्ज़े में था। डॉ० एस० कृष्णस्वामी आयंगर ने एक जगह लिखा है कि उन्हें तमिल-ग्रन्थों में यह उल्लेख मिला है कि मौर्य लोग एक बड़ी सेना लेकर तिनवेली ज़िले की पोडियिल पहाड़ी तक पहुँचे। परणार या परमकोरनार तथा कल्लिल आत्तिरायनार भी उक्त लेखक के मत का समर्थन करते हैं। चन्द्रगुप्त की अग्रिम सेना में कोशर[1] कहे जाने वाले लड़ाकू लोग रखे जाते थे। आक्रमणकारी एलिलमलाई से होते हुए कोंकण तक गये थे (यह स्थान कन्ननोर से १६ मील दूर है)। इसके बाद कोंगु (कोयम्बटूर) की ओर चले गये। अन्त में मौर्य-सेना पोडियिल पहाड़ी (मलय ?) की ओर मुड़ गई। दुर्भाग्यवश उपर्युक्त उल्लेख में मौर्य-सेना के सेनापति का नाम नहीं दिया गया। इन उल्लेखों में 'वम्ब-मोरियर'[2] शब्द मिलता है जिसका आशय चन्द्रगुप्त मौर्य तथा उसके साथी हैं।[3]

मैसूर में प्राप्त कुछ शिलालेखों के अनुसार, उत्तरी मैसूर में भी चन्द्रगुप्त का शासन था। यह उल्लेख भी मिला है कि शिकारपुर तालुक़ के नागर-खण्ड की रक्षा मौर्यों के ज़िम्मे थी। यह क्षत्रिय-परम्पराओं[4] का पोषक क्षेत्र भी था। लेकिन, चूंकि यह उल्लेख १४वीं शताब्दी का है, इसलिए इस पर अधिक विश्वास नहीं किया जा सकता; किन्तु जब प्लूटार्क, जस्टिन, मामुलनार तथा मैसूर के शिलालेखों को एकसाथ रखकर पढ़ा जाता है तो स्पष्ट लगता है कि प्रथम मौर्य-सम्राट् ने विन्ध्य के पार के भारत के क़ाफ़ी हिस्से को अपने साम्राज्य में मिला लिया था।

चन्द्रगुप्त की दक्षिण भारत-विजय के बारे में हम चाहे जो कुछ सोचें, किन्तु इतना तो निश्चित ही है कि चन्द्रगुप्त ने पश्चिम में सौराष्ट्र तक को मगध-साम्राज्य में

---

[1] 'कोशर' के विषय में देखिए *Indian Culture,* I, p. 97ff; देखिये, कोशकार: *ANM*, 351 ff.

[2] *Beginnings of South Indian History*, p. 89; देखिये, मुद्राराक्षस, Act VI.

[3] *Camb. Hist. Ind.*, I, p. 596 में बार्नेट कहते हैं कि 'वम्ब-मोरियर' अथवा 'वर्णशंकर मौर्य' सम्भवतः कोंकणी मौर्य की एक शाखा थे। परन्तु, ऐसा कोई भी ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नहीं, जिससे सिद्ध हो सके कि कोंकण के मौर्य तमिल प्रदेश के दक्षिण में गये थे। अन्य सम्मतियों के लिए देखिये *JRAS*, 1923, pp. 93-96. कुछ तमिल विद्वानों का मत है कि मौर्यों को 'तमिलाकम' में घुसने नहीं दिया गया और वे वेंकट पर्वत तक ही पहुँच पाये (*IHQ*, 1928, p. 145)। वे कोशर से सम्बद्ध डॉ० आयङ्गर के कथन को भी अस्वीकार करते हैं। परन्तु, चन्द्रगुप्त की विजय-पताका सुदूर दक्षिण में हीरे-मोतियों से भरे देश पांड्य राज्य तक पहुँच चुकी थी, इसकी पुष्टि 'मुद्राराक्षस', अंक ३, श्लोक १९ से होती है। इससे अनुमान होता है कि मौर्यों की सत्ता हिमालय पर्वत पर गंगा से लेकर दक्षिण सागर-तट तक फैली थी। प्रो० एन० शास्त्री तमिल विवरण की आलोचना करते हैं (*ANM*, 253 f)।

[4] देखिये राइस-कृत *Mysore and Coorg frorm the Inscriptions*, p. 10. फ्लीट जैन-परम्परा को स्वीकार नहीं करते (*Ind. Ant.*, 1892, 156 ff)। देखिए, *JRAS*, 1911, 814-17.

मिला लिया था। महाक्षत्रप रुद्रदामन के जूनागढ़-शिलालेख में इस बात का उल्लेख है कि चन्द्रगुप्त के 'राष्ट्रीय' (हाई कमिश्नर) पुष्यगुप्त (वैश्य) ने प्रसिद्ध सुदर्शन झील[1] का निर्माण कराया था।

तक्षशिला से प्राप्त एक शिलालेख का उल्लेख पहले भी किया जा चुका है। इस शिलालेख में अशोक मौर्य के सर्वप्रसिद्ध विशेषण 'प्रियदर्शन' का उल्लेख है। लेकिन, यह भी याद रखना उचित ही होगा कि मुद्राराक्षस में चन्दसिरि या चन्द्रगुप्त स्वयं[2] के लिए भी 'पियदंसन' शब्द का प्रयोग हुआ है। आगे चलकर अशोक के आठवें शिलालेख़ (Rock Edict) में अशोक तथा उसके पूर्वजों के लिए समान रूप से 'देवानंपिय' शब्द आया है। इसलिए यह निष्कर्ष निकालना ग़लत न होगा कि अपने सुप्रसिद्ध पौत्र की तरह चन्द्रगुप्त को भी 'देवानंपिय पियदसि' (या प्रियदर्शन) कहा जाता रहा होगा। इसलिए यह ठीक नहीं है कि जहाँ कहीं भी 'प्रियदर्शन' शब्द मिले तथा अन्य तथ्य न दिये गये हों, वहाँ हम उस शब्द को अशोक के नाम के साथ जोड़ लें।

सेल्युकस-युद्ध

इतिहासकार जस्टिन[3] के लेखों से हम जान चुके हैं कि जिस समय चन्द्रगुप्त मौर्य सिंहासनारूढ़ हुआ, उस समय सिकन्दर-महान् का सेनापति सेल्युकस भी अपनी महानता की नींव डाल रहा था। सेल्युकस के पिता का नाम एण्टिओकोस तथा माँ का नाम लियोडाइक था। सेल्युकस का पिता सिकन्दर के पिता और मैसीडन के राजा फ़िलिप का सेनापति था। सिकन्दर की मृत्यु के बाद उसके सेनापतियों के बीच मैसीडोनियन साम्राज्य का विभाजन हो गया।

उस समय भी सेल्युकस को पूर्व में कई लड़ाइयाँ लड़नी पड़ीं। उसने सबसे पहले बेबीलोन[4] पर अधिकार किया। इस सफलता के बाद उसकी शक्ति और बढ़ी तथा उसने बैक्ट्रियनों पर विजय पाई। उसके बाद वह भारत की ओर भी बढ़ा। अप्पिआनुस[5] के कथनानुसार, सेल्युकस ने सिन्धु पार करके भारत के तत्कालीन सम्राट् चन्द्रगुप्त से युद्ध छेड़ा। बाद में चन्द्रगुप्त और सेल्युकस में मित्रता ही नहीं हो गई,

---

[1] कौटिल्य के अर्थशास्त्र में चन्द्रगुप्त के किसी मन्त्री का श्लोक दिया गया है, जिसके आधार पर कहा जाता है कि सम्भवतः उसका राज्य उत्तर में हिमालय पर्वत से लेकर दक्षिण में सागर-तट तक फैला था।

[2] देखिये, Act. VI.

[3] वॉटसन का अनुवाद, p. 143.

[4] सेल्युकस को बेबीलोन का क्षत्रप सर्वप्रथम ३२१ ई० पू० में, त्रिपरादेसोस-सन्धि के अनुसार, फिर ३२१ ई० पू० में जब से उसका सम्वत् चला, मिला था; और ३०६ ई० पू० में उसने राजा की उपाधि धारण की (*Camb. Anc. Hist.*, VII, 161; *Camb. Hist Ind.*, I, 433)।

[5] *Syr.*,55; *Ind. Ant.*, Vol. VI, p. 114; हल्ट्ज़, xxxiv.

वरन् उनके बीच वैवाहिक सम्बन्ध[१] भी स्थापित हो गया। जस्टिन के कथनानुसार, चन्द्रगुप्त से सन्धि करके और अपने पूर्वी राज्य को शान्त करके सेल्युकस एण्टीगोनोस से युद्ध (३०१ ई० पू०) करने चला गया। प्लूटार्क ने लिखा है कि चन्द्रगुप्त ने सेल्युकस को ५०० हाथी दिये। इतिहासकार स्ट्रैबो[२] ने भी कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्य प्रस्तुत किये हैं—

"उन दिनों भारतीय सिन्धु नदी के आसपास रहते थे। यह भाग पहले ईरानी राज्य के अन्तर्गत था। सिकन्दर ने इस भूभाग की ईरानी अधीनता समाप्त करके उसे अपने राज्य के सूबों के रूप में संगठित किया। किन्तु, सैण्ड्रोकोट्टस (चन्द्रगुप्त) से वैवाहिक सम्बन्ध के फलस्वरूप सेल्युकस ने इन प्रान्तों को उसे दे दिया; और बदले में ५०० हाथी प्राप्त किये। इस प्रकार अब ऐरियाना (ईरान के अधीनस्थ) का अधिकांश भाग भारतीयों को मिल गया, जो उन्होंने यूनानियों से प्राप्त किया।"[३]

पुराने ग्रन्थकार हमें सेल्युकस और चन्द्रगुप्त की लड़ाई का कोई विशेष विवरण नहीं देते। वे केवल लड़ाई का परिणाम बताते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि आक्रमणकारी (सेल्युकस) आगे नहीं बढ़ सका और उसने चन्द्रगुप्त से हुई सन्धि को वैवाहिक सम्बन्ध से और अधिक पुष्ट कर लिया। अपनी 'अशोक'[४] नामक पुस्तक में डॉ० स्मिथ ने कहा है कि सीरियाई राजा ने चन्द्रगुप्त के साथ अपनी लड़की की शादी की थी. इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। केवल वैवाहिक सम्बन्ध की बात का ही उल्लेख मिलता है। चन्द्रगुप्त को सिन्धु का जो समीपवर्त्ती भूभाग मिला है, उसे कह सकते हैं कि वर को दहेज में दिया गया होगा। ये प्रान्त पहले ईरानी साम्राज्य के अन्तर्गत थे, किन्तु टार्न ने इस तथ्य की उपेक्षा कर दी है। इसके बदले में मौर्य-सम्राट् ने बहुत थोड़ा ही (५०० हाथी) दिया। ऐसा विश्वास किया जाता है कि सीरिया के राजा ने चन्द्रगुप्त को चार प्रान्त एरिया, अरकोसिया, गेड्रोसिया तथा परोपनिसदाई, अर्थात् हेरात, कन्दहार, मकरान और क़ाबुल दिये। टार्न तथा कुछ अन्य लेखकों ने इस पर सन्देह प्रकट किया है। फिर भी अशोक के शिलालेखों से सिद्ध होता है कि क़ाबुल की घाटी मौर्य-साम्राज्य के ही अन्तर्गत थी। इन लेखों के अनुसार, योन तथा गन्धार भी मौर्य-साम्राज्य के ही अंग थे। स्ट्रैबो ने भी लिखा है कि सेल्युकस ने सिन्ध नदी के समीपवर्त्ती भागों के अलावा भी बहुत बड़ा भूभाग चन्द्रगुप्त को दिया है।

---

[१] अप्पियानुस स्पष्ट रूप से 'केदोस' (वैवाहिक सम्बन्ध) का प्रयोग करता है, जबकि स्ट्रैबो (XV) केवल संकेत करता है। 'विवाह के बाद वे देश मिले' से स्पष्ट है कि विवाह हुआ था।

[२] H. & F., III, p. 125.

[३] H. & F., III, p. 78 ; Tarn, *Greeks in Bactria and India*, p. 100.

[४] तृतीय संस्करण, p. 15.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मेगास्थनीज

प्राचीन ग्रन्थकारों के अनुसार, युद्ध के बाद सीरियाई राजा तथा भारतीय सम्राटों के सम्बन्ध बड़े ही मैत्रीपूर्ण रहे। एथेनेओस कहता है कि चन्द्रगुप्त ने सीरियाई राजा[1] के पास उपहार में कई कामोद्दीपक सामग्रियाँ भेजीं। सेल्युकस ने चन्द्रगुप्त के दरबार में अपने एक राजदूत मेगास्थनीज़ को भेजा। एरियन[2] के अनुसार, मेगास्थनीज़ अरकोशिया (सम्भवतः कन्धार) का ही था। वहाँ से उसे पाटलिपुत्र भेज दिया गया, जहाँ वह मौर्य-सम्राट् से प्रायः मिला करता था। मेगास्थनीज़ ने भारत का एक इतिहास भी लिखा। उसकी इतिहास की पुस्तक लापता हो गई, किन्तु उसके कुछ अंश जो इधर-उधर बिखरे मिले, उन्हें शावनबेक ने संकलित किया तथा मैक्रिन्डल ने उसका अंग्रेज़ी में अनुवाद किया। स्ट्रैबो, एरियन, डायोडोरस जैसे महान् इतिहासकारों ने मेगास्थनीज़ द्वारा लिखे इन फुटकर अंशों का प्रायः उद्धरण के रूप में प्रयोग किया है। प्रोफ़ेसर रीज़ डेविड्स ने लिखा है कि मेगास्थनीज़ में समीक्षा की बुद्धि कम थी, इसलिए उसके निष्कर्ष आलोचनात्मक नहीं थे। वह दूसरों से प्राप्त जानकारी पर निर्भर करके गुमराह हो जाता था। लेकिन जो बातें उसने अपनी आँखों से देखीं, उनका वह सबसे सच्चा साक्षी बना है। रीज़ डेविड्स के मतानुसार, मेगास्थनीज़ के इतिहास का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंश है पाटलिपुत्र का वर्णन। इस विवरण को एरियन ने अपनी पुस्तक इण्डिका के दसवें अध्याय में उद्धृत किया है।

"पालिम्बोथ्र भारत का सबसे बड़ा नगर था, और यह एरनबाओस[3] (सोन नदी) तथा गंगा के संगम पर था। एरनबाओस भारत की तीसरे नम्बर की नदी थी।.......मेगास्थनीज़ के कथनानुसार, यह शहर साढ़े नौ मील (८० स्टेड) लम्बा तथा पौने दो मील (१५ स्टेड) चौड़ा था। नगर के चतुर्दिक् ६०६ फ़ुट चौड़ी तथा ३० क्यूबिक गहरी खाई थी। नगर की चहारदीवारी में ५७० बुर्ज और ६४ दरवाजे थे।"[4]

मौर्य-साम्राज्य के अन्तर्गत पाटलिपुत्र के अलावा भी कई बड़े नगर थे। एरियन कहता है कि उस समय नगरों की अधिकता से इनकी संख्या ठीक-ठीक नहीं बताई जा सकती। जो नगर नदियों या समुद्र के तट पर होते थे, उनमें घर प्रायः लकड़ी के होते थे, क्योंकि यदि यहाँ घर ईंटों के बनाये जाते तो अधिक दिनों तक चल न पाते। इसका मुख्य कारण यह था कि जब नदियों में बाढ़ आती थी तो पानी मैदानों में भी फैल जाता था। लेकिन, महत्त्वपूर्ण स्थानों के नगर काफ़ी ऊँचाई पर

---

१. देखिये *Inv. Alex.*, p. 405 ; स्मिथ, *EHI*, चतुर्थ संस्करण, p. 153; चन्द्रगुप्त तथा सेल्युकस के बीच जो सम्बन्ध स्थापित हुआ, उसका फल आगे वालों को मिला। बिम्बिसार तथा अशोक के समय में पश्चिम की यूनानी शक्ति के साथ न केवल राजदूतों का आदान-प्रदान हुआ, वरन् यहाँ के राजाओं ने उत्सुकतापूर्वक यूनान के दार्शनिकों तथा शासकों की सहायता भी ली।

२. देखिये Chinnock द्वारा किया गया अनुवाद, p. 254.

३. एरनबाओस = हिरण्यवाह, अर्थात् शोण (हर्षचरित, पारब द्वारा सम्पादित, 1918, p. 19)। देखिये 'अनुशोणम् पाटलिपुत्रम्' (पतञ्जलि, II, 1. २)। तमिल साहित्य में पाटलिपुत्र के सम्बन्ध में देखिये, *Aiyangar Com. Vol.*, 355 ff.

४. देखिये पतञ्जलि, IV. 3. 2—**पाटलिपुत्रकाः प्रासादः पाटलिपुत्रकाः प्रकारा इति।**

ईंट और गारे से बनाये जाते थे। राजधानी के अलावा तक्षशिला, उज्जैन, कौशाम्बी तथा पुण्ड्रनगर[1] चन्द्रगुप्त-काल के सबसे महत्त्वपूर्ण नगर थे।

इतिहासकार एलियन चन्द्रगुप्त के राजमहल का विवरण देते हुए कहता है—"भारतीय (मौर्य-साम्राज्य के) राजमहल[2] में देश के महानतम् शासक निवास करते हैं। इसके अलावा भी कई बातें हैं, जिनसे राजमहल की सराहना करने को जी चाहता है। इसकी शान-शौक़त का मुक़ाबला न तो 'सुस' और न 'एकबतन' ही कर सकते हैं। इसके अलावा भी अनेक आश्चर्यमूलक बातें हैं। उपवनों में पालतू मोर और तोता कल्लोल करते रहते हैं। यहाँ पर सर्वत्र घने-घने कुंज तथा हरे-भरे मैदान हैं। वृक्षों की डालें एक-दूसरे से गुँथी हुई-सी लगती हैं। कुछ वृक्ष मूलतः इसी देश के हैं और कुछ बाहर से लाये गये हैं। इनके समन्वय से समूचे भूभाग का सौन्दर्य बढ़ जाता है। तोतों को देखकर तो ऐसा लगता है जैसे कि यह देश उन्हीं का है। वे राजाओं के इर्द-गिर्द मँडराते और उड़ानें भरते रहते हैं। यद्यपि यहाँ ये तोते बहुत अधिक होते हैं, तो भी कोई भी भारतीय इनका मांस नहीं खाता। शिकारी लोग भी इनका सम्मान करते हैं, क्योंकि यही एक ऐसा पक्षी होता है जो मनुष्य की बोली का अनुकरण कर सकता है। राजमहल के मैदानों में बड़े-बड़े सरोवर हैं, जिनमें बड़ी-बड़ी मछलियाँ पाली जाती हैं। इन तालाबों में केवल राजा के छोटे-छोटे बच्चे ही मछली मार सकते हैं बाक़ी लोग नहीं। राजमहल के ये नन्हे-नन्हे राजकुमार शान्त सरोवरों में मछली मारने तथा नौका-विहार सीखने में बहुत प्रसन्नता का अनुभव करते हैं।"[3]

सम्भवतः मौर्य-साम्राज्य का राजप्रासाद आजकल के गाँव कुम्रहार[4] के समीप था। कुम्रहार गाँव के पास जो खुदाई हुई, उससे पता चला है कि मौर्यों का सिंहासन-कक्ष उसी ढाँचे का था, जिस ढाँचे का बादशाह डैरियस का। इसी आधार पर

---

[1] पुण्ड्रनगर बंगाल के बोगरा ज़िले में महास्थानगढ़ का नाम था। मौर्यकाल में ब्राह्मी-लेख से भी इसकी पुष्टि होती है। यह लेख महास्थान में ही पाया गया है। पुण्डनगल, तथा यहाँ के कोष गण्डकों तथा काथनिकों से भरे थे, इसका उल्लेख मिलता है; तथा उसमें सड्वगिका जाति का भी उल्लेख है (बरुआ, *IHQ*, 1934, March, 57 ff; डी० आर० भण्डारकर, *EP. Ind.*, April, 1931, 83 ff; पी० सी० सेन, *IHQ*, 1933, 722 ff)। डॉ० भण्डारकर सड्वगिका के स्थान पर उसे 'स (म्) व (म्) गीय' पढ़ते हैं। यदि लेख वास्तव में मौर्य-काल के प्रारम्भिक दिनों का है तो मुद्राओं का उल्लेख मज़ेदार है। डॉ० के० पी० जायसवाल के अनुसार, मौर्य-काल की मुद्राओं में कुछ चिह्न हैं, जिनसे उन्हें पहचाना जा सकता है (*JRAS*, 1936, 437 ff)।

[2] सुगांग महल में चन्द्रगुप्त को ठहरना प्रिय था (*JRAS*, 1923, 587)।

[3] देखिये मैक्रिडल का *Ancient India as Described in Classical Litt.*, pp. 141-42.

[4] स्मिथ, *The Oxford History of India*, 77; Macphail, अशोक, pp. 23-25.

डाक्टर स्पूनर इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि मौर्य लोग जस्तुत (Zoroastrians) थे।[१] डॉक्टर स्मिथ के अनुसार, मौर्य-कालीन इमारतों और ईरानी इमारतों की समानता संदिग्ध है। प्रोफ़ेसर चन्दा के अनुसार, किसी देश की भवन-निर्माण-कला उस जाति की कसौटी नहीं होती। विशेषज्ञों का कहना है कि बादशाह डैरियस की इमारतें फ़ारसी ढंग की नहीं थीं। वे बेबीलोनियन डिज़ाइन की थीं तथा उन पर यूनान, मिस्र और एशिया माइनर की कला का भी प्रभाव था।

स्ट्रैबो[२] के अनुसार, मौर्य-सम्राट् हमेशा राजप्रासाद के अन्दर महिला-पहरेदारों[३] के पहरे में रहता था (स्त्री गणैर्धन्विभिः—अर्थशास्त्र से उद्धृत)। वह केवल चार अवसरों पर जनता के सामने आता था—युद्ध के समय, दरबार में न्यायाधीश के रूप में, बलिपूजा के समय, तथा शिकार खेलने के लिए जाते समय।

चन्द्रगुप्त का शासन

चन्द्रगुप्त एक बड़ा योद्धा या विजेता ही नहीं था, वरन् एक महान् प्रशासक भी था। चन्द्रगुप्त के दरबार में रहने वाले यूनानी राजदूत मेगास्थनीज़ ने उसके शासन-प्रबन्ध के बारे में काफ़ी विवरण दिया है। विद्वान् राजदूत द्वारा दिये गये विवरण की पुष्टि चन्द्रगुप्त के पौत्र अशोक के शिलालेखों तथा उनके मंत्री कौटिल्य द्वारा लिखे गये अर्थशास्त्र से भी होती है। अर्थशास्त्र का अस्तित्व निश्चित रूप से बाण तथा जैनों के नन्दिसूत्र (सातवीं शताब्दी) के पूर्व था। किंतु उसके वर्त्तमान स्वरूप को देखते हुए सन्देह होता है कि यही अर्थशास्त्र चन्द्रगुप्त के समय में भी था अथवा नहीं। हमें इस बात को भी ध्यान में रखना चाहिए कि प्राचीन संस्कृत साहित्य में चीन-पट्ट (चीनी रेशम) का जो उल्लेख मिलता है, वह मौर्यकाल के बाद की किसी तिथि का है, क्योंकि मौर्य-काल के आरम्भ में चीन देश कल्पना से बाहर की वस्तु था। चीन का उल्लेख नागार्जुनिकुण्ड के पूर्व अनुपलब्ध था। हमें एक अन्य महत्त्वपूर्ण तथ्य की ओर भी ध्यान देना चाहिये। वह यह कि अर्थशास्त्र की रचना के समय संस्कृत राजभाषा थी, परन्तु मौर्य-काल में संस्कृत राजभाषा नहीं थी। चूंकि मुद्राओं एवं बाँटों से सम्बन्धित विवरण में डिनेरियस की चर्चा नहीं है, अतः हम इस बात की कल्पना कर सकते हैं कि इसकी रचना गुप्त-काल में हुई थी। गुप्त-काल में लिखे गये जैन-ग्रन्थों में भी कौटिल्य के अर्थशास्त्र के बारे में जो चर्चा आई है, वह भी उपर्युक्त दृष्टि से अनुकूल ही है। अर्थशास्त्र दूसरी शताब्दी से पूर्व[४] का ग्रन्थ है, इस सम्बन्ध में

---

[१] *JRAS*, 1915, pp. 63 ff, 405 ff.

[२] देखिये, हैमिल्टन एवं फाल्कनर का अनुवाद, Vol. III, p. 106; स्मिथ, *EHI*, तृतीय संस्करण, p. 123.

[३] इसी लेखक के अनुसार, स्त्रियों को उनके पिता से मोल ले लिया जाता था। परन्तु, मेगास्थनीज़ के अनुसार, कोई भी भारतीय दासों को नहीं रखता था। इस सम्बन्ध में यह कथा भी उल्लेखनीय है कि बिम्बिसार ने अन्तियोको से प्रार्थना की थी कि वह उनके लिए एक प्राध्यापक खरीद कर भेज दे। (Monahan, *The Early History of Bengal*, pp. 166, 176, 179)।

[४] P. 9 f. *ante.*

पहले ही प्रमाण दिये जा चुके हैं। वैसे, यद्यपि यह कुछ देर का ग्रन्थ है, पर विभिन्न स्रोतों में उपलब्ध सामग्री की पुष्टि करने में इसका प्रयोग वैसे ही किया जा सकता है जैसे कि रुद्रदामन के जूनागढ़-शिलालेखों का प्रयोग होता है।

सर्वोच्च शासन के दो प्रमुख अंग थे—

१. राजा, और

२. महामात्र, अमात्य अथवा सचिव।

राजा पूरे राज्य का प्रधान शासक होता था। यद्यपि वह मर्त्य या नाशवान् माना जाता था, किन्तु ईश्वर[1] से वरदान-प्राप्त तथा उसका प्रियपात्र समझा जाता था। राजा राज्य के सभी भौतिक साधनों का अधिष्ठाता तथा साम्राज्य के समूचे भूभाग का स्वामी होने के कारण बड़ा ही सत्ता-सम्पन्न या शक्तिमान् होता था। लेकिन, उस समय कुछ प्राचीन नियम (पोराणा-पकिती) होते थे जिनका सम्मान स्वेच्छाचारी से स्वेच्छाचारी राजा को भी करना पड़ता था; और वह करता था। जनता या प्रजा भी राज्य की महत्त्वपूर्ण इकाई (अंग) मानी जाती थी। प्रजा-रूपी शिशु के पालन के लिए राजा उत्तरदायी होता था और राजा द्वारा देश की सरकार के सुसंचालन से ही इस कर्त्तव्य का पूरा होना माना जाता था। जहाँ तक स्थानीय शासन-व्यवस्था का प्रश्न है, उसमें कुछ हद तक विकेन्द्रीकरण भी था। समूचे साम्राज्य की राजधानी तथा प्रान्तों के प्रमुख केन्द्रों में कुछ मंत्रियों की एक परिषद् रहती थी जिसमें समय-समय पर विचार-विमर्श होता रहता था। संकट-काल में इन लोगों से सलाह-मशविरा अनिवार्य हो जाता था; तथा इन मंत्रियों का अधिकार भी था कि इनसे सलाह ली जाय। यों राजा के अधिकार व्यापक होते थे—उसके सैनिक, न्यायिक, वैधानिक तथा कार्यकारी (military, judicial, legislative and executive) कर्त्तव्य होते थे। हम पहले ही देख चुके हैं कि युद्ध[2] के समय भी राजा अपने राजमहल से बाहर निकलता था। वह अपने प्रधान सेनापति[3] के साथ सामरिक दांव-पेंच पर विचार-विमर्श करता था।

राजा अपने दरबार के समय न्यायिक कर्त्तव्यों का भी पालन करता था, और इसमें किसी तरह का कोई व्यवधान पसंद नहीं करता था। शरीर में खुजलाहट होने पर चार अनुचर[4] उसके शरीर को लकड़ी के टुकड़ों से खुजलाते थे, और वह अपना काम करता जाता था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र[5] में कहा गया है कि "जब राजा दरबार में बैठा हो तो प्रजा से बाहर प्रतीक्षा नहीं करवानी चाहिये, क्योंकि जब राजा प्रजा के लिए दुर्लभ हो जाता है और अपना काम अपने मातहत अधिकारियों के ज़िम्मे छोड़

---

[1] देखिये, *ante*, 198n. 10.

[2] देखिये स्ट्रैबो XV, i; कौटिल्य, अर्थशास्त्र, X.

[3] कौटिल्य, अर्थशास्त्र, p. 38. मौर्य-काल के अंतिम दिनों में हमने देखा कि सेनापति राजा पर छा गया था, तथा सेना के समस्त अधिकार अपने हाथ में केन्द्रित कर लिये थे।

[4] H. & F., स्ट्रैबो, III, p. 106-107.

[5] शाम शास्त्री द्वारा अनुवाद, p. 43.

देता है तो प्रजा की अवस्था के समाप्त हो जाने तथा राजा के शत्रुओं के षड्यन्त्र-जाल में फँस जाने की आशंका पैदा हो जाती है। इसलिए देवताओं, प्राचीन विचारवालों, वेदों के विद्वान् ब्राह्मणों, तीर्थस्थानों, नाबालिगों, वृद्धों, पीड़ितों, असहायों तथा स्त्रियों से सम्बन्धित जो कर्त्तव्य हों, उन्हें राजा स्वयं पूरा करे; और सभी कुछ कार्य की अनिवार्यता तथा वरीयता के आधारपर करे।"

जहाँ तक राजा के संवैधानिक कर्त्तव्यों का प्रश्न है, कौटिल्य के अर्थशास्त्र[1] में राजा को धर्म-प्रवर्त्तक कहा गया है। 'राजशासन' को शासन-व्यवस्था (क़ानून) का स्रोत माना गया है। चन्द्रगुप्त के पौत्र अशोक के शिलालेखों को 'राजशासन' के उद्धरणों की संज्ञा दी जा सकती है।

राजा के कार्यकारी (executive) कर्त्तव्यों की चर्चा में विद्वानों ने आय-व्यय की जाँच करने और संतरियों, मंत्रियों, पुरोहितों व निरीक्षकों की नियुक्ति को राजा का ही कार्य कहा है। वह शासन-सम्बन्धी रहस्यों पर मंत्रि-परिषद् से पत्र-व्यवहार करता था। गुप्तचरों की नियुक्ति करता था तथा विभिन्न देश के राजदूतों का स्वागत करता था।[2]

राजा ही राज्य की नीति के सिद्धान्त निर्धारित करता और अपने अधिकारियों को राजाज्ञाओं द्वारा समय-समय पर निर्देश दिया करता था। प्रजा के नाम भी उसकी राजाज्ञाएँ जारी होती थीं। चन्द्रगुप्त के समय में गुप्तचरों के माध्यम से दूरस्थ शासन कर रहे अधिकारियों पर सम्राट् का पूरा नियन्त्रण रहता था। अशोक के समय में पर्यटक न्यायाधीशों से इस कार्य में सहायता ली जाती थी। संचार-व्यवस्था के संचालन के हेतु सड़कें थीं। सामरिक महत्त्व की जगहों पर सेना की टुकड़ियाँ तैनात रहा करती थीं।

कौटिल्य का दृढ़ मत था कि राजत्व (प्रभुता) केवल सत्रों की सहायता[3] से ही संभव है। सिर्फ़ एक पहिया कभी नहीं चल सकती। इसलिए राजा को सचिव की नियुक्ति करनी चाहिये, तथा उनसे मन्त्रणा लेनी चाहिये। ये सचिव तथा अमात्य कदाचित् वही लोग हैं जिन्हें मेगास्थनीज़ ने 'सातवीं जाति' की संज्ञा दी है। ये लोग प्रजा-सम्बन्धी राजा के निर्णयों में राजा की सहायता करते थे। यद्यपि इस वर्ग के लोग बहुत थोड़े ही होते थे, किन्तु व्यावहारिक तथा न्यायिक बुद्धि में वे सबसे बढ़कर होते थे।[4]

---

१. Bk, III, Chap. I.

२. देखिये, **कौटिल्य,** Bk I, Chap. xvi, xvii; Bk. VIII, Chap. I. देखिये अशोक-शिलालेख, No. III; V (उच्च अधिकारियों की नियुक्ति), VI (परिषद् से सम्बन्ध तथा पटिवेदका से सूचना प्राप्त करना) तथा XIII (विदेश के साथ कूटनीतिक सम्बन्ध स्थापित करना)।

३. देखिये मनु, VII, 55.

४. Chinnock, *Arrian*, p. 413.

सचिवों तथा मन्त्रियों में महामन्त्री लोग (High Ministers) उच्च माने जाते थे। अशोक के शिलालेखों में शायद इन्हें महामात्र कहा गया है तथा डायोडोरस[1] ने इन्हें राजा का सलाहकार बताया है।

इन लोगों का चयन अमात्य-वर्ग के बीच से किया जाता था। इनके चरित्र[२] की जाँच भी की जाती थी कि ये लोग किसी लालच में तो नहीं फसेंगे। इस वर्ग को सबसे ऊँचा वेतन दिया जाता था। इनका वार्षिक वेतन ४८ हज़ार पण[३] होता था (जो आजकल के हिसाब से लगभग ४ हज़ार रुपये प्रति मास होगा)। विभिन्न विभागों में काम करने वाले अमात्यों[४] के चरित्र की जाँच करने में उपर्युक्त महामंत्री लोग सहायता करते थे। हर प्रकार की प्रशासकीय कार्यवाही पर पहले तीन या चार मंत्रियों[५] से विचार-विमर्श कर लिया जाता था। संकट के समय (आत्ययिके कार्ये) मंत्रियों के साथ-साथ पूरी मंत्रि-परिषद्[६] की बैठक बुलाई जाती थी। ये लोग युवराजों[७] पर भी थोड़ा-बहुत नियंत्रण रखते थे, राजा के साथ युद्धक्षेत्र में जाते थे और सैनिकों को उत्साहित करते थे।[८] ऐसे मंत्रियों में कौटिल्य प्रमुख थे। दूसरा मंत्री (प्रदेष्ट्रि) सम्भवतः मनियतप्पो था। यह जाटिलियन था। राजा लुटेरों[९] का उन्मूलन करके साम्राज्य के विभिन्न क्षेत्रों को शान्ति का वरदान देता था और मंत्री मनियतप्पो इस कार्य में राजा की सहायता करता था। "मन्त्रिणः" शब्द के प्रयोग से पता चलता है कि मन्त्रियों (महामन्त्री) की संख्या एक से अधिक भी हुआ करती थीं।

मंत्रियों के अलावा एक मंत्रि-परिषद् भी होती थी। मंत्रि-परिषद् का अस्तित्व मौर्य-संविधान का एक मुख्य तत्त्व था, अशोक के शिलालेखों[१०] से भी यह सिद्ध होता है। मंत्रि-परिषद् के सदस्य तथा मंत्री लोग समान नहीं थे। कौटिल्य के अर्थशास्त्र के कुछ अनुच्छेदों में मंत्रियों तथा मंत्रि-परिषद् के बीच अन्तर बताया गया है। मंत्रि-परिषद्

---

[१] II. 41.

[२] अर्थशास्त्र, 1919, p. 17; उपधा के सम्बन्ध में स्कन्दगुप्त का जूनागढ़ पर्वत का लेख भी देखिये।

[३] कौटिल्य, p. 247 ; स्मिथ (*EHI*, चतुर्थ संस्करण, p. 149) के अनुसार चांदी के एक पण का मूल्य १ शिलिंग से अधिक नहीं था।

[४] *Ibid.*, p. 16.

[५] *Ibid.*, p. 29 ; देखिये अशोक-शिलालेख, VI.

[६] *Ibid.*, p. 26. 28.

[७] *Ibid.*, p. 333.

[८] *Ibid.*, p. 368; देखिये शाब का उदयगिरि-लेख।

[९] देखिये, टर्नर का महावंश, p. xlii. यह प्रमाण बाद का है।

[१०] इस सम्बन्ध में प्लिनी का वर्णन उल्लेखनीय है। उसके अनुसार, अमीर तथा धनी वर्ग के लोग राजा के साथ परिषद् में बैठते थे (Monahan, *The Early History of Bengal*, 148); देखिये महाभारत, iii, 127. 8. आमत्य-परिषद्; xii, 320, 139 आमत्य-समिति।

का दर्ज़ा कुछ कम था । मंत्रियों का वेतन ४८ हज़ार पण तथा मंत्रि-परिषद्[१] के सदस्यों का वेतन १२ हज़ार पण वार्षिक होता था । मामूली अवसरों पर इनसे राय नहीं ली जाती थी, किन्तु 'आत्ययिक कार्य'[२] के लिए मंत्रियों के साथ परिषद् के सदस्य भी बुलाये जाते थे । राजा बहुमत (भूयिष्ठाः) के निर्णय से कार्य करता था । राजदूतों के स्वागत[३] के समय भी ये लोग उपस्थित रहते थे । एक अनुच्छेद में "**मंत्रि-परिषदं द्वादशामात्यान् कुर्वीत**'—मंत्रि-परिषद् में १२ अमात्य होने चाहिये—लिखा मिलता है । इससे लगता है कि परिषद् के लिए सभी प्रकार के अमात्यों के बीच से चयन किया जाता था । कौटिल्य राजा के लिए छोटी परिषद् (क्षुद्र परिषद्)[४] नहीं चाहता था । वह 'मानव', बार्हस्पत्य व औशनस के दृष्टिकोणों को भी ठीक नहीं समझता था । वह बड़ी (अक्षुद्र) परिषद् के साथ-साथ 'इन्द्र-परिषद्' (एक सहस्र ऋषियों की परिषद्) भी चाहता था । इससे निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कौटिल्य ने एक उदीयमान् साम्राज्य की आवश्यकताओं का विशेष ध्यान रखा है । यह परिषद् निश्चय ही चन्द्रगुप्त की थी जिसे उसके सलाहकारों ने बड़ी परिषद्[५] के गठन की सलाह दी थी ।

मंत्रियों तथा मंत्रि-परिषद् के अलावा भी अमात्यों का एक वर्ग और होता था जो प्रशासकीय एवं न्यायिक[६] स्थानों की पूर्त्ति करता था । कौटिल्य के अर्थशास्त्र[७] में कहा गया है कि धार्मिक कसौटी से शुद्ध किये गये (धर्मोपधा शुद्ध) अमात्य को फ़ौजदारी[८] तथा दीवानी[९] अदालतों का काम सौंपना चाहिये । धन की कसौटी से शुद्ध किये गये (अर्थोपधा शुद्ध) अमात्य को वित्त, गृह या भंडार-मंत्री[१०] बनाया जाना

---

१. देखिये, p. 20, 29, 247.

२. अर्थशास्त्र, 29; महाभारत, iv, 30. 8; अशोक का शिलालेख, VI.

३. अर्थशास्त्र, p. 45.

४. P. 259.

५. दिव्यावदान, p. 372 में चन्द्रगुप्त मौर्य के पुत्र और उत्तराधिकारी बिन्दुसार के ५०० मंत्रियों (पंचामात्यशतानि) का उल्लेख मिलता है । पतञ्जलि 'चन्द्रगुप्त-सभा' का उल्लेख करता है, परन्तु हमें इसके विधान आदि का पता नहीं है ।

६. रुद्रदामन-प्रथम के जूनागढ़-शिलालेख में देखिये 'कर्म-सचिव' का उल्लेख ।

७. P. 17. देखिये मैक्रिंडल-कृत *Megasthenes and Arrian*, 1926, 41, 42.

८. फ़ौजदारी न्यायालय (कंटक-शोधन) में ३ अमात्य अथवा ३ प्रदेष्ट्रि होते थे । प्रदेष्ट्रि के कार्यों की व्याख्या आगे की जायेगी ।

९. दीवानी न्यायालय (धर्मस्थीय) संग्रहण (१० ग्रामों के बीच) के नगरों में खोले गए थे । साथ ही इस प्रकार के न्यायालय द्रोणमुख (४०० ग्रामों के मध्य), स्थानिय (८०० ग्रामों के बीच) तथा ऐसे स्थानों में जहाँ ज़िले मिलते थे (जनपद-सन्धि ?) भी पाये जाते थे । इनमें ३ धर्मस्थ तथा ३ अमात्य हुआ करते थे ।

१०. इन अधिकारियों के कर्त्तव्यों के सम्बन्ध में कौटिल्य का अर्थशास्त्र, Bk. II, 5-6, 35; Bk. IV. 4; Bk. V. 2 देखिये । मौर्यों के शासन-काल में राजस्व के लिए घोषालकृत *Hindu Revenue System*, pp. 165 ff. देखिये ।

चाहिये। प्रेम (या वासना) की कसौटी पर शुद्ध किये गये (कामोपधा शुद्ध) अमात्य को क्रीड़ा-केन्द्रों का निरीक्षक बनाया जाना चाहिये। भय की कसौटी पर शुद्ध किये (भयोपधा शुद्ध) अमात्य को 'आसन्न कार्य' के लिए नियुक्त किया जाना चाहिये। जो इन कसौटियों पर खरे न उतरें, उन्हें खान, लकड़ी और हाथियों के जंगल[1] व कारख़ानों, वग़ैरह में नौकरी देनी चाहिये। जिन अमात्यों की परीक्षा नहीं हुई रहती थी, उन्हें सामान्य विभागों में ही रखा जाता था। अमात्य-पद के लिए अपेक्षित योग्यता वालों (अमात्यसम्पदोपेत) की नियुक्ति 'निसृष्टार्थाः' (साधिकार मंत्री), लेखक, पत्राचार-मंत्री तथा अध्यक्ष या निरीक्षक के रूप में की जाती थी।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में कहा गया है कि अमात्यों को कार्यकारी या न्यायिक पदों पर रखना चाहिये। अन्य ग्रन्थों से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है। स्ट्रैबो[2] ने लिखा है कि "सातवीं" जाति में राजा के सलाहकार तथा मंत्री-वर्ग के लोग आते हैं। इन लोगों के ज़िम्मे सरकारी दायित्व, अदालतों तथा समूचे प्रशासन का काम रहता था।" इतिहासकार एरियन ने भी लिखा है कि "इन्हीं लोगों में से शासकों, गवर्नरों, कोषाध्यक्षों, सेनाध्यक्षों, नौसेना के कमाण्डरों, आय-व्यय-नियंत्रकों तथा कृषि-कार्य की देखरेख करने वालों का भी चयन किया जाता था।"

कौटिल्य के प्रशासकीय ढाँचे में अध्यक्षों को बड़ा महत्त्व दिया गया है। निम्नलिखित अनुच्छेद में इतिहासकार स्ट्रैबो के एक अनुवादक ने इन अध्यक्षों को मजिस्ट्रेट[3] कहा है—

"इन मजिस्ट्रेटों में से कुछ को बाजार[4], कुछ को नगर तथा कुछ को सैन्य-व्यवस्था-सम्बन्धी[5] दायित्व सौंप दिया जाता था। इनमें से कुछ[6] मिस्र के मजिस्ट्रेटों की भाँति नदियों की देखरेख करते थे; कुछ ज़मीन की पैमाइश का काम करते थे। कुछ लोग जलाशयों के पानी पर निगाह रखते थे ताकि सब लोग समान रूप से नहर के पानी का सदुपयोग कर सकें। शिकार की देखरेख भी इन्हीं लोगों के ज़िम्मे होती थी, और ये लोग अपने कर्त्तव्य-पालन के सिलसिले में किसी को कोई पुरस्कार या दण्ड दे सकते थे। ये लोग टैक्स वसूलने के साथ-साथ भूमि, लकड़ी की कटाई, बढ़ईगीरी, पीतल के काम व खानों में काम करनेवालों की भी देखरेख करते थे। ये लोग सार्वजनिक मार्गों की देखभाल करते और मोड़ या जहाँ प्रमुख मार्ग से निकलने वाली कोई सड़क निकलती, ये वहाँ पत्थर गाड़ देते और उस पर दूरी व स्थान सम्बन्धी अपेक्षित सूचना अंकित कर देते। जिन लोगों के ज़िम्मे नगर का काम होता, वे ६ भागों में

---

१. देखिये, स्तम्भ-लेख, V में नागवन।

२. H. & F., Vol. III, p. 103; देखिये, डायोडोरस, II. 41.

३. अशोक के लेखों में एक प्रकार के अध्यक्ष, जो स्त्रियों की देखभाल करते थे, को महामात्र कहा गया है।

४. *Cambridge History of India,* I, p. 417 के अनुसार इसका अर्थ ज़िले से है।

५. देखिये, कौटिल्य, Bk. XIII, Chap. III, V में 'दुर्ग-राष्ट्र-दण्ड-मुख्य।'

६. अर्थात्, ज़िले के अधिकारी (आग्रोनोमोई)

विभाजित होते थे तथा प्रत्येक भाग में ५ सदस्य होते थे।[१] नगर के न्यायाधीशों के बाद गवर्नरों का ही पद आता था। इन लोगों के ज़िम्मे सामरिक मामलों की देख-रेख होती थी। इस वर्ग में भी ६ विभाग होते थे और प्रत्येक विभाग में ५ सदस्य होते थे।"[२]

नगर के **प्रशासन** तथा सामरिक मामलों की देखभाल करने वाले प्रशासकों को ही अर्थशास्त्र[३] में नगराध्यक्ष और बलाध्यक्ष कहा गया है। डाक्टर स्मिथ[४] का कहना है कि "राजधानी तथा सेना के मामलों से सम्बन्धित जिन बोर्डों का मेगास्थनीज़ ने उल्लेख किया है, कौटिल्य इन्हें जानता तक नहीं था। कौटिल्य ने इन विभागों के लिये भिन्न-भिन्न मन्त्रियों की नियुक्ति का सुझाव दिया है। हो सकता है कि विभिन्न बोर्डों का संगठन चन्द्रगुप्त की अपनी सूझ हो।" किन्तु, इतिहासकार ने यह नहीं सोचा कि कौटिल्य ने साफ़-साफ़ लिखा है—"**बहुमुख्यम् अनित्यम् चाधिकारिनम् स्थापयेत्।**" अर्थात्, प्रत्येक विभाग की देख-रेख के लिए अनेक अस्थायी अधिकारियों[५] की नियुक्ति की जानी चाहिए।

"**अध्यक्षाः संख्यायक-लेखक-रूपदर्शक-नोवी-ग्राहकोत्तराध्यक्ष-सखाः कर्माणि कुर्युः**"—अर्थात्, 'राजकीय निरीक्षक एकाउण्टेण्ट, क्लर्कों, सिक्के के पारखियों तथा गुप्तचरों की सहायता से अपना काम चलाते थे।' डॉक्टर स्मिथ केवल अध्यक्षों के अस्तित्व को ही मान्यता देते हैं, उत्तराध्यक्षों तथा अन्यों की उपेक्षा की हैं। जहाँ तक **अर्थशास्त्र** का प्रश्न है, स्मिथ ने उसमें केवल अध्यक्षों तथा अन्य ग्रन्थों से केवल मण्डलों (boards) को ही माना है। इसके अलावा स्मिथ ने उन प्रधानों की उपेक्षा की है, जिनका उल्लेख निम्न अनुच्छेदों[६] में आता है—

---

[१] प्रत्येक समिति निम्नलिखित विभागों की देखभाल करती थी—जैसे (१) कला-कौशल; (२) विदेश-सम्बन्ध; (३) जन्म एवं मृत्यु का लेखा-जोखा; (४) व्यापार तथा नाप-तौल की व्यवस्था; (५) तैयार माल की देखभाल तथा उसके विक्रय का प्रबन्ध; तथा (६) बिक्री-कर। सामूहिक रूप से वे सार्वजनिक भवनों, बाज़ारों, बन्दरगाहों तथा मंदिरों की देखभाल करते थे। वे ही मूल्य निर्धारित करते थे।

[२] प्रत्येक बोर्ड निम्नलिखित विभागों की देखभाल करता था—जलसेना, रसद आदि; पैदल सेना; अश्वारोही सेना, रथ तथा हाथी। महाभारत के शान्तिपर्व में इन बोर्डों की संख्या ६ (CIII. 38) अथवा ८ (LIX. 41-42) दी गई है।

"रथ, हाथी, अश्व, पैदल, भारवाहक, जलयान, गुप्तचर तथा स्थानीय मार्ग-दर्शक—ओ कुरु के उत्तराधिकारी सुनो! ये आठ सेना के अंग कहे जाते हैं।"

[३] देखिये, मैसूर-संस्करण, 1919, p. 55—"**नगर-धान्य-व्यावहारिक-कार्मान्तिक-बलाध्यक्षाः।**" देखिये महाभारत, V. 2. 6—बलप्रधान तथा निगमप्रधानाः।

[४] देखिये, *EHI*, 1914, p. 141; 'देखिये मोनाहन-कृत, *Early History of Bengal*, pp. 157-64; स्टीन, *Megasthenes and Kautilya*, pp. 233 ff.

[५] अर्थशास्त्र, 1919, p. 60. पृष्ठ ५७ पर लिखा है कि "**हस्त्यश्व-रथ-पदातम्-अनेक-मुख्यम्-अवस्थापयेत्।**"—अर्थात् हाथी, घोड़े, रथ, पैदल सभी अनेक सरदारों के नीचे होंगे।

[६] H. & F., स्ट्रैबो, III, 104.

"एक डिवीज़न प्रधान नौसेना-निरीक्षक के साथ रहता था। दूसरा डिवीज़न उस व्यक्ति के साथ होता था जो वृषभ-दल का ज़िम्मेदार होता था। नौसेना-निरीक्षक तथा वृषभ-दल की देखरेख करने वाले को अर्थशास्त्र में क्रमशः 'नाव-अध्यक्ष' तथा 'गो-अध्यक्ष' कहा गया है। यह कहना भूल होगी कि प्राचीन काल में नाव-अध्यक्ष एक असैनिक अधिकारी होता था, उसे हिंस्रिकों (समुद्री लुटेरों) के उन्मूलन का उत्तरदायित्व दिया जाता था। महाभारत[1] में नौसेना को राजा का अंग माना गया है। मेगास्थनीज़ द्वारा दिये गये विवरण में नाव-अध्यक्ष या एडमिरल के कुछ नागरिक कर्त्तव्य रखे गये हैं, जिनके अनुसार नाव-अध्यक्ष आवागमन तथा व्यापार के लिए जलयान किराये पर देता था।"[2]

लिच्छवि, मल्ल, शाक्य तथा अन्य संघराज्यों की तरह मौर्य-साम्राज्य में केन्द्रीय लोकप्रिय जनसभा नाम की कोई संस्था नहीं थी। ऐसा लगता है कि यदा-कदा ग्रामिकों या गाँव के मुखियों को बुलाने तथा उनसे कुछ विचार-विमर्श की परम्परा भी मौर्य-काल में प्रयोग में नहीं लाई गई। राजा की परिषद् केवल एक आभिजात्य-वर्गीय संस्था मात्र थी, जिसमें देश के मुख्य-मुख्य लोग शामिल होते थे।[3]

1 *

न्याय-प्रशासन

राजा ही समूचे न्याय-प्रशासन का सर्वोच्च अधिकारी होता था। राजा के दरबार के अलावा साम्राज्य के विभिन्न नगरों तथा जनपदों में भी अदालतें क़ायम थीं। इन अदालतों में व्यावहारिक महामात्र (नगरों में) तथा 'राजूक' (देहातों में) न्याय-कार्य करते थे। यूनानी लेखकों ने ऐसे न्यायाधीशों की भी चर्चा की है जो उस समय भारत में रहने वाले विदेशियों के मामलों पर विचार करते थे। गाँव के छोटे-छोटे मुक़दमे गाँव के मुखियों या बुज़ुर्गों द्वारा ही तय कर लिये जाते थे। उस समय का इतिहास लिखने वाले सभी इतिहासकारों ने तत्कालीन दण्ड-व्यवस्था की कड़ाई का उल्लेख किया है। बाद में चन्द्रगुप्त के पौत्र अशोक ने न्याय-प्रशासन की कड़ाइयाँ काफ़ी कम कर दीं। उसके काल में प्रत्येक अपराधी को उतना ही दण्ड दिया जाता था जितना कि वह दण्ड के योग्य होता था। दूरस्थ प्रान्तों में पर्यटक महामात्रों के द्वारा भ्रष्टाचार पर नियन्त्रण रखा जाता था, गाँवों के न्यायाधीश (राजूक) न्याय-प्रशासन में किसी हद तक स्वतंत्र होते थे। यूनानी लेखकों के लेखों से पता चलता है कि उन दिनों भारत में चोरी का नाम कभी-कभी ही सुनाई पड़ता था। भारतीयों के बारे में यह उल्लेख कि वे लिखना नहीं जानते थे, सही नहीं मालूम होता। यूनानियों ने यह बात कदाचित् इस आधार पर लिखी कि उन्हें यहाँ कहीं भी लिखित क़ानून नहीं मिले। भारतीय लोग सारा काम स्मरण-शक्ति के बल पर करते थे। नियर्कुस और कर्टियस ने लिखा है कि भारतीय रेशम के महीन कपड़ों तथा पेड़ों की कोमल छाल पर लिखा करते थे। स्ट्रैबो ने लिखा है कि जब कोई दार्शनिक समाज को कोई सलाह या सुझाव देना चाहता था तो उसे लिपिबद्ध कर देता था। मौर्य-कालीन भारतीयों के लिखने के ज्ञान के बारे में यह उल्लेखनीय है कि

---

[1] XII, lix, 41-42.

[2] स्ट्रैबो, XV, 1. 46.

[3] मोनाहन-कृत, *Early History of Bengal*, p. 148 पर प्लिनी को उद्धृत किया गया है।

सड़कों के पास के मौर्य-कालीन स्तम्भों पर स्थानों की दूरी व अन्य निर्देश लिखे रहते थे।[1]

2*

प्रान्तीय सरकारें

समूचा मौर्य-साम्राज्य कई प्रान्तों में विभाजित था। प्रान्त विभिन्न आहारों या विषयों (ज़िलों) में विभाजित होते थे, क्योंकि कोई भी प्रशासकीय इकाई इतना बड़ा बोझ बरदाश्त नहीं कर सकती थी। चन्द्रगुप्त के समय में प्रान्तों की निश्चित संख्या क्या थी, यह ज्ञात नहीं। चन्द्रगुप्त के पौत्र अशोक के समय में साम्राज्य में कम से कम पाँच प्रान्त थे—उत्तरापथ[2] (तक्षशिला), अवन्तिरट्ठ[3] (उज्जयिनी), दक्षिणापथ (सुवर्णगिरि), कलिंग (तोसालि) तथा प्राच्य, प्राचीन या प्रासी[4] (पाटलिपुत्र)। कोष्ठकों में लिखे नगर प्रान्तों की राजधानियाँ थे।

उक्त पाँच प्रान्तों में से प्रथम दो तथा अन्तिम एक के बारे में निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि ये प्रान्त चन्द्रगुप्त के साम्राज्य के भी अंग थे। किन्तु, यह बिल्कुल असम्भव नहीं है कि दक्षिणापथ भी चन्द्रगुप्त के साम्राज्य का अंग रहा हो। राजधानी से दूरस्थ प्रान्तों का शासन, राजवंश के राजकुमारों द्वारा चलता था। इन राजकुमारों को 'कुमार' की पदवी प्राप्त होती थी। कौटिल्य के अर्थशास्त्र[5] से हमें पता चलता है कि प्रत्येक कुमार को १२ हज़ार पण वार्षिक वेतन मिलता था।

प्राच्य प्रान्त तथा मध्यदेश पर सम्राट् स्वयं शासन करता था। सम्राट् इस कार्य में महामात्रों तथा पाटलिपुत्र और कौशाम्बी में रहने वाले उच्च अधिकारियों से सहायता ले लिया करता था।

सम्राट् द्वारा शासित प्रान्त के अलावा भी कई क्षेत्र मौर्य-साम्राज्य के अन्तर्गत थे जो एक सीमा तक स्वशासित थे। एरियन ने कुछ ऐसे क्षेत्रों या राष्ट्रों का उल्लेख किया है जो स्वशासित थे तथा जहाँ लोकतांत्रिक सरकारें[6] थीं। कौटिल्य के अर्थशास्त्र[7] में भी कई संघों की चर्चा की गई है। ये आर्थिक, सामरिक तथा राजनीतिक आधारों के संघ थे और स्वशासित थे। ऐसे संघों में कम्बोज और सुराष्ट्र का नाम आया है। अशोक के एक शिलालेख (Thirteenth Rock Edict) में कम्बोज को अधिक महत्त्व दिया गया है। R.E.V. में साम्राज्य की पश्चिमी सीमा (आपराता) पर अनेक राष्ट्रों एवं जातियों का उल्लेख मिलता है।[8] असम्भव नहीं कि सुराष्ट्र भी इन्हीं राष्ट्रों में से एक

---

१. देखिये, मोनाहन-कृत, *Early History of Bengal*, pp. 143, 157, 167 f.

२. दिव्यावदान, p. 407.

३. देखिये, *The Questions of King Milinda*, Pt. II, p. 250n; महावंश, Chap. XIII; महाबोधिवंश, p. 98.

४. देखिये, *The Questions of King Milinda*, II, 250n.

५. P. 247.

६. मोनाहन-कृत, *The Early History of Bengal*, p. 150; Chinnock, *Arrian*, p. 413.

७. P. 378.

८. *IHQ*, 1931, 631.

रहा हो और पर्याप्त सीमा तक स्वशासित रहा हो। पेतवत्थु की टीका में यहाँ के राजा का नाम पिंगल[१] कहा गया है। वह अशोक का समकालीन था। जूनागढ़ के रुद्रदामन-शिलालेख में अशोक के समकालीन यवन-राज तुषास्फ़[२] का नाम मिलता है। उक्त यवन राजा सम्भवतः उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र का एक यूनानी था जिसे अशोक ने ही सुराष्ट्र प्रान्त की देखरेख के लिए नियुक्त किया था। अशोक द्वारा यह नियुक्ति उसी प्रकार की थी जैसे कि अकबर द्वारा बंगाल के सूबेदार के रूप में मानसिंह की। अशोक और यवन राजा के बीच भी वही सम्बन्ध हो सकता है जैसा कि शाक्य राज्य के शासक एवं पसेनदि के मध्य था। चन्द्रगुप्त मौर्य के समय सुराष्ट्र में पुष्यगुप्त नाम का अधिकारी था। यह वैश्य था तथा चन्द्रगुप्त का 'राष्ट्रीय' कहा जाता था। बाम्बे गज़ेटियर[३] में 'राष्ट्रीय' शब्द का अर्थ 'साला' या 'बहनोई' माना गया है। इतिहासकार कीलहार्न (Kielhorn)[४] ने 'राष्ट्रीय' शब्द का अर्थ 'प्रान्तीय गवर्नर' माना है। यह कथन ठीक नहीं कहा जा सकता, क्योंकि हम देख चुके हैं कि मौर्य-काल में सौराष्ट्र में अनेक राजा थे। अतः वहाँ ऐसे प्रान्त को एक साधारण व्यक्तित्व के राज्यपाल के अधीन शाही प्रान्त का दर्जा नहीं दिया जा सकता। शिलालेखों में आया 'राष्ट्रीय' शब्द सम्राट् के राजदूत (Imperial High Commissioner)[५] का भी बोधक लगता है और सुराष्ट्र में पुष्यगुप्त की स्थिति सम्भवतः वही थी जो कि मिस्र में लार्ड क्रोमर की थी। इसके अतिरिक्त न तो अर्थशास्त्र में और न अशोक के अभिलेखों में ही कहीं 'राष्ट्रीय'[६] की श्रेणी के किसी अधिकारी का उल्लेख आया है। ऐसा लगता है कि 'राष्ट्रीय' शब्द 'राष्ट्रपाल' का ही समानार्थी था, जिसका वेतन प्रान्तों के शासक कुमारों[७] के बराबर होता था। ऐसा लगता है कि मौर्य-काल के आरम्भ में

---

१. देखिये, लॉ-कृत, *Buddhist Conception of Spirits*., 47 ff.

२. आधुनिक काल में यह स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है कि तुषास्फ़, अशोक के पूर्व हुआ था, परन्तु यह गलत है। जूनागढ़-लेख में राजा के नाम के साथ स्थानीय अधिकारी का नाम अवश्य आता है। ऐसा कोई कारण नहीं जिससे कहा जा सके कि अशोक तथा तुषास्फ़ के बीच वह सम्बन्ध नहीं था जो चन्द्रगुप्त तथा पुष्यगुप्त अथवा रुद्रदामन तथा सुविशाख के बीच था।

३. Vol. I, Part I, p. 13.

४. *Ep. Ind.*, Vol. VIII, p. 46.

५. प्रथम महायुद्ध के पश्चात् निकट पूर्व में मिले टाइप भी देखिये। हाई कमिश्नर वास्तविक शक्ति का उपयोग करता था। इससे यह सिद्ध नहीं होता कि वहाँ पर स्थानीय शासक अधिकारी आदि नहीं होते थे। मिस्र-स्थित ब्रिटिश राजदूत के सम्बन्ध में वेंडेल विल्की का मत भी देखिये (*One World*, p. 13), जहाँ वह प्रत्येक दृष्टि से वास्तविक शासक है।

६. अशोक के लेखों में उसे 'रठिक' कहा गया है। रीज़ डेविड्स एवं स्टीड द्वारा सम्पादित 'पालि इंगलिश डिक्शनरी' में 'रट्ठिक' की तुलना 'राष्ट्रीय' से की गई है।

७. देखिये, अर्थशास्त्र, p. 247. 'राष्ट्रीय' के लिए देखिये, महाभारत, XII. 85. 12; 87. 9. अमर (V. 14) के अनुसार राष्ट्रीय का अर्थ 'राजश्याल' (राजा का साला) है। परन्तु, क्षीरस्वामिन् के अनुसार, एक नाटक को छोड़कर 'राष्ट्रीय

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सुराष्ट्र में पैतृक नौकरशाही अस्तित्व में नहीं आ पायी थी। अशोक के समय में स्थानीय राजाओं द्वारा राजा की उपाधि धारण कर लेने तथा राजूकों (देहात के न्यायालयों) को स्वशासन प्रदान करने के फलस्वरूप ही अन्ततोगत्वा सौराष्ट्र में एकतावादी शक्ति को आघात पहुँचा और साम्राज्य छिन्न-भिन्न होने लगा।

3* गुप्तचर-विभाग

प्राचीन विद्वानों ने ओवरसीयर (Episkopoi) नामक वर्ग का उल्लेख किया है जो राज्य भर की सूचनाएँ, राजतन्त्र में राजा को और प्रजातन्त्र में मजिस्ट्रेटों को दिया करते थे।[1] इतिहासकार स्ट्रैबो ने इन लोगों को एफ़ोरी (Aphori) या 'इन्सपेक्टर' कहा है। उसके कथनानुसार ये लोग पूरे साम्राज्य की गतिविधि पर निग़ाह रखने तथा सम्राट् तक पूरी रिपोर्ट पहुँचाने के लिए होते थे। यही कारण है कि सबसे अधिक विश्वस्त व कार्यकुशल लोगों को इन पदों पर नियुक्त किया जाता था।[2] हो सकता है कि एरियन के गुप्तचर (overseers) तथा स्ट्रैबो के 'इन्सपेक्टर' जूनागढ़-शिलालेख के 'राष्ट्रीय' तथा अर्थशास्त्र के 'प्रदेष्ट्रि' या' गूढ़पुरुष के ही पर्याय हों। 'प्रदेष्ट्रि' शब्द सम्भवतः प्रदिश् (संकेत या सूचना देना) शब्द से ही बना है।[3]

स्ट्रैबो ने कई श्रेणी के इन्सपेक्टरों का उल्लेख किया है। इनमें एक तो नगर के गुप्तचर (City Inspector) होते थे, जो वेश्याओं को अपना सहायक तैनात रखते थे। इनके बाद महिलायें शिविर-गुप्तचरों की श्रेणी होती थी। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी गणिकाओं को गुप्तचर के रूप में नियुक्त करने का उल्लेख है। अर्थशास्त्र के अनुसार, गुप्तचरों की दो श्रेणियाँ थीं—

१. 'संस्था' या एक जगह नियुक्त किये जाने वाले गुप्तचर। इन्हें कापटिक, उदास्थित, गृहपतिक, वैदेहक या तापस कहा जाता था।

का अर्थ 'राष्ट्राधिकृत', अर्थात् वह अधिकारी जो राष्ट्र, राज्य तथा प्रान्त की देखभाल के लिए नियुक्त हो, है। इस सम्बन्ध में पंजाब के भारतीय राजाओं के साथ यूदामों के सम्बन्ध, तथा दसवीं शताब्दी में प्रतिहारों के तंत्रपाल के विषय में देखिये। डॉ० बरुआ (*IC*, X, 1944, pp. 48 ff.) ने अनेक पुस्तकों में बुद्धघोष का यह कथन भी सम्मिलित किया है कि राज्य में 'राष्ट्रीयों' का स्थान 'महामात्र' तथा ब्राह्मणों के बीच था। उनका पहनावा बड़ा शानदार था, तथा उनके हाथों में तलवार अथवा इसी प्रकार की कोई दूसरी वस्तु होती थी। यह कथन बहुत कुछ सत्य हो सकता है, परन्तु जो प्रमाण उन्होंने दिये हैं, वे पर्याप्त नहीं हैं कि यह सिद्ध हो सके कि चन्द्रगुप्त मौर्य के काल में 'राष्ट्रिक' अथवा 'राष्ट्रीय' और कोई न होकर बड़े-बड़े बैंकर्स तथा उद्योगपति होते थे। ये लोग 'मेयर्स', 'शेरिफ़' तथा 'जस्टिस ऑफ़ पीस' का भी कार्य करते थे। तुषास्फ़ तथा सुविशाख का उल्लेख सिद्ध करता है कि यहाँ पर 'राष्ट्रीय' का कार्य अत्यन्त उच्च था। इसके साथ ही क्षीरस्वामिन् द्वारा दिये गये कार्यों की भी सफलता से उपेक्षा नहीं की जा सकती।

[1] Chinnock, *Arrian*, p. 413.

[2] H. & F., स्ट्रैबो, III, p. 103.

[3] देखिये थामस, *JRAS*, 1915, p. 97.

२. 'संचाराः' या भ्रमणशील गुप्तचर[१]। इस श्रेणी में संदेशवाहक लोग भी आते थे। इन्हें सत्रि, तीक्ष्ण या रषद (सहपाठी, तीव्र या वैषैला) कहते थे। कुछ महिला गुप्तचरों को भिक्षुकी, परिव्राजिका, मुंड (वैरागिन) और वृषली कहते थे। स्ट्रैबो[२] ने सम्भवतः वृषली (गणिका) श्रेणी की महिला-गुप्तचरों का ही उल्लेख किया है। अर्थशास्त्र[३] में हमें वेश्याओं (पुंश्चली या रूपजीवा) के गुप्तचर होने का उल्लेख मिलता है।

4 *विदेशियों की निगरानी

स्ट्रैबो[४] और डायोडोरस[५] की कृतियों से पता चलता है कि मौर्य-काल में विदेशियों की ओर विशेष ध्यान दिया जाता था। "भारतीय अधिकारियों में विदेशियों को नियुक्त किया जाता था कि वे देखें कि किसी विदेशी के साथ किसी तरह का कोई दुर्व्यहार न हो। यदि इन विदेशियों में से कोई कभी बीमार पड़ जाता तो अच्छे वैद्यों से इनकी चिकित्सा कराई जाती और काफ़ी तीमारदारी की जाती। मरने पर इन्हें दफ़न किया जाता तथा इनकी सम्पत्ति इनके सम्बन्धियों को दे दी जाती। जिन मुक़दमों में विदेशी फँसे होते थे, उनकी सुनवाई बड़े ध्यान से की जाती। यदि कोई इसका दुरुपयोग करके फ़ायदा उठाना चाहता तो उसे कठोरतम दण्ड दिया जाता था।"[६]

5 * गाँव का शासन

प्राचीन भारत में गाँवों की प्रशासकीय एवं न्यायिक व्यवस्था का संचालन ग्रामिक[७] लोग करते थे। इनके अलावा 'ग्रामभोजक' या 'अयुक्त' भी होते थे और गाँव के वृद्धजन[८] उनकी सहायता करते थे। अर्थशास्त्र[९] में ग्रामिकों का नाम वेतन-भोगी कर्मचारियों में नहीं रखा गया है, और यह अपने आप में एक महत्त्वपूर्ण बात है। इससे सिद्ध होता है कि अर्थशास्त्र के लेखक के काल में ग्रामिक वेतनभोगी नहीं

---

[१] देखिये लूडर्स, लेख-संख्या, 1200.

[२] 'वृषली' का अर्थ गणिका बताया गया है। भगवदज्जुकीयम् (p. 94) के अनुसार इसका अर्थ दरबारी है।

[३] देखिये, अर्थशास्त्र (1919), pp. 224, 316.

[४] XV, I. 50.

[५] II, 42.

[६] देखिये, मैक्रिंडल-कृत *Megasthenes and Arrian*, 1926, p. 42.

[७] देखिये फ़िक-कृत *Social Organisation*, 162; अर्थशास्त्र, p. 157, 172; देखिये लूडर्स, लेख-संख्या 48, 69(a) कलिंग-लेख में आयुक्तों का उल्लेख आया है जो राजकुमार वायसरायों तथा महामात्रों की सहायता राज्य-संचालन में करते थे। गत मौर्य तथा सीथियन काल के प्रारम्भिक युग में उन्हें स्पष्ट रूप से ग्राम-अधिकारी कहा गया है (लूडर्स, सूची-संख्या 1347)। गुप्त-काल में यह पद बहुतों को, जिसमें ज़िले के अनेक पदाधिकारी भी सम्मिलित थे, दिया गया था।

[८] ग्राम-वृद्ध; अर्थशास्त्र, p. 48, 161, 169, 178. देखिये लूडर्स, लेख-संख्या 1327. शिलालेख V तथा VIII में महालकों तथा वृद्धों का उल्लेख मिलता है।

[९] Bk. V, Chap. III.

होता था, वरन् गाँववालों द्वारा निर्वाचित[1] राज्य-कर्मचारी होता था। राजा की ओर से गाँवों में ग्रामभृतक[2] या ग्रामभोजक[3] नियुक्त होते थे। 'अर्थशास्त्र' के अनुसार, ग्रामिकों के ऊपर 'गोप'[4] होते थे, जो ५ से १० गाँवों तक के इन्चार्ज होते थे। इसके अलावा एक अधिकारी 'स्थानिक' होता था और एक-चौथाई जनपद की देखभाल करता था। अर्थशास्त्र के अनुसार, इन अधिकारियों के काम की देखरेख 'समाहर्तृ' या 'प्रदेष्टि'[5] लोग करते थे। ग्रामीण प्रशासन का संचालन बड़ी कुशलता से किया जाता था। यूनानी लेखकों के लेखों से पता चलता है कि किसानों को राज्य का पूर्ण संरक्षण प्राप्त था तथा वे अधिक से अधिक समय खेती के काम में लगाते थे।

आय एवं व्यय के मुख्य स्रोत

मौर्य-साम्राज्य की केन्द्रीय सरकार को देश के नागरिक तथा सैन्य-प्रशासन पर भी काफ़ी धन व्यय करना पड़ता रहा होगा। राज्य की मुख्य आय मालगुज़ारी से होती थी। उस समय 'भाग' या 'बलि' के रूप में भू-राजस्व अदा किया जाता था। प्रायः पैदावार का छठा अंश सरकार को 'भाग' के रूप में मिलता था। यह अंश कभी-कभी अष्ठांश या चतुर्थांश भी कर दिया जाता था। ऐसा प्रतीत होता है कि 'बलि' एक प्रकार का अतिरिक्त कर था, परन्तु कुछ क्षेत्रों में यह कर लागू नहीं होता था। यूनानी इतिहासकारों के अनुसार, कभी-कभी किसान पैदावार का चतुर्थांश देने के बाद भी कुछ भूमि त्याग देते थे, क्योंकि उस समय यह धारणा थी कि देश की समस्त भूमि सम्राट् की सम्पत्ति होती है तथा किसी भी नागरिक को भूमि के स्वामित्व का कोई अधिकार नहीं है। भू-राजस्व भी वही अधिकारी वसूल करते थे जो सिंचाई के साधनों की देखरेख करते थे। इसके अलावा सरकार को मवेशी पालनेवालों से पशु तथा व्यापारियों से भी कुछ सेवायें प्राप्त होती थीं। शहरी क्षेत्रों से भी सरकार को जन्म तथा मृत्यु-कर, अर्थदण्ड की रक़म तथा बिक्री का दशांश (sales tax) मिलता था। पतंजलि के महाभाष्य में इस बात का उल्लेख है कि मौर्य लोगों को सोना बहुत प्रिय था, तथा वे अपने देवताओं की मूर्त्ति सोने की बनवाते थे। अर्थशास्त्र के लेखक को ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में लगाये जाने वाले करों की भिन्नता का ज्ञान था। उसने कर वसूलने वाले 'समाहर्ता' तथा 'सन्निधातृ' नामक उच्च अधिकारियों का उल्लेख किया है। लेकिन, मौर्य-कालीन शिलालेखों में इन अधिकारियों का कहीं कोई जिक्र

---

[1] इसको सिद्ध करने के लिए प्रमाण है कि प्राचीन काल में राजाओं द्वारा ग्रामों में अधिकृतों की नियुक्ति की जाती थी (प्रश्न उपनिषद्, III. 4)।

[2] अर्थशास्त्र, pp. 175, 248.

[3] जातकों के ग्रामभोजक राजा के अमात्य होते थे (Fick, *Social Organisation in N. E. India*, p. 160)।

[4] प्राचीन अभिलेखों में गोपों का उल्लेख नहीं मिलता, परन्तु लूडर्स लेख-संख्या 1266 में सेना-गोपों का उल्लेख अवश्य मिलता है।

[5] हम कह नहीं सकते कि इसमें दिये गये नियमों का पालन मौर्य-काल के प्रारम्भिक दिनों में कहाँ तक होता था (अर्थ०, p. 142, 217)। अशोक के शासन-काल में देखभाल का कार्य अधिकतर महामात्रों के एक मुख्य वर्ग (शिलालेख, संख्या 5, तथा कलिंग-लेख) पुलिसा (एजेण्ट) तथा राजुक (स्तम्भ-लेख संख्या 4) के द्वारा होता था।

नहीं है। इसके विपरीत, यूनानी लेखकों ने राज्य के कोषाध्यक्षों या ख़ज़ाने के सुपरिण्टेण्डेण्टों की भी चर्चा की है।

राज्य की आय का बहुलांश सेना पर व्यय किया जाता था। कारीगरों व कलाकारों का गुज़ारा सरकारी ख़ज़ाने से होता था। राज्य के चरवाहों तथा शिकारियों को जंगलों से वन्य पशुओं का सफ़ाया करने के लिए अनाज दिया जाता था। राज्य के ख़ज़ाने से दार्शनिकों को भी धन दिया जाता था। इस वर्ग में ब्राह्मण, श्रमण तथा साधु-संन्यासी आते थे। चन्द्रगुप्त के पौत्र के समय में राज्य के धन की बड़ी मात्रा सिंचाई, सड़क निर्माण, गृह-निर्माण, क़िलेबन्दी तथा औषधालयों की स्थापना पर भी ख़र्च की जाती थी।

चन्द्रगुप्त के अन्तिम दिवस

जैन-परम्परा की 'राजावली कथा'[1] में स्पष्ट लिखा है कि चन्द्रगुप्त जैन था, और एक बार जब उसके राज्य में अकाल पड़ा तो वह अपने पुत्र सिंहसेन के लिए सिंहासन रिक्त कर स्वयं मैसूर चला गया और वहीं उसकी मृत्यु हो गई। कावेरी के उत्तरी तट पर सेरिंगपटम के समीप लगभग ९०० ईसवी के दो शिलालेख मिले हैं। इन शिलालेखों में कलबप्पु की पहाड़ी (चन्द्रगिरि) पर भद्रबाहु और चन्द्रगुप्त मुनिपति[2] के पहुँचने का उल्लेख किया गया है। डॉक्टर स्मिथ[3] ने भी कहा है कि "जैन-परम्परा के अतिरिक्त इस सम्बन्ध में और कोई सामग्री नहीं मिलती।" २४ वर्ष राज्य करने के बाद लगभग ३०० वर्ष ईसापूर्व में सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य का देहावसान हो गया।[4]

---

[1] *Ind. Ant.*, 1892, 157.

[2] देखिये, राइस-कृत *Mysore and Coorg from the Inscriptions*, p. 3-4.

[3] देखिये, *Oxford History of India*, p. 76. जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, जैन-परम्परा के प्रति फ़्लीट के मन में द्वेष है (*Ind. Ant.*, 1892, 156 f)। ग्रीक-प्रमाणों के अनुसार, चन्द्रगुप्त यज्ञ वाले धर्म का अनुयायी था (देखिये, p. 277 *ante*)। मुद्राराक्षस में आया हुआ शब्द 'वृषल' यही संकेत करता है कि कुछ बातों में वह कठोर कट्टरता से हट भी जाता था (देखिये, *Indian Culture*, II, No. 3, p. 558 ff; देखिये सी० जे० शाह-कृत *Jainism in Northern India*, 135n, 138)।

[4] चन्द्रगुप्त की तिथि के लिए देखिये *Indian Culture*, Vol. II, No. 3, pp. 560 ff. सीलोन की बौद्ध-परम्परा के अनुसार, यह तिथि बुद्ध के परिनिर्वाण के १६२ वर्ष पश्चात्, अर्थात् ३८२ ई० पू० थी, यदि हम निर्वाण-तिथि ५४४ ई० पू० मान लें तो; परन्तु यदि कन्टोनीज़ के अनुसार, यह तिथि ४८६ ई० पू० हो तो फिर ३२४ ई० पू० होगी। पहली तिथि के विरुद्ध यूनानी प्रमाण हैं, परन्तु वे ३२४ ई० पू० को स्वीकार करते हैं। यदि यह सही जनश्रुति पर आधारित हो और जैन-तिथि सही है तो उनके अनुसार, चन्द्रगुप्त ३१३ ई० पू० में सिंहासनारूढ़ हुआ था, क्योंकि एक श्लोक में मौर्य-शासक को पालक का उत्तराधिकारी बताकर उसका अवन्ती तथा मालव पर अधिकार सिद्ध किया गया है (देखिये *IHQ*, 1929, p. 402)। फ़िल्लिओज़ट तथा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

यदि हेमचन्द्र के परिशिष्टपर्वन्'[1] पर विश्वास किया जाय तो चन्द्रगुप्त की एक रानी का नाम दुर्धरा था, जिससे राजकुमार बिन्दुसार का जन्म हुआ था। चन्द्रगुप्त के बाद बिन्दुसार को ही सिंहासन प्राप्त हुआ। परन्तु किसी अन्य प्रमाण के अभाव में रानी के नाम को प्रामाणिक स्वीकार नहीं किया जा सकता।

२. बिन्दुसार का शासन

चन्द्रगुप्त का पुत्र बिन्दुसार अमित्रघात ३०० ईसापूर्व के आसपास सिंहासन पर बैठा। अमित्रघात (शत्रुओं का वध करने वाला) संस्कृत[2] शब्द है, और अथेनेओस के अमित्रचेत्स (Amitrachates) तथा स्ट्रैबो के अल्लित्रोशेड्स (Allitrochades) का ही पर्याय है। उक्त इतिहासकारों ने अमित्रचेत्स तथा अल्लित्रोशेड्स को सैण्ड्रोकोट्टस (चन्द्रगुप्त) का पुत्र कहा है। फ़्लीट ने 'अमित्रखाद' को प्राथमिकता दी है, जिसका अर्थ शत्रुओं का नाश करने वाला होता है तथा जो देवराज इन्द का एक विशेषण है।[3] 'राजावली कथा' में चन्द्रगुप्त के पुत्र तथा उत्तराधिकारी का नाम सिंहसेन दिया गया है। अशोक के एक अभिलेख (Rock Edict, VIII) के अनुसार, बिन्दुसार तथा अशोक के अन्य पूर्वज 'देवानांपिय' का नाम भी धारण करते थे।

यदि 'आर्य-मंजुश्री-मूलकल्प' के लेखकों हेमचन्द्र और तारनाथ पर विश्वास किया जाय तो बिन्दुसार[4] के सिंहासनारूढ़ होने के बाद भी कौटिल्य या चाणक्य

अन्य, जो जैनियों को सही मानते हैं, वे सीलोनीज़ के प्राचीन प्रमाणों को स्वीकार नहीं करते (देखिये रायचौधरी, *HCIP. AIU.* Vol. II, 92 ff.; *ANM*, 136 ff)। ३१३ ई० पू० की तिथि अशोक के लेख XIII में उल्लिखित यूनानी राजाओं से भी मेल नहीं खाती, क्योंकि सीरियन युद्ध से कहीं पूर्व (तोलेमी-तृतीय, 247-46 ई० पू०) कैलिमकुस (Callimachus) हुआ था जिसका उल्लेख लेख में मिलता है।

[1] VIII, 439-43, Bigandet, II. 128. देखिये।

[2] देखिये वेबर, *IA*, ii (1873), p. 148; लासेन तथा कनिंघम (*Bhilsa Topes*, p. 92)। 'अमित्रघात' शब्द का उल्लेख पतञ्जलि के महाभाष्य (III, 2. 2) में भी मिलता है (देखिये महाभारत, 30. 19, 62. 8; VII, 22. 16)। यहाँ पर 'अमित्रघात' का प्रयोग राजकुमारों तथा योद्धाओं के विशेषण के रूप में हुआ है। डॉ० जार्ल कार्पेन्टियर का मत है कि ग्रीक शब्द Amitrachates बिन्दुसार का पर्यायवाची है, अतः यही अमित्रघात हो गया। यह तथ्य न केवल महाभाष्य से स्पष्ट होता है, वरन् राज-उपाधि भी बना। (देखिये, अमित्राणाम् हन्ता—ऐतरेय ब्राह्मण, VIII. 17)। *JRAS*, जनवरी 1928 में उसने Amitrachates को अमित्रखाद कहना अधिक उपयुक्त समझा है (p. 135); देखिये, ऋग्वेद, X, 152. 1.)।

[3] *JRAS*, 1909, p. 24.

[4] देखिये जैकोबी, परिशिष्टपर्वन्, p. 62; VIII, 446 ff; *Ind. Ant.*, 1875, आदि। बिन्दुसार तथा चाणक्य का सम्बन्ध दूसरे मत्री सुबंधु (वासवदत्ता नाट्यधारा के लेखक) के साथ कैसा था, इस सम्बन्ध में देखिये *Proceedings of the Second Oriental Conference*, pp. 208-11 तथा परिशिष्टपर्वन्, VIII, 447.

कुछ समय तक मंत्रिपद पर आसीन रहे। तारनाथ के अनुसार, "चाणक्य बिन्दुसार के संरक्षकों में से एक था और उसने १६ नगरों[1] के राजाओं व शासकों को समाप्त कराके राजा को पूर्वी व पश्चिमी घाटों के समस्त भूभाग का मालिक बना दिया था।" बहुत से इतिहासकार उक्त भूभाग पर विजय-प्राप्ति के प्रसंग में ही दक्षिण-विजय[2] का उल्लेख करते हैं। किन्तु, हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि चन्द्रगुप्त के समय में ही मौर्य-साम्राज्य का विस्तार सुराष्ट्र में बंगाल तक हो चुका था। तारनाथ द्वारा किये गये उल्लेख का केवल इतना ही अर्थ है कि मौर्यों ने विद्रोह का दमन किया था। इसके अतिरिक्त किसी अन्य ग्रन्थ में बिन्दुसार का नाम दक्षिण-विजय[3] के साथ सम्बद्ध नहीं मिलता। चाहे १६ नगरों को अपनी अधीनता में करने की बात सही हो या ग़लत, हमें दिव्यावदान[4] में यह उल्लेख मिलता है कि बिन्दुसार के समय में तक्षशिला में विद्रोह हुआ था और उसे दबाने के लिए सम्राट् (बिन्दुसार) ने अशोक को भेजा था।

राजकुमार अशोक जब अपनी सेना के साथ तक्षशिला के पास पहुँचा तो वहाँ के निवासी राजकुमार से मिलने आये और उन्होंने राजकुमार से कहा कि न तो आपसे, और न सम्राट् बिन्दुसार से ही हमारा कोई विरोध है। हम तो केवल उन दुष्ट अमात्यों (दुष्टामात्याः) के विरोधी हैं जो कि हमारा अपमान करते हैं। अशोक के कलिंग-अभिलेख[5] में मौर्य-साम्राज्य के दूरस्थ प्रान्तों में सरकारी अधिकारियों के अत्याचारों का उल्लेख है। महामात्रों को सम्बोधित करते हुए सम्राट् कहता है—

"प्रजा मेरी सन्तान है। जैसे मैं अपने बच्चों के बारे में इच्छा करता हूँ कि वे इहलोक तथा परलोक, दोनों में ही सभी प्रकार की समृद्धि का उपभोग करें, वैसे ही मैं अपने प्रजाजनों के बारे में भी सोचता हूँ। आप लोग इस सत्य को पूर्णरूपेण नहीं समझते।[6] कुछ लोग संयोगवश इसकी ओर ध्यान दे देते हैं, किन्तु वह भी पूर्णतः नहीं केवल आंशिक रूप से ही। साम्राज्य को पूर्ण व्यवस्थित रखने के लिए सिद्धांत की ओर ध्यान दो, क्योंकि इस सम्बन्ध में राज्य के नियम सुनिश्चित हैं। पुनश्च—

दिव्यावदान (p. 372) में 'खल्लाटक' को बिन्दुसार का अग्रामात्य अथवा मुख्य मंत्री कहा गया है।

[1] क्या ये नगर, १६ महाजनपदों की राजधानियाँ थे ?

[2] देखिये स्मिथ, *EHI*, तृतीय संस्करण, p. 149; *JRAS*, 1919, 598; जायसवाल-कृत *The Bmpire of Bindusar*, *JBORS*, II, 79 ff.

[3] देखिये सुब्रामणियम्, *JRAS*, 1923, p. 96—"मेरे गुरु के गुरु ने अपनी आलोचनात्मक पुस्तक 'संगम' में लिखा है कि चन्द्रगुप्त के पुत्र ने 'तुलुनाद' की स्थापना की थी—कदाचित् तुलियन (तुलि-बिन्दु)।"

[4] Cowell and Neil का संस्करण, p. 371.

[5] देखिये, स्मिथ-कृत, अशोक, तृतीय संस्करण, p. 194-95.

[6] "तुम नहीं समझते कि मेरा उद्देश्य कहाँ तक पहुँचा।" (हल्ट्ज़, *Inscriptions of Ashoka*, p. 95)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

फिर यदि किसी को कारावास का दण्ड या अन्य यातनाएँ दी जाती हैं और वह कारावास अकारण ही रहता है तो इससे बहुत से दूसरे लोगों को भी दुःख होता है। ऐसे मामलों में आपको न्याय[1] करना चाहिए और वह भी धार्मिकता के नियमों के आधार पर होना चाहिए। मैं हर पाँचवें वर्ष ऐसे लोगों (महामात्रों) को भेजूंगा, जो सरल और नम्र प्रकृति के होंगे तथा जीवन की मान्यताओं का सम्मान करेंगे। ऐसे लोग मेरे आदेशों के अनुसार, मेरे उद्देश्यों को कार्यान्वित करेंगे।[2] फिर भी जो लोग उज्जैन से भेजे जायँगे, वे तीन वर्ष से अधिक वहाँ न रहेंगे। इसी प्रकार तक्षशिला से भी (३ वर्ष के लिए ही) महामात्र भेजे जायँगे।"

तक्षशिला ने राजकुमार अशोक की अधीनता स्वीकार कर ली। मौर्य-राजकुमार ने उसके बाद स्वाश राज्य (बर्नफ़ के अनुसार खश राज्य) में प्रवेश किया।[3]

परराष्ट्र-नीति

यूनानियों॰ के प्रति सम्राट् बिन्दुसार ने शान्तिपूर्ण नीति अपनाई। प्राचीन ग्रन्थकारों[4] के अनुसार, सीरिया के राजा ने अपना राजदूत मौर्य-सम्राट् के पास भेजा था। राजदूत का नाम डेमेकस (Deimachos) था। इतिहासकार प्लिनी[5] के अनुसार, मिस्र के राजा फ़िलाडेल्फ़स (285-247 ई॰ पू॰) ने भी अपना राजदूत यहाँ भेजा था। उसका नाम डायोनीसस था। डॉ॰ स्मिथ के अनुसार, यह अनिश्चित है कि मिस्री राजदूत ने सम्राट् बिन्दुसार को अपना परिचय-पत्र आदि (Credentials) दिया, या उसके पुत्र एवं उत्तराधिकारी अशोक को। यह महत्त्वपूर्ण बात है कि यूनानी और लैटिन लेखकों ने चन्द्रगुप्त और अमित्रघात का नाम तो लिया है, किन्तु इन लेखकों ने अशोक का कहीं भी उल्लेख नहीं किया है। यह एक दुर्बोध्य तथ्य है कि जिन बाहरी राजदूतों के लेखों का बाद के इतिहासकारों ने प्रयोग किया है, यदि वे अशोक के समय भी भारत आये थे तो इन्होंने इस तीसरे महान् मौर्य-सम्राट् का उल्लेख

---

[1] "न्याय करते समय ऐसा भी होता है कि किसी एक व्यक्ति को कठोर दण्ड अथवा कारावास भी मिल जाता है। ऐसी दशा में उस आज्ञा को रद्द करते हुए एक दूसरी आज्ञा भी दे दी जाती है, जबकि अन्य व्यक्ति सज़ा काटते रहते हैं। ऐसी दशा में आप सब लोगों को निष्पक्ष होकर कार्य करना चाहिये।" (हल्टज़, p. 96)।

[2] "मैं हर पाँचवें वर्ष एक महामात्र भेजा करूँगा जो भयंकर तथा कठोर न होकर नम्रतापूर्वक जाँच करेगा कि न्याय-अधिकारी इस ओर ध्यान देते हैं अथवा नहीं, तथा मेरी आज्ञानुसार ही काम होता है या नहीं।" (हल्ट्ज़, p. 97)।

[3] देखिये दिव्यावदान, p. 372. खश की पुष्टि तारनाथ से भी होती है (*IHQ*, 1930, 334)। खशों के लिये देखिये *JASB*, अतिरिक्त संख्या 2, 1899।

[4] जैम, स्ट्रैबो।

[5] मैक्रिडल-कृत *Ancient India as Described in Classical Literature*, p. 108.

क्यों नहीं किया ? पैट्रोकिलस[1] नामक व्यक्ति ने भारतीय समुद्रों में काफ़ी यात्रा की और काफ़ी भौगोलिक तथ्यों का संकलन किया, जिनका स्ट्रैबो तथा अन्य इतिहासकारों ने यथेष्ट प्रयोग किया है। पैट्रोकिलस—सेल्युकस तथा उसके लड़के के यहाँ राजकर्मचारी था। एथेनिओस ने सम्राट् बिन्दुसार तथा सीरिया के राजा एण्टिओकोस के बीच हुई एक घटना का उल्लेख किया है जिससे स्पष्ट है कि बिन्दुसार अपने समकालीन यूनानी राजाओं से समता तथा मैत्री का व्यवहार करता था। हेज़सैण्डर के आधार पर हमें पता चलता है कि एक बार बिन्दुसार ने एण्टिओकोस को पत्र लिखा—"मेरे लिए मीठा शराब, सूखी अंजीर तथा एक तार्किक क्रय करके भेज दो।" एण्टिओकोस ने जवाब दिया—"हम आपको अंजीर और शराब तो भेज देंगे, किन्तु यूनान में तार्किकों को बेंचने पर प्रतिबन्ध है।"[2] इस सम्बन्ध में डायोडोरस का यह उल्लेख महत्त्वपूर्ण है कि पाटलिपुत्र का राजा यूनानियों को बहुत चाहता था और एक बार आयम्बोलस नामक एक व्यक्ति राजा के दरबार में लाया भी गया था। डियोन क्रिसोस्टम ने कहा है कि भारतीयों ने होमर की कविताओं का अपनी भाषा में अनुवाद[3] कर लिया है और उसे खूब लय से गाते हैं। बाद के युग में गर्ग और वराहमिहिर ने भी इस तथ्य की पुष्टि की है कि खगोलविद्या[4] की जानकारी के लिए यूनानियों का भारत में सम्मान होता था।

बिन्दुसार का परिवार

अपने बाद सिंहासनारूढ़ होने वाले अशोक के अलावा भी राजा बिन्दुसार के कई लड़के थे। अशोक ने अपने जिस पाँचवें अभिलेख (Fifth Rock Edict) में धर्ममहामात्रों[5] के कर्त्तव्यों का उल्लेख किया है, उससे यह भी पता चलता है कि अशोक के कई भाई और बहनें थीं। दो भाइयों, यथा सुसीम और विगतशोक[6] का नाम दिव्यावदान में आया है। सिंहली क्रॉनिकल में भी इन दोनों राजकुमारों का उल्लेख मिलता है, किन्तु भिन्न-भिन्न नामों के साथ। वहाँ पहले को सुमन तथा दूसरे

---

[1] स्मिथ-कृत, अशोक, तृतीय संस्करण, p. 19.

[2] देखिये मैक्रिंडल-कृत *Inv. Alex.*, p. 409. हल्ट्ज़-कृत, अशोक, p. xxxv. दर्शनशास्त्र में बिन्दुसार की रुचि थी, इसकी पुष्टि अजीव-परिव्राजक के सम्बन्ध से भी होती है (दिव्यावदान, 370 ff)। देखिये स्तम्भ-लेख VII की प्रथम पंक्ति।

[3] देखिये मैक्रिंडल-कृत, *Anc. Ind.*, p. 177; ग्रोट, XII, p. 159—सम्भवतः कोई नाटक झेलम-तट पर खेला गया था।

[4] बृहत्संहिता, II. 14. Aristoxenus and Eusebius के अनुसार, चौथी शताब्दी ई० पू० में ही यूनान में भारतीय मौजूद थे तथा उन्होंने सुकरात से दर्शनशास्त्र पर तर्क-वितर्क किया था (देखिये रॉलिन्सन की टिप्पणी जिसे 'अमृत बाजार पत्रिका' 21. 11. 36, p. 17 पर उद्धृत किया गया है)।

[5] धर्म तथा कर्त्तव्य के प्रचार के लिए नियुक्त उच्च पदाधिकारी।

[6] Pp. 369–73; देखिये अशोक, तृतीय संस्करण, p. 247 ff.

को तिष्य कहा गया है। सुसीम (सुमन) सम्राट् बिन्दुसार का ज्येष्ठ पुत्र और अशोक का सौतेला भाई था। विगतशोक (तिष्य) बिन्दुसार का सबसे छोटा बेटा तथा अशोक का सगा भाई था। अशोक और तिष्य दोनों चम्पा[1] की एक ब्राह्मण-कन्या के पुत्र थे। ह्वेनसांग ने अशोक के एक भाई का नाम 'महेन्द्र' लिखा है। सिंहली सामग्री के आधार पर महेन्द्र को अशोक का पुत्र कहा गया है। संभव है कि चीनी यांत्री ने महेन्द्र[2] और विगतशोक, दोनों की ही कहानियों को एक में मिला दिया हो।

पुराणों के अनुसार २५ वर्ष के शासन के बाद बिन्दुसार की मृत्यु हुई। बौद्ध-ग्रन्थों[3] में इस अवधि को २७ या २८ वर्ष माना गया है। इस पुस्तक में जिस तैथिकी क्रम को अपनाया गया है, उसके अनुसार बिन्दुसार की मृत्यु २७३ वर्ष ईसापूर्व[4] में हुई थी'।

३. अशोक-शासन के प्रारम्भिक वर्ष

दिव्यावदान तथा सिंहली क्रॉनिकल इस बात को स्वीकार करते हैं कि बिन्दुसार की मृत्यु के बाद उत्तराधिकार के लिए संघर्ष (भाइयों की हत्याएँ तक) हुए हैं। कहा जाता है कि अशोक ने अपने सबसे बड़े सौतेले भाई को राधगुप्त की मदद से गद्दी से उतारा और गद्दी पर बैठने के बाद राधगुप्त को उसने अपना अग्रामात्य (प्रधान मंत्री) बनाया। डॉक्टर स्मिथ[5] का कहना है कि अशोक के राज्याभिषेक में चार वर्ष[6] (२६९ ई० पू० तक) का विलम्ब हुआ। इससे सिद्ध है कि उसका उत्तराधिकार विवाद-ग्रस्त था और उसका बड़ा भाई सुसीम उसका प्रतिद्वन्द्वी था। अपने 'अशोक'[7] नामक ग्रन्थ से डॉ० स्मिथ ने लिखा है कि "यह सम्भव है कि अशोक का उत्तराधिकार विवादग्रस्त रहा हो और उसके लिए काफ़ी खून-खराबा हुआ हो, किन्तु उत्तराधिकार-सम्बन्धी संघर्ष का कोई स्वतन्त्र प्रमाण नहीं मिलता।" डॉक्टर जायसवाल[8] ने अशोक के राज्याभिषेक-सम्बन्धी विलम्ब के बारे में स्पष्टीकरण प्रस्तुत करते हुए कहा है कि "ऐसा लगता है कि मौर्य-काल में राज्याभिषेक के लिए युवराज का २५ वर्ष का

---

[1] आर० एल० मित्र (*Sanskrit Buddhist Literature of Nepal*, 8) तथा स्मिथ के अनुसार, अशोक की माता का नाम सुभद्रांगी था। Bigandet, II, 128 में अशोक तथा तिस्स की माता का नाम धम्मा बताया है।

[2] देखिये स्मिथ-कृत, अशोक, तृतीय संस्करण, p, 257.

[3] हल्ट्ज़ का मत है कि बर्मी परम्पराओं के अनुसार, बिन्दुसार ने २७ वर्षों तक राज्य किया, जबकि बुद्धघोष ने 'समन्त-पासादिका' में महावंश से सहमत होते हुए राज्य की अवधि २८ वर्ष बताई है।

[4] देखिये स्मिथ-कृत, अशोक, p. 73.

[5] *Oxford History of India*, p. 93.

[6] गेगर द्वारा अनूदित महावंश, p. 28.

[7] तृतीय संस्करण।

[8] *JBORS*, 1917, p. 438.

होना एक शर्त थी ।[१] शायद इसीलिए अशोक के राज्याभिषेक में ३ या ४ वर्ष का विलम्ब हुआ ।" किन्तु, यह दलील सीधे-सादे तौर पर नहीं स्वीकार की जा सकती। उदाहरणार्थ, महाभारत में लिखा है कि विचित्रवीर्य जब बालक ही था और युवक भी नहीं हो पाया था, तभी सिंहासनारूढ़ हुआ था ।

विचित्रवीर्यञ्च तदा बालम् अप्राप्तयौवनम्
कुरुराज्ये महाबाहुर्भ्यषिचदनन्तरम् ।[२]

डॉक्टर स्मिथ[३] उन सिंहली कथाओं को मूर्खतापूर्ण बताते हैं, जिनमें कहा गया है कि अशोक ने अपने कई भाइयों की हत्या की थी, क्योंकि उसके शासन के १७वें-१८वें वर्ष में भी उसके कई भाई-बहन जीवित थे । अशोक इन सबों की भी चिन्ता करता था । हमें स्मरण रखना चाहिये कि अशोक के पाँचवें अभिलेख में उसके जीवित भाइयों के परिवारों का उल्लेख मिलता है । कहने का मतलब यह नहीं कि उसके सभी भाई स्वतःजीवित थे, किन्तु इसके विपरीत इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता कि उसके भाई मृत ही हो चुके थे । हमारी राय में पाँचवाँ अभिलेख सिंहली तथ्यों की प्रामाणिकता या उसकी अविश्वसनीयता, कुछ भी नहीं सिद्ध करता । चौथे अभिलेख में अशोक ने स्वयं अपने परिजनों के अप्रत्याशित व्यवहार तथा उनके द्वारा जीवों की हत्या का उल्लेख किया है ।

डॉक्टर स्मिथ के शब्दों में "अशोक के शासन के प्रथम चार वर्षों को भारतीय इतिहास का अन्धकारमय काल कह सकते हैं । इस काल के कतिपय सीमित तथा कुछ असीमित तथ्यों के आधार पर निरर्थक अटकलबाजियों से कोई फायदा नहीं है ।"

अपने पूर्वजों[४] की तरह अशोक ने भी 'देवनंपिय' की उपाधि धारण की । उसने अपने को 'देवनंपिय पियदसि'[५] कहा है । अशोक का नाम प्रायः साहित्य में आता है । इसके अतिरिक्त नासिक-अभिलेख तथा जूनागढ़ के महाक्षत्रप रुद्रदामन-प्रथम के अभिलेख में भी 'अशोक' नाम मिलता है । मध्यकालीन शिलालेखों, जैसे कुमारदेवी के सारनाथ-शिलालेख में 'धर्माशोक' शब्द मिलता है ।

---

१. अन्य प्रकार के भी 'अभिषेक' थे, जैसे युवराज, कुमार, सेनापति आदि के लिए देखिये महाकाव्य तथा कौटिल्य (अनुवाद, p. 377, 391) ।

२. महाभारत (I. 101. 12) के आदि-पर्व के अनुसार, सिन्धु-घाटी के दक्षिणी भाग में दत्तामित्र तथा यवन का राज्य था, अतः इसकी तिथियाँ अशोक तथा खारवेल से अधिक दूर नहीं हो सकतीं । परिशिष्टपर्वन् (IX. 52) में देखिये सम्प्रति तथा अम्मा-द्वितीय (पूर्वी चालुक्य) का उल्लेख ।

३. देखिये *EHI*, तृतीय संस्करण, p. 155.

४. देखिये शिलालेख, VIII, कालसी, शाहबाज़गढ़ी, तथा मानसहर-लेख ।

५. हमने देखा है कि 'पियदंसन' की उपाधि कभी चन्द्रगुप्त ने भी धारण की थी (देखिये भण्डारकर-कृत, अशोक, p. 5; हल्ट्ज़ *CII*, Vol. I, p. xxx) ।

अपने शासन के प्रथम तेरह वर्षों में अशोक ने मौर्य-साम्राज्य की परम्परागत नीति का ही अनुसरण किया। अर्थात्, अशोक ने देश के अन्दर अपने साम्राज्य के विस्तार तथा विदेश में दूसरे देशों से मैत्रीपूर्ण व्यवहार की नीति अपनाई। सेल्युकस से हुए युद्ध के बाद से मौर्यों की परराष्ट्र-नीति प्रायः यही रही। चन्द्रगुप्त तथा बिन्दुसार की तरह अशोक भी देशी शक्तियों के लिए आक्रामक तथा विदेशी शक्तियों के लिए मित्र रहा है। राजदूतों के आदान-प्रदान तथा तुषास्फ़[1] जैसे यवनों को भी राजपद देने आदि के उदाहरण विदेशियों से मौर्यों की मैत्री के परिचायक हैं। भारत के अन्दर अशोक एक महान् विजेता था। दिव्यावदान में स्वश (खश ?) राज्य को हराने तथा तक्षशिला के विद्रोह का दमन करने का श्रेय राजकुमार अशोक को दिया गया है। अपने शासन के तेरहवें वर्ष (राज्याभिषेक के आठ वर्ष बाद) अशोक ने कलिंग पर विजय प्राप्त की। अशोक के समय में कलिंग राज्य का ठीक-ठीक विस्तार ज्ञात नहीं हो सका है। यदि संस्कृत महाकाव्यों तथा पुराणों पर विश्वास किया जाय तो कलिंग राज्य उत्तर में वैतरणी नदी[2], पश्चिम में अमरकण्टक[3] तथा दक्षिण में महेन्द्रगिरि[4] तक फैला हुआ था।

तेरहवें अभिलेख में कलिंग-युद्ध का विवरण तथा उसके परिणाम का उल्लेख मिलता है। हम पहले ही देख चुके हैं कि कलिंग का कुछ हिस्सा नन्द-काल में मगध राज्य का एक अंग था। तब फिर अशोक को इसे पुनः जीतने की क्या आवश्यकता पड़ी ? इस प्रश्न का केवल एक ही उत्तर हो सकता है, और वह यह कि नंद-वंश के पतन के बाद कलिंगवालों ने मगध से अपना सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया था। यदि बिन्दुसार के समय देश भर में व्यापक विद्रोह की बात सही है तो यह असम्भव नहीं कि तक्षशिला की तरह कलिंग ने भी मगध की अधीनता स्वीकार करने से इनकार कर दिया हो। फिर भी मेगास्थनीज़ द्वारा दिये गये विवरणों के आधार पर इतिहासकार प्लिनी[5] की पुस्तक से पता चलता है कि चन्द्रगुप्त के समय में भी कलिंग एक स्वतंत्र राज्य के रूप में था। ऐसी स्थिति में बिन्दुसार के समय में किसी विद्रोह का प्रश्न ही नहीं उठता। इतिहासकार प्लिनी के अनुसार, "कलिंग जाति के लोग समुद्रतटीय प्रदेश में रहते थे और कलिंग की राजधानी का नाम पार्थलिस था। युद्धकाल में कलिंग के राजा की ६० हज़ार पैदल, १ हज़ार घुड़सवारों तथा ७ सौ की गजसेना राज्य की रक्षा करती थी।"[6]

---

१. योन (Yona) धम्मरक्खित (Dhammarakkhita) द्वारा किये गये कार्यों को भी देखिये (महावंश अनुवाद, p. 82)।

२. महाभारत, III, 114, 4.

३. कूर्म पुराण, 11, 39. 9; वायु पुराण, 77, 4-13.

४. रघुवंश, IV, 38-43; VI, 53-54.

५. देखिये *Ind. Ant.*, 1877, p. 338.

६. जैसा कि सम्भव है, यदि अश्मक के आसपास का प्रदेश कलिंग में सम्मिलित था तो पोतालि तथा परयाली एक ही थे। कलिंग तथा उसकी प्रारम्भिक राजधानी

मेगास्थनीज़ के समय से लेकर अशोक के समय तक सम्भवतः कलिंग के राजा ने अपनी सेना काफ़ी बढ़ा ली थी, क्योंकि अशोक से हुई कलिंग की लड़ाई में हताहतों की संख्या ढाई लाख से अधिक पहुँच गई थी। यह हो सकता है कि इन हताहतों में केवल लड़ने वाले सिपाही ही न शामिल रहे हों, वरन् बहुत से सीधे-साधे लोगों की भी हत्यायें की गई हों। मगध की सीमाओं से जुड़ा हुआ कलिंग-जैसा एक बड़ा राज्य हो और उसके पास युद्ध के लिए एक विशाल सेना भी हो—क्या मगध के शासक इस स्थिति के प्रति उदासीन रह सकते थे? खारवेल के समय में मगध को कलिंग की शक्ति का कटु अनुभव हुआ था।

तेरहवें अभिलेख में हमने जाना कि अशोक ने कलिंग पर चढ़ाई करके उसे अपने राज्य में मिला लिया था। "डेढ़ लाख आदमी क़ैद किये गये, एक लाख लोगों की हत्या की गई और इससे भी कई गुना आदमी मरे थे।" केवल लड़ाई करनेवालों को ही नहीं, वरन् ब्राह्मणों, साधुओं तथा गृहस्थों को भी इस युद्ध के फलस्वरूप हिंसा, हत्या तथा स्वजनों से वियोग का शिकार होना पड़ा था।

विजित राज्य कलिंग मगध का ही एक अंग हो गया तथा राजवंश का कोई राजकुमार वहाँ का वाइसराय (या उपराजा) नियुक्त कर दिया गया। कलिंग के लिए नियुक्त उपराजा पुरी ज़िले के तोसली[1] नामक स्थान पर रहता था। सम्राट् की ओर से कलिंग की सीमा पर रहने वाले आदिवासियों तथा वहाँ के निवासियों के साथ कैसा व्यवहार किया जाय, इस सम्बन्ध में दो आदेश भी जारी किये गये थे। ये दोनों आदेश (शिलालेख के रूप में) धौली[2] और जौगड़[3] नामक स्थानों पर सुरक्षित हैं। ये आदेश

दन्तकूर तथा तोसली के लिये देखिये सिल्वेन लेवी-कृत *Pre-Aryen et Pre-Dravidien dans l'Inde*, जे० ए० जूलियट, सितम्बर, 1923; तथा *Indian Antiquary*, (मई), p. 94, 98. कलिंग नाम सम्पूर्ण मलय में प्रयुक्त था; अतः इससे सिद्ध होता है कि कलिंग ने हिन्दू-सभ्यता फैलाने में बड़ी सहायता की थी। प्राचीन राजधानी (पलौरा-दन्तपुर-दन्तकूर) से *Apheterion* दूर नहीं था, जहाँ गोल्डेन पेनिनशुला को जाने वाले जलयान रुक कर समुद्र में जाया करते थे। चीनियों ने जावा को होलिंग (पोलिंग, कलिंग) नाम दिया था (Takakusu, *I-tsing*, p. xlvii)। जावा एक द्वीप था, जिसे तोलेमी (1950 ई०) संस्कृत नाम से जानता था तथा जिसका वर्णन रामायण में भी आया है। कलिंग का सीलोन के साथ क्या सम्बन्ध था, इस विषय में देखिये *IA*, VIII, 2, 225.

[1] तोसली (तोसल) एक देश तथा एक नगर, दोनों का ही नाम था। लेवी का मत है कि गंडव्यूह का संकेत दक्षिणापथ में 'अमित-तोसल' के जनपद की ओर है। दक्षिणापथ में ही तोसल नगर है। ब्राह्मण-साहित्य में तोसल को कोशल (दक्षिण) से सम्बन्धित बताया गया है तथा उसे कलिंग से भिन्न कहा गया है। तोलेमी के भूगोल में भी तोसलेई का उल्लेख मिलता है। कुछ मध्यकालीन लेखों (*Ep. Ind.*, IX, 286; XV, 3) में दक्षिण तथा उत्तर तोसल का भी उल्लेख मिलता है।

[2] पुरी में।

[3] गंजम में।

तोसली और समापा[१] नामक स्थानों पर रहनेवाले महामात्रों तथा उच्च अधिकारिंयों को सम्बोधित करते हुए लिखे गये थे । इन्हीं आदेशों में सम्राट् ने अपनी महत्त्वपूर्ण घोषणाएँ की थीं—"सभी प्रजाजन मेरी सन्तान हैं ।" उसने अपने अधिकारियों को निर्देश दिया था कि जनता के साथ न्याय किया जाना चाहिये ।

मगध तथा समस्त भारत के इतिहास में कलिंग की विजय एक महत्त्वपूर्ण घटना थी । इसके बाद मौर्यों की जीतों तथा राज-विस्तार का वह दौर समाप्त हो गया जो बिम्बिसार द्वारा अङ्ग राज्य को जीतने के बाद से आरम्भ हुआ था । इसके बाद एक नये युग का सूत्रपात हुआ । यह युग शान्ति, सामाजिक प्रगति तथा धार्मिक प्रचार का युग था । इसके साथ-साथ इसी समय राजनीतिक स्थिरता तथा कदाचित् सेना की अकुशलता भी दिखाई पड़ने लगी । सैनिक-अभ्यासों तथा क़वायद-परेडों के अभाव में फ़ौज़ की सामरिक भावना दिन-ब-दिन मरने-सी लगी । यहीं से सैन्य-विजय या दिग्विजय[२] का युग समाप्त हुआ तथा आध्यात्मिक विजय या 'धम्म-विजय' का युग आरम्भ हुआ ।

यहाँ अशोक के साम्राज्य तथा उसके विभिन्न भागों के प्रशासन के विषय में कुछ जानने के लिए हमें थोड़ा रुकना पड़ेगा । यहीं से अशोक ने नयी नीति अपनाई थी ।

अशोक के अनुसार, मगध, पाटलिपुत्र, खलटिक-पवत (बाराबर पहाड़ियाँ), कौशाम्बी, लुम्मिनिगाम, कलिंग (तोसली, समापा तथा खेपिंगल-पवत या जौगढ़ चट्टान भी), अटवी (मध्य भारत का वन्य प्रदेश जिसे बौद्ध-ग्रन्थों में आलवी भी कहा गया है), सुवर्णगिरि, इसिला, उज्जयिनी तथा तक्षशिला अशोक-कालीन मौर्य-साम्राज्य के अङ्ग थे ।

तक्षशिला के आगे 'अन्तियको योनराजा' के देश तक मौर्य-राज्य फैला हुआ था । अन्तियको यवन-राजा या एण्टिओकोस-द्वितीय सीरिया का राजा था । यही २६१-२४६ ई० पू० में सीरिया का राजा था । इसके अलावा यवनों, कम्बोजों तथा गान्धारों से आबाद शाहबाज़गढ़ी[३] तथा मानसहरा[४] तक मौर्य-साम्राज्य फैला था । अभी तक यवन राज्य की सही-सही सीमा ज्ञात नहीं हो सकी है । महावंश में इस राज्य का मुख्य नगर अलसन्द माना गया है । कनिंघम व अन्य इतिहासकारों ने इस शहर को अलेक्ज़ेण्ड्रिया (कापिश के पश्चिम में बेगराम) माना है, जो क़ाबुल[५] के पास यूनानी आक्रमणकारी

---

१. समापा की स्थिति जानने के लिये देखिये *Ind. Ant.*, 1923: p. 66 ff.

२ देखिये, **सर-सके विजये** (बूह्लर, हल्ट्ज़ की पुस्तक *Inscriptions of Ashoka*, p. 25 पर उद्धृत) ।

३. पेशावर ज़िले में ।

४. हज़ारा ज़िले में ।

५. देखिये कनिंघम, *AGI*, 18; गेगर, महावंश, 194; सम्भवतः योन राज्य सम्पूर्ण अथवा Paropamisadae प्रान्त का कुछ भाग था ।

सिकन्दर द्वारा बसाया गया था । कम्बोज देश कश्मीर के पुन्छ नामक स्थान के समीप राजापुर या राजौर प्रदेश में पड़ता था । इसी राज्य में काफ़िरिस्तान व आसपास के पड़ोसी क्षेत्र भी शामिल थे । मौर्य-काल में गन्धार देश सम्भवतः सिन्ध के पश्चिम में था । इसके अन्तर्गत उत्तरापथ[1] प्रान्त की राजधानी तथा मौर्य-उपराजा द्वारा शासित तक्षशिला नहीं आता था । स्वात और क़ाबुल नदियों[2] के संगम पर बसा पुष्करावती नगर गन्धार की राजधानी था । कुमारस्वामी ने मीर ज़ियारत या बला हिसार को ही प्राचीन पुष्करावती माना है ।

ह्वेनसांग के लेखों[3] तथा कल्हण की राजतरंगिणी[4] से यह सिद्ध हो गया है कि कश्मीर अशोक के साम्राज्य के ही अन्तर्गत था । कल्हण ने कहा है—'धर्मात्मा अशोक ने पृथ्वी पर राज्य किया । इस राजा ने अपने को पापमुक्त करके जिन-मत ग्रहण किया । इसका राज्य शुष्कलेत्र और वितस्तात्र तक फैला हुआ था, जहाँ कि अशोक के अनेक स्तूप भी थे । वितस्तात्र नगर के धर्मारण्य-विहार में अशोक ने एक चैत्य बनवाया था, जिसकी ऊँचाई तक मनुष्य की दृष्टि जा न सकती थी । इसी तेजस्वी राजा ने श्रीनगरी बसायी । इस पापरहित सम्राट् ने विजयेश्वर के मंदिर के समेण्ट के बने अन्दरूनी हिस्से को हटवाकर उसकी जगह पत्थर जड़वाया । इसने विजयेश्वर के मंदिर में तथा उसके समीप दो मंदिर बनवाये, जो अशोकेश्वर कहलाते थे ।'' अशोक जिन अर्थात् बौद्धधर्म का अनुयायी था तथा उसने अनेक स्तूपों का निर्माण कराया था । यह विवरण अशोक-महान् के लिए ही आया है । कल्हण ने स्वयं लिखा है कि इस विवरण का अधिकांश उन्हें अपने पूर्ववर्ती इतिहासकार छविल्लाकर से प्राप्त हुआ है ।

कालसी, रुमिन्देई तथा निगालि सागर के अशोक-स्तम्भों पर खुदे लेखों से सिद्ध है कि देहरादून ज़िला तथा तराई-क्षेत्र भी अशोक के साम्राज्य के अन्तर्गत था । ललितपाटन और रामपुरवा नामक स्थानों पर जो इमारतें मिली हैं, उनसे सिद्ध होता है कि नेपाल की घाटी तथा चम्पारन ज़िला भी अशोक के अधीन था । अशोक के क्षेत्रों में भी अशोक के शासन का उल्लेख मिलता है । इस अभिलेख में नाभक के नाभपंथियों की चर्चा आई है । सम्भवतः नाभक को ही फ़ाहियान[5] ने 'ना-पी-किया' लिखा है । यह स्थान कपिलवस्तु[6] से दक्षिण-पश्चिम की ओर १० मील की दूरी पर है तथा ककुच्छन्द बुद्ध का जन्म-स्थान है ।

---

[1] देखिये कलिंग-लेख, दिव्यावदान, p. 407.

[2] देखिये *Carm. Lec.*, 1918, p. 54; *Indian and Indonesian Art*, 55.

[3] Watters, Vol. I, pp. 267-71.

[4] I. 102-106.

[5] Legge, 64.

[6] ब्रह्म (वैवर्त ?) पुराण के अनुसार, नाभिकपुर उत्तर कुरु प्रदेश में है (देखिये हल्ट्ज़, *CII*, Vol. *I*, p. xxxixn) । श्री एम० गोविन्द पाई (*Aiyangar Com. Vol.*, 36) हमारा ध्यान नभकानन (दक्षिणी लोगों) की ओर आकर्षित करते हैं । इसका उल्लेख महाभारत (vi, 9, 59) में भी मिलता है । मौर्य-साम्राज्य

बूह्लर के अनुसार, तेरहवें अभिलेख में आदिवासियों की विश तथा वज्रि (वृजिक) नामक दो जातियों का उल्लेख है। अन्य इतिहासकार बूह्लर के मत से सहमत नहीं हैं। वे 'विसयम्हि' को 'राजा की भूमि' के रूप में स्वीकार करते हैं। इसलिए अशोक के अभिलेख में 'वज्रि' तथा 'विसात' के बारे में कोई ऐसा विवरण नहीं मिलता जो संशयरहित कहा जा सके।

प्राचीन इतिहासकारों की कृतियों से पता चलता है कि गंगारिदी (Gangaridae), अर्थात् बंगाल[1] भी औग्रसैन्य (Agrammes) के समय से ही मगध साम्राज्य का एक अङ्ग था। औग्रसैन्य नंदवंश[2] का अन्तिम राजा था। इतिहासकार प्लिनी के अनुसार, गंगा का समस्त तटवर्त्ती भाग पालिबोथ्रि, अर्थात् पाटलिपुत्र के शासकों के ही अधीन था।[3] दिव्यावदान[4] में कहा गया है कि अशोक के समय तक बंगाल मगध-साम्राज्य का ही एक अङ्ग था। ह्वेनसांग को भी ताम्रलिप्ति और कर्णसुवर्ण (पश्चिमी बंगाल), समतट (पूर्वी बंगाल) तथा पुण्ड्रवर्धन (उत्तरी बंगाल) में अशोक के स्तूप देखने को मिले हैं। कामरूप (असम) कदाचित् मौर्य-साम्राज्य के बाहर पड़ता था। चीनी यात्री ह्वेनसांग को उस देश में अशोक के स्तूप देखने को नहीं मिले।

हमने ऊपर देखा है कि एक बार दक्षिण में तिनवेल्ली[5] जिले की पोदियिल

की उत्तरी सीमा के सम्बन्ध में हमारा ध्यान दिव्यावदान (p. 372) के एक पैरा की ओर आकृष्ट है, जिसमें बताया गया है कि अशोक ने स्वश (खश ?) प्रदेश पर विजय पा लिया था। चीनी यात्रियों (Watters, *Yuan Chwang*, II, p. 295) की जनश्रुति के अनुसार, अशोक के राज्य-काल में तक्षशिला से निर्वासित व्यक्ति खोतेन के पूर्व में जा बसे थे।

[1] वंग के विषय में प्राचीन उल्लेख के लिये लेवी-कृत *Pre-Aryen et Pre-Dravidien dans l'Inde* देखिये। इसके अर्थ के लिए 'मानसी-ओ-मर्मवाणी', श्रावण, 1336 देखिये। बहुत से विद्वान् इसका उल्लेख ऐतरेय आरण्यक में भी पाते हैं, परन्तु इसमें संदेह है। बोधायन ने इसे अपवित्र देश कहा है तथा पतञ्जलि ने इसे आर्यावर्त्त से अलग किया है। परन्तु, मनुसंहिता के पूर्व ही इसे आर्यदेश बना लिया गया था, क्योंकि आर्यावर्त्त की पूर्वी सीमा सागर तक जा चुकी थी। जैनियों की 'प्रज्ञापना' में अंग तथा वंग को आर्यों का ही एक वर्ग बताया गया है। वंग का सर्वप्रथम उल्लेख कदाचित् नागार्जुनिकुण्ड-लेख में मिलता है।

[2] देखिये मैक्रिंडल-कृत, *Inv. Alex.*, pp. 221, 281.

[3] देखिये *Ind. Ant.*, 1877, 339; *Megasthenes and Arrian* (1926), pp. 141-42.

[4] P. 427; देखिये स्मिथ-कृत *Ashoka*, तृतीय संस्करण, p. 225. महास्थान-लेख में, जिसका सम्बन्ध मौर्य-काल से है, अशोक का कोई उल्लेख नहीं मिलता।

[5] श्री० एस० एस० देसीकर (*IHQ*, 1928 p. 145) का विचार है कि वेंकट पर्वत ही वह अंतिम स्थान था, जहाँ तक मौर्य पहुँचे थे। प्रो० एन० शास्त्री ने तमिल भाषा में प्रचलित जनश्रुति पर अधिक बल दिया है (देखिये *ANM*, pp. 253 ff)।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पहाड़ियों तक मौर्य-सेनायें पहुँच गई थीं। अशोक के समय में मौर्य-साम्राज्य की सीमा नेल्लोर के पास पेनार नदी तक ही रह गई थी। तमिल राज्यों को मौर्य-साम्राज्य का 'प्रत्यन्त' या सीमावर्ती राज्य कहा गया है। यह राज्य मौर्य-साम्राज्य से अलग माना गया है। मौर्य-सीमा सम्भवतः दक्षिण में मैसूर के चितलद्रुग ज़िले तक ही थी। दक्कन का समूचा भाग इसिला और समापा के महामात्रों--सुवर्णगिरि[1] और तोसली द्वारा शासित था। इसके अतिरिक्त 'आटवि' या वन्य अधिकारी[2] भी शासन-संचालन में मदद करते थे। किन्तु, साम्राज्य के अन्दर नर्मदा, गोदावरी तथा महानदी के दोनों किनारों के आसपास के कुछ क्षेत्र ऐसे थे, जो मौर्य-साम्राज्य की सीमा के बाहर माने जाते थे। अशोक ने वनों, देश के भीतर (विजित या राजविषय) तथा सीमाओं पर रहनेवालों को वर्गीकृत किया था। सीमाओं को 'अन्ता-अविजिता' माना जाता था और उनके बारे में विशिष्ट व्यवहार के शिलालेख प्राप्त हुए हैं। इसके अलावा आन्ध्र, पालिद (पालद, पारिंद), भोज, रठिक (रिष्टिक, राष्ट्रिक ?) भी साम्राज्य के निवासी थे। इन लोगों के साथ 'विजितों' तथा 'अन्ता-अविजितों' के मध्य का व्यवहार किया जाता था। डॉ० डी० आर० भण्डारकर तथा अन्य विद्वानों का कहना है कि पाँचवें तथा तेरहवें अभिलेख में जो 'पितिनिक' या 'पेत्तनिक' शब्द आया है, उसे कोई स्वतन्त्र-सा नाम न समझकर रिष्टिक या रठिक (पाँचवें अभिलेख) व भोज का विशेषण मानना चाहिये। इन विद्वानों ने हमारा ध्यान अंगुत्तर निकाय[3] के उस अंश की ओर आकृष्ट किया है जिसमें 'पेत्तनिक' शब्द आया है और इसका अर्थ वह व्यक्ति कहा गया है जो पिता[4] की सम्पत्ति का उपयोग करता हो। डॉक्टर बरुआ उक्त मत से सहमत नहीं हैं। वे पालि उद्धरणों व बुद्धघोष का स्पष्टीकरण प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि 'रठिक' और 'पेत्तनिक' दो अलग-अलग उपाधियाँ थीं।

---

[1] इस नगर की स्थिति के सम्बन्ध में थोड़ा-सा संकेत कोंकण तथा खानदेश के अंतिम मौर्यों, जो कि दक्षिणी वायसराय के उत्तराधिकारी थे, के लेखों में मिलता है (देखिये *Ep. Ind.*, III, 136)। चूँकि ये मौर्य-लेख थाणा ज़िले (*Bomb Gaz.*, Vol. I. Part II, p. 14) के उत्तर में 'वाद' नामक स्थान पर खानदेश (उपर्युक्त, 284) में वाघली नामक स्थान पर मिले हैं, अतः सुवर्णगिरि सम्भवतः उसी के आसपास कहीं था। आश्चर्य की बात है कि सोनगिरि नामक स्थान खानदेश में है। हल्ट्ज़ (*CII*, p. xxxviii) के अनुसार, सुवर्णगिरि हैदराबाद राज्य में मस्की से दक्षिण तथा विजयनगर के भग्नावशेष के उत्तर में स्थित कनकगिरि ही है। 'इसिला' सम्भवतः 'सिद्दापुर' का प्राचीन नाम हो सकता है।

[2] देखिये Edict XIII.

[3] देखिये III, 76, 78 तथा 300 (P. T. S.)।

[4] देखिये, *Ind. Ant.*, 1919, p. 80; हल्ट्ज़, *Ashoka*, 10; *IHQ*, 1925, 387. अन्य विद्वान् पितिनिकों को पैठानक अथवा पैठण का निवासी बताते हैं। कुछ तो उन्हें पैठण के सातवाहन-शासकों की संतति बताते हैं (देखिये Woolner, *Ashoka Text and Glossary*, II, 113 तथा *JRAS*, 1923, 92; बरुआ, *Old Bramhi Inscriptions*, p. 211)।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हम देख चुके हैं कि ऐतरेय ब्राह्मण में आन्ध्र जाति का उल्लेख आया है और भोज जाति को दक्षिण[1] के शासक के रूप में दिखाया गया है। इतिहासकार प्लिनी ने मेगास्थनीज के विवरण का हवाला देते हुए कहा है कि आन्ध्र राजा के अधीन अनेक गाँव के साथ-साथ दीवारों एवं बुर्जों से सुरक्षित ३० नगर भी थे। उसकी सेना में एक लाख पैदल सैनिक, २,००० घुड़सवार तक १,००० हाथी थे।[2] आन्ध्र की प्राचीन राजधानी (अन्धपुर) तेलवाह नदी के तट पर स्थित थी। डाक्टर भण्डारकर के अनुसार, तेल या तेलंगिरि नदी को ही तेलवाह नदी कहा जाता था। दोनों ही नदियाँ आन्ध्र प्रदेश तथा मध्यप्रदेश की सीमा पर हैं। लेकिन यह मत कोई सुनिश्चित नहीं है।[3] इतिहासकार बूह्लर ने पुलिन्दों को ही पालिद[4] माना है, क्योंकि वे नर्मदा (रेवा) तथा विन्ध्य-क्षेत्र से सम्बद्ध थे :—

> **पुलिन्द-राज-सुन्दरी नाभिमण्डल निपीत सलिला (रेवा)।[5]**
> **पुलिन्दा विन्ध्य पुषिका (?) वैदर्भा दण्डकैः सह।[6]**
> **पुलिन्दा विन्ध्य मूलिका वैदर्भा दण्डकैः सह।[7]**

पुलिन्दों की राजधानी पुलिन्दनगर भिलसा से अधिक दूर नहीं थी। संभवतः पुलिन्द नगर ही मौजूदा रूपनाथ है, जहाँ अशोक का प्रथम अभिलेख (Minor Rock Edict I)[8] प्राप्त हुआ था।

---

[1] भोज के दूसरे अर्थों के लिए देखिये महाभारत, आदि पर्व, 84, 22; *IA*, V. 177, VI, 25-28; VII. 36. 254.

[2] *Ind. Ant.*, 1877, p. 339.

[3] P. 92 *ante*; जैसा कि Mayidavolu तथा अन्य अभिलेखों से ज्ञात होता है, ऐतिहासिक काल में आंध्रों को कृष्णा तथा गुण्टूर ज़िले में पाया गया था। आंध्र अथवा आंध्रपथ की, प्राचीन लेखों में उल्लिखित, राजधानी धन्नकड, अमरावती के निकट थी। भट्टिप्रोलू-लेख (२०० ई० पू०) के अनुसार, कुबिरक सर्वप्रथम ज्ञात शासक था। हाल ही में ब्राह्मी भाषा का एक लेख (R. E. of Ashoka) करनूल ज़िले में मिला है (*IHQ*, 791, 1931, 817 ff; 1933, 113 ff; *IA*, Feb., 1932, p. 39)। यह लेख मद्रास प्रेसीडेन्सी के आंध्र भाग में पड़ा है। हाल में ही प्राप्त अशोक के लेखों में करनूल ज़िले के येरागुड़ी-लेखों के अतिरिक्त दो नये शिलालेख हैदराबाद राज्य के दक्षिण-पश्चिम कोने में स्थित कोपबल में पाए गए हैं। ये लेख गवीमठ तथा पालकीगुण्डु पर्वत पर मिले हैं। ये छोटे-छोटे शिलालेख की कोटि के हैं।

[4] देखिये हल्ट्ज़-कृत, अशोक, 48 (n. 14)।

[5] सुबन्धु-कृत 'वासवदत्ता'।

[6] मत्स्य पुराण, 114, 48.

[7] वायु पुराण, 55, 126.

[8] महाराज हस्तिन के नवग्राम-लेख (सन् ५१७ ई०) में 'पुलिंद-राज-राष्ट्र' का उल्लेख मिलता है। यह देश परिव्राजक राजाओं के राज्य, अर्थात् आधुनिक मध्य प्रदेश के उत्तरी भाग में डब्बाल राज्य में स्थित था (*Ep. Ind.*, xxi, 126)।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इतिहासकार हल्ट्ज़ (Hultzsch) शाहबाजगढ़ी के पालिदों को पुलिन्द नहीं मानता, क्योंकि गिरनार और कालसी से हमें जो सामग्री प्राप्त हुई है, उसमें 'पालद' और 'पारिन्द' शब्द आये हैं। इनसे वायु पुराण[१] के पारद याद आते हैं। यह शब्द हरिवंश[२] तथा बृहत्संहिता[३] में भी आया है। उक्त ग्रन्थों में उक्त जातियों को शक, यवन, कम्बोज, पह्लव, खश, माहिषिक, चोल तथा केरल जातियों की तरह जंगली जातियों की श्रेणी में रखा गया है। इन्हें 'मुक्तकेश' भी कहा गया है। ऊपर की जातियों में से कुछ उत्तर की हैं और शेष दक्षिण भारत की। अशोक के शिलालेखों में आन्ध्र जाति का उल्लेख आया है। इससे लगता है कि मौर्य-काल में आन्ध्र लोग दक्कन में रहते थे। किन्तु, यहीं इस प्रश्न को सुलझा हुआ नहीं मान लेना चाहिये। इस संबंध में यह जान लेना जरूरी है कि पारदा नदी का उल्लेख नासिक के शिलालेख में मिलता है। इस नदी को सूरत ज़िले में पारदी या पार[४] नदी कहते हैं।

भोज और रठिक जाति के लोग सातवाहन-काल[५] के महारठी तथा महाभोज जाति के पूर्वज थे। भोज लोग सम्भवतः बरार[६] तथा रठिक लोग महाराष्ट्र या समीपवर्ती क्षेत्रों[७] के रहने वाले थे। भोज का अस्तित्व बाद का है तथा तटवर्ती प्रदेश (कन्नड़ देश) के सामन्तों से इनके वैवाहिक सम्बन्ध थे।

पश्चिम में अशोक का राज्य अरब सागर तक फैला हुआ था। साम्राज्य के अन्तर्गत सभी आपरान्त[८] (राज्यों के संघ) शामिल थे। इन संघों में सुराष्ट्र प्रमुख है, जिसका राज्य यवनराज तुषास्फ़ देखता था तथा गिरिनगर (गिरनार) जिसकी राजधानी थी। डॉक्टर स्मिथ का कहना है कि यवनराज का नाम ऐसा है कि वह फ़ारस का मालूम होता है। किन्तु, उपर्युक्त व्याख्या के अनुसार तो यवन धम्मदेव, शक उषवदात (ऋषभदत्त), पथियन सुविशाख तथा कुशान वासुदेव सभी मूलतः भारत के ही

---

[१] अध्याय ८८, 128; देखिये Paradene in Gedrolic (मैक्रिंडल, तोलेमी, 1927), 320.

[२] I, 14.

[३] XIII, 9.

[४] देखिये रैप्सन, *Andhra Coins*, lvi; पार्जिटर के अनुसार, पारद उत्तर-पश्चिम में था (*AIHT*, p. 268); देखिये परादेन, Gedrosia (Ptolemy, 1927 का संस्करण); 320 और परैतकाई, *Ind. Alex.*, 44)।

[५] स्मिथ-कृत, अशोक, तृतीय संस्करण, pp. 169-70.

[६] भोज-कटा, अमरावती में भातकुली।

[७] रामायण (VI, 41. 10) के अनुसार, विदर्भ (बरार) तथा माहिषक (मैसूर) या नर्मदा घाटी के बीच 'रिष्टिक' स्थान था। 'रठीका' उपाधि के रूप में भी प्रयुक्त होती थी। इस अर्थ में इसका प्रयोग येरागुड़ी-लेख में हुआ है (*Ind. Culture*, I, 310; *Aiyangar Com. Vol.*, 35; *IHQ*, 1933, 117)।

[८] सूरपारक, नासिक आदि (मार्कण्डेय के अनुसार, pp. 57, 49-52)।

थे, और हिन्दू थे। यदि यूनानियों तथा अन्य विदेशियों ने भारतीय नामों का अनुकरण किया तो इसमें यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि उनमें से कुछ ने ईरानी नाम भी अपना लिया; अतः यह कहना तर्कसंगत नहीं होगा कि तुषास्फ़ यूनानी नहीं, फ़ारस का निवासी था।[१]

इतिहासकार रैप्सन[२] के विचारानुसार, गन्धार, कम्बोज, यवन, रिष्टिक, भोज, पितिनिक, पालद तथा आन्ध्र लोग न तो अशोक के साम्राज्य के अन्तर्गत थे और न उनकी प्रजा थी। यह अवश्य था कि वे अशोक के प्रभाव में थे। किन्तु, यह तर्क इसलिए नहीं स्वीकार किया जा सकता कि अशोक के पंचम अभिलेख[३] के अनुसार उपर्युक्त जातियों में से ही कई अशोक के यहाँ धर्म-महामात्र के पद पर थे। अनेक की सज़ाएँ (कारावास या प्राणदण्ड) घटाये जाने के भी उल्लेख मिलते हैं। तेरहवें अभिलेख से ऐसा लगता है कि ये लोग राज-विषय (राजा के राज्य) के अन्तर्गत कर लिये गये थे तथा इन्हें सीमावर्त्ती जातियों से अलग भी माना गया है। एण्टिओकोस के राज्य की यूनानी तथा दक्षिण की तमिल (नीच) जाति को सीमावर्त्ती जाति माना गया है। किन्तु एक ओर जहाँ हम रैप्सन के विचारों को नहीं स्वीकार कर पाते, दूसरी ओर हमें डॉक्टर डी० आर० भण्डारकर[४] की यह बात भी स्वीकार करने में कठिनाई मालूम होती है कि अशोक के समय में भारत में यवन तथा अन्य जातियों के सामन्त नहीं थे। यवनराज तुषास्फ़ के उदाहरण से डॉक्टर भण्डारकर की बात तथ्यहीन सिद्ध हो जाती है, क्योंकि अशोक के समय में अन्य धर्ममहामात्रों की तरह तुषास्फ़ भी एक अर्ध-स्वशासन-प्राप्त सामन्त था, यद्यपि उसके कार्यकलाप सम्राट् के ही अधिकार-क्षेत्र के अन्तर्गत रहते थे।

अशोक के साम्राज्य-विस्तार की चर्चा के बाद हम उसके शासन-प्रवन्ध की ओर दृष्टि डालते हैं। अपने पूर्वजों की तरह अशोक ने भी मंत्रि-परिषदीय सरकार (council government) क़ायम रखी। तीसरे तथा छठे अभिलेख में परिषा या 'परिषद्' शब्द का उल्लेख आया है। सेनार्ट ने 'परिषद्' का अर्थ संघ लगाया है, किन्तु बूह्लर ने 'परिषद्' का अर्थ किसी जाति या सम्प्रदाय की कमेटी समझा है। किन्तु, डॉक्टर के० पी० जायसवाल ने अभिलेख में आये 'परिषा' शब्द को अर्थशास्त्र[५] में आये 'मंत्रि-परिषद्' का समानार्थी कहा है। शिलालेखों से यह भी सिद्ध होता है कि अशोक ने अपने पूर्वजों की तरह प्रान्तीय सरकारों की व्यवस्था को भी क़ायम रखा। तोसली,

---

१. देखिये *IA*, 1919, 145; *EHVS*, द्वितीय संस्करण, p. 28-29.

२. *CHI*, pp. 514-15.

३. "वे बंदियों की (आर्थिक) सहायता करने, उनकी बेड़ियाँ तोड़ने तथा उन्हें मुक्त करने में लगे थे।" (देखिये हल्ट्ज़-कृत, अशोक, p. 33)।

४. अशोक, 28.

५. 'महावस्तु' में इनकी तुलना सराजिका परिषा' से कीजिये (देखिये सेनार्ट, Vol. III. pp.362, 392)। भिन्न-भिन्न प्रकार की परिषा के लिए अंगुत्तर निकाय (1, 70) देखिये।

सुवर्णगिरि, उज्जयिनी तथा तक्षशिला के प्रान्त राजवंश के युवराजों (कुमाल या अय-पुत)[1] द्वारा शासित थे ।

सम्राट् तथा राजकुमारों की सहायता के लिए समितियाँ (निकाय) होती थीं । इन समितियों में निम्न वर्गों के अधिकारी होते थे—

१. महामात्र[2] तथा अन्य मुख्य
२-३. राजूक और रठिक
४. प्रदेशिक या प्रादेशिक
५. युत[3]
६. पुलिसा
७. पटिवेदका
८. वचभूमिका
९. लिपिकार
१०. दूत
११. आयुक्त और कारनक

साम्राज्य के प्रत्येक बड़े नगर या ज़िले[4] में महामात्रों की एक समिति रहती थी । शिलालेखों में पाटलिपुत्र, कौशाम्बी, तोसली, समापा, सुवर्णगिरि और इसिला[5]

---

[1] 'आयपुत्त' अथवा 'आर्यपुत्र' का प्रयोग सम्भवतः राजवंश के लिए था । यह भास के 'बालचरित' से भी सिद्ध होता है, जहाँ किसी भाट ने वासुदेव को 'आर्य-पुत्र' कह कर सम्बोधित किया है । पं० टी० गणपत्ति शास्त्री आगे कहते हैं कि 'स्वप्न-नाटक' में महाराज उदयन को सम्बोधित करते समय वासवदत्ता के पिता के सेवक ने आदर व्यक्त करने के लिये 'आर्यपुत्र' का प्रयोग किया है (*Introduction to the Pratima Natak*, p. 32) । जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है, अशोक ने अपने राज्य के एक प्रान्त में यवन को गवर्नर (*episkopas*) नियुक्त किया था ।

[2] अर्थशास्त्र, pp. 16, 20, 58, 64, 215, 237-p 39; राजशेखर, *KM, XLV*. 53.

[3] अर्थशास्त्र (pp. 59, 65, 199) में 'युक्तों' का उल्लेख मिलता है । देखिये रामायण, VI, 217, 34; महाभारत, II, 56, 18; मनु, VIII, 34; शान्ति पर्व (82. 9-15) में 'राजयुक्तों' का उल्लेख भी मिलता है ।

[4] जैसा कि पहले बताया जा चुका है, सम्पूर्ण राज्य अनेक प्रान्तों (दिशा, देश आदि) में विभाजित था । हर प्रान्त ज़िलों में विभक्त था, जहाँ ज़िला-अधिकारी देख-भाल करता था । ज़िलों के अतिरिक्त दुर्ग के आसपास की भूमि को 'कोट्ट-विषय' कहते थे (हल्ट्ज़, p. xl.) । प्रत्येक पुर या नगर में प्रशासकीय विभाग तथा देहातों में जन-पद होते थे, जो ग्रामों को मिला कर बनते थे । जनपद का मुख्य अधिकारी 'राजूक' कहलाता था । 'प्रादेशिक' तथा 'रठिक' उपाधि से ज्ञात होता है कि 'प्रदेश', 'रट्ठ' या 'राष्ट्र' भी होते थे ।

[5] कुछ विद्वानों के अनुसार, श्रावस्ती के महामात्रों का उल्लेख गोरखपुर के निकट राप्ती के तट पर स्थित सोहगौरा-ताम्रलेख में मिलता है, परन्तु इसकी वास्तविक

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के महामात्रों का उल्लेख आया है। कलिंग के अभिलेख में हमें कुछ ऐसे महामात्र मिलते हैं जो 'नगलक' और 'नगल-वियोहालक' कहे जाते थे। अभिलेखों का 'नगलक' या 'नगल-वियोहालक' अर्थशास्त्र[१] के 'नागरक' व 'पौर-व्यावहारिक' के समान लगता है। इसमें सन्देह नहीं कि ये लोग न्याय-प्रशासन[२] का संचालन करते रहे होंगे। प्रथम स्तम्भ-अभिलेख में 'अन्त महामात्र' शब्द आया है, जो अर्थशास्त्र[३] के 'अन्तपाल' तथा स्कन्दगुप्त-कालीन 'गोप्तृ' शब्द के समक्ष लगता है। कौटिल्य के अनुसार, अन्तपाल को कुमार, पौर-व्यावहारिक मंत्रि-परिषद् के सदस्य या राष्ट्रपाल[४] के बराबर वेतन मिलता था। बारहवें अभिलेख में 'इथीझक महामात्र' शब्द का उल्लेख आया है जो महाकाव्यों[५] के स्त्री-अध्यक्ष (guards of ladies) शब्द से मेल खाता है।

जहाँ तक 'राजूक' शब्द का प्रश्न है, डॉक्टर स्मिथ के अनुसार, यह पद कुमार[६] के नीचे होता था तथा इसका अर्थ तत्कालीन गवर्नर था।

अशोक-कालीन शिलालेखों के 'राजूक' शब्द को बूह्लर ने जातकों[७] के रज्जूक तथा 'रज्जुगाहक अमच्च' (खेत नापने वाला या रस्सी पकड़ने वाला) का समानार्थी माना है। चतुर्थ स्तम्भ-अभिलेख के अनुसार, राजूकों की नियुक्ति एक-दो लाख की जनसंख्या पर होती थी तथा इनका मुख्य कार्य जनपदों में जनहित कार्य करना था। अशोक ने राजूकों को किसी को दंडित या पुरस्कृत करने का अधिकार दे रखा था। राजूकों द्वारा अशोक को दिये गये अधिकारों से स्पष्ट है कि ये लोग न्याय-प्रशासन का काम देखते थे। तृतीय अभिलेख तथा चतुर्थ स्तम्भ-अभिलेख के अनुसार, इनका यूत तथा येरागुड़ी-लेख के अनुसार, रठिक लोगों से भी सम्बन्ध था।[८] इतिहासकार स्ट्रैबो[९] के कथनानुसार, अशोक के समय में न्यायाधीशों की एक ऐसी श्रेणी थी जो भूमि की पैमाइश

तिथि का बोध नहीं है (देखिये हार्नेल, *JASB*, 1894, 84;. फ्लीट, *JRAS*, 1907, 523 ff; बरुआ, *Ann. Bhand. Or. Res. Inst.*, xi, i (1930), 32 ff; *IHQ*, 1934, 54 ff; जायसवाल, *Ep. Ind.*, xxii, 2)।

१. Pp. 20, 143 f; देखिये अन्तिगोनिद-क्षेत्र में नगर-प्रमुख (टार्न, *GBI*, 24)।

२. देखिये नगर-धान्य व्यावहारिक, p. 55; नगलक का कार्य कार्यकारिणी का भी हो सकता है, जैसा कि अर्थशास्त्र से ज्ञात होता है (II, अध्याय 36)।

३. P. 20, 247.

४. P. 247.

५. रामायण, II, 16, 3; महाभारत, IX, 29, 68, 90; XV, 22, 20; 23, 12; देखिये अर्थशास्त्र का अंतर्वंशिक।

६. अशोक, तृतीय संस्करण, pp. 94.

७. फ़िक-कृत तथा एस० मैत्र द्वारा अनूदित, *The Social Organisation in North-East India*, p. 148-151.

८. *IHQ*, 1933, 117; देखिये बृहत्संहिता (XV, 11) का रठिक महामात्र।

९. देखिये *H. & F.*, Vol. III, p. 103.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तथा नदियों की देखरेख वग़ैरह करती-कराती थी। ये लोग शिकारियों पर भी नियंत्रण रखते थे और लोगों को उनके अपराध के अनुसार दण्डित करते थे। ऐसे लोगों की एक श्रेणी प्राचीन काल के मिस्र में भी थी। सम्भवतः जातकों[1] में इसी श्रेणी की ओर संकेत करते हुए 'रज्जुगाहक अमच्च' शब्द लिखा गया है तथा पुरस्कार अथवा दण्ड देने के अधिकार उन्हें अशोक के 'राजूक' नामक अधिकारियों से सम्बद्ध करते हैं। अतः सम्भव है कि स्ट्रैबो द्वारा उल्लिखित एग्रोनोमोई (Agronomoi) राजूक तथा 'रज्जुगाहक अमच्च' के समान थे। अर्थशास्त्र[2] में अफ़सरों की एक श्रेणी को 'चोर रज्जुक' कहा गया है, किन्तु केवल 'रज्जुक' शब्द का उल्लेख स्वतन्त्र रूप से कहीं नहीं मिलता।

सेनार्ट कर्न तथा बूह्लर के अनुसार, 'प्रदेशिक' या 'प्रादेशिक' उन अधिकारियों को कहा जाता था जो विभिन्न स्थानों के स्थानीय शासक होते थे। डॉक्टर स्मिथ ने ज़िले के प्रधान अधिकारी को उक्त नाम दिया था। कल्हण की 'राजतरंगिणी'[3] में भी 'प्रादेशिकेश्वर' शब्द आया है। इतिहासकार हल्ट्ज़ ने 'प्रदेशिक' या 'प्रादेशिक' शब्द की तुलना राजतरंगिणी के 'प्रादेशिकेश्वर' शब्द से की है। तृतीय अभिलेख में उक्त वर्ग को भी राजूकों में शामिल कर लिया गया है। उक्त अभिलेख में 'अनुसंयान' अध्यादेश का भी उल्लेख है। अर्थशास्त्र[4] में 'प्रदेष्ट्रि' शब्द आया है। थॉमस[5] ने 'प्रदेशिक' या 'प्रादेशिक' शब्द को 'प्रदेश' से उद्भूत तथा 'प्रदेष्ट्रि' का ही एक पर्याय माना है। 'प्रदेष्ट्रि' नामधारी अधिकारियों का मुख्य कार्य बालि-प्रग्रह (कर वसूलना या हठी सामन्तों का दमन), कण्टक-शोधन (फ़ौजदारी मुक़दमों को देखना), चोर-मार्गण (चोरों का पता लगाना) तथा 'अध्यक्षाणाम् अध्यक्ष पुरुषाणाम् च नियमनम्' (सुपरिण्टेण्डेन्टों तथा उनके सहायकों की देखरेख) आदि था। इन लोगों का सम्पर्क एक ओर समाहर्तृ-वर्ग से होता था, तो दूसरी ओर ये गोपों, स्थानिकों व अध्यक्षों से भी सम्बन्धित थे।[6] यह भी बहुत उचित नहीं है कि 'प्रदेशिकों' या 'प्रादेशिकों' को एक मात्र 'संवाद-प्रेषक' ही मान लिया जाय। सबसे सहज दृष्टिकोण तो यह है कि इन लोगों को अधीनस्थ शासक (subordinate governors) मान लिया जाय। कुछ इसी प्रकार के

---

[1] देखिये मैत्र, फ़िक, p. 148-49.

[2] P. 234.

[3] IV. 126.

[4] संघमुख्य एवं अन्यों के साथ 'इरदा' लेख में 'प्रदेष्ट्रि' का भी उल्लेख मिलता है।

[5] *JRAS*, 1915, p. 97; अर्थशास्त्र, p. 111. विष्णु पुराण (V.26.5) में 'प्रदेश' का अर्थ सामान्यतया परामर्शदाता (counsel) है। एस० मैत्र *Indian Culture*, I, p. 310) का कहना है कि महामात्रों को प्रान्त में 'प्रादेशिक' और केन्द्र में 'राजूक' कहते थे।

[6] देखिये अर्थशास्त्र, pp. 142, 200, 217, 222. जैसा कि ऊपर बताया गया है, 'प्रदेष्ट्रि' का उल्लेख 'इरदा' लेख में भी मिलता है (देखिये *Ep. Ind.*, XXII, 150 ff)।

अधिकारी (Nomarchs, Hyparchs and Meridachs) यूनानी राज्य-प्रशासन की व्यवस्था में भी होते थे । (1)

जहाँ तक 'युत' या 'युक्त' वर्ग के लोगों का प्रश्न है, मनु[१] ने इन्हें 'प्रणष्टाधिगत द्रव्य' (lost property which was recovered) का संरक्षक कहा है। अर्थशास्त्र में इसे 'समुदय' या राजकीय धन[२] कहा गया है, जिसे वे लोग अनुचित ढंग से हस्तगत कर रहे हों। हल्ट्ज़ के अनुसार, ये लोग एक प्रकार के सचिव थे जो महामात्रों के कार्यालयों में सरकारी आदेशों को क़ानूनबद्ध करने के लिए नियुक्त किये जाते थे। 'पुलिसा' (या एजेंट) शब्द भी अर्थशास्त्र[३] के पुरुष या राजपुरुष शब्द का समानार्थी है। हल्ट्ज़ इन लोगों को 'गूढ़ पुरुष' कहता है तथा इनकी तीन श्रेणियाँ—उच्च, निम्न तथा मध्यम[४]—निश्चित करता है। इन लोगों के अधिकार में काफ़ी जनता[५] तथा राजूक लोग होते थे। 'पटिवेदका' (या रिपोर्टर) शब्द अर्थशास्त्र[६] के १६वें अध्याय के 'चारस' शब्द का समानार्थी लगता है। 'वचभूमिक' शब्द सम्भवतः अर्थशास्त्र के २४वें अध्याय[७] में आये 'व्रज' के इन्सपेक्टर या निरीक्षक के अर्थ में आता था। लिपिकार लोग राजाज्ञाओं के लेखक होते थे। द्वितीय अभिलेख में 'चपड' नामक एक लिपिकार का भी नाम आता है। तेरहवें अभिलेख में 'दूत' शब्द आया है जो आजकल के राजदूत का ही समानार्थी रहा होगा। यदि कौटिल्य पर विश्वास किया जाय तो दूतों को तीन श्रेणियों में विभाजित माना जाना चाहिये—निसृष्टार्थाः (Plenipotentiaries), परिमितार्थाः (Charges d'Affares) तथा शासनहार (Conveyor of royal writ)[८]; ये दूतों की तीन श्रेणियाँ थीं। कलिंग के अभिलेख में 'आयुक्त' शब्द का भी उल्लेख आया है। मौर्य-शासन के बाद के युग तथा सीथियन काल में 'आयुक्त' गाँवों के एक प्रकार के अधिकारी[९] हुआ करते थे। गुप्त-काल में ये लोग एक विषय या ज़िले[१०] के इन्चार्ज होते थे। इसके अलावा

---

१. VIII, 34.

२. देखिये महाभारत, ii, 5, 72—कच्चिच्चाय व्यये युक्तः सर्वे गणक लेखकाः।

३. P. 59, 75.

४. महाकाव्य में भी तीन प्रकार के पुरुषों का उल्लेख मिलता है (देखिये महाभारत, ii, 5, 74)।

५. देखिये स्तम्भ-लेख, VII.

६. P. 38

७. P. 59-60.

८. इसी के साथ (हर्षचरित, उच्छ्वास, II, p. 52) 'शासनहार' की तुलना 'लेखहारक' से की जाये।

९. लूडर्स, सूची संख्या 1347.

१०. *Ep. Ind.*, XV, No. 7. 138.

ये लोग राजा द्वारा जोते गये धन के संग्रहकर्त्ता भी होते थे। इस अधिकारी का पूरा नाम 'आयुक्त पुरुष'[१] था। इसी को 'पुलिस' भी कहा गया होगा। अशोक के येरागुड़ी-अभिलेख में मिलने वाला 'कारणक' शब्द शायद तत्कालीन न्याय-अधिकारी, अध्यापक तथा क्लर्कों[२] के लिए प्रयुक्त होता था।

——

State Museum Library
6494
Lucknow

---

[१] फ़्लीट, *CII*, pp. 8, 14.

[२] देखिये 'कर्णिक', अभिलेख तथा लेखाकर्म-अधिकारी (*IHQ*, 1935, 585)। सातवीं शताब्दी के लेखों में 'करण' शब्द का अर्थ 'अधिकरण' (विभागीय) या (प्रवासी, 1350, B.S. श्रावण, 294)। महाभारत (ii, 5, 34) में 'कार्णिक' का अर्थ एक आलोचक के अनुसार 'अध्यापक' है। लेख में यह अधिकारी कुमारों को आदेश देता हुआ कहता है—**धर्मे सर्वेशास्त्रेषु कोविदाः** (तुम्हें धर्म के प्रति जागरूक रहना चाहिए।)

८

मौर्य-साम्राज्य : धम्म-विजय का युग और उसका ह्रास

१. कलिंग युद्ध के बाद अशोक

चक्कवत्ती अहं राजा जम्बुसण्डस्स इस्सरो
मुद्धाभिसित्तो खत्तियो मनुस्साधिपती अहुं
अदण्डेन असत्थेन विजेय्य पठविम् इमम्
असाहसेन धम्मेन समेन मनसासिय।
धम्मेन रज्जम् कारेत्वा अस्मिम् पठविमण्डले
—अंगुत्तर निकाय।

हम पहले ही देख चुके हैं कि कलिंग के युद्ध ने मगध तथा भारत के इतिहास में एक नये युग का सूत्रपात किया है। अपने शासन के प्रारम्भिक १३ वर्षों तक अशोक ने अपने पूर्वजों, यथा बिम्बिसार, महापद्म तथा चन्द्रगुप्त की नीति का ही अनुसरण किया। इसके शासन में भी आरम्भ में देशों को जीतने, अपने राज्य में मिलाने तथा विद्रोहों के दमन का सिलसिला चलता रहा। किन्तु, कलिंग के युद्ध ने नया पट-परिवर्त्तन किया। इस नये युग में वस्सकार और कौटिल्य का राजदर्शन अधिक दिनों तक जीवित न रह सका और देश की राजनीति शाक्य ऋषि के उपदेशों से अनुशासित होने लगी। उक्त नये पट-परिवर्त्तन के बारे में कुछ भी कहने के पूर्व तत्कालीन भारत की धार्मिक तथा सामाजिक परिस्थितियों पर एक दृष्टि डाल लेना ज़रूरी है।

अशोक के समय में भारत की जनता विभिन्न सम्प्रदायों में विभक्त थी। मुख्य-मुख्य सम्प्रदाय इस प्रकार थे—

१. रूढ़िवादी देवपूजक।[1]
२. आजीविक या गोसाल मंखलिपुत्त के अनुयायी।[2]

---

[1] मौर्य-काल में पूजे जाने वाले देवताओं में पतंजलि ने मुख्य रूप से शिव, स्कन्द तथा विशाख का उल्लेख किया है।

[2] मंखलिपुत्त नामक गुरु का जन्म सावत्थी या श्रावस्ती के निकट सरवण में हुआ था। जैन-ग्रन्थकार इस गुरु को अकुलीन परिवार तथा निकृष्ट चरित्र का मानते हैं। बौद्ध-ग्रन्थकार भी इसके अनकूल नहीं लिखते। वस्तुतः वह छठी शताब्दी ईसापूर्व का एक प्रमुख सोफ़िस्ट तथा महावीर का सहयोगी था। समण्णफल सुत्त में 'आजीविक' ने कहा है कि किसी भी चीज़ की प्राप्ति मानवीय प्रयास पर ही नहीं निर्भर करती। कोई भी शक्ति ऐसी नहीं है। सभी जीव नियति के आश्रित हैं (*Dialogues of the Buddha*, Pt. I, p. 71; Barua, *The Ajivikas*, 1920, p. 9)। दिव्या-

३. निर्ग्रन्थ या जैन, ये लोग निगण्ठ नाटपुत्त के अनुयायी थे । निगण्ठ नाटपुत्त को महावीर या वर्द्धमान भी कहा जाता है ।

४. शाक्यमुनि गौतम बुद्ध के अनुयायी ।

५. दूसरे सम्प्रदाय जिनका उल्लेख सातवें स्तम्भ-अभिलेख में मिलता है ।

भारत के तत्कालीन समाज के बारे में चतुर्थ अभिलेख में निम्न विवरण मिलता है—"बहुत पहले से या कई सौ वर्ष पूर्व से पशुवलि में वृद्धि थी । सम्बन्धियों, ब्राह्मणों तथा साधुओं के साथ भी अप्रत्याशित व्यवहार किया जाता था ।"[१] राजा लोग कहने के लिए तो विहार-यात्राओं पर निकलते थे, किन्तु इन यात्राओं के दौरान उनकी आखेट-क्रीड़ायें तथा अन्य प्रकार के मनोरंजन सम्पन्न होते थे ।[२] लोग बीमार होने पर तरह-तरह की मनौतियाँ मनाया करते थे ।[३] पुत्रों व पुत्रियों के विवाह,[४] बच्चों के जन्म तथा यात्राओं के पूर्व लोग कुछ न कुछ मंगल-आयोजन (उत्सव के रूप में) किया करते थे ।[५] औरतें तरह-तरह के व्रत, पूजा तथा त्योहार मनाती थीं, जिनमें से अनेक निरर्थक और सारहीन होते थे ।[६]

अभिलेखों में ब्राह्मणों, कैवर्त (केवट-भोग), श्रमण, भिक्षु तथा भिक्षुणी संघों की चर्चा से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वर्ण (सामाजिक वर्गीकरण) तथा आश्रम (सामाजिक एवं धार्मिक जीवन की विभिन्न अवस्थाओं) का प्रचलन था । दास एवं श्रमिक वर्ग (दास-भटक) की स्थिति सामान्यतः अच्छी न थी । स्त्रियों को पर्दे में रहना पड़ता था । बहु-विवाह प्रचलित था और राज-परिवार की स्त्रियों को स्त्री-अध्यक्ष की देखरेख में रहना पड़ता था । हम आगे चल कर यह भी देखेंगे कि सामाजिक मामलों में अशोक की नीति शान्तिपूर्ण रही और कुछेक विषयों एवं त्याज्य कुरीतियों के अतिरिक्त अन्य किसी भी मामले में इस नीति को क्रान्तिकारी नहीं कहा जा सकता ।

वदान के अनुसार, एक 'आजीव परिव्राजक' बिन्दुसार का ज्योतिषी था (pp. 370 ff) । बारहवीं शताब्दी के एक शिलालेख में आजीविकों पर टैक्स का उल्लेख मिलता है । शिलालेख में यह भी कहा गया है कि उस काल में भी दक्षिण भारत में आजीविक होते थे (See also A. L. Basham, *The Ajivikas*) ।

१. देखिये, बिन्दुसार के साथ अजातशत्रु का व्यवहार, विडुडभ द्वारा शाक्यों की हत्या, पिंडोल के प्रति उदयन की निर्दयता तथा नन्दों द्वारा चाणक्य के प्रति दुर्व्यवहार ।

२. Tours of pleasure, *Cf.* कौटिल्य, p. 332; महाभारत, XV. 1. 18.

विहारयात्रासु पुनः कुरुराजो युधिष्ठिरः
सर्वान् कामान् महातेजाः प्रददाव-अम्बिकासुते ।

३. R. Edict. VIII.

४. 'आवाह' और 'विवाह' के लिए देखिये महाभारत, V. 141. 14; कौटिल्य, VII, 15.

५. मंगल-उत्सवों के हेतु देखिये जातक नं० 87 तथा 163 (हत्थिमंगल); हर्षचरित, II (p. 27 of Parab's Edition, 1918) ।

६. R. Edict IX.

अशोक का धर्म-परिवर्त्तन

इसमें कोई सन्देह नहीं कि अपने पूर्वजों की तरह अशोक भी देवताओं तथा ब्राह्मणों के प्रति निष्ठावान् था। यदि कल्हण के 'कश्मीर का इतिहास' पर विश्वास किया जाये, तो अशोक के इष्ट देवता भगवान् शिव थे। सम्राट् अशोक की नरबलि या पशुबलि में ज़रा भी रुचि नहीं (no scruples) थी। इसके पूर्व उसके भोजनालय में नित्य स्वादिष्ट खाद्य तैयार करने के लिए पशुओं की हत्या की जाती थी। कलिंग के युद्ध में भारी पैमाने पर नर-संहार की बात हम ऊपर ही पढ़ चुके हैं। उस महायुद्ध के विषाद एवं रक्तपूर्ण दृश्य से सम्राट् द्रवित हो गया और उसके हृदय में 'अनुशोचन', अर्थात् घृणा, शोक एवं पश्चात्ताप की भावनाएँ पैदा हो गईं। इसी समय वह बौद्धधर्म की शिक्षाओं से भी प्रभावित हुआ। हमने तेरहवें अभिलेख में पढ़ा है कि कलिंग के साम्राज्य में मिला लिये जाने के बाद सम्राट् ने क़ानूनों का कड़ाई से पालन आरम्भ कर दिया। इस दिशा में उसने 'ध्रमशीलन', 'ध्रमकमत' (क़ानून के प्रति आस्था) तथा 'ध्रमनुशस्ति' का पालन आरम्भ किया।[1]

यद्यपि अशोक ने बौद्धधर्म ग्रहण कर लिया, किन्तु वह देवताओं व ब्राह्मणों का कभी भी विरोधी नहीं था।[2] अन्त समय तक उसने अपने को 'देवानंपिय'—देवताओं का प्रिय—कहलाने में गर्व का अनुभव किया।[3] उसने ब्राह्मणों[4] के साथ किये गये अत्याचारों को अनुचित बतलाया और उनके साथ उदारता का व्यवहार करने की शिक्षा दी। वह बड़ा ही सहिष्णु था। सम्राट् सभी सम्प्रदाय के लोगों का सम्मान

---

[1] महावंश के उल्लेख के अनुसार, कुछ इतिहासकारों का कहना है कि अशोक का धर्म-परिवर्त्तन कलिंग-युद्ध के पूर्व ही हो गया था। यह भी हो सकता है कि युद्ध के पूर्व अशोक बुद्ध का एक साधारण उपासक रहा हो और बाद में उसकी धर्म के प्रति आस्था हो गई हो। किन्तु, इस सम्बन्ध में दूसरे सिद्धान्त के प्रतिपादकों का कहना है कि यदि युद्ध के पूर्व अशोक बौद्ध हो गया होता तो यह नया बौद्ध कलिङ्ग के युद्ध में, जहाँ कि असंख्य लोग मारे गये, अपने को न फँसाता। कतिपय अभिलेखों में अशोक को कलिङ्ग के युद्ध से 'संघ' से संबद्ध कहा गया है। कलिङ्ग-युद्ध के बाद तो धर्म में उसकी आस्था और प्रगाढ़ हो गई। इन अभिलेखों में 'ततो पछा अधुना' का उल्लेख आया है। 'पछा' और अधुना' के प्रयोग से स्पष्ट है कि कलिङ्ग-युद्ध तथा उसके धर्म-परिवर्त्तन में थोड़े ही समय का अन्तर था। माइनर एडिक्ट्स तथा छठे स्तम्भ-अभिलेख से पता चलता है कि अशोक के राज्यारोहण के १२ वर्ष के बाद तथा उपासक होने के २½ वर्ष से राजाज्ञायें धर्म-प्रधान होने लगी थीं। इससे सिद्ध होता है कि अशोक का धर्म-परिवर्त्तन राज्याभिषेक के ९½ वर्ष बाद तथा कलिङ्ग-युद्ध के १½ वर्ष के बाद हुआ।

[2] शाक्य (रूपनाथ), बुद्ध शाक्य (मस्की), उपासक (सहस्राम्)—See, Hultzsch, *CII*, p. xliv. देखिये कल्हण, राजतरंगिणी, I. 102 ff. अशोक निःसन्देह एक बौद्ध था, भाब्रू-अभिलेख से इसकी पुष्टि होती है। अशोक, बुद्ध को 'भगवत' कहता था। अशोक ने बुद्ध की जन्मभूमि तथा उनकी तपोभूमि की तीर्थ-यात्रा भी की थी। अशोक का कहना था कि बुद्ध ने जो कुछ कहा है, ठीक ही कहा है।……… .. ….अशोक सदा 'विनय-समुत्कर्ष' का उपदेशक था।

[3] हम्मूराबी (*Camb. Anc. Hist.*, I, p. 511) के युग की एक उपाधि।

[4] Edict IV.

करता था।[1] उसने 'आतमपासण्ड-पूजा' (अपने ही सम्प्रदाय का सम्मान) के सिद्धान्त को मानने से इन्कार कर दिया—विशेष कर जब उससे दूसरे सम्प्रदाय की अवहेलना करने को कहा गया। उसने अपने को 'आजीविक' साधुओं को समर्पित कर अपनी ईमानदारी सिद्ध की। वह देवों, ब्राह्मणों तथा वर्णाश्रम-व्यवस्था का नहीं, वरन् नर-संहार, उत्सवों की भीड़-भाड़, मित्रों व परिचितों के साथ दुर्व्यवहार का विरोधी था। वह साथियों, सम्बन्धियों, गुलामों, नौकरों आदि के प्रति अनुदारता का भी कट्टर विरोधी था। वह नहीं चाहता था कि पशुबलि आदि करके अश्लील, निरर्थक तथा उत्तेजनामूलक समारोह मनाये जायँ।

परराष्ट्र-नीति में परिवर्त्तन

अशोक के धर्म-परिवर्त्तन का प्रभाव उसकी विदेश-नीति पर भी पड़ा। राजा ने घोषणा की कि कलिंग के युद्ध में जितने लोगों की हत्यायें हुई हैं, या जो क़ैद कर लिये गये हैं, यदि उसका सौवाँ या हजारवाँ भाग भी अब मारा गया या क़ैद किया गया तो यह सम्राट् के लिए खेद का विषय होगा। यदि किसी के भी साथ किसी तरह की ज्यादती होती है तो राजा यथासम्भव उसकी सहायता करेगा और उसे आश्रय देगा। कलिंग के प्रथम अभिलेख में अशोक ने अपनी इच्छा प्रकट की है कि साम्राज्य की सीमा पर अभी जो 'अन्ता-अविजित' (स्वाधीन जातियाँ) हैं, उन्हें भयभीत नहीं होना चाहिये। उन्हें उस पर विश्वास करना चाहिये। उन्हें दुःख नहीं, वरन् सुख दिया जायेगा। सम्राट् के दृष्टिकोण से सत्य की जीत (धम्म-विजय) सबसे बड़ी जीत है। चतुर्थ अभिलेख में सम्राट् ने बड़ी प्रसन्नता से कहा है कि "नगाड़े की प्रतिध्वनि (भेरी-घोष) अब क़ानून की प्रतिध्वनि (धर्म-घोष) के रूप में बदल गई है।" पर, उसने जो कुछ किया, उससे ही वह सन्तुष्ट न हो सका। उसने अपने पुत्रों, पौत्रों आदि से भी युद्धों या विजयों से विरत रहने को कहा (**पुत्र पपोत्र में असु नवम् विजयम् म विजेतविय**म्)। यहाँ पर हम देखते हैं कि लड़ाइयों या जीतों (दिग्विजय) की पुरानी नीति छोड़ दी गई और 'धम्म-विजय' की नीति अपनाई गई।[2] अशोक के इस नीति-परिवर्तन का राजनीतिक प्रभाव उसकी मृत्यु के पश्चात् और सम्भवतः राज्याभिषेक की तिथि से २७ वर्षों के उपरान्त पूर्णरूपेण स्पष्ट दिखायी दिया था। बिन्दुसार से लेकर

---

[1] Edict XII.

[2] अशोक के अनुसार, राजनीति या तलवार की नहीं, वरन् सत्य की विजय ही वास्तविक 'धम्म-विजय' कही जानी चाहिये (*Dialogues of the Buddha*, Part III. 59)। महाभारत में वर्णित विजय की कल्पना कुछ और है (महाभारत, XII, 59, 38-39); हरिवंश (I. 14. 21); कौटिल्य (p. 382) और रघुवंश (IV. 43)। एरियन के अनुसार, भारतीय राजा न्याय-बुद्धि के कारण भारत की सीमाओं से आगे नहीं बढ़ते थे (*Comb. Hist. Ind.*, I. 321)। मेगास्थनीज़ ने भी ऐसा ही मत प्रकट किया है। यहाँ पर यह भी कहा जा सकता है कि 'धम्मविजय' के समर्थक चक्रवर्ती सम्राट् की राजधानी सारनाथ का मुख्य राजचिह्न 'चक्र तथा चिंघाड़ता सिंह' उसकी महत्ता का प्रतीक है (*Cf.* also रामायण, II. 10. 36 : **यावदावर्त्तते चक्रम् तावती मे वसुन्धरा**, *IC*, XV. 1-4, p. 179 f)।

कलिंग के युद्ध तक भारत का इतिहास मगध-साम्राज्य के विकास का युग था। उस अवधि में मगध दक्षिणी बिहार के एक छोटे से राज्य से उन्नति करते-करते एक विशाल साम्राज्य बन गया और उसकी सीमाएँ बढ़कर हिन्दूकुश पर्वत और तमिल देश को स्पर्श करने लगी थीं। कलिंग के युद्ध के बाद एक स्थिरता का युग आया, जिसके अन्त में पुनः पट-परिवर्त्तन हुआ। धीरे-धीरे साम्राज्य का पतन आरम्भ हुआ और वह पुनः उसी स्थिति में पहुँच गया, जहाँ से बिन्दुसार और उनके उत्तराधिकारियों ने उसे आगे बढ़ाया था।

अपने सिद्धान्तों के प्रति पूर्ण निष्ठावान् होने के कारण उसने सीमावर्ती प्रदेशों (प्रचन्त, अन्त, सामंत तथा सामीप) को अर्थात् चोल, पांड्य, सतियपुत्र, केरल-पुत्र, तम्बपन्नि (लंका) और अन्तियको योनराज के राज्यों को अपने साम्राज्य में मिलाने का प्रयास नहीं किया। अन्तियको योनराज को सीरिया (पश्चिम एशिया) का राजा एण्टिओकोस-द्वितीय थियोस माना गया है। इसके विपरीत, अशोक इन राज्यों से मैत्री-सम्बन्ध ही बनाये रहा।

चोल राज्य

चोल देश में त्रिचनापल्ली और तंजोर के ज़िले शामिल थे। इस देश से होकर कावेरी नदी बहती थी। एक दक्षिण भारतीय शिलालेख[1] में कहा गया है कि एक बार शिव ने पल्लव-वंश के महेन्द्रवर्मन-प्रथम से प्रश्न किया कि "धरती के एक मंदिर में खड़ा होकर समस्त चोल देश या कावेरी नदी की शक्ति का अवलोकन करना, क्या यह सम्भव है ?"

जब चालुक्य-वंश के पुलकेसिन-द्वितीय ने लोगों को जीतने का प्रयास किया तो कावेरी की लहरों ने आक्रमण के मार्ग में बाधा खड़ी कर दी। चोल प्रदेश की राजधानी उरइयूर (संस्कृत में उरगपुर) या पुरानी त्रिचनापल्ली थी।[2] इस देश का प्रमुख बन्दरगाह कावेरी के उत्तरी तट पर स्थित था, जिसका नाम काविरीपट्टिनम या पुगार था।[3]

---

[1] Hultzsch, *SII*, Vol. I, p. 34.

[2] सोरस (चोल) तथा इसके मुख्य शासक के बारे में एलियन् का उल्लेख है—"जब यूक्राटीड्स बैक्ट्रियनों पर शासन करते थे, उस समय एक नगर में सोरस नामक एक राजा राज्य करता था। नगर का नाम पेरिमुदा (पैरुमल का शहर) था। इसमें वे मछुए रहते थे, जो प्रातःकाल नौका और जाल लेकर शिकार को निकल जाते थे। उर्गपुर के लिए चोलिक विषय (*Ep. Ind.*, X. 103) देखिए।

[3] चोल राज्य तथा अन्य तमिल राज्यों के लिए देखिये—*CHI*, Vol. I, Ch. 24; Smith, *EHI*, Ch. XVI; कनकसभाई पिल्ले, *Tamils Eighteen Hundred Years Ago*; कृष्णस्वामी आयंगर, *Beginnings of the South Indian History and Ancint India*; के० ए० नीलकंठ शास्त्री, *The Pandyan Kingdom, The Cholas, etc.*

पाण्ड्य राज्य

आजकल के मदुरा और तिन्नवेली ज़िले ही सम्भवतः उस समय का पाण्ड्य देश था । त्रिवांकुर कोचीन राज्य के रामनाड का कुछ दक्षिणी हिस्सा भी इस राज्य में था । पाण्ड्य की राजधानी, कोलकई और मदुरा (दक्षिणी मथुरा) में थी । इस देश से होकर ताम्रपर्णी और कृतमाला या वैगई नदियाँ बहती थीं । कात्यायन ने 'पाण्डु' शब्द से ही 'पाण्ड्य' शब्द की उत्पत्ति माना है । महाभारत तथा कुछ अन्य जातकों[1] में पाण्डवों को इन्द्रप्रस्थ का राजवंश कहा गया है । इतिहासकार तोलेमी के अनुसार, 'पाण्डुवी' जाति का देश पंजाब में था । इसमें कोई शक नहीं कि उत्तरी भारत में 'पाण्डु' नाम का एक राजवंश था । 'पाण्ड्य' और 'पाण्डु' के बीच कुछ सम्बन्ध था, इस बात की पुष्टि इस तथ्य से भी हो जाती है कि उत्तर भारत के सूरसेन राज्य का नगर 'मथुरा' तथा 'पाण्ड्य' की राजधानी 'मदुरा' के नामों में काफ़ी समानता है । मथुरा के राजवंश (शूरसेन) और इन्द्रप्रस्थ के 'पाण्डु' राजवंश के बीच वैवाहिक सम्बन्ध थे और दोनों में काफ़ी घनिष्ठता थी । पण्डैया के बारे में हेराक्लीज़ और मेगास्थनीज़ ने जो कुछ लिखा है, उससे भी पाण्डु, शूरसेन तथा पाण्ड्य वंश के पारस्परिक सम्बन्धों के बारे में कुछ संकेत मिलता है ।[2]

श्री वेंकटेश्वरैयर[3] के मतानुसार, 'सत्यव्रत-क्षेत्र' या कांचीपुर ही पुराना सतियपुत्र प्रदेश था । किन्तु, डॉक्टर आयंगर के अनुसार, कांचीपुर नगर को ही सत्यव्रत-क्षेत्र कहा जाता था, न कि समूचे देश को । और एक बात यह है कि 'व्रत' शब्द 'पुत' में नहीं बदल सकता । डॉक्टर आयंगर डॉ० भंडारकर के विचार से सहमत हैं और सतपुत (Satpute) तथा सतियपुत्रके नाम में समानता मानते हैं । इनके मतानुसार, मलावार के तुलु और नायर जैसे मातृ-प्रधान परिवारों की जातियों का ही सामूहिक नाम सतियपुत्र है ।[4] डॉक्टर स्मिथ[5] के अनुसार, कोयम्बटूर का सत्यमंगलम तालुक़ ही प्राचीन सतियपुत्र था । श्री टी० एन० सुब्रामणियम[6] का कहना है कि कोंगुनाडु प्रदेश कोशर लोगों के शासन में था । ये लोग बड़े ही सत्यप्रिय होते थे । श्री के० जी० शेष अय्यर[7] के अनुसार, सतियपुत्र तथा अतियमान का प्रायः एक ही अर्थ है । यह कुतीरैमलाई का प्रधान था और राजधानी तकडूर (मैसूर) में रहता था । श्री पी० जे०

---

[1] मैं डॉक्टर बरुआ (*Insription of Ashok*, II, 1943, p. 232) के मत से सहमत नहीं हूँ कि युधिष्ठिर का वंश, जो कुरु प्रदेश के इन्द्रप्रस्थ पर शासनारूढ़ रहा, उसका पाण्डु के बड़े पुत्र से कोई सम्बन्ध नहीं है ।

[2] *Ind. And.* 1877, p. 249.

[3] *JRAS*, 1918, p. 541-42.

[4] *JRAS*, 1919; pp. 581-84.

[5] *Ashoka*, third ed., p. 161.

[6] *JRAS*, 1922, p. 86.

[7] *Cera Kings of the Sangam Period*, 17-18; *Cf.* N. Shastri, *ANM*, 25.

थोमा के अनुसार, केरलोल्पत्ति के सत्यभूमि-क्षेत्र को ही 'सतियपुत्र' कहते थे। आज के दक्षिण कन्नड़ के कसेरगोड तालुक तथा मलाबार के कुछ भाग को ही सम्भवतः 'सत्यभूमि' कहा जाता था।[1]

केरलपुत्र (केतलपुतो या केरा) कूपक (सत्य) के दक्षिणी प्रदेश को कहते हैं। यह प्रदेश मध्य त्रिवांकुर कोचीन (करुनगपल्ली तालुक) तक फैला हुआ है। इसके दक्षिण में मूषिक[2] का राजनीतिक भाग है। इस भाग में परियार नदी बहती है जिसे अर्थशास्त्र[3] में सम्भवतः चुर्णी नदी कहा गया है। इसी नदी के तट पर कोचीन के पास इस प्रदेश की राजधानी वञ्जि थी। नदी के मुहाने पर मुज़ीरिस (क्रङ्गनुर) नाम का बन्दरगाह था।

प्राचीन काल में लंका को पारसमुद्र[4] कहा जाता था। इसे ताम्रपर्णी[5] भी

---

१. *JRAS* (1923, p. 412) में B. A. Saletore किसी भी प्रकार 'केरलोल्पत्ति' के शासन की उपेक्षा करने में प्रवृत्त हैं (*Indian Culture*, I, p. 668)। लेकिन Kirfel (*Die Cosmographie Der Inder*, 1920, p. 78) का कहना है कि महाभारत (Bk. VI) के 'जम्बूखण्ड' अनुभाग में मूषकों के साथ; और दक्षिणी जनपदों की सूची में भी सतीय (सतीरथ, सनीप) का उल्लेख आया है। दूसरों के विचार के लिए देखिये—*Ind. Cult.*, Vol. II, pp. 549 ff; *Aiyangar Com. Vol.*, 45-47. G. M. Pai का कहना है कि 'सतिय', और बृहत्संहिता (xiv 27) और मार्कण्डेय पुराण (58. 37) के 'शान्तिक' एक ही हैं। प्लिनी का 'Setae' (*Bomb. Gaz.*, Gujrat, 533) भी देखिये।

२. *JRAS*, 1923, p. 143.

३. F. 75; *Cf.* शुक-संदेश (Aiyar; *Cera Kings*, 94)।

४. Greek Palaesimundu; रायचौधरी, *Ind. Ant*, 1919, pp. 195-96; कौटिल्य के अर्थशास्त्र की टीका, Ch. XI; रामायण, VI, 3.21. लंका को 'पारे समुद्रस्य' स्थित कहा गया है।

लॉ की *Ancient Hindu Polity* (p. 87 n.) पढ़ने से मुझे यह पता चलता है कि इस नाम का समुदाय एन० एल० डे ने भी दिया था। 'सातवाहन = शालिवाहन; कताह = कडारम = किडारम = कन्तोली' निरुक्ति के स्थान पर 'पारसमुद्र = पैलीसिमुन्दु (Palaesimnndu)' कम महत्त्वपूर्ण नहीं है (Dr. Majumdar, सुवर्णद्वीप, 56, 79, 168)।

५. लंका के अन्य नामों के लिए और चक्रवर्ती द्वारा १९२६ में प्रकाशित *Megasthenes and Arrian* (p. 60 n) देखिये। द्वीप के इतिहास के लिए देखिये *Camb. Hist. Ind.*, Ch. XXV; *IHQ*, II. 1, pp. 1 ff. दीपवंश और महावंश के अनुसार, महाराज के साथ भारतीय आर्य यहाँ आये। लाल देश का राजकुमार 'विजय' बंगाल की राजकुमारी का नाती था। यह राज्य गुजरात में तथा कुछ के मतानुसार राढ़ या पश्चिमी बंगाल में था। बार्नेट के अनुसार, दोनों ग्रन्थों का सारांश विजय की कहानी में मिलता है। (*IHQ*, 1933, 742 ff.)।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कहते थे। सम्राट् अशोक के दूसरे तथा तेरहवें अभिलेख में ताम्रपर्णी का उल्लेख मिलता है। डॉक्टर स्मिथ[1] के अनुसार, ताम्रपर्णी का अर्थ लंका नहीं, वरन् तिन्नवेल्ली ज़िले की ताम्रपर्णी नदी था। उन्होंने गिरनार-पाठ 'आ तम्बपन्नि' का उल्लेख करते हुए कहा है कि 'तम्बपन्नि' देश या द्वीप के लिए नहीं, वरन् नदी के लिए आया है। दूसरे अभिलेख में 'तम्बपन्नि' शब्द पाडा के बाद नहीं, वरन् केतलपुतो के बाद आया है। केतलपुतो के साथ ताम्रपर्णी नदी का नाम उतना संगत नहीं पड़ता, क्योंकि ताम्रपर्णी नदी पांड्य देश की है।[2] इसलिए, हम ताम्रपर्णी से लंका का अर्थ समझते हैं। अशोक के समय में देवानंपिय तिस्स लंका का राजा था जिसका राज्याभिषेक-काल २५० या २४७ ईसापूर्व के आसपास माना जाता है।

अशोक का मैत्री-सम्बन्ध दक्षिण के तमिल देशों से ही नहीं था, वरन् यूनानी नरेशों, जैसे सीरिया के राजा एण्टिओकोस-द्वितीय थियोस तथा पश्चिम एशिया के अन्य देशों से भी था। इसके अलावा मिस्र के राजा फ़िलाडेल्फ़स (२८५-२४७ ई० पू०) से भी इसकी मैत्री थी। उत्तरी अफ़्रीका के मग (Maga) राजा से भी अशोक के सम्बन्ध थे। यह राजा २५८ ई० पू०[3] के पहले ही मर चुका था। नोरिस, वेस्टरगार्ड, लैसेन, सेनार्ट, स्मिथ तथा मार्शल[4] के अनुसार २७२ तथा २५५ ई० पू० के बीच एपिरस में राज्य करने वाले सिकन्दर से भी उसकी दोस्ती थी। फिर भी बेलक और हल्ट्ज़ संकेत करते हैं[5] कि तेरहवें अभिलेख का अलिकसूदर, कोरिन्थ का सिकन्दर तथा क्रैटेरस का लड़का कोई बहुत जाना-माना राजा नहीं था। यह पीरस (Pyrrhus) का लड़का तथा एपिरस (Epicus) का सिकन्दर नहीं था।

यद्यपि अशोक अपने पड़ोसी राज्यों की भूमि पर कब्ज़ा नहीं करता था तो भी समय-समय पर उन्हें सलाह देता था कि वे अपने यहाँ अमुक-अमुक संस्थाएँ खोलें। दूसरे शब्दों में यही उसकी आध्यात्मिक विजय का भी तात्पर्य था। आध्यात्मिक विजय को ही अशोक 'धम्म-विजय' मानता था।

'मेरे पड़ोसियों को भी यही पाठ पढ़ना चाहिये।"[6]

"साम्राज्य के पड़ोसियों—चोल, पांड्य, सत्यपुत्र, केतलपुत्र, ताम्रपर्णी तथा ग्रीक राजा एण्टिओकोस तथा उसके पड़ोसी सभी राज्यों में महामहिम सम्राट् की इच्छानुसार ही धार्मिक व्यवस्थाएँ होती थीं।"

---

[1] *Ashoka*, third ed., p. 162.

[2] ऐसे लोग जो ताम्रपर्णी नदी की घाटी में किसी राज्य के बारे में उल्लेख देखना चाहते हैं, उन्हें मौर्य-काल में ऐसे राज्य के अस्तित्व को सिद्ध भी करना होगा, और उसी ढंग से स्पष्टीकरण करना होगा, जैसा कि द्वितीय अभिलेख में दिया गया है।

[3] Tarn, *Antigonos Gonatas*, p. 449 f.

[4] *Monuments of Sanchi*, I, 28 n.

[5] *JRAS*, 1914, pp. 943 ff; *Ins. of Ashoka*, xxxi.

[6] M. R. Edict I.

तेरहवें अभिलेख में अशोक ने घोषणा की है--"सम्राट् के साम्राज्य में सर्वत्र दया के विधान की विजय व्याप्त है। इसके अलावा साम्राज्य के जिन सभी पड़ोसी देशों (६ सौ लीग दूर तक) में एण्टिओकोस तथा अन्य राजागण रहते हैं, वहाँ भी यही क़ानून है। इतना ही नहीं, जहाँ सम्राट् के दूत भी नहीं पहुंच सके हैं,[1] वहाँ भी सम्राट् की दयालुता के क़ानून की आज्ञाओं के आधार पर ही व्यवहार किया जाता है।"[2] निस्सन्देह **बौद्धधर्म** पश्चिमी सीमा तक पहुँच गया था और लोग प्रभावित हुए थे। किन्तु, यूनानी लोग अहिंसा से अधिक प्रभावित नहीं हुए थे। जब अशोक ने शस्त्र-त्याग कर दिया तो एक बार पुनः यवन लोग क़ाबुल की घाटी में घुस आये थे। उन्होंने पंजाब अथवा मध्यदेश तक पहुँच कर सभी प्रदेश को असमंजस की स्थिति में डाल दिया। दक्षिण की धार्मिक यात्राएँ अधिक सफल रहीं। यद्यपि सिंहली क्रॉनिकल में तमिल तथा यवन प्रदेशों में भेजे गये दूतों[3] का उल्लेख नहीं है तो भी लंका तथा सुवन्न-भूमि (दक्षिणी वर्मा के सुमात्रा) को भेजे गये प्रतिनिधियों के नाम हैं। लंका को भेजे गये प्रतिनिधियों का नेतृत्व राजकुमार महेन्द्र ने किया और वह देवानंपिय तिस्स तथा उसकी प्रजा का धर्म-परिवर्त्तन करने में क़ामयाब रहा। अभी तक प्राप्त अभिलेखों में सुवन्नभूमि का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता।

आन्तरिक नीति में परिवर्त्तन

कलिंग की लड़ाई के बाद अशोक के धर्म-परिवर्त्तन का प्रभाव केवल उसकी परराष्ट्र-नीति पर ही नहीं, वरन् घरेलू नीति पर भी पड़ा। चौथे अभिलेख तथा कलिंग-अभिलेख के अनुसार सम्राट् की दृष्टि से समाज में निम्न दोष थे—

१. जीवित पशुओं का बलिदान (आरम्भो)
२. प्राणियों में प्रतिहिंसा (विहिंसा)
३. बन्धु-बान्धवों के प्रति दुर्व्यवहार (असम्प्रतिपति)
४. ब्राह्मणों तथा साधुओं के प्रति दुर्व्यवहार, तथा
५. विभिन्न प्रान्तों में कुशासन

---

[1] यहाँ हमारा तात्पर्य उन देशों से है जहाँ महावंश के अनुसार सम्राट् के प्रतिनिधि गये थे। ऐसे देशों में 'सुवन्नभूमि' भी है।

[2] Buddhism in Western Asia, see Beal, *Si-yu-ki*, II. 378; Alberuni, p. 21; *JRAS*, 1913, 76; Mc'Crindle, *Ancient India as Described in Classical Literature*, p. 185; Eliot, *Hinduism and Buddhism*, Vol. III, pp. 3,450 f; *Cf.* Smith, *EHI*, 4th ed., 197; Burlingame, trans., *Dhammapada Commentary*, Introduction.

[3] कश्मीर, गन्धार और हिमालय के साथ योन का भी नाम आया है। (Geiger, 82)। यह योन प्रदेश सम्भवतः क़ाबुल की घाटी में था। अशोक के शिलालेखों में यह नाम कम्बोज और गन्धार के साथ आया है। Levantine World के उल्लेख की भी एकदम उपेक्षा नहीं की जा सकती। अशोक-युग के धर्म-प्रचार-कार्य में दक्षिणी प्रदेशों का भी नाम आया है। ये प्रदेश महिषमण्डल, वनवास (कनारा क्षेत्र में), अपरान्तक (पश्चिमी तट) तथा महारट्ठ (महाराष्ट्र--गोदावरी की ऊपरी घाटी में) हैं।

प्रथम अभिलेख के अनुसार, अशोक केवल पशुओं के बलिदान को ही नहीं, वरन् राजाओं तथा सम्राटों[१] द्वारा मनाये जाने वाले कुछ उत्सवों (समाजों) का भी विरोधी था। ऐसा उल्लेख हमें कौटिल्य के अर्थशास्त्र[२] में भी मिलता है। डॉक्टर स्मिथ के अनुसार, उत्सव दो प्रकार के होते थे—एक, जिनमें जानवरों की लड़ाई, सुरापान तथा मांस-भक्षण होता था। अशोक इस प्रकार के उत्सवों को बुरा समझता था। दूसरे वे जो आधे धार्मिक और आधे कलात्मक होते थे। ऐसे आयोजन प्रायः सरस्वती के मन्दिर में भी किये जाते थे और अशोक के सिद्धान्तों के उतने प्रतिकूल नहीं पड़ते थे। डॉक्टर थॉमस[३] के अनुसार, खुले स्थानों या प्रेक्षागृहों (स्टेडियम या आडोटोरियम) में आयोजित खेलकूद के आयोजनों या प्रतियोगिताओं की उस समय मनाही थी। महाभारत के विराट-पर्व में इन आयोजनों के बारे में लिखा है—

ये च केचिन्नियोत्स्यन्ति समाजेषु नियोधकाः ।[४]

"वे प्रतियोगी जो ऐसे उत्सवों में कुश्ती में भाग लेते हैं।"

तत्रमल्लाः समापेतुर्दिग्भ्यो राजन् सहस्रसः
समाजे ब्रह्मणो राजन् तथा पशुपतेर् अपि
महाकायाः महावीर्याः कालकंजा इवासुराः ।[५]

"हे राजन्! वहाँ ब्राह्मण तथा पशुपति (शिव) के सम्मान में आयोजित उत्सव में विभिन्न स्थानों से हज़ारों की संख्या में मल्ल लोग (पहलवान) आये थे। वे कालकंज के समान विशाल शरीर तथा प्रभूत शक्ति वाले थे।"

सबसे सादा उत्सव सरस्वती के मन्दिरों में सम्पन्न होता था। इसका उल्लेख वात्स्यायन के कामसूत्र में है (**पक्षस्य मासस्य वा प्रज्ञातेऽहनि सरस्वत्या भवने नियुक्तानां नित्यम् समाजः**)। हल्ट्ज[६] के अनुसार, अभिनय-प्रदर्शन आदि के उत्सव सादे उत्सव (समाज) थे।

सम्राट् अशोक जिन उपर्युक्त उत्सवों को नापसन्द करता था, उन्हें समाप्त कर देना चाहता था। इसके साथ-साथ अशोक प्रजाजनों की इतनी नैतिक और भौतिक उन्नति चाहता था कि मनुष्य देवत्व को प्राप्त हो जाय।[७] वह चाहता था कि यदि

---

[१] मगध और पड़ोस के उत्सवों के लिए विनय (IV. 267) तथा महावस्तु (III. 57 और 383) देखिये।

[२] P. 45.

[३] *JRAS*, 1914, pp. 392 ff.

[४] विराट, 2. 7.

[५] विराट, 13, 15-16.

[६] देखिये *IHQ*, 1928, मार्च, 112 ff.

[७] *Cf*. Minor Rock Edict I. हरिवंश पुराण में एक ऐसे देश का उल्लेख है जिसमें देवता और मनुष्य साथ-साथ रहते थे (भविष्य पर्व, Ch. 32. 1—'देवतानां मनुष्याणां सहवासोऽभवत्तदा ।') हल्ट्ज ने चतुर्थ अभिलेख के 'देव' तथा 'दिव्यानि-रूपाणि' की तुलना की है।

प्रजाजन इहलोक में सुख और परलोक में मोक्ष की प्राप्ति कर लेंगे तो वह उनके ऋण से मुक्त हो जायेगा। उक्त उद्देश्यों की प्राप्ति के निमित्त प्रयोग में लाये जाने वाले साधन चार वर्गों में विभाजित थे—

१. प्रशासकीय सुधार
२. धार्मिक सिद्धान्तों का प्रचार
३. दयालुता के कार्य (मनुष्यों तथा जीवों का कल्याण)
४. धार्मिक सहिष्णुता तथा बौद्ध-मठों में अनुशासन।

(१) प्रशासकीय सुधार—सर्वप्रथम अशोक ने युत, राजूक, प्रादेशिक तथा महामात्रों के त्रिवर्षीय तथा पंचवर्षीय अनुसम्यान (सरकिट) की स्थापना की। जायसवाल तथा डॉक्टर स्मिथ[1] के अनुसार, राजूक और प्रादेशिक से लेकर युतों तक समस्त प्रशासकीय अधिकारियों की हर पाँचवें वर्ष एकसाथ बदली नहीं की जा सकती थी। इन लोगों ने इसे इस रूप में ग्रहण किया है कि प्रशासकीय कार्यकर्त्ताओं का एक केन्द्र से दूसरे केन्द्र में स्थानान्तरण सदा ही होता रहता था। किन्तु, विविध ग्रन्थों में यह कहीं नहीं मिलता कि सभी अधिकारियों की एकसाथ बदली करने की आवश्यकता कभी पड़ी। इन अधिकारियों का पंचवर्षीय नियुक्ति-क्रम वस्तुतः प्रचार मात्र होता था, जबकि महामात्रों की नियुक्ति एवं उनका स्थानान्तरण इस उद्देश्य से किया जाता था कि वे लोग, विशेषतया साम्राज्य के सीमावर्ती दूरस्थ प्रान्तों के महामात्र किसी प्रकार का अन्याय तो नहीं करते, अथवा उन्होंने किसी व्यक्ति को बिना पर्याप्त कारण के बन्दीगृह में डाल तो नहीं रखा या पीड़ित तो नहीं किया।

दूसरे, अशोक ने कुछ नये ओहदे भी क़ायम किये; उदाहरणार्थ, धर्ममहामात्र तथा धर्मयुत।[2] धर्ममहामात्रों पर ब्राह्मणों, यवनों, कम्बोजों, गन्धारों, रिस्टिकों तथा अपरान्तों की रक्षा का भार होता था।

भृत्यों और स्वामियों, ब्राह्मणों और धनिकों (इभ्य)[3], बुड्ढों और असहायों को ये लोग सांसारिक कष्टों, यातनाओं व चिन्ताओं से मुक्त रखने का कार्य करते थे और मुक़दमों की पुनः सुनवाई तथा दी गई सज़ाओं को कम करने का भी काम करते थे। ये उत्तेजना, उद्देश्य तथा पारिवारिक स्थिति को देखकर प्राणदण्ड तक को घटा सकते थे और पाटलिपुत्र, उसके बाहर, दूर के राज्यों, तथा राजवंश के परिवारों में, सर्वत्र रहते थे।

---

[1] *Ashoka*, 3rd edition, p. 164; Mr. A. K. Bose (*IHQ*, 1933, 811) ने 'अनुसम्यान' को एक दरबार माना है। किन्तु, महाभारत (i, 2, 123) में 'पुण्यतीर्थानुसम्यानम्' के उल्लेख से लगता है कि इस सम्बन्ध में कर्न और ब्रूह्लर की उक्तियाँ निरापद हैं (See also, Barua, *Ashoka Edicts in New Light*, 83 ff.)।

[2] 'धम्मयुत' हो सकता है कोई सरकारी पद न हो। इसका अर्थ केवल 'धर्म में आस्थावान्' भी हो सकता है (*Cf.* Bhandarkar, *Ashoka*, 2nd ed., pp. 311, 343.

[3] यहाँ हमें यह भी उल्लेख मिलता है कि उस समय समाज चार वर्गों—ब्राह्मण, क्षत्रिय (इभ्य), वैश्य (आर्य) और शूद्र (भट)——में विभाजित था।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इस प्रकार धर्ममहामात्र लोग साम्राज्य में मिलाये गये (विजित) तथा साम्राज्य के बाहर (पृथिवी) भी फैले रहते थे। इसके विपरीत, धर्मयुत लोग केवल क़ानूनी कार्यों तक ही अपने को सीमित रखते थे । सीमावर्ती देशों की देखरेख 'आवुतिक' लोग करते थे ।[१]

सम्राट् हमेशा प्रजाजनों के सुख-दुःख को जानने के लिए आतुर रहता था । वह विशेष रूप से महामात्रों के कार्यों को जानना चाहता था जिस पर कि उसकी इच्छाओं की पूर्ति निर्भर करती थी। इसलिए उसने पटिवेदकों या संवाददाताओं को आदेश दे रखा था कि जब कभी भी महामात्रों की परिषद् में कोई संकट, मतभेद या कार्य-स्थगन हो जाय, तो मुझे अविलम्ब सूचना दी जाय ।[२]

कलिंग-अभिलेख तथा छठें अभिलेख से यह स्पष्ट है कि अशोक महामात्रों पर सदैव अपनी निगाह रखता था । नगरों के न्याय-विभाग में कार्य करने वाले महामात्रों पर तो उसकी विशेष दृष्टि रहती थी, किन्तु वह राजूकों से विशेष दिलचस्पी रखता था और उनका वह काफ़ी आदर भी करता था । राजूकों की नियुक्ति लाखों प्रजाजनों के ऊपर की जाती थी और सम्राट् की ओर से उन्हें अधिकार होता था कि वे किसी को उपाधियाँ अथवा दण्ड दे सकें । उन्हें ऐसा अधिकार होता था कि वे लोग अपना काम आत्म-विश्वास और निर्भीकतापूर्वक कर सकें । फिर भी सम्राट् दण्डों तथा दण्ड देने की विधियों में एकरूपता चाहता था, इसीलिए उसने आदेश जारी कर रखा था कि "जिन्हें प्राणदण्ड मिल चुका हो और जो कारावासों में बन्द हों, उन्हें तीन दिन का समय विश्राम करने के लिए दिया जाय ।"

सम्राट् ने पशुबलि को रोकने तथा उनके अंग-भंग किये जाने के बारे में भी कुछ निर्देश जारी कर रखे थे । अपने राज्याभिषेक के २७वें वर्ष तक सम्राट् २५ बार कारावास में पड़े अपराधियों को क्षमादान कर चुका था । इससे इस बात का संकेत मिलता है कि सम्राट् अपने राज्याभिषेक की हर जयन्ती पर अपराधियों को क्षमादान देता था ।

(२) धार्मिक सिद्धान्तों का प्रचार (अपराधों का क़ानून)—यद्यपि सम्राट् अशोक बुद्ध के उपदेशों की सत्यता से आश्वस्त, बौद्ध-मठों की पूजा की महत्ता से अवगत, बुद्ध के तीनों सिद्धान्तों से विश्वस्त तथा बौद्ध-भिक्षुओं और साधुओं में अनुशासन और एकता का समर्थक था, फिर भी वह अपनी आस्थाओं को किसी पर लादना नहीं चाहता था । वह आधारभूत नैतिकता के विरोधी रिवाजों और वैसी संस्थाओं को समाप्त करने का भी प्रयास करता था । वह अपनी प्रजा के समक्ष 'सम्बोधि' या 'निर्वाण' के लक्ष्य को नहीं रखता था, वरन् वह स्वर्ग तथा मनुष्यों के देवोपम

---

[१] *Cf.* Hultzsch, *Ashoka*, 100 n 7.

[२] असेम्बली के विवादों के लिए देखिये जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण, III. 7. 6. ब्राह्मण ग्रन्थों में जो 'उपद्रष्टि' शब्द आया है, क्या उसे 'निझती' समझा जाय । कुरु-पांचालों ने 'उपद्रिष्ट' की सहायता से आपसी झगड़ों का समझौता किया (*Cf.* बरुआ, *Ashoka Edicts in New Light*, p. 78) ।

हो जाने के लक्ष्य का आराधक था। उसके अनुसार, स्वर्ग प्राप्त किया जा सकता था, तथा मनुष्य देवताओं से साक्षात्कार कर सकते थे। किन्तु, यह केवल विधियों के पूरा करने से ही नहीं, वरन् पराक्रम या लगन से ही यह सम्भव था। यह भारतीय परम्पराओं के पालन से ही साध्य था। माँ-बाप का आज्ञापालन, जीवों से सहानुभूति तथा सत्य-भाषण आदि गुणों के ग्रहण करने से ही उक्त लक्ष्य की प्राप्ति हो सकती थी। इसी प्रकार उसकी धारणा थी कि शिष्यों को गुरु का आदर करना चाहिये तथा सम्बन्धियों के प्रति मन में सम्मान की भावना होनी चाहिये। तेरहवें अभिलेख में गुरुजनों, माता-पिता तथा शिक्षकों के नाम-स्मरण तथा मित्रों, परिचितों, साथियों, सम्बन्धियों, दासों[1] तथा सेवकों के साथ स्नेहयुक्त सद्व्यवहार का भी उल्लेख मिलता है। सातवें अभिलेख में इन्द्रियों पर विजय, मानसिक शुद्धता, कृतज्ञता तथा आस्था पर अधिक बल दिया गया है। द्वितीय स्तम्भ-अभिलेख में घोषित किया गया है कि "दण्ड-विधान में थोड़ी पवित्रता (अपासिनवे), अधिकाधिक सद्कार्य (बहुकयाने), दयालुता (दया, दाने), स्वतंत्रता, सत्यता तथा शुद्ध के अंश अपेक्षित हैं।"

स्तम्भ-अभिलेखों में आत्म-चिन्तन तथा आन्तरिक दिव्यदृष्टि पर अधिक बल दिया गया है। अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में सम्राट् अशोक अनुभव करने लगा कि नैतिकता के नियमों के बजाय आत्म-दर्शन और आत्म-चिन्तन अधिक महत्त्वपूर्ण है। किन्तु, इसकी सबसे अधिक उपेक्षा उसे राज्य प्राप्त करने के बाद राज्य-भोग के आरम्भ में ही थी।

प्रथम माइनर-शिलालेख से हमें पता चलता है कि आरम्भ के ढाई वर्षों तक अशोक उपासक ही रहा। पहले वर्ष में उसने कोई सक्रिय रुचि नहीं ली। उसके बाद वह संघ में प्रविष्ट[2] हो गया और काफ़ी दिलचस्पी लेने लगा।[3] बाद में उसने घोषणा

---

[1] मौर्य-कालीन भारत में दासता के लिए देखिये Monahan, *Early History of Bengal*, pp. 164-65. यह बात उल्लेखनीय है कि अशोक ने जिस तरह जाति-प्रथा और परदा-प्रथा को समाप्त नहीं किया, उसी प्रकार दास-प्रथा भी समाप्त हो नहीं सकी। उसका सिलसिला चलता रहा। वह केवल तत्कालीन सामाजिक यातनाओं का उन्मूलन करना चाहता था।

[2] इतिहासकार हल्ट्ज़ के अनुसार, अशोक के 'उपासकत्व' में ढाई वर्ष में उसका वह समय भी शामिल है जब वह संघ में प्रविष्ट हुआ था। अशोक के बौद्ध धर्म ग्रहण करने के प्रमाण में उसकी उस मूर्ति का भी उल्लेख किया जाता है जिसमें कि उसे बौद्ध-भिक्षु के वेश में दिखाया गया है (Takakusu, *I-tsing*, 73)। प्राचीन काल में शासक तथा राजनीतिज्ञ लोग साधु हो जाते थे, इसका उल्लेख Luders Ins., No. 1144 में भी है। इसमें यह लिखा है कि सातवाहन राजा कृष्ण के समय में नासिक में कोई 'श्रमण महामात्र' था (मिलिन्दपञ्हो, IV. 6. 49—'एक श्रमण राजा का सन्दर्भ'; Geiger, Trans. महावंश, 240—'कुटकण्ण तिस्स')।

[3] चतुर्थ अभिलेख मे विद्वानों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि अशोक दैवी चमत्कार के हवाई रथों (विमानदसना), हाथियों के रथों (हस्तिदसना) तथा अग्निकुण्ड (अगिखन्धानि) का प्रदर्शन कराकर जनता के बीच बौद्धधर्म का प्रचार करता था।

की कि सभी बड़े-छोटे यह धर्म स्वीकार करें। उसने अपने राज्य में चट्टानों तथा पाषाण-स्तम्भों पर जगह-जगह अपने उद्देश्यों को अंकित कराया।

सर्वप्रथम सम्राट् अशोक ने अपने प्रशासन के ढाँचे का धार्मिक प्रचार के लिए प्रयोग किया।[1] उसने अपनी परिषद् को सदैव धर्म की शिक्षा देने का निर्देश दिया। युतों, राजूकों तथा प्रादेशिकों को आदेश था कि वे अपने दौरे के समय भी सदैव ही धर्म की शिक्षा दें और जिस धर्म का उन्हें प्रचार करना था, वह इस

डॉक्टर भण्डारकर (*Ind. Ant.*, 1912, p. 26) ने पालि 'विमानवत्थु' का उल्लेख किया है जिसमें बहुत से विमानों के प्रदर्शन से यह चेष्टा की गयी है कि लोग अच्छा और निष्पाप जीवन व्यतीत कर उक्त पदार्थों की प्राप्ति करें। अशोक इन विमानों का प्रदर्शन और परेड करवाता था। डॉक्टर भण्डारकर ने 'हस्ति' का अर्थ श्वेत हाथी माना है। बुद्ध स्वयं गजात्मा या गजोत्तम (सर्वश्रेष्ठ हाथी) माने जाते थे। 'अगिखन्ध' या 'अग्निस्कन्ध' के प्रसंग में डॉक्टर भण्डारकर ने ४०वें जातक की ओर ध्यान आकृष्ट किया है। इसके अनुसार, एक बार आग के ढेर पर से बोधिसत्व गुज़रे थे, और भूखे 'पच्चेक बुद्ध' को भिक्षापात्र दिया था। हल्ट्ज़ के अनुसार, 'हस्ति' का तात्पर्य चार महाराजाओं (लोकपालकों) की सवारी से है और 'अगिखन्ध' से परलोक के प्राणियों का अर्थ द्योतित होता है। Jari Charpentier (*IHQ*, 1923, 87) इस शब्द से 'तप्त ताम्र-नर्क' का आशय निकालता है। किन्तु, हल्ट्ज की व्याख्या रामायण (II. 68. 16) की साक्षी के आधार पर अधिक सटीक लगती है, जिसमें 'दिव्यम्' को 'विशिष्ट देवताधिष्ठितम्' कहा गया है। कथासरित्सागर (Penzer, VIII. 131) की 'तारावलोक' नामक कहानी में स्वर्गिक हाथी और अग्नि पर्वत का ज़िक्र बड़ी प्रमुखता से आया है (*Ibid.*, 50-51; III. 6.17)। *Cf.* also *Aggi*-k*hando* in *Jatak*, VI. 330, Coomaraswamy in B. C. Law, Vol. I. 469; गेगर द्वारा अनूदित महावंश (pp. 85, 110) में 'सुत्त' का उल्लेख।

जिन अनुच्छेदों में 'विमानदसना', 'हस्तिदसना' आदि शब्द आये हैं, उनकी व्याख्या *A Volume of Indian Studies presented to Professor E. J. Rapson*, I. p. 546 f. में अलग तरीक़े से की गयी है। कुछ व्याख्याओं के अनुसार, उपर्युक्त प्रकार के प्रदर्शन अशोक द्वारा नहीं, वरन् उसके पूर्व के शासकों द्वारा नगाड़े की ध्वनि के साथ कराये जाते थे। अशोक को इसका श्रेय है कि भेरी की ध्वनि बाद में धर्म-ध्वनि हो गयी। अर्थात्, धार्मिक उपदेशों ने सैनिक गीतों का रूप ले लिया, और वे उपदेश बड़े-बड़े उत्सवों के समय गाये जाने लगे। जो काम पूर्व सम्राट् नहीं कर पाये, उसे अशोक ने सीधे-सादे ढंग से, उपदेश के द्वारा कर दिखाया, और अब राजाज्ञाओं की घोषणा के लिए भेरी का उपयोग किया जाने लगा। Minor Rock Edict में 'राजुके आनपितविये भेरिना जानपदम् आनापयिसति रठिकानम् च' (*Ind. Cult.*, I. p. 310; *IHQ*, 1933, 117)।

[1] एक उल्लेख के अनुसार, अशोक ने अपने यहां से कुछ ऐसे धर्म-प्रचारकों को इधर-उधर भेजा, जिन्हें 'व्युठ' श्रेणी का कहा गया है। यह संकेत सेनार्ट ने

प्रकार था—'माता-पिता का स्मरण करना सबसे भली बात है।[१] मित्रों, परिचितों, सम्बन्धियों तथा ब्राह्मणों एवं सन्यासियों के प्रति उदारता अच्छी चीज़ है। पशुवलि न करना भली बात है, तथा थोड़ा संचय और थोड़ा व्यय बड़ी अच्छी चीज़ है।"

अपने राज्याभिषेक के १३वें वर्ष में सम्राट् अशोक ने धर्ममहामात्र नाम का एक पद स्थापित किया जिसे 'धम्माधिथान' तथा 'धम्मवधि' का कार्य सौंपा गया।

जिस समय अशोक के अधिकारीगण धर्म-प्रचार का कार्य कर रहे थे, उस समय भी वह हाथ पर हाथ रखे नहीं बैठा रहा। उसने अपने शासन के ११वें वर्ष में सम्बोधि[२] का मार्ग ग्रहण किया और विहार यात्राओं के स्थान पर धर्म-यात्रायें आरम्भ कीं। अपनी धर्म-यात्राओं के दौरान अशोक ब्राह्मणों तथा साधुओं का बड़ी आदर-भावना के साथ दर्शन करता था और गुरुजनों के पास स्वर्ण-मुद्राओं की भेंट लेकर जाता था।

अशोक अपने राज्य के ग्रामीण क्षेत्रों (जनपदों) में भी अपने धर्म के उपदेशकों को लेकर जाता था। डॉक्टर स्मिथ के अनुसार, अशोक ने अपने शासन के २१वें वर्ष में (स्मिथ के अनुसार, २४९ ई० पू०)[३] नेपाल की तराई की ओर बड़ी धार्मिक आस्था से यात्रा की थी जिसके चिह्न अभी रुम्मिनदेई तथा निगालि-सागर आदि स्थानों पर उपलब्ध हैं। इससे सिद्ध होता है कि अशोक ने गौतम की जन्मभूमि की यात्रा की थी और कोनाकमन-स्तूप भी देखा था।[४]

किया है तथा स्मिथ ने उसे स्वीकार किया है (*Ashoka*, 3rd. ed., p. 153)। डॉक्टर भण्डारकर ने 'व्युठ' या 'वियुथ' का अर्थ 'दौरे पर निकला अधिकारी' माना है। हल्ट्ज़ के अनुसार, जब अशोक दौरे पर रहता था तो उसे व्युठ कहा जाता था (p. 169, note 8)। इस शब्द का अर्थ प्रातःकाल या सूर्योदय भी होता है; अर्थात्, यह तिथिसूचक शब्द है। इसके अलावा डॉक्टर बरुआ (*Bhandarkar Vol.*, 369) के अनुसार, आदेशों की जो प्रतिलिपियाँ राजधानी से रवाना की जाती थीं, उनके लिए भी यह शब्द प्रयुक्त होता था।

[१] देखिये सिगालोवाद सुत्तन्त (*Dialogues of the Buddha*, III, 173 ff.)।

[२] कुछ इतिहासकारों ने 'सम्बोधि' का अर्थ 'सर्वोच्च ज्ञान' माना है। किन्तु, डॉक्टर भण्डारकर 'सम्बोधि' को बोधिवृक्ष या गया के महाबोधि-मन्दिर का समानार्थी मानते हैं। दिव्यावदान (p. 393) के अनुसार, अशोक ने स्थविर उपगुप्त के साथ बोधि की यात्रा की थी (Hultzsch, *CII*, xliii)।

[३] क्या ये यात्रायें दसवर्षीया थीं?

[४] छः वर्ष पूर्व उसने कोनाकमन स्तूप की मरम्मत करायी थी, किन्तु इस मौक़े पर उसकी उपस्थिति सुनिश्चित नहीं है।

डॉक्टर स्मिथ के अनुसार २४२ ई० पू० में सम्राट् अशोक ने सात स्तम्भ-अभिलेख जारी किये, जिनमें उन कार्यों का संक्षिप्त विवरण था, जो अशोक ने नैतिक कर्त्तव्यों के महत्ता-प्रदर्शन तथा धर्म के उत्थान के लिए किये ।

(३) **दयालुता के कार्य (मनुष्यों तथा जीवों का कल्याण)**—अपने शासन-काल में अशोक ने पशुबलि बन्द करा दी । उत्तेजनकारी उत्सव भी बन्द हो गये । अशोक के राजसी भोजनालय में स्वादिष्ट भोजन बनाने के लिए भी जीवों की हत्या बन्द कर दी गयी । आठवें अभिलेख में इस बात की चर्चा है कि आखेट-क्रीड़ा तथा अन्य मनोरंजन-क्रीडाओं वाली विहार-यात्राएँ भी बन्द कर दी गईं । पाँचवें स्तम्भ-अभिलेख में कुछ नियमों[1] को अंकित किया गया है जिनके अनुसार पशुओं की हत्या करने तथा उनका अंगभंग करने पर रोक लगाई गई थी ।

डॉक्टर स्मिथ ने इस बात का संकेत दिया है कि इस अभिलेख में पशुवध पर प्रतिबन्ध का उल्लेख अर्थशास्त्र में तत्सम्बन्धी उल्लेख से मिलता-जुलता है ।

सम्राट् की ओर से की गई चिकित्सा-व्यवस्था दो प्रकार की थी—एक पशुओं के लिए तथा दूसरी मनुष्यों के लिए । औषधालय भी पशुओं व मवेशियों के लिए अलग-अलग थे । इन औषधालयों में जिस चीज़ की भी कमी पड़ जाती, वह बाहर से मँगा ली जाती थी तथा जड़ी-बूटियों के पौधे भी लगाये जाते थे ।[2] अशोक के समय में राजमार्गों पर आठ-आठ कोस के अन्तर पर कुएँ खोदे जाते । इन कुओं में पानी तक पहुँचने के लिए सीढ़ियाँ होतीं और पशु-पक्षियों तथा मनुष्यों के आमोद-प्रमोद के लिए केले तथा आम के बाग़ लगाये जाते ।

सातवें स्तम्भ-अभिलेख के अनुसार, सम्राट् और रानियों की ओर से दान-वितरण के लिए अधिकारी नियुक्त होते थे । एक माइनर स्तम्भ-अभिलेख में अशोक की दूसरी रानी तीवर की माँ कारुवाकी[3] के दान का उल्लेख मिलता है । चर्चा है कि दूसरी रानी की ओर से आम्रकुन्ज, प्रमोदवन या दानगृह बनवाये गये थे ।

यहाँ पर सम्राट् द्वारा करों की माफ़ी का भी उल्लेख आवश्यक है । उदाहरणार्थ, लुम्मिनिगाम में करों की छूट दी गई थी तथा वृद्धों के लिए हिरन्नपतिविधान, अर्थात् अनुदान की व्यवस्था की गई थी । विभिन्न जनपदों (ज़िलों) तथा गाँवों[4] को स्वशासन का अधिकार प्राप्त था । दण्डविधान (दण्डसमता तथा व्यवहारसमता) में भी एकरूपता थी । इसके अतिरिक्त नैतिक निर्देशों (धम्मनुशस्ति) में समानता बरती जाती थी ।

---

१. धम्म-नियम, देखिये पतंजलि, I, I, I.

२. *Cf.* एण्टिओकोस को बिन्दुसार द्वारा लिखे गये पत्रों में इसका उल्लेख मिलता है ।

३. डॉक्टर बरुआ के अनुसार, यह रानी सम्भवतः महावंश और सुमंगल विलासिनी की असन्धिमित्ता ही थी (*Indian Culture*, I, 123) । डॉक्टर बरुआ का यह कथन अधिक विश्वसनीय नहीं है ।

४. अशोक के समय के लुम्मिनगाम तथा आम-कपोत दो गाँवों का उल्लेख मिलता है (पंचम् स्तम्भ-अभिलेख) ।

(४) **धार्मिक सहिष्णुता तथा बौद्ध-मठों में अनुशासन**—बारहवें अभिलेख में सम्राट् अशोक ने घोषणा की है कि सम्राट् हर धर्म के अनुयायियों का सम्मान करता है, चाहे वे गृहस्थ हों या संन्यासी। यह सम्मान, दान तथा अन्य रूपों में प्रदान किया जाता था। बाराबर गुफा से प्राप्त उल्लेख के अनुसार, सम्राट् ने आजीविक संन्यासियों को बहुत-सा दान दिया था। इससे पता चलता है कि अशोक अपने सिद्धान्तों का कितना पक्का था। ये संन्यासी बौद्धधर्म के नहीं, वरन् जैनधर्म के थे।

सम्राट् हर धर्म की आत्मा के विकास पर अधिक से अधिक बल देता था। सम्राट् का कहना था कि जो व्यक्ति अपने धर्म की ओर आँख मूँदकर दूसरे धर्मों की अवहेलना करते हुए, अपने धर्म का सम्मान करता है और इस प्रकार अपने धर्म की उन्नति चाहता है, वह वास्तव में अपने धर्म का सबसे बड़ा अहित करता है। अशोक धार्मिक सम्मेलनों का प्रशंसक था।

अशोक सदैव इस बात का प्रयत्न करता था कि विभिन्न धर्मों के बीच कोई न कोई समझौता हो जाय, या कोई समान सिद्धान्त प्रतिपादित हो जाय। ठीक इसी प्रकार वह बौद्ध-मठों के मत-मतान्तर या गुटबन्दियाँ पसन्द नहीं करता था। विविध सामग्रियों से इस बात की पुष्टि होती है कि उसके शासन के सत्रहवें वर्ष में पाटलिपुत्र में एक बौद्ध-परिषद् की स्थापना हुई थी। इस परिषद् का मुख्य उद्देश्य बौद्धधर्म की अटकलों व रूढ़ियों को समाप्त कर वास्तविक बौद्ध-सिद्धान्तों (सद्धम्म संघ) का प्रणयन था। सारनाथ-अभिलेख तथा इसी प्रकार के अन्य अभिलेखों में सम्भवतः इसी बौद्ध-परिषद्[1] के अन्य प्रस्ताव अंकित कराये गये थे।

अशोक : निर्माता के रूप में

अशोक ने गुफाओं के आवास को आजीविक संन्यासियों को दे दिया था। इससे उसके कार्यों के एक दूसरे पक्ष का परिचय मिलता है। पाँचवीं शताब्दी में जो पर्यटक पाटलिपुत्र आये, वे सम्राट् अशोक के समय की भवन-निर्माण कला देखकर दंग रह गये। विविध ग्रन्थों में राजमहल, अनेकानेक मठों व मंदिरों के सुन्दर निर्माण का श्रेय अशोक को दिया गया है। अशोक ने ही कोनाकमन के स्तूप को और विकसित कराया था। कोनाकमन (पूर्व बुद्ध) शाक्यमुनि के पूर्वज माने जाते हैं। उसने ही धर्म-स्तम्भों की स्थापना कराई थी। आजकल के इतिहासकार भी अशोक-कालीन भव्य शिल्पकला की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते हैं।[2]

अशोक का चरित्र—उसकी सफलतायें एवं असफलतायें

अशोक भारतीय इतिहास के महान्तम व्यक्तियों में से एक रहा है। वह चन्द्रगुप्त का-सा शक्तिमान्, समुद्रगुप्त का-सा बहुमुखी प्रतिभावाला तथा अकबर का-सा धर्मप्रेमी था। वह श्रम से थकता नहीं था और उसका उत्साह अक्षुण्ण था। वह प्रजा के लिए किये जाने वाले कल्याण-कार्यों में उत्साह दिखाता था। अपनी प्रजा को वह

---

[1] Smith, *Ashoka*, 3rd ed., p. 55.

[2] अशोक की कलात्मक सफलताओं के लिए देखिये *HFAIC*, 13, 57 ff; *Ashoka*, pp.107 ff; *CHI*, 618 ff; Havell, *ARI*, 104 ff. etc.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सन्तानवत् मानता था। सम्राट् अशोक का यशस्वी पितामह अपने शरीर में मालिश कराते समय भी मुक़दमों की मिस्लें देखता जाता था। इसी प्रकार अशोक भी राजमहल में भोजन करते समय या आराम करते समय अपनी प्रजा के समाचारों, संवादों या उसकी शिक़ायतों को सुनता था। सम्राट् अशोक ने एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की थी। इस साम्राज्य में वह क्षेत्र भी सम्मिलित थे जिन्हें उसका सदैव विजयी रहने वाला पितामह भी अपने साम्राज्य में नहीं मिला सका था। इतने पर भी अशोक में विभिन्न धर्मों के साधु-संन्यासियों से धार्मिक सिद्धान्तों एवं अनुशासन-सम्बन्धी विषयों पर दृढ़तापूर्वक वाद-विवाद की क्षमता थी। वह एक महान् कूटनीतिज्ञ था। वह यदि युद्ध के वल पर विशाल साम्राज्य की स्थापना की क्षमता रखता था तो वह ऐसे धार्मिक प्रचार का सुचारु संचालन भी कर सकता था जिसका प्रभाव तीन महाद्वीपों तक फैला और जिसके कारण गंगा की घाटी के एक धार्मिक समुदाय को विश्व के एक महान् धर्म का रूप मिला। बुद्ध की जन्मभूमि का दर्शन करने के लिए नेपाल की तराई के जंगलों की खाक छानने वाला यह सम्राट् बौद्ध धर्म के विरोधी ब्राह्मणों एवं जैनियों का भी आदर करता था। उसने दूसरे धर्मों के विचारकों एवं साधुओं के लिये गुफाएँ बनवाई। ब्राह्मणों एवं श्रमणों को भारी मात्रा में स्वर्ण-मुद्रायें देने के उद्देश्य से दूर-दूर की यात्रायें करने वाले इस सम्राट् ने यवनों को भी सरकारी पदों पर नियुक्त किया जबकि यवन देशों में न ब्राह्मण थे, न श्रमण। सम्राट् अशोक ने उस समय विभिन्न धर्मों के प्रति प्रेम तथा सहिष्णुता का उपदेश दिया जब चतुर्दिक् धार्मिक कट्टरता का बोलबाला था तथा विघटनात्मक प्रवृत्तियाँ जैन-मन्दिरों एवं बौद्धमठों में सक्रिय थीं। युद्ध में, धार्मिक अनुष्ठानों, राज-परिवार की क्रीड़ाओं एवं सामाजिक उत्सवों में जिस समय हिंसा का बोलबाला था, उस समय भी सम्राट् ने अहिंसा का उपदेश दिया। उसने सैनिक अभियानों का परित्याग किसी पराजय के फलस्वरूप नहीं किया, वरन् कलिंग-युद्ध में अपनी शानदार विजय के बाद इस नवीन नीति को अपनाया। एक समृद्ध एवं शक्तिशाली साम्राज्य का स्वामी होते हुए भी उसने संतोष तथा उदारता की नीति अपनाई थी। उसमें क्षमाशीलता तथा सत्यप्रियता के गुण समान रूप से विद्यमान थे। कलिंग देश पर संकट की घटा का उसने जिन ज्वलंत शब्दों में वर्णन किया है, वैसा कदाचित् कलिंग के किसी भी देशभक्त योद्धा ने नहीं किया। धर्मप्राण सम्राट् अशोक के आदर्श का प्रभाव उसके बाद भी यथेष्ट रहा। दूसरी शताब्दी में रानी गौतमी बलश्री को इस बात पर गर्व था कि उसका पुत्र अपने शत्रु राजाओं के प्रति भी मैत्रीभाव रख सकता था (कितापराधे पि सतुजने अपानहिंसारुचि)। पाँचवीं शताब्दी तक मगध राज्य के विश्रामगृह तथा औषधालय विदेशियों के आश्चर्य तथा प्रशंसा के विषय बने रहे। गाहड़वाल-वंश के राजा गोविन्दचन्द्र को धर्मप्राण अशोक के आदर्शों से बड़ी प्रेरणा मिली।

हम पहले ही देख चुके हैं कि मौर्यवंशी राजाओं के शासन के प्रारम्भिक काल की राजनीतिक उपलब्धियाँ काफ़ी शानदार रहीं। इस युग में उन केन्द्रोन्मुखी प्रवृत्तियों का चरम विकास हुआ जो बिम्बिसार के समय में अस्तित्व में आई थीं। कलिंग-विजय के बाद तमिल देश को छोड़कर सम्पूर्ण भारत मगध-राज्य के अन्तर्गत आ गया था और लगभग सम्पूर्ण जम्बूद्वीप के एक संगठित राज्य के रूप में ढल जाने का सपना साकार हो गया था।

कलिंग-युद्ध के बाद सम्राट् अशोक ने जिस धम्म-विजय का सिद्धान्त अपनाया,

उस सिद्धान्त से वे परम्परायें आगे नहीं बढ़ सकीं, जिनका सृजन बिम्बिसार से बिन्दुसार तक के राजाओं ने किया था। अभी तक जो प्रशासकीय अधिकारी थे, वे धर्म-प्रचारक के रूप में बदल गये। सशस्त्र द्वन्द्व-युद्ध बन्द हो गये। उत्तरी-पश्चिमी सीमा से हिंसक, आदिवासियों तथा दक्षिण भारत के जंगली पशुओं से मोर्चा लेने वाले लोग अब दयालुता और अहिंसा के संरक्षक बन गये। आखेट-क्रीड़ायें बन्द हो गईं। अशोक के समय में पूरे साम्राज्य की नीति ऐसी हो गई जिसे यदि चन्द्रगुप्त जीवित होता तो वक्र दृष्टि से ही देखता। उस समय देश के उत्तरी-पश्चिमी क्षितिज पर काले बादल दिखाई पड़ने लगे। ऐसे में भारत को एक बार फिर पुरु तथा चन्द्रगुप्त जैसे पौरुष के सेनापतियों की अपेक्षा थी जो यवनों के उपद्रव से देश की रक्षा कर सकते। किन्तु, इस समय तो देश में एक स्वप्नद्रष्टा राज्य कर रहा था। कलिंग की लड़ाई के बाद से मगध के युद्ध-संचालन की शक्ति धीरे-धीरे समाप्त-सी होने लगी और अब पूरी की पूरी शक्ति देश में धार्मिक क्रान्ति के रूप में लगने लगी। इख्नातून के समय में एक बार मिस्र देश की भी ऐसी ही दशा हो गई थी। परिणाम अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण हुआ, जिसकी चर्चा हम अगले पृष्ठों में करेंगे। सम्राट् अशोक के युद्ध की समाप्ति के प्रयासों का अन्ततः वही परिणाम निकला, जो अमेरिकी राष्ट्रपति विल्सन के प्रयासों का निकला था।

डॉक्टर स्मिथ के कथनानुसार, सम्राट् अशोक ४० वर्षों तक राज्य करने के बाद २३२ ईसापूर्व में दिवंगत हुआ। तिब्बती ग्रन्थों के अनुसार, महान् सम्राट् अशोक का देहावसान तक्षशिला में हुआ।[1]

२. बाद के मौर्य-शासक तथा उनकी शक्ति का ह्रास

सम्राट् अशोक के समय में मगध का साम्राज्य उत्तर में हिन्दूकुश पर्वत से लेकर दक्षिण में तमिल देश की सीमा तक फैला हुआ था। किन्तु, जब से अशोक ने दूरस्थ प्रान्तों से अपनी शक्तिशाली सेनाओं को वापस बुलाना आरम्भ किया, साम्राज्य का विघटन आरम्भ हो गया। उनकी शान-शौकत महान् यूलिसेस (Ulysses) के उस धनुष के समान थी, जिसे कोई अन्य कमजोर हाथ नहीं छू सकता था। फलतः एक के बाद एक प्रान्त अलग होने लगे। साम्राज्य के उत्तरी-पश्चिमी द्वार से विदेशी लड़ाकू जातियाँ देश में घुसने लगीं और एक समय ऐसा आ गया कि पाटलिपुत्र और राजगृह के गर्वीले सम्राट् कलिंग और आन्ध्र के सामने भी घुटने टेकने लगे।

दुर्भाग्यवश मेगास्थनीज़ या कौटिल्य जैसे किसी भी इतिहासकार ने मौर्यवंश के अन्तिम राजाओं का वर्णन नहीं किया है। ऐसी स्थिति में कतिपय शिलालेखों तथा कुछेक जैन, बौद्ध तथा ब्राह्मण ग्रन्थों के आधार पर ही मौर्यवंश के अन्तिम राजाओं का विस्तृत तथा क्रमबद्ध इतिहास लिख सकना कुछ असम्भव-सा ही है।

अशोक के कई लड़के थे। सातवें स्तम्भ-अभिलेख में अशोक ने अपने बच्चों द्वारा—विशेष रूप से रानी के राजकुमारों द्वारा—किये गये दान का उल्लेख कराया है। कुछ सम्भवतः अन्तिम श्रेणी के राजकुमार तक्षशिला, उज्जयिनी तथा तोसली में सम्राट्

---

[1] *The Oxford History of India*, p. 116. तिब्बती ग्रन्थ की प्रामाणिकता के बारे में लेखक अपनी ओर से कुछ विशेष नहीं कह सकता।

की सत्ता का प्रतिनिधित्व करते थे। शिलालेखों में महारानी कारुवाकी के पुत्र तीवर[1] का नाम आता है। किन्तु यह राजकुमार कभी सिंहासनासीन नहीं हो सका। इसके अलावा, अशोक के तीन अन्य पुत्रों—महेन्द्र, कुणाल (धर्म-विवर्धन, सुयशस ?) तथा जलौक—के नाम भी प्राचीन ग्रन्थों में मिलते हैं। यह अभी अनिश्चित है कि महेन्द्र, सम्राट् अशोक का पुत्र था, अथवा उसका भाई।

वायु पुराण के अनुसार, अशोक की मृत्यु की बाद उसके पुत्र कुणाल ने आठ वर्ष तक राज्य किया। कुणाल का पुत्र बन्धुपालित उसका उत्तराधिकारी हुआ। उसके बाद इन्द्रपालित राज्य-सिंहासन पर बैठा। इन्द्रपालित के बाद देववर्मन, शतधनुस और बृहद्रथ हुए।

मत्स्य पुराण में अशोक के उत्तराधिकारियों की सूची इस प्रकार है— दशरथ, सम्प्रति, शतधन्वन और बृहद्रथ।

विष्णु पुराण में यह सूची इस प्रकार है – सुयशस, दशरथ, संगत, शालिशूक, शोमशर्मन, शतधन्वन तथा बृहद्रथ।

दिव्यावदान[2] के अनुसार, सम्पदी, बृहस्पति, वृषसेन, पुष्यधर्मन तथा पुष्यमित्र अशोक के बाद हुए। जैन-ग्रन्थकारों ने लिखा है कि राजगृह में बलभद्र[3] नाम का एक मौर्य राजा राज्य करता था।

'राजतरंगिणी' में कहा गया है कि कश्मीर में अशोक का उत्तराधिकारी जलौक राज्य करता था। तारनाथ ने लिखा है कि गंधार में वीरसेन का राज्य था। डॉ० थॉमस के अनुसार, वीरसेन सम्भवतः पोलिबियस[4] (Polybius) के सुभागसेन का पूर्वज था।

विभिन्न ग्रन्थों के तथ्यों में एकरूपता लाना कोई सहज कार्य नहीं है। पुराणों तथा बौद्ध-ग्रन्थों की संयुक्त प्रामाणिकता से कुणाल का अस्तित्व सिद्ध हो जाता है। वह सम्पदी का पिता था। यह बात हेमचन्द्र तथा जिनप्रभसूरि जैसे जैन-ग्रन्थकारों के मत से भी पुष्ट होती है। सम्भवतः दिव्यावदान में एवं फ़ाह्यान द्वारा वर्णित 'धर्म-विवर्धन' और विष्णु तथा भागवत पुराणों में वर्णित 'सुयशस' राजकुमार कुणाल की प्रशस्ति (विरुद) या उपाधि (epithet) के लिए प्रयुक्त हुआ है। कुणाल के राज्याभिषेक के प्रश्न पर भी इतिहासकार एकमत नहीं हैं। कहा जाता है कि वह राजकुमार अन्धा था। इस प्रकार कुणाल की स्थिति प्रायः धृतराष्ट्र के समान थी। वह नाम मात्र के लिए शासक था। शरीर से तो वह राजकाज के योग्य था ही नहीं। उसका प्रिय पुत्र 'सम्प्रति' उसके स्थान पर राजकाज सँभालता था। जैन तथा बौद्ध ग्रन्थों में सम्प्रति को ही अशोक का उत्तराधिकारी कहा गया है।

---

[1] तीवर नाम के लिए देखिये *The Book of Kindred Sayings*, II, pp. 128-30.

[2] P. 433.

[3] Jacobi, *Introduction to the Kalpasutra of Bhadrabahu*, 1879, p. 9.

[4] *Ind. Ant.*, 1875, p. 362; *Camb. Hist. Ind.*, I, p. 512.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वायु पुराण के अनुसार, बन्धुपालित तथा दिव्यावदान और जिनप्रभसूरि के 'पाटलिपुत्र-कल्प'[1] के अनुसार, सम्पदी (सम्प्रति) कुणाल का पुत्र था। तारनाथ[2] के अनुसार, कुणाल के पुत्र का नाम विगतशोक था। या तो ये सभी राजकुमार भाई-भाई थे, या ये सब नाम एक ही राजकुमार के थे। यदि पहले का मत सत्य माना जाय तो राजकुमार बन्धुपालित का ही नाम दशरथ था। दशरथ का नाम नागार्जुनी पहाड़ियों की गुफाओं के शिलालेखों में मिलता है। इन्हीं गुफाओं को उसने (दशरथ ने) 'आजीविकों' को दान कर दिया था। मत्स्य तथा विष्णु पुराण के अनुसार, शिलालेखों में अशोक के पौत्र दशरथ को 'देवानंपिय' भी लिखा गया है। विभिन्न प्रमाणों के अनुसार, यह सम्प्रति (या संगत) का पूर्वज था।

इन्द्रपालित को हम सम्प्रति या शालिशूक कह सकते हैं, क्योंकि बन्धुपालित को हम दशरथ अथवा सम्प्रति मान रहे हैं। जैन-ग्रन्थों में जैनधर्म के प्रचार के प्रसंग में सम्प्रति का नाम उसी सम्मान के साथ दिया गया है, जिस आदर के साथ बौद्ध-ग्रन्थों में सम्राट् अशोक का नाम मिलता है। जिनप्रभसूरि[3] के 'पाटलिपुत्रकल्प' के अनुसार, भारत का सम्राट् तथा कुणाल का पुत्र सम्प्रति पाटलिपुत्र में ही हुआ था। उसके अधीन तीन महाद्वीप (**त्रिखण्डम् भरत क्षेत्रम् जिनायतन मण्डितम्**) थे। इस महान् राजा ने विहारों तथा श्रमणों की स्थापना अनार्य-क्षेत्रों में भी की थी।

डॉक्टर स्मिथ ने इस बात का सुदृढ़ आधार प्रस्तुत किया है कि सम्प्रति का राज्य अवन्ती तथा पश्चिमी भारत[4] तक फैला हुआ था। अपने ग्रन्थ 'अशोक'[5] में उन्होंने कहा है कि यह कथन केवल अनुमान ही नहीं है कि अशोक के दो पौत्र थे, जिनमें से एक (दशरथ) राज्य के पूर्वी भाग में तथा दूसरा (सम्प्रति) राज्य के पश्चिमी भाग में राज्य करता था।[6] जैन-ग्रन्थकारों ने सम्प्रति को पाटलिपुत्र तथा उज्जयिनी दोनों का शासक कहा है। पुराणों में इसे मगध में अशोक का उत्तराधिकारी कहा गया है।

शालिशूक का अस्तित्व केवल विष्णु पुराण से ही नहीं, वरन् गार्गी संहिता[7]

---

[1] परिशिष्टपर्वन्, IX, 51-53.

[2] *Ind. Ant.*, 1857, 362.

[3] *Bomb. Gaz.*, I. i. 6-15; परिशिष्टपर्वन्, XI. 65.

[4] परिशिष्टपर्वन्, XI. 23—**इतश्च सम्प्रति नृपो ययाव उज्जयिनीम् पुरीम्।**

[5] तृतीय संस्करण, p. 70.

[6] जैन-सामग्री के बावजूद प्रोफ़ेसर ध्रुव का मत है कि "इतिहासकारों का कहना है कि कुणाल की मृत्यु के बाद उसके पुत्रों—दशरथ और सम्प्रति—के बीच मौर्य-राज्य बँट गया (*JBORS*, 1930, 30)।" प्रो० ध्रुव द्वारा बताई गई युग-पुराण की सामग्री अधिक प्रामाणिक नहीं है।

[7] Kern, बृहत्संहिता, p. 37. गार्गी संहिता में आया है कि 'शालिशूक नाम का राजा बड़ा ही धूर्त तथा झगड़ालू था। वह धार्मिक के रूप में अधार्मिक (**धर्मवादि अधार्मिकः**) था, और बड़ी निर्दयता से प्रजा का दमन करता था।'

तथा पार्जिटर द्वारा उल्लिखित वायु-पाण्डुलिपि से भी प्रमाणित हो गया है। उसे सम्प्रति का पुत्र वृहस्पति भी माना जा सकता है। दिव्यावदान के अनुसार भी वृहस्पति जब तक दूसरे राजवंश का नहीं सिद्ध होता, उसे सम्प्रति का पुत्र ही मानना होगा।

देववर्मन तथा सोमशर्मन कदाचित् एक ही नाम के दो रूप हैं। इसी प्रकार शतधनुस[1] तथा शतधन्वन भी एक ही नाम के दो स्वरूप हैं। वृषसेन और पुष्यधर्मन का भी अधिक परिचय प्राप्त नहीं है। हो सकता है कि ये दोनों नाम देववर्मन और शतधन्वन के ही दूसरे नाम हों। किन्तु, यह भी सम्भावना है कि ये लोग मौर्यवंश की किसी अन्य शाखा से सम्बन्धित रहे हों।

पुराणों में ही नहीं, वरन् बाण के हर्षचरित में भी, मगध के अन्तिम मौर्य-वंशी राजा बृहद्रथ का नाम आया है। उसके सेनापति पुष्यमित्र ने उसे दबा दिया था जिसे कि दिव्यावदान में मौर्यवंशी कहा गया है और जो ग़लत है। राजवंश की हत्या करने वालों ने मौर्य-राज्य के एक मंत्री को भी क़ैद कर लिया था, ऐसा कहा जाता है।

मगध में राजवंश के समाप्त हो जाने के बाद भी बहुत दिनों तक मगध तथा पश्चिमी भारत में छोटे-छोटे मौर्य-राजे राज्य करते रहे थे। ७३८ ईसवी[2] के कणस्व-शिलालेख में मौर्यवंशी राजा 'धवल' का नाम आया है। डॉक्टर भण्डारकर ने इस राजा का नाम धवलप्पदेव भी लिखा है। ७२५ ईसवी[3] के दबोक (मेवाड़) शिलालेख में इसका नाम आया है। आरम्भ के चालुक्य तथा यादव-वंशियों के इतिहास में मौर्यों के कोंकण तथा खानदेश स्थित सेनापतियों का उल्लेख आया है।[4] ह्वेनसांग ने मगध के मौर्य-शासक पूर्णवर्मन का भी उल्लेख किया है।

---

[1] शतधनु नामक राजा का महत्त्वपूर्ण वर्णन विष्णु पुराण (III. 18. 51) तथा भागवत पुराण (II. 8. 44) में देखिये। उसका शेष परिचय अनिश्चित-सा ही है।

[2] *Ind. Ant.*, XIII. 163; *Bomb. Gaz.*, I. Part 2, p. 284. कणस्व राजपूताना के कोटा राज्य में है। यह असम्भव नहीं कि धवल उज्जैन के उपराजा के वंश का रहा हो। मौर्यों के उल्लेख के लिए देखिये नवसारिका-अनुदान (Fleet, *DKD*, 375)।

[3] *Ep. Ind.*, XII. p. 11. लेकिन देखिये *Ep.*, XX. 122. दूसरे विद्वान् ८१३ ईसवी के मुक़ाबले ७२५ ईसवी को ठीक नहीं समझते।

[4] *Bomb. Gaz.*, I. Part 2, pp. 283-284. बूह्लर (*Ep. Ind.*, III, p. 136) ने संकेत किया है कि कोंकण के ये मौर्य-सेनापति दक़न के उपराजा के वंशज थे। उसने पाठकों का ध्यान इस ओर भी आकर्षित किया है कि महाराष्ट्र देश में भी 'मोर' नाम का राजवंश है। सम्भवतः यह नाम 'मौर्य' का ही एक बिगड़ा हुआ रूप है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि मौर्य-वंश के अन्तिम राजाओं के शासन-काल में मौर्य-साम्राज्य अपने पतन का अनुभव करने लगा था। अशोक की मृत्यु २३२ ईसापूर्व में या इसके आसपास हो गई। इसके २५ वर्ष के अन्दर ही यूनानी फ़ौजें हिन्दूकुश पर्वत को पार करने लगी थीं। हिन्दूकुश पर्वत सम्राट् चन्द्रगुप्त या उसके पौत्र अशोक के साम्राज्य की सीमा था। गार्गी संहिता के 'युग-पुराण' नामक अंश में लिखा है कि शालिशूक के शासन के बाद से मध्यदेश में मौर्यों का पतन होने लगा था।

ततः साकेतम् आक्रम्य पंचालान् मथुरांस्तथा
यवना दुष्टविक्रान्ताः प्राप्स्यन्ति कुसुमध्वजम्
ततः पुष्पपुरे प्राप्ते कर्दमे प्रथिते हिते
आकुला विषयाः सर्वे भविष्यन्ति न संशयः।[1]

"तब यूनानी योद्धा साकेत (अवध में) को जीतकर पंचाल तथा मथुरा पहुँचेंगे और कुसुमध्वज को जीतेंगे। पुष्पपुर (पाटलिपुत्र) पहुँचते-पहुँचते समस्त राज्यों में अराजकता-सी फैल जायेगी।"

अब वह शक्ति कहाँ चली गई, जिसने सिकन्दर के प्रतिनिधियों को खदेड़ दिया था और सेल्युकस की फ़ौजों के दाँत खट्टे कर दिये थे।

महामहोपाध्याय हरिप्रसाद शास्त्री[2] के कथनानुसार, ब्राह्मणों द्वारा पैदा की गई प्रतिक्रिया के फलस्वरूप मौर्य-वंश की नींव हिल गई और समूचा साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया।

ब्राह्मणों के विरोध का मुख्य कारण यह बताया जाता है कि अशोक ने अपने अभिलेखों में पशुबलि के विरोध में उपदेश दिया था। पंडित शास्त्री के कथनानुसार, अभिलेखों में समूचे ब्राह्मण-वर्ग के विरुद्ध लेख अंकित थे और ब्राह्मणों के चिढ़ने की बात यह भी थी कि एक शूद्र राजा ने ये आदेश जारी किये थे। जहाँ तक पहली बात का सम्बन्ध है, पशुबलि के विरुद्ध दिये गये उपदेशों से ब्राह्मणों के प्रति कोई दुर्भावना प्रकट नहीं होती। अशोक के बहुत पहले ही ब्राह्मणों ने अपने सर्वाधिक पवित्र साहित्य—श्रुतियों—में घोषणा कर दी थी कि पशुबलि के विषय में उनकी धारणा अनिश्चित नहीं है। वे निश्चित रूप से अहिंसा में विश्वास करते हैं। मण्डूक उपनिषद्[3] में निम्न श्लोक मिलता है—

प्लवा ह्येते अदृढ़ा यज्ञरूपा अष्टादशोक्तम् अवरम् येषु कर्म
एतच्छ्रेयो येऽभिनन्दन्ति मूढा जरामृत्युं ते पुनरेवापि यन्ति।

"अर्थात्, पशुबलि निम्न कोटि का कार्य है। वे लोग जो इसकी सतत् प्रशंसा करते हैं, नितान्त मूर्ख हैं। वे वृद्धावस्था तथा मृत्यु के पराधीन हैं।" छांदोग्य उपनिषद्[4] में घोर आंगिरस ने अहिंसा पर बल दिया था।

---

[1] Kern, बृहत्संहिता, p. 37.
[2] *JASB*, 1910, pp. 259 ff.
[3] 1. 2. 7; *SBE*, *The Upanishads*, Pt. II, p. 31.
[4] III. 17. 4.

जहाँ तक दूसरी बात का प्रश्न है, हमें यह याद रखना चाहिये कि मौर्यों को शूद्र कहने के सम्बन्ध में पुराण-साहित्य एकमत नहीं है। कुछ पुराणों में यह अवश्य कहा गया है कि महापद्म के बाद उनके राज्य पर शूद्रवंश का अधिकार हो जायेगा।[1] इससे यह नहीं समझा जा सकता कि महापद्म के बाद सभी राजा शूद्र ही हुए थे। जहाँ तक शुंगों और कण्व-वंश का प्रश्न है, वे लोग भी शूद्रों की ही श्रेणी में रखे जायेंगे।[2] मुद्राराक्षस जो बाद की रचना है, उसमें भी चन्द्रगुप्त को शूद्र सिद्ध किया गया है।[3] पहले प्रमाणों से इसका विरोधी तथ्य मिलता है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है[4] कि परिनिब्बान सुत्त में मोरिय (या मौर्य) को क्षत्रिय-वश का कहा गया है। महावंश[5] में भी मौर्यों को क्षत्रिय ही कहा गया है तथा चन्द्रगुप्त को इस वंश का प्रथम राजा माना गया है। दिव्यावदान[6] में चन्द्रगुप्त के पुत्र बिन्दुसार ने एक लड़की से कहा—"त्वं नापिनी अहं राजक्षत्रियो मूर्द्धाभिषिक्तः कथम् मया सार्धम् समागमो भविष्यति ?" अर्थात् "तुम नाई की लड़की हो। मैं अभिषिक्त क्षत्रिय हूँ। मैं कैसे तुम्हारे

---

१. ततः प्रभृतिराजानो भविष्याः शूद्रयोनयः। दूसरे ग्रन्थों में कहा गया है—ततो नृपा भविष्यन्ति शूद्रप्रायास्त्वधार्मिकाः (*DKA*, 25))

२. वास्तविक शूद्र (या अंशतः शूद्र) में नन्दों को भी सम्मिलित किया गया है (गरुड़ पुराण, Ch. 145. 4; Watters, I. 322; II. 252)। पश्चिमी भारत और सिन्धु-घाटी के कुछ राजकुमारों को भी शूद्र कहा गया है (Pargiter, *Dynasties of Kali Age*, pp. 54-55)।

३. इस नाटक में चन्द्रगुप्त को 'नन्दान्वय' तथा 'वृषल' कहा गया है। पहले नाम के अनुसार, नन्द लोग 'अभिजन' थे। बाद में इसमें चन्द्रगुप्त को 'मौर्यपुत्र' भी कहा गया है, यद्यपि टीकाकारों ने नन्दान्वय तथा मौर्यपुत्र को एक में बाँधने की कोशिश की है। बौद्ध-ग्रन्थकारों के अनुसार, चन्द्रगुप्त माता या पिता के नाम पर मौर्य नहीं कहा जाने लगा था, वरन् मौर्य एक प्राचीन वंश का नाम था। यूनानियों ने भी 'मोरी' (Morieis) जाति की चर्चा की है (Weber, *IA*, II. 1873, p. 148; Max Muller, *Sans. Lit.*, 280; Cunningham, *JASB*, XXIII, 680)। 'वृषल' शब्द के बारे में कहा गया है कि आन्ध्र-वंश की स्थापना करने वाला ही वृषल था (Pargiter, *DKA*, 38)। एक समकालीन ग्रन्थ में इस वंश को 'बम्हण' कहा गया है। मनु (X. 43) के अनुसार, निम्न क्षत्रियों को भी वृषल कहा जा सकता है (*Cf. IHQ*, 1930, 271 ff; *Cf.* also महाभारत, XII, 90, 15 ff.)। सद्धर्म ही वृष है; यदि कोई व्यक्ति इसका इस प्रकार प्रयोग करता है कि यह निरर्थक ही हो जाय, अर्थात् इसकी सीमाओं का उल्लंघन कर जाता है, तो उसे 'वृषल' कहते हैं (वृषोहि भगवान् धर्मो यस्तस्य कुरुते ह्यलम्)। मौर्य लोगों का यूनानियों से सम्पर्क था। उनके जैन और बौद्ध विचारों के कारण भी ब्राह्मण उनको धर्मच्युत कहने लगे। ब्राह्मणों ने भगवान् बुद्ध तक को 'वषलक' (वृषल) कहा है (Mookerji, *Hindu Civilization*, 264)।

४. P. 267 सुप्र।

५. Geiger's Translation, p. 27.

६. P. 370.

साथ हो सकता हूँ ?'' 'दिव्यावदान'[१] में ही अशोक ने अपनी एक रानी (तिष्यरक्षिता) से कहा है—''**देवि अहं क्षत्रियः कथम् पलाण्ड्डम् परिभक्षयामि ?**'', अर्थात् ''मैं क्षत्रिय हूँ। प्याज कैसे खा सकता हूँ ?'' मैसूर के शिलालेख में चन्द्रगुप्त को क्षत्रिय-परम्पराओं का भण्डार कहा गया है।[२] कौटिल्य ने अभिजात वर्ग के राजा को प्राथमिकता दी है। इससे भी सिद्ध होता है कि उसका राजा भी एक उच्च वंश का ही था।[३]

पंडित शास्त्री ने पशुबलि के प्रसंग में कहा है कि ''अपने एक अभिलेख में अशोक ने प्रभावशाली शब्दों में कहा है कि जो अपने को पृथ्वी का देवता कहा करते थे, उन्हें मैंने नक़ली देवता के रूप में ला दिया। यदि इसका कुछ अर्थ हो सकता है, तो यही कि ब्राह्मण लोग 'भूदेव' कहे जाते थे। उन्हें ही अशोक ने नीचा दिखाया है।'' उपर्युक्त कथन का मूल रूप इस प्रकार है—

''**यिमाय कालाय जम्बुदिपसि अमिसा देवा हुसु ते दानि मिस्कटा।**''

पंडित शास्त्री ने सेनार्ट की व्याख्या को सही माना है। किन्तु, सिल्वेन लेवी[४] ने कहा है कि 'अमिसा' शब्द संस्कृत के 'अमृषा' के लिए नहीं है, क्योंकि भाब्रू-अभिलेख में संस्कृत 'मृषा' (असत्य) के लिए 'मिसा' नहीं, वरन् 'मुसा' शब्द आया है। मास्की के अनुसार 'मिसंकटा' के लिए 'मिसिभूता' शब्द आया है जो मूलतः 'मिश्रीभूता' है। संस्कृत के 'मृषा' शब्द को 'मिसिभूता' कर देना व्याकरण की दृष्टि से ग़लत होगा। 'मिश्र' शब्द का अर्थ है 'मिला-जुला'। मिश्रीभूता' का अर्थ होता है 'मिलने के लिए ही बना हुआ'। पूरे अनुच्छेद का अर्थ है कि तत्कालीन भारत के वे वासी जो पहले देवताओं से अलग थे और बाद में उनसे हिल-मिल गये थे।[५] इसलिए अब किसी को दिखाने का प्रश्न ही नहीं रहा।[६]

पंडित शास्त्री ने आगे कहा है कि सम्राट् अशोक द्वारा धर्म-महामात्रों की नियुक्ति ब्राह्मणों के अधिकारों का स्पष्ट अपहरण था। धर्ममहामात्र नैतिकता के

---

[१] P. 409.

[२]. Rice, *Mysore and Coorg from the Inscriptions*, p. 10.

[३]. *Cf.* अर्थशास्त्र, p. 326; See also *Supra*, 266 f (चन्द्रगुप्त का शासन)।

[४]. Hultzsch, *Ashoka*, 168.

[५]. *Cf.* आपस्तम्ब धर्मसूत्र, II, 7. 16. 1—''पहले इस संसार में मनुष्य और देवता साथ-साथ रहते थे। अपनी तपस्या के फलस्वरूप देवता स्वर्ग चले गये और मनुष्य यहीं रह गये। जो मनुष्य देवताओं की तरह ही तपस्या करते थे, वे भी स्वर्ग में देवताओं के ही साथ या ब्रह्म के साथ निवास करने लगे थे।'' इस ओर सबसे पहले डॉ॰ भण्डारकर ने लोगों का ध्यान खींचा। देखिये हरिवंश (III. 32.1)—''**देवतानां मनुष्यानां सहवासोभवत्तदा**'' और *SBE*, XXXIV (p. 222-23) में वेदान्त सूत्र पर शंकर की टीका : ''अपने तपोबल से प्राचीन काल के मनुष्य देवताओं से बातें किया करते थे। स्मृतियों में कहा गया है कि वेदों के पाठ से अपने इष्ट से बातचीत की जा सकती है।''

[६]. सर्वप्रथम डॉक्टर भण्डारकर ने इस अनुच्छेद को उद्धृत किया (*Indian Antiquary*, 1912, p. 170)।

ही रक्षक (Superintendent of Morals) नहीं थे, वरन् उनके कार्यों में क़ानून की व्यवस्था (जिसमें ब्राह्मणों के साथ उदारता भी शामिल है), यवनों, कम्बोजों, ब्राह्मणों, गान्धारों, रिस्टिकों आदि के कल्याण-कार्यों में वृद्धि, कारावास व प्राणदण्ड की सजाओं पर पुनर्विचार, राजपरिवार तथा राजा के सम्बन्धियों की पारिवारिक व्यवस्था, दान-प्रशासन आदि के कार्य भी शामिल थे ।[1] यह नहीं कहा जा सकता कि उनका कर्त्तव्य केवल नैतिकता की रक्षा ही था, और न ही उनकी नियुक्ति ब्राह्मणों के अधिकारों पर प्रत्यक्ष आघात के लिए ही की गयी थी । इसके अतिरिक्त, इसका भी कोई प्रमाण नहीं है कि धर्ममहामात्रों के पद पर केवल ग़ैर-ब्राह्मण लोग ही नियुक्त किये जाते थे ।

इसके बाद हमारा ध्यान उस अनुच्छेद की ओर आकृष्ट होता है जिसमें अशोक ने दण्डसमता और व्यवहारसमता के सिद्धान्तों पर बल दिया है । पंडित शास्त्री ने अशोक के इन सिद्धान्तों को दण्डसमता और विधिसमता के रूप में माना है । ये समानताएँ जाति, धर्म तथा वंश से परे थीं । यह आदेश भी ब्राह्मणों के अधिकारों पर एक आघात था । ब्राह्मणों को अभी तक बहुत-सी सुविधाएँ प्राप्त थीं, जैसे कि उन्हें प्राणदण्ड नहीं दिया जाता था ।

इस अनुच्छेद में दण्डसमता और व्यवहारसमता के जो शब्द आये हैं, प्रसंग से हटकर उनका अर्थ नहीं निकाला जा सकता । उक्त अनुच्छेद का भाषान्तर इस प्रकार है—

"सैकड़ों और हज़ारों पर नियुक्त अपने राजूकों को मैंने किसी को भी सम्मान या दण्ड प्रदान करने के विषय में पूर्ण स्वतन्त्रता दे रखी है । किन्तु, यह आवश्यक है कि ये लोग व्यवहारसमता और दण्डसमता के सिद्धान्तों का पालन करें । मेरा यह सिद्धान्त है कि जिस मनुष्य को प्राणदण्ड मिल चुका हो, या वह जो कारावास में हो, उसे तीन दिन का विश्राम अवश्य ही दिया जाना चाहिये ।"

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि व्यवहारसमता और दण्डसमता के सिद्धान्त को ध्यान से समझा जाय, जिसे कि सम्राट् ने विकेन्द्रीकरण की आम नीति के साथ सम्बद्ध कर दिया था । अशोक ने राजूकों को दण्ड-विधान में स्वतन्त्रता दे दी थी, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं था कि एक राजूक के क्षेत्र का दण्ड तथा व्यवहार, दूसरे के क्षेत्र के दण्ड और व्यवहार से भिन्न हो ।[2] अशोक चाहता था कि दण्ड और व्यवहार में सहज समता रहे । उदाहरण के रूप में, उसने प्राणदण्ड-प्राप्त व्यक्ति के लिए तीन दिन के विश्राम की व्यवस्था की है । अशोक द्वारा प्रचारित समता की नीति से राजूकों के स्वशासन में कुछ कमी आयी । परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि समता की नीति से ब्राह्मणों के प्राणदण्ड की छूट के अधिकार का हनन हुआ था ।

किन्तु, क्या प्राचीन भारत में ब्राह्मण सभी परिस्थितियों में प्राणदण्ड से मुक्त रहते थे ? पंचविंश ब्राह्मण[3] में लिखा है कि यदि एक पुरोहित अपने स्वामी को धोखा

---

[1] *Ashoka*, 3rd ed, pp. 168-69.

[2] एस० एन० मजूमदार का सुझाव ।

[3] *Vedic Index*, II, p. 84. पुरोहित कुत्स और शिष्य कलन्द की कथा—पंचविंश ब्राह्मण, XIV. 6. 8; *Cf*. बृहदारण्यक उपनिषद्, III. 9, 26.

देगा तो उसे प्राणदण्ड मिलेगा। कौटिल्य[1] ने लिखा है कि जो ब्राह्मण देशद्रोह का दोषी होता था, वह पानी में डुबो दिया जाता था। महाभारत के पाठक भाण्डव्य और लिखित[2] को दिये गये दण्ड की कहानियों से परिचित होंगे। मध्यकालीन तथा आधुनिक भारत के मुकाबले प्राचीन-कालीन भारत में ब्राह्मणों का जीवन धार्मिक दृष्टि से अधिक अवध्य नहीं था। ऐतरेय ब्राह्मण से हमें पता चलता है कि इक्ष्वाकु-वंशी राजा हरिश्चन्द्र ब्राह्मण बालक के बलिदान के प्रश्न पर तनिक भी नहीं हिचकिचाये थे।

अशोक की ब्राह्मण-विरोधी नीति के विरुद्ध उसके शिलालेखों में ऐसी पर्याप्त सामग्री मिलती है जिससे उसकी ब्राह्मणों की भलाई में दिलचस्पी की ही पुष्टि होती है। अपने तीसरे अभिलेख में अशोक ने ब्राह्मणों के प्रति उदारता का उपदेश अंकित कराया है। चतुर्थ अभिलेख में उसने ब्राह्मणों के प्रति अभद्र व्यवहार की निन्दा की है। अपने पंचम अभिलेख में अशोक ने कहा है कि ब्राह्मणों के कल्याण के हेतु ही धर्ममहामात्यों की नियुक्ति हुई है।

पंडित शास्त्री ने आगे कहा है कि ज्यों ही अशोक का शासन-काल समाप्त हुआ, ब्राह्मणों ने उसके उत्तराधिकारियों के विरोध में आवाज़ उठाई। अशोक के पुत्रों तथा ब्राह्मणों के बीच इस प्रकार के किसी संघर्ष का प्रमाण नहीं मिलता। इसके विपरीत, यदि कश्मीर के ब्राह्मण इतिहासकार पर विश्वास किया जाय तो अशोक के पुत्रों तथा उत्तराधिकारियों में से एक—जलौक और ब्राह्मणों के सम्बन्ध नितान्त मैत्रीपूर्ण थे।[3]

अन्त में पंडित शास्त्री ने मगध के राजा तथा मौर्यवंश के अन्तिम शासक की हत्या पुष्यमित्र शुंग के हाथों किये जाने का उल्लेख करते हुए कहा है कि इस महान् क्रान्ति में ब्राह्मणों का स्पष्ट हाथ दिखाई पड़ता है। किन्तु भरहुत के बौद्ध-अवशेष, जिनमें 'शुंगवंश की प्रभुता का समय' लिखा गया था, इस सिद्धान्त की पुष्टि नहीं

---

[1] P. 229.

[2] आदि पर्व, 107 और शान्ति पर्व, 23, 36.

[3] ब्राह्मण अफ़सरों का उल्लेख भी ध्यान में रखिये। उदाहरणार्थ, बाद के मौर्यों का अधिकारी पुष्यमित्र। कल्हण ने तो अशोक की प्रशसा ही की है। दूसरे ग्रन्थकार बाण ने मौर्यों को नहीं वरन् मौर्यों के अन्तिम शासक को पदच्युत करने वाले ब्राह्मण सेनापति को अनार्य कहा है। विशाखदत्त ने चन्द्रगुप्त की तुलना 'भगवान के शूकर अवतार' से की है। कुछ पौराणिक ग्रन्थकारों ने मौर्यों को असुर कहा है और अन्तिम मौर्य-राजाओं की नृशंसता की ओर गार्गी संहिता में संकेत किया गया है। किन्तु, इस बात के प्रमाण बहुत ही कम हैं कि मौर्य दमन के शिकार ब्राह्मण ही थे। इसके विपरीत, ब्राह्मण लोग ऊँचे-ऊँचे पदों पर नियुक्त किये जाते थे, जैसे पुष्यमित्र। 'सुर-द्विष' या 'असुर' शब्द मौर्यों के ही लिए नहीं, वरन् सभी ऐसे लोगों के लिए आया है जो बौद्धमत के अनुयायी थे। इसके अलावा, पुराणों के उल्लेख अन्य विभिन्न उल्लेखों से भिन्न हैं। अशोक के बाद राजा 'देवनंपिय' की उपाधि भी नहीं धारण करते थे।

करते कि शुंगवंशीय ब्राह्मण, कट्टर ब्राह्मणों के नेता थे। तो, क्या तत्कालीन अवशेषों के मुक़ाबले दिव्यावदान के संग्रहकर्त्ता-जैसे क्रमहीन सामग्री प्रस्तुत करनेवाले विद्वानों के लेखों को अधिक प्रामाणिक माना जाय? यदि यह मान भी लिया जाय कि पुष्यमित्र कट्टर ब्राह्मण समर्थक था तो भी यह नहीं समझा जा सकता कि मौर्य-साम्राज्य का पतन तथा उसका विघटन केवल उसी के बल या उसके समर्थकों के बल से ही हो गया। १८७ ईसापूर्व के आसपास पुष्यमित्र द्वारा की गई सैनिक-क्रान्ति के बहुत पहले से ही मौर्य-शासन की नींव हिल रही थी। राजतरंगिणी में कहा गया है कि सम्राट् अशोक की मृत्यु के तुरन्त बाद ही उसका पुत्र जलौक स्वतन्त्र हो गया और कश्मीर पर राज्य करने लगा था। उसने मैदानी क्षेत्रों (कन्नौज तक) पर अपना आधिपत्य जमा रखा था। यदि तारनाथ पर विश्वास किया जाय तो एक अन्य राजा वीरसेन ने अशोक के पाटलिपुत्र में रहने वाले निर्बल उत्तराधिकारी से गन्धार छीन लिया था। विदर्भ और बरार के हाथ से निकलने की बात कालिदास के 'मालविकाग्निमित्रम्' में अंकित है। यूनानी लेखक भी साम्राज्य से पश्चिमी भारत के भागों के निकल जाने की पुष्टि करते हैं। पोलिबियस ने लिखा है कि २०६ ईसापूर्व के आसपास वीरसेन का उत्तराधिकारी सोफ़ागेसेनस (सुभागसेन) राज्य करता था। इस राजा के उल्लेख का अंश इस प्रकार है——

"उसने (एण्टिओकोस-महान् ने) काकेशस (हिन्दूकुश) को पार कर भारत में प्रवेश किया, और सुभागसेन से मुलाक़ात की। उसे अनेकानेक हाथी भेंट में मिले। १५० हाथी एकत्रित हो जाने पर उसने पुनः अपनी सेना को सुसंगठित किया और स्वयं सेना का नेतृत्व करते हुए आगे बढ़ा। यही नहीं, उसने एण्ड्रोस्थनीज़ को पीछे छोड़ दिया, ताकि वह सुभागसेन से प्राप्त धन लेकर घर वापस लौट सके।"

हमें यह देखना है कि सुभागसेन एक प्रभुता-सम्पन्न राजा था, न कि क़ाबुल की घाटी का मात्र एक सामन्त, जैसा कि डॉक्टर स्मिथ ने कहा है। सुभागसेन को 'भारतीयों का राजा' कहा गया है। ध्यान रहे कि इस प्रकार की उपाधि भारतीय ग्रन्थकारों केवल चन्द्रगुप्त एवं पोरस जैसे महान् शासकों को ही दी है। पोलिबियस ने यह कहीं नहीं लिखा है कि सीरिया के राजा ने उसे हरा दिया था, या उसने सीरिया की अधीनता स्वीकार कर ली। इसके विपरीत, यह कथन कि एण्टिओकोस ने सुभागसेन से अपनी मैत्री को नया रूप दिया, यह सिद्ध करता है कि दोनों समता के धरातल पर ही एक-दूसरे से मिले तथा आपस में मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध क़ायम किया। यूनानी राजा द्वारा मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध क़ायम करना तथा भारतीय राजा द्वारा हाथियों की भेंट से हमें चन्द्रगुप्त और सेल्युकस की ही मित्रता याद आती है। इसके बाद 'मैत्री को नया रूप देने' की शब्दावली से लगता है कि राजा सुभागसेन और एण्टिओकोस में पहले भी पारस्परिक सम्बन्ध थे। सम्भवतः वह २०६ ईसापूर्व के पहले ही शासनारूढ़ हुआ। २०६ ईसापूर्व के पहले दक्षिणी-पश्चिमी भारत में स्वतंत्र राज्य के अस्तित्व से लगता है कि मौर्य-साम्राज्य का विघटन पुष्यमित्र की सैनिक-क्रान्ति के २५ वर्ष पूर्व से ही होने लगा था।

हमें ऐसा लगता है कि मौर्य-काल का विघटन पुष्यमित्र के नेतृत्व में चलाये गये ब्राह्मण-आन्दोलन से ही हुआ, इस निष्कर्ष की अच्छी तरह जाँच नहीं की गयी। तो क्या यूनानियों के आक्रमण से मौर्यों का ह्रास आरम्भ हुआ? नहीं। अशोक के बाद पहला यूनानी आक्रमण एण्टिओकोस ने ही २०६ ईसापूर्व में किया था, जबकि कल्हण

और पोलिबियस के विवरण से हम जान चुके हैं कि यूनानी आक्रमण के बहुत पहले से ही मौर्यों का पतन आरम्भ हो गया था।

तब मौर्यों के इतने शक्तिशाली साम्राज्य के पतन के मूल कारण क्या थे? इसका एक युक्तियुक्त कारण तो यह है कि मौर्यों के दूरस्थ प्रान्तों के शासक बड़े ही अन्यायी थे। बिन्दुसार के समय में भी तक्षशिला के निवासियों ने अत्याचारों से पीड़ित होकर विद्रोह कर दिया था। दिव्यावदान[1] में कहा गया है—

''**अथ राज्ञो बिन्दुसारस्य तक्षशिला नाम नगरम् विरुद्धम्। तत्र राज्ञा बिन्दुसारेन अशोको विसर्जित....यावत् कुमारश्चतुरंगेन बालकायेन तक्षशिलाम् गतः, श्रुत्वा तक्षशिला निवासिनः पौराः......प्रत्युद्गम्य च कथयन्ति 'न वयं कुमारस्य विरुद्धाः नापि राज्ञो बिन्दुसारस्य अपि तु दुष्टामात्या अस्माकम् परिभवम् कुर्वन्ति'।**'' अर्थात् ''अब राजा बिन्दुसार के नगर तक्षशिला में विद्रोह हुआ। राजा ने अशोक को उधर भेजा। अशोक ज्यों ही तक्षशिला के समीप पहुँचा, तक्षशिलावासियों को समाचार मिला। अशोक की सेना चतुरंगिणी थी। तक्षशिलावासी नगर से निकल कर उससे मिलने आये। उन लोगों ने कहा कि न तो हम राजकुमार के विरोधी हैं और न राजा बिन्दुसार के। किन्तु, ये दुष्ट मंत्री हमारा अपमान करते हैं।''

एक बार अशोक के समय में भी तक्षशिला में विद्रोह हुआ और इस बार भी दुष्ट मंत्रियों के व्यवहार के कारण ही ऐसा हुआ। ''**राज्ञोऽशोकस्योत्तरापथे तक्षशिला नगरम् विरुद्धम्।**''[2] राजकुमार के हवाले नगर का प्रशासन सौंपा गया। जब राजकुमार नगर में पहुंचा तो प्रजा ने कहा—''**न वयं कुमारस्य विरुद्धा न राज्ञोऽशोकस्यापि तु दुष्टात्मानोऽमात्या आगत्यास्माकम अपमानम् कुर्वन्ति।**''

इसमें कोई सन्देह नहीं कि दिव्यावदान बाद का ग्रन्थ है किन्तु इसमें लिखी गई मंत्रियों की दुष्टता की पुष्टि अशोक के कलिंग-अभिलेख से भी होती है। उच्च अधिकारियों (महामात्रों) को सम्बोधित करते हुए अशोक ने कहा है—''सभी प्रजाजन मेरी सन्तान हैं। मैं चाहता हूं कि मेरी सन्तानें इहलोक तथा परलोक, दोनों ही लोकों में सुखी और समृद्ध रहें। मानव-मात्र के लिए मेरी यही कामना है। तुम लोग इस सत्य को पूरी तरह नहीं समझते। यदि कोई इस ओर ध्यान भी देता है तो वह भी आंशिक रूप से। इसलिए सरकार की सुव्यवस्था के लिए इस ओर सभी ध्यान दें। पुनः जब किसी व्यक्ति को कारावास या कोई यातना दी जाती है और यदि वह दण्ड अकारण होता है तो अन्य प्रजाजनों को भी दुःख होता है। इसलिए अधिकारियों द्वारा कर्त्तव्यों के अनुचित ढंग से पालन से राजा का सम्मान कभी नहीं बढ़ता। नागरिकों की नज़रबन्दी या उनको दी जाने वाली कोई अन्य यातना अकारण नहीं होनी चाहिये। इस उद्देश्य की पूर्त्ति के लिए मैं पाँचवें वर्ष बारी-बारी से ऐसे अधिकारियों को प्रान्तों में भेजूंगा जो नम्र और सन्तुलनशील स्वभाव के होंगे। उज्जैन से हर तीसरे वर्ष ऐसे अधिकारी भेजे जाते रहेंगे। ऐसा ही तक्षशिला में भी होगा।''[3]

अभिलेख के अन्त में लिखे अंश से स्पष्ट है कि केवल कलिंग में ही अधिकारियों का कुप्रशासन व्याप्त था; उज्जैन और तक्षशिला की स्थिति प्रायः सामान्य थी। इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि पुष्यमित्र की सैनिक-क्रान्ति (१८७ ईसा-

---

[1] P. 371.

[2] दिव्यावदान, 407f.

[3] Smith, *Ashoka*, 3rd ed., pp. 194-96.

पूर्व)[1] और २०६ ईसापूर्व के यूनानी आक्रमण से बहुत पहले से ही मौर्य-साम्राज्य के दूरस्थ प्रान्तों की वफ़ादारी में कमी आ गई थी। इसमें कोई शक नहीं कि अशोक ने इस कुप्रवृत्ति को रोकने का प्रयास किया, पर उसके सहायक अधिकारी ठीक नहीं थे। यह उल्लेखनीय है कि पश्चिमोत्तर के जिन प्रान्तों में बिन्दुसार के समय से ही जनता दुष्ट मंत्रियों के कुशासन से परेशान थी, वे प्रान्त सबसे पहले मौर्य-साम्राज्य से अलग हुए।

अशोक के उत्तराधिकारियों में साम्राज्य के विघटन को रोकने की न शक्ति थी और न इच्छा।[2] साम्राज्य की सामरिक शक्ति, कलिंग के युद्ध में ही अपना दम तोड चुकी थी। अशोक ने अपने पूर्वजों की युद्ध-विजय की नीति को त्याग कर धम्म-विजय की नीति अपना ली थी। इससे भी साम्राज्य की सैन्य-शक्ति क्षीण हुई।[3] उसने अपने पुत्रों और पौत्रों को रक्तपात न करने तथा सब्र से आनन्द प्राप्त करने का उपदेश दिया था। उसके उत्तराधिकारी 'धम्म-घोष' की अपेक्षा 'भेरी-

---

[1] जैन-ग्रन्थों में पुष्यमित्र के शासनारूढ़ होने की तिथि ३१३-१०८= २०५ ईसापूर्व दी गई है, जो पुष्यमित्र के अवन्ती में शासनारूढ़ होने की तिथि हो सकती है, क्योंकि मगध-क्रान्ति का समय तो १८७ वर्ष ईसापूर्व दिया गया है। इसके विपरीत, यदि गार्गी संहिता पर विश्वास किया जाय तो उत्तराधिकारी शालिशूक ने अपने अत्याचारों से पतन को और भी समीप ला दिया था—**सराष्ट्र मर्दते घोरम् धर्मवादि अधार्मिकः** (*sic*)। अशोक के कुछ उत्तराधिकारियों (जलौक) ने स्वतंत्र राज्य क़ायम कर लिया था। इस प्रकार मौर्य-साम्राज्य के विघटन के लिए वे स्वय ज़िम्मेदार हैं।

[2] *Cf. ante*, p. 353 f. गर्ग ने अशोक की धम्म-विजय की नीति की आलोचना की है। सम्भवतः शालिशूक के ही कारण ऐसा किया गया है, क्योंकि इस लेखक के मतानुसार, अशोक ने अपने पुत्रों को धम्म-विजय का उपदेश दिया था। जायसवाल ने भी गार्गी संहिता के इस अनुच्छेद की ओर ध्यान आकर्षित किया है कि—**स्थापयिष्यति मोहात्मा विजयम् नाम धार्मिकम्**, 'धम्म-विजय का राज्य बेवक़ूफ़ ही स्थापित करते हैं।' (*JBORS*, IV, 261)। 'मोहात्मा' शब्द का एक अर्थ 'देवानपिय' (बेवक़ूफ़, निर्दयी, जंगली – Apte, Sanskrit-English Dictionary, 510) भी है। एक महान् लेखक ने शालिशूक के बड़े भाई का नाम 'विजय' बताया है जिसने बाद में राज्य-सिंहासन सँभाला। लेकिन ऐसे धार्मिक व्यक्ति को गद्दी पर बिठाने वाले उत्तरदायी व्यक्ति को 'मोहात्मा' क्यों कहा गया ? इसके अतिरिक्त, मौर्यों की वंश-सूची में 'विजय' नाम का कोई राजकुमार नहीं मिलता। इस सम्बन्ध में विभिन्न दृष्टिकोणों के लिए *Cal. Rev.*, Feb. 1943, p. 123 ff; 1946, p. 79 ff और *Cal. Rev.*, 1943, April 39ff देखिये :

इसके अलावा, अशोक के उत्तराधिकारियों में आखेट-क्रीड़ा और युद्ध आदि के उत्सव भी वर्जित से हो गये थे। अशोक के समय में भी साम्राज्य की सेना २९ वर्ष तक निष्क्रिय पड़ी रही थी। चीनी लेखक Hou Hanshu के अनुसार, भारतीय बौद्ध धर्म के मानने वाले थे, इसलिए किसी का वध या किसी से युद्ध न करना उनकी आदत बन गई थी। जिस समय पुष्यमित्र ने क्रान्ति की—मौर्य, जनता या सैनिकों के सम्पर्क में नहीं थे। दान से उनका कोष खाली हो गया था।

घोष' से कम परिचित थे। इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि पाटलिपुत्र के सिंहासन पर बैठने वाले बाद के सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य के संगठित साम्राज्य की समता को विघटित होने से न बचा सके।

२०६ ईसापूर्व में मौर्य-साम्राज्य का विघटन आरम्भ हुआ। गार्गी संहिता और पतंजलि के महाभाष्य के अनुसार, यवनों के आक्रमण के समय वह और स्पष्ट हो गया। अन्ततः पुष्यमित्र ने मौर्यों के हाथ से सिंहासन छीन ही लिया।

मौर्य-वंशावली

पिप्पलिवन के मौर्य

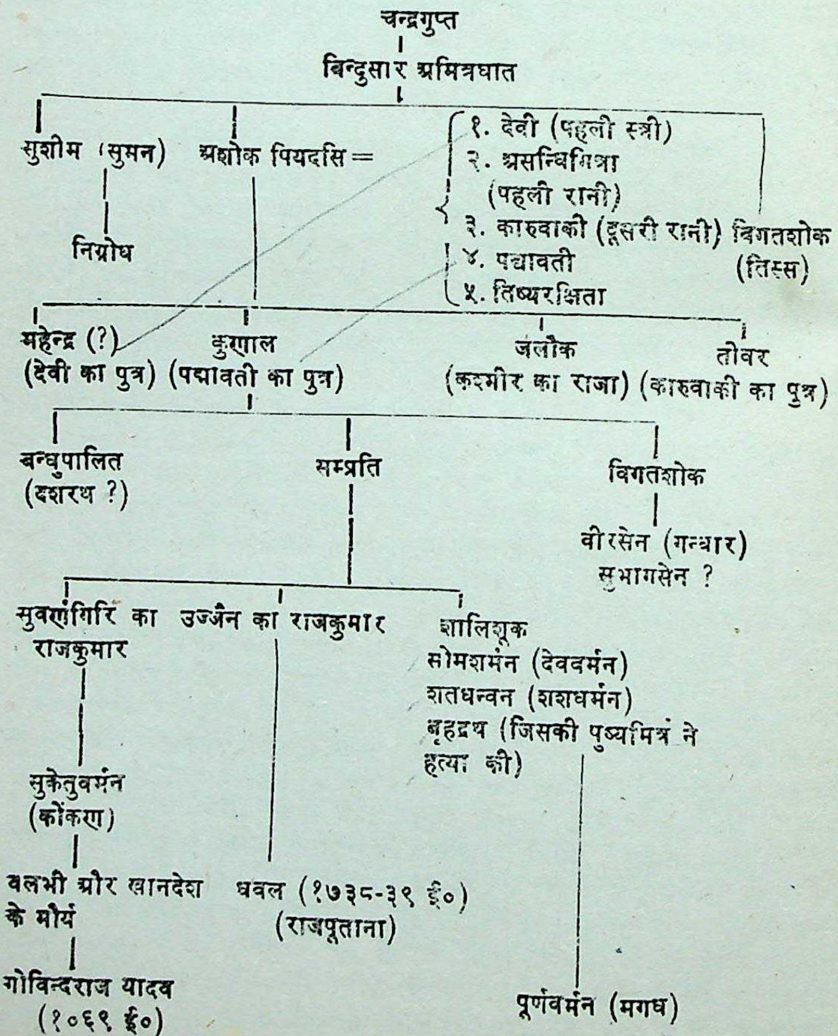
चन्द्रगुप्त
बिन्दुसार अमित्रघात
सुशीम (सुमन)
निग्रोध
अशोक पियदसि =
१. देवी (पहली स्त्री)
२. असन्धिमित्रा (पहली रानी)
३. कारुवाकी (दूसरी रानी)
४. पद्मावती
५. तिष्यरक्षिता
विगतशोक (तिस्स)
महेन्द्र (?) (देवी का पुत्र)
कुणाल (पद्मावती का पुत्र)
जलौक (कश्मीर का राजा)
तीवर (कारुवाकी का पुत्र)
बन्धुपालित (दशरथ ?)
सम्प्रति
विगतशोक
वीरसेन (गन्धार)
सुभागसेन ?
सुवर्णगिरि का राजकुमार
उज्जैन का राजकुमार
शालिशूक
सोमशर्मन (देववर्मन)
शतधन्वन (शशधर्मन)
बृहद्रथ (जिसकी पुष्यमित्र ने हत्या की)
सुकेतुवर्मन (कोंकण)
वलभी और खानदेश के मौर्य
गोविन्दराज यादव (१०६९ ई०)
धवल (१७३८-३९ ई०) (राजपूताना)
पूर्णवर्मन (मगध)

९ बैम्बिक-शुंग शासन और बैक्ट्रियन यूनानी

१. पुष्यमित्र का शासन

सततं कम्पयामास यवनानेक एव यः
बलपौरुष सम्पन्नान् कृतास्त्रानमितौजसः
यथासुरान् कालकेयान् देवो वज्रधरस्तथा । —महाभारत[1]
औद्भिज्जो भविता कश्चित् सेनानीः काश्यपो द्विजः
अश्वमेधम् कलियुगे पुनः प्रत्यहरिष्यति । —हरिवंश[2]

मौर्यों ने भारत का इस अर्थ में बड़ा उपकार किया कि समूचे देश को एकता के सूत्र में बाँध दिया। सिकन्दर और सेल्युकस के सैनिकों से देश की रक्षा तथा देश की शासन-प्रणाली में एकरूपता, उनके सराहनीय कार्यों में मानी जायेगी। मौर्यों ने प्राकृत को सारे देश की राजभाषा बनाया और समूचे राष्ट्र को एक सर्वमान्य धर्म के सूत्र में बाँधा। मौर्य-वंश के पतन से, कुछ ही दिनों के लिए सही, भारत की एकता समाप्त हो गई। मौर्यों के बाद हिन्दूकुश से लेकर वंगदेश तथा कर्नाटक प्रदेश तक कोई ऐसी राजसत्ता न रह गई, जिसे सभी स्वीकार करते। भारत के उत्तरी-पश्चिमी द्वार से लड़ाकू जातियाँ देश में प्रविष्ट होने लगीं तथा गंधार प्रान्त में अपने राज्य क़ायम करने लगीं। ये लोग पश्चिमी मालव और पड़ोसी क्षेत्रों की ओर भी बढ़े। धीरे-धीरे पंजाब में विदेशी तथा दक्न में स्थानीय राजघरानों ने प्रभुता क़ायम कर ली, फिर धीरे-धीरे सिंधु और गोदावरी की घाटियों से मध्यदेश का सम्पर्क छिन्न-भिन्न हो गया तथा शाकल, विदिशा और प्रतिष्ठान आदि नये नगरों के उद्भव से पाटलिपुत्र की रौनक जाती रही। एक ओर गंगा की घाटी तथा दक्न में ब्राह्मण-धर्म प्रबल हुआ और दूसरी ओर उड़ीसा में जैनधर्म का ज़ोर बढ़ा। माहेश्वर और भागवत सम्प्रदायों का आविर्भाव हुआ। मध्यप्रदेश के वैय्याकरणों के प्रभाव से संस्कृत भाषा को काफ़ी प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। इसके विपरीत, दक्षिण भारत के प्रतिष्ठान और कुन्तल राज्यों में प्राकृत का ही बोलबाला रहा।

पुराणों तथा हर्षचरित के अनुसार, मौर्य-वंश के अन्तिम राजा बृहद्रथ की, उसके सेनापति पुष्यमित्र ने हत्या कर दी और स्वयं सिंहासन पर आरूढ़ हो गया। यहीं से एक नये राजवंश का आरम्भ हुआ।

---

[1] II. 4. 23.
[2] III. 2. 40.

पुष्यमित्र के खानदान के बारे में अनेक अनिश्चित धारणाएँ हैं। दिव्यावदान के अनुसार, पुष्यमित्र भी मौर्यों के वंश से ही सम्बन्धित था। इसके विपरीत, पुष्यमित्र के पुत्र अग्निमित्र को 'मालविकाग्निमित्रम्' में बैंम्बिक वंश[1] का कहा गया है, किन्तु पुराणों और हर्षचरित[2] में इन राजाओं को शुङ्गवंशी बताया गया है। एक इतिहासकार ने संकेत किया है कि जिन शुंगों के नाम के अन्त में 'मित्र' रहता था, वे ईरानी थे तथा सूर्य के पुजारी थे।[3] दूसरे लोग शुंगों को भारतीय ब्राह्मण मानते हैं। पाणिनि[4] ने शुङ्गों तथा ब्राह्मण-कुल के भारद्वाज को एक-दूसरे से सम्बन्धित कहा है। बृहदारण्यक उपनिषद्[5] में एक शिक्षक की चर्चा आती है। वह शुङ्गों की महिला-उत्तराधिकारिणी का पुत्र शौंगीपुत्र था। वंश पुराण में भी शौंगायनी नामक एक शिक्षक की चर्चा है। मैक्डोनेल और कीथ के अनुसार, आश्वलायन श्रौत सूत्र[6] में भी शुङ्गों को अध्यापक कहा गया है। 'मालविकाग्निमित्रम्' और पुराणों के विरोधी कथनों को देखते हुए यह कहना कठिन है कि पुष्यमित्र भारद्वाज-गोत्रीय शुङ्ग था, या कश्यप-गोत्र का बैंम्बिक। विद्वान् इतिहासकारों ने धनभूति के समय के शुङ्गों का समय १००-७५ ईसापूर्व कहा है। हर्षचरित में यद्यपि पुष्यमित्र के वंश की उपाधि को अस्वीकार किया गया है तो भी उसे वसुदेव काण्व का पूर्वज तथा पौराणिक सूची का अन्तिम राजा बताया गया है।

---

[1] मालविकाग्निमित्रम् में अग्निमित्र अपने को बैंम्बिक-कुल का बताता है। (Act IV, Verse 14; Tawney's Translation. p. 69)। *The Ocean of Story* (Penger, I, 112, 119) में बिम्बिक राजा का नाम आया है। श्री एच० ए० शाह (*Proceedings of the Third Oriental Conference*, Madras, p. 379) के संकेतानुसार, 'बैंम्बिक' बिम्बिसार के परिवार से सम्बन्धित थे। यह भी हो सकता है कि बैंम्बिक नाम 'बिम्बिका' नाम की वनस्पति से कुछ सम्बन्धित हो **(दाक्षिण्यम् नाम बिम्बोष्ठि बैंम्बिकानाम् कुलव्रतम्)**। यह भी हो सकता है कि भरहुत-शिलालेख के अनुसार, बैंम्बिक का सम्बन्ध बिम्बिका नदी से हो (Barua and Sinha, p. 8)। *Cf. Padma, Bhumikhanda*, 90, 24; Baimbaki in Patanjali, IV, 1. 97. हरिवंश (भविष्य, II. 40) में कलियुग में भी अश्वमेध करने वाले ब्राह्मण सेनानी को 'औभिज्ज' कहा गया है। जायसवाल ने पुष्यमित्र को ही वह सेनानी माना है। बौद्धायन श्रौत सूत्र में 'बैम्बकयः' को 'कश्यप' कहा गया है।

[2] यह उल्लेखनीय है कि हर्षचरित के पुष्यमित्र को शुंग नहीं कहा गया है। हो सकता है कि पुराणों में बैंम्बिक और शुंग राजाओं को एक ही बताया गया हो।

[3] *JASB*, 1912, 287; *Cf*. 1910, 260.

[4] In Sutra IV, 1, 117; क्रमदीश्वर, 763.

[5] VI. 4. 31.

[6] XII, 13.5, etc. वंश-ब्राह्मण में शुंगों को मद्रदेश का बताया गया है (*Ved. Index*, II, p. 123)। पुष्यमित्र के सन्दर्भ में तारनाथ के उल्लेख के लिए देखिये *JBORS*, IV, Pt. 3, 258. भारद्वाज उच्चवंशी शासन के पक्षपाती थे (देखिये कौटिल्य, 31, 316)।

यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि कब और क्यों कदम्बों की तरह पुष्यमित्र ने लेखनी छोड़ कर तलवार हाथ में ले ली। यह सोचना अकारण होगा कि अशोक ने ब्राह्मणों पर इतना अत्याचार किया कि ब्राह्मणों को अपना पौरोहित्य-कार्य छोड़ना पड़ा। प्राचीन भारत में ब्राह्मण सेनापतियों की कमी नहीं रही।[1] बाद के मौर्यों के संरक्षण में ब्राह्मण-वर्ग के लोगों को नौकरी मिलती थी। इससे सिद्ध है कि बाद के मौर्य लोगों की नीति ब्राह्मण-विरोधी नहीं थी।

पुष्यमित्र का साम्राज्य दक्षिण में नर्मदा तक फैला हुआ था। पाटलिपुत्र, अयोध्या तथा विदिशा उसके राज्य के नगर थे। यदि दिव्यावदान और तारनाथ पर विश्वास किया जाय तो पुष्यमित्र का राज्य जालन्धर और शाकल तक था।[2] दिव्यावदान[3] में लिखा है कि पुष्यमित्र पाटलिपुत्र में रहता था। मालविकाग्निमित्रम् के अनुसार, विदिशा (पूर्वी मालव में बेसनगर) पर उपराजा (गोप्तृ)[4] के रूप में अग्निमित्र शासन करता था। जो दूसरा उपराजा कोशल में शासन करता था, सम्भवतः राजा का रिश्तेदार ही था। अग्निमित्र[5] की रानी का भाई वीरसेन नीची जाति का था। उसकी नियुक्ति नर्मदा के तटवर्ती प्रदेशों में हुई थी—**अत्थिदेवीए वण्णावरो भादा वीरसेणो नाम, सो भट्टिणा अन्तव (प) आलदुग्गे नम्मदा तीरे[6] ठाविदो।**

---

[1] महाभारत में द्रोण, कृपाचार्य तथा अश्वत्थामा मिलते हैं। यादव-वंश में खोलेश्वर तथा पाल-वंश में सोमेश्वर ब्राह्मण सेनापति थे (रविदेव, *Indian Antiquary*, VIII. 20)।

[2] मेरुतुङ्ग-जैसे जैन-ग्रन्थकार अवन्ती को पुष्यमित्र का प्रान्त मानते हैं। बाद में अवन्ती पर सातवाहनों का तथा शाकल पर यवनों का अधिकार हो गया।

[3] P. 434.

[4] जी० विद्यानिधि द्वारा सम्पादित मालविकाग्निमित्रम्, Act V, pp. 370, 91, esp. Verse 20—**सम्पद्यते न खलु गोप्तरि ना अग्निमित्रे।**

[5] उपराजाओं के होने की बात का उल्लेख अयोध्या में प्राप्त एक शिलालेख में मिलता है। इस शिलालेख के अनुसार, सेनापति पुष्यमित्र का छठा भाई 'कोशलाधिप' के रूप में, यहाँ शासन करता था। इसने दो अश्वमेध यज्ञ किये थे (नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वैशाख, सम्वत् १९८१, *JBORS*, X (1924), 203; XIII (1927) facing 247; *Mod. Review*, 1924, Oct., p. 431; *IHQ*, 1929, 602 f; *Ep. Ind*, XX, 54 ff)। यह दिलचस्प बात है कि पुष्यमित्र द्वारा अश्वमेध यज्ञ किये जाने के बाद भी उसे सेनापति की ही उपाधि प्राप्त थी। महाभारत में विराट राजा को 'वाहिनीपति' तथा कुशान-सम्राट् को 'यवुग' कहा जाता था। 'महाराज महासेनापति' (*CII*, Vol. 3, p. 252) तथा 'महामण्डलेश्वर' विज्जल तथा अन्य राजाओं को कहा जाता था, जबकि वे पूर्ण रूप से सिंहासनारूढ़ हो चुके थे (*Bomb. Gaz.*, II, ii. 474 ff)।

[6] अंक प्रथम—कुछ ग्रन्थकार मंदाकिनी नाम नदी का लिखते हैं (*Cf. IHQ*, 1925, 214)। ताप्ती से ५ मील दक्षिण में मंदाकिनी नाम की एक छोटी-सी नदी है (*Ind. Ant.*, 1902, 254)। दूसरी मंदाकिनी चित्रकूट के समीप बहती है

दक्षिण भारत की स्थिति

मालविकाग्निमित्रम् से ऐसा लगता है कि पुष्यमित्र के राजवंश की स्थापना के साथ ही साथ दक्षिण में भी विदर्भ-जैसे राज्य क़ायम हो गये थे। अग्निमित्र के मन्त्री ने इस राज्य को अचिराधिष्ठित' (established not long ago) कहा है तथा इस राज्य के राजा की तुलना उसने ऐसे वृक्ष से की है जो थोड़े दिनों का ही लगाया हुआ था और कमज़ोर था (**नवसंरोपण शिथिलस्तरुः**)। विदर्भ के राजा को मौर्यों के एक मन्त्री का रिश्तेदार (बहनोई) तथा पुष्यमित्र के राजवंश का कट्टर शत्रु कहा गया है। इससे लगता है कि बृहद्रथ मौर्य के शासन-काल में मगध-राज्य के दो गुट हो गये थे। एक दल का नेतृत्व मन्त्री लोग करते थे, तथा दूसरे का नेतृत्व राज्य के सेनापति लोग। मन्त्रियों के प्रतिनिधि या कृपापात्र यज्ञसेन को विदर्भ का राज्य मिला तथा सेनापति के पुत्र अग्निमित्र को विदिशा का उपराजा-पद प्राप्त हुआ। जब सेनापति पुष्यमित्र ने राज्य-क्रान्ति की और राजा की हत्या की तो उसने मन्त्री को भी जेल में डाल दिया। फिर तो यज्ञसेन ने अपने को विदर्भ का शासक घोषित करते हुए पुष्यमित्र का शत्रु भी घोषित किया। इसी कारण उसे निर्बल राजा तथा अग्निमित्र का शत्रु माना गया है।

मालविकाग्निमित्रम् के अनुसार, यज्ञसेन का भतीजा तथा अग्निमित्र का हितैषी कुमार माधवसेन चुपचाप विदिशा की ओर जा रहा था कि यज्ञसेन के एक सिपाही (अन्तपाल) ने उसे गिरफ़्तार कर लिया। अग्निमित्र ने उसे रिहा कर देने को कहा। विदर्भ के राजा ने इस शर्त पर उसे छोड़ना स्वीकार किया कि अग्निमित्र की क़ैद में पड़े मौर्य-मन्त्री (उसके बहनोई) को छोड़ दिया जाय। विदिशा का राजा इस पर अप्रसन्न हो गया और उसने वीरसेन को विदर्भ पर चढ़ाई की आज्ञा दे दी। यज्ञसेन पराजित हो गया। माधवसेन कारामुक्त कर दिया गया तथा विदर्भ का राज्य दो भतीजों में बाँट दिया गया। वरदा (वरधा) नदी दोनों राज्यों की सीमारेखा बनी तथा दोनों राज्यों ने पुष्यमित्र की सत्ता स्वीकार की।

कुछ विद्वानों के मतानुसार, कलिंग (उड़ीसा) से भी पुष्यमित्र का एक विरोधी राजा उठा था। वह यज्ञसेन की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली था। Oxford History of India[1] में डॉ० स्मिथ ने इस मत को स्वीकार किया है कि कलिंग के राजा खारवेल ने पुष्यमित्र को परास्त किया था जिसे बहसतिमित अथवा बहसतिमित का प्रतीक माना गया है। कलिंग-नरेश के हाथीगुम्फा-लेख में इसी शासक का वर्णन है,

---

(रामायण, 92 10-11)। ल्यूडर्स-लेख, संख्या ६८७-६८८ के अनुसार, भरहुत (बघेलखण्ड के पास) में शुङ्गों का राज्य था। यदि पुष्यमित्र शुङ्ग था तो बघेलखण्ड निश्चित रूप से उसके राज्य का एक हिस्सा रहा होगा। *Monuments of Sanchi* (I, iv. 271) में लेखक इस शिलालेख को द्वितीय शताब्दी ईसापूर्व के मध्य का नहीं मानता। उसके अनुसार, ये शिलालेख १००-७५ ईसापूर्व के, अर्थात् इन्द्राग्निमित्र, ब्रह्ममित्र तथा विष्णुमित्र के समय के हैं।

[1] Additions and corrections, p.58n. *Cf.* also S. Konow in *Acta Orientalia*, I. 29. S. Konow accepts Jayswal's identification; Bahsatimita = Pushyamitra.

ऐसा अनुमान लगाया जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रो० डुब्रील (Dubreuil) भी खारवेल को पुष्यमित्र का प्रतिद्वन्द्वी मानते हैं और उनका मत है कि हाथीगुम्फा-लेख 'राज-मुरिय-काल' (मौर्य राजा का काल) के १६५वें वर्ष में लिखवाया गया था। यह तिथि खारवेल के शासन-काल के १३वें वर्ष में पड़ती है।

डॉ० आर० सी० मजूमदार[१] के कथनानुसार, हाथीगुम्फा-लेख के ६ अक्षरों, जिन्हें 'वहसतिमितम्' (Bahasati-mitam) की संज्ञा दी गई है, में द्वितीय अक्षर 'u' का चिह्न प्रतीत होता है और तृतीय एवं चतुर्थ अक्षर 'pa' और 'sa' प्रतीत होते हैं। यदि वहसतिमितम् या बहपतिमितम् को शुद्ध मान भी लिया जाये तो बहसति (वृहस्पति-मित्र) को केवल इस आधार पर पुष्यमित्र के अनुरूप स्वीकार कर लेना उचित न होगा कि वृहस्पति (जीव) पुष्य अथवा तिष्य की राशि के नक्षत्र का नक्षत्राधिप है। इस मत को स्वीकार करने के लिए वस्तुतः अधिक ठोस प्रमाणों की आवश्यकता है।[२] इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि दिव्यावदान[३] में वृहस्पति या पुष्यमित्र[४] को अलग-अलग माना गया है और पुष्यमित्र की राजधानी पाटलिपुत्र बतलाई गयी है, जबकि खारवेल के मगधदेशीय प्रतिद्वन्द्वी को सम्भवतः 'राजगहनप' कह कर प्रत्यक्ष रूप में उसे राजगृह[५] का निवासी कहा गया है।

'मुरिय-काल के १६५वें वर्ष' की तिथि भी हाथीगुम्फा-लेख के एक अंश से प्राप्त की गई है जो इस प्रकार है—'**पानंतरिय-सठि-वस-सते राज-मुरिय-काले वोच्छिने!**'[६] उसी लेख का एक दूसरा अनुच्छेद इस प्रकार है—'**पंचमे च (या चे) दानी वसे नन्दराज तिवस-सत (म्?)—ओघाटितम् तनसुलिय वाटा पनाडिम् नगरम् पवेसयति**।[७] यदि 'पानंतरिय-सठि वस-सते' को १६५वाँ वर्ष माना जाय तो 'तिवस-सत' को १०३वाँ वर्ष मानना होगा। यदि इसे सही माना जाय तो मौर्य-

---

[१] *Ind. Ant.*, 1919, p. 189. *Cf.* Allan, *CICAI*, p. xcviii.

[२] *Cf.* Chanda in *IHQ*, 1929, pp. 594ff.

[३] Pp. 433-34.

[४] ऐसा सुझाव नहीं है कि दिव्यावदान के वृहस्पति को शिलालेख का बृहस्पतिमित्र ही मान लिया जाय, यद्यपि यह हो भी सकता है। प्राचीन साहित्य में वृहस्पति, पुष्यधर्मन तथा पुष्यमित्र अलग-अलग लोगों के नाम हैं। पुष्यमित्र को ही बृहस्पतिमित्र मानने के सम्बन्ध में *IHQ*, 1930, p. 23 देखिये।

[५] *Cf.* Luders' reading, *Ep. Ind.*, X, App. No. 1345. डॉ० जायसवाल के सहित एस० कोनोव '**राजगहम् उपपीडापयति**' पढ़ते हैं, यद्यपि वह यह भी मानता है कि '**राजगहनप(म्) पीडापयति**' भी हो सकता है।

[६] *Cf.* भगवानलाल इन्द्रजी, *Actes du sixieme congres international des orientalistes*, Pt. III, Section 2, pp. 133 ff; Jayswal, *JBORS*, 1917, p. 459.

[७] *Ibid.* p. 455. उक्त अनुच्छेद के विश्लेषण के लिए देखिये सुप्र, p. 229. एस० कोनोव ने इसका कुछ दूसरा ही अर्थ किया है—

"And now in the fifth year he has the aqueduct which

राजाओं के १६५वें वर्ष में खारवेल राजा हुए थे। इन राजाओं का नन्दराज के १०३वें वर्ष में भी उल्लेख है, जो कि असम्भव है, क्योंकि नन्द लोग मौर्यों से पहले हुए थे। इसके विपरीत, यदि 'तिवस-सत' को ३०० वर्ष माना जाय तो 'पानंतरिय-सठि वस-सते' को १६५ वर्ष नहीं, वरन् ६५०० वर्ष मानना होगा। इसका अर्थ यह हुआ कि खारवेल लोग मौर्यों के ६५०० वर्ष बाद हुए थे। किन्तु, यह भी असम्भव है। जायसवाल ने इस अनुच्छेद का उल्लेख किया है—'पानंतरिय सठि-वस-सते राज-मुरिय-काले **वोच्छिने च छेयठि अगंसि ति कन्तारियम्** उपादियति।' इसी के साथ यह अनुच्छेद भी है—'**पटालिको चतरे च वेडुरियगभे थम्भे पतिठापयति पानतरिया सत-सहसेहि। मुरिय-कालम् वोच्छिनम् च चोयठि-अगसतिकन्तरियम्** उपादायति।' जायसवाल ने इस अनुच्छेद का अनुवाद इस प्रकार किया है—"On the lower-roofed terrace (*i.e.*, in the Verandah) he establishes columns inlaid with beryl at the cost of 75,00,000 (*Panas*), he (the king) completes the Muriya time (era), counted and being of an interval of 64 with a century."[1] इस अनुवाद के अनुसार, डॉक्टर आर० सी० चन्दा[2] का मत है कि यदि '**वोच्छिने**' के बाद प्रयुक्त 'च' अंश निकाल दिया जाये तो इसे '**वोच्छिनम्**' नहीं पढ़ा जा सकता और इस शब्दावली से 'मुरिय-काल' का बोध नहीं होता। यदि '**वोच्छिने**' शब्द निकाल दिया जाय तो अनुच्छेद और भी अजीब सा लगने लगता है। इसके अलावा, कभी-कभी प्रशस्ति में तिथि बताने का तरीका और भी अजीब है। फ़्लीट के अनुसार, पवित्र ग्रन्थों में मिलने वाला '**वोच्छिन्न**' शब्द किसी भी तिथि की ओर संकेत नहीं करता। यह कहा जा सकता है कि प्रथम मौर्य-राजा द्वारा संस्थापित 'राज-मुरिय-काल' नाम का कोई सम्वत् नहीं मिलता है। अशोक द्वारा प्रयोग किये जाने वाले संवत् से भी यही निष्कर्ष निकलता है।[3] जायसवाल की

---

was shut (or opened) in the year 103 (during the reign of the Nanda king), conducted into the town from Tanasuliya Vata."

[1] *JBORS*, Vol. IV, Pt. iv, p. 394 f. डॉ० बरुआ द्वारा दिये गये सुझाव के लिए *IHQ*, 1938, 269 देखिये।

[2] *MASI* No. 1, p. 10. *Cf.* also S. Konow in *Acta Orientalia*, I. 14-21. फ़्लीट की तरह एस० कोनोव उक्त अनुच्छेद में किसी निश्चित तिथि का उल्लेख नहीं पाता, किन्तु वह 'राज-मुरिय-काल' निरुक्ति को निश्चित रूप से महत्त्वपूर्ण समझता है। उसके अनुसार, चन्द्रगुप्त मौर्य के काल के कुछ अप्राप्य ग्रन्थों को खारवेल ने प्राप्त किया। किन्तु, डॉक्टर बरुआ उक्त निरुक्ति 'मुरिय' के अध्ययन से पूर्णरूपेण सहमत नहीं हैं।

[3] प्राचीन जैन-ग्रन्थ (*EHI*,[4] p. 202 n) में अशोक के पौत्र सम्प्रति के संवत् की चर्चा मिलती है। यदि इस संवत् से १६४वें वर्ष का हिसाब लगाया जाय तो खारवेल का काल (*Cir.* 224-164) ६० वर्ष ईसापूर्व निकलता है। बार्नेट ने अपने *A note on Hathigumpha Inscriptions of Kharvela* में आये 'मुरिय-काल' के सम्बन्ध में संकेत किया है कि 'जब मौर्य समय-चक्र का प्रचलन, जिसमें ५ वर्ष के अन्तर से गणना होती थी, समाप्त हो गया, तब उसने नवीन काल-गणना-प्रणाली

Epigraphia Indica[१] में भी कहा गया है कि मौर्यों का कोई संवत् नहीं था। हाथीगुम्फा-शिलालेख में भी कोई ऐसा संकेत नहीं है।[२]

डॉक्टर जायसवाल ने 'तिवस-सत' का अर्थ ३ सौ वर्ष लगाया है और खारवेल और पुष्यमित्र को नन्दराज या नन्दवर्द्धन के ३ सौ वर्ष बाद माना है। किन्तु, हम पहले ही देख चुके हैं कि नन्दवर्द्धन या नन्दिवर्द्धन शिशुनाग राजा था और शिशुनाग राजाओं का कलिंग से कोई सम्बन्ध नहीं था। नन्दिवर्द्धन नहीं, वरन् महापद्मनन्द ने सभी राज्यों को अपने अधीन कर सभी पुराने क्षत्रिय-राजवंशों का उन्मूलन किया। इसलिए हाथीगुम्फा-शिलालेख के नन्दराज को हमें या तो महापद्मनन्द को समझना चाहिये या उसके पुत्रों में से एक को।[३] प्रोफ़ेसर बरुआ को नन्दराज को कलिंग का विजेता कहने में एतराज़ है, क्योंकि अशोक के समय के शिलालेखों में कहा गया है कि अशोक के पूर्व कलिंग अविजित देश रहा था। किन्तु, इसके विपरीत गुप्तकालीन शिलालेखों में समुद्रगुप्त को 'अजित राजजेता' कहा गया है, अर्थात् अविजित राजाओं को भी जीतने वाला।[४] इसके बाद अश्वमेध यज्ञ भी पुनः होने लगे। हम जानते हैं कि यदि इन शिलालेखों के दावों पर अक्षरशः विश्वास किया जाय तो भी इनसे काम का मसाला थोड़ा ही मिलता है। Cambridge History of Ancient India में हाथीगुम्फा के शिलालेखों का हवाला देते हुए इस बात से इन्क़ार किया गया है कि

प्रारम्भ की जिसमें ७ वर्षों का अन्तराल होता था तथा कुल काल ६४ वर्ष का होता था।' कलैण्डर के संशोधन के हेतु खारवेल ने ६४ वर्षों का एक समय-चक्र चालू किया था जिसमें सात-सात वर्ष के ९ युग थे। डॉ० एफ़० डब्ल्यू० थॉमस (*JRAS*, 1922, 84) के अनुसार, अन्तर=अन्तर्गृह=प्रकोष्ठ (कोठरी), अर्थात् जिन कोठरियों (cells) को मौर्य अधूरा छोड़ गये थे, उन्हें खारवेल ने पूरा किया है।

[१] XX. 74.

[२] शिलालेख का आद्यतन अध्ययन इस प्रकार है—"**पटलको चतुरो च वेडूरिय-गभे थंभे पतिठापयति, पानातरीय सतसहसे (हि); मुरिय-काल-वोच्छिनं च चोय (ि) ठ अंग सतिक(म्) तुरियम् उपादयति।**"

"Palaka (?) ………… (he) sets up four columns inlaid with beryl at the cost of seventy five hundred thousand;…. (he) causes to be compiled expeditiously the (text) of sevenfold *Amgas* of the sixty four (letters)." (*Ep. Ind.*, XX, pp. 80-89)।

[३] *M-ASI*, No. I., p. 12.

[४] Allan, *Gupta Coins*, p. cx. *Cf*. जहाँगीर का दावा था कि किसी ने भी काँगड़ा पर विजय नहीं प्राप्त की थी (*ASI. AR*, 1905-6, p. 11)। 'अविजित' का अर्थ केवल यही हो सकता है कि कलिंग अशोक के साम्राज्य में नहीं मिलाया गया था।

नन्दराज कलिंग का ही स्थानीय राजा था।[१] अशोक के बाद मगध के राजवंश की चर्चा किसी भी गम्भीर इतिहास में अनुपलब्ध-सी ही रहती है।[२]

जैसा कि महापद्मनन्द और उसके पुत्रों का शासन ईसापूर्व चौथी शताब्दी में था, उसके हिसाब से खारवेल का समय ईसापूर्व की तीसरी शताब्दी में (यदि 'तिवस-सत' का अर्थ १०३ माना जाय)[३] पड़ता है, या पहली शताब्दी (यदि 'तिवस-सत' का अर्थ ३०० माना जाय) में पड़ेगा। किसी भी स्थिति में वह १८७ से १५१ ईसापूर्व तक राज्य करने वाले पुष्यमित्र का समकालीन नहीं कहा जा सकता।

यवनों का आक्रमण

१८७ ईसापूर्व की राज्य-क्रान्ति तथा विदर्भ के युद्ध के अलावा पुष्यमित्र के समय हुए यवनों के आक्रमण भी एक शंकारहित ऐतिहासिक तथ्य रहे हैं। उत्तर-पश्चिम से यवनों के आक्रमण की चर्चा पतंजलि या उनके एक पूर्ववर्ती एवं कालिदास ने भी की है। इस काल में दो अश्वमेध यज्ञ भी हुए थे।

पंतजलि को सामान्यतया पुष्यमित्र का समकालीन माना जाता है। सर आर० जी० भण्डारकर ने पाठकों का ध्यान महाभाष्य के **'इह पुष्यमित्रं याजयामः'** अनुच्छेद की ओर आकृष्ट किया है। अनुच्छेद में पुष्यमित्र के लिए किये गये बलिदान की ओर संकेत है। अनुच्छेद वर्तमानकालिक क्रिया के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया गया है।[४] पंतजलि ने उक्त उदाहरण इसलिए दिया कि सभी लोग इसे जानते थे। आगे यह भी अनुच्छेद मिलता है—**'अरुनद् यवनः साकेतम्, अरुनद् यवनो मध्यमिकम्।'** इस अनुच्छेद के आधार पर सर भण्डारकर का कहना है कि किसी यवन ने साकेत या अयोध्या और एक अन्य स्थान मध्यमिका[५] को घेर लिया था। यह भी हो सकता है कि वैय्याकरण पंतजलि का यह उदाहरण पुस्तकों से ही लिया गया हो। सम्भव है ये मूर्धाभिषिक्त उदाहरण रहे हों। किन्तु, पुष्यमित्र के काल में यूनानियों से युद्ध का उल्लेख कालिदास ने भी किया है। मालविकाग्निमित्रम् में कवि ने पुष्यमित्र के पौत्र तथा सेनापति वसुमित्र और (सिन्धु के दायें तट पर)[६] एक यूनानी सेना के बीच लड़ाई का उल्लेख

---

[१] उक्त अनुच्छेद देखिये—**"नन्दराज नीतम् च कलिंग जिनसन्निवेसम्"**—इससे सिद्ध है कि नन्द एक बाहरी राजा था।

[२] See R.D. Banerjee, *Orissa*, I. 202. Kumar Bidyadhar Singh Deo, *Nandapur*, I. 46; *Ep. Ind.*, xxi, App. Ins., No. 2043.

[३] एस० कोनोव (*Acta Orientalia*, Vol. I, pp. 22-26) को १०३ ईसापूर्व की तिथि मंज़ूर है। वह जैन-काल का उल्लेख करते हुए इसे महावीर-निर्वाण का वर्ष मानता है। डॉक्टर के० पी० जायसवाल (*Ep. Ind.*, XX. 75) ने १०३ ईसा-पूर्व को नन्द-काल में माना है, और यह वह समय था जब तनसुलिया नहर खोदी गई जिसे खारवेल ने अपने शासन-काल के पाँचवें वर्ष में विस्तृत रूप दिया।

[४] *Ind. Ant.*, 1872, p. 300.

[५] Nagari near Chitor, *Cf.* महाभारत, II. 32. 8; *Ind. Ant.*, VII. 267.

[६] सिन्धु या इसी नाम की मध्यभारत की दूसरी नदी (*Cf. IHQ*, 1925, 215)।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

किया है । दुर्भाग्यवश न तो महाभाष्य में और न मालविकाग्निमित्रम् में ही आक्रमणकारी का नाम दिया गया है । यद्यपि इस सम्बन्ध में बहुत मत-मतान्तर हैं, किन्तु इस बात पर सभी एकमत हैं कि आक्रमणकारी बैक्ट्रियन यूनानी था ।

बैक्ट्रिया के यूनानी, मूल रूप में सेल्यूकस के सीरियाई (तथा पश्चिमी एशियाई) साम्राज्य के नागरिक थे । स्ट्रैबो जस्टिन तथा ट्रोगस के विवरण से पता चलता है कि "जिस समय सेल्यूकस के उत्तराधिकारी ईसापूर्व की तीसरी शताब्दी के मध्य समय में अपने साम्राज्य के पश्चिमी भागों में व्यस्त थे, बैक्ट्रिया के एक हज़ार नगरों के राज्यपाल डायोडोटस ने विद्रोह कर दिया और स्वयं शासक बन बैठा ।" जस्टिन के अनुसार, उसका पुत्र ही डायोडोटस-द्वितीय के नाम से उसका उत्तराधिकारी बना । इस व्यक्ति ने अर्सकीज़ के साथ गठबन्धन किया था जिसने प्रायः उसी समय (२४७ ई० पू०) उत्तरी ईरान के पार्थिया नामक प्रान्त पर स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिया था ।

डायोडोटस-द्वितीय का उत्तराधिकारी यूथीडेमस था । स्ट्रैबो[1] का कथन है कि यूथीडेमस तथा उसके सहयोगियों ने ही बैक्ट्रिया के समीपवर्ती भूभाग में विद्रोह कराया था । पोलिबियस का कहना है कि एण्टिओकोस-तृतीय (२२३-१८७ ई० पू०) ने इन प्रान्तों को पुनः प्राप्त करने का प्रयास किया, परन्तु अन्ततोगत्वा उसने भी यूथीडेमस से सन्धि कर ली । स्ट्रैबो ने आगे कहा है—"एण्टिओकोस-महान् ने यूथीडेमस के पुत्र डेमेट्रिओस का स्वागत किया और यह देखकर कि व्यक्तित्व, तौर-तरीक़े तथा बातचीत से वह राजसम्मान का अधिकारी प्रतीत होता था, एण्टिओकोस ने अपनी एक लडकी[2] से उसका विवाह करने का वचन दिया तथा उसके पिता को राजकीय उपाधि प्रदान की । उसके बाद उसने एक लिखित सन्धि की तथा सन्धि की शर्तों पर शपथ ले ली । उसके बाद अपनी सेना को सुसंगठित किया और यूथीडेमस से हाथियों का उपहार स्वीकार किया । इसके बाद वह काकेशस (Caucasus), अर्थात् हिन्दूकुश को पार करके भारत पहुँचा । यहाँ पर तत्कालीन भारतीय नरेश सोफ़ागेसेनस (सुभागसेन) से सन्धि की और उससे भी हाथियों का उपहार स्वीकार किया । इस प्रकार उसने १५० हाथी एकत्रित किये । अब अपनी सेना को एक बार पुनः संगठित कर वह विजय-यात्रा पर निकला । उसने भारत में उपहार-स्वरूप मिले खजाने को अपने देश ले जाने का काम एण्ड्रोस्थेनीज़ के ज़िम्मे कर दिया ।"

एण्टिओकोस-महान् की इस विजय-यात्रा के बाद बैक्ट्रियन यूनानियों ने भी हिन्दूकुश के दक्षिण के भूभाग को अपने राज्य में मिलाने का इरादा किया । स्ट्रैबो के कथनानुसार बैक्ट्रिया में विद्रोह करने वाले यूनानी अब इतने शक्तिशाली हो गये कि वे एरियाना (Ariana) और भारत के स्वामी हो गये । आर्टेमिटा के अपोलोडोरस

---

[1] १. हैमिल्टन एवं फ़ाल्कनर का अनुवाद, Vol. II, p. 251.

[2] २. विवाह के सम्बन्ध में टार्न का सन्देह कोई निश्चित प्रमाण नहीं है (*Greeks in Bactria and India*, 82, 201) । उसके तर्क नकारात्मक प्रकार के हैं । पोलीबियस के साक्ष्य पर, वह आग्थोक्लीज़ (Agathokles) के सिक्कों के बारे में भी अपने ही मत को प्रमुखता देता था ।

का भी यही मत है।[१] उनके सेनापति मेनाण्डर (if he really crossed Hypanis[२] to the east and reached the Isamus[३]) ने सिकन्दर-महान् से अधिक भूभागों पर कब्जा किया था। उसकी जीतों में से कुछ तो मेनाण्डर स्वयं की थीं और कुछ बैक्ट्रियन राजा यूथीडेमस के पुत्र डेमेट्रिओस की। इन लोगों ने केवल पतलीन (Patalene), अर्थात् सिन्धु के डेल्टे के भाग को ही नहीं, वरन् सौराष्ट्र या काठियावाड़ (Saraostos) तथा समुद्र-तटवर्ती प्रदेश (Sigerdis — सागरद्वीप)[४] को भी जीता। अपोलोडोरस के अनुसार, बैक्ट्रियाना समूचे एरियाना का आभूषण-प्रदेश था। इन लोगों ने सीरिज और फिरनी (Seres and Phryni)[५] तक अपना राज्य-विस्तार कर लिया।

स्ट्रैबो के अनुसार, यूनानियों का राज्य पूर्व में भारत तक फैला था, जिसका कुछ श्रेय तो मेनाण्डर को था और कुछ एण्टिओकोस-महान् के दामाद तथा यूथीडेमस के पुत्र डेमेट्रिओस को।

मेनाण्डर को 'मिलिन्द' कहा गया है। इसका उल्लेख बुद्धकालीन मिलिन्दपञ्हो में मिलता है। बौद्ध थेर' में इसे नागसेन का समकालीन कहा गया है। अवदानकल्पलता में 'क्षेमेन्द्र'[६] शब्द का उल्लेख भी मेनाण्डर के ही अर्थ में माना जाता है। यह राजा अलसन्दा (Alexandria)[७] के कसलीग्राम[८] में पैदा हुआ था और उसकी राजधानी सागल या शाकल में थी, जो सम्भवतः अब पंजाब का स्यालकोट है।[९] डॉक्टर स्मिथ उसकी राजधानी को क़ाबुल में बताते थे, किन्तु वैसी बात नहीं थी।[१०]

---

१. आर्टेमिटा (Artemita) टिगरिस (Tigris) के पूर्व में था। अपोलोडोरस की पुस्तकों की तिथि १३० और ८७ ईसापूर्व के बीच की मानी जाती है (Tarn, *Greeks in Bactria and India*, 44 ff)।

२. *i. e.*, the Typhasis or Vipasha (The Beas)।

३. भागवत पुराण (V. 19, 17) में त्रिसामा नामक नदी कौशिकी, मन्दाकिनी और यमुना नदियों से मिली हुई बताई गई है। सरकार इस नदी को इक्षुमती नाम से मानते हैं।

४. महाभारत, II. 31, कच्छ ?; *Bomb. Gaz.*, I. i. 16f; *Cf.* Tarn, *GBI*, 2nd ed., 527.

५. *Strabo,* Hamilton and Falconer, Vol. II, pp. 252-53. चीनी तथा तारिम के बेसिन के निवासियों से अभिप्राय है।

६. स्तूप-अवदान (*No.* 57); Smith, *Catalogue of Coins: Indian Museum*, p. 3; *SBE*, 36, xvii.

७. Trenckner, मिलिन्दपञ्हो, p.83.

८. *Ibid.*, p. 82 (*CHI*, 550)। इस 'अलेक्जैण्ड्रिया' का सही पता अनिश्चित है। Tarn (p. 141) 'अलेक्ज़ैण्ड्रिया' को क़ाबुल की घाटी में मानते हैं। मिलिन्दपञ्हो (VI. 21) में 'अलेक्जैण्ड्रिया' को समुद्र के किनारे स्थित कहा गया है।

९. मिलिन्दपञ्हो, pp. 3, 14.

१०. *EHI*, 1914, p. 225.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उसके राज्य-विस्तार का एक प्रमाण तो उसके समय के सिक्के भी हैं जो कि पश्चिम में क़ाबुल तक और पूर्व में मथुरा तक पाये गये हैं।[१] पेरिप्लस (Periplus) के लेखक के अनुसार, उसके समय तक चाँदी के ऐसे छोटे-छोटे सिक्के बरीगाज़ा (भड़ौंच) बन्दरगाह में प्रचलित थे, जिन पर यूनानी अक्षरों में मेनाण्डर का नाम खुदा होता था। इस लेखक का समय ६०-८० ईसवी था। प्लूटार्क के कथनानुसार, मेनाण्डर अपनी नामप्रियता के लिए प्रसिद्ध था और अपने प्रजाजनों में इतना लोकप्रिय था कि उसके मरने पर राज्य के विभिन्न नगरों के अलग-अलग लोग उसके अस्थि-अवशेषों को प्राप्त करने का दावा करते रहे थे। प्लूटार्क के अनुसार, मेनाण्डर के राज्य में बहुत से नगर थे। हाल में प्राप्त बाजौर-अवशेषों से स्पष्ट है कि उसका राज्य पश्चिम की ओर काफ़ी विस्तृत था।[२]

कुछ लोगों के अनुसार, डेमेट्रिओस राजा महाभारत[३] का दत्तामित्र ही था। सम्भवतः यही इन्डे (Inde) का राजा एमेट्रिअस था, तथा चासर (Chaucer) लिखित Knightes Tale तथा वेसनगर का तिमित्र भी सम्भवतः यही था।[४] भारत और अफ़गानिस्तान में भी बहुत से ऐसे नगर थे जिनका नाम उसके या उसके पिता के नाम पर था। इससे भी उसकी विस्तृत राज्य-सीमा का प्रमाण मिलता है। चारक्स[५] (Charax) के इसीदोर (Isidore) में भी अरकोशिया के एक नगर का नाम डेमेट्रिआस्पोलिस मिलता है। क्रमदीश्वर के व्याकरण में सौवीर के एक नगर का नाम दत्तामित्री आया है।[६] भूगोलवेत्ता तोलेमी के अनुसार, यूथिमीडिया (यूथिडीमिया[७] ?) नामक नगर ही शाकल[८] कहा जाता था और मिलिन्दपञ्हो के अनुसार, यह मेनाण्डर के समय में इण्डो-ग्रीक राज्य की राजधानी था।

---

[१] *SBE*, Vol. XXXV, p. xx; Tarn, 228.

[२] *Ep. Ind.*, XXIV. 7 ff, XXVII, 318f, XXVII, ii. 52f. राजा का नाम Mina-edra दिया गया है।

[३] I, 139, 23. कृमिस (यक्ष), जिससे डॉक्टर बागची ने मेनाण्डर की तुलना की है, वह किस्से-कहानियों में अधिक मिलता है।

[४] *EHI*^{4}, p. 255n.

[५] JR*AS*, 1915, p. 830; *Parthian Stations*, 19.

[६] *Ind. Ant.*, 1911, *Foreign Elements in the Hindu Population*; *Bom. Gaz.*, I. ii, 11, 176; क्रमदीश्वर, p. 796. यहाँ सम्भवतः सिंधु की घाटी के डेमेट्रिओस का उल्लेख है। जॉन्सटन का मत भिन्न है (*JRAS*, April, 1939; *IHQ*, 1939)। महाभारत (I, 139, Verses 21-23) में सौवीर के प्रसंग में 'यवनाधिप' तथा 'दत्तामित्र' का नाम आया है। यदि दत्तामित्र ही Demetrios नहीं है और Dattamitri उसी का बसाया हुआ नगर नहीं है तो यह जानना भी महत्त्वपूर्ण है कि महाभारत में यह नाम किसके लिए आया है। कुछ भी हो, संस्कृत के व्याकरणवेत्ताओं तथा अन्य शास्त्रीय प्रमाणों के अनुसार, यवनों का सम्बन्ध दत्तामित्री तथा सौवीर से था।

[७] See Tarn, p. 486; and see also, Keith in *D. R. Bhandarkar Volume*, 221f

[८] *Ind. Ant.*, 1884, pp. 349-50.

अनुमान के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मेनाण्डर या डेमेट्रिओस इन्हीं दो विजेता राजाओं में से एक ने पुष्यमित्र के समय में अवध में साकेत, चित्तौर में मध्यमिका तथा सिन्धु नदी की ओर आक्रमण किया था। गोल्डस्टुकर, स्मिथ तथा अन्य लोगों के अनुसार, वह आक्रमणकारी मेनाण्डर ही था। उसने ही व्यास नदी को पार किया था और आगे त्रिसामा[1] (Isamus) तक बढ़ आया था। भण्डारकर ने अपनी पुस्तक Foreign Elements in the Hindu Population में कहा है कि वह आक्रमणकारी डेमेट्रिओस था। पोलिबियस के अनुसार, डेमेट्रिओस (२११ और २०६ ईसापूर्व में) एण्टिओकोस-तृतीय के हमले के समय एक तरुण था। जस्टिन के अनुसार, डेमेट्रिओस भारतीयों का राजा था। उस समय यूक्राटीड्स बैक्ट्रियनों का तथा मिथ्राडेट्स पार्थियनों का राजा था। सम्भवतः इसी समय यूक्राटीड्श और मिथ्राडेट्स राजाओं का शासन-काल आरम्भ हुआ था। दोनों महान् योद्धा थे और अनेक लड़ाइयाँ लड़ चुके थे। यद्यपि यूक्राटीड्स की ताक़त घट चुकी थी, फिर भी जिस समय डेमेट्रिओस ने ३ सौ सिपाहियों की सहायता से उस पर आक्रमण किया, उस समय भी यूक्राटीड्स ने केवल ६० हज़ार की सेना के साथ अपने शत्रु का मुक़ाबला किया था। डॉक्टर स्मिथ ने मिथ्राडेट्स को १७१ और १३६ ईसापूर्व के बीच कहा है (डेबेवोइस के अनुसार, १३८ व १३७ ईसापूर्व के बीच)। यूक्राटीड्स और डेमेट्रिओस भी सम्भवतः इसी समय, अर्थात् दूसरी शताब्दी के मध्य में हुए थे।[2]

हम देख चुके हैं कि २०६ ईसापूर्व के आसपास डेमेट्रिओस एक तरुण और राजकुमार ही था। अब हम यह देखते हैं कि ईसापूर्व की दूसरी शताब्दी के मध्य वह "भारतीयों के राजा" के रूप में राज्य कर रहा था। अतः उसे १८७ से १५१ ईसापूर्व में राज्य करने वाले पुष्यमित्र का समकालीन इण्डो-यूनानी राजा समझा जाना चाहिये। इसके विपरीत, यदि हम निम्नलिखित तथ्यों पर विचार करें तो मेनाण्डर उसके बहुत समय बाद हुआ था। जस्टिन के अनुसार, यूक्राटीड्स[3] ने डेमेट्रिओस से उसका भारतीय भूभाग छीन लिया था। यूक्राटीड्स को उसके लड़के ने मार डाला था जिसके साथ वह राज्य करता था।[4] पर, अपने पिता को मारने वाला यह कौन था? यही मेनाण्डर था,[5] इस सम्बन्ध में किसी इतिहासकार ने कुछ नहीं कहा, इसलिए पिता का वध करने वाले इस राजा का परिचय अनिश्चित है।

---

[1] भागवत पुराण में त्रिसामा एक नदी का नाम है। मेनाण्डर की विजय-यात्रा में स्ट्रैबो ने गंगा का उल्लेख नहीं किया है।

[2] एण्टिओकोस-चतुर्थ की मृत्यु के बाद मिथ्राडेट्स के कार्य शुरू होते हैं। मिथ्राडेट्स १३८-१३७ ईसापूर्व में मरा था (Tarn, pp. 197 ff.)। Debevoise के मत के लिए देखिये *A Political History of Parthia*, p. 20 ff. See *Cambridge History of India*, p. 64.

[3] Watson's tr., p. 277.

[4] *Ibid.*, p. 277.

[5] कनिंघम और स्मिथ के अनुसार, पिता की हत्या करने वाला अपोलोडोटस था। किन्तु, रैप्सन ने लिखा है कि अपोलोडोटस, यूक्राटीड्स-परिवार का नहीं था, वरन् इसके विपरीत उसने यूक्राटीड्स को निकाल दिया था। अपोलोडोटस कपिशा का राजा था (*JRAS*, 1905, pp. 784-85)। रॉलिन्सन के अनुसार,

जस्टिन ने लिखा है कि जिस राजकुमार ने यूक्राटीड्स को मारा था, वह अपने पिता का सहयोगी था। हम जानते हैं कि जो यूनानी एकसाथ राज्य करते थे, वे अपने संयुक्त सिक्के भी जारी करते थे। लीसियस और एण्टियलकिडस के संयुक्त सिक्के भी मिले हैं। इसी प्रकार आग्थोक्लिया और स्ट्रैटो, स्ट्रैटो-प्रथम और स्ट्रैटो-द्वितीय तथा हर्मेओस और कैलिओप के भी संयुक्त सिक्के प्राप्त हुए हैं। यूक्राटीड्स के सिक्कों पर केवल हेलियोक्लीज़ तथा उसकी रानी के चित्र मिलते हैं। कनिंघम और गार्डनर के अनुसार, हेलियोक्लीज़ और उसकी पत्नी लियोडाइक यूक्राटीड्स के माँ-बाप थे। किन्तु, वान सैलेट (Van Sallet)[1] ने इन सिक्कों से बिल्कुल भिन्न निष्कर्ष निकाला है। उसके मतानुसार, ये सिक्के यूक्राटीडस ने अपने माता-पिता की याद या सम्मान में नहीं, वरन् अपने पुत्र हेलियोक्लीज़ की, राजकुमारी लियोडाइक के साथ हुई शादी के अवसर पर जारी किये थे। वान सैलेट के अनुसार, राजकुमारी लियोडाइक राजा डेमेट्रिओस तथा एण्टिओकोस की पुत्री (जो कि सम्भवतः डेमेट्रिओस की रानी थी) की पुत्री थी। यदि सैलेट का कहना सही माना जाय तो यह भी कहा जा सकता है कि हेलियोक्लीज़ ही अपने पिता का सहयोगी राजा तथा उसका हत्यारा राजकुमार था जिसकी ओर जस्टिन ने संकेत किया है।

ऊपर जो कुछ कहा गया है, उससे सिद्ध है कि डेमेट्रिओस के बाद यूक्राटीड्स हुआ था, और उसके बाद हेलियोक्लीज़ गद्दी पर बैठा था। इस स्थिति में मेनाण्डर को हेलियोक्लीज़ के पहले का राजा नहीं कहा जा सकता। यह कहा जा सकता है कि डेमेट्रिओस के बाद इण्डो-ग्रीक राज्य दो टुकड़ों में बँट गया। पहला भाग जो झेलम का समीपवर्त्ती भाग था, उस पर यूक्राटीड्स और उसका लड़का राज्य करता था; तथा दूसरा भाग जिसमें यूथिमीडिया (यूथिडीमिया ?) अथवा शाकल प्रदेश आता था, उस पर मेनाण्डर शासन करता था। इस प्रकार उसे सम्भवतः यूक्राटीड्स और पुष्यमित्र का भी समकालीन माना जा सकता है।

डेमेट्रिओस के बाद इण्डो-ग्रीक राज्य का विघटन एक ऐतिहासिक तथ्य माना जा सकता है। भारत में दो विरोधी यूनानी राज्यों का होना तथा उनका विघटन विभिन्न प्रमाणों से भी प्रमाणित होता है। पुराणों में कहा गया है—

भविष्यन्तीः यवना धर्मतः कामतोऽर्थतः
नैवमूर्धाभिषिक्तास् ते भविष्यन्ति नराधिपाः
युगदोष-दुराचारा भविष्यन्ति नृपास्तु ते
स्त्रीनाम् बाल-वधेनैव हत्वा चैव परस्परम् ।

"धार्मिक भावना या शक्ति-प्रभाव से यवन लोग राजा होंगे, किन्तु उनका विधिवत् राज्याभिषेक नहीं होगा। वे लोग समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार का लाभ

अपोलोडोटस 'फ़िलापेटर' की उपाधि धारण करता था (*Intercourse between India and the Western World*, p. 73)। यह हो सकता है कि पिता को मारने वाला अपोलोडोटस फ़िलापेटर नहीं, वरन् अपोलोडोटस सोटर रहा हो। लेकिन, कभी-कभी एक ही सिक्के पर फ़िलापेटर और सोटर नाम भी लिखे मिलते हैं, इसलिए अपोलोडोटस फ़िलापेटर और अपोलोडोटस सोटर को दो भिन्न-भिन्न व्यक्ति समझना ठीक नहीं जँचता।

[1] *Ind. Ant.*, p. 256.

उठा कर भ्रष्ट रीति-रिवाज़ों का पालन करेंगे और स्त्रियों एवं बच्चों का क़त्ल एवं एक दूसरे की हत्या[१] ही कलियुग के अन्त में राजाओं का कार्य रह जायेगा ।"[२]

गार्गी संहिता में लिखा है—

मध्यदेशे न स्थास्यन्ति यवना युद्ध धर्मदाः
तेषां अन्योन्य सम्भावा (?) भविष्यन्ति न संशयः
आत्मा-चक्रोत्थितं घोरम् युद्धम् परम दारुणम् ।

"भयंकर लड़ाई लड़नेवाले यूनानी लोग मध्यदेश (मध्य भारत) में नहीं टिक सकेंगे । उनके स्वयं के राज्य में एक भयंकर युद्ध होगा । यह युद्ध उन्हीं लोगों के बीच होगा ।"[३]

सिक्के तत्कालीन यूक्राटीड्स तथा यूथिडेमस राजवंशों के बीच हुए युद्ध की सत्यता प्रमाणित करते हैं । लेकिन, हमारे पास जो अन्य प्रमाण उपलब्ध हैं, उनसे अपोलोडोटस, आग्थोक्लिया तथा स्ट्रैटो-प्रथम ही यूक्राटीड्स एवं हेलियोक्लीज़ के समकालीन और प्रतिद्वन्द्वी सिद्ध होते हैं, मेनाण्डर नहीं । यूक्राटीड्स के समय के तांबे के वर्गाकार सिक्के[४] की एक ओर एक राजा की मूर्त्ति भी बनी है । इसके अतिरिक्त 'Basileus Megalou Eukratidou' भी अंकित है । दूसरी ओर ज्यूस (Zeus) के चित्र के साथ 'Kavisiye Nagaradevata' अंकित मिलता है । ये सम्भवतः अपोलोडोटस के समय के सिक्के थे ।[५] इससे यह अनुमान भी लग सकता है कि अपोलोडोटस यूक्राटीड्स का समकालीन और प्रतिद्वन्द्वी था तथा काफ़िरिस्तान, घोरबन्द और पंजषिर की घाटी में स्थित कपिशा राज्य से पदच्युत किया गया था । रैप्सन[६] ने संकेत किया है कि हेलियोक्लीज़ ने आग्थोक्लिया तथा स्ट्रैटो-प्रथम के संयुक्त शासन तथा स्ट्रैटो-प्रथम के स्वतन्त्र शासन के प्रतीक सिक्कों को पुनः चलाया था । सिक्कों का पुनरांकन आग्थोक्लिया और स्ट्रैटो-प्रथम ने नहीं वरन् हेलियोक्लीज़ ने कराया था । उपर्युक्त तथ्यों से सिद्ध है कि आग्थोक्लीज़ और स्ट्रैटो-प्रथम इण्डो-ग्रीक प्रदेशों पर राज्य करते थे और वे या तो हेलियोक्लीज के समकालीन थे या किसी पूर्ववर्त्ती के, बाद के कदापि नहीं ।

हमने देखा कि जस्टिन के प्रमाण और कपिशा के सिक्कों से यही सिद्ध होता है कि यूक्राटीड्स ने अपने दो प्रतिद्वन्द्वियों अपोलोडोटस तथा डेमेट्रिओस से युद्ध किये थे । इसी प्रकार हेलियोक्लीज़ को भी आग्थोक्लिया तथा स्ट्रैटो-प्रथम से युद्ध करना पड़ा था । चूंकि डेमेट्रिओस तथा अपोलोडोटस, दो यूक्राटीड्स के विरोधी थे, दोनों के

---

१. *Cf.* Cunningham, *AGI*, Revised Ed. 274; *Camb. Hist. Ind.*, I. 376; "The Macedonians........gave away to a fury of blood-lust, sparing neither women nor child."

२ Pargiter; *Dynasties of the Kali Age*, p. 56-74.

३. Kern, बृहत्संहिता, p. 38.

४. *CHI*, 555, 690; Whitehead, *Indo-Greek Coins*, 26.

५. Rapson, *JRAS*, 1905, p. 785. सिक्कों के पुनः चालू किये जाने से विजय नहीं, वरन् उनके व्यापारिक संबंधों का आभास मिलता है (*JAOS*, 1950, p. 210) ।

६. *JRAS*, 1905, pp. 165 ff; *CHI*, p. 553.

सिक्के भी समान थे, अतः इनसे दोनों का समय एक ही प्रतीत होता है तथा लगता है कि दोनों एक-दूसरे से सम्बन्धित थे। हो सकता है कि वे एक-दूसरे के बाद हुए हों। अब प्रायः निश्चित हो गया कि डेमेट्रिग्रोस यूथिडेमोस का तथा अपोलोडोटस डेमेट्रिग्रोस का उत्तराधिकारी था।

सम्भवतः हेलियोक्लीज़ यूक्राटीड्स का लड़का था। यूक्राटीड्स अपोलोडोटस का प्रतिद्वन्द्वी था। इससे सिद्ध है कि हेलियोक्लीज़ अपोलोडोटस से उम्र में कम तथा उसका समकालीन था। अतः हेलियोक्लीज के प्रतिद्वन्द्वी आग्थोक्लिया और स्ट्रैटो-प्रथम भी अपोलोडोटस के प्रायः समकालीन रहे होंगे। स्ट्रैटो-प्रथम तथा उसका पौत्र स्ट्रैटो-द्वितीय, दोनों एकसाथ शासन करते थे। इसलिए डेमेट्रिग्रोस तथा स्ट्रैटो-प्रथम के बीच के समय में मेनाण्डर के समृद्ध शासन-काल के लिए कोई गुंज़ाइश नहीं मालूम होती। 'मिलिन्दपञ्हो' नामक बौद्ध-ग्रन्थ मे मिलिन्द या मेनाण्डर '५०० वर्ष' का माना गया है, पाँचवीं शताब्दी[1] के पूर्व नहीं, वरन् परिनिर्वाण (**परिनिब्बानतो पंचवस्स सते अतिक्कन्ते एते उपज्जिस्सन्ति**) के बाद।[2] अतः मेनाण्डर का कार्यकाल श्रीलंका के बौद्ध-ग्रन्थों के अनुसार, १४३-४४ वर्ष ईसापूर्व नहीं था। कैन्टोनीज़ (Cantonese) परम्परा के अनुसार, यह समय ८६ ईसापूर्व से १४ ईसवी तक था। इस प्रकार ग्रन्थों तथा सिक्कों दोनों आधारों के अनुसार, मेनाण्डर को पुष्यमित्र का समकालीन नहीं कहा जा सकता।[3] इसलिए, कालिदास और पतंजलि ने जिस यवन-आक्रमणकारी का वर्णन किया है और जिसकी सेना को वसुमित्र ने परास्त किया था, वह यवन डेमेट्रिग्रोस ही रहा होगा।[4]

अश्वमेध-यज्ञ

यवनों तथा विदर्भ (बरार) से हुए सफल युद्धों के बाद पुष्यमित्र ने दो अश्वमेध यज्ञ किये। कुछ विद्वानों के अनुसार, ये यज्ञ उस ब्राह्मण प्रतिक्रियावाद की

---

[1] फ्रैंक (Franke) और फ़्लीट (Fleet) ने भी कुछ इसी प्रकार की व्याख्या प्रस्तुत की है (*JRAS*, 1914, pp. 400-1; and Smith, *EHI*, 3rd ed., p. 328)।

[2] Trenckner मिलिन्दपञ्हो, p. 3. टार्न (134 n) का यह कहना ठीक नहीं है कि अपोलोडोरस के अनुसार, मेनाण्डर डेमेट्रिग्रोस, ट्रोगस तथा अपोलोडोटस का समकालीन था और कुछ सिक्कों के प्रमाणस्वरूप वह यूक्राटीड्स का भी समकालीन था (*CHI*, p. 551)। स्ट्रैबो ने भी इन्हीं प्रमाणों के आधार पर कहा है कि मेनाण्डर और डेमेट्रिग्रोस ने मिलकर थोड़ा-बहुत भारतीय प्रदेश जीता था। किन्तु कहीं भी यह स्पष्ट नहीं है कि दोनों विजेता समकालीन थे। ट्रोगस की पुस्तक अब उपलब्ध नहीं है तथा सिक्कों के आधार पर प्राप्त निष्कर्ष उतने स्पष्ट नहीं हैं।

[3] *Cf.* 445n *infra.*

[4] एस० कोनोव (*Acta Orientalia*, 1. 35) के अनुसार, न तो मेनाण्डर ने यमुना नदी पार किया था, और न डेमेट्रिग्रोस ने साकेत और मध्यमिका पर अधिकार किया था। आर० पी० चन्दा (*IHQ*, 1929, p. 403) का मत है कि स्ट्रैबो को भी डेमेट्रिग्रोस की भारत-विजय पर सन्देह था। किन्तु, पंजाब तथा सिन्धु-घाटी के कुछ नगरों के नाम डेमेट्रिग्रोस और सम्भवतः उसके पिता के नाम पर थे। इससे स्ट्रैबो का सन्देह निर्मूल लगता है।

प्रारम्भिक कड़ी थी जो ५०० वर्ष पश्चात् समुद्रगुप्त और उसके उत्ताधिकारियों के समय पूर्ण रूप से विकसित हुआ था। बौद्ध-ग्रन्थों में पुष्यमित्र को शाक्यमुनि के धर्म का कट्टर विरोधी कहा गया है। किन्तु, जिस दिव्यावदान पर आजकल विद्वान् अधिक विश्वास करते हैं, उसकी प्रामाणिकता पर अधिक विश्वास नहीं किया जा सकता, क्योंकि इसी ग्रन्थ में पुष्यमित्र को अशोक का उत्तराधिकारी मौर्य-सम्राट् भी कहा गया है।[1] किन्तु, बौद्ध-ग्रन्थों में पुष्यमित्र के धर्म-विरोध के विषय में यह भी कहा गया है कि उसका धर्म-विरोध किसी धार्मिक भावना के कारण नहीं, वरन् व्यक्तिगत ऐश्वर्य के निमित्त ही अधिक था। पुष्यमित्र ने बौद्ध-मंत्रियों को नौकरी से अलग नहीं किया। उसके बेटे के दरबार में पंडित कौशिकी[2] का बड़ा सम्मान था। महावंश[3] में लंका का 'दुट्ठगामणी' जो बैम्बिक-शुंग का समकालीन था, के समय तक बिहार, अवध, मालव तथा अन्य प्रान्तों में भी अनेक बौद्ध-मठों का अस्तित्व था तथा उनमें हज़ारों साधु निवास करते थे। यह सम्भवतः १०१ से ७७ ईसापूर्व के बीच का समय था। भरहुत के बौद्ध-अवशेषों में यद्यपि शुंगकाल का उल्लेख मिलता है, तथापि उनमें यह कहीं भी नहीं कहा गया कि जो पुष्यमित्र पुराणों के अनुसार, शुंगों में शामिल किया गया है, वह कभी कट्टर ब्राह्मण-धर्म का अनुयायी था। यद्यपि पुष्यमित्र के वंशज कट्टर हिन्दू थे, किन्तु वे असहिष्णु नहीं थे, जैसा कि कुछ लेखकों ने कहा है।

पुष्यमित्र-कालीन मंत्रि-परिषद्

पतंजलि ने पुष्यमित्र की सभा का उल्लेख किया है। किन्तु यह स्पष्ट नहीं है कि पतंजलि ने जिसे राजदरबार कहा है, वह राजा की न्याय-परिषद् थी या मंत्रि-परिषद्। कालिदास ने परिषद् तथा मंत्रि-परिषद् का स्पष्ट उल्लेख किया है। यदि कालिदास के उल्लेखों पर विश्वास किया जाय तो तत्कालीन राजव्यवस्था के अन्तर्गत परिषद् (Council) एक महत्त्वपूर्ण संस्था थी। कालिदास के अनुसार, युवराज की सहायता भी परिषद् करती थी।[4] मालविकाग्निमित्रम् में विदिशा (पूर्वी मालव) का उपराजा युवराज अग्निमित्र परिषद से मंत्रणा करता था, ऐसा उल्लेख है —

> "देव एवम् अमात्य-परिषदो विज्ञापयामि।"[5]
> "मंत्रि-परिषदोऽप्येताद्-एव दर्शनम
> द्विधा विभक्ताम् श्रियम्-उद्वहन्तो
> धुरम् रथाश्वाविव संग्रहीतुः

---

[1] *IHQ*, Vol. V, p. 397; दिव्यावदान, 433-34.

[2] मालविकाग्निमित्रम्, Act I.

[3] Geiger, Trans., p. 193.

[4] बूह्लर (*Ep. Ind.*, III. 137) के संकेतानुसार, अशोक के राजकुमारों की सहायता के लिए महामात्र लोग होते थे। सम्भवतः इन्हें ही गुप्तकाल में कुमारामात्य कहा जाता था।

[5] "राजन्! यह निर्णय मैं मंत्रि-परिषद् को सुनाऊंगा।"

तौ स्थास्यतस्-ते नृपतेर् निदेशे
परस्पर-ग्रावग्रह-निर्विकारो[1]
राजा--तेन हि मन्त्रि पन्षिदम् ब्रूहि सेनान्ये
वीरसेनाय लिख्यताम् एवं क्रियताम् इति।"[2]

इससे स्पष्ट है कि विदेश-नीति से सम्बन्धित कोई जटिल समस्या सामने आने पर मंत्रि-परिषद् या अमात्य-परिषद् से मंत्रणा की जाती थी।

२. अग्निमित्र और उसके उत्तराधिकारी

सम्भवतः ३६ वर्ष[3] तक राज्य करने के बाद पुष्यमित्र की १५१ ईसापूर्व में मृत्यु हो गई। पुष्यमित्र के बाद अग्निमित्र गद्दी पर बैठा।[4] रुहेलखण्ड में प्राप्त ताँबे के सिक्कों पर भी अग्निमित्र का नाम खुदा मिला है। कनिंघम[5] के अनुसार, इस राजा को पुष्यमित्र का पुत्र नहीं समझना चाहिये, बल्कि वह उत्तरी पंचाल (रुहेलखण्ड) के स्थानीय राजवंश का ही कोई राजा था। कनिंघम के उक्त निष्कर्ष के दो कारण थे—

१. अग्निमित्र ही एक ऐसा नाम है जो सिक्कों तथा पौराणिक सूची दोनों में मिलता है। सिक्कों में अन्य 'मित्र' राजाओं के जो नाम मिलते हैं, वे पंचाल-राजवंश के ही थे। इनका पुराणों में आये नामों से मेल नहीं बैठता।

---

[1] "यही मंत्रि-परिषद् का भी विचार है। वे दोनों राजा अपने महाराजा के हित के प्रश्न को लेकर आपस में ही एकमत नहीं थे, आदि" (Act V. Verse 14)।

[2] "राजा—मंत्रि-परिषद् से कहो कि वह सेनापति वीरसेन को इस आशय का लिखित आदेश दे।" (Tawney, मालविकाग्निमित्रम्, pp. 89-90)।

[3] जैन-परम्परा के अनुसार, केवल ३० वर्ष—"अट्ठसयम् मुरियाणम् तिसच्चिआ पूसमित्तस" (*I.A*, 1914, 118 ff. मेरुतुङ्ग)।

[4] अमरकोश की टीका में कहा गया है कि अग्निमित्र शूद्रक राजा था (*Oka*, p. 122; *Ann. Bhand. Or. Res. Inst.*, 1931, 360)। इसके विपरीत, कीथ ने 'वीरचरित' और राजशेखर का उल्लेख करते हुए शूद्रक को सातवाहन राजा का मंत्री कहा है। एक अन्य लेखक के अनुसार, शूद्रक ने स्वाति राजा को हराकर कई वर्ष राज्य किया था। हर्षचरित्र के अनुसार, वह चन्द्रकेतु राजा (दक्षिण भारत) का शत्रु था (Kieth, *The Sanskrit Drama*, p. 129; *Sanskrit Literatnre*, p. 292; Ghosh, *History of Central and Western India*, p. 141 f.)।

[5] *Coins of Ancient India.*, p. 79; *Cf.* Allan, *CICAI*, p. cxx.

२. इस प्रकार के सिक्के उत्तरी पंचाल-क्षेत्र के अलावा दूसरी जगह मिलते भी नहीं।

जहाँ तक पहले कारण का प्रश्न है, रिवेट-कारनैक (Rivett-Carnac)[1] तथा जायसवाल[2] का कथन है कि अग्निमित्र के अलावा भी कई एक सिक्कों पर खुदे नाम शुङ्ग तथा कण्व राजाओं की पौराणिक सूची में हैं। उदाहरणार्थ, भद्रघोष को 'घोष' माना जा सकता है। यह शुङ्ग-वंश (पौराणिक सूची में) का सातवाँ राजा था। भूमिमित्र नाम का एक कण्व राजा था। जेठमित्र को अग्निमित्र का उत्तराधिकारी माना जा सकता है, क्योंकि उसे वसुज्येष्ठ या सुज्येष्ठ कहा जाता था,[3] फिर भी यह अग्निमित्र से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध था। कुछ नाम ऐसे अवश्य हैं जिनकी समानता दुर्लभ-सी है। ये सम्भवन: वही शुङ्ग राजा होंगे जो कण्व राजा 'वसुदेव कण्व' के राज्य-ग्रहण के बाद बच रहे होंगे। बचे हुए शुङ्ग राजाओं को बाद में आन्ध्रवंशियों तथा शिशुनन्दियों ने समाप्त कर दिया।[4]

जहाँ तक दूसरे कारण का सम्बन्ध है, हमें याद रखना चाहिये कि पंचाल देश के माने जाने वाले 'मित्र' राजाओं के सिक्के पंचाल के अलावा अवध, बस्ती जिला तथा पाटलिपुत्र तक में मिले हैं। ब्रह्ममित्र तथा इन्द्रमित्र नामक दो 'मित्र' राजाओं में से इन्द्रमित्र तो निश्चित रूप से पंचाल देश का था। ये नाम बोधगया के स्तम्भों में भी मिले हैं। इसके अलावा, मथुरा, पंचाल और कुम्रहार के सिक्कों में भी ये नाम उत्कीर्ण मिलते हैं।[5] इन तथ्यों के कारण यह कहना कुछ कठिन-सा मालूम होता है कि 'मित्र' नाम के राजाओं का एक मात्र स्थान उत्तरी पंचाल ही था। फिर भी, अभी इस विषय को विवादास्पद ही समझना चाहिये।

---

[1] *JASB*, 1880, 21 ff; *Ind. Ant.*, 1880 311.

[2] *JBORS*, 1917, p. 479; *Cf.* 1944, pp. 7 ff.

[3] *Dynasties of the Kali Age*, p. 31, n. 12. Pace Allan, *CICAI*, p. xcvi.

[4] *Dynasties of the Kali Age*, p. 49.

[5] Cunningham, *Coins of Ancient India*, pp. 14-88; Allan, *CICAI*, pp. cxix, cxx; Marshall, *Archaeological Survey Report for 1907-8* p. 40; Bloch, *ASR*, 1908-9, p. 147; *IHQ*, 1930, pp. 1 ff. '*Im................tra*' नाम बोधगया के स्तम्भ में मिलता है। इसके पूर्व '*Rano*' भी लिखा हुआ है। Bloch ने इसे कौशिकी-पुत्र इन्द्राग्निमित्र कहा है। Bloch, Rapson और Marshall, तीनों इस विषय में एकमत हैं। इसी इन्द्राग्निमित्र से आर्या कुरंगी का विवाह हुआ था। 'कौशिकी-पुत्र' शब्द से पंडित कौशिकी का भी भ्रम होता है। 'मालविकाग्निमित्रम्' की कौशिकी, बरार के मंत्री की बहन थी। बरार राज्य के राजकुमार की एक बहन अग्निमित्र की पत्नी थी। राजा ब्रह्ममित्र की रानी का नाम नागदेवी था।

जैसा कि हम पहले ही जान चुके हैं, अग्निमित्र का उत्तराधिकारी ज्येष्ठ था। संभवतः ज्येष्ठ ही सिक्कों में जेठमित्र के रूप में लिखा हुआ मिलता है।[1]

दूसरा राजा वसुमित्र भी अग्निमित्र का ही पुत्र था। उसने अपने पितामह के समय में ही राज्य की सेना का सेनापतित्व करके यवनों को सिन्धु नदी (सम्भवतः मध्य भारत की किसी नदी) के तट पर हराया था। सम्भवतः सिन्धु नदी ही पुष्पमित्र के राज्य और मालव में इण्डो-ग्रीक साम्राज्य के बीच की सीमारेखा थी।

भागवत पुराण में भद्रक को वसुमित्र का उत्तराधिकारी बताया गया है। यही नाम सम्भवतः विष्णु पुराण में आर्द्रक और ओद्रुक, वायु पुराण में आन्ध्रक तथा मत्स्य पुराण में 'अन्तक' के रूपों में आया है। जायसवाल ने पभोसा-लेख के 'उदाक' शब्द को भी उपर्युक्त नाम का ही एक रूप माना है। लेखों का एक अंश इस प्रकार है: "आषाढ़-सेन, गोपाली वैहिदरी के पुत्र तथा राजा बहसतिमित्र के मामा गोपाली के पुत्र, उदाक के दसवें वर्ष में कस्सपिय अर्हत् के हेतु एक गुफा तैयार की गई थी।" एक अन्य पभोसा-लेख से हमें पता चलता है कि आसाढ़सेन अधिक्षत्र (अहिक्षत्र) राजवंश का था। अधिछत्र उत्तरी पंचाल की राजधानी था। जायसवाल के अनुसार, ओद्रक शुङ्ग राजा था, जबकि आषाढ़सेन मगध-साम्राज्य के अधीन एक शासक मात्र था। मार्शल[2] के अनुसार, पाँचवें शुङ्ग राजा को ही 'काशीपुत्र' कहा जाता था। प्राचीन नगर विदिशा (आज के बेसनगर) में प्राप्त गरुड़-स्तम्भ-लेख में भागभद्र नाम आता है। जायसवाल ने 'भागभद्र' की समानता शुङ्ग राजा 'भाग' से की है। किन्तु, यह सिद्धान्त इसलिए ठीक नहीं जँचता कि बेसनगर के अन्य स्तम्भ-लेखों से सिद्ध होता है कि विदिशा में भी भागवत नाम का एक राजा राज्य करता था और वह काशीपुत्र[3] भागभद्र से भिन्न था। किसी स्पष्ट प्रमाण के अभाव में यह नहीं कहा जा सकता कि उदाक, अग्निमित्र या भागवत के वंश का था। इस सम्बन्ध में मार्शल[4] का कथन अधिक विश्वसनीय है।

ऐसा लगता है कि विदिशा का राजा अग्निमित्र पश्चिमी पंजाब के यूनानी शासकों से मैत्री-सम्बन्ध क़ायम किये हुए था। हम जानते हैं कि सर्वप्रथम सेल्युकस ने मगध के साम्राज्य को जीतना चाहा, किन्तु जब उसका प्रयास विफल सिद्ध हुआ तो उसने यही बुद्धिमानी समझी कि मौर्य-राजा से मित्रता कर ली जाय। बैक्ट्रियन शासक भी पुष्यमित्र द्वारा परास्त हुए थे। इसके अतिरिक्त, वे गृह-कलह से भी कुछ निर्बल हो गये थे। अतः उन्होंने भले कुछ समय के लिए ही सही—गंगा की घाटी के राजवंश से भी शत्रुता समाप्त कर दी थी। बेसनगर के लेखों से भागभद्र और हेलिओद्रा

---

[1] *Coins of Ancient India*, p. 74; Allan, *CICAI*, xcvi. जेठमित्र और अग्निमित्र का सम्बन्ध देखिये। ज्येष्ठमित्र का नाम ब्राह्मी लिपियों में भी मिलता है (*Amrita Bazar Patrika*, July 11, 1936, p. 5)।

[2] *A Guide of Ancient India*, p. 11n.

[3] सरकार 'कौत्सीपुत्र' का सुझाव देते हैं।

[4] डॉक्टर बरुआ (*IHQ*, 1930, 23) के अनुसार, उदाक पता नहीं किसी राजा का नाम था, या किसी स्थान-विशेष का।

शासकों के बारे में भी कुछ पता चलता है। हेलिओडोरा (हेलिओडोरस) तक्षशिला का रहने वाला था तथा महाराज अंतलिकित (एण्टियलकिडस) की ओर से राजदूत होकर वह राजन् काशीपुत्र भागभद्र के यहाँ आया था। उस समय राजा भागभद्र अपने शासन के १४वें वर्ष में अपने ऐश्वर्य की चरम सीमा पर था। उक्त राजदूत यद्यपि यूनानी था, किन्तु उसने भागवत-धर्म का प्रचार किया था, तथा उसने वासुदेव (कृष्ण) के सम्मान में 'गरुड़ध्वज' की स्थापना की थी। राजदूत हेलिओडोरस महाभारत का भी ज्ञाता था। उसने अपनी जन्मभूमि तक्षशिला के आवास-काल में महाभारत[1] का अध्ययन किया था।

भद्रक के बाद हुए उसके तीन क्रमशः उत्तराधिकारियों के बारे में कुछ भी ज्ञात नहीं है। नवम राजा भागवत ने काफ़ी दिनों तक, यानी लगभग ३२ वर्षों तक राज्य किया था। डॉक्टर भण्डारकर ने इस राजा की समानता महाराज भागवत से की है, जिसका उल्लेख वेसनगर-शिलालेखों में मिलता है। भागवत का उत्तराधिकारी देवभूति या देवभूमि एक तरुण तथा दुराचारी राजा था। पुराणों के अनुसार, वह दस वर्ष के शासन के बाद अपने अमात्य वसुदेव द्वारा गद्दी से उतार दिया गया था। बाण ने अपने 'हर्षचरित' में कहा है कि अतिकामी शुंग के जीवन का अन्त उसके अमात्य वसुदेव ने देवभूमि की दासी की पुत्री, जिसने शुङ्ग की रानी का छद्मवेष धारण किया था, की सहायता से किया। बाण के कथन का यह मतलब नहीं होता कि यही देवभूति राजा शुंग था जिसकी हत्या कर दी गई थी। इसका यह भी अर्थ हो सकता है कि सम्भवतः वसुदेव ने पिता के पतन के लिए षड्यन्त्र किया था, ताकि वह स्वयं गद्दी पर बैठ सके। किन्तु, पुराणों से प्राप्त अन्य सामग्री को देखते हुए बाण के उक्त कथन को सत्य नहीं माना जा सकता।

देवभूति के पतन के बाद ही शुङ्ग का ऐश्वर्य समाप्त नहीं हो गया। शुंग का प्रभाव आन्ध्रों के उदय तक मध्यभारत[2] में था। शुंग-प्रभाव का अन्त करने वाले आन्ध्र-भृत्यों या सातवाहनों ने विदिशा का शासन चलाने के लिए शिशुनंदी[3] को नियुक्त किया था। शिशुनंदी के एक नाती (दौहित्र) था, जो बाद में पुरिका[4] का शासक हुआ था। इसका नाम शिशुक था।

३. भारतीय इतिहास में बैम्बिक-शुङ्ग-काल का महत्त्व

यों तो समूचे भारतीय इतिहास में, और विशेषकर मध्यभारत के इतिहास में पुष्यमित्र-वंशी राजाओं का विशेष महत्त्व है। इनके शासन-काल में यूनानी

---

१. महाभारत, V. 43. 22; XI. 7. 23—**दमस्त्यागोऽप्रमादश्च ते त्रयो ब्राह्मणो हयाः।** देखिये गीता, XVI. 1. 2; See *JASB*, 1922, No. 19, pp. 269-71; *ASI*, 1908-9, p. 126; *JRAS*, 1909, 1055, 1087f, 1093f; 1910, 815; 1914, 1031f; *IHQ*, 1932, 610; *Annals of the Bhandarkar Institute*, 1918-19, p. 59.

२. *Cf. Dynasties of the Kali Age*, p. 49.

३. *Ibid.*, 49.

४. पुरिका की स्थिति के लिए देखिये *JRAS*, 1910, 446; *Cf. Ep. Ind.*, xxvi. 151.

आक्रमणकारियों को गहरा आघात पहुँचा और मध्यप्रदेश के लिए निरन्तर संकटकालीन स्थिति उत्पन्न करने वाले आक्रमण रुक गये। सीमावर्त्ती यूनानी राजाओं ने अपनी नीति में परिवर्त्तन कर दिया और वे सेल्युकस-कालीन नीति का अनुसरण करने लगे। इस काल में साहित्य, कला और धर्म के क्षेत्रों में गुप्त-वंशी 'स्वर्ण-काल' जैसे पुनरुत्थान की लहर-सी आ गई थी। इन कार्य-कलापों के इतिहास में मध्यभारत के तीन स्थानों का नाम विशिष्ट रूप से उल्लेखनीय है। वे हैं—विदिशा (बेसनगर), गोनार्ड और भरहुत। फ़ाउशर ने लिखा है कि 'विदिशा के ही शिल्पकारों ने साँची के फ़ाटक पर अपनी खुदाई की कला दिखाई थी।" विदिशा और समीपवर्त्ती शिलालेखों से स्पष्ट है कि उस समय भागवत-धर्म का बोलबाला था। यद्यपि इस धर्म के प्रचारार्थ कोई अशोक नहीं हुआ था, फिर भी यवन-राजकुमारों तथा यवन-राजदूतों पर इसका पूर्ण प्रभाव था। तत्कालीन साहित्य के विख्यात व्याकरणवेत्ता पतंजलि गोनार्ड[1] में ही पैदा हुए थे। भरहुत शुंगकालीन राजसत्ता का अक्षुण्ण स्मारक हो गया था।

---

[1] See *IHQ*, 1926, 267. सुत्त निपात के अनुसार, गोनार्ड—विदिशा और उज्जैन के बीच स्थित था (*Carm. Lec.*, 1918,4; *Journal of the Andhra Historical Research Society*, Jan. 1935, pp. 1 ff.)। (Sircar's trans. of S. Levi's note on Gonard)।

१० मगध तथा भारत-यूनानी राजसत्ताओं का पतन

१. कण्व, उत्तर शुङ्ग तथा उत्तर मित्र वंश

वसुदेव के इशारे पर विलासी शुंग को अपने जीवन से हाथ धोना पड़ा। वसुदेव ने ७५ ईसापूर्व में एक नये राजवंश की स्थापना की, जिसे कण्व या काण्वायन वंश कहा गया है। पुराणों में भी इस वंश के सम्बन्ध में निम्न उल्लेख मिलता है—"वह (वसुदेव), अर्थात् काण्वायन ९ वर्षों के लिए राजा होगा। उसका पुत्र भूमिमित्र १४ वर्ष तक शासन करेगा। उसका पुत्र नारायण १२ वर्ष तक राज्य करेगा। उसका पुत्र सुशर्मन १० वर्ष तक सिहासनारूढ़ रहेगा। ये सभी शुंग-भृत्य काण्वायन राजा के रूप में प्रसिद्ध हैं। ये चार कण्व ब्राह्मण धरती का राज्य-सुख भोगेंगे।[1] ये लोग सत्यव्रती होंगे। इन लोगों के बाद पृथ्वी का राज्य आन्ध्र-वंश के हाथ में चला जायेगा।" सम्भवतः यह भूमिमित्र राजा वही था जिसके नाम के सिक्के उपलब्ध होते हैं।[2]

कण्व-वंश के राजाओं से सम्बन्धित तिथियाँ काफ़ी विवादग्रस्त हैं। सर आर० जी० भण्डारकर ने अपनी पुस्तक Early History of Deccan में कहा है—'आन्ध्र-भृत्य के संस्थापकों ने कण्व-वंश का ही उन्मूलन नहीं किया, वरन् शुङ्गों के अवशेष को भी समाप्त कर दिया।' कण्व लोगों का शुङ्ग-भृत्य या शुंगों के नौकर के रूप में भी उल्लेख आया है। अतः इससे यह स्पष्ट है कि जब शुङ्ग-वंश के राजा शक्तिहीन हो गये तो कण्व लोगों ने पूरी राजसत्ता अपने हाथ में ले ली और पेशवा

---

[1] सम्भवतः पूर्वी मालव में विदिशा या बेसनगर अथवा पड़ोस का ही कोई अन्य नगर शुंगों की राजधानी था।

[2] श्री जे० सी० घोष सर्वतात को भी कण्व-राजाओं में शामिल करने के पक्ष में हैं। सर्वतात को शंकर्षण और वसुदेव का पुजारी तथा अश्वमेध यज्ञ करने वाला भी कहा गया है। घोसण्डी के शिलालेख (*Ind. Ant.*, 1932, Nov., 203 ff; *Ep. Ind.*, xxii, 198) के अनुसार, यह राजा गाजायन-वंश का माना जाता है। गाजायन-वंश गादायन या गोदायन-वंश था (*Cf. IHQ*, 1933, 797 ff), यह कहना अधिक युक्तियुक्त नहीं लगता। इससे अधिक तो गाजायन का सामीप्य शौनक और कश्यप वंश के गाहायन या गाङ्गायन से ही प्रतीत होता है (Caland, बौद्ध स्रौत सूत्र, III, 423-454)। यह स्मरण रखना आवश्यक है कि हरिवंश में कहा गया है कि कलियुग में अश्वमेध को पुनः प्रचारित करने वाले कश्यप द्विज ही थे। 'गाङ्गायन' शब्द से निस्सन्देह मैसूर के गङ्गों का स्मरण हो आता है, जो अपने को काण्वायन-गोत्र का कहते थे (*A New History of the Indian People*, Vol. VI, p. 248)। किन्तु, गाजायन और गाङ्गायन की समानता सिद्ध नहीं होती।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के रूप में राजकाज चलाने लगे। इन लोगों ने अपने स्वामी का उन्मूलन नहीं किया, वरन् उन्हें नाम मात्र के लिए राजा बना रहने दिया। इस प्रकार ये सभी वंश समकालीन ही लगते हैं। शुङ्गों के तथाकथित ११२ वर्ष के शासन-काल में कण्वों के ४५ वर्ष का काल भी सम्मिलित है।

अब केवल पौराणिक सामग्री से ही सिद्ध होता है कि कुछ राजा शुङ्ग-वंश के कहे जाते थे। वे आन्ध्र-भृत्यों की विजय के समय तक शासन करते रहे थे। ये लोग कण्व लोगों के समकालीन कहे जाते हैं। किन्तु, यह दिखाने के लिए कि शुङ्ग-वंश के उपर्युक्त राजा ही दस प्रसिद्ध शुङ्ग-शासक थे, कोई प्रमाण नहीं उपलब्ध होता। दस प्रसिद्ध शुंग-शासकों का नाम पौराणिक सूची में मिलता है, तथा यह भी लिखा मिलता है कि इन लोगों ने ११२ वर्ष तक राज्य किया था। इसके विपरीत, कुछ पुराणों में दसवें शुंग राजा देवभूति के बारे में कहा गया है कि प्रथम कण्व वसुदेव ने उसकी हत्या की थी। इससे सिद्ध है कि जो शुंग राजा केवल नाम मात्र के लिए ही थे, वे वसुदेव तथा उसके उत्तराधिकारियों के समकालीन थे, किन्तु इतने महत्त्व-पूर्ण नहीं थे कि उनके नामों का उल्लेख किया जाय। इससे यह भी सारांश निकलता है कि पुष्यमित्र से देवभूति तक दस शुङ्ग-राजाओं का ११२ वर्ष का जो शासन-काल स्थापित किया गया है, उसमें कण्वों के ४५ वर्ष शामिल नहीं किये गये हैं। इसलिए इस राजवंश के बारे में डॉक्टर स्मिथ के तिथि-सम्बन्धी मत को थोड़े हेरफेर के साथ स्वीकार कर लेने में कोई हानि नहीं है। इन पृष्ठों में जिस तिथिक्रम को आधार बनाया गया है, उसके अनुसार कण्व-राजाओं का शासन-काल ७५ ईसापूर्व से ३० ईसा-पूर्व तक माना गया है।

कण्व-वंश के बाद मगध-विशेष के बारे में बहुत थोड़ी जानकारी ही मिल पाती है। मगध में कण्व-वंश के पतन से गुप्त-वंश के उत्थान के बीच के इतिहास का पुनर्गठन अपने आप में कठिन कार्य है। जिस आन्ध्र या सातवाहन वंश के बारे में कहा जाता है कि इस वंश के लोगों ने ही कण्व-वंश का शासन समाप्त किया था, वे भी मगध के शासक नहीं थे।[1] इन लोगों में जो सबसे महान् राजा हुए थे, उन्हें 'दक्षिणापथपति' कहा जाता था। इन राजाओं के नाम के साथ 'तिसमुदतोयपीतवाहन' विशेषण भी प्रयोग में लाया जाता था। इसके अतिरिक्त इन्हें 'त्रिसमुद्राधिपति' भी कहा जाता था। अर्थात्, इन राजाओं की सेना तीन समुद्रों का जल पीती थी, अर्थात् इन राजाओं की सैनिक व राजनीतिक गतिविधि तीन समुद्रों के बीच के भूभाग में फैली हुई थी। जहाँ तक गुप्त-वंश के शासकों का सम्बन्ध है, उनका राज्य चार समुद्रों के बीच के भूभाग में विस्तृत था।

---

[1] Nurruvar Kannar (सिलप्पदिकरम्, xxvi, Dikshitar's trans., 299 f.) को शातकर्णि या मगध से जोड़ना तर्कसंगत नहीं है। Nurruvar केवल विशेषण है, नाम का अंश नहीं। गङ्गा नदी चाहे उक्त वंश से सम्बन्धित गौतमी गङ्गा या गोदावरी न हो, किन्तु वह गङ्गा मगध के अलावा अन्य भूभागों से भी होकर बहती है। इससे स्पष्ट है कि उक्त राजाओं तथा मगध को एक-दूसरे से संबंधित करना कोई आवश्यक नहीं है।

मोखलिणम[1] की कथा के अनुसार, खुदाई में मिली एक मिट्टी की मुहर से पता चलता है कि गया के क्षेत्र में कभी मौखरी-सामन्तों का प्रभुत्व था। किन्तु, उनके बारे में कोई निश्चित तिथि नहीं ज्ञात हो सकी है। इसी प्रकार महाराज त्रिकमल की तिथि भी अनिश्चित है। परन्तु यह ज्ञात नहीं हो सका कि महाराज त्रिकमल ने ६४ ईसापूर्व या ईसवी सन् ६४ में शासन किया था। कुछ तिथिक्रमों के अनुसार, लिच्छवियों और पुष्पपुर (पाटलिपुत्र) के बीच भी कुछ सम्बन्ध का आभास मिलता है। परन्तु यह कथन कहाँ तक प्रमाणित माना जाये, कहना कठिन है। ईसापूर्व की अन्तिम शताब्दियों में मगध तथा उसके समीपवर्ती प्रान्तों में शासन करने वाले जिन महत्त्वपूर्ण राजाओं की हमें जानकारी है, वे सभी 'मित्र' वंशीय थे। जैन-ग्रन्थों में बलमित्र और भानुमित्र राजाओं को पुष्यमित्र का उत्तराधिकारी कहा गया है। इससे मित्र-वंश के शासन का अस्तित्व प्रमाणित होता है। डॉक्टर बरुआ ने मित्र-राजाओं की एक सूची तैयार की है। इस सूची में बृहत्स्वातिमित्र, इन्द्राग्निमित्र, ब्रह्ममित्र, बृहस्पतिमित्र, धर्ममित्र तथा विष्णुमित्र राजाओं के नाम मिलते हैं। हम इस सूची में वरुणमित्र तथा गोमित्र[2] के नाम भी जोड़ सकते हैं। इनमें से इन्द्राग्निमित्र, ब्रह्ममित्र तथा सम्भवतः बृहस्पतिमित्र निश्चित रूप से मगध के राज्य से सम्बन्धित थे। शेष कौशाम्बी और मथुरा से सम्बन्धित थे। किन्तु, इसमें यह पता नहीं चलता कि ये मित्र-वंशी राजा आपस में, या कण्व तथा शुङ्ग वंशों से किस रूप में सम्बन्धित थे।

पाटलिपुत्र तथा मथुरा में कलान्तर में मित्र-राजाओं के बाद सीथियन 'मुरुण्ड' तथा सत्रप (क्षत्रप) राजा आ गये। उसके बाद ही नागवंश तथा गुप्तवंश का भी आविर्भाव हुआ। कुछ विद्वानों के अनुसार, गुप्तवंश के पूर्व कोटवंश के लोग पाटलिपुत्र के शासक हुए थे।[3]

---

[1] Fleet, *CII*, 14. उक्त मुहर की लिखावट मौर्य-कालीन ब्राह्मी लिपि में है। हो सकता है कि मौखरी लोग मौर्यों या कण्व-राजवंश के अधीन ही किसी छोटे भूभाग के राजा रहे हों। राजस्थान के कोटा राज्य में भी कुछ शिलालेख मिले हैं, जिनमें मौखरी महासेनापतियों द्वारा यज्ञ-स्तम्भों की स्थापना के उल्लेख मिलते हैं। इन स्तम्भों की स्थापना तीसरी सदी में की गई बताई जाती है (*Ep. Ind.*, XXIII, 52)।

[2] एलन के अनुसार, ब्रह्ममित्र, दृढ़मित्र, सूर्यमित्र और विष्णुमित्र ने गोमित्र के समान सिक्के जारी किये थे। इनके बाद -दत्त, -भूति और -घोष नामधारी राजा हुए थे।

[3] इस सम्बन्ध में देखिये—*Ep. Ind.*, VIII. 60 ff; हर्षचरित, VIII, p. 251; Cunningham, महाबोधि; *ASI*, 1908-9, 141; *IHQ*, 1926, 441; 1929, 398, 595 f; 1930, 1 ff; 1933, 419; Kielhorn, N. I. Inscriptions, No. 541; *Indian Culture*, I, 695; *EHI*, 3rd ed., 227 n; *JRAS*, 1912. 122; Smith, *Catalogue of Coins in the Indian Museum*, 185, 190, 194; Allan, *CICAI*, pp. xcvi-xcviii, cx, 150 ff, 169 ff, 173 ff. 195 ff, 202 ff.

२. सातवाहन और चेत

जबकि शुङ्ग तथा कण्ववंशी राजे आपसी कलह में फँसे हुए थे, समूचे विन्ध्य-क्षेत्र में कुछ नयी शक्तियों का उदय हो रहा था। ये थे सातवाहन[1] (इन्हें आन्ध्र या आन्ध्र-भृत्य[2] भी कहा गया है), जिनके राज्य का नाम दक्षिणापथ था। दूसरी शक्ति थी, कलिंग का चेत या चेति राज्य।

सातवाहन-वंश की स्थापना सिमुक ने की थी। पुराणों में यही नाम शिशुक, सिन्धुक तथा शिप्रक के रूपों में आया है। इन ग्रन्थों के अनुसार, आन्ध्र 'सिमुक' काण्वायन तथा सुशर्मन वंशों को परास्त कर तथा शुङ्गों को नष्ट कर पृथ्वी का राज्य हस्तगत करेगा। यदि यह कथन सही है तो इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि सिमुक ४० तथा ३० वर्ष ईसापूर्व के बीच सुशर्मन का समकालीन था और पहली शताब्दी में इसका उत्थान हुआ था। रैप्सन, स्मिथ तथा अन्य कई विद्वान् एकमत से इस सम्बन्ध में पुराणों की प्रामाणिकता मानने से इन्कार करते हैं। ये लोग इस कथन को अधिक महत्त्वपूर्ण मानते हैं कि आन्ध्र-वंश ने साढ़े चार सौ वर्ष राज्य किया था। ये लोग सिमुक को तृतीय शताब्दी ईसापूर्व के अन्त का बताते हैं और इनका कथन है कि ईसवी काल की तीसरी शताब्दी के अन्त में ही इस वंश का अन्त हुआ था।

सिमुक की तिथि के सम्बन्ध में कुछ सोचने या विचार करने के पूर्व निम्न-लिखित बातों पर विचार कर लेना आवश्यक है—

१. सिमुक (अथवा उसके भाई एवं उत्तराधिकारी कृष्ण) की पुत्रवधू नायनिका के नानाघाट-रिकॉर्ड की लिखावट किस समय की है?

२. खारवेल के हाथीगुम्फा-शिलालेखों, जिनमें एक शातकर्णि का उल्लेख है जो कि सम्भवतः सिमुक का उत्तराधिकारी था, की वास्तविक तिथि क्या है?

३. आन्ध्र-वंश में कितने राजा हुए थे, तथा कितने वर्षों तक उनका शासन रहा?

जहाँ तक पहले प्रश्न का सम्बन्ध है, श्री आर० पी० चन्दा के अनुसार, नायनिका के शिलालेख भागवत के बेसनगर के लेखों के बाद के हैं। पुराणों में

---

[1] नारायणपाल के भागलपुर ग्राण्ट में 'सातिवाहन' तथा साहित्य में 'शालि-वाहन' शब्द मिलता है। Sir R. G. Bhandarkar, *EHD*, Section VII. भी देखिये।

[2] पुराणों में 'आन्ध्र-जातीय' या 'आन्ध्र' लिखा मिलता है, जिसकी स्थापना कण्व-राजाओं के नौकरों या भृत्यों ने की थी। सर आर० जी० भण्डारकर विष्णु पुराण की चर्चा करते हुए सिमुक को आन्ध्र-भृत्य-वंश का संस्थापक मानते हैं। लेकिन यह बात उन सात आभीरों के विषय में भी कही जानी चाहिए। जिनका उल्लेख सिमुक-वंश के उत्तराधिकारियों के रूप में आया है (Pargiter, *Dynasties of the Kali Age*, p. 45); *Cf.* विष्णु पुराण, IV. 24. 13.

भागवत को पुष्यमित्र-वंश के अन्तिम शासक का पूर्ववर्त्ती राजा कहा गया है।[१] फलस्वरूप सिमुक को कण्व-काल में रखा जा सकता है, अर्थात् ईसापूर्व की पहली शताब्दी में। यह समय पुराणों में दिये गये समय से मेल खाता है।[२]

जहाँ तक दूसरे प्रश्न का सम्बन्ध है, श्री आर० डी० बनर्जी के इस तर्क को स्वीकार करना उचित प्रतीत होता है कि हाथीगुम्फा-शिलालेखों के '**पंचमे चे दानि वसे नन्दराज तिवस-सत**' अनुच्छेद में 'तिवस-सत' शब्द का अर्थ १०३ नहीं, वरन् ३०० ही है।[३] यही मत श्री चन्दा का भी है और एक बार डॉक्टर जायसवाल[४] ने भी ऐसा ही मत व्यक्त किया था। यदि 'तिवस-सत' का अर्थ ३०० है तो

---

[१] *MASI*, No. 1, pp. 14-15. श्री चन्दा (*IHQ*, 1929, p. 601) के अनुसार, नानाघाट तथा बेसनगर के शिलालेखों में तथ्यों की समानता मिलती है। बेसनगर के लेख Antialkidas के समय के हैं, जिसका समय अनिश्चित है। वह सम्भवत: दूसरी शताब्दी ईसापूर्व के उत्तरार्ध में रहा होगा, या बाद की शताब्दी के प्रथमार्द्ध में।

श्री चन्दा के मत के विरुद्ध श्री आर० डी० बनर्जी ने कहा है कि नानाघाट के लेखों में क्षत्रप तथा आरम्भ के कुषाणों की चर्चा अधिक है (*Mem. Asiat. Soc. Bengal*, Vol. XI. No. 3. p. 145)। रैप्सन (*Andhra Coins*, lxxvii) के अनुसार, नानाघाट के रिकॉर्ड में अक्षर 'द' जिस रूप में मिलता है, वह ईसापूर्व की दूसरी शताब्दी के आरम्भ का ही हो सकता है।

श्री बनर्जी या रैप्सन, किसी ने भी नानाघाट के रिकॉर्ड को पहली शताब्दी का नहीं बताया है। ये रिकॉर्ड दूसरी शताब्दी के हैं—यह कथन पहले के विद्वानों के इस मत पर आधारित मालूम होता है कि खारवेल का १३वाँ वर्ष मौर्य-राजाओं के शासन का १६५वाँ वर्ष था (Buhler, *Indian Palaeography*, 39.; Rapson, xvii)।

[२] बूह्लर (*ASWI*, Vol. V, 65) के अनुसार, नानाघाट-अभिलेख के अक्षर गौतमी-पुत्र शातकर्णि तथा उसके पुत्र पुलुमावि के भी १०० वर्ष पूर्व के हैं। जो विद्वान् नानाघाट-रिकॉर्ड को ईसापूर्व की दूसरी शताब्दी के प्रथमार्द्ध में मानते हैं; और, गौतमी-पुत्र शातकर्णि से सम्बन्धित सामग्री को दूसरी शताब्दी का मानते हैं, उन्हें सातवाहनों के रिकॉर्ड की प्रामाणिकता पर ध्यान देना होगा (यदि यही नागनिका के पति तथा बलश्री के पुत्र के शासन के बीच का समय है)। श्री एन० जी० मजूमदार ने नानाघाट-रिकॉर्ड को १००-७५ वर्ष ईसापूर्व के बीच का माना है (*The Monuments of Sanchi*, Vol. I, Pt. IV, p. 277)।

[३] *JBORS*, 1917, 495-497.

[४] *JBORS*, 1917, 432; *Cf.* 1918, 377, 385. पुरानी धारणा १९२७, २३८, २४४ में संशोधित कर दी गई है। हाथीगुम्फा-लेखों के उक्त अनुच्छेद की स्वीकृत व्याख्या के अनुसार, यदि 'तिवस-सत' का अर्थ १०३ माना जाय तो खारवेल का शासन-काल नन्दराज के १०३–५ = ९८ वर्ष बाद पड़ता है। वह ९८–९, अर्थात

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

खारवेल तथा उसका समकालीन शातर्काण नन्दराज से ३०० वर्ष बाद ही हुए रहे होंगे; अर्थात् २४ ईसापूर्व में। यह तिथि पुराणों के उल्लेख से मेल खाती है, जिसके अनुसार शातर्काण के पिता या चाचा सिमुक ने अन्तिम कण्व राजा सुशर्मन का अन्त किया था (सी० ४०-३० ईसापूर्व)।[1]

अब हम तीसरे प्रश्न को लेते हैं कि सातवाहन-वंश के राजाओं की संख्या क्या थी तथा उनका शासन-काल कितने वर्षों तक रहा? इस सम्बन्ध में हमें जो सामग्री पुराणों में मिलती है, वह कुछ भिन्न प्रकार की है। पहले प्रश्न पर मत्स्य पुराण में कहा गया है—'**एकोन विंशतिर्ह्येते**[2] **आन्ध्र भोक्ष्यन्ति वै महीम्।**' किन्तु इसके अन्तर्गत ३० नाम दिये गये हैं।[3]

वायु पुराण में '**इत्येते वै नृपास् त्रिंशद् आन्ध्र भोक्ष्यन्ति ये महीम्**' (ये तीस आन्ध्र-वंशी राजा धरती का राजसुख भोगेंगे)। किन्तु, वायु पुराण की अधिकांश पांडुलिपियों में १७, १८ या १९ नाम ही दिये गये हैं।

जहाँ तक आन्ध्र-राजाओं के शासन-काल का प्रश्न है, कतिपय मत्स्य-पांडुलिपियों के अनुसार, यह समय ४६० वर्ष का था।

"**तेषां वर्ष शतानि स्युश् चत्वारि षस्टिर् एव च।**"

एक अन्य मत्स्य-पाण्डुलिपि में कुछ भिन्न मत प्रकट किया गया है, वह इस प्रकार है—

"**द्वादशाधिकम् एतेषां राज्यम् शत-चतुष्टयम्।**"

अर्थात्, आन्ध्र-प्रभुता का समय ४१२ वर्ष का था। इसके विपरीत, सर आर० जी० भंडारकर के अनुसार, कुछ वायु पुराण की पाण्डुलिपियों में यह समय केवल २७२½ वर्षों का रहा।

नन्दराज के ८९ वर्ष बाद युवराज बनाया गया था (३२४ ईसापूर्व–८९=२३५ ईसापूर्व के बाद नहीं)। इस समय खारवेल का पिता सिंहासन पर था। किन्तु, अशोक के एक शिलालेख के अनुसार, इस समय कलिंग पर एक मौर्य-कुमार शासन करता था, और वह अशोक के ही मातहत था। इसलिए, 'तिवस-सत' का अर्थ ३०० ही है, न कि १०३। नन्दों और शातर्काण के बीच ३०० वर्षों का अन्तर था, इस सम्बन्ध में पुराण भी एकमत हैं। १३७ (मौर्यों का समय)+११२ (शुङ्गवंश का समय)+४५ (कण्व-वंश का समय)+२३ (सिमुक का समय)+१० (कृष्ण का समय)=३२७ वर्ष।

[1] हो सकता है कि सिमुक ४०-३० ईसापूर्व के कुछ वर्ष पूर्व गद्दी पर बैठा हो, जबकि उसने मध्यभारत के काण्वायन-वंश का अन्त किया था। कण्वों की हार के बाद सम्भव है कि सिमुक ने २३ वर्ष से कम ही राज्य किया हो। इस प्रकार शातर्काण और नन्दों के बीच का समय ३२७ वर्ष से कुछ कम भी हो सकता है।

[2] Variant—एकोण-नवति (*DKA*, 43)।

[3] पार्जिटर के संकेतानुसार, तीन मत्स्य-पाण्डुलिपियों में ३० नाम दिये गये हैं, जबकि अन्य पाण्डुलिपियों में यह संख्या २८ से २१ के बीच अलग-अलग दी गई है।

अन्ततः एक मत के अनुसार, इस वंश में १७, १८ या १९ राजा हुए थे, जिनका शासन-काल लगभग तीन शताब्दियों तक रहा। दूसरे मत के अनुसार, इस वंश में तीस राजा हुए, जिनका शासन-काल लगभग ४०० वर्षों तक रहा। सर आर० जी० भण्डारकर के मतानुसार, जो सूची लम्बी है, उसमें आन्ध्र-भृत्य-परिवार के शासक भी सम्मिलित कर लिये गये हैं तथा उनके शासन-काल के वर्षों में इन आन्ध्र-भृत्य-शासकों का शासन-काल भी शामिल है। वायु पुराण में दिया गया ३०० वर्ष का काल तथा १७, १८ या १९ राजाओं की सूची केवल एक ही राजवंश से सम्बन्धित ज्ञात होती है। इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि सातवाहन अथवा शातकर्णि वंश की अनेक शाखाएँ थीं, जबकि प्रमुख शाखा की राजधानी गोदावरी-तट पर बसी हुई थी। राजशेखर-कृत 'काव्य-मीमांसा' तथा कुछ अन्य ग्रन्थों में सातवाहन तथा शातकर्णि राजवंशों का उल्लेख आया है, तथा उन्हें कदम्बों के पूर्व कुन्तल[1] का राजा माना गया है। मत्स्य पुराण की पूर्ण सूची में कुछ अन्य राजाओं (नं० १०-१४) के नाम भी हैं, जिनमें 'कुंतल' शातकर्णि भी एक नाम है। वायु पुराण इस सम्बन्ध में बिल्कुल मौन है।[2] पूर्ण सूची में स्कन्दस्वाति (नं० ११) नाम आया है। कन्हेरी-शिलालेख[3] में शातकर्णि-वंश में स्कन्दनाग-शतक भी एक नाम मिलता है। जहाँ तक कुंतल का प्रश्न है, वात्स्यायन के कामसूत्र की टीका में यह नाम (नं० १३) 'कुन्तल शातकर्णि शातवाहन' के रूप में आया है। उल्लेख **'कुन्तल-विषये जातत्वात्तत समाख्यः'**[4] के रूप में आया है। इसलिए, यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि मत्स्य पुराण की जिस सूची में ३० नाम दिये गये हैं, उसमें ३० सातवाहन राजाओं के अलावा कुन्तल से सम्बन्धित अन्य वंशों के राजाओं के नाम भी हैं।

इसके विपरीत वायु, ब्रह्माण्ड तथा कुछ मत्स्य पांडुलिपियों में कुन्तल के सातवाहनों के नाम नहीं दिये गये हैं। इसके अतिरिक्त, रुद्रदामन-प्रथम क अधीन

---

[1] काव्य-मीमांसा (1934, Ch. X, p. 50) में कुन्तल के सातवाहन का नाम आया है। इसके अन्तःपुर में प्राकृत भाषा के प्रयोग का ही आदेश था। शायद यह राजा हाल (Hala) ही रहा हो (*Cf.* **कुन्तल-जनवैणेन हालेन**, *Ibid.*, Notes. p. 197)।

[2] वायु पुराण (*DKA*, p. 36) तथा ब्रह्माण्ड पुराण (Rapson, *Andhra Coins*, lxvii) में हाल (No. 17) का नाम भी नहीं है।

[3] Rapson, *Andhra Coins*, liii. इस नाम का कोई राजपुत्र था, यदि यह सिद्ध हो जाय तो यह सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं रह जाती कि वह गद्दी पर बैठा या नहीं। पौराणिक सूची में ऐसे राजाओं के उल्लेख मिलते हैं, जो गद्दी पर नहीं बैठे, जैसे अर्जुन, अभिमन्यु तथा सिद्धार्थ। मत्स्य पुराण की किन्हीं पाण्डुलिपियों में स्कन्दस्वाति से सम्बंधित भी कुछ नाम आये हैं, जैसे चण्डश्री (*DKA*, p. 36)।

[4] उसका नाम 'कुन्तल' इसलिए पड़ा कि वह कुन्तल प्रदेश में पैदा हुआ था। इसी तरह के नाम देखिये—उरुवेल नदि और गया कस्सप (*Dialogues of the Buddha*, I, 194)।

शक-उत्थान के शासकों के भी नाम नहीं हैं। इनमें केवल १९ नाम उन्हीं राजाओं के हैं जो मुख्य वंश से सम्बन्धित थे और जिनका शासन-काल ३०० वर्षों तक ही चला। यदि सातवाहन-वंश में केवल १९ शासक ही हुए थे तथा उनका शासन-काल केवल ३०० वर्षों तक ही चला था तो यह स्वीकार कर लेने में कोई अड़चन नहीं होनी चाहिये कि सिमुक अन्तिम कण्व-राजाओं के समय, अर्थात् ईसापूर्व की पहली शताब्दी में हुआ था। यह भी स्वीकार किया जा सकता है कि सिमुक का शासन तीसरी सदी तक उत्तरी दकन से उठ चुका था। सातवाहन तथा कुन्तल के शातकर्णियों का शासन-काल अधिक दिनों तक रहा, तथा सम्भवतः चौथी शताब्दी के पूर्व तक समाप्त नहीं हुआ। इसका अन्त कदम्बों ने किया। इस प्रकार शातकर्णि-राजवंश की सभी शाखाओं का शासन-काल ४०० वर्षों से भी अधिक था।[1] कुन्तल-वंश के सभी राजा (Nos. 10-14 of the DKA list) गौतमी-पुत्र तथा उसके उत्तराधिकारियों के पूर्व माने जाते हैं। किन्तु, पार्जिटर के संकेतानुसार, कुछ मत्स्य-पाण्डुलिपियों में संख्या १०-१५ तक के लोगों को संख्या २९ के बाद रखा गया है।[2] जहाँ तक हाल (संख्या १७) का सम्बन्ध है, यदि यही 'गाथा सप्तशती' का प्रणेता है तो चौथी शताब्दी के पूर्व इसका आविर्भाव कठिन ही लगता है। विक्रमादित्यचरित, अंगारकवार और राधिका के उल्लेखों के फलस्वरूप उक्त राजा की तिथि को गौतमी-पुत्र से पहले रखना और भी दुष्कर प्रतीत होता है। पुराणों में इन राजाओं के क्रम के सम्बन्ध में भिन्न प्रकार का उल्लेख मिलता है।[3] शिव श्री आपिलक के सिक्कों से ऐसा लगता है कि पुराणों में प्रायः ऐतिहासिक राजवंशों का कालक्रम इधर-उधर कर दिया गया है। इन सिक्कों को श्री दीक्षित ने बाद के सातवाहनों से सम्बद्ध किया है, जबकि पुराणों में इन्हें और पहले रक्खा गया है।[4]

---

[1] ३०० वर्ष की अवधि (वायु पुराण) में श्रीपर्वतीय आन्ध्र (*DKA*, 46) का भी उल्लेख मिल सकता है। फिर भी आन्ध्र-वंश का अन्त तीसरी शताब्दी में कहा जाता है। कदम्बों के अभ्युदय तक शातकर्णि-राजवंश कुन्तल में रहा। इस प्रकार पुराणों का यह उल्लेख ठीक मालूम होता है कि इस समूचे राजवंश में ३० राजा हुए थे तथा उन्होंने चार या साढ़े चार सौ वर्ष तक राज्य किया था।

[2] *DKA*, p. 36. पार्जिटर ने पृष्ठ २०-२५ में पुराणों में राजाओं के इधर-उधर रक्खे जाने के अन्य उदाहरण भी दिये हैं।

[3] See pp. 104, 115 f. *ante*.

[4] See *'Advance'*, March 10, 1935, p. 9. ये सिक्के महाकोशल सोसायटी ऑफ़ रायपुर (C. P.) के हैं। इनमें एक ओर हाथी का चित्र तथा ब्राह्मी अक्षर हैं, और दूसरी ओर बिलकुल सादा है। इन सिक्कों के आधार पर इस राजा का शासन-काल श्री के० एन० दीक्षित के अनुसार, उक्त राजवंश के बाद के राजाओं के समय में हो सकता है, न कि आरम्भ के राजाओं के समय में। कुन्तल के हाल के समय के लिए देखिये, R. *G. Bhandarkar Com. Vol.*, 189. राधा के उल्लेख के लिए देखिये सप्तशतकम् (*Ind. Ant.*, III. 25 n)।

श्री० के० पी० चट्टोपाध्याय ने मत्स्य तथा वायु पुराणों की क्रमहीनता आदि के आधार पर निम्नलिखित तथ्य दिये हैं—(१) पिता एवं पुत्र, दो सातवाहन-शासकों

जहाँ तक सातवाहन-वंश के मूल स्थान का प्रश्न है, इस सम्बन्ध में काफ़ी मतभेद है। कुछ विद्वान् ऐसा समझते हैं कि सातवाहन लोग आन्ध्र-वंश के नहीं थे,

---

का एक ही समय में शासन; (२) चचेरे भाई-बहनों में विवाह; तथा (३) उत्तराधिकार के प्रश्न पर मातृपक्ष की प्रधानता (इसके लिए देखिये *JASB*, 1927, 503 ff and 1939, 317-339)। श्री के० पी० चट्टोपाध्याय की राय में पुराणों में इस सम्बन्ध में जो भूलें रह गई हैं, वे इनके सम्पादकों की ग़लती से नहीं रही हैं (1927, p. 504)। पुराणों की सूची की व्याख्या, मत्स्य पुराण के मूल उल्लेख की सहायता से ही की जानी चाहिए। मत्स्य पुराण के उल्लेख में गौतमी-पुत्रों तथा वाशिष्ठी-पुत्रों की सूची दी गई है। संशोधित पाठ (वायु तथा ब्रह्माण्ड) में गौतमी-पुत्रों की पूरी सूची रखी ज़रूर गई है, किन्तु कुछ नाम हटा दिये गये हैं। शायद पुराणों का संशोधित पाठ तैयार करने वालों ने हटाये गये नामों को इस योग्य नहीं समझा कि वे सूची में रहने दिये जायँ (*Ibid.*, p. 505)। जिन राजाओं के नाम (जैसे वाशिष्ठी-पुत्र पुलुमावि) वायु तथा ब्रह्माण्ड पुराणों से हटा दिये गये हैं, वे सम्भवतः गौतमी-पुत्र वर्ग के हैं। जिन राजाओं के नाम रखे गये हैं, उनके उत्तराधिकार तथा कालक्रम में परस्पर विरोधाभास-सा है। उदाहरणार्थ, गौतमी-पुत्र शातकर्णि के बाद उसका पुत्र पुलुमावि गद्दी पर नहीं बैठा था, वरन् एक दूसरा गौतमी-पुत्र गद्दी पर बैठा था, और वह था यज्ञश्री (p. 509)। सातवाहनों के सिक्कों से राजा की उपाधि तथा मातृपक्ष की सूचना प्राप्त होती है। इस वंश का तीसरा राजा नानाघाट के शिलालेख वाला श्री शातकर्णि था। इसलिए यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सिर्फ़ तीसरे राजा को छोड़कर बाक़ी सभी के सिक्कों में राजा की उपाधि तथा मातृ सम्बन्ध का उल्लेख साथ-साथ मिलता है। दूसरे शब्दों में उस समय उत्तराधिकार मातृपक्ष को प्रधानता देकर निश्चित किया जाता था (p. 518)। लड़के का लड़का विजित देशों का अधिकारी तथा बहन का लड़का पैतृक राजपाट का अधिकारी होता था।

इस टिप्पणी में इतना स्थान नहीं मिल सकता कि श्री चट्टोपाध्याय के कथन की विशद व्याख्या की जा सके; और न तो यहाँ यही सम्भव है कि माता-पिता के अधिकारों, वैवाहिक सम्बन्धों तथा सातवाहन-वंश के उत्तराधिकार-सम्बन्धी नियमों को ही विस्तृत रूप से दिया जाय। यहाँ केवल इस प्रसिद्ध राजवंश की मुख्य-मुख्य बातें ही दी जा सकती हैं। पार्जिटर (*Dynasties of the Kali Age*, pp. 35 ff) द्वारा दी गई व्याख्या और पुराणों की सूची के अध्ययन से स्पष्ट हो जायगा कि पुराणों की सूची में जो कमियाँ रह गई हैं, उन्हें श्री चट्टोपाध्याय के सुझावों के आधार पर बड़ी आसानी से दूर या हल किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, यह नहीं कहा जा सकता कि गौतमी-पुत्र (No. 23) का नाम सभी मत्स्य-पाण्डुलिपियों तथा वायु पुराण की पाण्डुलिपियों में रखा ही गया है। यह भी नहीं कहा जा सकता कि गौतमी-पुत्र का लड़का पुलुमावि (No. 24) जो कि वाशिष्ठी-पुत्र भी माना जाता है, का नाम मत्स्य पुराण में है, किन्तु वायु पुराण के संशोधित पाठों में नहीं है। पुलुमावि एक ओर मत्स्य की e, f और l पाण्डुलिपियों में नहीं है, किन्तु विष्णु पुराण और भागवत पुराण की सूचियों में है। वायु और ब्रह्माण्ड पुराणों के संशोधित पाठों में बहन के लड़के के उत्तराधिकार के सम्बन्ध में भी नकारात्मक उल्लेख ही मिलते हैं। पुराणों में प्रथम

वरन् वे आन्ध्र-भृत्य-वंश या आन्ध्र-वंश के राजाओं के नौकर-चाकरों के वंश से ही सम्बन्धित थे । इन्हें मूलतः कन्नड़ (Kanarese) भी कहा जाता है ।

श्री शातकर्णि, शातकर्णि-द्वितीय, लम्बोदर तथा यज्ञश्री के भी उल्लेख हैं (*DKA*, p. 39, fn. 40, 44; p. 42, fn. 12)। मत्स्य पुराण में **'ततो'** (*DKA*, 39) शब्द आया है । इस शब्द के द्वारा शातकर्णि-प्रथम तथा पूर्णोत्संग का सम्बन्ध दिखाया गया है । इस शब्द के साथ ही साथ **'तस्यापि पूर्णोत्संगः'** शब्द (विष्णु पुराण, IV. 24, 12) भी आया है । इसके अलावा, **'पौर्णमासस्तुतत्सुतः'** (भागवत पुराण, XII. 1. 21) भी आया है । इससे सिद्ध है कि पूर्णोत्संग-पौर्णमास, शातकर्णि-प्रथम का ही पुत्र तथा तत्कालीन उत्तराधिकारी था, न कि यह कि वह इसी वंश के किसी बहुत बाद या दूर के राजा से सम्बन्धित था । यहाँ पर चट्टोपाध्याय का यह मत नहीं स्वीकार किया जा सकता कि वह नानाघाट-रिकॉर्ड का 'वेदिश्री' था । किन्तु, के० शास्त्री के अनुसार, 'वेदिश्री' नाम भी ग़लत है । शुद्ध नाम है—'खन्दसिरि' या 'स्कन्दश्री' । यह राजकुमार सम्भवतः पुराणों की सूची के पाँचवें राजा पूर्णोत्संग का उत्तराधिकारी था, इसलिए यह नहीं माना जा सकता कि यह राजा कभी गद्दी पर बैठा ही नहीं था (*JASB*, 1939, 325)। पूर्णोत्संग कोई दूसरा राजकुमार भी हो सकता है । सातवाहन-वंश में एक राजकुमार ऐसा था जो नामरहित था, या उसे 'हकुसिरि' (शक्तिश्री) कहा जाता था । यहाँ यह भी ध्यान देने योग्य है कि मत्स्य पुराण के एक अनुच्छेद में इस वंश में १९ राजा बताये गये हैं ।

गौतमी-पुत्र तथा वाशिष्ठी-पुत्र राजाओं ने अलग-अलग भूभागों पर राज्य नहीं किया । गौतमी-पुत्र शातकर्णि को 'मूलक का राजा' (Raja of Mulak) कहा जाता था । इसी भूभाग पर पुलुमावि ने भी शासन किया था । गौतमी-पुत्र तथा उसके उत्तराधिकारी 'दक्षिणापथपति' की उपाधि भी धारण करते थे ।

इस वंश के तीसरे राजा के अलावा सभी राजाओं के सिक्कों में शाही उपाधि तथा मातृपक्ष का परिचय रहता था, इसकी पुष्टि अन्य उपलब्ध सामग्रियों से नहीं हो पाती । म्याकदोनी (Myakadoni) शिलालेखों में भी इसका उल्लेख नहीं मिलता (*Ep. Ind.*, XIV, pp. 153 ff.)। पर हमें **'रञो सातवाहनानंसिरिपुलुम्(ा)विस'** तथा **'रञो सिरि चगसातिस'** (Rapson, *Andhra Coins*, p. 32) के उद्धरण भी प्राप्त हैं । जहाँ तक वैवाहिक सम्बन्धों का प्रश्न है, श्री शातकर्णि-प्रथम की पत्नियों और कन्हेरी शिलालेख के वाशिष्ठी-पुत्र श्री शातकर्णि के उल्लेखों से श्री चट्टोपाध्याय के मत की पुष्टि नहीं होती । यह अवश्य है कि उस समय के राजा कई विवाह करते थे । किन्तु, कई रानियों में कोई न कोई चचेरी बहन भी हो सकती है, ऐसा केवल अनुमान मात्र है । विवाहों की ओर केवल संकेत मात्र किया गया है तथा इन उल्लेखों के इस प्रसंग में इक्ष्वाकु का नाम भी लिया गया है । भारतीय इतिहास में ऐसे अनेक स्थल हैं जहाँ कि रानियाँ या शाही परिवार के अन्य व्यक्ति मातृपक्ष के साथ अधिक महत्त्व जोड़ते थे (*Cf.* उभयकुलालंकारभूता, प्रभावती, *JASB*, 1924, 58)। क्या सातवाहन से नायनिका का कोई सम्बन्ध मिलता है ? *JASB* (1939, p. 325) में विवाहों से सम्बन्धित जो तालिका दी गई है, उससे शातकर्णि (No. 6 of the list)

श्री ओ० सी० गांगुली[१] ने संकेत किया है कि कुछ प्रकार के तत्कालीन साहित्यों में आन्ध्र तथा सातवाहन वंश के बीच अन्तर स्पष्ट किया गया है। Epigraphia Indica[२] में डॉक्टर सुक्थांकर ने सातवाहनों के राजा सिरि-पुलुमावि के शिलालेख का सम्पादन किया है। इसमें 'सातवाहनिहार'[३] नामक स्थान का उल्लेख आया है। पल्लव राजा शिवस्कन्दवर्मन के एक ताम्रपत्र पर अंकित एक लेख में भी उक्त स्थान का उल्लेख मिलता है। किन्तु यह लेख 'साताहनि-रट्ठ' लेख से कुछ भिन्न है। डॉक्टर सुक्थांकर का कहना है कि सातवाहनि-साताहनि राज्य में सम्भवतः मद्रास प्रेसीडेंसी का बेलारी ज़िला रहा होगा और सम्भवतः यही सातवाहन-वंश का मूल स्थान भी था। कुछ अन्य संकेतों के अनुसार, सातवाहन-शातकर्णि-राजवंशों का मूल स्थान मध्यप्रदेश के दक्षिण में रहा होगा। 'विनय-पाठ'[४] (Vinaya Text) में 'सेतकन्निक' नाम के एक नगर का उल्लेख आया है। यह नगर मज्झिम-देस की दक्षिणी सीमा पर स्थित था। यह महत्त्वपूर्ण बात है कि शातकर्णि-वंश के समय के कुछ रिकार्ड उत्तरी दक़न और मध्यभारत में प्राप्त हुए हैं। हाथीगुम्फा-शिलालेखों में भी इसका कुछ उल्लेख मिलता है। यह राजवंश 'पश्चिम के भी रक्षक' माने जाते थे। इस वंश का नाम सम्भवतः आन्ध्र तभी पड़ा, जबकि इसके उत्तरी और पश्चिमी भूभाग छिन गये और यह केवल आन्ध्र तक ही सीमित रह गया। यह भूभाग कृष्णा नदी[५] के तट पर स्थित था। सातवाहनों ने कभी भी अपने को आन्ध्र-वंश का नहीं कहा।

नायनिका का भाई, शातकर्णि (No. 3 of the list) का Brother-in-law तथा महारथी अनकयिरो का लड़का सिद्ध होता है। किन्तु, नानाघाट-रिकॉर्ड से इसका खण्डन हो जाता है और महारथी का अंगिय (या आंभिय) कुलवर्धन के रूप में उल्लेख किया गया है।

पुराणों के अनुसार, दोनों शातकर्णि, सिमुक सातवाहन के ही वंश के थे। गौतमी बलश्री, जो कि बाद में शिवस्वाति की बहन सिद्ध होती है (*JASB*, 1927, 590), उसने अपनी स्थिति 'वधू-माता' या 'पितामही' के रूप में ही बतलाई है। उसने अपने को एक बार भी नहीं कहा कि वह किसी राजवंश से सम्बन्धित है।

१. *JAHRS*, XI, pp. 1 and 2, pp. 14-15. आन्ध्र-वंश ने संगीत की एक लय का आविष्कार किया था, जिसे 'आंध्री' कहते हैं। सातवाहनों द्वारा आविष्कृत लय का नाम 'सातवाहनी' है। इसका उल्लेख 'बृहद्देशी' में मिलता है।

२. Vol. XIV. (1917)।

३. See also *Annals of the Bhandarkar Institute*, 1918-19, p. 21, '*On the Home of the so-called Andhra Kings.*'—V. S. Sukthankar; *Cf. JRAS*, 1923, 89 f.

४. *SBE*, XVII. 38.

५. जब कुलोत्तुंग-प्रथम चोल-सिंहासन पर बैठा तो पूर्व के चालुक्य चोल बन गये। शातकर्णि और सातवाहन के नाम और उनकी उत्पत्ति के लिए देखिये *Camb. Hist. Ind.*, Vol. I, p. 599 n; *JBORS*, 1917, December, p. 442 n; *IHQ*, 1929, 338; 1933, 88, 256; and *JRAS*, 1929 April; and

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इस धारणा के पीछे भी पर्याप्त आधार है कि आन्ध्र, आन्ध्र-भृत्य या सातवाहन वंश के लोग ब्राह्मण थे। निस्सन्देह उनमें नाग-रक्त भी था। 'द्वात्रिंशत पुत्तलिका' में सालिवाहन (या सातवाहन) को ब्राह्मण और नागवंश[1] का मिश्रण कहा गया है। इन लोगों का नाग-सम्बन्ध नागनिका[2] तथा स्कन्द-नाग-शतक नामों के कारण ही सम्भवतः बताया जाता है, जबकि ब्राह्मण-वंशीय होने का उल्लेख भी एक शिलालेख में मिलता है। गौतमी-पुत्र शातकर्णि की 'नासिक-प्रशस्ति' में राजा को 'एक बम्हण', अर्थात् 'अद्वितीय ब्राह्मण' कहा गया है। कुछ विद्वानों के अनुसार, 'बम्हण' शब्द केवल ब्राह्मणवाद में विश्वास करने वाले हिन्दुओं के लिए आया है। किन्तु यह कथन स्वीकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि गौतमी-पुत्र को 'खतिय-दप-मान-मदन', अर्थात् 'क्षत्रियों का मान मर्दन करने वाला' कहा जाता है। यदि 'एक बम्हण' वाले उद्धरण के साथ 'खतिय-दप-मान-मदन' का उल्लेख भी पढ़ा जाय तो स्पष्ट हो जाता है कि सातवाहन-वंश का गौतमी-पुत्र केवल ब्राह्मण[3] ही नहीं था, वरन् वह ऐसा ब्राह्मण था, जैसे कि परशुराम जिन्होंने क्षत्रियों के अभिमान को चूर किया था। जिस प्रशस्ति

Bulletin of the School of Oriental Studies, London, 1938, IX, 2. 327 f. बार्नेट और जायसवाल ने इन दोनों को एक में करने का प्रयास किया है। इन सबके लिए देखिये— Aravamuthan, *The Kaveri, the Maukharis*, p. 51 n. (*Karni* = ship; *Vahana* = Oar or Sail); Dikshitar, *Indian Culture*, II, 549 ff.

[1] *Cf. EHD*, Sec. VII.

[2] Buhler, *ASWI*, Vol. V, p. 64 n 4.

[3] *Indian Culture*, I, pp. 513 ff; and *Ep. Ind.*, XXII. 32 ff.

कुमारी अमर घोष तथा डॉक्टर भण्डारकर 'एक बम्हण' तथा 'खतिय-दप-मान-मदन' की वह व्याख्या नहीं स्वीकार करते जो कि सेनार्ट और बूह्लर (Senart & Buhler) ने प्रस्तुत की है। वे कहते हैं कि 'बम्हण' शब्द 'ब्रह्मण्य' भी हो सकता है। 'खतिय' शब्द क्षत्रियों के लिए नहीं, वरन् किसी खत्रिओई (Xathroi or Khatriaioi) नामक जाति के लिए आया है। इसी प्रकार, इन विद्वानों के मतानुसार, गौतमी बलश्री को 'राजर्षि-वधू' भी कहा गया है जिससे सिद्ध होता है कि सातवाहन राजाओं ने स्वयं भी कभी अपने को 'ब्रह्मर्षि' नहीं कहा। यह कोई भी नहीं कहता कि सातवाहन राजा केवल ब्राह्मण साधु ही थे। यह कहना भी कि 'ब्राह्मण' और 'क्षत्रिय' शब्द किन्हीं अब्राह्मण और गैर-क्षत्रिय जातियों को कहा जाता था, अनुमान से परे लगता है। जहाँ तक 'राजर्षि-वधू' का सम्बन्ध है, इस शब्द के कारण ही किसी राजवंश को ब्राह्मण या अब्राह्मण नहीं कहा जा सकता। 'राजर्षि' शब्द केवल अब्राह्मण राजाओं के लिए ही प्रयोग में आता रहा हो, यह भी साधारणतया नहीं कहा जा सकता। उदाहरणार्थ, पद्म पुराण (पाताल-खण्डम्, 61-73) में दधीचि को 'राजर्षि' कहा गया है। वायु पुराण में **'ब्रह्म-क्षत्रमथा नृपाः'** (**ब्रह्म-क्षत्रादयो नृपाः**—मत्स्य-लेख (143, 37-40) के पाठ के अनुसार) का उल्लेख है। मत्स्य पुराण (50, 5-7) में राजर्षि की उपाधि मौद्गल्य-वंशी राजाओं को मिलती थी। इन राजाओं को **'क्षत्रोपेता द्विजातयः'** भी कहा जाता था। इनमें से एक को 'ब्रह्मिष्ठः' कहा जाता था।

की ऊपर चर्चा की गई है, उसमें तत्सम्बन्धी राजा को वस्तुतः राम के समान ही शक्तिमान बताया गया है।[1]

पुराणों के अनुसार, सिमुक (सी० ६०-३७ ईसापूर्व) ने ही शुङ्ग-कण्व-सत्ता को अन्तिम रूप से समाप्त किया था। सिमुक के बाद उसका भाई कृष्ण गद्दी पर बैठा था (सी० ३७-२७ ईसापूर्व)। इस राजा के नाम की एकरूपता सातवाहन-कुल के राजा 'कान्ह' से की गई है। यह नाम नासिक-शिलालेख में मिलता है। रिकार्डों से यह पता चला है कि राजा कान्ह के समय में नासिक के किसी ऊँचे अधिकारी (श्रमण महामात्र) ने एक गुफा बनवायी थी।

पुराणों के अनुसार, कान्ह-कृष्ण के बाद शातकर्णि (सी० २७-१७ ईसापूर्व) गद्दी पर बैठा। इस शातकर्णि के बारे में निम्न तथ्य विचारणीय हैं—

१. यह शातकर्णि, नायनिका के नानाघाट-शिलालेख में आया सिमुक का लड़का या भतीजा तथा दक्न का राजा 'दक्षिणापथपति' शातकर्णि था।[2]

२. यह शातकर्णि पश्चिम का राजा था तथा इसकी रक्षा कलिंग के राजा खारवेल ने की थी।

३. यह साँची-शिलालेख वाला राजन् श्री शातकर्णि था।

४. पेरिप्लस (Periplus) में भी इस राजा का उल्लेख है।

पुराणों में यह भी कहा गया है कि आन्ध्र-वंश की स्थापना करने वाले लोग 'वृषल' थे (*DKA*, 38)। इसकी व्याख्या महाभारत में भी मिलती है। महाभारत (XII, 63. 1 ff.) में कहा गया है कि शत्रु के विनाश के लिए ब्राह्मण को धनुष-बाण नहीं उठाना चाहिए। ब्राह्मण को राजसेवा नहीं स्वीकार करनी चाहिए। जो ब्राह्मण 'वृषली' से विवाह करता है, या राजसेवा स्वीकार करता है, वह 'ब्रह्म-बन्धु' हो जाता है, वह शूद्र हो जाता है। सातवाहनों ने शत्रु के विनाश के लिए शस्त्र भी उठाया था और साथ ही साथ शकों व द्रविड़ों से ही नहीं, वरन् मौर्यों की तरह यवनों से भी विवाह-सम्बन्ध स्थापित किया था।

[1] यहाँ बलदेव के प्रसंग में 'राम' शब्द का प्रयोग करके अभिव्यक्ति को अलंकृत किया गया है। 'बल' के स्थान पर 'राम' का प्रयोग विचारणीय है (*Cf.* बलकेशव—हरिवंश पुराण, विष्णु पर्व, 52, 20)। 'एक बम्हण' शब्द को इस प्रसंग में लाने का अर्थ सम्भवतः भृगुराम और परशुराम की तुलना थी। शस्त्रधारी राजा अपने को ब्राह्मण कहे और क्षत्रियों से युद्ध करे, इसका अर्थ परशुराम से तुलना ही है—प्रशस्ति—देखिये **'भृगुपतिरिवदृप्त क्षत्र-संहारकारिन्'** के लेखक का भी यही उद्देश्य रहा होगा। यह कथन चित्तौरगढ़-शिलालेख (१२७४ ई० पू०) के अम्बाप्रसाद पर भी लागू होता है।

[2] विद्वानों की सामान्य धारणा है कि शातकर्णि-प्रथम सिमुक का पुत्र ही था। था। पुराणों के कथनानुसार, यदि वह सिमुक का भतीजा या कृष्ण का पुत्र था, तो यह बताना कठिन हो जाता है कि आखिर इस वंश की वंशावली में कृष्ण का नाम क्यों नहीं रखा गया, जबकि वंशावली में सिमुक और शातकर्णि की रानी के पिता का नाम तक लिखा मिलता है। इस सम्बन्ध में भावी अनुसंधानों के आधार पर ही कुछ निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है।

५. भारतीय साहित्य में इस शातकर्णि को प्रतिष्ठान का राजा तथा शक्ति-कुमार का पिता कहा गया है ।

६. सिक्कों में 'सिरि सात' के रूप में इसका उल्लेख आया है ।[१]

उपर्युक्त प्रथम, पंचम तथा षष्ठम से प्रायः सभी विद्वान् सहमत हैं । दूसरा तथ्य भी सम्भव हो सकता है, क्योंकि पुराणों में इस शातकर्णि को कण्व के बाद कृष्ण का उत्तराधिकारी कहा गया है । इसका समय ईसापूर्व की पहली शताब्दी बताया गया है । हाथीगुम्फा-शिलालेख में खारवेल का समय नन्द राजा से ३०० वर्ष पूर्व निश्चित किया गया है । यह समय भी ईसापूर्व की पहली शताब्दी में ही पड़ता है ।

ऊपर दिये गये तथ्यों में से मार्शल को साँची के शिलालेखों के बारे में इस आधार पर आपत्ति है कि जिस श्री शातकर्णि का उल्लेख नानाघाट और हाथीगुम्फा शिलालेखों में है, उसने ईसापूर्व की दूसरी शताब्दी के मध्य में राज्य किया था । उस समय साँची (पूर्वी मालव) उसके राज्य में नहीं था, क्योंकि दूसरी शताब्दी ईसापूर्व में साँची के समीपवर्ती क्षेत्र में शुङ्ग-वंश का राज्य था, न कि आन्ध्र-वंश[२] का । किन्तु, हम यह भी जानते हैं कि हाथीगुम्फा-शिलालेख ईसापूर्व की पहली शताब्दी का है, या यों कहिये कि नन्दराज के तीन सौ वर्ष बाद का है । पुराणों में भी नानाघाट-शिलालेख में उल्लिखित राजाओं को कण्व-वंश के पूर्व का कहा गया है, अर्थात् ईसापूर्व की पहली शताब्दी में रखा गया है । इस समय तक शुङ्ग-वंश का शासन समाप्त हो चुका था । इसलिए ईसापूर्व की दूसरी शताब्दी के पूर्वी मालव के इतिहास से इस कथन का कोई विरोध नहीं प्रतीत होता है कि सातवाहन-वंश के राजा कृष्ण का उत्तराधिकारी शातकर्णि राजा वही है जिसका साँची के शिलालेख में उल्लेख आया है । इसलिए अब यह स्वाभाविक हो गया कि प्रथम शातकर्णि को केवल शातकर्णि या पूर्व-शातकर्णि (प्राकृत रूप साडगन्न की भाँति 'सरगनुस') कहा जाय । इसी प्रकार बाद के शातकर्णि राजाओं के लिए यह आवश्यक हो गया कि वे अपना नामकरण क्षेत्रीय आधार पर करें । कुन्तल, गौतमी-पुत्र तथा वाशिष्ठी-पुत्र आदि नाम इसी आधार पर रखे गये हैं ।

नानाघाट-शिलालेख[३] से हमें यह भी पता चलता है कि सिमुक के लड़के शातकर्णि ने अंगिय या अंभिय वंश से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किया था । इस वंश की एक शाखा के राजाओं को महारथी कहा जाता था । कुछ दिन बाद तो वे पूरे दक्षिणापथ के अधिपति हो गये थे । ऐसा लगता है कि शातकर्णि ने पूर्वी मालव पर अपना अधिकार कर लेने के बाद अश्वमेध यज्ञ किया था । इस वंश द्वारा पूर्वी मालव की विजय करने का निष्कर्ष कदाचित् सिक्कों तथा साँची के लेखों के सन्दर्भ में पुराणों के उस विवरण के फलस्वरूप निकाला गया है जिसमें कहा गया है कि 'शुङ्ग-भृत्य' काण्वायन-वंश के शासन-काल के बाद धरती[४] का राज्य आन्ध्र-वंश के हाथ चला जायेगा ।

---

[१] Rapson, *Andhra Coins*, p. xcii; *CHI*, **531**.

[२] *A Guide to Sanchi*, p. 13.

[३] *ASI*, 1923-24, p. 88.

[४] उदाहरणार्थ, पूर्वी मालव में विदिशा-क्षेत्र । विदिशा और शुङ्ग के सम्बन्ध के लिए Pargiter, *DKA*, 49 देखिये । शुङ्गों में काण्वायन लोग राजा हो गये थे

तत्सम्बन्धी शिलालेख में राजन् श्री शातकर्णि[1] के एक कलाकार वसीठि के पुत्र आनन्द को दिये गये दान की चर्चा की गई है। सातवाहन-वंश में शातकर्णि कदाचित् पहला शासक था जिसने सातवाहनों को समूचे विन्ध्य-क्षेत्र का एकछत्र शासक बना दिया। इस प्रकार गोदावरी की घाटी में सातवाहनों का पहला राज्य स्थापित हुआ, और गंगा की घाटी के शुङ्ग-साम्राज्य तथा पंजाब की पंचनद भूमि के अधिष्ठाता यवनों के समकक्ष शक्तिशाली माना जाने लगा। भारतीय शास्त्रकारों[2] के अनुसार, सातवाहनों की मुख्य राजधानी प्रतिष्ठान थी। आजकल इस स्थान का नाम पैठान (Paithan) है तथा यह स्थान औरंगाबाद ज़िले (हैदराबाद) में गोदावरी के उत्तरी तट पर बसा हुआ था।

शातकर्णि की मृत्यु के बाद, महारथी त्रनकयिरो कललाय की पुत्री शातकर्णि की पत्नी नायनिका (नागनिका) अपने नाबालिग़ राजकुमार वेदश्री की अभिभावक (regent) नियुक्त हुई थी। सम्भवतः वेदश्री को ही खण्डसिरि या स्कन्दश्री कहा जाता है। इस राजकुमार के अलावा भी शक्तिश्री (सति सिरिमत) तथा हकुश्री, दो और राजकुमार थे। जैन-ग्रन्थों[3] में सम्भवतः शक्तिश्री को ही शालिवाहन-पुत्र शक्तिकुमार भी कहा गया है।

पूर्ववर्ती सातवाहन

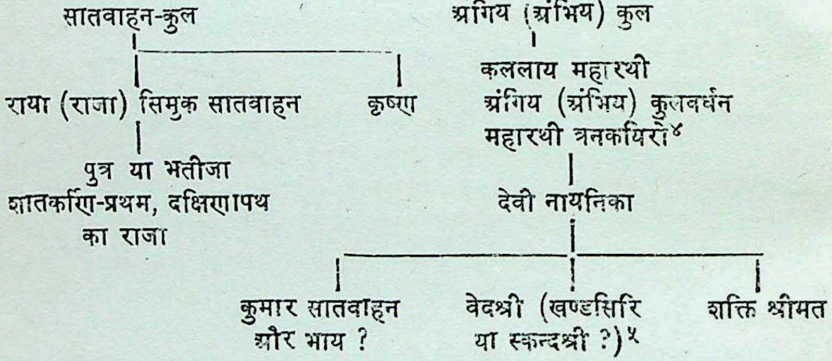
सातवाहन-कुल
अंगिय (अंभिय) कुल
राया (राजा) सिमुक सातवाहन
कृष्ण
कललाय महारथी
अंगिय (अंभिय) कुलवर्धन
महारथी त्रनकयिरो[4]
पुत्र या भतीजा
शातकर्णि-प्रथम, दक्षिणापथ
का राजा
देवी नायनिका
कुमार सातवाहन
और भाय ?
वेदश्री (खण्डसिरि
या स्कन्दश्री ?)[5]
शक्ति श्रीमत

(शुंगेपु, *DKA* 34), विदिशा-क्षेत्र में ही (*Cf.* also Tewar Coins; *IHQ*, XXVIII, 1952, 68 f);

[1] श्री-सात के गोल सिक्कों से ही पश्चिमी मालव की जीत का आभास मिलता है (Rapson, *Andhra Coins*, xcii-xciii)।

[2] जिनप्रभसूरि, तीर्थकल्प, *JBBRAS*, X, 123; Ptolemy, *Geography*, vii, 1. 82; देखिये 'आवश्यक सूत्र' भी, *JBORS*, 1930: 290; Sir R. G. Bhandarkar, *EHD*, VII.

[3] वीरचरित, *Ind. Ant.*, XIII, 201; *ASWI*, V, 62 n.

[4] Rapson, *Andhra Coins*, p. 57 में कललाय महारथी को सदकन (या शातकर्णि) कहा गया है। उसका एक नाम 'त्रनकयिरो' भी था, जिससे 'तनक' शब्द याद आता है, जो आन्ध्र के १८वें राजा का नाम था (Pargiter's list, *DKA*, 36, 41)।

[5] *ASI. AR.*, 1923-24, p. 88; A. Ghosh, *History of Central and Western India*, 140. श्री घोष के अनुसार, वह पौराणिक सूची का पाँचवाँ राजा था।

ईसापूर्व की पहली शताब्दी में सातवाहन-वंश ही अकेला मगध-साम्राज्य का शत्रु नहीं था। हाथीगुम्फा-शिलालेख से पता चलता है कि जब पश्चिम में शातकर्णि शासन कर रहा था तो इधर कलिंग के राजा खारवेल ने उत्तर भारत की ओर अपनी सेना को बढ़ाया और राजगृह के राजा को पराजित किया।

खारवेल, चेतवंश से सम्बन्धित था। श्री आर० पी० चन्दा के अनुसार, वेस्सन्तर जातक (Vessantara Jataka)[१] में चेतवंशी राजकुमारों का उल्लेख मिलता है। मिलिन्दपञ्हो में ऐसा उल्लेख मिलता है जिससे पता चलता है कि चेत लोग चेति या चेदि वंश से सम्बन्धित थे। इस ग्रन्थ में चेत लोगों के बारे में जो तथ्य दिये गये हैं, वे चेत राजा सूर परिचर के बारे में उपलब्ध तथा चेदि राजा उपरिचर के सम्बन्ध में मिले विवरण से काफ़ी मेल खाते हैं।[२]

अशोक की मृत्यु के बाद से पहली शताब्दी ईसापूर्व में चेतवंश के उदय तक कलिंग के इतिहास के बारे में हमें बहुत थोड़े तथ्य प्राप्त हो सके हैं। हाथीगुम्फा-शिलालेख में चेतवंश के प्रथम दो राजाओं का नाम साफ़-साफ़ नहीं मिलता।[३] लूडर्स-लेख, संख्या १३४७ में वक्रदेव (वकदेपसिरि या कूदेपसिरि ?) नाम के राजा का उल्लेख आया है। किन्तु, इसके बारे में हम यह नहीं जानते कि यह राजा खारवेल के बाद हुआ था, या उसके पहले।

दूसरे राजा के लगभग ९वर्षीय (सी० ३७-२८ ईसापूर्व) शासन-काल में खारवेल युवराज-पद पर आसीन था। जब वह २४ वर्ष की आयु का हो गया तो उसे कलिंग के महाराज के रूप में (सम्भवत: सी० २८ ईसापूर्व में) सिंहासनारूढ़ कर दिया गया। उसकी पटरानी ललाक नामक राजा की पुत्री थी। कुछ विद्वानों के अनुसार, यह राजा हत्थिसिंह का पौत्र था। अपने शासन-काल के प्रथम वर्ष में खारवेल ने अपनी राजधानी कलिंग नगर के फाटक और उसकी चहारदीवारी की मरम्मत करायी थी। दूसरे वर्ष (सी० २७ ईसापूर्व) में बिना शातकर्णि का ध्यान रखे हुए, उसने पश्चिम की ओर एक बड़ी सेना भेजी और सेना की सहायता से कृष्णवेणा पहुँच कर मुसिक (असिक ?) नगर पर अपना आतंक जमा लिया।[४]

---

[१] No. 547.

[२] Rhys Davids, मिलिन्द, *SBE*, XXXV, p. 287; महाभारत, I. 63. 14; Sten Konow (*Acta Orientalia*, Vol. I. 1923, p. 38) का मत है कि हाथीगुम्फा-शिलालेख के अनुसार, *Ceti* (not *Ceta*) खारवेल-वंश की उपाधि थी।

[३] 'पुरुष-युग' के लिए हेमचन्द्र का परिशिष्टपर्वन्, VII. 326—'**गामी पुरुषयुगानि नव यावत्तवान्वयः**' देखिये।

[४] *Cf. Ep. Ind.*, XX. 79-87. डॉ० बरुआ इसको 'अश्वक' या 'Rsika' पढ़ते हैं (*Old Brahmi Ins.*, p. 176., Asika, *IHQ*, 1938, 263)। डाक्टर थॉमस को भी मुसिक राजधानी का उल्लेख नहीं मिलता (*JRAS*, 1922, 83)। *Cf.* Buhler, *Indian Palaeography*, 39.

एक अन्य विवरण के अनुसार, वह वहाँ शातकर्णि की सहायतार्थ गया था और सफल हो कर वापस आने पर उसने नगर में उत्सव मनाया। अपनी इस सफलता के बाद उसने पश्चिम की ओर अपना प्रभुत्व और बढ़ाया। अपने शासन के चौथे वर्ष में उसने 'रठिकों' और 'भोजकों' को अपनी अधीनता स्वीकार करने को बाध्य कर दिया। शासन के पाँचवें वर्ष में नंदराज द्वारा बनवाये गये उस जलसेतु (या कुल्या) पर भी उसका अधिकार हो गया जो कि उसकी राजधानी की ओर जाता था।

अपनी दक़न की सफलताओं से उत्साहित होकर कलिंगराज ने उत्तर की ओर अपनी दृष्टि दौड़ाई। यही नहीं, अपने राज्य-काल के आठवें वर्ष में उसने गोरथगिरि (गया के पास की पहाड़ियों) में तूफ़ान-सा मचा दिया और राजगृह[1] के राजा को भी आतंकित किया। यदि डॉक्टर जायसवाल के अनुसार, इस राजा का नाम बृहस्पतिमित्र था तो इस बृहस्पति ने कण्व-वंश के बाद मगध पर राज्य किया था।

अपने शासन के दसवें और बारहवें वर्ष में भी उसने उत्तरी भारत पर हमले किये थे। कुछ विद्वानों के मत से अपने शासन के दसवें वर्ष में उसने भारतवर्ष के प्रदेशों का दमन किया। भारतवर्ष के प्रदेशों में मुख्यतः उत्तरी भारत के प्रदेश आते थे। अपने राज्य-काल के १२वें वर्ष में उसने उत्तरापथ के राजाओं को परेशान करना आरम्भ किया और अपनी गजसेना को गंगा तक ले गया।[2] उसके उत्तरी-पश्चिमी अभियानों का प्रायः कोई स्थायी परिणाम नहीं निकला। किन्तु, उत्तरी-पूर्वी अभियानों में कलिंग का राजा अधिक सफल हुआ। बार-बार के आक्रमणों से मगध भी काफ़ी त्रस्त था और अन्ततः मगध के राजा (बृहस्पतिमित्र ?) ने घुटने टेक ही दिये।

मगध-नरेश को पराधीन करने तथा अंग को हराने के बाद इस राजा ने एक बार फिर दक्षिण की ओर ध्यान दिया। कहते हैं, अपने शासन के ११वें वर्ष में उसने पिथूडा में गधों से हल जुतवाया।[3] लेवी[4] के अनुसार, यह वही नगर था जिसे उत्तराध्ययन में पिहुण्ड कहा गया है। तोलेमी ने इसे मसुलीपट्टम की राजधानी पिटुण्ड्रा कहा है। इस बात के उल्लेख भी मिलते हैं कि उसने और दक्षिण में, अर्थात्

---

[1] कुछ विद्वानों को हाथीगुम्फा-शिलालेख में यवनराज Demetrios का उल्लेख मिलता है। यह मथुरा के राजाओं का संकट दूर करने वहाँ गया था (*Acta Orientalia*, I, 27; *Cal. Rev.*, July, 1926, 153)। हो सकता है कि उक्त उल्लेख Demetrios के बारे में न होकर Diyumeta या Diomedes के बारे में हो (उदयगिरि और खण्डगिरि गुफाओं के शिलालेख, pp. 17-18; *IHQ*, 1929, 594, and Whitehead, *Indo-Greek Coins*, p. 36)।

[2] कुछ विद्वानों को इसी स्थल पर 'सुगंगीय' राजमहल का उल्लेख भी मिलता है (*Ep. Ind.*, xx, 88)।

[3] Barua Interprets the passage differently. But *Cf.* Nilakantha Shastri, *The Pandyan Kingdom*, p. 26.

[4] *Ind. Ant.*, 1926, 145. महावीर के समय में समुद्र से यात्रा करने वाले व्यापारी नावों द्वारा चम्पा से 'पिहुण्ड' आते-जाते थे (*Cf* महाभारत, I. 65, 67, 186; VII. 50)।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तमिल देश तक आक्रमण किया और उस देश के सबसे प्रसिद्ध पांड्य-वंश के राजा को भी अपना प्रभुत्व स्वीकार करने पर विवश किया। अपने शासन के १३वें वर्ष में खारवेल ने कुमारी (उड़ीसा में उदयगिरि) की पहाड़ी पर अपने स्तम्भ स्थापित किये। यह पहाड़ी अर्हत (खण्डगिरि ?) के समीप ही थी।

३. उत्तर-पश्चिमी भारत में यूनानी प्रभुत्व का पतन

एक ओर सातवाहन व चेत राजवंशों के आक्रमणों व आतंक से मगध का साम्राज्य क्षीण हो रहा था तो दूसरी ओर उत्तर-पश्चिम भारत में यूनानी शासकों का प्रभुत्व भी अस्ताचलगामी हो रहा था। डेमेट्रिओस तथा यूक्राटीड्स के आपसी झगड़ों की चर्चा पहले ही की जा चुकी है। इन दो शासकों के आपसी झगड़े के फलस्वरूप उत्तराधिकारियों की दो शाखायें भी साथ-साथ चलीं। डेमेट्रिओस के उत्तराधिकारी कपिशा के अधिकारी थे। इसके अलावा शाकल (सियालकोट) पर तथा अन्दरूनी भारत के काफ़ी हिस्से पर इन्हीं लोगों का प्रभुत्व था। इसके साथ-साथ नीसिया (Niceae)[१], तक्षशिला, पुष्करावती, अपोलोडोटस से जीती गयी कपिशा तथा बैक्ट्रिया पर यूक्राटीड्स के उत्तराधिकारियों का अधिकार था। रैप्सन और गार्डनर के अनुसार, अपोलोडोटस, एण्टीमेकोस, पेन्टालिओन, आगथोक्लीज़, आगथोक्लिया,[२] स्ट्रैटोस, मेनाण्डर, डायोनीसिओस, ज़ोइलोस[३], हिप्पोस्ट्रैटोस तथा अपोलोफ़ेन्स[४] सम्भवतः यूथीडेमोस और डेमेट्रिओस के वंश के थे। इनमें से अधिकांश

---

[१] यह सम्भवतः झेलम नदी पर झेलम और चेनाब के मध्य स्थित था। इसे सम्भवतः स्ट्रैटो-प्रथम से हेलियोक्लीज़ ने जीता था (*CHI*, 553, 699)।

[२] आगथोक्लिया सम्भवतः मेनाण्डर की रानी थी (*CHI*, 552)। किन्तु, इसके समर्थन में प्राप्त सामग्री स्पष्ट नहीं है (*Contra* Heliokles and Leodike, Hermaios and Kalliope)। *Cf.* Whitehead in *Numismatic Chronicle*, Vol. XX (1940), p. 97; 1950, 216.

[३] अपोलोडोटस फ़िलोपेटर, डायोनीसियस, और ज़ोइलोस के एक ही प्रकार के चिह्न सिक्कों पर मिलते हैं। इनके तमाम सिक्के सतलज क्षेत्र में मिलते हैं। पठानकोट और शाकल में ज़ोइलोस के सिक्के मिले हैं (*JRAS*, 1913, 645 nl; *JASB*, 1897, 8; Tarn, *The Greeks in Bactria and India*, 316 f)।

[४] अपोलोफ़ेन्स, ज़ोइलोस और स्ट्रैटो के राजचिह्न प्रायः एक ही थे (Tarn, *Greeks*, 317)। पोलीज़ेनोस भी इसी वर्ग से सम्बद्ध है (p. 318)। ह्वाइटहेड, पोलीज़ेनोस को स्ट्रैटो-प्रथम का सम्बन्धी मानता है (*Indo-Greek Coins*, 54 n)। इसके बाद के शासक पूर्वी पंजाब से सम्बन्धित थे (*EHI*, 4th ed., pp. 257-58)। प्लूटार्क के विवरण के आधार पर टार्न संकेत करता है कि मेनाण्डर की मृत्यु के बाद, पूर्वी राजधानी शाकल से बूकेफल (झेलम के पूर्वी तट पर) स्थानान्तरित कर दी गयी थी (Tarn, *Alexander the Great*, Sources and Studies, 236)।

राजाओं ने एक ही प्रकार के सिक्के चलाये थे।[१] विशेषतः एथीन (Athene) नाम की देवी का चित्र तो प्रायः सभी सिक्कों में मिलता था। पेन्टालिओन तथा आग्थोक्लीज़ के सिक्के भी प्रायः इसी प्रकार के थे।[२] इन दोनों के सिक्के निकिल धातु के होते थे। इसके अतिरिक्त ये लोग केवल ब्राह्मी लिपि का प्रयोग करते थे। इसलिए ऐसा लगता है कि ये आपस में भाई-भाई ही थे। यह भी असम्भव नहीं है कि आग्थोक्लिया इनकी बहन ही रही हो।[३] आग्थोक्लीज़ (सम्भवतः एण्टीमेकोस़) ने सिकन्दर, एण्टिओकोस, निकेटर, डायोडोटस सोटर, यूथीडेमोस तथा डेमेट्रिओस एनिकेटोस की स्मृति में भी सिक्के जारी किये थे।[४]

अपोलोडोटस, स्ट्रैटोस, मेनाण्डर तथा बाद के कुछ राजाओं ने एथीन (Athene) देवी के चित्रों वाले सिक्के जारी किये थे। अपोलोडोटस तथा मेनाण्डर का नाम विभिन्न ग्रन्थों में एकसाथ मिलता है। Periplus of the Erythraean Sea के लेखक के अनुसार, बरिगाज़ा (भड़ौंच) में आधुनिक समय तक सिक्कों का प्रचलन था जिन पर यूनानी भाषा अंकित रहती थी और ऐसे शासकों के चिह्न थे जिन्होंने सिकन्दर, अपोलोडोटस तथा मेनाण्डर के बाद शासन किया था। इसके बाद जस्टिन की विलुप्त ४१वीं पुस्तक में भी मेनाण्डर और अपोलोडोटस को भारतीय राजा कहा गया है।[५] मिलिन्दपञ्हो में कहा गया है कि जिस वंश का मेनाण्डर था, उस राजवंश की राजधानी शाकल या सागल थी।[६] भूगोलवेत्ता तोलेमी के अनुसार, इस नगर का नाम यूथिमीडिया या यूथिडीमिया था। यह नाम सम्भवतः यूथिडीमियन-वंश के नाम पर ही रखा गया था। बाजौर-क्षेत्र में शिनकोट का एक शिलालेख प्राप्त हुआ

---

[१] भारत-यूनानी सिक्कों के प्रकार के लिए देखिये H. K. Deb, *IHQ*, 1934, 509 ff.

[२] Dancing girl in oriental costume according to Whitehead; Maya, mother of the Buddha, in the nativity scene according to Foucher (*JRAS*, 1919, p. 90)।

[३] आग्थोक्लिया सम्भवतः स्ट्रैटो-प्रथम की माँ रही हो या रानी। यह भी हो सकता है कि वह स्ट्रैटो-द्वितीय की दादी रही हो (*JRNS*, 1950, 216)।

[४] According to Tarn (447 f) the fictitious Seleukid pedigree is the key to the pedigree) coin series of Agathokles, the Just.

[५] Rhys Davids, मिलिन्द; *SBE*, 35, p. xix; *Cf. JASB*, Aug., 1833.

[६] **"अत्थि योनकानं नानापुटभेदनम् सागलन्नाम नगरम्", "जम्बुदीपे सागल नगरे मिलिन्दो नाम राजा अहोसि"। "अत्थि खो नागसेन सागलं नाम नगरं, तत्थ मिलिन्दो नाम राजा रज्जम् कारेति।"** 'योनक' रूप जिससे आजकल तैथिकी-क्रम-सम्बन्धी निष्कर्ष निकाले गये हैं, 'मद्रक' एवं 'वृजिक' से तुलना करने योग्य है। देखिये पाणिनि, IV. 2. 131.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

है, जिसमें महाराजा मिनाद्र (या मेनाण्डर) के शासन-काल के ५वें वर्ष का उल्लेख मिलता है। उक्त उल्लेख से सिद्ध होता है कि अपने शासन-काल के ५वें वर्ष में मेनाण्डर ने सिन्ध नदी के पार भी भारत के एक बड़े भूभाग पर कब्ज़ा कर लिया था। कपिशा और नीसिया (Nicaea) के सिक्कों से इस बात का संकेत मिलता है कि यूथिमीडियन-वंश के शासकों को किस प्रकार धीरे-धीरे भारत के अन्दरूनी भागों में धकेल दिया गया था। ये लोग अपनी राजधानी शाकल ले आये थे।

यूनानियों की दूसरी शाखा, अर्थात् यूक्राटीड्स-वंश के राजाओं में हेलियोक्लीज़ तथा सम्भवतः एण्टियलकिडस का नाम आता है। उन्होंने लीसिया के साथ संयुक्त रूप से शासन चलाया था। इस तथ्य की पुष्टि में काफ़ी सामग्री मिली है कि एण्टियलकिडस यूक्राटीड्स-वंश से सम्बन्धित था। गार्डनर के अनुसार, उसका चित्र हेलियोक्लीज़ से मिलता-जुलता है। यह भी असम्भव नहीं कि हेलियोक्लीज़ के बाद एण्टियलकिडस हुआ था।[1] बेसनगर के शिलालेख के अनुसार, उसे विदिशा के काशी (कोशी = कौत्सी ?) पुत्र भागभद्र का समकालीन भी माना जाता है। सम्भवतः इस राजा ने अग्निमित्र के बाद ईसापूर्व की दूसरी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में शासन किया था। तक्षशिला एण्टियलकिडस की सम्भावित राजधानी मानी गई है। इस राज्य से राजा भागभद्र के राज्य में एक राजदूत भेजा गया था। इस राज्य में कदाचित् कपिशी या कपिशा भी शामिल कर लिया गया था।[2] इस राजा की मृत्यु के बाद यह यूनानी राज्य तीन हिस्सों में विभाजित हो गया। पहले हिस्से तक्षशिला पर आर्केबिओस राज्य करता था।[3] दूसरे हिस्से का नाम पुष्कलावती था; और इस हिस्से पर डायोमेडीज़, इपैण्डर,[4] फ़िलोक्सीनोस, आर्टीमिडोरस और प्यूकोलाओस ने राज्य किया था। तीसरा हिस्सा कपिशी था, जो क़ाबुल तक फैला हुआ था। इस हिस्से पर अमिन्तास तथा हर्मेओस (Hermaios, Hermacus) ने राज्य किया था। हर्मेओस के साथ उसकी रानी कैलिओप (Kalliope) का नाम भी मिलता है। चीनी प्रमाण के अनुसार, इस भूभाग पर कभी शक राजा सै-वांग का राज्य था। वह सम्भवतः ईसापूर्व की दूसरी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुआ था। यह हो सकता है कि इस बर्बर तानाशाह ने यूनानी शासक बेसीलियस (Basileas) की अधीनता नाम मात्र के लिए

---

[1] Gardner, *Catalogue of Indian Coins in the British Museum*, p. xxxi.

[2] *Camb. Hist. Ind.*, 558.

[3] A copper piece of this king is restruck, probably on a coin of Heliokles (Whitehead, p. 39)।

[4] अपने सिक्कों से वह शाकल से सम्बद्ध लगता है (*Ibid.*, 64)। गंधार-क्षेत्र के राजाओं में टेलीफ़ोस को भी शामिल किया जा सकता है। उसके सिक्के माऊस (Maues) के सिक्कों से मिलते-जुलते थे (*Ibid.*, 80)। झेलम जिले के एक राजकुमार नीकियस (Nikias) के नाम का भी पता चला है। अपर्याप्त साक्ष्यों के आधार पर माऊस (Maues) पर नीकियस की जलसेना की विजय का उल्लेख भी मिलता है (*EHI*, 4th ed., 258; *Num. Chron.*, 1940, p. 109)।

स्वीकार कर ली हो, जैसे कि पाँचवीं शताब्दी में यूरोप के सामन्तों ने रोमन शाहंशाह की अधीनता स्वीकार कर रखी थी।

यूनानी राजवंशों तथा डेमेट्रिओस और यूकाट्रीड्स के पारस्परिक कलह से, बाद में यूनानी राजसत्ता कुछ निर्बल हो गई थी। इस आन्तरिक कलह को बाहरी आक्रमणों से भी काफ़ी बल मिला था। स्ट्रैबो[1] के अनुसार, एक बार पार्थियनों ने यूक्राटीड्स लोगों से बलपूर्वक बैक्ट्रियाना का कुछ भाग छीन लिया था। इस राज्य में एस्पिओनस तथा तुरीवा (मैक्डोनाल्ड के अनुसार, एरिया एवं अराकोसिया) प्रान्त सम्मिलित थे। इस बात का आधार है कि पार्थियन शासक मिथ्राडेट्स-प्रथम भारत के अन्दरूनी भूभागों में प्रविष्ट हो गया था। चौथी शताब्दी के रोमन इतिहासकार ओरोसियस (Orosius) ने इस आशय का स्पष्ट उल्लेख किया है कि मिथ्राडेट्स (सी० १७१-१३८ ईसापूर्व) ने सिन्धु और Hydaspes[2] नदियों के बीच रहनेवालों को अपने अधीन कर लिया था। इस शासक की जीत से यूक्राटीड्स और यूथिडीमोस के प्रतिद्वन्द्वी राज्य एक अन्य राज्य की स्थापना के फलस्वरूप एक-दूसरे से अलग-अलग हो गये।

जस्टिन ने बैक्ट्रियन यूनानियों के पराभव के प्रसंग में कुछ मुख्य तथ्य दिये हैं, जो इस प्रकार हैं—"निरन्तर युद्धों के कारण बैक्ट्रियन राजाओं को न केवल राज्य से हाथ धोना पड़ा, वरन् उनकी स्वतन्त्रता भी छिन गई, क्योंकि सोग्डियन, ड्रैन्जियन तथा भारतीयों से हुए युद्धों में उन्हें अधिक हानि उठानी पड़ी थी जिसके फलस्वरूप पार्थियन राज्य के अपेक्षाकृत कमज़ोर लोग इन पर हावी हो गये।"[3]

सोग्डियन लोग (Sogdians) उस क्षेत्र के लोग थे, जिसे अब समरकंद और बुखारा कहते हैं। इस क्षेत्र को बैक्ट्रियाना से Oxus ने तथा शकों से Jaxartes या Syr Daria[4] ने अलग कर दिया था। जस्टिन ने 'सोग्डियन' शब्द से केवल किसी जाति-विशेष का अर्थ निकालना ठीक नहीं समझा, बल्कि उसके मतानुसार, वे लोग भी सोग्डियन ही थे जिन्होंने यूनानियों से बैक्ट्रियाना ले लिया था। इस नाम के अन्तर्गत

---

[1] हैमिल्टन एवं फाल्कनर का अनुवाद, Vol. II, pp. 251-53.

[2] *Cambridge History of India* (Vol. I, p. 568) में इस नदी को ईरान की एक नदी कहा गया है और इसका नाम Medus Hydaspes of Virgil बताया गया है।

[3] Sten Konow ने इस अनुच्छेद को इस प्रकार स्वीकार किया है—
"The Bactrians lost both their empire and their freedom, being harassed by the Sogdians (beyond the Oxus), the Arachori (of the Argandab valley of S. Afghanistan), the Drangae lake-dweller (near the Hamun lake) and the Arei (of Herat), and finally oppressed by the Parthians (*Corpus*, ii, 1, xxi-xxii)।

[4] Strabo, *XI*, 8, 8-9.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

स्ट्रैबो[१] के अनुसार, Asii, Pasiani, Tochari, Sacarauli और Sacae या शक जातियाँ आ जाती हैं । शकों द्वारा भारतीय-यूनानी भूभागों पर कब्ज़ा करने की कहानी अगले अध्याय में मिलेगी । लैटिन इतिहासकार Pompeius Trogus के अनुसार, डायोडोटस को सीथियन, सरांसी (Sarancae) तथा Asiani जातियों से लोहा लेना पड़ा था । इन्हीं लोगों ने यूनानियों से सोग्डियाना और बैक्ट्रियाना छीना था । सम्भवतः सोग्डियाना में रहने के कारण ही इन लोगों की जाति का नाम 'सोग्डियन' पड़ गया । एस० कोनोव[२] के अनुसार, Tochari नाम को ही चीनी इतिहासकारों ने Tohia नाम दिया था । Asii, Asioi या Asiani को चीनी इतिहासकारों ने Yue-chi कहा है । तोलेमी ने भी Tochari जाति को एक महान् जाति बताया है ।[३] ये लोग बैक्ट्रियाना में ही रहते थे और Periplus के समय के बैक्ट्रियाना की लड़ाकू जाति के रूप में भी इतिहास में प्रसिद्ध हैं ।

दूसरी जाति का नाम 'ड्रैन्जियन' था । इस नाम का अर्थ है—'झील के निकट का रहने वाला ।'[४] ये लोग हमून (Hamun) झील के असपास Areia (Herat), Gedrosia (Baluchistan) तथा Arachosia (Kandahar) और पूर्वी फ़ारस के बीच के इलाक़े में रहते थे । इस क्षेत्र की राजनीतिक सीमा में कभी-कभी सीस्तान (Seistan) या (शकस्थान)[५] भी शामिल हो जाता था । प्राप्त सिक्कों के आधार पर एक और जाति का अस्तित्व प्रमाणित होता है, जो कि वोनोन्स (Vonones) कही जाती थी । इस जाति ने हेलमण्ड घाटी का अधिकांश भाग, गज़नी और कन्धार यूनानियों से छीन लिया था । वोनोन्स पार्थियन नाम है, अतः बहुत से परिवार इस जाति या वंश को 'पार्थियन' कहते हैं । कुछ विद्वान् तो यहाँ तक कहते हैं कि 'वोनोन्स' एक राजा का नाम था, जिसका शासन ८ से १४ ईसवी सन् तक था ।[६] किन्तु, किसी नाम को राष्ट्रीयता का प्रमाण नहीं कहा जा सकता । सर आर० जी० भण्डारकर ने

---

१. H. and F's Tr., Vol. II, pp. 245-46; *Cf. JRAS*, 1906, 193 f; Whitehead, *Indo-Greek Coins*, 171; Bachhofer, *JAOS*, 61 (1941), 245 (Criticism of Tarn) ।

२. *Modern Review*, April 1921, p. 464; *Corpus*, II. 1, xxii, lvii f.

३. *Ind. Ant.*, 1884, pp. 395-96.

४. Schoff, *Parthian Stations*, 32.

५. *Corpus*, xl; Whitehead, *Indo-Greek Coins*, 92; *MASI*, 34.7. इसीदोर (Isidore) के अनुसार, शकस्थान इस क्षेत्र की सीमा से बाहर था (Schoff, 9) । लेकिन, हर्ज़फ़ेल्ड ने भी इस सम्बन्ध में कहा है कि सीस्तान या शकस्थान Achaemenian 'Zrang' था ।

६. *Camb. Short. Hist.*, 69.

इस जाति को 'शक' ही कहा है।[1] वैसे इस वंश को Drangian कहना ही सबसे अच्छा है, क्योंकि इसके प्रभाव का मुख्य क्षेत्र हेलमण्ड की घाटी तथा Arachosia ही था।[2] सिक्कों में वोनोन्स के साथ दो राजाओं का भी उल्लेख मिलता है। वे निम्न हैं--

१. श्पलहोरा (Spalyris)। इसे 'महाराज-भ्राता' (the king's brother) भी कहा जाता है।

२. श्पलगदम, श्पलहोरा का लड़का।

इधर एक ऐसा सिक्का मिला है जिसके बारे में थॉमस और कनिंघम का कहना है कि यह वोनोन्स और एज़ेस-प्रथम के समय का है। किन्तु, सिक्का वास्तव में माऊस[3] से सम्बन्धित है। एक और चाँदी का सिक्का प्राप्त हुआ है, जिसकी एक ओर 'Basileus Adelphoy Spalirisoy' तथा दूसरी ओर 'Maharaja bhrata dhramiasa Spalirisasa' के आशय के उल्लेख मिलते हैं। इस राजा को कुछ लोग वोनोन्स तथा कुछ लोग Maues कहते हैं।[4] वोनोन्स के बाद Spalirises[5] का शासन आया। Spalirises के सिक्कों से दो तथ्यों का निरूपण होता है—

१. ऐसे सिक्के जिनमें एक ही राजा के नाम का उल्लेख है; तथा

२. ऐसे सिक्के जिनमें एक ओर एक शासक का नाम यूनानी में तथा दूसरी ओर दूसरे राजा का नाम खरोष्ठी लिपि में मिलता है।

---

[1] See Schoff, *Parthian Stations*, pp. 5, 13 ff, 17; *JRAS*, 1904, 706; 1906, 180; 1912, 990; See also *Parthian Stations*, 9, para 18; *ZDMG*, 1906, pp. 57-58; *JRAS*, 1915, p. 831; Tarn, *The Greeks in Bactria and India*, 53.

[2] *Corpus*, xlii.

[3] Whitehead, *Catalogue of Coins in the Punjab Museum (Indo-Greek Coins)*, p. 93; *Num. Chron.*, *JRNS* (1950), p. 208 n; Smith, *Catalogue*, 38; Bachhofer (*JAOS*, 61, 239); See also Tarn, *Greeks*, 344 n 2.

[4] Herzfeld ने Maues को ही Spalirises का भाई माना है (*Camb. Short Hi..*, 69)।

[5] यह उल्लेखनीय है कि Spalirises के कुछ सिक्के वोनोन्स (Vonones) के सिक्कों पर ही पुनः ढाले गये हैं (*CHI*, 574)। इसी प्रकार Spalyris और Spalagdama के सिक्कों के सम्बन्ध में भी कहा जाता है (*Corpus*, II. 1. xli)। इससे सिद्ध है कि 'Spalirises' Vonones और Spalagadama के बाद हुआ था (Tarn, *Greeks*, 326)।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दूसरे प्रकार के सिक्कों से लगता है कि राजा Spalirises के साथ उनका एक सहयोगी भी था, जिसका नाम Azes था और उसका ऐसे भूभाग पर शासन था जहां कि खरोष्ठी लिपि ही प्रयोग में आती थी। Azes के बारे में कहा जाता है कि वह पंजाब का राजा था। पंजाब के इस राजा का वर्णन आपको अगले अध्याय में मिलेगा।

बैक्ट्रियन यूनानी राजाओं के भारतीय शत्रुओं के प्रसंग में सबसे पहले पुष्यमित्र के राजवंश का उल्लेख आवश्यक है। कालिदास के 'मालविकाग्निमित्रम्' में कहा गया है कि पुष्यमित्र-वंश के राजाओं ने यूनानी राजाओं को सिन्धु नदी के तट पर पराजित किया था। पूर्वी पंजाब में यूनानी शासकों का प्रभुत्व था, जिसको समाप्त करने में भद्रयशस नामक व्यक्ति ने बड़ी सहायता की थी। गौतमीपुत्र शातकर्णि की 'नासिक-प्रशस्ति' में इस राजा के विषय में कहा गया है कि इसने ही पश्चिमी भारत के यवन-प्रभुत्व को समाप्त किया था।

जस्टिन के अनुसार, भारत से यूनानी राज्य को अन्तिम रूप से पार्थियनों ने समाप्त किया था। मार्शल[१] के कथनानुसार, सबसे बाद में समाप्त होने वाला राज्य[२] क़ाबुल की घाटी में स्थित हर्मेओस (Hermaios) था। इस राज्य को पार्थियन राजा गोण्डोफ़र्नस (Gondophernes) ने समाप्त किया था।[३] चीनी इतिहासकार फ़ान-ई ने भी पार्थियनों के क़ाबुल पर अधिकार का उल्लेख किया है।[४] Tien-tchou (भारत), Kipin (कपिशा) तथा न्गान्सी (Ngansi—Parthia), इन तीन राज्यों में से जब भी कोई राज्य शक्तिशाली होता था, वह क़ाबुल को अपने में मिला लेता था। जब वह राज्य निर्बल हो जाता था तो क़ाबुल उसके हाथ से निकल जाता था। अन्त में क़ाबुल का शासन पार्थियनों के हाथ आ गया।[५] क़ाबुल पर पार्थियनों का

---

१. *A Guide to Taxila*, p. 14.

२. Bajaur Seal Inscription के अनुसार, क़ाबुल की घाटी पर शासन करने वाले यूनानी राजाओं में थियोडेमस (Theodamas) भी एक था (*Corpus*. II, i, xv, 6)।

३. मार्शल ने *ASI. AR* (1929-30, pp. 56 ff) में यूनानी राजाओं द्वारा क़ाबुल को जीतने के बारे में अपने कथन को संशोधित करते हुए कहा है कि पार्थियन तथा कुषाण, दोनों राजवंशों के लिए क़ाबुल की घाटी का शासन अपने-आप में एक बहुत बड़ा आकर्षण था। इन दोनों राजवंशों की यह प्रतिद्वन्द्विता तब तक चलती रही जब तक कि पार्थियनों का अन्तिम रूप से पतन नहीं हो गया।

४. *JRAS*, 1912, 676; *Journal of the Department of Letters*, Calcutta University, Vol. I, p. 81.

५. *Cf*. Thomas, *JRAS*, 1906, 194; Bhandarkar, '*Foreign Elements in the Hindu Population*' (*Ind. Ant*., 1911); Raychaudhury, '*Early History of Vaishnava Sect*,' 1st ed., p. 106; Foucher, *The Beginnings of Buddhist Art*, pp. 9, iii f; Coomaraswami, '*History*

वास्तविक अधिकार Isidore के बाद ही, अर्थात् ईसापूर्व की प्रथम शताब्दी[१] के अन्तिम भाग में ही हो सका, क्योंकि पार्थियन साम्राज्य के इतिहासकारों ने क़ाबुल को राज्य के पूर्वी हिस्से में नहीं शामिल किया। फ़िलोस्ट्रैटोस के अनुसार, ४३-४४ ईसवी में पार्थियनों का राज्य क़ाबुल तक आ गया।

---

of Indian and Indonesian Art,' pp. 41 f; Hopkins, '*Religion of India,*' pp. 544 f; Keith, '*The Sanskrit Drama*', pp. 57 f; Keith, '*A History of Sanskrit Literature,*' pp. 352 f; Max Muller, '*India—What can it teach us,*' pp. 321 f; Smith, *EHI*, pp. 251-56; '*A History of Fine Art in India and Ceylon,*' Chap. XI; '*Imp. Gaz., The Indian Empire,*' Vol. II, pp. 105 f, 137 f, etc.

[१] Tarn, *The Greeks in Bactria and India*, 53; Schoff, *The Parthian Stations of Isidore of Charax*, 17.

११

उत्तर भारत में सीथियन-शासन

१. शक

ईसापूर्व की दूसरी और पहली शताब्दी में काफ़िरिस्तान के कुछ भागों, गन्धार और सम्भवतः हज़ारा देश के यूनानी राज्यों पर शक जाति ने अधिकार कर लिया था। फ़ारस के राजा डेरियस (५२२-४८६ ईसापूर्व) के समय में शक लोग सोग्डियाना के बाहर ही थे। वे सम्भवतः Syr Darya के मैदानी भूभाग के निवासी थे, जिसकी आधुनिक राजधानी तुर्किस्तान है।[१] किन्तु, पहली शताब्दी ईसापूर्व के अन्तिम दिनों में वे सीगल (या आधुनिक सीस्तान)[२] के निवासी हो गये थे। चीनी इतिहासकारों ने शकों के मध्य एशिया से निष्क्रमण का उल्लेख भी किया है। History of the First Han Dynasty (Ts'ien Han-Shu) में कहा गया है—"पहले जब ह्युगनू (Hiung-nu) ने ता-यू-त्शी (Ta-Yue-tchi) पर विजय प्राप्त की तो ता-यू-त्शी पश्चिम की ओर चला गया[३] और ताहिया (Tahia) पर हावी हो गया। फिर सै-वांग (Sai-wang) दक्षिण की ओर चला गया और किपिन पर अधिकार जमा लिया।"[४]

एस० कोनोव के अनुसार, सै-वांग उन्हीं जातियों का नाम था, जिनका ज़िक्र भारतीय ग्रन्थों में मिलता है, जैसे शक-मुरुण्ड।[५] शकों को बाद में 'मुरुण्ड' कहा जाने लगा। इस शब्द का वही अर्थ होता है जो चीनी शब्द 'वांग' का होता है। 'मुरुण्ड' का अर्थ राजा या स्वामी होता है। भारतीय शिलालेखों तथा सिक्कों में इस शब्द का अनुवाद प्रायः 'स्वामी' शब्द के अर्थ में किया गया है।

---

[१] E. Herzfeld, *MASI*, 34, 3.

[२] Schoff, Isidore, *Stathmoi Parthikoi*, 17.

[३] *C.* 174-160 B.C. according to some scholars.

[४] शक लोगों ने सम्भवतः किपिन पर यूक्राटीड्स के बाद या उसके (यूनानी) उत्तराधिकारियों के तुरन्त बाद अधिकार जमाया (*JRAS*, 1903, p. 22, 1932, 958; *Modern Review*, April, 1921, p. 464)।

[५] प्रोफ़ेसर हर्मन (Hermann) ने सै-वांग (Sai-wang) को स्ट्रैबो का Sakarauloi या Sakaraukoi कहा है (*Corpus*, II. 1, xx f) I For Murunda, See pp. xx.

जिस शक राजा ने किपिन पर अधिकार. किया, उसका नाम ज्ञात नहीं हो सका है। इसके पूर्व जिस राजा ने शासन किया था, चीनी ग्रन्थों के अनुसार उसका नाम वू-तू-लू (Wu-t'ou-lao) था। उसके पुत्र को युंग-कू (Yung-Ku) के राजा के पुत्र यिन-मो-फ़ू (Yin-mo-fu) ने चीनियों की सहायता से पदच्युत कर दिया था।[1] यिन-मो-फ़ू ने सम्राट् सूग्रान-ती (Hsuan-ti) के समय में ही अपने को राजा घोषित किया। यह राजा ७३-४८ ईसापूर्व तक रहा। इसने यूग्रान ती (Yuan-ti) के एक राजदूत के नौकरों की हत्या कर दी थी। चेंग-ती (Cheng-ti) के समय में किपिन के राजा ने चीन से सहायता माँगी थी, किन्तु वह असफल रहा था। ईसापूर्व की प्रथम शताब्दी के अन्त में चीनी अधिकारियों को कोई बौद्ध-ग्रन्थ[2] मिला, जिसमें तत्सम्बन्धी कुछ संकेत मिलते हैं। किपिन-राजा, यिन-मो-फ़ू का उत्तराधिकारी था। इस राजा पर यू-शी (Yue-chi) ने आक्रमण किया, जिसका चीन से आपसी सम्बन्ध था।

एस० लेवी के अनुसार, आज़ का कश्मीर ही प्राचीन किपिन राज्य था। किन्तु, एस० कोनोव[3] ने इस मत का खण्डन किया है। एस० कोनोव के मतानुसार, कपिशा का दूसरा नाम किपिन था।[4] किसी समय में गन्धार किपिन राज्य का पूर्वी भाग था। हेमचन्द्र की 'अभिधान-चिन्तामणि' में एक अनुच्छेद से संकेत मिलता है कि सें-वांग (या शक-मुरण्ड) की राजधानी लम्पाक या लघमान (**लम्पाकास्तु मुरण्डाः स्युः**)[5] थी। एप० कोनोव का कहना है कि Ts'ien Han-shu या Annals of

---

१. 'युङ्ग-कू' को योनक (Tarn, 297) तथा 'यिन-मो-फ़ू' को Hermaios माना जाता है (Tarn, 346)। इस सम्बन्ध में *JASB*, 1895, 97 भी देखिए। इस दिशा में अभी शोधकार्य की अपेक्षा है।

२. *Cal. Rev.*, Feb., 1924, pp. 251-52; Smith, *EHI*, 3rd ed., p. 258 n; *JRAS*, 1913, 647; *Ind. Ant.*, 1905—कश्गर एवं खरोष्ठी।

३. *Ep Ind*, XIV, 291.

४. यह वह प्रदेश है जिसमें से होकर क़ाबुल नदी की उत्तरी सहायक नदियाँ बहती हैं (*Ibid.*, p. 290; *Cf.* Watters, *Yuan Chwang*, Vol. I, pp. 259-60)। कपिशी नगर सम्भवतः घोरबन्द और पंजषिर के मिलन-बिन्दु पर था (Foucher, *Indian Studies Presented to Prof. Rapson*, 343)। Ts'ien Han-shu के अनुसार, किपिन 'वू-ई-शान-ली' से जुड़ा हुआ था। दक्षिण-पश्चिम में अर्कोशिया और फ़ारस था (Schoff, *Parthian Stations*, 41)। डॉ० हर्मन के अनुसार, गन्धार ही किपिन था (*JRAS*, 1913, 1058 n)। किपिन में चाँदी और सोने के सिक्के चलते थे (*Corpus* II, 1, xxiv; *JRAS*, 1912, 684 n)। पुष्कलावती में सोने और चाँदी के सिक्कों के लिए देखिये *CHI*, 587, and the coin of Athama (442 *infra*)।

५. लम्पाक (Lampaka or Laghman) कपिसीन (Kapisene) से १०० मील पूर्व में है (*AGI*, 49)।

the First Han Dynasty के अनुसार, शकों ने हिएन्तु (Hientu) को पार किया था। किपिन की यात्रा के सिलसिले में वे स्कर्दु के पश्चिम से गुज़रे थे ।[1] यद्यपि शकों ने किपिन (कपिशा-गन्धार) के कुछ भाग को वहाँ के यनानी शासकों से छीन लिया था, तो भी वे क़ाबुल को स्थायी रूप से अपने अधीन नहीं कर सके ।[2] क़ाबुल में वहाँ के राजा की ही प्रधानता बनी रही । वे (शक) भारत में अधिक सफल हुए थे ।

मथुरा और नासिक में मिले शिलालेखों से ऐसा लगता है कि शक लोग पूर्व में यमुना और दक्षिण में गोदावरी तक फैल गये थे । इन लोगों ने मथुरा के मित्रों तथा पैठन के सातवाहनों की प्रभुता विनष्ट की थी ।[3]

किपिन के शक राजाओं का सुसम्बद्ध एवं विस्तृत विवरण देना सम्भव नहीं है । रामायण,[4] महाभारत[5], मनुसंहिता[6] तथा महाभाष्य[7] में शकों का नाम यवनों के साथ आया है । हरिवंश[8] में कहा गया है कि ये लोग अपने आधे सिर के ही बाल बनवाते थे । जैन-ग्रन्थ 'कालकाचार्य कथानक' के अनुसार, शकों के राजा को 'शाहि'[9] कहते थे । इनमें से कुछ राजा जैन-उपदेशकों के निर्देशों पर सुरट्ठ (सुराष्ट्र) विषय (देश) तथा हिन्दूकुश में उज्जन (India) तक भी गये । वहाँ इन्होंने स्थानीय शासकों को पदच्युत किया और चार वर्ष तक वहाँ राज्य भी किया । बाद में ५८ ईसापूर्व में ये वहाँ से भगा दिये गये हैं ।

गौतमीपुत्र शातकर्णि और समुद्रगुप्त की प्रशस्तियों में भी शकों का उल्लेख आया है । मथुरा के एक शिलालेख, 'कदम्ब मयूरशर्मन' के चन्द्रावल्लि-शिलालेख तथा 'महामायूरी' (९५) में शकों के राज्य का उल्लेख 'शकस्थान' के नाम से किया गया है ।

मथुरा के शिलालेख के जिस अंग में शकस्थान का उल्लेख है, वह इस प्रकार है—

सर्वस सकस्तनस पुयए ।

---

[1] *Ep. Ind.*, XIV, 291; *Corpus*, II, 1. xxiii; see also *JRAS*, 1913, 929, 959, 1008, 1023.

[2] *Journal of the Department of Letters*, Vol. I, p. 81.

[3] कुछ शक सम्भवतः दक्षिण भारत तक चले गये थे । नागार्जुनिकोण्ड-शिलालेख में एक मोद नामक शक तथा उसकी बहन बुधि का उल्लेख मिलता है (*Ep. Ind.*, xx. 37) ।

[4] I, 54. 22; IV. 43, 12.

[5] II, 32. 17.

[6] X, 44.

[7] *Ind. Ant.*, 1875, 244.

[8] Chap. 14, 16; *JRAS*, 1906, 204.

[9] *ZDMG*, 34, pp. 247 ff, 262; *Ind. Ant.*, 222.

कनिंघम और बूह्लर का कहना है कि यह अंग समूचे शकस्थान के प्रति सम्मान प्रकट करने के प्रसंग में आया है। डॉक्टर फ़्लीट के मतानुसार, इस बात का पर्याप्त आधार नहीं है कि शकों ने कभी उत्तरी भारत (काठियावाड़ के उत्तर) और मालव के पश्चिमी व दक्षिणी हिस्से पर आक्रमण किया था। डॉक्टर फ़्लीट ने 'सर्व' शब्द को व्यक्तिवाचक संज्ञा माना है और उपर्युक्त अंग का अर्थ 'अपने देश के सम्मान में दान' कहा है।[1]

फ़्लीट की आपत्ति कोई बहुत सशक्त नहीं है। चीनी ग्रन्थों में साफ़ लिखा है कि शक लोग किपिन देश, अर्थात् कपिशा-गन्धार में थे।[2] जहाँ तक शकों के मथुरा में होने की बात है, मार्कण्डेय पुराण[3] का यह उल्लेख महत्त्वपूर्ण है कि मध्यदेश शकों की निवास-भूमि रही है। डॉक्टर थॉमस[4] ने संकेत किया है कि मथुरा के शिलालेख में शक और फ़ारसी दोनों प्रकार के नाम मिलते हैं। उदाहरण के लिए, इस शिलालेख में 'मेवाकी' (Mevaki) शब्द आया है जो सम्भवतः सीथियन नाम मऊआकी[5] (Mauakes) शब्द का ही रूपान्तर है। 'कोमूसा' और 'शमूशो' शब्द के अन्तिम अंश '-ऊस' कुछ सीथियन ढंग के ही लगते हैं। डॉक्टर थॉमस ने आगे संकेत किया है कि शक राज्य के प्रति आदर या सम्मान की बात को स्वीकार करने में कोई कठिनाई नहीं है, क्योंकि सुई-विहार (Sui Vihar) तथा वार्डक (Wardak) शिलालेखों में हमें 'सर्व सत्वनम' जैसे उल्लेख मिलते हैं। फ़्लीट ने 'स्वक' तथा 'शकट्ठान' शब्दों का उल्लेख किया है। इसके बारे में डॉक्टर थॉमस का कहना है कि यह अस्वाभाविक-सा मालूम होता है कि कोई अपने ही परिवार की प्रशंसा के शब्द पत्थरों पर खुदवाये। यद्यपि देश की 'पूजा' का सम्बोधन कुछ अस्वाभाविक-सा लगता है, किन्तु शक-प्रदेशों में ऐसे सम्बोधनों के शिलालेख मिलते हैं।

शकस्थान में सीथिया ज़िला भी शामिल था। इसी ज़िले से सिन्धु नदी निकलती है। हिन्द महासागर में गिरने वाली नदियों में सिन्धु सबसे बड़ी है।

तक्षशिला, मथुरा तथा पश्चिमी भारत में ऐसे शिलालेख मिले हैं, जिनमें शक-राजकुमारों के नाम मिलते हैं। डॉक्टर थॉमस के मतानुसार, पंजाब या भारत में चाहे जो भी शक-वंश प्रभावशाली रहा हो, पर उसके बारे में यह निश्चित है कि

---

[1] *JRAS*, 1904, 703, 1905, 155, 643 f. श्री मजूमदार शकस्तान को शक्रस्थान कहते हैं, जिसका अर्थ है 'इन्द्र का स्थान' (*JASB*, 1924, 17; *Cf* Fleet in *JRAS*, 1904, 705)।

[2] See *CHI*, 560 n, 562, 591; and *Corpus*, ii. l. 150 f.

[3] Chap. 58.

[4] *Ep. Ind.*, IX, pp. 138 ff; *JRAS*, 1906, 207 f, 215 f.

[5] Maues, Moga और Mavaces, ये शक-सेनापति डेरियस की सहायता में गये थे (Chinnock, *Arrian*, p. 142)। *Cf.* S. Konow, *Corpus*, xxxiii n. १११-१०६ ईसापूर्व में फ़रग़ाना (Ferghana) के शक-शासक का नाम Mu-ku'a था (Tarn, *Greeks*, 308 f.)।

अफ़गानिस्तान या कश्मीर से होकर भारत नहीं आया था। सम्भवतः ये लोग सिन्धु नदी तथा सिन्धु की घाटी से होकर भारत आये थे।[1] चूँकि शक-सिक्कों में सिन्धु-सम्बन्धी अधिक प्रमाण नहीं मिलते, इसलिए उपर्युक्त मत को पूरी तौर से स्वीकार नहीं किया जा सकता। इसके अलावा, चीनी ग्रन्थों में भी किपिन पर शकों के अधिकार, कपिशी में सीथियन प्रभाव तथा हज़ारा में शकों के आधिपत्य का कोई महत्त्वपूर्ण उल्लेख नहीं मिलता।[2] वैसे, हम इस तथ्य की उपेक्षा नहीं कर सकते कि खोज में प्राप्त सभी नाम उत्तरी शकों से सम्बद्ध हैं। वे सोग्डियाना[3] के समीप रहते थे। उदाहरणार्थ, माऊस (Maues), मोगा[4] (Moga) तथा मेवाकी[5] नाम शकों के मऊआकी (Muakes) नाम के ही भिन्न-भिन्न रूप हैं। एरियन के विवरण से हमें पता चलता है कि मऊआकी (Maukes) अथवा मोवाकी (Movaces) नामक सरदार ने एशिया-निवासी सीथियन जाति (शकों) का नेतृत्व किया था। इस जाति के लोग बैक्ट्रिया तथा सोग्डियाना के फ़ारसी राज्यपालों के अधीन नहीं थे, फिर भी फ़ारस के शासक से उनकी मित्रता थी। तक्षशिला, मथुरा, पश्चिमी भारत तथा दक्षिण के प्रान्तों के अनेक राजपरिवारों के पारिवारिक नाम छहरात, खखरात या क्षहरात इत्यादि उत्तरी शक जाति के कराताई (Karatai) नाम के ही समानार्थी थे।[6]

Isidore of Charax ने शकों की पश्चिमी शाखा का उल्लेख किया है। सम्भव है कि सिन्धु घाटी के निचले भाग, कच्छ तथा पश्चिमी भारत के कुछ अन्य भागों पर शकों की इसी शाखा ने विजय प्राप्त की थी। पेरीप्लस के लेखक के समय 'सीथिया' (सिन्धु-घाटी के निचले भाग) तथा मम्बरुस (नम्बनुस ?) राज्य की राजधानियों का नाम मिन्नगर था। यह नाम सम्भवतः इसीदोर द्वारा वर्णित शक-स्थान के मिन नगर से लिया गया था।[7]

---

[1] *JRAS*, 1906, p. 216.

[2] *CHI*, 569, n; *JASB*, 1924, p. 14; S. Konow, *Corpus*, II, 1, 13f. शकों द्वारा किपिन-विजय का यह अर्थ नहीं है कि क़ाबुल-क्षेत्र से यूनानी प्रभाव खत्म हो गया था। *The History of the Later Han Dynasty* (A.D. 25-220) में इस बात का उल्लेख है कि किपिन-विजय के पूर्व क़ाबुल में पार्थियन लोगों का प्रभाव था। हो सकता है कि सातवाहनों की तरह यूनानियों ने भी कुछ हद तक अपना खोया राज्य वापस लौटा लिया हो। यह भी हो सकता है कि सीथियन सामन्तों ने कुछ समय के लिए यूनानी राजाओं की अधीनता भी स्वीकार कर ली हो।

[3] *Ind. Ant.*, 1884, pp. 399-400.

[4] Taxila Plate.

[5] Mathura Lion Capital.

[6] *Ind. Ant.*, 1884, p. 400; *Cf. Corpus*, II, I. xxxvi. "खरोष्ट और माऊस (Maues) किपिन के उत्तरी-पश्चिमी शकों से सम्बन्धित थे, न कि उस वंश से जो कि सीस्तान (Seistan) से भारत आया था।" *Cf.* xxxiii (Case of Liaka)

[7] *JRAS*, 1915, p. 830.

रैप्सन ने चाश्तान-वंश के पश्चिमी क्षत्रपों के नामों की चर्चा करते हुए 'डामन' शब्द का उदाहरण दिया है, और कहा है कि वोनोन्स जाति के ड्रैन्जियन-वंश के एक राजकुमार के नाम में यह शब्द आया है। अन्त में कार्द्दम-वंश वर्ग का उदाहरण लीजिये। कन्हेरी-शिलालेख के अनुसार, महाक्षत्रप रुद्र की पुत्री इसी वंश में उत्पन्न हुई थी। इसका नाम सम्भवतः कार्द्दम नदी के नाम पर रखा गया था। यह नदी फ़ारस-क्षेत्र से होकर वहती थी।[1]

भारतीय शिलालेखों में आरम्भिक काल के शकों—दमिजद[2] और माऊस—के नाम आये हैं। बाद वाला नाम Taxila Plate के मोगा नाम का ही एक रूप कहा जाता है। सम्भवतः इसका उल्लेख मैर-शिलालेख[3] में भी आया है। माऊस-मोगा सम्भवतः एक बड़ा ही शक्तिशाली राजा (महाराज) था। इसका राज्य तक्षशिला के निकट चुक्ष तक फैला हुआ था। यहाँ एक विशेष क्षत्रपाल राज्य करता था; और सिक्कों से प्रमाणित होता है कि इस शासक ने कपिशी,[4] पुष्करावती तथा तक्षशिला[5] तक अपने राज्य की सीमा बढ़ा ली थी। इस शासक के क्षत्रपों ने सम्भवतः मथुरा से भारतीय और यूनानी सत्ता समाप्त कर दी थी। पूर्वी पंजाब के कुछ भागों तथा आसपास के क्षेत्रों में औदुम्बर, त्रिगर्त, कुनिन्द, यौधेय तथा आर्जुनायन जैसी कुछ ऐसी जातियाँ रहती थीं, जिन्होंने यूथिडीमियन साम्राज्य के पतन के बाद अपनी स्वतंत्रता की आवाज़ उठाई। माऊस राजा ने यूक्राटीड्स तथा डेमेट्रिओस की तरह के सिक्के भी चला दिये। इन सिक्कों से विद्वानों ने यह निष्कर्ष भी निकाला है कि माऊस ने मेनाण्डर के राज्य, अर्थात् शाकल[6] ज़िले को अछूता छोड़ रखा था।

विभिन्न इतिहासकारों के मतानुसार, माऊस राजा १३५ ईसापूर्व और १५४

---

१. अर्थशास्त्र का शाम शास्त्री द्वारा अनुवाद, p. 86, n. 6. *Cf.* Artemis (Ptolemy, 324), Gordomaris, Loeb, Marcellinus (ii. 389)। See also *Ind. Ant.*, XII, 273 n. महाभाष्य में 'कार्दमिक' शब्द आया है (IV. 2. 1; *World Index*, p. 275); क्रमदीश्वर, 747; और 'कार्दमिल' (महाभारत, III, 135. 1)। कार्द्दम नदी सम्भवतः ज़रफ़शान (Zarafshan) की वही नदी है जो बैक्ट्रिया या बल्ख से होकर वहती थी। रामायण के उत्तरकाण्ड में कार्द्दम राजाओं को बाह्ली या वाह्लिक से सम्बद्ध किया गया है (*IHQ*, 1933, pp. 37 ff)।

२. Or Namijada, Shahdaur Ins., *Corpus*, II. i, 14, 16.

३. Maira में एक शिलालेख मिला है, जिसकी लिपि खरोष्ठी है तथा जो सम्भवतः ५८ ईसवी का है। इसमें Moasa, 'of Moa or Moga' शब्द मिलते हैं।

४. *Camb. Hist. Ind.*, I. 590 f.

५. *Ibid.*, 701.

६. Tarn, *The Greeks in Bactria and India*, 322-330; Whitehead, *Indo-Greek Coins*, 112; Tarn, *GBI*, 349 or By Rajuvula, *CICAI*, 185.

ईसवी के बीच प्रभाव में रहा। उसके सिक्के सामान्यतः पंजाब तथा मुख्यतः उस प्रान्त के पश्चिमी भागों में मिलते हैं, जिसकी प्राचीन राजधानी तक्षशिला थी। इस प्रकार यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि माऊस गन्धार देश का राजा था। इसलिए, पंजाब के इतिहास में यूनानी राजा एण्टियलकिडस के पूर्व माऊस का होना प्रमाणित नहीं किया जा सकता। जब भागभद्र मध्यभारत के विदिशा राज्य में शासन करता था, उसी समय यूनानी राजा एण्टियलकिडस तक्षशिला में राज्य करता था। भागभद्र का शासन १४ वर्ष तक चला। यद्यपि भागभद्र के समय का निर्धारण नहीं हो सका या अनिश्चित-सा है, तो भी उसे पुष्यमित्र के पुत्र अग्निमित्र के बाद ही रखा जायेगा। अग्निमित्र ने १५१ ईसापूर्व से १४३ ईसापूर्व तक राज्य किया। इसलिए भागभद्र के शासन-काल का १४वाँ वर्ष १२९ ईसापूर्व के पहले नहीं हो सकता, अतः एण्टियलकिडस ईसापूर्व की दूसरी शताब्दी उत्तरार्द्ध से पहले हुआ नहीं कहा जा सकता और न हम यह कह सकते हैं कि उसका शासन १२९ ईसापूर्व से पहले समाप्त हुआ होगा।[1] अतः गन्धार पर शकों का आधिपत्य भी १२९ ईसापूर्व के बाद ही हो सकता है। फ़्लीट के अलावा अन्य विद्वान् माऊस को तथाकथित सिरसुख अथवा तक्षशिला-ताम्रपत्र (plate) में वर्णित महाराय मोगा मानते हैं। इसके समय के बारे में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। सामान्यतः इस राजा को शक-सम्वत् के ७८वें वर्ष में रखा जाता है। चूंकि शक-सम्वत् केवल उत्तरी भारत तथा सीमावर्त्ती प्रदेशों में प्रचलित है, इसलिए ऐसा समझा जा सकता है कि इन प्रदेशों पर शकों के राज्य के बाद से यह सम्वत् चला है। हम पहले देख चुके हैं कि इन प्रदेशों पर शकों का अधिकार १२९ ईसापूर्व के पहले नहीं हुआ था, इसलिए Taxila Plate में जो समय दिया गया है, १२९ ईसापूर्व के पहले का नहीं हो सकता। इस सम्वत् का ७८वाँ वर्ष (१२९ — ७८ = ५१) या माऊस-मोगा का शासन ५१ ईसापूर्व के पहले समाप्त नहीं माना जा सकता, बल्कि इस राजा को इसके बाद ही रखा जाना चाहिए, क्योंकि चीनी रिकार्डों से हमें पता चलता है कि ४८-३३ ईसापूर्व के आसपास कपिशा-गन्धार प्रदेश पर यिन-मोफ़ू का अधिकार था। उससे पूर्व वू-तऊ-वाओ और उसके पुत्र ने शासन किया था। चूंकि माऊस को उक्त चीनी शासकों में गिनने का कोई आधार नहीं है, इसलिए उसे ३३ वर्ष ईसापूर्व के बाद ही रखा जा सकता है, फिर भी उसे पहली शताब्दी के प्रथमार्ध से आगे नहीं रखा जा सकता। क्योंकि फ़िलोस्ट्रैटोस तथा पेरीप्लस के लेखक ने इस बात की चर्चा की है कि इस समय तक अथवा इससे कुछ समय पश्चात् सीथिया जाति की राजधानी मिन्नगर और तक्षशिला, दोनों ही पार्थियन जाति के अधीन हो चुकी थीं। इसलिए यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि माऊस-मोगा का शासन ३३ वर्ष ईसापूर्व के बाद, किन्तु पहली शताब्दी के प्रथमार्ध के अन्दर ही अस्तित्व में रहा है। फ़्लीट के अनुसार, मोगा का उदय २२ ईसवी में हुआ। यही शक-सम्वत् का संभवतः ७८वाँ वर्ष था। यह सम्वत् ५८ ईसापूर्व में आरम्भ हुआ होगा। बाद में यही बदल कर 'कृत-मालव-विक्रम-सम्वत्' हो गया होगा। किन्तु अभी सवाल को पूरी तरह हल नहीं समझा जाना चाहिये, क्योंकि अनेक सामग्रियाँ ऐसी मिली हैं जिनसे संकेत मिलता है कि यह सम्वत् ५८ ईसापूर्व के पहले ही आरम्भ हुआ होगा। इन सामग्रियों

---

[1] *Cf.* Marshall, *Monuments of Sanchi*, I, 268 n.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

में वीमा का खलात्से-अभिलेख एवं Taxila Silver Vase Inscription आदि मुख्य हैं।

सिक्कों से ज्ञात तथ्यों के आधार पर गन्धार के सिंहासन पर माऊस के बाद एज़ेस बैठा और उसने हिप्पोस्ट्रैटोस के राज्य को जीतकर पूर्वी पंजाब से यूनानियों के प्रभुत्व का अन्त कर दिया। मार्शल के कथनानुसार, उसने जमुना की घाटी पर अपना अधिकार जमा लिया, जहाँ विक्रम-सम्वत् प्रयोग में आता था।[1] शासक एज़ेस के सिक्के वोनोन्स-वंश के शासकों के उत्तराधिकारियों से मिलते-जुलते हैं। यह भी धारणा है कि पंजाब का राजा एज़ेस ही Spalirises का साथी एज़ेस था। वैसे एज़ेस नाम के दो शासक थे—एज़ेस-प्रथम Spalirises का उत्तराधिकारी था, तथा एज़ेस-द्वितीय भी राजा माऊस के पहले ही हुआ था। लेकिन, इस मत के बाद के अंश को सही नहीं माना जा सकता। गोण्डोफ़र्न्स तथा एज़ेस-द्वितीय के सम्बन्ध में प्राप्त सामग्री से सिद्ध होता है कि अस्पवर्मन इन दोनों राजाओं का सेनापति था।[2] गोण्डोफ़र्न्स के शासन का समय १०३ था,[3] जबकि माऊस-मोगा ७८वें वर्ष में शासक था।[4] चूंकि विद्वानों ने एक ही सम्वत् की इन दोनों तिथियों का उल्लेख किया है, अतः गोण्डोफ़र्न्स तथा एज़ेस-द्वितीय, दोनों माऊस-मोगा के बाद ही हुए रहे होंगे। माऊस-मोगा एज़ेस-प्रथम और द्वितीय के बीच हुआ हो, यह हो नहीं सकता; क्योंकि एज़ेस-प्रथम के बाद ही एज़ेस-द्वितीय आया। यह तथ्य तत्कालीन सिक्कों से प्रमाणित हो चुका है। माऊस या तो एज़ेस-प्रथम के पहले हुआ, या एज़ेस-द्वितीय के बाद। किन्तु यह तो हम पहले ही देख चुके हैं कि वह एज़ेस-द्वितीय के बाद नहीं हुआ। इसलिए वह सम्भवतः एज़ेस-प्रथम के पहले ही हुआ होगा। हो सकता है कि जब सीस्तान पर वोनोन्स का शासन रहा हो, उस समय माऊस पंजाब का शासक रहा हो। जब वोनोन्स के बाद Spalirises आया, तभी माऊस के बाद एज़ेस-प्रथम आ गया। यह तो हम पहले ही देख चुके हैं कि एज़ेस-प्रथम तथा Spalirises ने संयुक्त सिक्के चलवाये थे।[5] यों दोनों राजाओं का आपसी सम्बन्ध ज्ञात नहीं है। हो सकता है कि उनके

---

[1] *JRAS*, 1947, 22.

[2] Whitehead, *Catalogue of Coins in Punjab Museum*, p. 150.

[3] देखिये, तख्त-इ-बाही-शिलालेख।

[4] *Cf*. The Taxila Plate of Patika.

[5] Rapson ने *CHI* (pp. 273-74) में Spalirises के सहयोगी एज़ेस-प्रथम की समानता एज़ेस-द्वितीय से की है, और उसे Spalirises का लड़का कहा है। इसके अलावा ५७२वें पृष्ठ पर यह भी कहा गया है कि एज़ेस-द्वितीय Azilises का पुत्र और उत्तराधिकारी था। यह कहना कठिन है कि रैप्सन के ये दोनों मत किस प्रकार सही हो सकते हैं? इसके लिए शिवरक्षित का शाहदौर-शिलालेख भी देखिये (*Corpus*, II. 1. 17)। एज़ेस (Aja या Aya) को कुछ विद्वानों ने ईसवी सन् १३४ के कलवान-शिलालेख में मान्यता दी है। किन्तु, इस उल्लेख में नाम के आगे या पीछे किसी प्रकार की उपाधि के अभाव में यह कहना कठिन है कि यह किसी राजा का उल्लेख है या नहीं; या है तो एज़ेस-प्रथम का या एज़ेस-द्वितीय

बीच रक्त-सम्बन्ध रहा हो, या वे एक-दूसरे के मित्र रहे हों, जैसे कि Hermaios तथा Kujula Kadphises थे ।[१]

राजा एज़ेस-प्रथम ने अपने समय में जो सिक्के ढलवाये थे, उनमें एक ओर यूनानी भाषा में अपना नाम तथा दूसरी ओर खरोष्ठी लिपि में Azilises का नाम था ।[२] साथ ही एक दूसरे प्रकार के सिक्के भी प्राप्त हुए, जिनमें एक ओर यूनानी भाषा में Azilises का नाम तथा दूसरी ओर खरोष्ठी लिपि में एज़ेस का नाम मिलता है । डॉक्टर भण्डारकर तथा स्मिथ, दोनों ने इस प्रकार के सम्मिलित सिक्कों से यह निष्कर्ष निकाला है कि स्वतंत्र रूप से शासक बनने के पूर्व Azilises एज़ेस का सहायक तथा उसके ही अधीन था । इसी प्रकार यह भी हो सकता है कि शासक बनने के पूर्व एज़ेस Azilises का सहायक और उसके अधीन रहा हो । इसलिए एज़ेस नाम के जिन राजाओं का उल्लेख ऊपर आया है, वे दो ही रहे होंगे; एक नहीं हो सकते । इन दोनों का उल्लेख एज़ेस-प्रथम और एज़ेस-द्वितीय के रूप में ही युक्तियुक्त है । ह्वाइटहेड के अनुसार, Azilises के चाँदी के सिक्के अधिक अच्छे तथा एज़ेस के समय की प्रणाली से कहीं पुरानी प्रणाली के मालूम होते हैं । एज़ेस के कुछ अन्य धातुपत्रों की तुलना Azilises के उन सिक्कों से की गई है, जिनमें एक ओर Zeus और दूसरी ओर Dioskouroi है । यदि Azilises एज़ेस के पहले हुआ था तो हमें एज़ेस-प्रथम और एज़ेस-द्वितीय के बजाय Azilises प्रथम या द्वितीय कहा जाना ही ज़्यादा ठीक मालूम होता है । ह्वाइटहेड ने अन्त में कहा है कि एज़ेस के वंशजों में जो भेद या अन्तर पाये जाते हैं, वे स्थानान्तरण के फलस्वरूप कहे जा सकते हैं । इन लोगों का काफ़ी समय तक शासन रहा ।[३] मार्शल[४] के अनुसार, तक्षशिला में प्राप्त सिक्कों

का है ? इसके अलावा यह भी निश्चित नहीं है कि एज़ेस मात्र एक शाही उपाधि ही थी, या और कुछ । कुछ विद्वानों के अनुसार, यह कोई शासक नहीं था । कलवान-शिलालेख के लिए देखिये *Ep. Ind.*, XXI. 251 ff; *IHQ*, 1932, 825; 1933, 141; *India in* 1932-33, p. 182.

१. *Cf.* Whitehead, p. 178; Marshall, *Taxila*, p. 16.

२. महादेव धरघोष औदुम्बर ने Azilises के सिक्कों की नक़ल की थी (*CHI*, 529; *ASI. AR*, 1934-35, pp. 29-30) । हमारे पास Maues और Azes राजाओं को नये कालक्रम में भी रखने के लिए कुछ तथ्य हैं । Kadphises I ने अपने सिक्कों पर Augustus या उसके उत्तराधिकारियों के सिक्कों पर अंकित मूर्त्ति की नक़ल की थी । शासक Azilises को भी इस प्रकार Julian Emperors या कुषाण के हमलों के बहुत पहले या बहुत बाद का नहीं कहा जा सकता ।

३. निम्न कोटि की कारीगरी का अर्थ है गन्धार से दूर होना, न कि पुरानापन (*Cf. CHI*, 569 f.) । Hoffmann और Sten Konow दो एज़ेस को नहीं मानते और एज़ेस को Azilises ही कहते हैं । मार्शल के अनुसार, Azilises उत्तरी-पश्चिमी भाग तथा कपिशी पर शासन करता था (*JRAS*, 1947, 25 ff) ।

४. स्मिथ जिन सिक्कों को एज़ेस-द्वितीय का कहता है, वे और बाद के ही मालूम होते हैं (*JRAS*, 1914, 976) । एस० कोनोव के मत के लिए *Ep. Ind.*,

से तो स्मिथ का यह कथन ही सत्य मालूम होता है कि Azilises एज़ेस-प्रथम के बाद और एज़ेस-द्वितीय से पहले हुआ था।

आठम नामक राजा के सोने के सिक्कों के मिलने से एक और नयी खोज का मार्ग प्रशस्त होता है। ह्वाइटहेड इस राजा को Azes और Azilises के ही वंश का मानता है। फिर भी, राजा आठम के समय का निर्धारण अनिश्चित ही है।

यद्यपि भारतीय-यूनानी शासक[1] ऐसा नहीं करते थे, तो भी शक-शासक अपने सिक्कों पर अपने को Basileus Basileon या प्राकृत में दूसरी ओर '**महाराजस राजराजस**' लिखवाते थे। वे '**महतस**' विशेषण भी धारण करते थे, जिसका यूनानी रूपान्तर Megaloy होता है। यूनानी सिक्कों पर हमें यह यूनानी रूपान्तर ही मिलता है। '**राजराज**', अर्थात् 'राजाओं के राजा' की उपाधि केवल कोरे बड़प्पन की उपाधि मात्र नहीं थी। मोगा के अधीन लिआक और पटिक, दो क्षत्रप या वाइसराय थे, और ये पश्चिमी पंजाब पर शासन करते थे। एज़ेस राजा के अधीन भी स्ट्रैटेगोस अस्पवर्मन नामक शासक था, ऐसा उल्लेख मिलता है। फ़ारस के बेहिस्तुन-शिलालेख में 'सत्रप' या 'क्षत्रप' उपाधि का उल्लेख 'क्षत्रपावन' के रूप में मिलता है, जिसका अर्थ 'राज्य का रक्षक' होता है।[2] 'स्ट्रैटेगोस' शब्द यूनानी है, जिसका अर्थ 'जनरल' होता है। इससे स्पष्ट है कि सीथियन लोग उत्तर-पश्चिमी भारत पर अपने क्षत्रपों तथा सैनिक गवर्नरों के माध्यम से राज्य करते थे। ऊपर के क्षत्रपों के अतिरिक्त भी सिक्कों तथा शिलालेखों से अन्य अनेक क्षत्रप-वंशों के अस्तित्व का प्रमाण मिलता है।

उत्तरी भारत के सत्रपों या क्षत्रपों को मुख्यतया तीन हिस्सों में बांटा जा सकता है—

१. कपिशी, पुष्पपुर तथा अभिसारप्रस्थ के क्षत्रप,
२. पश्चिमी पंजाब के क्षत्रप, तथा
३. मथुरा के क्षत्रप।

माणिकिआला-शिलालेखों में केवल कपिशी के क्षत्रप का ही उल्लेख मिलता हैं। कपिशी का क्षत्रप ग्रनवृयक (Granavhryaka)[3] का पुत्र था। क़ाबुल-म्युज़ियम में

1926, 274 और *Corpus*, II, i. xxxi-xxl देखिये। एज़ेस का नाम अन्य बाद के शासकों के साथ भी मिलता है, जबकि Azilises का नाम केवल Azes के ही साथ मिलता है। इससे सिद्ध है कि Azes नाम के अनेक राजा हुए थे।

[1] इस सम्बन्ध में युक्राटीड्स के सिक्के अपवादस्वरूप हैं। इसके एक सिक्के में 'Maharajas rajatirajas' Evukratidasa मिलता है (*Corpus*, II, i. xxix n)। See also Whitehead, p. 85.

[2] *Cf.* ऋग्वेद का 'क्षपावन्' (*Vedic Index*, I. 208)। 'राष्ट्रपाल' अर्थशास्त्र में, तथा मालविकाग्निमित्रम् या गुप्त-कालीन शिलालेखों का 'गोप्तृ' या 'देश-गोप्तृ'।

[3] Rapson, *Andhra Coins*, ci; *Ancient India*, 141; *JASB*, 1924, 14; *Corpus*, II. i. 150-51.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

रखे सन् ८३ के एक शिलालेख[1] में पुष्पपुर के क्षत्रप का नाम अंकित मिलता है। इस क्षत्रप का नाम तिरुवर्ण (Tiravharna) था। पुष्पपुर, अर्थात् 'फूलों का नगर' से पुष्करावती का संकेत मिलता है। पंजाब में मिली एक ताँबे की मुहर में अभिसार-प्रस्थ के क्षत्रप का नाम शिवसेन है।[2] इन तीनों क्षत्रपों द्वारा शासित प्रदेश सम्भवतः अशोक के समय के योन, गन्धार और कम्बोज प्रदेश थे।

पंजाब के क्षत्रप तीन वंशों के कहे जाते हैं—

१. कुसुलुआ या कुसुलुक-वंश—इस वंश में लिआक तथा उसके पुत्र पटिक (छहरत या क्षहरात-वंश के) शामिल थे। ये सम्भवतः चुक्ष (Chuksha)[3] ज़िले पर शासन करते थे। फ़्लीट के अनुसार, पटिक[4] नाम के दो व्यक्ति थे। किन्तु, मार्शल के अनुसार, पटिक नाम का केवल एक ही व्यक्ति वाइसराय या क्षत्रप था।[5] कुसुलुक का सत्रपाल-वंश मथुरा के क्षत्रपों से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित था।[6] लिआक कुसुलुक के सिक्कों से लगता है कि ये लोग जिस ज़िले के थे, वह पूर्वी गन्धार का एक भाग था, और यूक्राटीड्स (यूनानी शासक) के हाथ से शकों के हाथ आ गया था।[7] तक्षशिला से प्राप्त सामग्री के आधार पर कहा जा सकता है कि लिआक राजा मोगा का क्षत्रप था और उसका लड़का पटिक 'महादानपति' था।[8]

२. मनिगुल और उसका पुत्र जियोनिसेस या जिहोनिक सिक्कों के आधार पर इसे एज़ेस-द्वितीय के समय में पुष्करावती का क्षत्रप माना जा सकता है। किन्तु, मार्शल की १९२७[9] की एक खोज के अनुसार, जिहोनिक (Jihonika) शक-सम्वत् के १९१वें वर्ष में तक्षशिला के समीप चुक्ष का क्षत्रप था। इसका वास्तविक कार्यकाल अज्ञात है।[10] जियोनिसेस (Zeionises) का उत्तराधिकारी सम्भवतः कुयुल-कर (Kuyula Kara) था।[11]

---

[1] *Acta Orientalia*, xvi; Pars. iii, 1937, pp. 234 ff.

[2] *Corpus*, II. i. 103.

[3] Buhler, *Ep. Ind.*, IV, p. 54; S. Konow, *Corpus*, II. i. 25-28. स्टीन (Stein) के अनुसार, चुक्ष आजकल के Chach का ही पुराना नाम था। यह सम्भवतः अटक (Attock) ज़िले में था (*AGI*, 63, 126)।

[4] *JRAS*, 1907, p. 1035. तक्षशिला के लेखों मे से लिआक (Liaka) के होने का संकेत मिलता है (*Corpns*, II. i. 145)। एक लिआक का उल्लेख मानसेहरा (Mansehra) शिलालेख में मिलता है। हो सकता है कि यही लिआक पटिक (Patika) का पिता रहा हो (*Ep. Ind.*, XXI, 257)।

[5] *JRAS*, 1914, pp. 979 ff.

[6] *Cf*. Inscription G on the Mathura Lion Capital.

[7] Rapson, *Ancient India*, p. 154.

[8] *Ep. Ind.*, XXI, 257; *JRAS*, 1932, 953 n.

[9] *JRAS*, 1928, January, 137 f; *Corpus*, II. i, 81 f.

[10] *Ep. Ind.*, XXI, 255 f.

[11] *CHI*, 582 n, 588.

३. इन्द्रवर्मन का वश[1]—इश वंश में इन्द्रवर्मन, उसका लड़का अस्पवर्मन तथा अस्प का भतीजा शश आते हैं। अस्पवर्मन एज़ेस-द्वितीय तथा गोण्डोफ़र्न्स दोनों के अधीन एक गवर्नर था, जबकि शश, गोन्डोफर्न्स तथा पाकोर (Pakores) के अधीन था।

मथुरा के क्षत्रप

इस वंश के आरम्भिक शासकों के बारे में विश्वास किया जाता है कि वे हगान और हगामश के शासक थे। इसके बाद राजुवुल ने शासन सँभाला। सम्भवतः इसने पहले शाकल प्रदेश पर भी शासन किया था। एलन[2] के अनुसार, उसने बाद में मथुरा में अपने राज्य की स्थापना की थी। राजुवुल या राजुल की, एस० कोनोव[3] द्वारा तैयार की गई, वंश-परम्परा पाद-टिप्पणी में दी जा रही है।

तत्कालीन शिलालेखों तथा सिक्कों से राजुवुल या राजुल का अस्तित्व प्रमाणित होता है। मथुरा के निकट मोरा(Mora) में ब्राह्मी लिपि में एक शिलालेख प्राप्त हुआ है, जिसमें उसे 'महाक्षत्रप' कहा गया है। किन्तु, यूनानी रिकार्डों में कुछ ऐसे सिक्कों

---

[1] कुछ विद्वानों के अनुसार, 'इन्द्रवर्मन' विजयमित्र का पुत्र इत्रवर्मन था। विजयमित्र को वियकमित्र का उत्तराधिकारी माना गया है। अधिक विवरण के लिए Majumdar, *Ep. Ind.*, xxvi, 1 ff; Sircar, *Select Inscriptions*, 102 ff; *Ep. Ind.*, xxvi, 321; Mookerjee, *IC*, XIV, 4, 1948, 205 f. देखिये।

[2] *CIC AI.*, CXV.

[3] *Corpus*, II. i, 47.

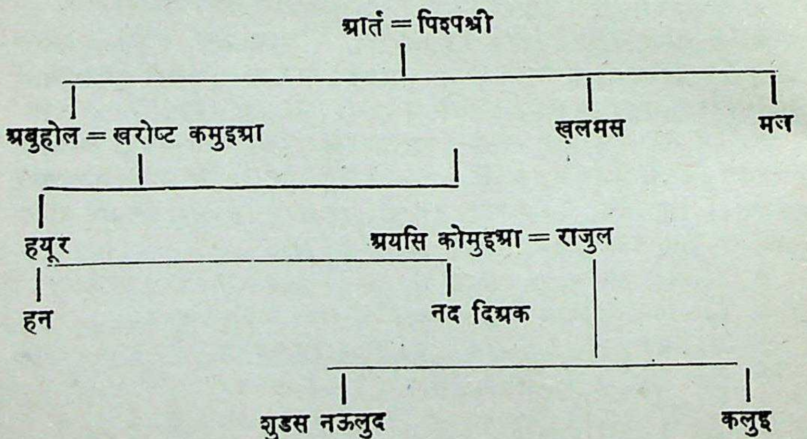

किन्तु, इस वश-वृक्ष को विद्वान् प्रामाणिक नहीं मानते। पुराने मत के अनुसार, खरोष्ट राजुवुल की पुत्री का लड़का था। इसके लिए देखिये Allan, *CCAI*, 185, 438 *Ante*.

का उल्लेख है जिसमें इस महाक्षत्रप को 'राजाओं का राजा' कहा गया है। इसका अर्थ यह भी हो सकता है कि कदाचित् उसने स्वयं को स्वतंत्र घोषित कर दिया था।

राजुवुल के बाद उसका पुत्र शुडस, सोमदास या शोडास उत्तराधिकारी हुआ था। मथुरा के एक शिलालेख (Mathura Lion Capital Inscription) में उसे 'क्षत्रव' (क्षत्रप) कहा गया है जो कि 'महाक्षत्रव' राजुल का पुत्र भी था। किन्तु, मथुरा वाले लेख के बाद प्राप्य ब्राह्मी लिपि के लेखों में उसे 'महाक्षत्रप' कहा गया है। ऐसे ही एक शिलालेख में उसका समय भी ७२वाँ[1] वर्ष दिया गया है, किन्तु सम्वत् अज्ञात है। इससे यह स्पष्ट है कि अपने पिता के काल में वह केवल 'क्षत्रप' ही था। किन्तु, उसकी मृत्यु के बाद, अर्थात् ७२वें वर्ष के कुछ पूर्व वह 'महाक्षत्रप' हो गया था। एस० कोनोव का यह भी मत है कि शोडास ने अपने शिलालेख में विक्रम-सम्वत्[2] के ७२वें वर्ष की तिथि स्वयं डलवायी थी। इस प्रकार उसके मत से यह ७२वाँ वर्ष ईसवी सन् का १५वाँ वर्ष है।

डॉक्टर आर० सी० मजूमदार ने उत्तरी भारत, अर्थात् तक्षशिला और मथुरा के क्षत्रपों को शक-सम्वत् से सम्बन्धित माना है और इनका समय ईसवी सन् की दूसरी शताब्दी के मध्य में रखा है। किन्तु, लगभग इसी काल में हुए तोलेमी ने तक्षशिला या मथुरा को इण्डोसीथियन, अर्थात् शक-राज्य के अन्तर्गत नहीं रखा है। उसके अनुसार, दूसरी शताब्दी में न तो मथुरा ही और न तक्षशिला ही शक-राज्य के अन्तर्गत था। तोलेमी के समय में Patolene (सिन्धु का डेल्टा), Abiria (पश्चिमी भारत का आभीर प्रदेश) तथा Syrastrene (काठियावाड़)[3] इण्डोसीथियन राज्य के अन्तर्गत पड़ता था। ये तथ्य शक-शासक रुद्रदामन-प्रथम के जूनागढ़-शिलालेख में भी मिलते हैं। रुद्रदामन ईसवी सन् की दूसरी शताब्दी के मध्य में हुआ था। तोलेमी के समय में तक्षशिला अर्सा (संस्कृत—उरशा)[4] राज्य के तथा मथुरा कस्पेरेओई (Kaspeiraioi)[5] राज्य के अन्तर्गत था। डॉक्टर मजूमदार का कहना है कि तोलेमी ने कस्पेरेओई के रूप में सम्भवतः माऊस और उसके उत्तराधिकारियों के समय के शक-राज्य का उल्लेख किया है, जिसमें मथुरा, तक्षशिला तथा उज्जयिनी को भी शामिल कर लिया गया था।[6] किन्तु यहाँ यह उल्लेखनीय है कि तक्षशिला, मथुरा तथा पश्चिमी भारत को एक ही राज्य के अन्तर्गत रखना तो दूर रहा, तोलेमी ने कस्पेरेओई और इण्डो-सीथियन राज्य को भिन्न-भिन्न कहा है।[7] ईसवी काल की द्वितीय शताब्दी के मध्य में

---

[1] रैप्सन के अनुसार ४२, किन्तु अधिक विद्वान् ७२ को उचित समझते हैं।

[2] *Ep. Ind.*, Vol. XIV, pp. 139-41.

[3] *Ind. Ant.*, 1884, p. 354.

[4] *Ind. Ant.*, 1884, p. 348.

[5] *Ind. Ant.* 1884, p. 350.

[6] *Journal of the Department of Letters*, University of Calcutta, Vol. I, p. 88 n.

[7] *Cf.* Ptolemy, *Ind. Ant.*, 1884, p. 354 तथा शक-शासक रुद्रदामन का जूनागढ़-शिलालेख।

इण्डोसीथियन राज्य ही शकों का वास्तविक राज्य था। फिर भी तत्कालीन कस्पेरेओई क्षेत्र में झेलम, रावी और चिनाब के उद्गम का निचला प्रदेश, अर्थात् कश्मीर और उसका समीपवर्त्ती भाग इसके अन्तर्गत रहा होगा।[1] किन्तु, इस बात का प्रमाण नहीं उपलब्ध हो सका है कि माऊस के वंशजों ने कश्मीर पर भी कभी राज्य किया था। केवल कनिष्क तथा उसके राजवंश के शासन-काल में ही कश्मीर और मथुरा एक ही राज्य के अन्तर्गत रहे हैं। Abbe Boyer ने कहा कि तोलेमी का 'कस्पेरेओई' सम्भवतः कुषाण राज्य की ओर संकेत करता है।

हमें मथुरा के शिलालेख (Mathura Lion Capital Inscription) से पता चलता है कि जिस समय शोडास केवल एक क्षत्रप था, कुसुलुक पटिक 'महाक्षत्रप' था। शोडास ७२वें वर्ष के आसपास महाक्षत्रप था। इस हिसाब से ऐसा लगता है कि इस वर्ष के पहले वह केवल क्षत्रप रहा होगा। अतः कुसुलुक पटिक भी ७२वें वर्ष से पूर्व शोडास का समकालीन महाक्षत्रप रहा होगा, किन्तु ७८वें वर्ष के तक्षशिला के धातुपत्र में पटिक को 'क्षत्रप' या 'महाक्षत्रप' नहीं कहा गया है। इसमें उसे 'महादानपति' तथा उसके पिता लिआक को क्षत्रपाल (Satrapal)[2] कहा गया है। डॉक्टर फ़्लीट[3] ने दो पटिक का उल्लेख किया है। इसके विपरीत, मार्शल और एस० कोनोव का मत है कि मथुरा-शिलालेख (Mathura Lion Capital Inscription) लिखवाने वाला महादानपति पटिक मथुरा का महाक्षत्रप कुसुलुक पटिक ही है। किन्तु ७२वें वर्ष के तथा ७८वें वर्ष के शिलालेख में एक ही सम्वत् का प्रयोग नहीं किया गया है। दूसरे शब्दों में जहाँ फ़्लीट दो व्यक्तियों की ओर संकेत करते हैं, वहाँ मार्शल और एस० कोनोव दो सम्वत् बताते हैं। किन्तु, इस सम्बन्ध में सचमुच इतनी कम सामग्री मिलती है कि कोई निष्कर्ष निकाल सकना बहुत ही दुष्कर कार्य है। फिर, चूंकि लिआक नाम के दो व्यक्ति मिलते हैं, इसलिए फ़्लीट के मत को निरर्थक भी नहीं कहा जा सकता। किन्तु, पटिक नाम के दो राजाओं के होने की बात को मान्यता देना कोई आवश्यक नहीं है, क्योंकि तक्षशिला-शिलालेख से पटिक के महाक्षत्रप होने की सम्भावना पर प्रतिबन्ध नहीं लगता। दूसरे, हमें यह भी याद रखना चाहिये कि इस सम्बन्ध में चाश्तान-वंश के उदाहरण मिलते हैं कि किसी महाक्षत्रप को उसके पद से अलग करके उसे नीचे का ओहदा[4] भी दिया जा सकता था, जबकि परिवार के

---

१. कश्यप देश ? राजतरंगिणी, 1.27; *IA*, IV, 227. विल्सन के अनुसार, कश्यपपुर ही कश्मीर का पुराना नाम था (*JASB*, 1899, Extra 2, pp. 9-13)। किन्तु, स्टीन (Stein) ने इसको अस्वीकार किया है, और कहा है कि कश्मीर ही पुराना कस्पेरेओई (Kaspeiraioi) प्रदेश रहा है। तोलेमी के साक्ष्य पर यह ज्ञात होता है कि Kaspeira प्रदेश मुल्तान के समीप स्थित था। अल्बेरूनी (I. 298) ने मुल्तान को ही कश्यपपुर कहा है।

२. Stein Konow, *Corpus*, Vol. II, Pt. I, 28; *Ep. Ind.*, XIX, 257.

३. *JRAS*, 1913, 1001 n.

४. *Cf*. Majumdar, *The Date of Kanishka*, *Ind. Ant.*, 1917.

अन्य लोग ऊँचे पदों पर रहते थे ।[1] कभी-कभी 'क्षत्रप' का उल्लेख बिना उसकी उपाधि के भी हो सकता था ।[2] इसलिए यह भी असम्भव नहीं कि ऊपर आये ७२वें तथा ७८ वें वर्ष एक ही सम्वत् के रहे हों । फिर भी दोनों पटिक सम्भवतः एक ही थे ।[3] यदि एस० कोनोव तथा मार्शल ने १३४वें वर्ष के कलवान-ताम्रपत्र तथा १३६वें वर्ष के तक्षशिला-शिलालेख में अज-अय (एज़ेस) नाम को ठीक-ठीक पढ़ा है तो हमें इस तथ्य का और उदाहरण मिल जाता है कि इस समय के शासकों का उल्लेख कभी-कभी बिना उनकी उपाधि के भी होता था ।

एस० कोनोव के अनुसार, खरोष्ट (Kharaosta) राजुवुल का श्वसुर तथा फ़्लीट के अनुसार, उसकी लड़की का लड़का, यानी नाती था । इस प्रकार, वह शोडास का भतीजा हुआ ।[4] मथुरा के शिलालेख (Mathura Lion Capital Inscription) में खरोष्ठ को 'युवराय खरोष्ठ' भी कहा गया है । एस० कोनोव[5] के विचार से वह मोगा के बाद 'राजाओं के राजा' के पद पर आया था । उसके दो प्रकार के सिक्के भी मिले हैं जिनमें एक ओर यूनानी लिपि तथा दूसरी ओर खरोष्ठी लिपि मिलती है । खरोष्ठी लिपि इस प्रकार है—'**क्षत्रपस प्र खरोष्टस आर्टस पुत्रस** ।' एस० कोनोव के अनुसार, ऊपर के 'प्र' से '**प्रचक्षस**' का संकेत मिलता है ।[6]

राजुवुल-वंश के सिक्कों में स्ट्रैटोस तथा मथुरा के हिन्दू-राजाओं के सिक्कों की नक़ल मिलती है । इससे यह भी लगता है कि सीथियन-शासकों ने यमुना की घाटी में भी यूनानी और हिन्दू शासन को समाप्त कर दिया था ।

वोगेल (Vogel) ने मथुरा के समीप गणेश्रा स्थान से एक अधूरे शिलालेख का पता लगाया है जिसमें क्षहरात के क्षत्रप-वंश का नाम 'घटाक' दिया गया है ।[7]

---

[1] Rapson, *Coins of Andhra Dynasty*, etc. cxxiv f.

[2] Andhau Inscriptions.

[3] राजतरंगिणी में एक ऐसा उदाहरण है जिसके अनुसार पुत्र के बाद पिता उसका उत्तराधिकारी राजा हुआ था (राजा पार्थ) । एक राजा ने अपने पुत्र के पक्ष में सिंहासन छोड़ दिया था, किन्तु फिर राजा बन गया था । राजा कलस ने अपने पिता के साथ-साथ राज्य किया था । जोधपुर के राजा मानसिंह का भी उदाहरण हमारे सामने है । इस संबंध में विजयादित्य-सप्तम (*Eastern Chalukya*, D. C. Ganguli, p. 104) तथा गुजरात के ज़ाफ़रखां का भी उदाहरण दिया जा सकता है (*Camb. Hist. Ind.*, III. 295) ।

[4] *JRAS*, 1913, 919, 1009.

[5] *Corpus*, 36.

[6] *Corpns*, xxxv. 'प्रचक्षस' (=epiphanous, 'of the gloriously manifest one') स्ट्रैटो-प्रथम तथा Polyxanos के सिक्कों पर भी मिलता है । हो सकता है कि 'सत्रप' (क्षत्रप) शब्द का संस्कृत रूपान्तर 'प्रखर ओजस' (of burning effulgence) रहा हो ।

[7] *JRAS*, 1912, p. 121.

उत्तरी क्षत्रपों की राष्ट्रीयता

कनिंघम का कहना है कि मथुरा के शिलालेख (Mathura Lion Capital Inscription) में **'सर्वस सकस्तनस पुयए'** से इस बात का स्पष्ट प्रमाण मिलता है कि राजुवुल, राजुल, शोडास तथा अन्य सम्बन्धित क्षत्रप शक जाति के थे। डॉक्टर थॉमस का कथन है कि उत्तरी भारत के क्षत्रप लोग पार्थियन तथा शकों के संयुक्त राज्य के प्रतिनिधि थे। इस बात की पुष्टि में यहाँ इस बात का उल्लेख किया जा सकता है कि तक्षशिला के पटिक ने—जिसका नाम एक फ़ारसी नाम है—अपने राजा के रूप में मोगा नामक शासक का उल्लेख किया है, जबकि मोगा एक शक नाम है। Lion Capital में फ़ारसी तथा शक, दोनों प्रकार के नाम मिलते हैं।[1] किन्तु यह भी ध्यान में रखने की बात है कि हरिवंश[2] के एक अनुच्छेद में पह्लवों या पार्थियनों को 'श्मश्रुधारिण:' (दाढ़ी वाले) भी कहा गया है।[3] इस कसौटी पर कसने पर राजुल और नहपान-वंश के शासक—जिन्हें पार्थियन कहा गया है—वस्तुत: उस जाति से सम्बन्धित नहीं माने जा सकते, क्योंकि सिक्कों पर अंकित चित्रों में उनकी दाढ़ी नहीं है। अत: वे निश्चित रूप से शक जाति के लोग थे।[4]

२. पह्लव या पार्थियन[5]

यूक्राटीड्स के समय में ही पार्थिया के राजा मिथ्राडेट्स ने सम्भवत: पंजाब और सिन्ध के कुछ भागों पर अधिकार कर लिया था और माऊस और मोगा वंश के शक राजाओं के समय शक-पह्लव-रक्त के लोग उत्तरी भारत में क्षत्रप के रूप में शासन करते थे। परन्तु, यह तथ्य भी ध्यान देने योग्य है कि चारक्स के इसीदोर (Isidore of Charax) ने काबुल की घाटी, सिन्ध तथा पश्चिमी पंजाब को पार्थियन तथा पह्लव राज्य का अंग नहीं कहा। इसीदोर सम्भवत: आगस्टस का अल्पवयस्क समकालीन था, और वह २६ वर्ष ईसापूर्व के पहले नहीं हुआ था। उसका उल्लेख प्लिनी ने भी किया है। इसीडोर ने पार्थियन-राज्य के सुदूर पूर्वी हिस्सों में हेरात (Aria), फ़राह (The country of the Anauoi, a segment of Aria, *i.e.*, the Herat Province), हेमन झील के ज़िले के और हेलमण्ड (Helmund—Drangiana, और

---

१. *Ep. Ind.*, Vol. IX, pp. 138 ff; *JRAS*, 1906, 215 f. For Sten Konow's views, see *Corpus* II, i. xxxvii.

२. I. 14, 17.

३. यह अनुच्छेद वायु पुराण (Ch. 88, 141) में भी मिलता है।

४. *JRAS*, 1913, between pp. 630-631.

५. पार्थियन (पार्थव या पह्लव) ईरानी थे, तथा आजकल के मज़न्दरान तथा खुरासन ज़िलों की सीमा पर बसे थे। २४९-२४८ ईसापूर्व के लगभग इन लोगों ने सीथियन अर्षक के नेतृत्व में विद्रोह भी किया था (Pope and Ackerman, *A Survey of Persian Art*, p. 71)।

Sakasthana) के बीच के ज़िले तथा कन्दहार (Arachosia or 'White India') का उल्लेख किया है। ईसवी काल की प्रथम शताब्दी के मध्य में कन्धार पर पार्थियन जाति का अधिकार हो चुका था। सन् ४३-४४ ईसवी में जबकि टीना का अपोलोनियस (Apollonios of Tyana) तक्षशिला आया था, यहाँ एक पार्थियन राजा फ़्रोटोस (Phraotos)[1] राज्य करता था। वह पार्थिया तथा बेबीलोन के सम्राटों के अधीन नहीं था (सी० ३९-४७/४८ ईसापूर्व)[2] और स्वयं इतना शक्तिशाली था कि सिन्धु के क्षत्रप उसकी अधीनता स्वीकार करते थे। ईसाई विद्वानों ने गुन्दफर या गुदनफ़र (Gundaphar *or* Gudnaphar) नामक एक भारतीय राजा का उल्लेख किया है। उपर्युक्त पार्थियन राजा के भाई का 'गद' नाम मे उल्लेख आया है। ये लोग पहली शताब्दी में हुए थे[3] तथा सेण्ट टॉमस ने सम्भवतः इनका धर्म-परिवर्त्तन भी कराया था। हमें अपोलोनियस के जीवन-चरित्र के लेखक के सम्बन्ध में कोई स्वतन्त्र प्रमाण नहीं मिलता। अज्ञात सम्वत् के १०३सरे वर्ष के प्रतीत होने वाले रिकार्ड 'तख़्त-इ-बाही' से स्पष्ट होता है, कि पेशावर ज़िले में गुदुवर (Guduvhara) या गोण्डोफर्न्स नाम का एक राजा हुआ था। कुछ सिक्कों पर भी कुछ विद्वानों के अनुसार, गोण्डोफर्न्स तथा उसके भाई 'गद' का नाम मिलता है।[4] रैप्सन के अनुसार, दोनों भाई आर्थेन्स (Orthagnes or Verethragna) के अधीन थे। एस० कोनोव ने गोण्डोफ़र्न्स को ही आर्थेन्स नामधारी भी कहा है। हर्ज़फ़ेल्ड के मतानुसार, आर्थेन्स, वार्डेन्स का लड़का था तथा उसने वोलग्रमेस (Volagases) प्रथम (५५ ईसवी) के सिंहासन का अधिकारी होने का दावा किया था।[5] इसका उल्लेख टेसीटस ने भी किया है। डॉक्टर फ़्लीट ने तख़्तवारी की तिथि के सम्बन्ध में मालव-विक्रम सम्वत् का उल्लेख किया है। इस रिकार्ड का समय इस इतिहासकार ने ४७ ईसवी माना है।[6] डॉक्टर फ़्लीट

---

[1] अप्रतिहत (Gondophernes) according to Herzfeld and Tarn (*Greeks*, 341)।

[2] Debevoise, *A Political History of Parthia*, p. 270.

[3] सेन्ट टॉमस की मूल पुस्तक तीसरी शताब्दी की मालूम होती है (*JRAS*, 1913, 634); *Cf. Ind. Ant.*, 3. 309.

[4] Whitehead, pp. 95, 155. Gondophernes = Vindapharna, "Winner of glory" (Whitehead, p. 146, Rapson and Allan)। इस राजा ने 'देवव्रत' की उपाधि भी धारण की थी। S. Konow ने फ़्लीट की तरह सिक्कों पर मिले 'गुदन' शब्द को 'गोण्डोफर्न्स' वंश के ही किसी राजा का नाम माना है (*Corpus*, II. i, xlvi)।

[5] *Corpus*, xlvi; *The Cambridge Shorter History of India*, 70.

[6] *JRAS*, 1905, pp. 223-235; 1906, pp. 706-710; 1907, pp. 169-172; 1013-1040; 1913, pp. 999-1003. कनिंघम और डॉउसन (*IA*, 4. 307) के तत्सम्बन्धी मतों तथा खलात्से (Khalats) और तक्षशिला के शिलालेखों की प्राप्ति से फ़्लीट का कथन तब तक अर्द्धसत्य प्रतीत होगा, जब तक कि हम दो शक-पह्लव-संवतों का अस्तित्व न मानें। डॉक्टर जायसवाल के

के मतानुसार, उपर्युक्त १०३वें वर्ष को विक्रम संवत् का ५८वाँ वर्ष मानने में कोई हिचकिचाहट नहीं होनी चाहिये। इस मत के अनुसार, गोण्डोफ़र्न्स का समय ईसवी सन् का ४७वाँ वर्ष पड़ता है तथा गोण्डोफ़र्न्स टॉमस का समकालीन सिद्ध हो जाता है।

आरम्भ में गोण्डोफ़र्न्स का राज्य-विस्तार गन्धार तक नहीं था। ऐसा लगता है कि आरम्भ में उसका शासन केवल दक्षिणी अफ़गानिस्तान[1] तक ही सीमित था। परन्तु अपने शासन-काल के २६वें वर्ष के पहले ही उसने पेशावर पर अधिकार कर लिया था। यद्यपि उसने राजा एज़ेस के कुछ प्रान्तों पर अधिकार कर रक्खा था तो भी उसके पूर्वी गन्धार के जीतने का कोई प्रमाण नहीं मिलता। अस्पवर्मन के सिक्कों से प्रकट होता है कि एज़ेस-द्वितीय से भी इसने शासन हस्तगत किया था। पहले अस्पवर्मन ने एज़ेस-द्वितीय की अधीनता स्वीकार की थी, किन्तु बाद में वह गोण्डोफ़र्न्स का मातहत शासक हो गया था। पेरीप्लस के लेखक ने सिन्धु घाटी के निचले भाग से शकों के स्थान पर पार्थियन जाति के प्रभुत्व की स्थापना का प्रमाण दिया है। इस लेखक के अनुसार, उस समय (सन ६० से ८० ई० के लगभग) सिन्धु घाटी के निचले भाग के सीथियन राज्य की राजधानी मिन्नगर पर पार्थियन शासकों का अधिकार था जो एक दूसरे को वहाँ से हटाने का सतत् प्रयास कर रहे थे। यदि १३४वें वर्ष के कलवान तथा १३६वें वर्ष के तक्षशिला-लेखों को एस० कोनोव तथा सर जान मार्शल ने सही-सही पढ़ा है (Aja, Aya, etc.) तो यह हो सकता है कि पूर्वी गन्धार में शक शासन जीवित रहा, जबकि पेशावर और सिन्धु घाटी के निचले भाग पर पार्थियनों का प्रभुत्व हो गया था।[2] किन्तु Aja-Aya या Azes के साथ कोई प्रतिष्ठा-सूचक शब्द नहीं मिलते। इसके अतिरिक्त १३६वें वर्ष में तक्षशिला में बुद्ध के अवशेषों की स्थापना के उल्लेख के साथ 'महाराज राजातिराज देवपुत्र कुषाण' का भी उल्लेख मिलता है। इससे लगता है कि १३४वाँ तथा १३६वाँ—दोनों ही वर्ष एज़ेस के 'प्रवर्द्धमान विजय-राज्य' (increasing and victorious region) से बिलकुल सम्बन्ध नहीं रखते, बल्कि उस समय से सम्बन्धित हैं जबकि एज़ेस का राज्य इतिहास की

अनुसार, गोण्डोफ़र्न्स का समय २० ईसापूर्व हो सकता है, किन्तु यह तिथि ईसवी सन् से मेल नहीं खाती।

[1] *JRAS*, 1913, 1003, 1010.

[2] फ़्लीट द्वारा '**स १३६ अयस अषडस मसस, आदि**' की व्याख्या के लिए देखिये *JRAS*, 1914, 995 ff; Also *Calcutta Review*, 1922, December, 493-494. एस० कोनोव के अनुसार, किसी समय '**आद्यस्य**' (प्रथम) के स्थान पर '**अयस**' का ही प्रयोग होता था। यह यहाँ पर '**अषडस**' का विशेषण है। किन्तु, कलवान-शिलालेखों की प्राप्ति के बाद उसने अपना मत बदल दिया और अब उसका मत है कि 'अयस', 'अजस' से एज़ेस के संवत् का कोई सम्बन्ध नहीं है। यह पार्थियन शासकों से सम्बन्धित है (*Ep. Ind.*, xxi. 255 f.)। उसने १३४वें तथा १३६वें वर्ष का, ५८ ईसापूर्व के साथ, उल्लेख किया है।

सामग्री (अतीत राज्य) बन चुका था। जानीबिघा-शिलालेख के उल्लेख '**लक्ष्मणसेनस्य = अतीत राज्ये सं ८३**' से भी प्रायः उसी समय का बोध होता है ।[1]

जब अपोलोनियस ने भारत की यात्रा की थी, उस समय क़ाबुल की घाटी का यूनानी राज्य प्रायः समाप्त हो चुका था । जस्टिन के अनुसार, पार्थियनों ने यूनानी बैक्ट्रियनों को हराया था । मार्शल[2] के अनुसार, पार्थियन तथा कुषाण, दोनों क़ाबुल की घाटी को हथियाना चाहते थे । यह कथन फ़िलोस्ट्रैटो के कथन से काफ़ी साम्य रखता है । उसके अनुसार, ४३-४४ ईसवी में भारत की सीमा पर रहने वाले बारबैरियन तथा पार्थियन राजाओं में काफ़ी ज़ोर की लागडांट रहा करती थी ।

गोण्डोफ़र्न्स के साथ उसका भतीजा अब्दगसेस (Abdagases) (दक्षिणी अफ़गानिस्तान में) उसके सेनापति अस्पवर्मन और सस तथा गवर्नर सपेदन (Sapedana) तथा सतवस्त्र (Satavastra), ये सब के सब उसके सहायक शासक थे ।

पार्थियन सम्राट् की मृत्यु के बाद उसका साम्राज्य छोटे-छोटे टुकड़ों में बँट गया था । इनमें से एक राज्य, सम्भवतः सीस्तान पर सनबरसे, दूसरे (कन्धहार और पश्चिमी पंजाब के समीपवर्ती भाग) पर पकोरस तथा अन्य भागों पर ऐसे राजकुमार राज्य करने लगे थे जिनका उल्लेख मार्शल द्वारा तक्षशिला में प्राप्त सिक्कों में मिलता है । ऐसे ही राजकुमारों में सस अथवा ससन नाम का राजा भी था, जिसने पकोरस की सार्वभौमिकता को स्वीकार कर लिया था । 'पेरीप्लस' के निम्न अनुच्छेद में पार्थियन राजाओं के आपसी झगड़ों का कुछ संकेत मिलता है—

"बारबैरिकम के पूर्व में एक छोटा-सा द्वीप है, जिसके बाद सीथिया का प्रमुख नगर मिन्नगर है । यह नगर पार्थियन राजाओं के अधिकार में था जो कि आपस में ही एक-दूसरे को सत्ताच्युत करने के चक्कर में रहा करते थे ।"

पुरालेखन-सामग्री (और कुछ मामलों में मुद्राएँ) इस बात को सिद्ध करती हैं कि कुषाण जाति ने अफ़गानिस्तान, पंजाब तथा सिन्ध से पह्लवों या पार्थियनों को निकाल कर वहाँ अपना राज्य स्थापित किया था । इस जाति को कुषाण, खुषाण या घुषाण भी कहा गया है ।[3] हमें ज्ञात है कि १०३वें वर्ष में (जो कि फ़्लीट के अनुसार, ईसवी सन् का ४७ वर्ष था) गोण्डोफ़र्न्स पेशावर पर राज्य करता था । परन्तु पंजतर-शिलालेख से पता चलता है कि १२२वें वर्ष में इस भाग की प्रभुसत्ता गुषाण या कुषाण वंश के हाथों में चली गई ।[4] १३६वें वर्ष में कुषाण-प्रभुसत्ता का विस्तार तक्षशिला

---

[1] Raychaudhuri, *Studies in Indian Antiquities*, pp. 165 f.

[2] *ASI. AR*, 1929-30, 56 ff.

[3] इस वंश के नामों के लिए R. Schafer, *JAOS*, 67. 4, p. 296 ff; *AOS*, 65. 71 ff देखिये ।

[4] फ़िलोस्ट्रैटोस (Philostratos) से हमें यह पता चलता है कि अपोलोनियस (Appollonios) (४३-४४ ईसवी) के समय में तक्षशिला के पार्थियन राज्य के सीमावर्ती निवासी बारबैरियन (कुषाण ?) लोग पहले से ही फ्रोटेस (Phraotes) से लड़ते-झगड़ते रहते थे, तथा उसके राज्य पर आक्रमण करते रहते थे (*The Life of Appolonius*, Loeb Classical Library, pp. 183 ff) ।

तक हो गया । इस वर्ष के एक लेख से पता चलता है कि 'महाराज राजातिराज देवपुत्र' खुषाण के स्वास्थ्य की कामना करते हुए उस वर्ष महात्मा बुद्ध की अस्थियाँ वहाँ लाकर दफ़नाई गई थीं । सुई विहार तथा मोहन-जोदड़ो के ख़रोष्ठी-शिलालेखों से भी यह सिद्ध होता है कि कुषाण-वंश ने सिन्धु की निचली घाटी पर भी अधिकार कर लिया था । चीनी लेखक पान-कू (मृत्यु ९२ ई०) ने लिखा है कि यू-ची ने काओ-फ़ू या क़ाबुल पर अधिकार कर लिया था । इससे लगता है कि जिस जाति से ये कुषाण लोग सम्बन्धित थे उस जाति का सन् ९२ ईसवी के पहले क़ाबुल पर कब्ज़ा रहा होगा । इसमें कोई शक नहीं कि 'काओ-फ़ू' 'ताउ-मी' शब्द का ही बिगड़ा हुआ रूप है । किन्तु, कैनेडी के मतानुसार, यह ग़लती सम्भव न हुई होती, यदि पान-कू के समय में यू-ची का काओ-फ़ू पर अधिकार न रहा होता ।[1] उल्लेखनीय बात यह है कि ९२ ईसवी के चीनी लेखक के अनुसार, इस समय से पूर्व ही यूची का काओ फ़ू पर अधिकार था । यदि एस० कोनोव पर विश्वास किया जाय तो कुषाण-वंश का भारतीय सीमा के प्रदेशों से संबंध तब था, जब कि गोण्डोफ़र्नस राज्य करता था । एस० कोनोव ने 'तख़्त-इ-बाही' अभिलेख की पाँचवीं पंक्ति में आये **'एर्झुण कपस पुयए'**[2] में उल्लिखित राजकुमार कप को कुजुल काडफ़िसेस माना है । कहा जाता है कि इस कुषाण राजा ने हर्मेओस के पश्चात् क़ाबुल की घाटी पर राज्य किया था । कुजुल काडफ़िसेस को ही कुषाण राजा[3] कियू-त्स्यू-किओ (K'iu-tsiu-K'io) भी कहा गया है जिसने काओ फ़ू (क़ाबुल), पो-ता तथा किपिन पर अधिकार कर लिया था ! प्राप्त सिक्कों से ऐसा लगता है कि यह कुषाण राजा सम्भवतः हर्मेओस का मित्र था और दोनों ने संयुक्त मुद्राएँ भी अंकित करायी थीं ।[4] इस बात के भी संकेत मिलते हैं कि प्रारम्भ में काडफ़िसेस गन्धार के पार्थियन शासकों का मित्र था, परन्तु पार्थियनों[5] द्वारा हर्मेओस के राज्य पर अधिकार कर लिये जाने पर वह उनका शत्रु बन बैठा ।

---

[1] *JRAS*, 1912, pp. 676-678; *JRAS*, 1912, p. 685 n..

[2] *Ep. Ind.*, XIV, p. 294; XVIII (1926), p. 282; *Corpus*, II, i, 62. इस सम्बन्ध में यह याद रखना आवश्यक है कि ४३-४४ ईसवी में तक्षशिला के पार्थियन राजा ने कुछ बारबैरियनों की भी सहायता ली थी । ये देश की चौकसी का काम करते थे । हो सकता है, बारबैरियन लोग कभी-न-कभी कुषाणों के मित्र भी रहे हों । इस राजा के समय को ६० ईसवी के बाद नहीं रखा जा सकता (*JRAS*, 1913, 918) ।

[3] या इस राजा का कोई पूर्वज रहा होगा (*Cf.* Tarn, *The Greeks*, pp. 339, 343) ।

[4] Pedigree coins according to Tarn.

[5] पार्थियनों की विजय के पूर्व कपिशी राज्य Maues और Spalirises की अधीनता स्वीकार करता था (*CHI*, 590 f) । फ़्रोटेस (Phraotes) के शत्रु कुषाण लोगों ने सम्भवतः क़ाबुल से अपने प्रभुत्व को नष्ट होते देखकर वहाँ यूनानी शासन की पुनर्स्थापना कर दी थी ।

उसने उन पर आक्रमण कर दिया और अन्त में भारत के उत्तर-पश्चिमी सीमाक्षेत्र पर उसने अधिकार कर लिया।

३. महान् कुषाण

चीनी इतिहासकारों से हमें पता चलता है कि कुषाण जाति यह्-ची (Yueh-chi) अथवा यू-ची (Yue-chi) जाति की ही शाखा थी। वे कुइ-शुआंग (Kuei-shuang or Kouei-choung) राज्य पर शासन करते थे। किंग्समिल के अनुसार, 'यू-ची' शब्द का आधुनिक उच्चारण 'यूती' (Yu'e-ti) होना चाहिए। श्री लेवी एवं अन्य फ़्रांसीसी इतिहासकारों ने इस जाति को (Yue-tchi अथवा Yu'e-tchi) कहा है।

सू-म-चीन (Ssu-ma-ch'ien) नामक चीनी इतिहासकार, जिसने प्रसिद्ध चीनी दूत चांग-कीईन (Chang-k'ien) की यात्राओं का विस्तृत विवरण दिया है, से पता चलता है कि १७४ तथा १६५ ईसवी पूर्व में यू-ची जाति के लोग त्सेन-हुआंग (Tsenn-Hoang or Tun-huang) देश और चीनी तुर्किस्तान[1] की इस्सीकुल झील के दक्षिण और पूर्वी भागों में फैली K'i-lien अथवा Tien-chan पर्वत-श्रेणियों के बीच बसे हुए थे। उन्हीं दिनों यूचियों को ह्यंगनू-ने न केवल हरा कर देश-निकाला दे दिया, वरन् उनके सम्राट् की हत्या कर उसके कपाल का मधुपात्र बना डाला। पति की मृत्यु के बाद उसकी विधवा रानी ने समस्त शक्ति अपने हाथों में केन्द्रित कर ली। उसके नेतृत्व में यूची पश्चिम की ओर धीरे-धीरे बढ़े तथा वु-सुन (Wu-sun) पर आक्रमण करके वहाँ के राजा का वध कर दिया।[2] यहाँ की लूटमार के बाद उन्होंने इली (Ili) के किनारे तथा सीर दरया (नदी) (Syr Darya) के मैदान में बसने वाले शकों पर आक्रमण करके उनके शासक को किपिन (कपिशा-लम्पाक-गन्धार) में शरण लेने पर विवश कर दिया।[3]

इसी बीच वु-सुन के वधित राजा का पुत्र वयस्क हो चुका था, अतः उसने ह्युंगनू की सहायता से यूचियों को सुदूर पश्चिम में ताहिया (Ta-hia) राज्य तक

---

[1] स्मिथ (*EHI*,^{4} p. 263) का कहना है कि उन लोगों ने उत्तर-पश्चिम चीन के कन्सुह (Kansuh) प्रान्त पर अधिकार कर लिया था। देखिये *CHI*, 565; Halfen, *J. Am. Or. Soc.* 65, pp. 71 ff. For the Hiung-nu-Hun Problem, *cf.* Stein, *IA*, 1905, 73 f, 84.

[2] यूचियों की मुख्य शाखा इस्सीकुल झील को पार कर पश्चिम की ओर बढ़ी, बाक़ी लोग दक्षिण की ओर जाकर तिब्बत की सीमा पर बस गए। इन लोगों को 'Little Yueh-chi' के नाम से पुकारा जाने लगा। इन्होंने गन्धार में स्थित पुरुषपुर को अपनी राजधानी बनाया (Smith, *EHI*^{4}, 264; S. Konow, *Corpus*, II. i. lxxvi।

[3] घुमक्कड़ शक की एक शाखा ने फ़रग़ाना (ता-युआन) को घेर लिया— C. 128 B. C. Tarn, *Greeks*, 278 n. 4, 279।

भगा दिया। ताहिया के निवासी शान्तिप्रिय व्यापारी थे, और युद्धविद्या में दक्ष न होने के साथ-ही-साथ पारस्परिक एकता के सूत्र में न बँधे रहने के कारण यूचियों द्वारा सरलतापूर्वक पराजित कर दास बना लिये गये थे। साथ ही उन्होंने वेयी (Wei) के उत्तर में सोग्डियाना (आधुनिक बुख़ारा) के भूभाग में अपनी राजधानी स्थापित कर ली थी। ईसापूर्व १२८-१२६ में जब चांग-कीन ने इधर का दौरा किया, उस समय भी यह राजधानी अपनी प्राचीन अवस्था में ही विद्यमान मिली।[1]

सू-म-चीन की (ई० पू० ९१ के पूर्व लिखी) पुस्तक 'से-के' अथवा 'शी-की' में चांग-कीन की रोमांचकारी यात्रा का पूर्ण वर्णन है। इसी कथा को पान-कू (Pan-Ku) ने अपनी पुस्तक 'तीन हॉन-शू' (*Ts'ien Han-shu*) अथवा *Annals of the First Han Dynasty* में फिर से लिपिबद्ध किया। इस पुस्तक में हमें ईसापूर्व २०६ से लेकर सन् ९ अथवा २४ ई० तक का वर्णन मिलता है। सन् ९२ ई० में पान-कू की मृत्यु के बाद उसकी बहन ने यह पुस्तक पूरी की और इसमें निम्नलिखित तीन महत्त्वपूर्ण बातों का समावेश किया—

(१) ऑक्सस[2] के उत्तर में स्थित कीन-ची अथवा कीन-शी नामक नगर को ता-यूची (Ta-Yueh-chi) ने अपने साम्राज्य की राजधानी बनाई। इसी की दक्षिणी सीमा पर किपिन (Kipin) नामक नगर स्थित था।

(२) यू-ची जाति वाले अब ख़ानाबदोश अथवा घुमक्कड़ नहीं थे।

(३) यू-ची साम्राज्य का विभाजन अब पाँच प्रदेशों में हो चुका था। वे पाँचों प्रदेश थे—(i) **हीउ-मी** (Hi (eo) u-mi)—यह प्रदेश सम्भवतः पामीर तथा हिन्दूकुश के मध्य स्थित वाकहान[3] देश था; (ii) **चॉऊआंग्मी अथवा शुआंग्मी** (Chouangmi or Shuangmi)—यह प्रदेश वाकहान तथा हिन्दूकुश के दक्षिण में स्थित चितराल था; (iii) **कुइ-चुआंग अथवा कुइ-शुआंग**—कुषाण-वंश का मुख्य प्रदेश, जो चितराल तथा पंजिषर देश के मध्य स्थित था; (iv) **हितुन** (Hithum) (पंजिषर-स्थित परवान); और (v) **कॉउ-फ़ॉउ** (क़ाबुल)।[4]

---

[1] *JRAS*, 1903, pp. 19-20; 1912, pp. 668 ff; *PAOS*, 1917, pp. 89 ff; Whitehead, 171; *CHI*, 459, 566, 701; Tarn, *Greeks*, 84, 274 n, 277; S. Konow, *Corpus*, II. i. xxii-xxiii, liv, lxii.

[2] *Cf*. *Corpus*, II. i. liv.

[3] सम्भवतः वॉकहान के शासक 'बकनपति' का वर्णन '**महाराज राजातिराज देवपुत्र कुषाणपुत्र शाहि वामतक्ष(म)**' (जिसकी तिथि अज्ञात है) के लेखों में मिलता है। 'देवपुत्र' की उपाधि से ही स्पष्ट है कि उनका सम्बन्ध कुषाण-वंश के राजकुमारों से है, न कि काडफ़िसेस-वंश के राजाओं से (*ASI*, 1911-12, Pt. I. 15; 1930-34, Pt. 2. 288)।

[4] आगे चलकर एक इतिहासकार ने लिखा कि तॉउ-मी को ग़लती से काउ-फ़ाउ कहा गया है, यद्यपि यह काबुल से अधिक दूर नहीं है (*JRAS*, 1912, 669)। उपर्युक्त कथन की पुष्टि के लिए देखिये, *Corpus*, II, i. lvi; *JRAS*, 1903, 21;

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आगे चलकर यूचियों के सम्बन्ध में, फ़ॉनई द्वारा रचित पुस्तक (*Hou Han-shu or Annals of the Later Han Dynasty*) से बहुत कुछ ज्ञात होता है। इसमें सन् २५ ई० से सन् २२० ई० तक का वर्णन है। फ़ॉनई ने पान-यंग (*cir.* A.D. 125) तथा अन्य व्यक्तियों[1] के आधार पर अपनी पुस्तक की रचना की थी। सन्-४४५ ई० में उसकी मृत्यु हो गई। उस समय लानशी (चिनशी)[2] नगर का प्राचीन रूप ताहिया सम्भवतः यूचियों की राजधानी था। ताहिया नगर ऑक्सस के उत्तर में स्थित था। फ़ॉनई ने यूचियों द्वारा इस नगर की विजय का वर्णन इस प्रकार किया है—

"प्राचीन काल में ह्युंग-नू ने यूचियों को पराजित किया। इसके उपरान्त वे ताहिया पहुँचे, जहाँ उसे आपस में पाँच शी-हॉउ (*Hsi-h* (*e*)*ou*) अथवा याबगूस[3] में बाँट लिया। ये पाँचों थे—शिउमी, शुआंग्मी, कुइ-शुआंग, सीतुन और तूमी। लगभग १०० वर्षों के बाद शी-हॉउ कुई-शुआंग (कुषाण) वंश के क्यु-ज्यु-कियो ने आक्रमण करके अन्य चारों को पराजित कर अपने आप को वहाँ का नरेश (वांग) घोषित किया। उसने न्गान्सी (आर्सेकिड देश, अर्थात् पार्थिया) पर आक्रमण कर कॉउ-फू (क़ाबुल) पर अधिकार कर लिया। उसने पोता[4] और किपिन राज्यों को पराजित कर इन समस्त देशों पर अपना एकाधिपत्य स्थापित कर लिया। क्यु-ज्यु-कियो अस्सी वर्ष से अधिक आयु तक जीवित रहा। उसकी मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र येन-काऊ-चेन सिंहासनारूढ़ हुआ। उसने अपने शासन-काल में तीन-चाऊ (बड़ी नदी के तट पर स्थित भारत, स्पष्ट है कि इसका संकेत फ़िलोस्ट्रैटो द्वारा इंगित तक्षशिला राज्य की ओर है) को जीत कर शासन के लिए अपना प्रतिनिधि छोड़ दिया। अब यूची अत्यन्त शक्तिशाली जाति बन गई, और अन्य सभी देश वहाँ के लोगों को उनके राजा के नाम

1912, 669. एस० कोनोव का कहना है कि कुइ-शुआंग गंधार अथवा इसी के उत्तर-स्थित देश से सम्बन्धित है (*Ep. Ind.*, XXI, 258)।

[1] *Cf.* S. Konow, *Corpus*, liv—"यह घटना सन् २५-१२५ ई० के बीच की है, जिसका वर्णन फ़ान-ई ने किया है। राजा न्गान (Ngan) (१०७-२५) की मृत्यु के उपरान्त जो राज्य चीन के अधिक सम्पर्क में थे, उनका वर्णन आगे चल कर भी किया गया है (*Ep. Ind.*, XXI, 258)।

[2] अलेक्जेण्ड्रिया = ज़रिआस्पा (Zariaspa) अथवा Bactria (Tarn, *Greeks*, 115, 298; *JAOS*, 61 (1941), 242 n)।

[3] एक मत के अनुसार, जब यूचियों ने बैक्ट्रिया पर आक्रमण किया, उस समय ताहिया में पाँचों शी-हाउ विद्यमान थे (*JAOS*, 65. 72 f.)।

[4] सम्भवतः यही पोताई नगर था जहाँ के राजा शुंग-युन ने गंधार के राजा के पास शेर के दो बच्चे उपहारस्वरूप भेजे थे (Beal, *Records of the Western World*, Vol. I, ci)। एस० कोनोव (*Ep. Ind.*, XVIII) ने पूता को 'ग़ज़नी' कहा, परन्तु आगे चल कर क़ाबुल से दस मील पूर्व की ओर स्थित बुतखाक से सम्बन्धित किया (*Ep. Ind.*, XXI, 258)।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पर, कुषाण कहने लगे। परन्तु, हान ने उनको उनके प्राचीन नाम ता-यूची के नाम से ही सम्बोधित किया है।

क्यु-ज्यु-कियो और कोई न होकर कुजुला[१] काडफ़िसेस[२]-प्रथम अथवा कोज़ोला काडाफ़ीज़ कुषाण-वंश का प्रथम शासक था और उसने हिन्दूकुश के दक्षिण में अपनी मुद्रा चलाई थी। इन्हीं सिक्कों द्वारा यह प्रमाणित होता है कि वह क़ाबुल की घाटी के अंतिम यूनानी राजा हर्मेओस का मित्र[३] था और आगे चल कर उसका उत्तराधिकारी बना था। मार्शल के अनुसार, यह मत कि काडफ़िसेस ने हर्मेओस को पराजित किया, सर्वथा भ्रामक है। एस० कोनोव के अनुसार, गोण्डोफ़र्न्स के शासन-काल में, सन् १०३ ई० के 'तख्त-इ-बाही' लेख में भी इसका उल्लेख है।[४] यह लेख सम्भवतः उस युग का है जब कुषाण एवं पार्थियन शासकों में मित्रता थी। परन्तु, जब पार्थियनों ने हर्मेओस के राज्य पर आक्रमण किया तो मित्रता का नाता टूट गया और अंत में दोनों के बीच युद्ध हुआ। परिणामस्वरूप काडफ़िसेस-प्रथम ने पार्थियनों को पराजित कर निष्कासित कर दिया।

मार्शल के अनुसार, काडफ़िसेस-प्रथम और कोई न होकर सन् १२२ ईसवी के पंजतर-रिकॉर्ड में, और सन् १३६ ई० के तक्षशिला-रिकॉर्ड में पाया जाने वाला कुषाण शासक ही है।[५] हमें यह बात स्पष्ट रूप से स्मरण रखनी है कि सन् १३६ ई० के तक्षशिला-लेख में जिस कुषाण शासक का नाम आया है, उसे 'देवपुत्र' की उपाधि प्राप्त थी। यह उपाधि काडफ़िसेस प्रथम अथवा द्वितीय के उत्तराधिकारियों की न होकर, कुषाण-वंश वालों की थी। यदि हम काडफ़िसेस-प्रथम को कुयुल-कर-कफ़स[६] आज

---

१. *Cf.* Kusuluka. इसका अर्थ सम्भवतः 'सुन्दर' अथवा 'शक्तिशाली' है (S. Konow, *Corpus*, 1)। बरो (*The Language of the Kharoshthi Documents*, 82, 87) के अनुसार, कुजुल = गुशुर = वज़ीर। डॉ० थॉमस का विचार है कि इस शब्द का अर्थ 'Saviour' है।

२. पह्लवी में कद = मुख्य + पिसेस या पेस = रूप, *JRAS*, 1913, 632 n.

३. फ़्लीट और थॉमस, *JRAS*, 1913, 967, 1034. कुछ विद्वानों के अनुसार, कुषाण-आक्रमण के समय हर्मेओस की मृत्यु हो चुकी थी, पर उसकी मृत्यु के बहुत दिनों बाद तक भी उसके नाम की मुद्रायें चलती रहीं। इनके अनुसार, हर्मेओस-काडफ़िसेस की मुद्रायें 'वंश-मुद्रायें' थीं, किन्तु बैचोफ़र (*JAOS*, 61. 240n) इससे सहमत नहीं हैं। मित्रता के सिद्धान्त में विश्वास रखने वाले विद्वान् अपने कथन की पुष्टि में मार्शल चांग-काई शेक तथा अमेरिका के सोने की डालर पर अंकित प्रेसीडेन्ट रूज़वेल्ट की मूर्त्तियों का उदाहरण दे सकते हैं (*A. B. Patrika*, 29. 3. 1945)।

४. S. Konow द्वारा की गई व्याख्या प्रो० रैप्सन को मान्य नहीं है (*JRAS*, 1930, p. 189)।

५. सन् १३६ ई० के कुषाण राजा को विमा, अर्थात् काडफ़िसेस-द्वितीय बताया गया है (*JRAS*, 1914, pp. 977-78; *Rapson*, *CHI*, 582)।

६. आर० डी० बनर्जी ने अपनी पुस्तक 'प्राचीन मुद्रा' में पृष्ठ ८५ पर इसका

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

लें तो यह उपाधि काडफ़िसेस-वश वालों की मानी जा सकती है। इस लेख में जो मोनोग्राम हमें मिलता है, वह केवल काडफ़िसेस-वंश के शासकों की मुद्राओं में ही अंकित नहीं है, वरन् मार्शल और एस० कोनोव के अनुसार, कुयुल-कर-कफ़स आदि की मुद्राओं पर भी अंकित है। यदि सन् १८४ ई० अथवा १८७ ई० के खलात्से (Khalatse) शिलालेख में आये हुए नाम 'विमा कवथिशा' (Uvima Kavthisa) को मार्शल तथा एस० कोनोव ने ठीक पढ़ा है और उसे विमा काडफ़िसेस मानने में त्रुटि नहीं की तो १२२वें तथा १३६वें वर्ष के पंजतर और तक्षशिला लेखों में उल्लिखित शासक ही वीमा अथवा विमा का पूर्ववर्ती शासक हो सकता है और उसे काडफ़िसेस-प्रथम माना जा सकता है। परन्तु, 'विमा कवथिशा' नाम पढ़ना और फिर उसे 'काडफ़िसेस-द्वितीय' बताना न्यायोचित नहीं जान पड़ता है।

ऐसा अनुमान किया जाता है कि काडफ़िसेस-प्रथम ने सोने की मुद्रा न चला कर केवल ताँबे की मुद्रायें ही चलायी थीं। निस्संदेह ही उसके ऊपर रोम राज्य का स्पष्ट प्रभाव पड़ा है।[1] इस दिशा में उसने सम्राट् ऑगस्टस अथवा उसके उत्तराधिकारियों और मुख्य रूप से सम्राट् क्लॉडियस (सन् ४१ ई० से सन् ५४ ई०)[2] की मुद्राओं की नक़ल की थी। साथ ही उसने 'यवुग' (शासक) 'महाराज', 'राजातिराज' और 'सचध्रम थित' की उपाधि धारण की थी।[3]

क्यु-ज्यु-कियो अथवा काडफ़िसेस-प्रथम की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र येन-कॉव-चेन—मुद्राओं में विमा या वीमा काडफ़िसेस के नाम से प्रसिद्ध—काडफ़िसेस-

---

उल्लेख किया है। परन्तु, इसका पाठ ठीक किया गया है। मैं इसकी प्रामाणिकता के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कह सकता।

[1] उसके एक प्रकार के ताँबे के सिक्कों पर रोम-निवासी का सिर अंकित है, जो सम्भवतः सम्राट् ऑगस्टस (ई० पू० २७ से सन् १४ ई०), टिबेरियस (सन् १४ से ३७ ई०) अथवा क्लॉडियस (सन् ४१ से ५४ ई०) की नक़ल है (*JRAS*, 1912, 679, 1913, 912; Smith, *Catalogue*, 66; *Camb. Short. Hist.*, 74)। रोम और उसके निवासी, रोमकों, आदि का वर्णन सर्वप्रथम महाभारत (II. 51, 17) में आया है; और, फिर उसके बाद की अन्य सामग्रियों में भी उसका उल्लेख मिलता है। रोम और भारत के बीच कूटनीतिक सम्बन्ध ऑगस्टस के शासन-काल में ही स्थापित हो गया था। उसके दरबार में राजा 'पांडियन' का राजदूत गया था (*JRAS*, 1860, 309 ff; *Camb. Hist. Ind.*, I, 597)। ९९ ई० के लगभग ट्रेजन (९८ ई० से ११७ ई०) के दरबार में भारतीय राजदूत निवास करता था। स्ट्रैबो, प्लिनी और पेरिप्लस ने भारत तथा रोम के बीच होने वाले व्यापार का भी उल्लेख किया है। यह व्यापार प्रथम शताब्दी में होता था (देखिये *JRAS*, 1904, 591; *IA*, 5. 281; 1923, 50)।

[2] *The Cambridge Shorter History*, 74, 75.

[3] Smith, *Catalogue*, 67n; S. Konow, *Corpus*, II, i. lxiv f, Whitehead, 181.

द्वितीय की उपाधि धारण कर सिंहासनारूढ़ हुआ। यह तो हमने पहले ही जान लिया है कि उसने तीन-चाऊ (भारतीय भूभाग, सम्भवतः तक्षशिला) को जीत कर वहाँ का शासन-भार यूची नाम से शासन करने वाले अपने एक सरदार पर छोड़ दिया था। स्मिथ[१] और स्टेन कोनोव[२] के अनुसार, काडफ़िसेस-द्वितीय ने सन् ७८ ई० में शक-सम्वत् आरम्भ किया। यदि इस विचार को हम सत्य मान लें तो कह सकते हैं कि शायद वह नहपान का शासक था, और कदाचित् वही कुषाण-सम्राट् था, जिसे चीनी सम्राट् होती (सन् ८९ ई० से सन् १०५ ई० तक) ने सन् ७३ से सन् १०२ ई० के मध्य न केवल पराजित किया था, वरन् वार्षिक कर देने पर भी बाध्य किया था। परन्तु, हमारे पास ऐसा कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है जिससे सिद्ध किया जा सके कि काडफ़िसेस-द्वितीय ने कोई सम्वत् चलाया। इसके विपरीत, हमारे पास पूरा प्रमाण है कि कनिष्क ने नया सम्वत् चलाया था जिसे उसके उत्तराधिकारियों ने भी प्रचलित रखा। आज भी हमारे पास सन् १ से लेकर सन् ९९ तक की तिथियाँ हैं।[३]

काडफ़िसेस सम्राटों की विजय से भारतवर्ष, चीन एवं रोम साम्राज्य के बीच व्यापार आदि में पर्याप्त उन्नति तथा वृद्धि हुई। सिल्क, मसाले तथा हीरे-जवाहरात के मूल्य के रूप में रोम-साम्राज्य का स्वर्ण भारतवर्ष में प्रचुर मात्रा में निरन्तर आने लगा। स्वर्ण की अधिकता से प्रभावित होकर काडफ़िसेस-द्वितीय ने सोने के सिक्के प्रचलित कराये।[४] उसने सोने और ताँबे के मिश्रण से भी बनी मुद्रायें चलायीं।[५] मुद्रा की एक ओर सम्राट् का सजीव चित्रण किया गया था और दूसरी ओर केवल शिव की उपासना दिखाई गई थी। पतंजलि[६] के कथनानुसार, 'शिव-भागवतों' के समय से ही शिव की उपासना बढ़ती जा रही थी। खरोष्ठी-शिलालेख में काडफ़िसेस-द्वितीय को "महाराजा, राजा-

---

१. *The Oxford History of India*, p. 128.

२. *Ep. Ind.*, XIV, p. 141.

३. 'सैकड़ों छोड़े गये सिद्धान्त' की आलोचना के लिए देखिये *JRAS*, 1913, 980 f.

४. विमा (*NC*, 1934, 232) की एक स्वर्ण मुद्रा में उसकी उपाधि इस प्रकार है—*Basileus Basilewn Soter Megas* (Tarn, *Greeks*, 354 n 5)। इस उपाधि के द्वारा अनामधारी राजा सोतर मेगास के सम्बन्ध में बहुत कुछ जाना जा सकता है।

५. विमा काडफ़िसेस द्वारा चलाई गई साधारण ताँबे की छोटी-सी मुद्रा से मिलती-जुलती चाँदी की एक दूसरी मुद्रा पाई गई है (Whitehead, *Indo-Greek Coins*, 174)। इसी सम्राट् की चाँदी की अन्य मुद्राओं के सम्बन्ध में मार्शल ने कनिष्क का हवाला दिया है (*Guide to Taxila*, 1918, 81)। देखिये *ASI. AR*, 1925-26, pl. lxf. स्मिथ (*EHI*^{4}, p. 270) और अन्य लोगों ने हुविष्क की चाँदी की मुद्राओं का हवाला दिया है।

६. V. 2. 76 ; देखिये पाणिनि-कृत 'शैव', IV. I. 112.

धिराजा, सम्पूर्ण विश्व का स्वामी महेश्वर"[१] आदि उपाधियों से सम्बोधित किया गया है।

Yu-Houan की पुस्तक वी-लिओ (*Wei-lio*)[२] (२३९-२६५ ई०) में महाराजा वो (Wei) के शासन-काल से लेकर सम्राट् मिंग[३] (२२७-२३९ ई०) के शासन-काल तक हमलों का वर्णन मिलता है। उक्त लेखक ने लिखा है कि यूची की शक्ति किपिन (कपिशा-गंधार), ताहिया (ऑक्सस घाटी), क़ॉउ-फ़ू (क़ाबुल) तथा तीन-चाऊ (भारतवर्ष) में निरंतर बढ़ती जा रही थी। यह शक्ति तीसरी शताब्दी के द्वितीय चरण में भी स्पष्ट थी। परन्तु, प्राचीन काल के चीनी इतिहासकार येनकॉव-चेन (काडफ़िसेप-द्वितीय) के उत्तराधिकारियों के नाम के सम्बन्ध में पूर्णतया मौन हैं; वैसे चीनी सूत्रों से यह अवश्य ज्ञात होता है कि ता-यूची को, जिस शासक का नाम पोति-ऑव (Po-tiao), पूआ-डीउ (Pua-di'eu), या सम्भवतः वासुदेव था, उसने चीनी सम्राट् के दरबार में सन् २३० ई० में अपना राजदूत भेजा था।[४] भारतवर्ष में पाये जाने वाले लेखों के आधार पर हमें कुषाण-वंश के राजाओं के बारे में पूरा-पूरा परिचय ज्ञात है। इस आधार पर काडफ़िसेस-वंश के अतिरिक्त कनिष्क-प्रथम (१-२३),[५] वासिष्क (२४-२८),[६] हुविष्क (२८-६०),[७] वाझेष्क के पुत्र कनिष्क-द्वितीय (४१) और वासुदेव (६७-९८)[८] का पता चलता है। मिलकर राज्य करने वाले हुविष्क, वाझेष्क और कनिष्क-द्वितीय को कल्हण ने हुष्क, जुष्क और कनिष्क के नाम से सम्बोधित किया है। हम देखेंगे कि कनिष्क-द्वितीय सन् ४१ में राज्य

---

[१] जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है, स्टेन कोनोव ने विमा (Uvima) कवथिशा (काडफ़िसेस ?) का नाम खलात्से (लद्दाख) के सन् १८७ (?) के लेख में पढ़ा था (*Corpus*, II, i. 81)। यह राजा कौन था, इस सम्बन्ध में निश्चयात्मक ढंग से कुछ नहीं कहा जा सकता।

[२] *A History of the Wei Dynasty* (A.D. 220-264)।

[३] *Corpus*, II, i. lv.

[४] *Corpus*, II, i. lxxvii.

[५] देखिये *JRAS*, 1913, 980; 1924, p. 400; देखिये दयाराम साहनी, *Three Inscriptions and Their Bearings on the Kushan Dynasty*; *IHQ*, Vol. II, 1927, p. 853; Sten Konow, *Further Kanishka Notes*; and *Ep. Ind.*, XXIV, 210.

[६] यदि वासिष्क शासक वही है जिसका उल्लेख साँची-लेखों में वस कुषाण के नाम से किया गया है, तो उसका शासन-काल सन् २२ के बाद किसी भी प्रकार से आरम्भ नहीं माना जा सकता, जैसा कि उसी वर्ष की बनी भगवान् बुद्ध की मूर्त्ति के लेख से स्पष्ट है (*Pro. of the Seventh Session of the I. H. Congress*, Madras, p. 135)।

[७] *Cf. Ep. Ind.*, XXI, 55 ff—*Mathura Brahmi Inscription of the Year* 28. *Ep. Ind.*, XXII, 35—Hidda *Inscription of* 28.

[८] *Hyd. Hist. Congress*, 164.

करता था। यह तिथि हुविष्क के राज्य-काल (२८-६०) में पड़ती है। इस प्रमाण के द्वारा स्पष्ट हो जाता है कि जो कुछ कल्हण ने लिखा है, वह सर्वथा सत्य एवं प्रामाणिक है।

जिस तथ्य की सत्यता क्रमबद्ध रूप में मुद्रा के द्वारा भी प्रमाणित होती है, उसी के आधार पर कहा जा सकता है कि काडफ़िसेस-वंश के उत्तराधिकारी कनिष्क-वंश के शासक थे। परन्तु, बहुत से विद्वान् इस मत से सहमत नहीं हैं। इसके अतिरिक्त, कनिष्क-वंश को काडफ़िसेस-वंश के बाद का बताने वाले लोग भी इस विषय में एकमत नहीं हो पाये हैं। कनिष्क की तिथि के सम्बन्ध में दिये गये मुख्य-मुख्य सिद्धान्तों का उल्लेख नीचे किया जा रहा है—

१. डॉ० फ्लीट के मतानुसार, काडफ़िसेस-वंश के पूर्व कनिष्क राज्य करता था। ईसापूर्व ५८ में उसने विक्रम-सम्वत्[1] की स्थापना की। यह सिद्धान्त (जिसे कभी

---

[1] विक्रम-सम्वत् का आरम्भ कब से हुआ, इस सम्बन्ध में देखिए *JRAS*, 1913, pp. 637, 994 ff; Kielhorn, *Ind. Ant.*, xx (1891), 124 ff, 397 ff; *Bhand. Com. Vol.*, pp. 187 ff; *CHI*, pp. 168, 533, 571; *ZDMG*, 1922, pp. 250 ff; *Ep. Ind.*, xxiii. 48 ff; xxvi. 119 ff. कीलहार्न और अब. अल्तेकर ने उपलब्ध सूत्रों, तिथियों आदि से जो निष्कर्ष निकाला है, उससे ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में सम्वत् का प्रयोग केवल दक्षिणी-पूर्वी राजपूताना, मध्यभारत तथा गंगा के उत्तरी मैदान में ही प्रचलित था। अत्यन्त प्राचीन लेखों में जहाँ इस सम्वत् का उल्लेख मिलता है, वहाँ हमें पेन्ज़र के 'कृत' राजा की उपाधि का स्मरण भी हो आता है (*The Ocean of Story*, III. 19)। फ्लीट ने भी 'कृतीय' शासकों का उल्लेख (*JRAS*, 1913, 998 n) में किया है। युद्ध एवं अशान्ति के पश्चात् जो स्वर्ग-युग आया, उसका सम्बन्ध भी 'कृत' से है। पाँचवीं शताब्दी से नवीं शताब्दी तक इस सम्वत् का प्रयोग मुख्य रूप से मालव-नरेशों ने ही किया है। इस सम्वत् के साथ 'विक्रम' शब्द धीरे-धीरे नवीं शताब्दी के पश्चात् ही जुड़ पाया। अगली शताब्दी की कविताओं तथा लेखों आदि में सम्वत् के स्थान पर 'विक्रम-सम्वत्', 'श्रीनृप विक्रम-सम्वत्' आदि का प्रयोग होने लगा। यह परिवर्तन सम्भवतः मालव के शत्रु गुजरात-नरेशों एवं निवासियों के सतत् परिश्रम के कारण ही सम्भव हो सका था। सातवाहनों को इस सम्वत् अथवा किसी अन्य सम्वत् का पता नहीं चल पाया, इसीलिए उन्होंने सन् का ही प्रयोग किया है और भारतीय साहित्य में 'विक्रम' एवं 'शालिवाहन' सम्वत् में विशेष अंतर पाया जाता है। एजेस के कथन के सम्बन्ध में देखिये *Calcutta Review*, 1922, December, pp. 493-494. फ्लीट का मत है कि यद्यपि यह सही है कि इसके साथ किसी वास्तविक राजा का नाम सम्बद्ध है और अनुवाद करने पर इसका अर्थ 'अमुक राजा का शासन-काल' में होता है। फिर भी, इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि उसी राजा ने इस सम्वत् को प्रचलित किया था। एक शताब्दी तक चल लेने के पश्चात् जिस प्रकार सम्वत् का नामकरण हुआ, वही इस बात को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि इसका स्रोत और मूल वह नहीं

कनिंघम और डॉउसन ने भी स्वीकार किया तथा फ्रैंक ने प्रतिपादित किया था) कैनेडी द्वारा स्वीकार कर लिया गया था। परन्तु, डॉ० थॉमस ने इस मत के विरोध में अनेक युक्तियुक्त तर्क प्रस्तुत कर इसकी तीव्र आलोचना की थी और जो अब मार्शल[1] के स्पष्टीकरण के बाद तो यह मत कदापि ग्राह्य नहीं रहा। लेखों, मुद्राओं तथा ह्वेनसांग के वर्णन से स्पष्ट ज्ञात होता है कि कनिष्क के राज्य में गंधार देश सम्मिलित था। परन्तु, हमने यह भी लक्ष्य किया है कि चीनी प्रमाण के आधार पर किपिन (कपिशा-गंधार) में कुषाणों का राज्य न होकर ईसापूर्व प्रथम शताब्दी के द्वितीय चरण में, इन-मो-फू (Yin-mo-fu) का राज्य था। एलन का मत है कि "कनिष्क के युग की सोने की मुद्राओं की प्रेरणा सम्राट् को रोमन-सोलिडस से मिली थी।" साथ ही हम कुशाण-सम्राटों की तिथि टाइटस (७८-९१ ई०) तथा राजा ट्रेजन (९८-११७ ई०)[2] के पूर्व किसी प्रकार भी नहीं रख सकते।

२. मार्शल, स्टेन कोनोव, स्मिथ तथा अनेक दूसरे विद्वानों के अनुसार, कनिष्क सन् १२५ ई० अथवा १४४ ई०[3] में सिंहासनारूढ़ हुआ और उसका राज्य दूसरी

हो सकता। अतः सन् १३४ तथा सन् १३६ के कलवान तथा तक्षशिला शिलालेखों के लेखों में 'अयस' अथवा 'अजस' शब्दों का जो प्रयोग हुआ है, उससे यह निष्कर्ष कदापि नहीं निकलता कि इसको एजेस ने प्रचलित कराया था। हो सकता है कि आगे आने वाली पीढ़ियों ने ही उसका नाम सम्वत् के साथ जोड़ दिया हो, जैसे कि वलभी-नरेश का नाम गुप्त-काल के साथ, सातवाहन का शक-सम्वत् के साथ और विक्रम का 'कृत'-सम्वत् के साथ जोड़ा गया है। इस सम्बन्ध में 'विक्रम' का अधिकार कहाँ तक है, देखिये *Bhand. Com. Vol.* and *Ind. Ant.* पुराणों में यद्यपि हमें 'गर्दभिल्ल' का उल्लेख मिलता है, परन्तु विक्रमादित्य के सम्बन्ध में वे भी मौन हैं। जैन श्रुति के अनुसार, विक्रमादित्य का स्थान नहवाहन अथवा नहपान के बाद ही आता है। फ्लीट के इस कथन के सम्बन्ध में, कि विक्रम-सम्वत् उत्तर में ही सीमित था, मैं आपका ध्यान कीलहार्न के लेख '*Chola-Pandya Institutions*' तथा प्रोफे० सी० एस० श्रीनिवासचारी के '*The Young Men of India*', जुलाई १९२६ में प्रकाशित, की ओर आकर्षित करना चाहता हूँ। प्रोफ़ेसर महोदय के अनुसार, ५वीं शताब्दी में इस सम्वत् का प्रयोग 'मदुरा' में किया जाता था। कीलहार्न ने स्पष्ट रूप से प्रमाणित कर दिया है कि इस सम्वत् का प्रचलन केवल उत्तर-पश्चिम भारत तक ही सीमित नहीं था।

[1] Thomas, *JRAS*, 1913; Marshal, *JRAS*, 1914.

[2] *Cambridge Short History*, p. 77.

[3] अभी हाल में ही Ghirshman ने कनिष्क की तिथि सन् १४४-१७२ ई० निर्धारित की है (*Begram, Recherches Archaeologique et Historiques sur les Kouchans*)। सन् १२५ ई० में भारत पर कनिष्क अथवा हुविष्क का राज्य न होकर एक वायसराय का राज्य था, यह विचार थॉमस द्वारा, (*JRAS*, 1913, 1024) पूर्ण रूप से खण्डित किया जा चुका है। उनका मत है कि बाद के हान-

शताब्दी के द्वितीय चरण[1] में समाप्त हुआ। सुई-विहार में पाये जाने वाले लेखों से ज्ञात होता है कि कनिष्क के राज्य में सिन्धु-घाटी के निचले भाग का थोड़ा-बहुत अंश भी सम्मिलित था। जूनागढ़ में पाये जाने वाले रुद्रदामन के लेखों से ज्ञात होता है कि महाक्षत्रप ने सिन्धु तथा सौवीर (पुराण तथा अल्बेरूनी के अनुसार, मुल्तान भी सम्मिलित था) पर विजय प्राप्त की थी, साथ ही सतलज की ओर की भूमि भी जीत ली थी। इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि रुद्रदामन ने सन् १३० से १५० ई० तक राज्य किया। महाक्षत्रप के रूप में वह किसी अन्य के प्रति उत्तरदायी नहीं रहा (**स्वयं अधिगत महाक्षत्रप नाम**)[2]। यदि हम यह स्वीकार करें कि कनिष्क द्वितीय शताब्दी के मध्य में शासन करता था तो हम सुई-विहार तथा सिन्धु-घाटी के निचले भाग पर उसका तथा उसके समकालीन रुद्रदामन[3] का राज्य एकसाथ किस प्रकार न्यायोचित ठहरा सकेंगे ? साथ ही कनिष्क की तिथि १-२३, वासिष्क की तिथि २४-२८, हुविष्क की तिथि २८-६० और वासुदेव की तिथि ६७-९८ इस बात को सिद्ध करती है कि इनमें एक प्रकार का क्रम पाया जाता है। दूसरे शब्दों में, कनिष्क एक नवीन युग का स्रष्टा था। परन्तु, हमें कहीं से किसी प्रकार का भी यह प्रमाण नहीं मिलता कि दूसरी शताब्दी में उत्तर-पश्चिमी भारत में किसी नवीन युग का उदय हुआ था।

३. डॉ० आर० सी० मजूमदार का मत है कि कनिष्क ने सन् २४८ ई० के 'त्रैकुटक-कलचुरि-चेदि-सम्वत्' की ही स्थापना की थी।[4] परन्तु, प्रोफ़े० जूव्यू डुब्रील (Jouveau-Dubreuil) का विचार है कि ऐसा कदापि सम्भव नहीं हो सकता।[5] "वास्तव में कुषाण-वंश के अंतिम शासक वासुदेव का अंत कनिष्क का राज्य आरम्भ होने के ठीक सौ वर्ष के पश्चात् हुआ था। अनेक लेखों से इस बात का प्रमाण मिलता

इतिहासकारों ने विमा-काडफ़िसेस के आक्रमण के समय की दशा का वर्णन किया है, न कि सन् १२५ ई० की दशा का।

[1] डॉ० स्टेन कोनोव के विचार को समझ लेना अत्यन्त कठिन प्रतीत होता है। *Indian Studies in Honour of C. R. Lanman* (Harvard University Press) में पृष्ठ ६५ पर वे लिखते हैं कि उनके तथा डॉ० वान विज्क के अनुसार, कनिष्क-युग का आरम्भ सन् १३४ ई० से हुआ है (*Acta Orientalia*, III, 54 ff)। उन्होंने डॉ० वान विज्क के साथ सन् १२८-२९ को ही मान्यता दी है (*IHQ*, III, 1927, p. 851; *Corpus*, lxxvii; *Acta Orientalia*, V, 168 ff)। दोनों मतों में पाये जाने वाले इस भेद का उल्लेख प्रो० रैप्सन ने किया है (*JRAS*, 1930, 186 ff)। उनका कथन है कि "सन् ७९ ई० अविश्वसनीय प्रतीत होती है, जब कि सभी सन् १२८-१२९ को ही स्वीकार करने के पक्ष में हैं।"

[2] *Ep. Ind.*, VIII, 44.

[3] *IHQ*, March, 1930, 149.

[4] इस सम्वत् के लिए देखिये *JRAS*, 1905, pp. 566-68.

[5] *Ancient History of the Deccan*, p. 31.

है कि वासुदेव मथुरा पर भी शासन करता था। यह भी निश्चित है कि वह देश, जहाँ वासुदेव का राज्य था, यौधेयों तथा नागों द्वारा लगभग ३५० ई० में जीत लिया गया था। साथ ही साथ यह भी सम्भवतः सत्य है कि समुद्रगुप्त द्वारा पराजित किये जाने के पूर्व लगभग एक शताब्दी तक यहाँ पर इन लोगों का शासन चलता रहा। नागों की राजधानी मथुरा, कान्तिपुर तथा पद्मावती थी।" सन् ३६० ई० में भारतीय सीमा पर कुषाण-राज्य पर ग्रमवेटस[1] का शासन था। डॉ० मजूमदार का यह कथन तिब्बती परम्पराओं से बिल्कुल मेल नहीं खाता, क्योंकि उसमें कहा गया है कि कनिष्क खोतान[2] के राजा विजयकीर्ति के समकालीन थे। साथ ही यह भारतीय परम्परा से भी मेल नहीं खाता, क्योंकि भारतीय परम्परा के अनुसार हुविष्क नागार्जुन के समकालीन थे। ये सातवाहन-वंश के थे, अतः इनकी तिथि दूसरी शताब्दी के बाद किसी प्रकार भी नहीं रखी जा सकती, क्योंकि सातवाहन-शासक को 'तीन सागर का शासक' तथा उत्तरी दक्षिण[3] में कोशल का सम्राट् बताया जाता है। अंत में चीनी त्रिपिटक के सूचीपत्र से विदित होता है कि अन-शिह-काव[4] (सन् १४८-१७० ई०) ने कनिष्क के पुरोहित संघरक्ष के 'मार्गभूमि-सूत्र' का अनुवाद किया था। इससे यह बात निर्विवाद रूप से सिद्ध हो जाती है कि कनिष्क की तिथि सन् १७० ई०[5] के पूर्व ही होनी चाहिये। जितने भी तर्क डॉ० मजूमदार के कथन के विरोध में दिये गये हैं, वे सभी सर आर० जी० भंडारकर के इस निष्कर्ष के विरुद्ध भी दिये जा सकते हैं कि कनिष्क का राज्याभिषेक सन् २७८ ई० में हुआ था।

४. फ़र्गुसन, ओल्डेनबर्ग, थॉमस, बनर्जी, रैप्सन, जे० ई० वॉन, लोहुइज़ेन-डी लीऊ, बैचोफ़र तथा अन्य दूसरे विद्वानों के अनुसार, कनिष्क ने ७८ ई० में शक-

---

[1] *EHI*⁴, p. 290. The Chionitai identified by Cunningham with Kushans.

[2] *Ep. Ind.*, XIV, p. 142.

[3] राजतरंगिणी, I, 173; हर्षचरित (Cowell), p. 252; Watters, *Yuan Chwang*, II., p. 200. हर्षचरित (Book VIII) में आये हुए '**त्रिसमुद्राधिपति**' का प्रयोग नागार्जुन के मित्र सातवाहन के लिए किया गया है। इससे हमें गौतमीपुत्र शातकर्णि की याद आ जाती है जिन्होंने तीन सागरों का जल पी लिया था (**तिसमुदतोयपितवाहन**), अथवा इससे उनके बाद के ही उत्तराधिकारी का आभास होता है।

[4] Eliot, *Hinduism and Buddhism*, II, p. 64 n. Bunyiu Nanjio's *Catalogue*, App. II, 4.

[5] डॉ० मजूमदार के कथनानुसार, वासुदेव-प्रथम ने सन् (२४९ + ७४) ३२३ ई० से लेकर सन् (२४९ + ९८) ३४७ ई० तक राज्य किया। परन्तु, चीनी सूत्रों से ज्ञात होता है कि पोतिआव (वासुदेव ?) सन् २३० ई० में राज्य करते थे। यों खालत्से-अभिलेख से भी इस सम्बन्ध में कठिनाई बढ़ती ही है।

सम्वत्[१] का प्रचलन किया। प्रोफे० जूव्यू डुब्रील (Prof. Jouveou-Dubreuil) इस मत के विरोध में निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत करते हैं—

(अ) यदि हम स्वीकार करें कि कुजुल-काडफ़िसेस और हर्मेग्रोस सम्भवतः सन् ५० ई० में शासन करते थे, और कनिष्क ने ७८ ई० में शक-सम्वत् की स्थापना की, तो काडफ़िसेस-प्रथम और काडफ़िसेस-द्वितीय के सम्पूर्ण शासन-काल के लिए हमारे पास २८ वर्ष ही शेष बचते हैं।

(परन्तु, काडफ़िसेस-प्रथम के लिए सन् ५० ई० की तिथि अनिश्चित-सी प्रतीत होती है। यदि इसे हम सही भी मान लें तो काडफ़िसेस-द्वितीय के लिये २८ वर्ष का समय कुछ कम नहीं है, क्योंकि वह एक ऐसे शासक का उत्तराधिकारी था जिसकी मृत्यु ८० वर्ष की आयु के बाद हुई थी। अतः इसमें कोई संदेह नहीं कि काडफ़िसेस-द्वितीय अपने राज्याभिषेक के समय बूढ़ा था। इसी से यह असम्भव प्रतीत होता है कि उसने अधिक समय तक राज्य किया होगा।)

---

[१] शक-सम्वत् की उत्पत्ति के सम्बन्ध में देखिये, Fleet, *CII*, preface 56; *JRAS*, 1913, pp. 635, 650, 987 ff; Dubreuil, *AHD*, 26; Rapson, *Andhra Coins*, p. cv; S. Konow, *Corpus*, II, i. xvi f. जो नहपान सन् ४२-४५ में महाक्षत्रप भी नहीं था तथा जो कभी भी स्वतन्त्र शासक नहीं था, वह इस युग का प्रवर्त्तक किसी भी प्रकार से नहीं हो सकता। सन् ४२-४६ के जिस लेख के आधार पर उसे हम इसका जनक कहते हैं, वह जैन-परम्परा के द्वारा (जिसका विश्वास स्टेन कोनोव ने *Corpus*, II, i, xxxviii में किया है) भी खंडित की गई है, क्योंकि इसके अनुसार वह केवल ४० वर्षों तक ही रहा। चाश्तान का इस दिशा में किया गया अधिकार उचित प्रतीत नहीं होता, क्योंकि 'पेरीप्लस' के अनुसार, ७८ ई० में वह उज्जैन का शासक नहीं हो सकता था। यदि हम काडफ़िसेस-द्वितीय को इसका जनक मानते हैं, तो इस सम्बन्ध में हमें केवल इतना ही कहना है कि उस युग के किसी भी लेख अथवा मुद्रा से इसका प्रमाण नहीं मिलता। केवल कनिष्क ही एक ऐसा सम्राट् है जिसने एक नये सम्वत् को चला कर उसे अपने उत्तराधिकारियों द्वारा मान्यता दिलाई। साथ ही भारतीय लेखकों ने भी चालुक्य-काल से लेकर सर्वप्रथम ७८ ई० में ही शक-सम्वत् को मान्यता प्रदान की।

जहाँ तक इस आक्षेप का सम्बन्ध है कि शक-सम्वत् उत्तर वालों के लिए विदेशी है, यह कहा जा सकता है कि ईसापूर्व ५८ सुदूर उत्तरी-पश्चिमी भारत के लिए पूर्णतया विदेशी है। यह कहना कि शक-सम्वत् का प्रयोग उत्तरी-पश्चिमी भारत में कभी हुआ ही नहीं, भ्रमात्मक है। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि कनिष्क-वंश के द्वारा जिस सम्वत् का प्रयोग हुआ, वह शक-सम्वत् नहीं है। 'शक' नाम से ही प्रतीत होता है कि यह विदेशी है और इसकी उत्पत्ति उत्तरी-पश्चिमी प्रदेश में हुई, क्योंकि इसी क्षेत्र में शक-राजाओं का निवास था। मालव, काठियावाड़ तथा दक्षिण में केवल उनके प्रतिनिधि वाइसराय (उपराजा) शासन करते थे। प्राचीन परम्पराओं के आधार पर कहा जा सकता है कि शक-सम्वत् किसी वाइसराय के द्वारा न चलाया जाकर राजा के द्वारा ही चलाया गया।

(ब) प्रोफे० जूव्यू डुब्रील का कथन है कि "मार्शल ने तक्षशिला-स्थित चिर-स्तूप में एक ऐसे पत्र का पता लगाया है, जो १३६ वर्ष का है। विक्रम-सम्वत् के अनुसार, यह ७९ ई० का है। इसमें जिस शासक का उल्लेख है, उसे सम्भवतः काडफ़िसेस-प्रथम तो माना जा सकता है, परन्तु कनिष्क कदापि नहीं कहा जा सकता।"

(सन् १३६वें वर्ष के तक्षशिला-लेख में 'देवपुत्र' की उपाधि काडफ़िसेस-वंश[1] के सम्राटों के लिए नहीं, वरन् कनिष्क-वंश वालों के लिए थी। अतः, जिन लोगों को यह विश्वास है कि सन् ७८ ई० कनिष्क-युग है, उनके विश्वास को इससे तनिक भी आघात नहीं पहुँचता। कुषाण-नरेशों का व्यक्तिगत नाम न होने का अर्थ यह कदापि नहीं है कि उनका अभिप्राय कुषाण-वंश के प्रथम सम्राट् से है। उदाहरण के लिए कहा जा सकता है कि कुमारगुप्त तथा बुधगुप्त के समय के अनेक ऐसे लेख पाये जाते हैं जिनमें सम्राट् को केवल 'गुप्त-नृप' कह कर ही सम्बोधित किया गया है।)

(स) प्रोफ़े० डुब्रील का कथन है कि "स्टेन कोनोव के अनुसार, तिब्बत तथा चीन में उपलब्ध सामग्री के आधार पर यह सिद्ध हो जाता है कि महाराज कनिष्क दूसरी शताब्दी में राज्य करते थे।"

(जिस कनिष्क का उल्लेख यहाँ किया गया है, वह सम्भवतः ४१वें वर्ष के पाये जाने वाले आरा-शिलालेख में उल्लिखित कनिष्क है। यदि ४१वें वर्ष को शक-सम्वत् की तिथि माना जाये तो कनिष्क के लिए ईसवी काल की द्वितीय शताब्दी की कोई तिथि निर्धारित होगी। स्टेन कोनोव[2] ने जिस पोतिआँव राजा का उल्लेख किया है, वह सम्भवतः वासुदेव-प्रथम का उत्तराधिकारी तथा यू-ची वंश का वह राजा था जिसने सन् २३० ई० में चीन के राजा के यहाँ अपना राजदूत भेजा था। "वासुदेव की मृत्यु के पश्चात् वहुत दिनों तक उसके नाम की मुद्रायें प्रचलित थीं।"[3] स्मिथ, श्री आर० डी० बनर्जी तथा स्वयं एस० कोनोव ने यह स्वीकार किया है कि एक से अधिक राजा वासुदेव के नाम से राज्य कर चुके हैं।[4])

---

[1] मुझे यह जानकर अत्यन्त हर्ष हुआ कि कुछ इसी प्रकार का विचार डॉ० थॉमस (*B. C. Law Vol.* II, 312) ने व्यक्त किया है। पर, यह बात स्पष्ट नहीं होती कि यह क्यों कहा गया कि इस बात की भी सम्भावना है कि 'देवपुत्र' की उपाधि कनिष्क-वंश के लिए होते हुए भी उसे अनदेखा कर दिया गया है। यहाँ पर उल्लिखित काडफ़िसेस से अभिप्राय कुजुल (काडफ़िसेस-प्रथम) तथा विभा (वीमा) से है, न कि कुयुल-कर-कफ़स से है। कदाचित् 'कर' या 'कल' का अर्थ 'महाराजपुत्र' अथवा 'राजकुमार' से है (Burrow, *The Language of Kharosthi Documents*, 82); और यदि कुयुल-कर का अर्थ कुजुल (*Corpus*, II, i, lxv) और तक्षशिला-लेख १३६ में आये हुए कुषाण राजा से है, तो भी यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि १३६ तिथि का अभिप्राय विक्रम-सम्वत् से है।

[2] वासुदेव ? *Ep. Ind.*, XIV, p. 141; *Corpus*, II, i, lxxvii; *Cf. Acta*, II, 133.

[3] *EHI*, 3rd ed., p. 272.

[4] *Ibid.*, pp. 272-278; *Corpus*, II, i, lxxvii.

(द) स्टेन कोनोव ने यह भी सिद्ध किया है कि कनिष्क-युग तथा शक-युग के लेखों में पाई जाने वाली तिथियाँ एक ही ढंग से नहीं लिखी गयी हैं।

(परन्तु उसी विद्वान् ने यह भी सिद्ध किया है कि कनिष्क-युग के सभी लेखों की तिथियाँ भी एक जैसी नहीं हैं। खरोष्ठी-लेखों में कनिष्क तथा उसके उत्तराधिकारियों ने तिथि उस विधि से लिखी है, जिस विधि का प्रयोग उनके पूर्वज शक-पह्लव नरेशों ने किया था, अर्थात् उन्होंने महीने के नाम के साथ दिन का नाम भी दिया है। दूसरी ओर, ब्राह्मी-लेखों में कनिष्क तथा उसके उत्तराधिकारियों ने प्राचीन भारतीय ढंग[1] से ही तिथि दी है। तो क्या अब हम इससे यह निष्कर्ष निकालें कि खरोष्ठी भाषा में लिखे गये कनिष्क के लेखों की तिथि वह नहीं है जो ब्राह्मी भाषा के लेखों की है? और यदि हम यह स्वीकार करें कि कनिष्क ने तिथि लिखने के दो ढंग अपनाये थे तो पश्चिमी भारत में प्रयोग होने वाले ढंग को हम तीसरा ढंग क्यों न स्वीकार कर लें। स्वयं स्टेन कोनोव ने बताया है कि खरोष्ठी भाषा में पाई जाने वाली तिथियों की तरह शक-तिथियाँ भी दी गई हैं, केवल उनमें 'पक्ष' का उल्लेख और कर दिया गया है। "पश्चिमी क्षत्रपों ने शक-सम्वत् का प्रयोग इसलिए किया कि उत्तर-पश्चिम में उनके भाई इसी का प्रयोग कर रहे थे। साथ ही देश की परम्परा को मान्यता प्रदान करते हुए उन्होंने 'पक्ष' का भी उल्लेख किया।" जहाँ कनिष्क ने सीमा-प्रान्तों में शक-पह्लव की तरह, तथा भारत में प्राचीन भारतीय परम्परा के अनुसार, तिथि लिखने की कला को अपनाया, वहाँ यह किसी प्रकार भी असम्भव नहीं कि उसके अधिकारियों ने प्रदेश की परम्परा के प्रति आदर प्रकट करते हुए इन तिथियों में 'पक्ष' शब्द का भी समावेश कर दिया हो।[2])

---

[1] *Ep. Ind.*, XIV, p. 141. इसके अपवाद के लिए देखिये *Ibid.*, XXI, 60.

[2] जहाँ तक यह कथन है कि उत्तरी भारत में शक-सम्वत् विदेशी था, इसकी पुष्टि एस० कोनोव ने भी की है (*Corpus*, lxxxvii), किन्तु इस सम्बन्ध में कीलहार्न (*List of Ins. Northern India*, Nos. 351, 352, 262, 364, 365, 368, 379) के मन्तव्य की ओर ध्यान देना आवश्यक है। जहाँ तक उत्तरी-पश्चिमी भारत का प्रश्न है, हमारे पास ऐसा कोई प्रमाण नहीं है जिसके आधार पर हम कह सकें कि ७८ ई० के सम्वत् के समान विक्रम-सम्वत् का भी प्रयोग होता था। गंगा के उत्तरी मैदान में इस प्रकार के लेख केवल इसीलिए नहीं पाये जाते, क्योंकि वह क्षेत्र ईसापूर्व ५८ से प्रभावित था। इसके बाद के अन्य काल, जैसे गुप्त-काल, हर्ष-काल आदि, यद्यपि भुलाये जा चुके हैं, फिर भी ईसापूर्व ५८ का काल अब भी प्रचलित है। दक्षिणी भारत की दशा कुछ दूसरी ही है। मौर्य (इनमें से बहुत से दक्षिण में पाये जाते थे), सातवाहन, चेत आदि ने शक-क्षत्रपों द्वारा प्रचलित सम्वत् को केवल इसीलिए स्वीकार किया, क्योंकि उसकी पूर्वगणना के लिए अन्य कोई साधन प्रचलित नहीं था। चालुक्य-नरेशों द्वारा विक्रम-सम्वत् के अपनाये जाने का मुख्य कारण यह था कि वे लोग शक-सम्वत् को अपनाना नहीं चाहते थे, क्योंकि उसकी उत्पत्ति विदेशी थी। यह बात उत्तर एवं दक्षिण दोनों ही स्थानों पर है।

स्टेन कोनोव के अनुसार, कनिष्क छोटे यूची-वंश से सम्बन्धित था और खोतान[१] से यहाँ आया था। इस सिद्धान्त को मान लेने पर अनेक कठिनाइयाँ[२] हमारे सामने आ जाती हैं। यह तो निश्चित ही है कि सन् २३० ई० में उसके उत्तराधिकारी ता (महान् ?)-यूची की उपाधि से सम्बोधित किये जाते थे। कुमारलात की कल्पना-मण्डिटीका के अनुसार, वंश का नाम क्यु-शा[३] था।

उत्तरी भारत को विजय करके कनिष्क ने कपिशा[४], गन्धार तथा कश्मीर से लेकर बनारस तक के विस्तृत क्षेत्र पर अपना राज्य स्थापित कर लिया था। चीन तथा तिब्बत के लेखकों[५] ने पूर्वी भारत में साकेत तथा पाटलिपुत्र के नरेशों से किये गये युद्धों का पूर्ण विवरण अपने-अपने लेखों में दिया है। अन्य लेखों के द्वारा उसके समकालीन विवरणों, तिथियों का ज्ञान हमें न केवल पेशावर, युजुफ़जाई देश में स्थित ज़ेदा (कदाचित् उण्ड) से ही होता है, वरन् रावलपिंडी के निकट माणिकिआला, सिंध के उत्तर बहावलपुर से १६ मील दूर, दक्षिण-पश्चिम कोने में स्थित सुई-विहार, मथुरा, श्रावस्ती तथा बनारस के निकट स्थित सारनाथ आदि से भी होता है।[६] पूर्व में गाज़ीपुर और गोरखपुर में भी उसकी मुद्रायें भारी संख्या में पाई गई हैं।[७] उसके साम्राज्य के पूर्वी भाग में महाक्षत्रप खरपल्लान तथा क्षत्रप वनष्पर का शासन था। उत्तरी भाग में सेनापति लाल तथा क्षत्रप वेस्पसी तथा लिआक शासक थे। उसने पेशावर (पुरुषपुर) को अपना निवास-स्थान बनाया तथा कदाचित् कश्मीर में कनिष्कपुर[८] नामक नगर की भी स्थापना की। परन्तु जहाँ तक कनिष्कपुर नगर की

---

१. *Corpus*, II, i, lxxvi; *Cf*. lxi; *JRAS*, 1903, 334.

२. *Ibid*, p. lxxvii.

३. देखिये कणिक-लेख का कुश और पुराणों का कुशद्वीप; Shafer, *Linguistics in history*, *JAOS*, 67, No. 4, pp. 269 ff.

४. *Cf*. The Story of the Chinese hostage mentioned by H. Tsang.

५. *Ep. Ind*., xiv, p. 142; *Ind. Ant*., 1903, p. 382; *Corpus*, II, i, pp. lxxii and lxxv. सम्भवतः कनिष्क-द्वितीय की ओर संकेत है।

६. अभी हाल में श्री के० जी० गोस्वामी ने हमारा ध्यान कनिष्क के युग के एक ब्राह्मी-लेख की ओर आकृष्ट किया है। इसका समय २ वर्ष (?) दिया है और इसे उन्होंने इलाहाबाद-म्युज़ियम से प्राप्त किया है (*Calcutta Review*, July, 1934, p. 83)।

७. महास्थान (बोगरा) में पायी गयी सोने की एक मुद्रा में कनिष्क की खड़ी मूर्त्ति है। इसमें उनके दाढ़ी भी है—कदाचित् यह महान् कुषाण सम्राट् की नक़ल है।

८. कनिंघम इसे श्रीनगर के निकट बताते हैं (*AGI*^{2}, 114)। स्टीन और स्मिथ के अनुसार, यह आधुनिक कांसीपुर है, "जो वितस्ता नदी तथा वराहमूल से कश्मीर जाने वाली सड़क के बीच स्थित है।" (*AGI*^{4}, p. 275)।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

स्थापना का प्रश्न है, सम्भावना इस बात की अधिक है कि इसकी स्थापना आरा-लेख के कनिष्क ने करायी थी। दक्षिण (भारत) में अपनी स्थिति सुदृढ़ करने के बाद उसने अपना ध्यान पश्चिम की ओर दिया और पार्थियन नरेशों[१] को पराजित कर दिया। अपनी वृद्धावस्था में सेना लेकर वह उत्तर की ओर बढ़ा और पामीर की चट्टान तथा खोतान के मध्य स्थित जुंगलिंग पर्वत (तागदुम्बाश पामीर) को पार करते समय परलोक सिधार गया। इस उतरी अभियान की चर्चा ह्वेनसांग ने भी की है, क्योंकि उसके अनुसार, उसका राज्य जुंगलिंग पर्वत के पूर्वी प्रदेश तक फैला हुआ था। साथ ही उसने एक चीनी राजकुमार को अपने दरबार में बन्दी भी बना रखा था।

महाराज हो-ती (सन् ८९-१०५ ई०) के सेनापति पान-चाँऊ द्वारा पराजित राजा कदाचित् स्वयं कनिष्क ही था। निःसंदेह यह तर्क दिया जाता है कि "कनिष्क एक उच्च राजा था और यदि चीनी सेनापति द्वारा वह पराजित किया गया होता तो इसका उल्लेख चीनी इतिहासकार अवश्य ही करते।" परन्तु यदि हम पान-चाँऊ के समकालीन को काडफ़िसेस-द्वितीय स्वीकार करते हैं तो उससे भलीभाँति परिचित चीनी इतिहासकारों का मौन रहना अत्यन्त रहस्यमय हो जाता है। दूसरी ओर वे कनिष्क को बिलकुल ही नहीं जानते थे। अतः, यदि वही पान-चाँऊ का समकालीन है तो उसका उल्लेख न कर इतिहासकारों के चुप हो जाने में कोई विचित्रता दिखाई नहीं देती। कनिष्क ही पान-चाँऊ का विरोधी था, क्योंकि हम जानते हैं कि उसने ही चीन से युद्ध किया था। परन्तु, वीमा के सम्बन्ध में यह बात नहीं कही जा सकती, क्योंकि चीनी इतिहासकारों ने ऐसे किसी भी युद्ध का उल्लेख नहीं किया है। एस० लेवी ने कनिष्क की मृत्यु के सम्बन्ध में जो लोककथा प्रकाशित की है, उसमें एक महत्त्वपूर्ण तथ्य इस प्रकार दिया गया है—"मैंने तीन प्रदेशों को जीत लिया है; सभी मेरी शरण में हैं, परन्तु केवल उत्तरी प्रदेश के लोगों ने मेरी अधीनता स्वीकार नहीं की है।"[२] इस घटना से क्या हम यह निष्कर्ष नहीं निकाल सकते कि उसके उत्तरी पड़ोसी ने ही उसे हराया था?

शाक्यमुनि के धर्म को संरक्षण देने के कारण जितनी प्रसिद्धि उसकी है, उसके विजयों के कारण कदापि नहीं। मुद्राओं एवं पेशावर में पाये जाने वाले लेख के आधार पर कहा जा सकता है कि सम्भवतः अपने राज्य-काल के प्रारम्भिक दिनों में ही उसने बौद्धधर्म अंगीकार कर लिया था। उसने पुरुषपुर अथवा पेशावर में संघाराम और बौद्ध-स्तूप बनाकर धर्म के प्रति अपनी निष्ठा एवं उत्साह का परिचय दिया था। स्तम्भ की सुन्दरता की चीनी तथा मुस्लिम यात्रियों[३] ने भूरि-भूरि प्रशंसा की

---

१. *Ind. Ant.*, 1903, p. 382.

२. देखिये *EHI*^{4}, p. 285; *JRAS*, 1912, 674.

३. जैसा कि देवपाल के समय के गोश्रावण-अभिलेख से पता चलता है, कनिष्क द्वारा निर्मित 'महाविहार' की प्रसिद्धि बंगाल के पाल-नरेशों के काल तक फैली थी। अल्बेरूनी ने भी कनिष्क के 'चैत्य' का उल्लेख किया है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

है। कश्मीर अथवा जालन्धर[1] में उसने बौद्धधर्म की अंतिम महान् सभा का आयोजन किया था। यद्यपि कुषाण बौद्धधर्म के अनुयायी थे, फिर भी ग्रीक, सुमेरियन इलामाइट, मिथ्रेइक फ़ारसी तथा हिन्दू धर्म के देवताओं की उपासना उसके दूर-दूर के प्रदेशों में होती थी,[2] तथा वह स्वयं भी उनका आदर-सम्मान करता था। कनिष्क के दरबार में पार्श्व, वसुमित्र, अश्वघोष[3], चरक, नागार्जुन[4], संघरक्ष, माठर, ग्रीक-निवासी एजिसीलाओस तथा अन्य प्रसिद्ध व्यक्ति थे, जिनकी देखरेख में धार्मिक, साहित्यिक, ज्ञानिक, दार्शनिक एवं कलात्मक कार्य उसके शासन-काल में निरंतर होते थे। मथुरा निकट माट में जो खुदाई हुई है, उसमें इस महान् राजा की क़द्देआदम (उसकी ास्तविक लम्बाई की) मूर्त्ति मिली है।[5]

कनिष्क के पश्चात् वासिष्क, हुविष्क और आरा-लेख में उल्लिखित कनिष्क एक के पश्चात् एक सिंहासनारूढ़ हुए। हमें वासिष्क के २४वें तथा २८वें वर्ष के जो लेख उपलब्ध हैं, उनके आधार पर सिद्ध किया जा सकता है कि उसका राज्य मथुरा

---

१. एक लेख से पता चलता है कि सम्भवतः गंधार में सभा बुलाई गई थी। परन्तु, प्राचीनतम आधार पर कश्मीर को ही सभा-स्थान माना गया है। वसुमित्र के सभापतित्व में कदाचित् सभी बौद्ध-भिक्षुक कुण्डलवन-विहार में एकत्र हुए थे। ऐसा प्रतीत होता है कि इसका मुख्य उद्देश्य मूल नियमों को एक जगह रख कर उन पर की गई आलोचनाओं को लिपिबद्ध करना था (Smith, *EHI*^{4}, pp. 283 ff; Law, *Buddhistic Studies*, 71)।

२. देखिये *JRAS*, 1912, pp. 1003, 1004. सम्भवतः इलामाइट (सुमेरियन ? Hastings, 5, 827) देवी नाना के नाम पर ही प्रसिद्ध नाणक मुद्राएँ प्रचलित की थीं (देखिये *Bhand. Carm. Lec.*, 1921, p. 161)। भारत में कुषाणों पर मिथ्र (मिहिर, मिहर, मिइरो) का क्या प्रभाव पड़ा, इसके लिए देखिये आर० जी० भण्डारकर, *Vaishnavism, Saivism and Minor Religious Systems*, p. 154. प्रो० रैप्सन के अनुसार, नाना प्रकार की मुद्राओं का अर्थ धार्मिक उत्साह नहीं है। इससे तो केवल इतना ही ज्ञात होता है कि उसके विशाल साम्राज्य के विभिन्न प्रदेशों में नाना प्रकार के धर्म प्रचलित थे। देखिये असावरी तथा इलतुत्मिस एवं हैदरअली के समय में प्रचलित बेदनूर प्रकार की मुद्रायें।

३. कनिष्क तथा अश्वघोष के सम्बन्ध में एक नवीन लेख की ओर आपका ध्यान आकृष्ट किया जाता है, जिसे H. W. Bailey (*JRAS*, 1942, Pt. I) ने खोतान पाण्डुलिपि के एक भाग का अनुवाद कर तैयार किया है। उसमें राजा के नाम का उच्चारण 'कड़ (चन्द्र) कनिष्क' दिया गया है।

४. यह भी सम्भव है कि नागार्जुन कनिष्क-प्रथम के समकालीन न होकर कनिष्क-द्वितीय अथवा हुविष्क के समकालीन रहे हों।

५. *EHI*,^{4} p. 272; *Cf.* Coin-portrait, *JRAS*, 1912, 670.

तथा पूर्वी मालव तक फैला हुआ था।[१] कुछ लोगों का मत है कि आरा-लेख में आये कनिष्क के पिता वाझेष्क तथा श्रीनगर[२] के उत्तर में स्थित आधुनिक ज़ुकुर, जिसे जुष्कपुर भी कहते थे, के जन्मदाता तथा राजतरंगिणी में वर्णित जुष्क और कोई व्यक्ति न होकर स्वयं वासिष्क ही थे।

हुविष्क की तिथि सन् २८ से लेकर ६० ई० तक फैली लगती है। मथुरा में पाये जाने वाले एक अभिलेख[३] के अनुसार, वह किसी ऐसे राजा का पौत्र था जिसे 'सचध्रम थित' की उपाधि मिली थी। कुयुल कफ़स[४] में पायी जाने वाली एक मुद्रा पर यह उपाधि अंकित थी। कल्हण के वर्णन से ऐसा भ्रम होता है कि वह जुष्क और कनिष्क, अर्थात् वाझेष्क और सन् ४१ के आरा-लेख में आये कनिष्क का समकालीन था। वारडाक में मिले पात्र-अभिलेख के अनुसार, ऐसा प्रतीत होता है, मानो क़ाबुल उसके साम्राज्य का ही एक अंग रहा है। हाँ, ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता जिससे यह सिद्ध हो सके कि सिन्धु-घाटी के उस निचले भाग पर उसका अधिकार रहा हो जिसे रुद्रदामन ने कनिष्क-प्रथम के उत्तराधिकारियों से छीन लिया था। कश्मीर में हुविष्क ने 'हुष्कपुर'[५] नामक नगर की स्थापना की थी। कनिष्क-प्रथम के समान वह भी बौद्धधर्म का संरक्षक था और मथुरा[६] में उसने अत्यन्त सुन्दर विहार का निर्माण कराया था। विभिन्न मुद्राओं के चलाने का उसे भी कनिष्क-प्रथम के समान ही चाव था। उन मुद्राओं पर जहाँ ग्रीक, फ़ारसी एवं भारतीय देवताओं की मूर्त्तियाँ अंकित हैं, वहीं एक मुद्रा पर रोमा[७] की सुन्दर मूर्त्ति भी है। मथुरा-लेख से ज्ञात होता है कि अपने बाबा के युग के टूटे-फूटे 'देवकुल' को पुनः निर्मित कराने का श्रेय उसको ही प्राप्त था।

स्मिथ महोदय इस बात से सहमत नहीं हैं कि ४१वें वर्ष के आरा-लेख के कनिष्क और कनिष्क-महान्, दो अलग-अलग व्यक्ति थे। लूडर्स, फ्लीट, कैनेडी, स्टेन कोनोव आदि के अनुसार, दोनों कनिष्कों[८] में महान् अंतर है। लूडर्स के अनुसार, आरा-

---

[१] सम्भवतः साँची की मूर्त्तियाँ मथुरा से लाई गई हैं, अतः जहाँ-जहाँ वे मूर्त्तियाँ पाई गई हैं, सब स्थान उसी के साम्राज्य के अंग थे, कहना असंगत होगा।

[२] *EHI*⁴, p. 275.

[३] *JRAS*, 1924, p. 402.

[४] खरोष्ठी-लेख में पाये गये लेख 'अंगोक' के सम्बन्ध में भी यही सत्य है (Burrow, p. 128)।

[५] बारामूल दर्रे के भीतर पाई जाने वाली उप्कूर से इसका अभिप्राय है (*EHI*⁴, p. 287)।

[६] देखिये Luders, List No. 62.

[७] देखिये *Camb. Short. Hist.*, 79. मुद्रा के आधार पर कहा जा सकता है कि महान् कुषाण के लिए 'सिंह-पताका' का वही महत्त्व था जो गुप्त-राजाओं के लिए 'गरुड़ध्वज' का (देखिये Whitehead, 196)।

[८] देखिये *Corpus*, II, i, lxxx. 163; *Ep. Ind.*, XIV, p. 143; *JARS*, 1913, 98. २४ से ४० सम्वत् के बीच का कोई भी ऐसा लेख नहीं मिलता,

लेख के कनिष्क के पिता का नाम वासिष्क और पितामह का नाम कनिष्क-प्रथम था। कनिष्क-द्वितीय ने 'महाराज', 'राजाधिराज', 'देवपुत्र' और सम्भवतः 'कैसर' (Caesar) की उपाधि धारण की थी। इस बात की भी अधिक सम्भावना है कि कश्मीर में 'कनिष्कपुर' बसाने वाला कनिष्क-प्रथम न होकर वह स्वयं रहा हो।

कनिष्क-वंश का अंतिम महान् राजा वासुदेव-प्रथम था। इस पुस्तक में जिस तिथि-तालिका को अपनाया गया है, उसके अनुसार वह सन् १४५[1] से १७६ ई० के बीच हुआ था। वह बौद्धधर्म का अनुयायी नहीं प्रतीत होता। उसकी मुद्रा में शिव एवं नन्दी की मूर्त्ति है। अतः इसमें कोई संदेह नहीं कि अपने पूर्वज काडफ़िसेस-द्वितीय के शैवधर्म को उसने भी अपना लिया था। काव्य-मीमांसा में वासुदेव को 'कवियों का संरक्षक' तथा 'साहित्यकारों का सभापति' कहकर सम्बोधित किया गया है। अश्वघोष, नागार्जुन आदि अन्य विद्वानों की साहित्यिक कृतियों से यह सिद्ध होता है कि कुषाण-काल साहित्यिक युग था। इस युग में धार्मिक क्षेत्र में भी काफ़ी कार्य हुआ, और शैवधर्म के अधीन कार्त्तिकेय-सम्प्रदाय की, बौद्धधर्म के अधीन महायान तथा मिहिर एवं वासुदेव कृष्ण सम्प्रदाय की भी उन्नति हुई। कश्यप मातंग (सी० ६१–६८ ई०) ने चीन में बौद्धधर्म का प्रचार किया। "इस प्रकार कनिष्क के राज्य-काल ने पूर्व तथा मध्य एशिया में भारतीय सभ्यता का द्वार खोल दिया।"

वासुदेव के लेख केवल मथुरा-क्षेत्र में ही पाये गये हैं। अतः इससे यदि हम यह निष्कर्ष निकालें कि धीरे-धीरे कुषाण-साम्राज्य के उत्तरी-पश्चिमी भाग से उसका अधिकार मिटता रहा, तो अनुचित नहीं होगा। तीसरी शताब्दी के मध्य में हम देखते हैं कि यूचियों के अधीन चार राज्य हो गये थे, और सम्भवतः यूची राजवंश[2] के राजकुमारों का चारों पर राज्य था।

जिसे कनिष्क का कहा जा सके। इस काल में कुषाण-राजबंश बासिष्क, और सम्भवतः हुविष्क (द्वितीय साझीदार) के हाथों में था। अतः यह सिद्ध हो जाता है कि सम्वत् ४१ के कनिष्क का सम्वत् १-२३ के कनिष्क से कोई सम्बन्ध नहीं रहा।

[1] पालिखेरा (मथुरा-म्युज़ियम नं० २९०७) में पाई गई भगवान् बुद्ध की मूर्त्ति के निचले भाग के लेख का हवाला देते हुए श्री एम० नागोर कहते हैं कि यह मूर्त्ति वासुदेव के शासन-काल में, सम्वत् ६७ में, बनाकर स्थापित की गई थी।

[2] देखिये कैनेडी, *JRAS*, 1913, 1060 f. वासुदेव-प्रथम के उत्तराधिकारियों में कनिष्क-तृतीय का भी नाम आता है (देखिये Whitehead, *Indo-Greek Coins*, pp. 211-12; *Cf. RDB, JASB*, Vol. IV (1908), 81 ff; Altekar, *NHIP*, VI. 14 n)। वसु अथवा वासुदेव-द्वितीय को पोतिआव (सन् २३० ई०)(*Corpus*, II, i, lxxvii) और ग्रमबेटस (Grumbates) (सन् ३६० ई०) (Smith, *EHI*⁴, p. 290) कहा गया है। राजा अपने को कनिष्क के वंशज कहते हैं। वे किपिन तथा गंधार पर, उनकी मृत्यु के बहुत दिनों बाद तक शासन करते रहे (*Itinerary of Oukong*, Cal. Rev., 1922, Aug.-Sept., pp, 193, 489)। परम्परा तथा जनश्रुति के अनुसार, कनिष्क-वंश का अंतिम राजा लगतूर्मान था, जिसे

इनमें ताहिया (ऑक्सस-प्रदेश), किपिन (कपिशा), कांउ-फ़ू (क़ाबुल) और तीन-चाँऊ (भारतवर्ष, कदाचित् इससे उनका अर्थ सिन्धु नदी के दोनों ओर फैले हुए विस्तृत भाग से था) आदि आते हैं। सन् २३० ई० में 'ता-यूची' अर्थात् महान् यूची राजा पोतिआँव ने चीन-सम्राट् के यहाँ अपना राजदूत भेजा था। इसके पश्चात् धीरे-धीरे भारतवर्ष में उसका यूची-साम्राज्य नष्ट होने लगा और चौथी शताब्दी में उसका वह महत्त्वपूर्ण स्थान खो-सा गया। नागों ने दूर के कुछ प्रदेशों पर अपना अधिकार जमा लिया था। सिन्धु नदी के पास अनेक छोटे-छोटे राज्य स्थापित हो चुके थे। वर्ह्रान-द्वितीय (सन् २७६-२९३ ई०) के शासन-काल में शकस्थान तथा उत्तरी-पश्चिमी भारत पर ससानियन वंश का आधिपत्य हो गया था। शापूर-द्वितीय (सन् ३०९-३७९) ई० के प्रारम्भिक काल में इन प्रदेशों पर ससानियन-वंश का ही अधिकार था।

४. नाग तथा अन्तिम कुषाण

मथुरा तथा उसके निकटवर्ती प्रदेश में कुषाणों के उत्तराधिकारी नाग जाति[१] के शासक थे। तीसरी तथा चौथी शताब्दी में उत्तरी तथा मध्य भारत के एक विशाल भूखण्ड पर नागों का राज्य था। इसका प्रमाण कई जगह से मिलता है।

अल्बेरूनी के अनुसार, उसके ब्राह्मण-मंत्री कल्लार ने पदच्युत कर दिया था। कुषाण-वंश के अंतिम काल में ससानियन-राज्य के जन्मदाता अर्देषिर बाबगान (Ardeshir Babagan, A. D. 226-41) के तथाकथित भारत-आक्रमण के लिए देखिए, फ़रिश्ता (Elliot and Dowson, VI, p. 557)। वर्ह्रान-द्वितीय ने सम्पूर्ण शकस्थान को जीत कर अपने पुत्र वर्ह्रान-तृतीय को वहाँ का राज्यपाल नियुक्त किया। शापूर-द्वितीय के समय तक शकस्थान ससानियन-राज्य का अंग बना रहा। पर्सीपोलिस के एक पह्लवी लेख में शकस्थान के शासक को 'शकान्शाह' तथा हिन्द, शकस्थान तथा तुखारिस्थान के शासक को 'दबिरान दबीर' (मंत्रियों का मंत्री) कहा गया है (*MASI*, 38, 36)। इस लेख को सन् १९२३ ई० में हर्जफ़ेल्ड ने पढ़ा। लेख कदाचित् मन् ३१०-११ ई० का है जब शापूर-द्वितीय (३०९-७९) का राज्य था। तीसरी शताब्दी के अंतिम चरण के पैकुली-लेख से ज्ञात होता है कि उत्तरी-पश्चिमी भारत के शक-नरेश, वर्ह्रान-तृतीय, शकस्थान के राज्यपाल के दरबारियों में से थे (*JRAS*, 1933, 129)। पश्चिमी भारत के आभीरों ने भी कदाचित् ससानियों का आधिपत्य स्वीकार कर लिया था (Rapson, *Andhra Coins*,, cxxxvi)। J. Charpentier (*Aiyangar Com. Vol.*, 16) का मत है कि कोसमास के काल में सिन्धु नदी के दक्षिण में स्थित डेल्टा (Indiko pleustes, C. 500 A. D) फ़ारस के अधीन था। कालिदास के 'रघुवंशम्' तथा चालुक्यों के शासन-काल में भी पारसवासियों का उल्लेख मिलता है।

[१] जयपुर राज्य में स्थित बरनाला में पाये गये यूप-लेख से, राजाओं की एक ऐसी सूची का पता चलता है, जिनके नाम के अंत में 'वर्द्धन' का प्रयोग हुआ है। वे 'सोहर्त्त' अथवा 'सोहर्तृ' गोत्र के थे, परन्तु उनके राजवंश का ज्ञान नहीं है (*Ep. Ind.*, xxvi, 120)। इसकी तिथि 'कृत' २८४, अर्थात् सन् २२७-२२८ है।

लाहौर में प्राप्त चौथी शताब्दी के ताम्रपत्र के लेख के अनुसार, वहाँ नागभट्ट का पुत्र महेश्वर नाग[1] राज्य करता था। इलाहाबाद के स्तम्भ-लेख में राजा गणपति नाग का उल्लेख मिलता है। वाकाटक-विवरणों से ज्ञात होता है कि भारशिव के शासक भवनाग के पौत्र का पौत्र रुद्रसेन-द्वितीय चन्द्रगुप्त-द्वितीय का समकालीन था, और इस प्रकार उसे गुप्त-साम्राज्य के उत्थान के पूर्व का माना जाना चाहिये। भवनाग के वंशज कितने शक्तिशाली शासक थे, इसका अनुमान हम इसी से लगा सकते हैं कि उन लोगों ने दस बार अश्वमेध यज्ञ किया, अपने बाहुबल एवं शक्ति के द्वारा गंगाजल[2] प्राप्त कर उसें वहाँ छिड़का और स्थान को पवित्र बनाया। दस बार अश्वमेघ यज्ञ से ही यह बात प्रमाणित हो जाती है कि वे किसी के अधीन न होकर स्वतंत्र शासक थे। पुराणों से हमें ज्ञात होता है कि नागों ने विदिशा (भिलसा के निकट बेसनगर), पद्मावती (सिन्धु और पार के संगम पर स्थित पदम-पवाया)[3], कान्तिपुरी (जिसका ठीक से पता नहीं चल पाया है)[4] और कनिष्क और उसके उत्तराधिकारियों की दक्षिणी राजधानी[5] मथुरा पर अधिकार कर लिया था। कदाचित् नागों के महान् राजा का नाम चन्द्रांश[6] 'नखवन्त-द्वितीय' था। दिल्ली के लौह स्तम्भ-लेख में यही नाम आया है। परन्तु, यह बात पूर्णतया स्पष्ट नहीं हो पाई कि दोनों चन्द्र एक ही व्यक्ति हैं।[7] यदि गुप्त-साम्राज्य के उत्थान के पूर्व ही चन्द्र राजा थे, तो स्वाभाविक

---

[1] फ्लीट, *CII*, p. 283.

[2] *CII*, p. 241; *AHD*, p. 72.

[3] इस स्थान पर महाराज अथवा अधिराज भवनाग की मुद्रायें पाई गई हैं। डॉ० अल्तेकर का कथन है कि ये वाकाटक-लेख के भवनाग ही थे (*J. Num. S. I.*, V. pt. II)। ये तथ्य भविष्य में और अधिक खोज हो जाने पर ही सही माने जा सकते हैं।

[4] स्कन्द-पुराण (नागरखण्ड, Chap. 47, 4 ff) में कान्तिपुरी का वर्णन आया है। मेघदूत के समय में पूर्वी मालव में विदिशा भी सम्मिलित था। वहाँ की घाटी धसान या दशार्ण की राजकुमारी से कान्तिपुरी के राजकुमार ने विवाह किया था। अतः कान्तिपुरी सम्भवतः विदिशा के निकट ही थी।

[5] *JRAS*, 1905, p. 233.

[6] **नृपान् विदिशकांश् च = आपि भविष्यांस्तु निबोधत**
शेषस्य नागराजस्य पुत्रः पर पुरंजयः
भोगी भविष्यते (?) राजा नृपो नाग-कुलोद्भवः
सदाचन्द्रस् तु चन्द्रांशो द्वितीयो नखवांश तथा।

—*Dynasties of the Kali Age*, p. 49.

[7] विष्णु की उपासना से प्रतीत होता है कि वह चन्द्रगुप्त-प्रथम अथवा चन्द्रगुप्त-द्वितीय था। यदि हम इसे स्वीकार करते हैं तो फिर हमें यह सिद्ध करना होगा कि 'धाव' शब्द का प्रयोग गुप्त के लिए क्यों हुआ, क्योंकि चन्द्रगुप्त-द्वितीय को 'धाव' न कह कर 'देवगुप्त' या 'देवराज' कहा जाता था। इस सम्बन्ध में हमें यह भी नहीं

है कि हम उनके सम्बन्ध में पुराणों में खोज करें, क्योंकि गुप्त-वाकाटक-काल तक इन ग्रन्थों का संकलन नहीं हो पाया था।

चौथी शताब्दी में चन्द्रगुप्त-द्वितीय ने नाग-राजकुमारी के साथ विवाह करना चाहा था तथा स्कन्दगुप्त[1] के शासन-काल तक गंगा तथा दोआब के क्षेत्र में नाग राजा अपने अधिकारियों के माध्यम से राज्य करते थे। क़ाबुल की घाटी तथा भारतीय सीमा के कुछ प्रदेशों पर कुषाणों का राज्य बना रहा। उनमें से एक शासक ने फ़ारस के ससानियन-वंश के राजा होरमिसदास (अथवा होरमुज्द) द्वितीय (सन् ३०१-३०९ ई०) के साथ अपनी पुत्री का विवाह भी किया था। जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है, वर्ह्रान-द्वितीय (सन् २७६-२९३ ई०) और उसके उत्तराधिकारी शापूर-द्वितीय के समय तक अपने सीथियन पड़ोसियों पर राज्य करते रहे। "सन् ३५० ई० में जब शापूर-द्वितीय ने अमिदा पर आक्रमण किया, उस समय उसकी सेना में हाथी भी थे।"[2] इसके कुछ समय के बाद ससानियन-वंश को पराजित कर गुप्त-सम्राटों ने अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। साथ ही उत्तर-पश्चिम प्रदेश के कुषाण शासकों ने, जिनकी उपाधि **'देवपुत्र शाहि शाहानुशाहि'** थी, समुद्रगुप्त[3] के पास अनेक मूल्यवान् उपहार भी भेजे। पाँचवीं शताब्दी[4] में किदार कुषाणों ने कश्मीर[5] तथा गंधार पर अपना राज्य स्थापित कर लिया था। छठी शताब्दी में कुषाणों को हूणों के साथ भयंकर युद्ध करना पड़ा और फिर उसके बाद की शताब्दियों में मुसलमानों से बराबर लोहा लेना पड़ा। नवीं शताब्दी में सीस्तान पर सफ़ारिद-वंश के मुसलमानों का राज्य स्थापित हुआ। धीरे-धीरे इनका प्रभुत्व गज़नी, ज़ाबुलस्तिान, हेरात, बलख तथा बमि-

---

भूलना चाहिये कि उसने सिन्धु-पार के लोगों पर अपनी शक्ति के द्वारा विजय प्राप्त की थी। इस सम्बन्ध में उसके पूर्वजों की ख्याति का कोई प्रभाव उस पर नहीं पड़ा था। विष्णु की उपासना के कारण अब इस बात की कोई भी सम्भावना नहीं रह जाती कि यही राजा चन्द्र कनिष्क था। इसको प्रथम मौर्य राजा बताना भी नितान्त पागलपन ही है, क्योंकि जो तिथि आदि दी गई हैं, उनमें विशेष रूप से अंतर है। साथ ही जो विवरण उपलब्ध है, उसमें न तो नन्द-राजाओं की पराजय का ही उल्लेख है, और न ही कहीं यवनों के साथ होने वाले युद्ध का। अतः यह भी हमें किसी प्रकार मान्य नहीं है।

[1] बाद के नाग-राज्य के विषय में जानने के लिए देखिये, *Bomb. Gaz.*, I. 2, pp. 281, 292, 313, 574; *Ep. Ind.*, X, 25.

[2] *JRAS*, 1913, p. 1062. Smith (*EHI*^{4}, p. 290) and Herzfeld (*MASI*, 38, 36) give the date A. D. 360.

[3] *Cf.* also, *JASB*, 1908, 93.

[4] **और सम्भवतः इससे भी पूर्व (अल्तेकर, *NHIP*, VI, 21 के अनुसार चौथी शताब्दी के मध्य में)।**

[5] *JRAS*, 1913, p. 1064; Smith, *Catalogue*, 64, 89; R. D. Banerji, *JASB*, 1908, 91.

यान प्रदेशों में भी फैल गया ।[1] कनिष्क-वंश के अंतिम राजाओं ने अपना निवास-स्थान गंधार प्रदेश के नगर उण्ड, ओहिन्द, वैहन्द अथवा सिन्धु के किनारे स्थित उदभाण्ड को बनाया । उनकी दूसरी राजधानी क़ाबुल की घाटी में थी । अंत में कल्लार या लल्लिय नामक ब्राह्मण ने इस वंश का सम्पूर्ण विनाश कर दिया तथा नवीं शताब्दी के अंतिम काल में उसने हिन्दू-साम्राज्य की नींव डाली । दसवीं शताब्दी में क़ाबुल के राज्य का एक भाग अलप्तगीन (Alptigin) के हाथों मे आ गया ।[2]

---

१. Nazim, *The Life and Times of Sultan Mahmud*, 186.
२. Nazim, *op. cit.*, p. 26.

१२ दक्षिणी तथा पश्चिमी भारत में सीथियन-शासन

१. क्षहरात

पिछले अध्याय में हमने देखा कि ईसापूर्व की द्वितीय एवं प्रथम शताब्दियों में सीथियनों ने किपिन (कपिशा-गंधार) तथा शकस्थान (सीस्तान) पर अपना आधिपत्य जमा कर धीरे-धीरे उत्तरी भारत के एक बड़े भूभाग पर अपना राज्य स्थापित कर लिया था। इस वंश की मुख्य शाखा उत्तर में ही राज्य करती रही, परन्तु क्षहरात नामक सत्रपाल परिवार ने अपनी शक्ति पश्चिमी भारत तथा दक्षिण की ओर बढ़ा कर सातवाहन-नरेशों से महाराष्ट्र की कुछ भूमि भी छीन ली। सातवाहन-शासक अपने राज्य के दक्षिणी भाग, सम्भवतः सातवाहनिहार जनपद जो आधुनिक बेलारी जिले में पड़ता था, और जो किसी समय सैनिक राज्यपाल (महासेनापति) स्कन्दनाग[1] के शासन में था, में चले गये। पेरीप्लस के निम्नलिखित गद्यांश से स्पष्ट हो जायेगा कि उस समय किस प्रकार दक्षिण के नरेशों की शक्ति घटती जा रही थी तथा आक्रमणकारियों की शक्ति प्रबलतर होती जा रही थी। "सरगनुस (कदाचित् शातकर्णि-प्रथम) के शासन-काल में कल्याणनगर शान्तिप्रिय बाज़ार के रूप में उन्नति कर रहा था। परन्तु, जब से यह नगर सन्दनेस (कदाचित् सुनन्दन शातकर्णि)[2] के अधिकार में आया, उस समय से यह बन्दरगाह प्रायः अरक्षित हो गया तथा ग्रीस (यूनान) के जो जलयान यहाँ आते थे, उन्हें रक्षकों की देखरेख में बरिगाज़ा (बरौच) भेजा जाने लगा।"

ऐसा प्रतीत होता है कि बरौच क्षेत्र और महाराष्ट्र के सीथियन विजेता क्षहरात और भूगोलवेत्ता तोलेमी[3] द्वारा उल्लिखित उत्तरी शकों की प्रसिद्ध जाति के करातार्इ (Karatai) में भिन्नता नहीं थी।

क्षहरात, खखरात अथवा छहरात वंश के मुख्य व्यक्तियों के नाम लिअक, पटिक, घटाक, भूमक तथा नहपान थे। इनमें से लिअक पटिक तथा घटाक क्रमशः

---

[1] *Ep. Ind.*, XIV, 155.

[2] विल्सन, *JASB*, 1904, 272; Smith, *ZDMG*, Sept., 1903; *IHQ*, 1932, 234; *JBORS*, 1932, 7 f. जब तक किसी 'छोटे सरगनुस' का उल्लेख नहीं होता, तब तक 'बड़े' शब्द का कोई महत्त्व नहीं है। अतः यह शब्द 'सन्दनेस' के लिए ही हो सकता है, क्योंकि वहाँ एक 'छोटे सन्दनेस' का भी उल्लेख मिलता है।

[3] *Ind. Ant.*, 1884, p. 400. श्री वाई० आर० गुप्ते (*Ind. Ant.*, 1926, 178) का कथन है कि दक्षिण के गड़रियों में कुछ की उपाधि 'खरात' है जो कदाचित् खखरात (क्षहरात) शब्द का ही संक्षिप्त रूप है।

तक्षशिला तथा मथुरा के निवासी थे । भूमक काठियावाड़ के क्षत्रप थे । रैप्सन के अनुसार, भूमक नहपान का पूर्वज था । उसकी मुद्राओं में 'तीर, ढाल और बिजली' बनी मिलती है । इनकी तुलना मुद्राओं की दूसरी ओर बने 'ढाल, तीर और धनुष' से जाती है । दूसरी ओर की वस्तुएँ ताँबे की उन मुद्राओं में मिलती हैं, जिन्हें स्पैलिरिसेस तथा एज़ेस (प्रथम) ने मिल कर बनवाया था ।

क्षहरात-क्षत्रपों में सबसे महान् राजा नहपान था । पूना ज़िले में नासिक, जुन्नार और कार्ले के निकट पाण्डुलेन में पाये जाने वाले आठ गुफालेखों से सिद्ध होता है कि उसके साम्राज्य में महाराष्ट्र प्रदेश का एक बहुत बड़ा भाग भी सम्मिलित था । इनमें से सात लेख उसके दामाद शक उशवदात (ऋषभदत्त) की दानकथा तथा आठवाँ अयम अथवा अमात्य (ज़िला-अधिकारी) की महिमा का वर्णन करता है । उशवदात के लेख से ज्ञात होता है कि नहपान का राजनीतिक प्रभाव पूना (महाराष्ट्र) और सूरपारक (उत्तरी कोंकण में) से लेकर प्रभास (काठियावाड़ में), मन्दसौर (दशपुर) और उज्जैन (मालव में) तथा प्रसिद्ध तीर्थस्थान पुष्कर समेत अजमेर के कुछ ज़िलों तक फैला हुआ था । मालयों अथवा मालवों पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् पवित्रीकरण के लिए उशवदात ने पुष्कर की तीर्थयात्रा की थी ।

नासिक में प्राप्त होने वाले लेखों में किसी अज्ञात सम्वत् के ४१, ४२ तथा ४५ वर्षों का तथा नहपान के क्षत्रप होने का उल्लेख है, जबकि अयम द्वारा लिखवाये गये जुन्नार-लेख में ४६ सम्वत् का विशेष तौर पर उल्लेख है, और उसमें नहपान को महाक्षत्रप बताया गया है । अधिकांश इतिहासकारों का मत है कि जो तिथियाँ इनमें दी गई हैं, वे सब सन् ७८ ई० के शक-सम्वत् की ओर ही संकेत करती हैं । इसमें सन्देह नहीं कि 'नहपान' एक फ़ारसी नाम है, परन्तु क्षहरात-वंश—जिसका वह एक सदस्य था—शक जाति से सम्बद्ध था । उसके दामाद उशवदात ने अपने आपको शक घोषित किया था । अतः, यह भी सम्भव है कि सन् ७८ ई० का सम्वत् शक-सम्वत् हो, जिसे कदाचित् नहपान के उत्तराधिकारियों में से किसी एक ने चलाया हो । प्रोफ़े० रैप्सन इस मत से सहमत हैं कि नहपान की जो तिथियाँ दी गई हैं, वे सन् ७८ ई० से प्रारम्भ होने वाले शक-सम्वत् से ही सम्बन्धित हैं । इसी आधार पर वे नहपान की तिथि सन् ११९ से १२४ ई०[1] के बीच आँकते हैं । बहुत से विद्वानों[2] का विचार है कि नहपान और कोई न होकर 'मम्बरुस' अथवा 'नम्बनुस' है ।[3] यह नाम

---

१. एलन का मत है कि नहपान की मुद्राओं को दूसरी शताब्दी का कहना उचित नहीं होगा । वे नहपान की चाँदी की मुद्राओं पर पाये जाने वाले सिर की तुलना राजुवुल की मुद्राओं से करते हैं । परन्तु, वे यह भी स्वीकार करते हैं कि यह सम्भवतः इसलिए है कि दोनों का स्रोत स्ट्रैटो-प्रथम की मुद्रायें हैं (*Camb. Short. Hist.*, 80 f) ।

२. उदाहरण के लिए, M. Boyer in *Journal Asiatique*, 1897; *JASB*, 1904, 272. कैनेडी (*JRAS*, 1918, 108) कहते हैं कि नाम के अंत में '-बनोस' न आकर '-बरेस' अथवा '-बरोस' आता है ।

३. *JRAS*, 1912, p. 85.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

'पेरीप्लस' का दिया हुआ है। उसकी राजधानी मिन्नगर अरियक (Minnagara in Araike) में थी। एक मत के अनुसार, मिन्नगर आधुनिक मंदसौर[1] है और 'अरियक' अपरान्तिक[2] का ही नाम है।

आर० डी० बनर्जी तथा जी० जूव्यू डुब्रील (G. Jouveau Dubreuil) के अनुसार, नहपान की तिथियों का शक-सम्वत् से कोई सम्बन्ध नहीं है। उनका कथन है कि यदि हम यह स्वीकार कर लेते हैं कि नहपान के लेख शक-सम्वत् के अनुसार ही हैं, तो नहपान के सम्वत् ४६ के लेखों और रुद्रदामन के सम्वत् ५२ के लेख में केवल पाँच वर्ष का अन्तर रहता है। तब इन्हीं पाँच वर्षों में निम्नलिखित बातें अवश्य घटित हुई थीं—

(१) नहपान के राज्य का अंत।

(२) क्षहरातों का विनाश।

(३) क्षत्रप चाश्तान का क्षत्रप-राज्य आरम्भ होकर उसका 'महाक्षत्रप' की उपाधि धारण करना तथा राज्य का महाक्षत्रप-राज्य कहलाना।

(४) जयदामन का 'क्षत्रप' की उपाधि से सिंहासनारूढ़ होना तथा 'महाक्षत्रप' की उपाधि धारण करना।

(५) रुद्रदामन का सिंहासनारूढ़ होना तथा शासन आरम्भ करना।

इतनी घटनाओं की भीड़ पाँच वर्षों के छोटे-से दायरे (सम्वत् ४६ जो कि नहपान के राज्य की अन्तिम जानी हुई तिथि है और सम्वत् ५२ जो कि रुद्रदामन के राज्य-काल की जानी हुई पहली तिथि है) में इकट्ठा करने की कोई विशेष आवश्यकता दिखाई नहीं पड़ती। हमारे पास ऐसा कोई भी प्रमाण नहीं है, जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि चाश्तान-वंश का राज्य क्षहरात-वंश के विघटन के बाद ही आरम्भ हुआ। जैसा कि सम्वत् ५२ के आंधव-अभिलेख से ज्ञात होता है, सम्भव है चाश्तान-नरेश कच्छ तथा उसके आसपास के देशों पर राज्य करते रहे हों और क्षहरात-वंश वालों का राज्य मालव तथा महाराष्ट्र में रहा हो। साथ ही इस बात को भी स्वीकार करने का कोई बड़ा कारण नहीं है कि चाश्तान तथा रुद्रदामन के राज्याभिषेक की तिथियों में कोई बहुत अधिक अंतर था। डॉ० भण्डारकर तथा डॉ० आर० सी० मजूमदार का मत है कि आंधव-अभिलेख से स्पष्ट

---

[1] यही विचार डी० आर० भण्डारकर का भी है। वे बाम्बे-गज़ेटियर (I. 1. 15 n) को मानते हैं। देखिए *Ind. Ant.*, 1926, p. 143—*Capital of Nahapana* (=Junnar)। फ़्लीट के अनुसार, मिन्नगर पंचमहाल के दोहद का नाम है (*JRAS*, 1912, p. 788; 1913, 993 n)। पटना के ओरिएंटलिस्ट के छठे सम्मेलन में एक पत्र पढ़ते हुए डॉ० जायसवाल ने जैन-सामग्री का उल्लेख किया है, जिसमें ब्रोच को नहपान की राजधानी बताया गया है (देखिये आवश्यक सूत्र, *JBORS*, 1930, Sept.-Dec., 290)। एक अन्य मत के लिए देखिये *IHQ*, 1929, 356—वसुधर (?) नगरी।

[2] देखिये *IA*, 7. 259, 263—अरियक सम्भवतः वराहमिहिर की 'बृहत्संहिता' में आये हुए 'आर्यक' का ही दूसरा नाम है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हो जाता है कि चाश्तान तथा रुद्रदामन दोनों ही सम्वत् ५२ में संयुक्त रूप से राज्य कर रहे थे। प्रो० जे० डुब्रील इस मत से बिलकुल ही सहमत नहीं होते, क्योंकि अभिलेख में रुद्रदामन के बाद 'च' (और) संयोजक शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है—'**राज्ञ चाश्तानस यशमोतिक-पुत्रस राज्ञ रुद्रदामस जयदाम-पुत्रस वर्षे द्विपचासे, ५०, २।**' इसका अनुवाद प्रो० डुब्रील ने इस प्रकार किया है, "५२वें वर्ष में जयदामन के पुत्र, चाश्तान के पौत्र तथा यशमोतिक के प्रपौत्र रुद्रदामन के राज्य-काल में····।"

वैसे प्रोफ़ेसर महोदय 'च' शब्द पर आपत्ति करते हैं, परन्तु उन्होंने स्वयं 'और', 'पौत्र' तथा 'प्रपौत्र' शब्दों का प्रयोग किया है, जो कि मूल पाठ में नहीं पाये जाते। यदि उनका अनुवाद आंधव-अभिलेख के लेखक महोदय की इच्छानुसार ही होता तो यशमोतिक का नाम पहले आता, और फिर चाश्तान के नाम के बाद जयदामन और रुद्रदामन का नाम आता—"**यशमोतिक-प्रपौत्रस चाश्तान-पौत्रस जयदाम-पुत्रस रुद्रदामस**।"[1] साथ ही एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात यह भी है कि प्रो० डुब्रील के अनुसार, जो जयदामन, चाश्तान तथा रुद्रदामन के बीच में राज्य करता था, मूल पाठ में उसके नाम के साथ किसी प्रकार की उपाधि नहीं मिलती। दूसरी ओर, चाश्तान तथा रुद्रदामन, दोनों को 'राजा' कहा गया है। दोनों ही नामों के पूर्व आदरसूचक एक ही शब्द 'राजा' का प्रयोग हुआ है। अतः लेख का शाब्दिक अनुवाद इस प्रकार होगा-—'सम्वत् ५२ में यशमोतिक के पुत्र राजा चाश्तान, जयदामन के पुत्र राजा रुद्रदामन····।' इससे स्पष्ट हो जाता है कि सम्वत् ५२ में चाश्तान तथा रुद्रदामन[2] दोनों का ही शासन था। प्राचीन हिन्दू-समाज के लेखकों द्वारा इस प्रकार सहशासन[3] के वर्णन अक्सर मिलते हैं। चाश्तान तथा उसके प्रपौत्र के सहशासन का सिद्धान्त इसलिए भी माना जा सकता है कि जयदामन 'महाक्षत्रप' नहीं बन पाये थे, कदाचित् इसलिए कि उनकी मृत्यु उनके पिता के सामने ही हो गई थी; क्योंकि चाश्तान तथा रुद्रदामन के समान ही उनके नाम के भी पहले केवल 'क्षत्रप' का ही प्रयोग हुआ है। 'महाक्षत्रप' अथवा 'भद्रमुख' का प्रयोग जयदामन के

---

[1] देखिये जूनागढ़, गुण्ड तथा जसधन अभिलेख।

[2] देखिये, मुद्रा-सम्बन्धी कथा "**हेरमयस कलियपय**", "**गुदुफरस ससस**", "**क्षतपान हगानस हगामषस**" आदि। इनमें भी दूसरे नाम के अंत में 'च' शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है। देखिये, Whitehead, *Indo-Greek Coins*, 86, 147; *CHI*, 538.

[3] देखिये, अथर्ववेद (V. 20, 9) में द्विराज; कौटिल्य के अर्थशास्त्र (p. 325) में द्वैराज्य; आयारंग सुत्त का दोरज्ज। पटलीन के वर्णन में देखिये p. 259 *ante*; महाभारत में देखिये—धृतराष्ट्र तथा दुर्योधन का राज्य; जस्टिन की पुस्तक में यूक्राटीड्स तथा उसके पुत्र का राज्य; स्ट्रैटो प्रथम तथा द्वितीय, एज़ेस तथा एजिलिसेस, आदि-आदि। महावस्तु (III. 432) में तीन भाइयों के एकसाथ राज्य करने का उल्लेख मिलता है—"**कलिंगेषु सिंहपुरम् नाम नगरम् तत्र त्रयोभ्रातरो एकमात्रिका राज्य कारयन्ति**।" देखिये *IA*, 6, 29; *Cf*. Nilkantha Shastri, *Paṇḍyan Kingdom*, 120, 122, 180.

लिए उसके उत्तराधिकारी[1] के लेखों में भी नहीं मिलता। हमने इस बात का उल्लेख पहले ही कर दिया है कि आंधव-लेख में चाश्तान तथा रुद्रदामन को 'राजा' की उपाधि दी गई थी, परन्तु इसका प्रयोग जयदामन के नाम के पहले नहीं हुआ है।

श्री आर० डी० बनर्जी का कथन है कि जो सम्वत् चाश्तान के सम्बन्ध में मुद्राओं तथा लेखों में मिलता है, वही नहपान के लेखों का नहीं बताया जा सकता, क्योंकि यदि हम यह मान लें कि नहपान को सम्वत् ४६ में ही राज्य-च्युत कर दिया गया था, तो ऐसी स्थिति में नासिक सम्वत् ५२ में (२४वें वर्ष तक) गौतमीपुत्र तथा सम्वत् ७४ में पुलुमायि (अपने राज्य के २२वें वर्ष तक) के अधिकार में रहा होगा। परन्तु, कुछ सूत्रों से ऐसा ज्ञात होता है कि इस तिथि से पूर्व ही रुद्रदामन ने पुलुमायि को पराजित कर नासिक पर अधिकार कर लिया था। बनर्जी की भूल यह है कि उन्होंने यह कल्पना कर ली है कि शक-संवत् ७३ के पूर्व रुद्रदामन ने नासिक पर दो बार अधिकार किया था, भले ही उसने सातवाहनों से मालव तथा कोंकण छीन लिये हों। परन्तु, हमारे पास ऐसा कोई प्रमाण नहीं है जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि उसका अधिकार पूना तथा नासिक पर भी हो गया था। बनर्जी की दूसरी गलत परिकल्पना यह है कि राजा रुद्रदामन सम्वत् ५२, अर्थात् सन् १३० ई० के पूर्व ही अपनी विजय-यात्रा समाप्त कर चुका था। परन्तु, आन्धव-लेख से ज्ञात होता है कि चाश्तान-वंश का राज्य केवल कच्छ तथा उसके आसपास के प्रदेशों तक ही सीमित था।

जिन लोगों का यह मत है कि नहपान की तिथि शक-सम्वत् से मेल खाती है, उनकी पुष्टि प्रो० रैप्सन तथा डॉ० भण्डारकर ने भी की है। उनके इस मत का आधार नहपान का नासिक-अभिलेख है, जहाँ सोने के एक ऐसे सिक्के का उल्लेख मिलता है, जिससे सिद्ध होता है कि प्रथम शताब्दी के पूर्व भारत में कुषाण-वंश का राज्य था।[2]

नहपान तथा उसके मित्र उत्तमभद्रों[3] की शक्ति को उत्तर में मालवों से तथा दक्षिण में सातवाहनों से भयंकर खतरा था। उशवदात ने मालवों के आक्रमण को

---

[1] गुण्ड और जसधन अभिलेख देखिये।

[2] Rapson, *Coins of the Andhra Dynasty*, etc., pp. lviii, clxxxv; Bhandarkar, *Ind. Ant.*, 1918-1919, *'Deccan of the Satavahana Period.'*

[3] सम्भवतः रोहितकों (देखिये Rohtak in south-east Punjab) के साथ एक सूची में 'गणों' का उल्लेख है, जिससे ज्ञात होता है कि उत्तमभद्र भद्र जाति के ही अंग थे। ये आग्रेयों (आगरा के ?) और मालवों (महाभारत, III. 253, 20) में थे। महाभारत (VI. 50, 47) में प्रभद्रों को गणों से या राजपूताना के रेगिस्तानी क्षेत्र के दासेरकों के संघ से सम्बद्ध माना गया है (Monier Williams, Dic. 405)।

तो पीछे ढकेल दिया था, परन्तु महाराष्ट्र में सातवाहनों द्वारा किया गया आक्रमण शकों के लिए घातक सिद्ध हुआ।

पुराणों में उल्लिखित चकोर और शिवस्वाति राजाओं के बारे में हमारी जानकारी बहुत कम है। पुराणों के अनुसार, ये सुनन्दन के उत्तराधिकारी थे। इनके शासन-काल में शातकर्णि सातवाहनों की शक्ति इतनी क्षीण हो गयी थी कि 'बरिगाज़ा' का बन्दरगाह, जिसकी सुरक्षा कभी सातवाहन राजा शातकर्णि-प्रथम के हाथ में थी, अब समुद्री लुटेरों का अड्डा बन गया था। लेकिन, इस सूची में आये हुए दूसरे राजा गौतमीपुत्र ने अपने वंश की शक्ति और प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित किया और उत्तर से आने वाले हमलावरों के दाँत खट्टे कर दिये। नासिक-प्रशस्ति में उसे 'क्षहरात-वंश का विनाशक तथा सातवाहन-वंश की प्रतिष्ठा को पुनः लाने वाला' कहा गया है। नासिक ज़िले में स्थित जोगलथेम्बी में पाई जाने वाली मुद्राओं से सिद्ध हो जाता है कि नहपान को गौतमीपुत्र ने पराजित किया था। गौतमीपुत्र ने नहपान द्वारा चलाये गये सिक्कों पर, उसे पराजित करने के बाद, अपना विरुद पुनः अंकित करवाया। इन पुनर्मुद्रित मुद्राओं में नहपान के अलावा किसी भी दूसरे राजा की मुद्राएँ बिल्कुल नहीं मिलतीं। अतः स्पष्ट है कि नहपान और गौतमीपुत्र के बीच होने वाले संघर्ष में किसी ने भी बीच-बचाव नहीं किया।

२. सातवाहन-राज्य का पुनर्स्थापन

क्षहरातों पर विजय प्राप्त करके गौतमीपुत्र ने पुनः महाराष्ट्र तथा उसके निकटवर्त्ती प्रदेश में सातवाहनों की प्रतिष्ठा स्थापित की। नासिक में प्राप्त सम्वत् १८ के एक अभिलेख[1] से तथा कार्ले में स्थित मामाल (वर्तमान पूना ज़िले का मावल) में प्राप्त अमात्य के नाम के एक आदेश-पत्र से सिद्ध होता है कि महाराष्ट्र पर पुनः विजय प्राप्त कर ली गई थी। गौतमीपुत्र का केवल यही एक महत्त्वपूर्ण कार्य नहीं था। नासिक में पाये जाने वाले, रानी गौतमी बलश्री के, रिकार्डों से यह ज्ञात होता है कि उनके पुत्र ने शक (सीथियन), यवन (ग्रीक) और पह्लवों (पार्थियन) को नष्ट कर दिया। उसके राज्य की सीमा न केवल असिक[2], असक (गोदावरी-तट पर स्थित महाराष्ट्र[3] का एक भाग, सम्भवतः अश्मक) और मूलक (पैठान के आसपास का भू-भाग) तक ही बढ़ी, वरन् सुरथ (दक्षिणी काठियावाड़), कुकर, पारियात्र अथवा

---

१. नासिक का आज्ञापत्र वेजयन्ती सेना की विजय के उपलक्ष्य में निकाला गया था (*Ep. Ind.*, VIII. 72), तथा उसमें गोवर्धन (नासिक) के अधिकारी अमात्य को सम्बोधित किया गया था। सरकार के अनुसार, वेजयन्ती किसी नगर का नाम न होकर, सेना की ही एक उपाधि थी।

२. कृष्णवेणा, अर्थात् कृष्णा नदी के तट पर। देखिये खारवेल के लेख, *IXQ*, 1938, 275; *Cf.* आशिक, *Patanjali*, IV, 2.2.

३. देखिये शाम शास्त्री द्वारा अनूदित अर्थशास्त्र, p. 143, n 2. इसकी राजधानी पोतन सम्भवतः निज़ाम राज्य में पाया जाने वाला नगर बोधन है।

पश्चिमी विन्ध्य[1] के निकट पश्चिमी अथवा मध्य भारत में अपरान्त (उत्तरी कोंकण), अनूप (नर्मदा के किनारे माहिष्मती ज़िले के आसपास का भूभाग), विदर्भ (बृहत्तर बरार) और आकर-अवन्ती (पूर्वी[2] तथा पश्चिमी मालव) तक फैल गई थी। विन्ध्य से लेकर मलय पर्वत अथवा ट्रावनकोर की पहाड़ियों तक जितने भी पर्वत थे, तथा पूर्वी (महेन्द्र) से लेकर पश्चिमी (सह्य) घाटों तक का अधीश्वर वह स्वयं था।

संवत् १८ के नासिक-अभिलेख में कनेरी देश में वेजयन्ती के ऊपर अधिकार का संकेत किया गया है। मगर आन्ध्र प्रदेश (आंध्रपथ) तथा दक्षिणी कोशल का उल्लेख न होना अत्यन्त आश्चर्यजनक है। मुद्राओं, लेखों तथा ह्वेनसांग के विवरणों से ज्ञात होता है कि कभी न कभी दोनों देशों पर सातवाहन-वंश का आधिपत्य अवश्य था। सातवाहन नरेशों में से सबसे पहला अभिलेख हमें आन्ध्र-प्रदेश में गौतमीपुत्र पुलुमायि का प्राप्त हुआ है। यह भी सम्भव हो सकता है कि केवल डींग हाँकने के लिए ही यह कह दिया गया हो कि गौतमीपुत्र का राज्य विन्ध्य तथा पूर्वी घाट (महेन्द्र) तक फैला था तथा उसके अश्व तीनों समुद्रों का पानी पीते थे। साथ ही यह भी अनुमान लगाया जाता है कि असिक में कृष्णा की घाटी का एक बड़ा भूभाग भी सम्मिलित था।

नासिक-प्रशस्ति से विदित होता है कि गौतमीपुत्र को केवल विजेता ही नहीं, एक समाज-सुधारक भी बताया गया है। "उसने क्षत्रियों के झूठे अभिमान तथा गर्व को कुचल कर द्विज (ब्राह्मणों) तथा '**द्विजावर-कुटुब विविधन**'[3] का उत्थान कर चतुर्वर्णों में पायी जाने वाली कुरीतियों को दूर किया था।" इसके साथ ही 'असिक' में कृष्णा नदी की घाटी का अधिकांश सम्मिलित था।

सर आर० जी० भण्डारकर तथा डॉक्टर डी० आर० भण्डारकर के अनुसार, गौतमीपुत्र अपने पुत्र पुलुमायि के साथ-साथ राज्य करता था। अपने इस कथन की पुष्टि में वे निम्नलिखित प्रमाण देते हैं—

(१) गौतमी के अभिलेख (जो उसके पौत्र के राज्य के १९वें वर्ष का है) से यह विदित होता है कि वे महाराज की माता तथा महाराज की दादी भी थीं। यदि वे एक ही समय में माता और दादी न होतीं तो यह लेख व्यर्थ हो जाता।

(२) यदि यह तथ्य स्वीकार कर लिया जाये कि राजमाता का यह लेख जब लिखा गया था, तब तक गौतमीपुत्र की मृत्यु हो चुकी थी; तथा पुलुमायि अकेला ही

---

[1] बृहत्संहिता, XIV, 4.

[2] कुषाण-सम्वत् के २८वें वर्ष में, अर्थात् सन् १०६ ई० में सम्भवतः पूर्वी मालव में वासिष्क का राज्य था। यह तिथि इस पुस्तक में दी गई तिथि-पट्टिका के आधार पर है। उज्जैन से ३५ मील उत्तर-पूर्व में स्थित आगर ही आकर है। देखिये *Bomb Gaz.*, Gujrat, 540; *Ep. Ind.*, xxiii, 102.

[3] 'कुटुम्ब' का अर्थ 'परिवार' से है, तथा 'अवर कुटुब' का अर्थ कदाचित् समाज में हीन लोगों के कुटुम्ब से है। 'कुटुब' शब्द का अर्थ 'समाज में हीन' व्यापारी अथवा किसान आदि वर्ग के लोगों से है। ऐसे लोगों को 'कुटुम्बिक' कहते थे।

राज्य कर रहा था तो उसकी विजय की चर्चा का इस लेख में होना आवश्यक है। किन्तु, उसकी प्रशंसा में एक शब्द भी इसमें नहीं कहा गया है। परन्तु १९ वर्ष पूव मृत राजा की प्रशंसा तो की जाये और शासन करने वाले राजा के बारे में कुछ न कहा जाये, यह समझ में नहीं आता।

(३) नासिक की गुफा नं० ३ के बरामदे की पूर्वी दीवाल पर जो लेख है, वह सम्वत् २४ का है। उससे ज्ञात होता है कि राजमाता ने गुफा में रहने वाले कुछ बौद्ध-भिक्षुओं को अपने तथा अपने जीवित पुत्र की ओर से एक पवित्र उपहार दिया था। संभवतः पुलुमायि के राज्य के १९वें वर्ष में 'नासिक गुफा नं० ३' ही उपहार में दी गई थी।

जहाँ तक पहले तर्क का प्रश्न है, बहुधा रानी अपने पति अथवा पुत्र को ही सिंहासन पर देखती थीं; परन्तु यह रानी गौतमी बलश्री का सौभाग्य अथवा दुर्भाग्य ही था कि वह उन थोड़ी-सी रानियों में से एक थी जिन्होंने अपने पौत्रों को भी राज-सिंहासन पर आरूढ़ देखा। इसीलिए तो उसने अपने आपको महाराज की माता तथा महाराज की दादी कह कर सम्बोधित किया।

जहाँ तक दूसरे तर्क का प्रश्न है, क्या एकसाथ राज्य करने की बात से इस चुप्पी का कोई समाधान निकल आता है? जो इसके विपरीत सोचते हैं, वे यह तर्क दे सकते हैं कि यद्यपि यह सही है कि किसी नागरिक का इतना साहस नहीं हो सकता कि वह शासन करने वाले राजा के बारे में कुछ न कहे और मत राजा का गुणगान करता रहे। लेकिन, राजमाता के लिए यह स्वाभाविक भी हो सकता था कि अपनी वृद्धावस्था में वे अपने पुत्र के समृद्ध अतीत का गुणगान करें।

तीसरे तर्क में यह स्पष्ट नहीं है कि सम्वत् २४ में जिस उपहार का उल्लेख आया है, वह वही था जो पुलुमायि ने अपने राजत्व-काल के १९वें वर्ष में दिया था। यह उपहार गौतमीपुत्र तथा राजमाता की ओर से दिया गया था। स्पष्ट है कि यह राजमाता गौतमी बलश्री ही थीं, जबकि पुलुमायि के १९वें वर्ष में दिया गया उपहार केवल राजमाता ने ही दिया था। सम्वत् २४ के अभिलेख में राजमाता को 'महादेवी जीवसुता राजमाता' के नाम से पुकारा गया है और यह कहा गया है कि उनका पुत्र सम्राट् अभी जीवित है। पुलुमायि के अभिलेख में यद्यपि 'महादेवी' तथा 'राजमाता' शब्द आये हैं, तो भी 'जीवसुता', अर्थात् 'जिसका पुत्र जीवित हो', शब्द का प्रयोग न होना, अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। पहले अभिलेख के अनुसार, यह दान 'तेकिरसि' अथवा 'त्रिरश्मि' साधुओं को साधारणतया मिला था, जबकि दूसरे लेख के अनुसार, दान प्राप्त करने वाले भदवानीय सम्प्रदाय के बौद्ध-भिक्षु थे। पहले उपहार में गुफा नं० ३ का केवल बरामदा ही दान में दिया गया था, क्योंकि इसी में सम्वत् २४ लिखा हुआ है। साथ ही पुलुमायि के १९वें वर्ष के शासन-काल के पूर्व भी यह बरामदा था, क्योंकि गौतमीपुत्र के १८वें वर्ष के लेख से यह स्पष्ट ही है। दूसरी ओर, हमें भली भाँति ज्ञात है कि भदवानीय भिक्षुकों को सम्पूर्ण गुफ़ा नं० ३ दान में दी गयी थी।

यदि गौतमीपुत्र तथा उसका पुत्र साथ-साथ ही शासन करते थे, तथा उसका पुत्र पुलुमायि महाराष्ट्र में अपने पिता के साथ एक सहशासक था तो यह समझना

अत्यन्त कठिन हो जायेगा कि गौतमीपुत्र ने अपने लिए 'गोवधनस बेनाकटक स्वामि', अर्थात् 'गोवर्धन (नासिक)[१] में बेनाकटक के राजा' की उपाधि क्यों धारण की थी ? साथ ही यह बात भी समझ में नहीं आती कि उसने गोवर्धन के अधिकारी को सीधे आदेश क्यों दिया, जबकि उसका पुत्र उसके साथ शासन करता था तथा वह (पुलुमायि) अपने राज्य के १९वें वर्ष में इतना महत्त्वपूर्ण एवं शक्तिशाली शासक क्यों स्वीकार किया गया कि १९वें वर्ष की तिथि को केवल उसके शासन की तिथि कहा गया, जबकि उसके वरिष्ठ सहशासक के शासन से उस तिथि को सम्बद्ध नहीं किया गया।[२]

सामान्य धारणा यह है कि गौतमीपुत्र के पश्चात् ही पुलुमायि शासक बना था।

गौतमीपुत्र शातकर्णि की तिथि के सम्बन्ध में विद्वानों में बहुत अधिक मतभेद पाया जाता है। कुछ विद्वानों का मत है कि उसके लिए जो उपाधियाँ '**वरवारण-विक्रम, चारु-विक्रम**', अर्थात् 'उसकी चाल एक सुन्दर हाथी के चाल के समान थी' तथा '**शक-निशूदन**', अर्थात् 'शकों का विनाश करने वाला' दी गई हैं, उनसे विदित होता है कि पौराणिक कथाओं में आने वाला राजा विक्रमादित्य वही था, जिसने ईसापूर्व ५८ वाला विक्रम-सम्वत् चलाया। परन्तु, जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है, गौतमीपुत्र अथवा उसके उत्तराधिकारियों ने किसी सम्वत् अथवा काल को जन्म नहीं दिया। इसके अतिरिक्त, भारतीय साहित्य में उज्जैन के विक्रमादित्य तथा प्रतिष्ठान के सात-वाहन अथवा शालिवाहन दोनों को पृथक्-पृथक् बताया गया है। अतः इस पुस्तक में हम इस मत को स्वीकार करते हैं कि गौतमीपुत्र ने नहपान को पराजित किया था तथा उनका १८वाँ वर्ष शक-सम्वत् ४६ के पश्चात् ही पड़ता है, जो उनके शत्रु नहपान के विनाश की अन्तिम तिथि है। दूसरे शब्दों में गौतमीपुत्र ने नासिक को सन् ७८+४६=१२४ ई० के लगभग जीता होगा, और इस प्रकार वह सन् १२४—१८ =१०६ ई० में सिंहासनारूढ़ हुआ होगा। चूँकि उसने लगभग २४ वर्षों तक राज्य किया, अतः उसके राज्य का अंत सन् १३० ई० के बाद ही हुआ होगा।

पार्जिटर द्वारा संकलित पुराणों की सूची में गौतमीपुत्र के उत्तराधिकारी का नाम पुलोमा, जो उसका पुत्र था, तथा शातकर्णि बताया गया है। निस्संदेह पुलोमा

---

१. 'गोवधनस' शब्द के प्रयोग से यह स्पष्ट है कि इसके अतिरिक्त और भी दूसरे स्थान थे, जैसे कि बेनाकटक, जिससे 'गोवर्धन' को अलग बताया गया है। प्रवरसेन-द्वितीय (? तृतीय) के तिरोडि-प्लेट के अनुसार, वाकाटक-राज्य के पूर्वी भाग में बेनाकटक नामक एक स्थान का उल्लेख आता है (*IHQ*, 1935, 293; *Ep. Ind.*, XXII, 167 ff)। 'वेणा' अथवा 'बेना' का अर्थ किसी भी स्थिति में एक छोटी धारा ही से है।

२. देखिये आर० डी० बनर्जी, *JRAS*, 1917, pp. 281 *et seq.* १९वें वर्ष की प्रशस्ति में पुलुमायि को 'दक्षिणा-पथेश्वर'—'दक्षिण का सम्राट्' कहा गया है।

और कोई न होकर तोलेमी द्वारा बताया गया बैठान के सिरो-पोलिमेओस तथा अभिलेखों एव मुद्राओं में उल्लिखित वासिष्ठीपुत्र स्वामि श्री पुलुमावि ही हैं। शातकर्णि सम्भवतः कन्हेरी-गुफालेख में उल्लिखित वासिष्ठीपुत्र श्रीशातकर्णि ही हैं, अथवा नानाघाट में पाये जाने वाले विवरण में आये हुए वासिष्ठीपुत्र क्षत्रपाण (क्षत्रपाणि ?) शातकर्णि हैं। यह आधिकारिक रूप से नहीं कहा जा सकता कि वंशावली में उनका उचित स्थान क्या है ? कन्हेरी-लेख से विदित होता है कि वासिष्ठीपुत्र श्री शातकर्णि ने महाक्षत्रप रुद्र की लड़की के साथ विवाह किया था। रैप्सन के अनुसार, यह महाक्षत्रप रुद्र और कोई न होकर रुद्रदामन-प्रथम थे। इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि कन्हेरी-लेख में वर्णित सातवाहन-नरेश अथवा इसी नाम के उनके एक सम्बन्धी और कोई न होकर दक्षिण के शातकर्णि ही थे, जिन्हें रुद्रदामन ने युद्ध में दो बार पराजित किया था, परन्तु निकटतम सम्बन्ध होने के कारण जिनका सम्पूर्ण विनाश नहीं किया था। डॉ० भण्डारकर ने कन्हेरी में वर्णित वासिष्ठीपुत्र श्रीशातकर्णि, और मुद्राओं के वासिष्ठीपुत्र शिव श्रीशातकर्णि तथा मत्स्य पुराण में आये हुए शिवश्री को एक ही बताया है। परन्तु, यह तो उनका अनुमान मात्र है, वास्तविकता नहीं। हो सकता है कि जिस शासक का उल्लेख कन्हेरी-लेख में किया गया है, वह पुलुमायि का भाई रहा हो।

हमने यह भी देखा है कि पुलुमायि की राजधानी पैठान (बैठान) थी। पैठान अथवा प्रतिष्ठान गोदावरी के तट पर स्थित था और भण्डारकर ने इसे नवनर अथवा नवनगर (नया नगर) कहा है। अभिलेखों तथा मुद्राओं से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि महाराष्ट्र एवं कृष्णा-गोदावरी क्षेत्र: दोनों ही उसके साम्राज्य में सम्मिलित थे। यह बात भी पहले ही स्पष्ट की जा चुकी है कि गौतमीपुत्र के साम्राज्य में जिन प्रदेशों का उल्लेख मिलता है, उनमें आन्ध्र-देश को शामिल नहीं किया गया है। अतः यह असम्भव नहीं कि उक्त क्षेत्र में सातवाहन-वंश की शक्ति को सर्वप्रथम वासिष्ठीपुत्र पुलुमायि ने ही स्थापित किया हो। बेलारी ज़िले के अदोनी तालुक में पाये जाने वाले एक अभिलेख में सातवाहन-नरेश श्री पुलुमायि का उल्लेख आया है। सुक्थांकर के अनुसार, यह पुलुमायि ही गौतमीपुत्र पुलमायि है। परन्तु प्रामाणिक आधार के अभाव में ऐसा अनुमान किया जाता है कि अभिलेखों में आया हुआ यह राजा पुराणों में वर्णित पुलुमायि-प्रथम अथवा इसी वंश का उसी नाम का कोई अन्य राजकुमार हो सकता है। डी० सी० सरकार के अनुसार, पार्जिटर की सूची में लिया गया अंतिम नाम इसी राजा का है। मुद्राओं के आधार पर कहा जा सकता है कि पुलुमायि का राजनैतिक प्रभाव कारोमण्डल-तट तक और सम्भवतः मध्यप्रदेश के चण्ड प्रदेश तक फैला हुआ था। परन्तु, इस बात का हमारे पास कोई प्रमाण नहीं है, अतः इसको प्रामाणिक रूप से सिद्ध नहीं किया जा सकता। साथ ही साथ मातृनाम 'वासिष्ठीपुत्र' के उल्लेख के अभाव में यह कहना सम्भव नहीं होगा कि इस उल्लेख में गौतमीपुत्र महान् के पुत्र की ओर ही संकेत किया गया है।

वास्तव में वासिष्ठीपुत्र पुलुमायि १३० ई० के बाद ही सिंहासनारूढ़ हुआ होगा। कार्ले-अभिलेख से ज्ञात होता है कि उसने लगभग २४ वर्षों तक राज्य किया, अतः उसका शासन-काल सन् १५४ ई० तक रहा होगा। पार्जिटर ने राजाओं की

जो पौराणिक सूची बनाई है, उसके अनुसार पुलोमा के उत्तराधिकारी शिवश्री[1] पुलोमा तथा शिवस्कन्द (अथवा शिवस्कन्ध)[2] शातकरिण थे ।

यज्ञश्री शातकर्णि[3]

पार्जिटर के अनुसार, शिवस्कन्द के उत्तराधिकारी यज्ञश्री थे। यदि पुराणों पर विश्वास किया जाये तो उनका राज्याभिषेक गौतमीपुत्र शातकरिण के राज्य के ३५वें वर्ष के उपरान्त, अर्थात् सन् १६५ ई० के बाद हुआ होगा तथा शासन सन् १९४ ई० के बाद समाप्त हुआ होगा ।

महाराष्ट्र में नासिक, अपरान्त में कन्हेरी, तथा कृष्णा जिले में चीन आदि स्थानों पर ऐसे अभिलेख प्राप्त हुए हैं, जिनके आधार पर कहा जा सकता है कि यज्ञश्री ने २७ वर्षों तक राज्य किया । गुजरात, काठियावाड़, अपरान्त, मध्यप्रदेश के चण्ड जिले तथा वर्तमान मद्रास प्रान्त के कृष्णा जिले में उसके राज्य-काल की मुद्रायें प्राप्त हुई हैं । इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि यज्ञश्री का शासन महाराष्ट्र तथा आन्ध्र प्रदेश, दोनों पर था और उसने रुद्रदामन-प्रथम के उत्तराधिकारियों से अपरान्त (उत्तरी कोंकण) को पुनः जीत लिया था । स्मिथ के अनुसार, उज्जैन के शकनरेशों की चाँदी की मुद्राओं के समान उसने भी अपनी मुद्रा चलवाई । इससे अनुमान लगाया जाता है कि कदाचित् उज्जैन के शक-राज्य पर उसने अपना अधिकार कर लिया था । कुछ मुद्राओं पर जहाज़ भी अंकित है, जिससे अनुमान लगाया जाता है कि

---

[1] *Journal of the Num. Soc.*, II (1940), p. 88 में मिराशी का कथन है कि तरहाल में मुद्राओं का जो ढेर मिला है, उसमें प्राप्त शिवश्री पुलुमायि-तृतीय के सिक्के उसी शिवश्री पुलोमा के थे । इस राजा (पुलुमायि) तथा रैप्सन द्वारा बताये हुए राजा वासिष्ठीपुत्र शिवश्री शातकर्णि में विशेष अंतर था । लेकिन, विष्णु-पुराण में शिवश्री को शातकरिण कहा गया है, पुलुमायि नहीं ।

[2] मिराशी (*Ibid.*, 89) के अनुसार, अकोला ज़िले में पाये गये तरहाल सिक्कों के ढेर में उल्लिखित राजा सिरिखद अथवा स्कन्द शातकरिण यही था । स्मिथ ने 'चंड शातकरिण' तथा रैप्सन ने 'रुद्र शातकरिण' भूल से पढ़ लिया था । इस रुद्र को आंध्र देश का राजा बताया गया है ।

[3] *JRAS*, July, 1934, 560 ff. में डॉ० डी० सी० सरकार का कहना है कि इस राजा का नाम 'श्रीयज्ञ शातकर्णि' था जोकि मुद्राओं पर लिखा है, न कि 'यज्ञश्री' जो पुराणों में मिलता है। यह स्मरणीय है कि 'श्री' शब्द का प्रयोग आदरसूचक है, तथा सातवाहन-वंश के नरेशों के नाम के पूर्व इसका प्रयोग होता था (देखिये वेद में स्कन्दसिरि, हकुसिरि, बलश्री, शिवश्री आदि; रैप्सन, *Andhra Coins*, pp. xllvi, I, lii) । कुछ पत्रों में राजा के नाम के पूर्व 'श्री' आने का अर्थ यह नहीं कि 'श्री' शब्द का प्रयोग आदरसूचक नहीं था । खारवेल के प्रसिद्ध अभिलेख में राजा को 'सिरि खारवेल' तथा 'खारवेल-सिरि' दोनों ही कहा गया है । 'मुद्राराक्षस' में श्रीमत् चन्द्रगुप्त को 'चन्द-सिरि' कह कर सम्बोधित किया गया है (देखिये परिशिष्टपर्वन् में अशोक-श्री, IX, 14) ।

उसके साम्राज्य का विस्तार समुद्र पर भी था। उसे गोवा के कदम्बों, शिवाजी तथा अंग्रियों (Angrias)[1] आदि की ओर से समुद्री आक्रमण का भी था।

यज्ञश्री अपने वंश का अंतिम महान् शासक था। उसकी मृत्यु के पश्चात् कदाचित् आभीर-वंश के राजा ईश्वरसेन[2] ने उत्तरी-पश्चिमी महाराष्ट्र को सातवाहनों के हाथ से छीन लिया। ऐसा प्रतीत होता है कि सातवाहन-वंश के अंतिम राजाओं, अर्थात् विजय, चण्डश्री (चन्द्रश्री) तथा पुराणों में वर्णित पुलुमावि—का राज्य बरार, पूर्वी दक्षिण तथा कनेरी प्रदेश तक ही सीमित रह गया था।[3] मुद्राओं के द्वारा भी प्रमाणित होता है कि विजय नाम का एक शासक था।[4] चण्डश्री और कोई न होकर वासिष्ठीपुत्र 'सामि-सिरि चंड सात' ही था। इसका ज्ञान हमें

---

[1] *Coins of the Andhra Dynasty*, p. 22 में रैप्सन कहते हैं कि कोरोमण्डल-तट पर कुछ मुद्रायें जस्ते की मिली हैं। इनमें से हर मुद्रा की एक ओर दो मस्तूलों वाला जलयान है। यद्यपि उस पर का लेख ठीक से पढ़ा नहीं जाता, तो भी उस पर अंकित **'सिरि पु(लुमा) विस'** स्पष्ट समझ में आता है।

[2] पतञ्जलि के महाभाष्य में सर्वप्रथम आभीर-वंश का उल्लेख मिलता है। महाभाष्य तथा महाभारत दोनों ही उनका सम्बन्ध शूद्रों से बताते हैं। सिकन्दर के इतिहासकारों ने उन्हें सोद्रई कहा है। उनके देश अबीरिया का उल्लेख पेरीप्लस तथा तोलेमी दोनों ने किया है। दूसरी शताब्दी के तीसरे चरण में पश्चिमी भारत के शक-नरेशों के यहाँ आभीर लोग सेनापति के रूप में काम करते थे। कुछ समय पश्चात् एक आभीर योद्धा ईश्वरदत्त महाक्षत्रप बन गया। इसमें अभी सन्देह है कि उसका सम्बन्ध शिवदत्त के पुत्र आभीर राजा माढरीपुत्र ईश्वरसेन से था, अथवा नहीं। कुछ विद्वान् दोनों को एक ही व्यक्ति मानते हैं। यह भी कहा जाता है कि अपरान्त का त्रैकुटक-वंश यही वंश था। त्रैकुटक-संवत् २४८ का आरम्भ उसी समय से होता है जब उत्तरी महाराष्ट्र तथा उसके आसपास के प्रदेशों की सत्ता आभीर-वंश ने सातवाहनों से ग्रहण की। त्रैकुटक-वंश के अंतिम राजा का नाम इन्द्रदत्त था। उसका पुत्र धरसेन (४५५-४५६ ई०) और उसका पुत्र व्याघ्रसेन था जिससे वाकाटक राजा हरिषेण ने राज्य-सत्ता हस्तान्तरित कर ली।

[3] बरार (अकोला) की सूची में कुछ ऐसे राजकुमारों के नाम भी आये हैं जिनका उल्लेख पुराणों में नहीं है, जैसे श्री कुम्भ शातकर्णि, श्री कर्ण शातकर्णि (यदि इसे पार्जिटर की सूची के १४वें राजा स्वातिकर्ण से न मिलाया जाय) तथा श्री शक शातकर्णि (मिराशी, *J. Num. Soc.*, II, 1940)। चण्ड में मिले सिक्कों में आये कृष्ण-द्वितीय का वास्तविक नाम, मिराशी के अनुसार, कर्ण था। जिन राजाओं के सम्बन्ध में अभी तक प्रायः ज्ञात नहीं हो सका है, वे अमरावती-लेख के श्री सिवमक सात तथा कन्हेरी के माठरीपुत्र श्री सात हैं।

[4] मिराशी, *Journal of the Num. Soc. of India*, II (1940), p. 90. स्पष्ट रूप से पढ़े जाने वाले शब्द केवल 'य-शातकर्णि' हैं। अतः 'विजय' शब्द का केवल अनुमान ही लगाया गया है।

गोदावरी प्रान्त में स्थित पिठापुरम के निकट प्राप्त कोदावली-चट्टान-लेख से होता है। डी० सी० सरकार के अनुसार, वेलारी ज़िले में प्राप्त म्याकदोनी-लेख में उल्लिखित राजा पुलुमावि ही पुलमायि है। हमें मुद्राओं के द्वारा कुछ दूसरे राजाओं का भी पता चलता है, जो सम्भवतः अंतिम सातवाहन-काल के रहे होंगे। कृष्णा, गुण्टूर तथा बेलारी ज़िले में सातवाहनों का राज्य धीरे-धीरे इक्ष्वाकुओं[1] तथा पल्लवों[2] के हाथ में आ गया।

---

[1] कृष्णा ज़िले के जगय्यपेत-स्तूप के अवशेष से प्राप्त अभिलेख तथा गुण्टूर ज़िले के गुर्जल तथा नागार्जुनिकोण्ड अभिलेखों से इक्ष्वाकुओं का पता चलता है (*Ep. Ind.*, 1929, 1 f; 1941, 123 f)। सम्भवतः प्राचीन मैसूर के शासक कैकेयों से इनका वैवाहिक सम्बन्ध भी था (Dubreuil, *AHD*, pp. 88, 101)। पूर्वी दक्षिण में इक्ष्वाकु-वंश के प्रसिद्ध शासक चांतमूल, श्री वीरपुरुषदत्त, एहुवल चांतमूल-द्वितीय, और कदाचित् रुलुपुरिसदात थे (*Ep. Ind*, xxvi, 125)। इक्ष्वाकु के पश्चात् गुण्टूर के राजा आनन्द, कुदुराहार (मछलीपट्टम के निकट) के बृहत्-फलायन, वेंगी के शालंकायन (देखिये *IA*, 5. 175 और तोलेमी के अनुसार, सालाकेनोई) तथा लेंदुलूर (वेंगी के निकट) के विष्णुकुण्डिन ने सत्ता हस्तान्तरित करके आपस में बांट ली।

[2] सुदूर दक्षिण में सातवाहनों के बाद जितने भी वंश हुए, उन सब में अधिक शक्तिशाली पल्लव थे। यद्यपि इनकी उत्पत्ति के बारे में हम कुछ नहीं जानते, फिर भी वे अपने को अश्वत्थामन तथा नाग-राजकुमारियों की संतान बताते हैं। अपने को भारद्वाज गोत्र का ब्राह्मण कहने वाले, अश्वमेध यज्ञ करने वाले और संस्कृत भाषा के संरक्षक होने के नाते उनका सम्बन्ध शुंग-वंश से जोड़ा जा सकता है, जबकि ब्राह्मण-नाग-सम्बन्ध (देखिये संकीर्ण जाति, ब्रह्मक्षत्र, *SII*, Vol. xii, Nos. 7, 48), वैदिक यज्ञादि (जिसमें अश्वमेध यज्ञ भी है), बेलारी ज़िले में प्राचीन सातवाहन-जनपद के साथ सम्बन्धित होने की स्थिति तथा प्राकृत भाषा के प्रयोग के कारण वे सातवाहनों से सम्बन्धित बताये जाते हैं। फिर, यह कि इस वंश के किसी भी व्यक्ति का नाम पार्थियनों जैसा न होने के कारण, समझा जाता है कि इनका सम्बन्ध पार्थियनों से नहीं था। मुकुट में हाथी की हड्डी के प्रयोग से ही किसी जाति विशेष का बोध नहीं होता। चोल-वंश के साथ घोर शत्रुता के होने तथा उत्तरी सभ्यता को अपनाने के कारण विश्वास किया जाता है कि उनका सम्बन्ध तमिल जाति से नहीं था। गुंटूर के 'मयिदवोलु' तथा बेलारी में 'हिरहडगल्लि' के अभिलेखों से ज्ञात होता है कि शिवस्कन्दवर्मन पल्लव-वंश का प्रथम महान् राजा था, जिसका राज्य कांची, आंध्रपथ सातार्हनि रट्ठ तक फैला हुआ था और उसने अश्वमेध यज्ञ भी किया था। चौथी शताब्दी के मध्य में महाराज समुद्रगुप्त ने दक्षिणी भारत पर आक्रमण किया, तथा वहाँ के पल्लव शासक विष्णगोप को पराजित कर कांची-जैसे शक्तिशाली राज्य को ऐसा आघात पहुँचाया कि आगे चल कर यही उसके पतन का कारण बन गया। परन्तु पेनुकोन्दा-प्लेट, तालगुण्द-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सातवाहन-काल में प्रान्तीय शासन

सातवाहन-नरेशों के आन्तरिक शासन के सम्बन्ध में थोड़ा उल्लेख आवश्यक है। राजा या तो 'प्रतिष्ठान' में रहता था, या गोवर्धन (नासिक ज़िला), वैजयन्ती (उत्तरी कनारा)[1] तथा अन्य स्थानों के सैन्य-स्कान्धावार में।

सम्पूर्ण राज्य प्रशासकीय इकाइयों में विभाजित था, जिन्हें आहार अथवा 'जनपद' कहते थे। इनके शासक दो प्रकार के होते थे: (१) असैनिक कार्यों के

अभिलेख, तथा हेबात-दानपत्र (*IHQ*, 1927, 434) से प्रतीत होता है कि कुछ समय तक पल्लव राजाओं का आधिपत्य अनन्तपुर तथा पूर्वी मैसूर के गंगों, वैजयन्ती (बनवासी) तथा महिष-विषय (मैसूर) के कदम्बों ने भी स्वीकार किया था। पाँचवीं तथा छठी शताब्दी में पल्लवों का इतिहास अंधकारमय है। कुछ अभिलेखों में निम्नलिखित नरेशों की सूची दी गयी है, लेकिन इनके बारे में कोई जानकारी नहीं मिलती—

कृष्णा, गुण्टूर तथा नेल्लोर ज़िले के शासक	**कांची के नरेश**	
	विष्णुगोप-प्रथम स्कन्दमूल काणगोप वीरकूर्च-द्वितीय* स्कन्दवर्मन-प्रथम (स्कन्दशिष्य) कुमारविष्णु-प्रथम (कांची को पुनः जीता) बुधवर्मन (चोलों को पराजित किया) स्कन्द-द्वितीय कुमार-विष्णु-द्वितीय	वायलूर-वेलूरपलैयम, (दर्शि तथा चेन्दलूर दानपत्रों से)

* जिनमें इस प्रकार के चिह्न हैं, वे दोनों में हैं, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि यही ठीक है। इस दिशा में अभी और अधिक अनुसंधान की आवश्यकता है।

[1] उदाहरण के लिए, नवनर—जो कि सम्भवतः कल्लोन पोर्ट (Port of Calliena) का समानार्थी है जिसका प्राचीन नाम 'कल्याण' है और जिसे 'नवानगर' कहा गया है (*Bombay Gazetteer*, XIV. 114)।

अध्यक्ष को अमात्य, तथा (२) सैनिक राज्यपाल को महासेनापति, महारथी, महाभोज और कभी-कभी राजन् भी कहते थे । अपरान्त (उत्तरी कोंकण), गोवर्धन (नासिक), मामाद(ल) (पूना), बनवासी (उत्तरी कनारा) और खड्वली (गोदावरी-क्षेत्र) के प्रशासक अमात्य थे, जबकि चीतलद्रुग, नानाघाट, कार्ले और कन्हेरी (उत्तरी कोंकण में) सैनिक प्रशासकों, अर्थात् महारथियों के अधीन थे ।

	कुमारविष्णु	बुद्धवर्मन	
		स्कन्दवर्मन-तृतीय	
	स्कन्दवर्मन-प्रथम	विष्णुगोप-द्वितीय	
		विष्णुदास	
	वीरवर्मन*	स्कन्दवर्मन-चतुर्थ	
		सिंहवर्मन-प्रथम[1]	
	(१) विजय स्कन्दवर्मन-द्वितीय (तांब्राप)[2]	वीरवर्मन*	
		स्कन्दवर्मन-पंचम	
	(२) युव-महाराज विष्णुगोप (पलक्कद)	सिंहवर्मन-द्वितीय (४३६ ई० ?)	
		स्कन्दवर्मन-षष्ठम	
ओंगोड प्रथम और द्वितीय वुरुवुपल्लि	(३) सिंहवर्मन (दशनपुर, मेनमातुर और वेंगोराष्ट्र)	नन्दिवर्मन-प्रथम सिंहवर्मन-तृतीय, चतुर्थ (दो राजा इसी नाम के)	उदयेन्दिरम दानपत्र
मांगलूर, पिकिर, विलवत्ति तथा चूर दानपत्र	(४) विजय-विण्णुगोपवर्मन (विजय-पलोत्कट)	विष्णुगोप-तृतीय सिंहवर्मन-पंचम सिंहविष्णु	लोक-विभाग ४५८ ई० तथ पेनुकोण्डा-प्लेट
		महेन्द्रवर्मन-प्रथम	
		नरसिंहवर्मन-प्रथम (पुलकेशिन-द्वितीय का समकालीन)	

* जिनमें इस प्रकार के चिह्न हैं, वे दोनों में हैं; परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि यही ठीक है । इस दिशा में अभी और अधिक अनुसंधान की आवश्यकता है ।

[1] पलनाद-अभिलेख में भी सीहवर्मन का उल्लेख है, परन्तु उसकी तिथि आदि के बारे में निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता ।

[2] तांब्राप को चेम्ब्रोलु भी कहा जाता है ।

ये प्रशासक आपस में, राजघरानों तथा छुतु, कौशिक तथा वासिष्ठ[१] जाति से अपने वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करते थे, और कभी-कभी राजघरानों के नाम पर भी अपने नाम रख लिया करते थे। उदाहरणार्थ, महाभोजों का बनवासी के छुतु शासकों से अत्यन्त निकटतम सम्बन्ध था। यज्ञश्री के शासन-काल में नासिक तथा पुलुमायि के शासन-काल में बेलारी 'महासेनापति' के अधीन प्रशासकीय इकाइयाँ थीं। सैनिक शासकों में कुछेक का कौशिक-वंश[२] से वैवाहिक सम्बन्ध था और इन सैनिक शासकों के शासन-काल की झलक सातवाहन-वंश के अन्तिम समय तक मिलती है। कोल्हापुर-क्षेत्र के प्रशासकों की उपाधि 'राजा' की थी। इनमें से अधिक प्रसिद्ध वासिष्ठीपुत्र विलिवायकुर, माठरीपुत्र शिवलकुर तथा गौतमीपुत्र विलिवायकुर-द्वितीय थे। विलिवायकुर-कुल से हमें अनायास ग्रीक-भूगोलवेत्ता तोलेमी (सी० १५० ई०) द्वारा उल्लिखित हिप्पोकौर के बेलिओकौरोस की याद आ जाती है।

सातवाहन-राज्य के पतन के बाद इन्हीं सामन्तों, सैनिक तथा असैनिक प्रशासकों के द्वारा छोटे-छोटे राज्यों का विकास हुआ। उदाहरण के लिए, शालंकायन (सालाकेनोइ) लोग शुरू-शुरू में आन्ध्र के सामन्त (उपशासक) की हैसियत रखते थे, जिन्होंने आगे चलकर स्वतन्त्र आन्ध्र-राज्य स्थापित कर लिया और इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि बेलारी ज़िले के सैनिक राज्यपाल ही आगे चल कर पल्लव-नरेश बने।

कुन्तल के शातकर्णि

बलश्री के पुत्र गौतमीपुत्र-महान् के राज्य-काल में बनवासी अथवा वैजयन्ती (कनारा) सम्भवतः शिवगुप्त नामक अमात्य के अधीन एक राजकीय प्रान्त था। कुछ अज्ञात कारणों से इस प्रदेश का शासन एक ऐसे वंश के हाथों में चला गया, जो अभिलेखों[३] के अनुसार, छुतु-वंश के नाम से प्रसिद्ध है। लेकिन, सातवाहन शातकर्णि तथा छुतु-वंश के आपसी सम्बन्धों के बारे में कोई जानकारी नहीं मिलती। म्याकदोनी-अभिलेख तथा वात्स्यायन के 'कामसूत्र', 'गाथासप्तशती' और 'काव्य-मीमांसा' से ज्ञात होता है कि कुन्तल अथवा कनेरी देश में छुतु-कुल के पूर्व सातवाहनों की ही एक शाखा का शासन था। उनमें से कुछ तो प्राकृत भाषा के बड़े संरक्षक थे। इनमें 'हाल' सर्वाधिक प्रसिद्ध था। पुराणों के अनुसार, हाल के पूर्वज 'कामसूत्र' में उल्लिखित कुन्तल शातकर्णि थे जो स्वयं भी प्राकृत भाषा के एक महान् संरक्षक थे। छुतु-वंश के प्रतिनिधि शासक हारितीपुत्र विष्णुकड-छुतु कुलानन्द शातकर्णि थे। ये वैजन्तीपुर के राजा थे। इनके नाती (पुत्री के पुत्र) शिवस्कन्द-नागश्री थे, जो प्रो० रैप्पन के अनुसार, कन्हेरी-अभिलेख में उल्लिखित स्कन्दनाग शातक अथवा वैजयन्ती के राजा

---

[१] आगे चलकर 'वसिष्ठ-वंश' कलिंग के शासक के रूप में प्रसिद्ध हुआ।

[२] कौशिकीपुत्र शातकर्णि का ज्ञान हमें एक मुद्रा से होता है (*Bibliography of Indian Coins*, Part I, 1950, p. 36)।

[३] कुछ विद्वानों का मत है कि 'छुतु' किसी राजवंश का नाम नहीं था। उनके अनुसार, यह व्यक्तिगत नाम हो सकता है (*Prog. Rep. of the ASI W Circle*, 1911-12, p. 5)।

हारितीपुत्र शिव (स्कन्द) वर्मन थे, जिनका उल्लेख मैसूर के शिमोगा ज़िले से प्राप्त मालावल्ली-अभिलेख में मिलता है। अंतिम नाम के बारे में अभी संदेह है, क्योंकि विष्णुकड की माता एवं पुत्री का एक ही गोत्र का होना कठिन प्रतीत होता है। स्पष्ट है कि हारितीपुत्र शिववर्मन के पश्चात् कदम्ब-वंश[1] वालों के हाथ में सिंहासन आ गया।

३. उज्जैन तथा काठियावाड़ के शक

पुनर्स्थापित सातवाहन-साम्राज्य के सबसे बड़े शत्रु उज्जैन के शक-क्षत्रप थे। शक-वंश का प्रथम शासक यशमोतिक था जो महाक्षत्रप चाश्तान का पिता था। यशमोतिक एक शक[2] नाम है। यशमोतिक के जिस उत्तराधिकारी को चन्द्रगुप्त-द्वितीय ने पराजित किया, उसे महाकवि बाण ने अपने 'हर्षचरित' में एक शक राजा कहा है। अतः इतिहासकारों का अनुमान है कि उज्जैन के क्षत्रप शक-वश के थे।

इस वंश का वास्तविक नाम हमें ज्ञात नहीं है। रैप्सन का अनुमान है कि सम्भवतः इस राजवंश का नाम कार्द्दमक वंश था। रुद्रदामन की पुत्री ने गर्व के साथ अपने को कार्द्दमक-वंश का बताया है। परन्तु, इसके लिए उसे अपनी माता का आभारी होना चाहिये था। फ़ारस में कार्दम नाम की एक नदी है, उसी के आधार पर इस वं का नाम कार्द्दमक पड़ा।[3]

डुब्रील के अनुसार, चाश्तान ७८ ई० में गद्दी पर बैठा था, तथा शक-सम्वत् का जन्मदाता भी वही था। परन्तु यह बात असम्भव-सी प्रतीत होती है, क्योंकि उसकी राजधानी उज्जैन थी (जिसे तोलेमी ने ओज़ेन (Ozene) कहा है) जबकि पेरीप्लस के

---

[1] १. कदम्ब-वंश का संस्थापक 'मयूरशर्मन' नामक एक ब्राह्मण था, जो 'वृहद् बाण' तथा अन्य राजाओं की सहायता से पल्लव-राजाओं के विरुद्ध उठ खड़ा हुआ और पल्लवों को इस बात के लिए विवश कर दिया कि वे उसे सैनिक राज्यपाल का 'पट्टबन्ध' (पत्रबन्ध) प्रदान कर दें। शीघ्र ही उसने अपने राज्य की सीमा पश्चिमी घाट तक विस्तृत कर ली। उसके प्रपौत्र काकुस्थवर्मन ने अपनी पुत्रियों का विवाह गुप्त तथा अन्य नरेशों के साथ किया। इसी वंश के कृष्णवर्मन-प्रथम ने अश्वमेध यज्ञ भी किया। मृगेशवर्मन ने गंगों तथा पल्लव-नरेशों को पराजित कर वैजयन्ती को अपनी राजधानी बनाया। इसी वंश के छोटे राजकुमार पलाशिका, उच्चश्रृङ्गी तथा त्रिपर्वत पर राज्य करते थे। अन्त में चालुक्यों ने अंतिम रूप से उन्हें पराजित कर दिया (देखिये मोरेस, 'कदम्बकुल', Sircar, *JIH*, 1936, 301 ff)।

[2] २. *JRAS*, 1909, p. 211. लेवी तथा एस० कोनोव (*Corpus*, II, i. lxx) यशमोतिक को 'भूमक' बताते हैं, क्योंकि शक शब्द 'यशम' का अर्थ 'भूमि' होता है। परन्तु, आवश्यक नहीं कि नाम के अर्थ पर ही कोई व्यक्ति हो। इस सम्बन्ध में देखिये कुमारगुप्त तथा स्कन्दगुप्त।

[3] ३. पारसिक। शाम शास्त्री द्वारा अर्थशास्त्र का अनुवाद, p. 86. देखिये *IHQ*, 1933, 37 ff. *Cf.* the Artamis of Ptolemy VI. 11.2—ऑक्सस की एक सहायक नदी।

लेख से ज्ञात होता है कि प्रथम शताब्दी के सातवें दशक में उज्जैन राजधानी थी ही नहीं।[1] पेरीप्लस में ओज़ेन को पुरानी राजधानी कहा गया है जिसका स्पष्ट अर्थ है कि इस ग्रन्थ की रचना के समय वह राजधानी नहीं थी। चाश्तान की सबसे पहली ज्ञात तिथि शक-सम्वत् ५२, अर्थात् सन् १३० ई० है। आन्धव-अभिलेख के अनुसार, चाश्तान सन् १३० ई० में अपने पौत्र रुद्रदामन के साथ-साथ शासन कर रहा था। प्रोफ़ेसर रैप्सन तथा डॉ० भण्डारकर लिखते हैं कि उसकी विदेशी उपाधि क्षत्रप तथा उसकी अपनी मुद्राओं पर खरोष्ठी लिपि का प्रयोग — इन दोनों बातों से सिद्ध होता है कि वह किसी विदेशी शासक—सम्भवतः उत्तर के कुषाणों द्वारा नियुक्त एक उपशासक था। चाश्तान का पुत्र जयदामन मात्र एक क्षत्रप ही रहा और अपने पिता के पहले ही उसकी मृत्यु हो गयी। अतः चाश्तान के पश्चात् उसका पौत्र रुद्रदामन-प्रथम सिंहासनासीन हुआ और उसने महाक्षत्रप की उपाधि धारण की।

सम्वत् ५२ तथा ७२ (सन् १३० से १५० ई०) के बीच किसी भी समय **रुद्रदामन**[2] ने स्वतंत्र शासक बन कर महाक्षत्रप की उपाधि धारण की। सम्वत् ७२ के जूनागढ़-शिलालेख से ज्ञात होता है कि सभी जातिवालों ने उसे अपना संरक्षक चुना, और इसीलिए उसने अपने को 'महाक्षत्रप' कहना आरम्भ किया। इससे अनुमान लगाया जाता है कि किसी दूसरे ने—सम्भवतः गौमतीपुत्र ने— उसके वंश की शक्ति कम कर दी थी और उसने अपने बाहुबल से उसे फिर स्थापित किया।

लेख में आये हुए नाम से अनुमान होता है कि रुद्रदामन ने अपना राज्य पूर्वापर-आकर-अवन्ती (पूर्वी तथा पश्चिमी मालव), अनूप-निवृत्त अथवा माहिष्मती प्रदेश (निमाड़ में मांधाता अथवा महेश्वर)[3], आनर्त्त[4] (द्वारका के आसपास का प्रदेश), सुराष्ट्र (जूनागढ़ के आसपास का प्रदेश), स्वभ्र (साबरमती-तट के प्रदेश),

---

[1] पेरीप्लस में Nabataeans के राजा मलिकोस (मलिकु) का उल्लेख आया है। इनकी मृत्यु ७५ ई० में हुई थी। Auxumites के राजा ज़ोस्केलीज़ (ज़ाहकेल) (राज्य सन् ७६ ई०-८० ई०) का भी उल्लेख है (*JRAS*, 1917, 827-830)।

[2] साहित्य में रुद्रदामन के लिए, देखिये Chatterjee, *Buddhistic Studies* (ed. Law), p. 384 f.

[3] *IA*, 4, 346.

[4] कुछ विद्वानों के अनुसार, 'आनर्त्त' वडनगर ज़िले के आसपास का प्रदेश था (*Bom. Gaz.*, I, i, 6)। अतः कुकुर को द्वारका प्रदेश में होना चाहिये। भागवत पुराण (1, 11, 10) में द्वारका को **'कुकुरान्धक-वृष्णिभिः गुप्ता'** कहा गया है। वायु पुराण (Ch. 96. 134) में यादव राजा उग्रसेन को कुकुर-वंश का (**कुकुरोद्भव**) कहा गया है। महाभारत (III, 183, 32) में भी कुकुरों को दशार्हों तथा यादव जाति के अंधकों के निकट का बताया गया है। महाभारत (II, 52, 15) में ही उनको अम्बष्ठों तथा पह्लवों के साथ जोड़ा गया है। कदाचित् उनकी एक शाखा चिनाव तथा सिन्धु की घाटी में निवास करती थी, जबकि दूसरी काठियावाड़ में रहती थी।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मरु (मारवाड़), कच्छ (कच), सिन्धु-सौवीर (सिन्धु-घाटी का निचला भाग)[१], कुकुर (सम्भवतः सिन्ध तथा पारियात्र पर्वत के बीच का भाग)[२], अपरान्त (उत्तरी कोंकण)[३], निषाद (सरस्वती तथा पश्चिमी विन्ध्यप्रदेश)[४], आदि तक फैला रखा था। इन स्थानों में से सुराष्ट्र, कुकुर, अपरान्त, अनूप तथा आकरावन्ती गौतमीपुत्र के राज्य के भाग थे जिसे या तो स्वयं गौतमीपुत्र या उसके उत्तराधिकारियों से, महाक्षत्रप रुद्रदामन ने जीता होगा। जूनागढ़-अभिलेख से ज्ञात होता है कि रुद्रदामन ने दक्षिण के सम्राट् शातकर्णि को दो बार पराजित किया, परन्तु निकट सम्बन्धी होने के कारण उसे नष्ट नहीं किया। डॉ० डी० आर० भण्डारकर के अनुसार, यह शातकर्णि स्वयं गौतमीपुत्र था, जिसका पुत्र वासिष्ठीपुत्र शातकर्णि, रुद्रदामन का दामाद था। रैप्सन के अनुसार, शक-नरेश के हाथों पराजित होने वाला दक्षिण का शासक पुलुमायि था। इस बात की सम्भावना अधिक मालूम होती है कि पराजित राजा वासिष्ठीपुत्र शातकर्णि स्वयं रहा होगा जो कदाचित् पुलुमायि का भाई और पूर्ववर्ती शासक था।

महाक्षत्रप रुद्रदामन ने सतलज के पास जोहियाबार के यौधेयों को भी पराजित किया था। एक प्रस्तर-लेख के अनुसार, इन यौधेयों ने भरतपुर राज्य के विजयगढ़-क्षेत्र को भी अपने अधिकार में कर लिया था। यदि कुषाण-वंश की स्वीकृत तिथियाँ

---

१. सिन्धु नदी के पश्चिमी तट का अन्तर्वर्ती भाग सिंध कहलाता है (Watters, *Yuan Chwang*, II, 252, 253, read with 256; वात्स्यायन, कामसूत्र, बनारस-संस्करण, 295)। लिटोरल (मिलिन्दपञ्हो, *SBE*, XXXVI, 269) तथा सिन्धु नदी का पूर्वी अन्तर्वर्त्ती प्रदेश मुलतान तक सौवीर कहलाता था (अल्बेरूनी. I, 302; *IA*, 7, 259)। जैनियों के 'प्रवचनसारोद्धार' में 'वितभय' को इसकी राजधानी बताया गया है।

२. बृहत्संहिता, V, 71; XIV, 4.

३. अपरान्त प्रदेश का विस्तार (देखिये अशोक, RE, V) केवल सूरपारक तक ही नहीं था, बल्कि उसमें नासिक, भरुकच्छ, महीघाटी, कच्छ, सुराष्ट्र, आनर्त्त, आबू आदि भी शामिल थे (वायु पुराण, 45, 129 f; मत्स्य पुराण, 114, 50-51; मार्कण्डेय पुराण 57, 49 f.—पुराणों में दिया गया 'सूरपारकाः कच्चीयाः' तथा 'आनर्त्ताः' ग़लत हैं। इनके स्थान पर 'सूर्पारकाः काश्मीराः' तथा 'आवन्त्याः' होना चाहिये)। परन्तु, जूनागढ़ के लेख द्वारा अपरान्त को सुराष्ट्र तथा आनर्त्त से भिन्न बताया गया है। अतः, निश्चय ही इसका प्रयोग यहाँ अत्यन्त सीमित अर्थ में हुआ है।

४. देखिये 'निषाद-राष्ट्र', महाभारत, III, 130, 4. सरस्वती नदी के अदृश्य होने (विनाशन) के स्थान को निषाद-राष्ट्र का द्वार कहा गया है। 'पारियात्रचर:' भी देखें, महाभारत, XII, 135, 3.5 में भी यही है। महाभारत (ii, 31.4-7) में चम्बल तथा मत्स्य (जयपुर) के बीच के भाग को 'निषादभूमि' कहा गया है। वेद के आलोचक महीधर का कथन है कि निषाद का अर्थ भील है (*Vedic Index*, I, 454)। बूह्लर (*IA*, 7, 263) के अनुसार, 'निषादभूमि' हिसार तथा भटनीर का ही नाम था।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सत्य हैं तो निश्चय ही रुद्रदामन ने सिन्धु-सौवीर को कनिष्क-प्रथम के उत्तराधिकारियों में से किसी एक से छीन लिया होगा।

रुद्रदामन का दरबार उज्जैन में ही लगता रहा होगा। तोलेमी के अनुसार, यह नगर उसके पितामह चाश्तान की राजधानी था। आनर्त्त तथा सुराष्ट्र प्रान्त रुद्रदामन के पह्लव (पार्थियन) अमात्य[1] सुविशाख के शासन के अन्तर्गत थे। इस अमात्य ने प्रसिद्ध सुदर्शन झील पर एक नया बाँध बँधवाया था। सुदर्शन झील का निर्माण मौर्य काल में हुआ था, क्योंकि वे अपने साम्राज्य के दूरस्थ प्रान्तों में भी सिंचाई के साधन उपलब्ध कराने में रुचि रखते थे।

कहा जाता है कि व्याकरण (शब्द), अर्थ (राजनीति), संगीत (गंधर्व), न्याय (तर्कशास्त्र) के अध्ययन से रुद्रदामन ने ख्याति प्राप्त की थी। जहाँ तक उसके शासन में नैतिकता का प्रश्न है, हम यहाँ इस बात की चर्चा करना चाहेंगे कि युद्ध के क्षेत्र के बाहर नरहत्या न करने का उसने सिद्धान्त अपनाया और जीवन-पर्यन्त इसका पालन किया। सुदर्शन झील को ठीक कराने में जो बहुत अधिक धन व्यय हुआ, वह उसने अपने कोष से दिया और उस खर्च को पूरा करने के लिए वहाँ के स्थानीय लोगों पर बेगार, या कर इत्यादि नहीं लगाया गया।[2] शासन-व्यवस्था में राजा की सहायता के लिए विद्वान्, गुण-सम्पन्न मंत्रिजन हुआ करते थे। ये मंत्री दो प्रकार के थे—प्रथम, मतिसचिव—जो केवल मंत्रणा देते थे; तथा द्वितीय, कर्मसचिव—इनका कार्य राज्य की नीतियों को लागू करना था।

रुद्रदामन के कम से कम दो पुत्र तथा एक पुत्री थी। राजकुमारी का विवाह दक्षिण के सातवाहन-वंश के वासिष्ठीपुत्र श्री शातकर्णि के साथ हुआ था। नागार्जुनिकोण्ड-अभिलेख[3] में किसी एक उज्जैन की राजकुमारी रुद्रधर भट्टारिका का उल्लेख आता है जिसका विवाह गुण्टूर तथा कृष्णा-घाटी के आसपास के इक्ष्वाकु-वंशीय शासक के साथ हुआ था। वोगेल के अनुसार, वह राजकुमारी चाश्तान-वंश की थी, उसके पिता स्वामी रुद्रसेन-तृतीय (सी० ३४८ से ३७८ ई०) थे, और संभवतः सम्राट् समुद्रगुप्त के समकालीन थे। उन्होंने 'महाराज' की उपाधि धारण की थी। यह उपाधि रुद्रदामन-प्रथम के उत्तराधिकारी अक्सर अपने नाम के साथ लगाया करते थे। फिर

---

[1] अमात्य की इस उपाधि में सुराष्ट्र के शासक 'तुषास्फ़' (अशोक के राज्यकाल) के नाम के साथ पायी जाने वाली उपाधि 'राजा' तुलनीय है (*IA*, 7, 257n); जबकि कुछ ज़िलों तथा प्रान्तों में अमात्य शासन करते थे, और उनका कार्य केवल असैनिक होता था। परन्तु, अन्य प्रान्तों में 'महादंडनायक' राज्य करते थे। यह नाम साँची के अभिलेख में पुष्ट होता है (*JASB*, 1923, 343)।

[2] *Bomb. Gaz.*, I. 1. 39.

[3] *Ep. Ind.*, XX, 1 ff.

भी यह कहना अत्यन्त कठिन है कि इक्ष्वाकु-वंश की रानी (महादेवी) रुद्रसेन-तृतीय की पुत्री थीं, अथवा किसी दूसरे राजा की।

रुद्रदामन के पश्चात् उसका ज्येष्ठ पुत्र दामग़सद (Damaghsada) प्रथम सिंहासनारूढ़ हुआ। रैप्सन के कथनानुसार, उसकी मृत्यु के पश्चात् गद्दी के दो उत्तराधिकारी सामने आये—एक उसका पुत्र जीवदामन और दूसरा, उसका भाई रुद्रसिंह-प्रथम। इन दोनों के बीच हुए युद्ध में रुद्रसिंह विजयी हुआ। सम्वत् १०३ (ई० सन् १८१) का गुण्ड-लेख रुद्रसिंह के शासन-काल में लिखवाया गया था। इस लेख में एक तालाब के खुदवाये जाने की चर्चा है जिसे बापक अथवा बाहक नामक आभीर के पुत्र सेनापति रुद्रधूति ने बनवाया था। आगे चलकर इन्हीं आभीरों ने महाक्षत्रप-पद रुद्रदामन के उत्तराधिकारियों से छीन लिया। डॉ० भण्डारकर के अनुसार, ईश्वरदत्त नामक एक आभीर सेनापति सन् १८८-१९० ई० में 'महाक्षत्रप' था, परन्तु रैप्सन के अनुसार, ईश्वरदत्त सन् २३६ ई० के बाद हुआ था।

रुद्रसिंह के पश्चात् उसके पुत्र रुद्रसेन-प्रथम[1], संघदामन तथा दामसेन सिंहासन पर आसीन हुए। दामसेन के तीन पुत्र—यशोदामन, विजयसेन तथा दामजद-श्री महाक्षत्रप बने। दामजद-श्री के पश्चात् उसका भतीजा रुद्रसेन-द्वितीय और उसके पश्चात् उसके पुत्र विश्वसिंह और भर्तृदामन सिंहासनारूढ़ हुए। भर्तृदामन के शासन-काल में उसका पुत्र विश्वसेन मात्र क्षत्रप था।

भर्तृदामन तथा विश्वसेन के पश्चात् महाक्षत्रप रुद्रदामन-द्वितीय सिंहासन पर बैठा, परन्तु भर्तृदामन अथवा विश्वसेन से उसके संबंध के बारे में हमारे पास ज्यादा जानकारी नहीं है। इस वंश का अंतिम सम्राट् रुद्रसिंह-तृतीय था जिसने लगभग सन् ३८८ ई० तक राज्य किया।

रैप्सन का मत है कि सन् २९५ से लेकर सी० ३४० तक कोई भी महाक्षत्रप नहीं हुआ। ३०५ ई० के लगभग इस वंश की अग्रज शाखा का अंत हो गया, तथा उस परिवर्तनशील काल में कोई अज्ञातवंशी क्षत्रप तथा महाक्षत्रप के रूप में राज्य करने लगा। सन् २९५ से ३२२ ई० तक जितने भी शासक हुए, उन सभी ने 'क्षत्रप' जैसी दूसरे दर्ज़े की उपाधि धारण की, 'महाराज क्षत्रप' अथवा 'राजा महाक्षत्रप' जैसी स्वतंत्र उपाधि सन् ३४८ ई० के तनिक पूर्व रुद्रसेन-तृतीय ने फिर ग्रहण की थी। इस वंश के इस अन्धकारमय युग में ही—जब कि प्राचीन वश प्रायः लुप्त हो चुका था और महाक्षत्रप का पद रिक्त पड़ा था—शकस्थान और भारत के कुछ भागों पर ससानियन जाति का अधिकार हो गया और उन्होंने यहाँ अपने राज्यपाल नियुक्त किये। वर्ह्रान (बहराम) द्वितीय के शासन के अंत के पूर्व ही (२९३ ई०) ससानियन-वंश के लोगों ने विजय करना आरम्भ कर दिया तथा शापूर-द्वितीय (३०९-७९ ई०) तक अपने राज्य

---

१. मुलवासर तालाब का लेख तथा जसधन-स्तम्भ-लेख रुद्रसेन के शासन-काल (२०५ ई०) के ही हैं। जसधन-स्तम्भ-लेख में जयदाम को छोड़कर रुद्रसेन के सभी पूर्वजों के नाम के पूर्व 'भद्रमुख' शब्द का प्रयोग हुआ है।

को बनाये रखा। चौथी शताब्दी के मध्य में फ़ारस-निवासियों का भारत पर अधिकार शनैः-शनैः कम होता गया, जबकि रुद्रसेन-तृतीय ने 'महाराजा' की उपाधि धारण की तथा समुद्रगुप्त (कालिदास के रघुवंश के 'रघु') ने उत्तरी-पश्चिमी सीमा-प्रान्त के विदेशी शासकों को बाध्य किया कि वे उसे अपना सम्राट् स्वीकार करें।

पश्चिमी भारत में शकों ने यद्यपि अपना राज्य पुनःस्थापित कर लिया था, तो भी वह अधिक समय तक चल नहीं सका, और अंत में गुप्त-सम्राटों द्वारा शक पूर्ण रूप से पराजित हुए। समुद्रगुप्त के शासन-काल से ही हमने देखा कि शकों ने अपनी कन्याओं का विवाह करके तथा अन्य दूसरे सम्मानजनक उपायों से शान्ति से रह सकने का प्रयत्न करना आरम्भ कर दिया था। चन्द्रगुप्त-द्वितीय के उदयगिरि-अभिलेख से ज्ञात होता है कि उसने पूर्वी मालव को जीत कर अपने राज्य में मिला लिया था। एक अन्य लेख से ज्ञात होता है कि एक बार राजा के साथ एक मंत्री यहाँ आया था। राजा के आने के उपलक्ष्य में उसने एक गुफा बनवाई थी। एक लेख में 'सिंह-विक्रान्तगामिनि' शब्द के प्रयोग से ज्ञात होता है कि पश्चिमी मालव को चीत कर 'सिंह-विक्रम', अर्थात् चन्द्रगुप्त-द्वितीय ने मन्दसौर के नरवर्मन[1] को अपना उपशासक बना लिया था। चन्द्रगुप्त की रजत-मुद्राओं (जिन्हें उसने शक-क्षत्रपों की मुद्राओं के समान बनवाया था) से ज्ञात होता है कि उसने सुराष्ट्र को भी अपने राज्य में मिला लिया था। अंत में, 'हर्षचरित' में बाण का कथन है कि चन्द्रगुप्त ने किसी शक-राजा का वध किया था—

> **अरि (लि ?) पुरे च परकलत्र-कामुकं कामिनीवेश गुप्तश्च**
> **चन्द्रगुप्तः शकपतिमशातयदिति।**[2]

---

[1] *Ind. Ant.*, 1913, p. 162. चन्द्रगुप्त-द्वितीय ने छोटी-छोटी चाँदी की मुद्राएँ, जिन पर एक सुराहीनुमा बर्तन की आकृति बनी है, सम्भवतः मालव में चलायी होंगी जो दूसरी शताब्दी में शकों के अधिकार में रहा होगा (Allan, *CICAI*, cvi)।

[2] टीकाकार शंकर के अनुसार, 'परकलत्र' और 'कामनी' ध्रुवदेवी के लिए प्रयुक्त हुआ है; और, ध्रुवदेवी के वेश में (जिससे प्रेम करने के लिए शक-नरेश आगे वढ़ रहा था) स्वयं चन्द्रगुप्त ने जाकर शक-नरेश का वध कर दिया। भोज के 'शृंगार-प्रकाश' के द्वारा इस पर और अधिक प्रकाश पड़ता है, क्योंकि उसमें 'देवीचन्द्र-गुप्तम्' से कुछ अंश उद्धृत किया गया है (देखिये *Aiyangar Com. Vol.*, 359 ff; Levi, *J. A.*, 1923, 201 ff; रंगस्वामी सरस्वती द्वारा सम्पादित 'देवीचन्द्र-गुप्तम्': *Ind. Ant.*, 1923, p. 181 ff)। अंतिम कृति 'मुद्राराक्षस' के लेखक 'विशाखदत्त' द्वारा लिखी गई है। रामचन्द्र तथा गुणचन्द्र के 'नाट्य-दर्पण' में भी 'देवीचन्द्रगुप्तम्' से उद्धरण दिये गये हैं।

उज्जैन के शक-नरेशों की वंशावली

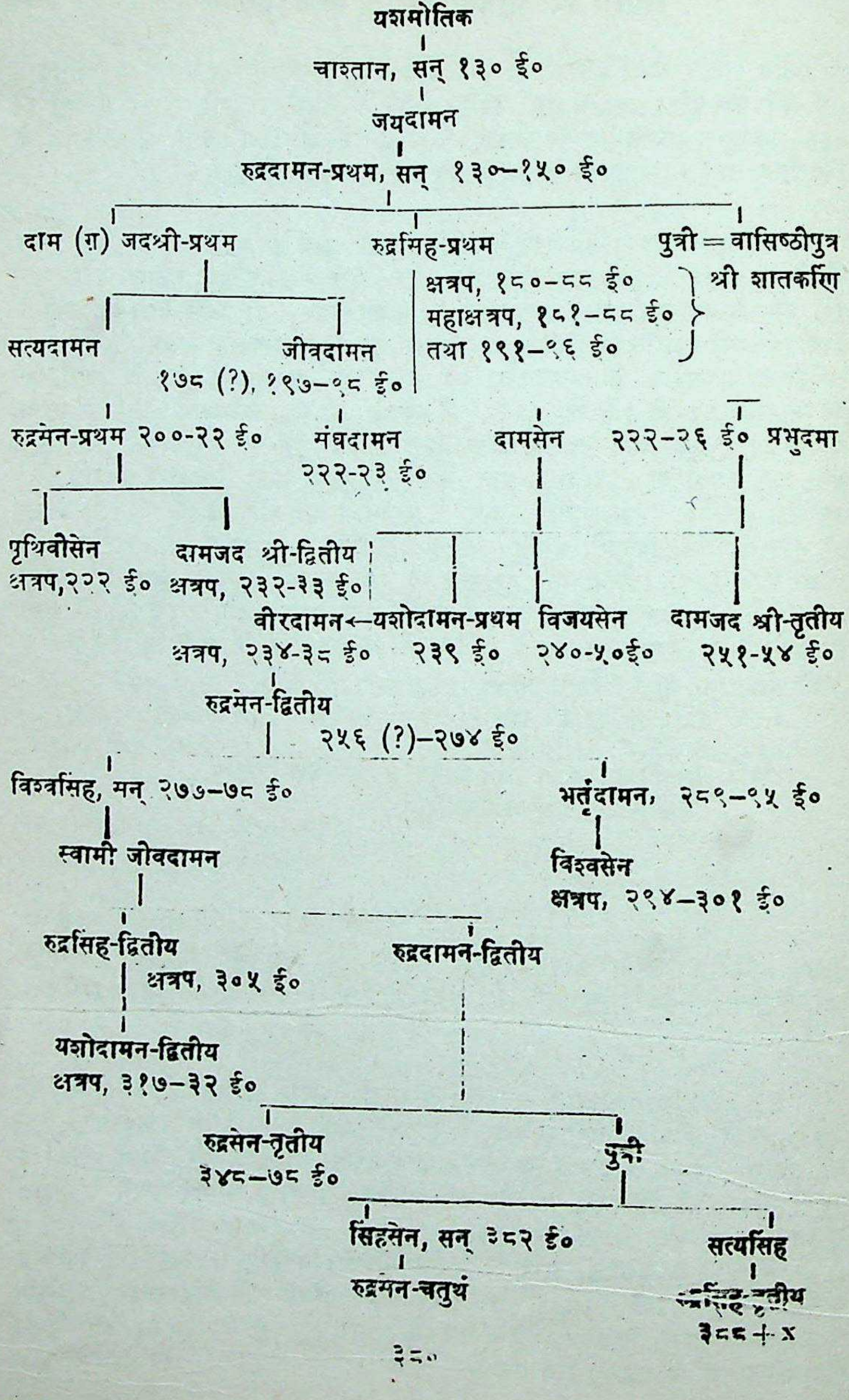
यशमोतिक
चाश्तान, सन् १३० ई०
जयदामन
रुद्रदामन-प्रथम, सन् १३०–१५० ई०
दाम (ग़) जदश्री-प्रथम
रुद्रसिंह-प्रथम
क्षत्रप, १८०–८८ ई०
महाक्षत्रप, १८१–८८ ई०
तथा १९१–९६ ई०
पुत्री = वासिष्ठीपुत्र श्री शातकर्णि
सत्यदामन
जीवदामन
१७८ (?), १९७–९८ ई०
रुद्रसेन-प्रथम २००-२२ ई०
संघदामन
२२२-२३ ई०
दामसेन
२२२–२६ ई०
प्रभुदमा
पृथिवीसेन
क्षत्रप, २२२ ई०
दामजद श्री-द्वितीय
क्षत्रप, २३२-३३ ई०
वीरदामन
क्षत्रप, २३४-३८ ई०
यशोदामन-प्रथम
२३९ ई०
विजयसेन
२४०-५०ई०
दामजद श्री-तृतीय
२५१-५४ ई०
रुद्रसेन-द्वितीय
२५६ (?)–२७४ ई०
विश्वसिंह, सन् २७७–७८ ई०
भर्तृदामन, २८९–९५ ई०
स्वामी जीवदामन
विश्वसेन
क्षत्रप, २९४–३०१ ई०
रुद्रसिंह-द्वितीय
क्षत्रप, ३०५ ई०
रुद्रदामन-द्वितीय
यशोदामन-द्वितीय
क्षत्रप, ३१७–३२ ई०
रुद्रसेन-तृतीय
३४८–७८ ई०
पुत्री
सिंहसेन, सन् ३८२ ई०
सत्यसिंह
रुद्रसेन-चतुर्थ
रुद्रसिंह-तृतीय
३८८ + x

४. सीथियन (शक)[१] युग का प्रशासन

सीथियन युग की शासन-प्रणाली के बारे में हमें जितना भी थोड़ा ज्ञात है, उसमे हम यह निष्कर्ष तो नहीं ही निकाल सकते कि उनकी शासन-पद्धति नये-नये सैनिक विजेताओं की अस्त-व्यस्त और अवैज्ञानिक शासन-पद्धति थी। बल्कि, इसकी जगह शताब्दियों और पीढ़ियों से चले आते हुए राजनीतिशास्त्रियों तथा व्यावहारिक प्रशासकों द्वारा विकसित वह एक उच्चकोटि की शासन-प्रणाली थी—यह कहना अधिक संगत होगा।

भारतीय शक-शासन-तंत्र पर राजनीतिक विचारकों (अर्थचिन्तकों) का गहरा प्रभाव दिखाई देता है। उस युग के सबसे योग्य राजकुमार को अर्थविद्या[२] की पूर्ण शिक्षा दी जाती थी। युवराज को हर प्रकार से प्रशिक्षित किया जाता था, और मंत्रिपद के लिए केवल वे ही व्यक्ति चुने जाते थे जिनमें अमात्य-गुण विद्यमान होते थे। मंत्रियों, अन्य उच्च पदाधिकारियों तथा सचिवों का वर्गीकरण किया जाता था। युवराज को बताया जाता था कि किसी प्रकार की बेगार (विष्ठि) आदि न लें। साथ ही नगरवासियों तथा देशवासियों के लिए लाभदायक एवं कल्याणकारी कार्य करें। इन बातों से यह सिद्ध होता है कि 'अर्थशास्त्र' की शिक्षाएँ सीथियन-शासन में एकदम लुप्त नहीं हो गयी थीं। उनकी शासन-प्रणाली पहले की शासन-प्रणाली से अधिक भिन्न नहीं थी। उनके यहाँ भी महामात्र[३], रज्जुक[४], संचरंतक अथवा सञ्चारिन[५] गुप्तचर आदि पाये जाते थे। इससे अनुमान होता है कि कम से कम दक्षिणी भारत में मौर्य-शासन-प्रणाली अभी एकदम समाप्त नहीं हो गयी थी।

परन्तु, इससे हमें यह अर्थ नहीं निकालना चाहिये कि सम्पूर्ण शासन-प्रणाली मौर्य-शासन-प्रणाली की नक़ल भर थी। उत्तरी-पश्चिमी भारत के विदेशी विजेता जिन देशों से भी विजय प्राप्त करते हुए आये, अपने साथ उन देशों में सहस्रों वर्षों से चली आ रही शासन-प्रणाली भी साथ लाये थे। तदनुसार उत्तर, पश्चिम तथा दक्षिण भारत के प्रान्तों में क्षत्रपीय शासन-प्रणाली चलाई गई थी। इसी तरह यूनानी उपाधि वाले मेरीदार्क (Meridarch[६], सम्भवतः ज़िला-अधिकारी) तथा स्ट्राटेगो

---

[१] 'सीथियन युग' का प्रयोग यहाँ पर हमने एक विस्तृत अर्थ में किया है। इसमें मौर्य-काल के पश्चात् आने वाले उन सारे राजवंशों का वर्णन है, जो ईस्वी सन् के आसपास राज्य करते थे। इस काल में अधिकतर भाग में सबसे शक्तिशाली सीथियन शासक (राजाओं का राजा) था, जिसकी राजधानी कहीं उत्तर-पश्चिम में थी, लेकिन उसका आदेश गंगा और गोदावरी के तट तक माना जाता था (देखिये *Cal. Rev.*, Sept., 1925)।

[२] रुद्रदामन का जूनागढ़-अभिलेख (*Ind. Ant.*, 1878, p. 261; *Ep. Ind.*, VIII, 36 f.)।

[३] *Luders' Ins.*, Nos. 937, 1144. सातवाहन-राजा ने एक श्रमण (जैन साधु) को अपना 'महामात्र' नियुक्त किया था।

[४] *Ins.*, Nos. 416, 1195. देहाती क्षेत्र में 'रज्जुक' भूमिमापक तथा न्यायाधीश हुआ करते थे।

[५] *Ins.*, No. 1200; *Cf. IA.* 5. 52, 155.

[६] स्वात खरोष्ठी-लेख में एक 'मेरीदार्ख थ्योदोरा' का भी उल्लेख मिलता

(Strategos, राज्यपाल अथवा सेनानायक) भारतीय उपाधि वाले अमात्यों (ज़िले का अधिकारी कोई मंत्री आदि) तथा महासेनापतियों (सैनिक राज्यपाल) के साथ-साथ शासन करते थे ।

शकों के निरन्तर आक्रमण होने पर भी बुद्ध तथा सिकन्दर के काल से चली आ रही कबाइली प्रजातंत्र-शासन-प्रणाली पूरी तरह समाप्त न हो सकी थी । अभिलेखों तथा मुद्राओं से ऐसे अनेक कबाइली तथा जातीय[1] राज्यों का पता चलता है । उनमें से लिच्छिवियों तथा शाक्यों की तरह ही अत्यन्त शक्तिशाली राज्य हमेशा अपने पड़ोसी शक-राजवंश से लोहा लिया करते थे । दुर्भाग्यवश उस समय की सामग्री में, उनके सम्बन्ध में हमें बहुत कम ही ज्ञात हो पाता है । ऐसी स्थिति में यह उचित नहीं प्रतीत होता कि हम उन शासन-प्रणालियों को, जिन्हें उनके पूर्वजों अथवा उत्तराधिकारों ने विकसित किया, उनके नाम के साथ जोड़ दें ।

यद्यपि सीथियन लोग सारे भारतीय लोकतंत्रों को समाप्त नहीं कर सके, फिर भी उन्होंने पश्चिमोत्तर भारत के कई राजवंशों को नष्ट करके वहाँ एक विशिष्ट प्रकार की अपनी राजतंत्र-व्यवस्था क़ायम की जिसमें राजा को अत्यधिक महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया था । इसका पता हमें दो बातों से चलता है—प्रथम, सारे सीथियन-सम्राटों द्वारा बड़ी-बड़ी दैवी उपाधियों का धारण करना; और दूसरे, मृत सम्राटों को देवता-रूप में स्वीकार करना । यद्यपि यह सत्य है कि प्राचीन काल में भी भारतीय नरेश अपने को दैवी सन्तति कहते थे तथा बड़ी-बड़ी उपाधियाँ धारण करते थे । फिर भी, यह ध्यान देने योग्य बात है कि अशोक-जैसे महान् सम्राट् ने, एक विशाल साम्राज्य का स्वामी होते हुए भी, अपने को केवल राजा अथवा 'देवानांपिय पियदसि'[2] कहकर ही संतोष किया था । परन्तु, सीथियन-काल के नरेश इस प्रकार की विनम्र उपाधियों से संतुष्ट नहीं थे, वे बड़ी-बड़ी उपाधियाँ, जैसे 'चक्रर्वत्तिन्', 'अधिराज', 'राजातिराज', 'देवपुत्र' आदि धारण करते थे ।

दक्षिण भारत के इतिहास में हमें ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जहाँ भारत के विभिन्न धर्मावलम्बी राजाओं को 'क्षेमराज'[3], 'धर्म-महाराजाधिराज', 'धर्म-युव-महाराज[4]' आदि अर्द्ध धार्मिक उपाधियों से विभूषित किया गया है, क्योंकि एक तो

है । तक्षशिला के खरोष्ठी-अभिलेख में एक दूसरे 'मेरीदार्ख' का उल्लेख आया है । इन दोनों का उल्लेख बौद्धधर्म तथा मूर्त्तियाँ स्थापित करने वाले के रूप में किया गया है (*Corpus*, II, i, xv) ।

[1] उदाहरण के लिए, मालव (मलिय), यौधेय, आर्जुनायन, तथा सम्भवतः औदुम्बर, कुलूत, कुनिण्द (See, *Camb. Hist. Ind.*, 528, 529) तथा उत्तमभद्र (देखिये Smith, *Cotalogue of Coins*, Sec. VII) ।

[2] "Of Gracious Mien, Beloved of the Gods."

[3] *Luder's Ins.*, No. 1345; 'दयालु एवं धार्मिक राजा', 'शान्तिप्रिय राजकुमार ।'

[4] 'सद्चरित्र महाराजाधिराज', 'सद्चरित्र युवराज'—*Luder's Ins.*, Nos. 1196, 1200. उपाधियों के महत्त्व के लिए देखिये *IA*, 5, 51. **"कलियुग-दोषावसन्न धर्मोद्धरण नित्य सन्नद्ध"**, **"मन्वादि प्रणीत विधि-विधान-धर्मा धर्मराज इव"**, **"प्रक्षालित कलि-कलंकः"** उपाधियाँ वलभी के मैत्रक राजाओं के लिए प्रयुक्त हुई हैं

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वे प्राचीन धर्मगुरुओं द्वारा प्रतिपादित धर्म की रक्षा करते थे और इसे कलियुग की बुराइयों से मुक्त रखने का प्रयास करते थे; दूसरे, इस प्रकार की उपाधियाँ सम्भवतः उन्हें उत्तर-पश्चिम की बर्बर अछूत जातियों और नास्तिक विदेशी राजाओं से पृथक् दर्शाने के लिए दी गई थीं।

जिस प्रकार इस युग के राजाओं ने बड़ी-बड़ी उपाधियों[1] से अपने को विभूषित किया, उसी प्रकार उनकी मुख्य रानियों को भी बड़ी-बड़ी उपाधियाँ दी गईं। अशोक की रानियों को केवल 'देवी' कहा गया है। उदाहरणार्थ, 'तीवर' की माता को 'द्वितीया देवी' कहा गया है। इसका अर्थ यह हुआ कि मुख्य रानी को 'प्रथमा देवी' कहते रहे होंगे। परन्तु, सीथियन-काल में रानियों के लिए 'अग्रमहिषी' तथा 'महादेवी' की उपाधियाँ अधिक प्रचलित मिलती हैं जिससे मुख्य रानी को उसकी दूसरी सौतों से अलग किया गया है। इस प्रकार की उपाधियाँ 'अयसि कमुइआ', 'नागनिका' तथा 'बलश्री' के नामों के साथ मिलती हैं।

सीथियन-काल में राजा की मृत्यु के पश्चात् उसकी मूर्त्ति बनाने और उसे स्थापित करने की विचित्र प्रथा प्रचलित थी। इस तरह के मूर्त्तिगृहों को 'देवकुल' कहते थे। इनमें सबसे प्रसिद्ध मथुरा-अभिलेख[2] में उल्लिखित हुविष्क के पितामह का 'देवकुल' था। राजवंश के इन देवकुलों, उनके मन्दिरों तथा स्वयं जीवित देवपुत्रों

(भवनगर-अभिलेख, ३१)। कभी-कभी शक-नरेश भी अपने को 'धर्मविजयी' कहते थे (*JASB*, 1923, 343)।

[1] भारतीय इतिहास की यह विशेषता रही है कि जो उपाधियाँ एक काल में राजाओं द्वारा ग्रहण की जाती थीं, वही दूसरे काल में सहायकों द्वारा प्रयुक्त होती थीं। इस प्रकार अशोक द्वारा धारण की गयी 'राजा' की उपाधि शकों तथा गुप्तों के समय में उपशासकों द्वारा धारण की जाने लगी। सम्राटों द्वारा उस काल में 'राजराजा', 'राजाधिराज', 'महाराजाधिराज', 'परमभट्टारक' तथा 'परम-राजाधिराज', आदि उपाधियाँ अपनाई गयीं (Allan, 63)। परन्तु, पार्थियनों के शासन-काल में 'महाराजाधिराज' की पदवी फिर सहायकों ने ले ली, क्योंकि नरेशों में 'परमभट्टारक', 'महाराजाधिराज', 'परमेश्वर' जैसी उपाधियाँ ज्यादा प्रचलित हो चुकी थीं।

[2] *JRAS*, 1924, p. 402. अन्तिम राजाओं की मूर्त्तियों के लिए देखिये—*Beginnings of South Indian History*, 144, 153; Raverty, *Tabaqat*, I, 622 (effigy of Bikramajit); C. S. Sriniyasachari, *The Evolution of Political Institutions of South India*, Sec. IV ("*The Young Men of India*", June and July, 1924, p. 5)। तंजोर के मंदिर में सुन्दरचोल तथा उसकी एक रानी की मूर्त्ति मिलती है। सी० वी० वैद्य (*Mediaeval Hindu India*, I, 98) का मत है कि जहाँ पर मृत राजा का दाह-संस्कार किया जाता था, वहीं एक मन्दिर बनवा दिया जाता था। परन्तु, यह बात स्पष्ट नहीं है कि उसमें मृतक राजा तथा उसकी रानी की मूर्त्ति भी स्थापित की जाती थी, या नहीं। मृत राजाओं की मूर्त्तियों का स्थापन और उनकी पूजा की तुलना कौटिल्य (II. 6) के 'देवपितृपूजा' से की जा सकती है।

(तत्कालीन शासक राजाओं) के ही कारण सम्भवतः मथुरा का नाम 'देवताओं की नगरी'[१] पड़ा ।

हम यहाँ जिस युग की चर्चा कर रहे हैं, उसमें कुछ लेखकों ने राजधर्म की भी चर्चा की तथा राजा को मनुष्य के रूप में 'महती देवता' की उपाधि प्रदान की। परन्तु, सम्भवतः सर्वप्रथम यह उपाधि शकों (सीथियनों)[२] द्वारा धारण की गई थी, क्योंकि उन्होंने अपने राजा का आदर्श फ़ारस, चीन तथा रोम के राजाओं के आदर्शों के आधार पर रखा था। रैप्सन के अनुसार, 'राजातिराज' की उपाधि अपने मूल रूप में फ़ारसी राजवंशों की ही उपाधि है। इस उपाधि का इतिहास डेरियस (Darius) अभिलेखों में उल्लिखित **'क्षायथियानाम् क्षायथिय'**[३] से लेकर आधुनिक 'शाहंशाह' तक फैला हुआ है। कुषाण राजाओं द्वारा अपनाई गयी उपाधि 'देवपुत्र' अपने मूल रूप में एक चीनी उपाधि है, जो चीनी 'तीन-त्जे तीन-त्जू'[४] अथवा 'स्वर्ग-पुत्र' का अक्षरशः अनुवाद है। यदि लूडर्स के कथन पर विश्वास किया जाये तो भारतीय शक-नरेशों में से कम-से-कम एक (आरा-अभिलेख के कनिष्क) ने रोमन उपाधि 'कैसर' धारण की थी। सम्भव है जिस प्रकार वहाँ टाइबर नदी के तट पर राजाओं की स्मृति में मन्दिर बनाये जाते थे, उसी अनुकरण में यहाँ भी जमुना-तट पर 'देवकुलों' की स्थापना की जाती थी।

---

[१] एक दूसरे ही मत के लिए देखिये Tarn, *The Greeks in the Bactria and India*, 252. परन्तु, टार्न ने तोलेमी के वाक्यांश का अनुवाद 'देवताओं की पुत्री' किया है (देखिये Levi, *JA*, 1915, p. 91)।

[२] कुछ भारतीय-ग्रीक राजाओं ने 'थियोस' तथा 'थियोट्रोपोस' की उपाधि का भी प्रयोग किया है। परन्तु, इसका खुल कर अनुकरण नहीं हुआ। यह सत्य है कि गोण्डोफ़र्न्स ने अपने को 'देव' अथवा 'देवपुत्र' न कह कर 'देवव्रत' कहा है। जहाँ तक कुषाण-राजाओं द्वारा अपनायी गयी उपाधि 'देवताओं का पुत्र' का सम्बन्ध है, इस बारे में अभी तक कोई निश्चित प्रमाण उपलब्ध नहीं है जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि यह उपाधि ह्यु गनू से ली गयी और चीनियों से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है (Pace, *B. C. Law Volume*, II, 305 ff)। 'पंचाओं' के समय से कुषाणों का चीनियों से सीधा सम्बन्ध रहा था।

[३] देखिये, 'क्षपयित्वा' शब्द का प्रयोग सिमुकों के द्वारा शुंग-राज्य को समाप्त करने के लिए किया गया है। 'क्षत्रस्य क्षत्र' (बृहदारण्यक उपनिषद्, I. 4, 14); 'अधिराज', 'चक्रवर्तिन्' आदि शब्द निस्संदेह प्राचीन भारत में भी प्रचलित थे। परन्तु, पिछली दो उपाधियों के मौर्य-काल के बाद तक भी प्रयुक्त होने का कोई प्रमाण नहीं मिलता, जबकि अन्तिम का प्रयोग तो कभी हुआ ही नहीं।

[४] *JRAS*, 1897, 903; 1912, 671, 682; Allan, *Coins of the Gupta Dynasties*, xxvii. Artabanus (प्रथम अथवा द्वितीय) अपने को 'देवपुत्र' कहता था (Tarn, *The Greeks*, p. 92)। यह यूनानी प्रभाव का भी संकेत करता है। कुछ लेखक साहित्य में तथा अभिलेखों में प्रयुक्त उपाधियों के बारे में भ्रम में हैं (*B. C. Law Volume*, II, pp. 305 ff)।

शक-काल की एक महत्त्वपूर्ण प्रथा उत्तरी तथा पश्चिमी भारत में 'द्वैराज्य' (सहशासन) तथा उत्तरी-पश्चिमी भारत एवं सुदूर दक्षिण में 'यौवराज्य' (युवराजों का शासन) थी। इन दोनों प्रणालियों के अन्तर्गत राजा के पुत्र, पौत्र, भतीजों आदि का शासन में सहशासक अथवा उपशासक की हैसियत से महत्त्वपूर्ण स्थान था। द्वैराज्य-प्रणाली में दोनों राजाओं को समानाधिकार होते थे, जबकि यौवराज्य-प्रथा में युवराज राजा का प्रतिनिधि या उपशासक होता था। द्वैराज्य के उदाहरण में लीसियस तथा एण्टियलकिडस, आग्थोक्लिया तथा स्ट्रैटो-प्रथम, स्ट्रैटो-प्रथम तथा स्ट्रैटो-द्वितीय, स्पैलिरिसेस तथा एज़ेस, हगान तथा हगामष, गोण्डोफ़र्न्स तथा गद, गोण्डोफ़र्न्स तथा अब्दगसेस, चाश्तान तथा रुद्रदामन, कनिष्क-द्वितीय तथा हुविष्क, आदि का नाम लिया जा सकता है। युवराजों की कोटि में खरोष्ट तथा पल्लव, युवमहाराजों में शिवस्कन्दवर्मन, विजयबुद्धवर्मन[1] तथा पलक्कद के विष्णुगोप का उल्लेख आता है।

राजा अथवा युवराज जिस नगर में रहते थे, उसे 'अधिष्ठान' कहते थे। इस प्रकार के अधिष्ठान तथा अन्य प्रकार के नगर-नगरी आदि की संख्या बहुत अधिक थी। परन्तु, उनकी शासन-व्यवस्था के सम्बन्ध में हमारा ज्ञान अत्यन्त अल्प है। अभिलेखों के द्वारा हमें ज्ञात होता है कि 'निगमसभा' तथा 'नगराक्षदर्श'[2] आदि की व्यवस्था थी, जिनके कर्त्तव्यों का स्पष्ट उल्लेख हमें नहीं मिलता, लेकिन ये सम्भवतः मौर्य-काल के 'नगर-व्यावहारिक' (नगर-न्यायाधीश) से मिलते-जुलते रहे होंगे।

सामान्य प्रशासन—प्रान्तों, ज़िलों तथा ग्रामों के शासन—के सम्बन्ध में हमारे पास विस्तृत विवरण उपलब्ध हैं। कुछ बड़े-बड़े अधिकारियों के पद वही थे, जो मौर्य-काल में थे। सातवाहन और सीथियन राजाओं के समय में महामात्र तथा रज्जुक उतना ही महत्त्वपूर्ण स्थान रखते थे जितना महत्त्वपूर्ण स्थान उनका अशोक के समय में था। परन्तु, इनके साथ ही अनेक ऐसे पदाधिकारियों के सम्बन्ध में भी सूचना मिलती है जिनमें से कुछ का उल्लेख कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' में तो मिलता है, परन्तु मौर्यकालीन अभिलेखों में नहीं मिलता।

राजाओं के अत्यन्त निकट रहने वाले पदाधिकारी, जूनागढ़-लेख के अनुसार, 'मतिसचिव', तथा पल्लव-दानपत्र के अनुसार 'रहस्याधिकृत' थे। दूसरे प्रमुख अधिकारी 'राजवैद्य'[3] तथा 'राजलिपिक'[4] थे।

---

[1] *IHQ*, 1933, 211.

[2] *EHI*^{4}, 226; *Luders' Ins.*, No. 1351 (उदयगिरि गुफालेख)। *Cf*. अक्षदर्श, पतंजलि, *Index Of Words*; Oka, अमरकोश, 123; अग्नि पुराण, 366, 3; विनय पुराण, iii, 47. अन्तिम स्रोत के अनुसार, 'अक्खदस्स' को अशोक के युग में 'महामत्त' कहते थे। आगे चल कर सम्भवतः 'अक्षदर्श' का कार्य कर एकत्रित करना था (देखिये अमरकोश में 'क्षीर' की टीका)। इस सम्बन्ध में गुप्त-काल के 'अक्षपटलिक' के कर्त्तव्यों का भी उल्लेख आवश्यक है।

[3] *Ins.*, 1190-93.

[4] *Ins.*, 271; कौटिल्य, II, 10.

सैनिक-अधिकारियों में 'महासेनापति'[१], 'दण्डनायक' तथा 'महादण्डनायक'[२]—जो कौटिल्य के अर्थशास्त्र के अनुसार, 'सेनापति' तथा 'नायक'[३] के समानस्तरीय थे—का स्थान किसी प्रकार भी इन उपर्युक्त अधिकारियों से कम नहीं था। इन महत्वपूर्ण पदाधिकारियों के नीचे दूसरे सहायक अधिकारी, जैसे सेनागोप (कैप्टन), गौल्मिक[४] (प्लाटून-कमाण्डर), आरक्षाधिकृत[५] (गार्ड), अश्ववारक[६] (ट्रूपर्स), भटमनुष्य[७] (भाड़े के सैनिक) आदि होते थे।

असैनिक अधिकारियों (अमात्य या सचित्र), जैसे मतिसचिव के सम्बन्ध में हम पहले ही बता चुके हैं। इसके अतिरिक्त, अमात्यों का एक वर्ग और भी था जिन्हें कर्मसचिव कहते थे। इन्हीं में से राज्यपाल[८], कोषाध्यक्ष[९], अधीक्षक[१०], सचिव[११] आदि अधिकारी चुने जाते थे, ठीक वैसे ही जैसे ये अधिकारी मेगास्थनीज़ के समय में चुने जाते थे।

कोष-अधिकारियों में गंजवर[१२], कोष्ठागारिक[१३] और भाण्डागारिक[१४] का उल्लेख किया जा सकता है। इस अधिकारी का चुनाव राजामात्यों में से ही किया जाता था। परन्तु, विन्ध्य के 'शैल' तथा कोशल के 'सोमवंशी' राजाओं के पूर्व का कोई ऐसा अभिलेख नहीं मिलता, जिससे हमें 'सन्निधातृ' अथवा 'समाहर्तृ' के सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञात हो सके। जैसा कि जूनागढ़-अभिलेख से ज्ञात होता है, मुख्य-मुख्य कर, जैसे 'बलि', 'शुल्क' तथा 'भाग' भाण्डागार अथवा कोष में सीधे जमा होते थे। इन करों

---

[१] 1124, 1146.

[२] 1328, देखिये मजूमदार, *List of Kharoshthi Ins.*, No. 36. दंडनायक के कर्त्तव्यों के लिए देखिये *IA*, 4, 106, 275 n; 5, 49; Fleet, *CII*, 16. कभी-कभी 'दंडनायक' अपने लिए भी राज्य प्राप्त करते थे (*JASB*, 1923, 343)।

[३] कौटिल्य, Bk. X, Ch. 1, 2, 5.

[४] *Luders' Ins.*, 1200; *Ep. Ind.*, XIV, 155; देखिये मनु, VII, 190.

[५] *Luders*, 1200.

[६] *Luders*, 381, 728.

[७] *Luders*, 1200.

[८] *Luders' Ins.*, 965.

[९] 1141.

[१०] 1186.

[११] 1125.

[१२] *Luders*, 82; राजतरंगिणी, V. 177 एक शक राजा ने एक ब्राह्मण को कोषाध्यक्ष बनाया था।

[१३] *Ep. Ind.*, XX, 28.

[१४] *Luders*, 1141.

से ही इतना पर्याप्त धन मिल जाता था कि रुद्रदामन-जैसे उदार राजा के कोष भी स्वर्ण, रजत, वज्र (हीरे-जवाहरात), वैदूर्य रत्न आदि से भरे रहते थे। लेकिन महाक्षत्रप से निम्न वर्ग के शासक जनता को सताते थे और उनसे मनमाना कर, बेगार इत्यादि (**कर-विष्टि-प्रणय-क्रिया-भिः**) लेने से नहीं चूकते थे। भाण्डागार (जिसके बारे में हमें लूडर्स-लेख, संख्या ११४१ से पता चलता है) के अतिरिक्त कोष्ठागार[1] भी होते थे, जिनका उल्लेख कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र', भाग २, अध्याय १५ में मिलता है। कर द्वारा प्राप्त धन कैसे खर्च किया जाता था, इसकी जानकारी हमें अभिलेखों से मिलती है। इस सम्बन्ध में पीने के पानी का प्रबन्ध विशेष रूप से उल्लेखनीय है। जूनागढ़-अभिलेख से हमें पता चलता है कि किस प्रकार एक शक राजा तथा उसके अमात्य ने अपने निजी कोष से धन देकर सुदर्शन झील का पुनर्निर्माण करवाया था। इन लेखों में तालाब, कुएँ, झील (पुष्करणी, उदपान, हृद तथा तड़ाग) आदि के बनवाने तथा उनकी मरम्मत करवाने का उल्लेख बहुधा मिलता है। लूडर्स-लेख, सं० ११३७ में हाइड्रालिक इंजन (औद्यान्त्रिक) के निर्माता का भी उल्लेख मिलता है। यही नहीं, अन्य लेखों[2] में 'पानीयघरिक' (जल-विभाग के अधीक्षक) का भी उल्लेख आया है। लेख, सं० ११८६ में एक तालाब के नागदेवता की मूर्ति तथा विहार के दान के उल्लेख के पश्चात् एक अमात्य स्कन्दस्वाति का उल्लेख आया है जो '**कर्मान्तिक**' (अर्थशास्त्र[3] में आया एक पद)—कार्य का अधीक्षक—के पद पर काम करता था।

विदेश-विभाग के अन्तर्गत 'दूत' का उल्लेख मिलता है, परन्तु 'संधिविग्रहिक', कुमारामात्य[4] आदि पदाधिकारियों का उल्लेख, जो गुप्त-काल और उसके बाद बहु-प्रचलित था, इस काल में हमें कहीं नहीं मिलता।

इस काल के अभिलेखों में उपर्युक्त अधिकारियों के अलावा 'महासामिय' रिकार्ड रखने वाले[5] का उल्लेख आता है। इसके अतिरिक्त 'अभ्यन्तरोपस्थायक'

---

[1] *Ins.*, No. 937.

[2] *Luders*, 1279.

[3] Bk. I, Chap. 12.

[4] 'कुमार' का अर्थ 'युवक' अथवा 'राजकुमार' से है। अतः, 'कुमारामात्य' का अर्थ 'सहायक मंत्री' अथवा 'राजकुमार-मंत्री' हो सकता है। 'कुमार' शब्द 'प्रौढ़' शब्द का विलोम है और दक्षिण के 'चिक्क', 'चेन्न' अथवा 'इम्मडि' से मिलता-जुलता है। इसका एक दूसरा भी अर्थ सम्भव हो सकता है। 'कुमारामात्य' का अर्थ उस अमात्य से भी हो सकता है जो युवावस्था से ही मंत्री हो—जैसे कुमार-सेवक का अर्थ '**आकौमार-परिचारिकः**' (कुमारावस्था से ही सेवक का काम करने वाला) है।

[5] दूसरे अर्थ के लिए देखिये *JBBRAS*, N. S., IV, 1928, p. 64, 72; *IHQ*, 1933, 221. वी० एम० बाखले के अनुसार, 'महासामिय' से अभिप्राय सम्भवतः 'नगरसभा' से था।

(रनिवास की देखभाल करने वाला), माडबिक[1], तूथिक तथा नेयिक[2] का भी उल्लेख आया है, किन्तु इनके कार्यों के बारे में हमें कोई सूचना नहीं मिलती ।

उत्तरी-पश्चिमी भारत का साम्राज्य अनेक बड़े-बड़े सत्रपियों तथा छोटे-छोटे प्रान्तों में विभाजित था, जहाँ महाक्षत्रपों तथा क्षत्रपों द्वारा शासन चलाया जाता था । सत्रपियों एवं सीथियन साम्राज्य की सीमाओं के बाहर के अधीनस्थ राज्यों को अनेक ज़िलों, यानी राष्ट्र, आहार, जनपद देश अथवा 'विषय' में बाँटा गया था । शक-शासन-काल में प्रशासनिक खण्डों में विभाजन की प्रथा (भुक्ति) का प्रचलन नहीं हुआ था, जब कि शक-काल के बहुत बाद यह बहु-प्रचलित थी । 'साताहनि-रट्ठ' (राष्ट्र) या 'सातवाहनिहार —जिसे म्यकदोनी-अभिलेख में 'जनपद' कहा गया है— से ऐसा प्रतीत होता है कि राष्ट्र, आहार (हार) और 'जनपद' इस काल में पर्यायवाची शब्द थे । 'राष्ट्र' अथवा 'आहार' का मुख्य अधिकारी राष्ट्रपति, राष्ट्रिक (रठिक) अथवा अमात्य हुआ करता था । उदाहरण के लिए, अमात्य सुविशाख, महाक्षत्रप रुद्रदामन के राज्य-काल में सुराष्ट्र का शासक था । अमात्य विष्णुपालित, श्यामक तथा शिवस्कन्ददत्त गोवर्धन (नासिक) 'आहार' में गौतमीपुत्र शातकर्णि तथा पुलुमायि के शासन-काल में शासन चलाते रहे । इन्हीं दिनों पड़ोस का आहार 'मामाल' (ज़िला पूना में) एक अन्य अमात्य के अधीन था, जिसके नाम के अंत में 'गुप्त' की उपाधि लगी हुई थी । सुदूर दक्षिण में आहार के मुख्य अधिकारी को शायद 'व्यापृत'[3] कहते थे । जनपदों में विशेषतया असुरक्षित सीमावर्ती जनपदों को यदा-कदा सैनिक राज्यपालों के अधीन रखा जाता था (इनको स्त्रातेगो, महासेनापति, महा-दण्डनायक, आदि कहते थे) । उदाहरण के लिए, सातवाहनिहार का जनपद महासेनापति स्कन्दनाग[4] के प्रशासन में रखा गया था । ऐसा प्रतीत होता है कि गुप्त-नरेशों के द्वारा अपने राज्य में मिलाये जाने के पूर्व पूर्वी मालव किसी एक शक महादण्डनायक के प्रशासन में था और एज़ेस तथा गोण्डोफ़र्न्स के शासन के अन्तर्गत आर्यावर्त का सीमान्त प्रदेश स्त्रातेगोइ (अश्पवर्मन, सस[5]) के प्रशासन में था ।

'राष्ट्र' अथवा 'जनपद' के पर्याय रूप में 'देश' शब्द का भी प्रयोग बहुत अधिक होता था । इसके शासक को 'देशाधिकृत', जो मध्यकाल में 'देशमुख' के नाम से विख्यात थे, कहते थे (देखिये शिवस्कन्दवर्मन द्वारा दिया गया हीरहडगल्लि-दान) ।

---

[1] माडबिक' शब्द जैन-कल्पसूत्र (89, para 62) में आये हुए 'माडम्ब' से मिलता-जुलता है । उसी में 'माडम्बिय' नामक अधिकारी का भी उल्लेख आया है । 'मण्डपिका' कर के लिए देखिए *Ep. Ind.*, XXIII, 137.

[2] 'सरकार' ने 'नेयिक' की समानता 'नैयोगिक' से की है ।

[3] *Luders*, 1327, 1928.

[4] देखिये, म्यकदोनी का लेख ।

[5] 'सस' नामक अमात्य के लिए देखिये सातवाहन-नरेश श्रीचण्ड 'साति' अथवा 'शात' का कोदावली-शिलालेख (*Ep. Ind*, XVIII, 313) ।

इसके नीचे का प्रशासकीय क्षेत्र 'विषय' कहलाता था, जिसका शासक 'विषयपति'[१] होता था। कभी-कभी 'विषय' का प्रयोग 'देश' तथा 'राष्ट्र' के पर्याय रूप में भी होता था। उत्तर गुप्त-काल में 'विषय' शब्द का प्रयोग 'राष्ट्र'[२] से अपेक्षाकृत अधिक व्यापक भूभाग के लिए होता था।

प्रशासन की सबसे छोटी इकाई 'ग्राम' अथवा 'ग्रामाहार'[३] थी, तथा छोटे नगर या इम्पोरिया 'निगम'[४] कहलाते थे। ग्रामों की देखभाल करने वाले को 'ग्रामेयिक आयुत्त'[५] कहते थे तथा इनके ऊपर ग्रामणी[६], ग्रामिक[७], ग्रामभोजक[८] अथवा (ग्राम) महत्तरक होते थे। लूडर्स ने (मथुरा) लेख-संख्या ४८ में, जयदेव तथा जयनाग नामक दो ग्रामिकों के नाम दिए हैं। दक्षिणी भारत में ग्रामों के मुख्य अधिकारी को 'मुलुड' कहते थे।[९] निगमों के मुख्य अधिकारी 'गहपति'[१०] कहलाते थे तथा यही गाँवों में 'ग्रामवृद्ध' होते थे। लूडर्स-लेख, संख्या ११५३ से भी इस बात की पुष्टि होती है, क्योंकि उसमें धम्म-निगम के मुख्य को 'गहपति' की संज्ञा दी गई है। उसके कार्यों का वर्णन भी हमें इसमें मिलता है। प्राचीन भारत के प्रशासन में 'ग्राम' तथा 'निगम' का इतना स्थायी महत्त्व बना रहा कि सैकड़ों वर्षों तक शासन करने के बावजूद शक-सम्राट् इसे नष्ट नहीं कर पाये। वास्तव में अनेक प्रकार के सामाजिक संगठनों, संस्थानों आदि में व्यक्त होने वाले और मान्यता प्राप्त करने वाले सिद्धान्त, चिन्तन और विचारों के जन्म-स्थल भी यही 'ग्राम' तथा 'निगम' थे। इस प्रकार के संगठनों, जैसे गोष्ठी[११],

---

[१] 929*n* (*Luders*)।

[२] Fleet, *CII*, 32 n.

[३] *Luders' Ins.*, No. 1195.

[४] पालि-साहित्य में 'निगमों' को ग्राम एवं नगर से काफ़ी भिन्न बताया गया है। नगरों के चारों ओर ऊँची-ऊँची दीवालें तथा तोरण होते थे। (**दृढ़ प्राकार तोरण**)।

[५] 1327.

[६] 1333.

[७] 48. 69a.

[८] 1200.

[९] *Ins.*, 1194. देखिये मुरुण्ड = स्वामी (शक)। शकों के सुदूर दक्षिण के होने के सम्बन्ध में देखिये *Ep. Ind.*, XX, 37.

[१०] 'गहपति' (गृहस्वामी) शब्द की उपाधि बहुधा सभ्य जनों में मुख्य व्यक्ति को, मध्य वर्ग के धनवान् व्यक्ति को, अर्थात् 'कल्याण-भत्तिकों' तथा पुजारियों आदि को दी जाती थी। परन्तु, वे पुजारियों तथा दरबारियों से सर्वथा भिन्न होते थे (देखिये राइस डेविड्स तथा स्टीड)।

[११] *Luders' Ins.*, 273, 1332, 1335, 1338.

निकाय[1], परिषद्[2], संघ[3], आदि के बारे में अभिलेखों में काफ़ी कुछ पढ़ने को मिलता है। राजा तथा ग्रामवासियों के बीच सम्बन्ध स्थापित करने वाली संस्था 'गोष्ठी' थी। लूडर्स-लेख, संख्या १३३२ से १३३८ में एक ऐसी गोष्ठी का उल्लेख मिलता है जिसका सभापति कोई एक 'राजन्' था और उस गोष्ठी में गाँव के मुखिया का पुत्र भी शामिल था।

प्राचीन भारतीय कूटनीति में ध्यान आकर्षित करने वाली एक और जिस व्यवस्था का उल्लेख मिलता है, वह है गुप्तचरों की नियुक्ति। इन्हें 'संचरंतक', अर्थात् भ्रमणशील दूत कहा जाता था। इनके वीभत्स कार्यों एवं कर्त्तव्यों का विशद् वर्णन 'अर्थशास्त्र' में मिलता है। लेकिन मौर्य तथा गुप्त काल में आने वाले विदेशी यात्रियों द्वारा दिये गए विवरणों से ज्ञात होता है कि जनता का राजनैतिक स्तर इतना नीचे नहीं गिर गया था, जैसाकि 'अर्थशास्त्र' के अध्ययन से पता चलता है। सम्भवतः वात्स्यायन ने वस्तु-स्थिति का वास्तविक चित्रण करते हुए कहा है कि सिद्धान्त की दृष्टि से निश्चित प्रत्येक कार्य एवं विचार को व्यावहारिक रूप नहीं दिया जा सकता, और न वे व्यवहार में ढलने के लिए होते ही हैं। ऐसा ठीक भी है। जहाँ तक सिद्धान्त का प्रश्न है, उसे अत्यन्त विशद् रूप में लिखा जाना चाहिये, परन्तु उसका व्यावहारिक क्षेत्र सदैव ही सीमित माना जाना चाहिये। यद्यपि वैद्यक की पुस्तकों में कुत्ते के मांस को न केवल सुस्वादु, वरन् अत्यन्त शक्तिवर्धक भी बताया गया है, परन्तु इस पर भी शायद ही कोई स्वस्थ व्यक्ति कुत्ते का मांस खाना पसंद करे।

न शास्त्रमस्तीत्ये तावत् प्रयोगे कारणं भवेत्
शास्त्रार्थान् व्यापिनो विद्यात् प्रयोगांस्त्वेकदेशिकान्
रस-वीर्य विपाका हि श्वमांसस्यापि वैद्यके
कीर्तिता इति तत् किम् स्याद भक्षणीयं विचक्षणैः।

---

[1] 1133.
[2] 125, 925.
[3] 5, 1137.

१३

गुप्त-साम्राज्य : गुप्त-शक्ति का उदय

इमां सागरपर्यन्ताम् हिमवद्-विंध्य-कुण्डलाम्
महीम् एकातपत्रांकाम् राजसिंह[1] प्रशास्तु नः ।

—दूतवाक्यम्

१. गुप्त-वंश का उद्भव

हमने पिछले अध्यायों में पढ़ा है कि शकों की बढ़ती हुई विजय-शक्ति, जिसे सातवाहनों ने कुछ समय के लिए रोका था, अंतिम रूप से गुप्त-सम्राटों द्वारा समाप्त कर दी गयी । यह एक मनोरंजक और ध्यान देने योग्य तथ्य है कि शकों को पराजित करने वाले सातवाहन-विजेताओं में अनेक गुप्त-वंश के अधिकारी थे, जैसे सम्वत् १८ के नासिक-अभिलेख में उल्लिखित शिवगुप्त अथवा कार्ले-अभिलेख में पुर अथवा पुरुगुप्त तथा शिवस्कन्दगुप्त, आदि । यह कह सकना अत्यन्त कठिन है कि इन गुप्तों तथा गुप्त-राजवंश के उन सम्राटों में कोई सम्बन्ध है अथवा नहीं, जिनमें से दो का नाम स्कन्द-गुप्त तथा पुरुगुप्त था ।[2]

---

[1] चन्द्रगुप्त-द्वितीय की मुद्राओं में जिस नरेन्द्रसिंह का उल्लेख मिलता है, वह सम्भवतः राजसिंह ही था (Allan, *Gupta Coins*, 43) । इनमें प्रयुक्त सारे अक्षर स्पष्ट नहीं हैं (*Ibid.*, cxiii), परन्तु अनेक मुद्राओं पर 'सिंहविक्रम' लिखा हुआ अवश्य मिलता है (pp. 38ff) । 'दूतवाक्य' में उत्तरी भारत के एक शक्तिशाली राजा का उल्लेख है, जिसका साम्राज्य समुद्र से लेकर हिमालय और विंध्य की श्रेणियों तक फैला था तथा जो 'सिंह के समान' शक्तिशाली था । यह शासक दूसरा कोई न होकर चन्द्रगुप्त-द्वितीय ही था । कदाचित् 'दूतवाक्य' के लेखक का संकेत इसी सम्राट् की ओर था । यदि वह कालिदास का अग्रज भास था तो उसने काव्य-रचना चन्द्रगुप्त-द्वितीय, विक्रमादित्य, 'नरेन्द्रसिंह' के राज्यारोहण के पूर्व शुरू की होगी जो कि महान् संरक्षक कविराज समुद्रगुप्त का समकालीन रहा होगा ।

[2] *Modern Review* (Nov., 1926, p. 499 f) के अनुसार, गुप्त-वंश का उद्भव 'कारस्कर' से हुआ । परन्तु, इस सम्बन्ध में जो प्रमाण हैं, उनसे कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता । 'कौमुदी-महोत्सव' के चण्डसेन (सुन्दरवर्मन का दत्तक पुत्र) के वंश का उन्मूलन चन्द्रगुप्त-प्रथम (जो कि महाराज श्री घटोत्कच का पुत्र था तथा जिसके वंशजों ने शताब्दियों तक शासन किया था) के साथ हो चुका था (p. 500), यह कहना स्पष्टतः आधारहीन है । केवल इस आधार पर कि लिच्छवियों ने चण्डसेन की सहायता की थी, यह नहीं कहा जा सकता कि चण्डसेन ही चन्द्रगुप्त-प्रथम थे । पाँचवीं शताब्दी ईसापूर्व से ही लिच्छवियों और मागधों की शत्रुता प्रसिद्ध हो गयी थी । इस सम्बन्ध में किसी लेखिका द्वारा रचित नाटक के कथानक के लिए देखिये *Aiyangar*

ब्राह्मी-अभिलेखों में गुप्त-नरेशों का बहुधा उल्लेख मिलता है। इच्छावर[1] के बुद्धमूर्ति-अभिलेख[2] में कहा गया है कि श्री हरिडास की रानी, महादेवी, गुप्त-वंश की ही थी। शुंग-काल के भरहुत में पाये गए बुद्ध-स्तम्भ-अभिलेख[3] में राजन् विसदेव की रानी तथा धनभूति की दादी 'गौप्ति' का उल्लेख है। विसदेव सम्भवत: शुंग शासकों का एक सामन्त था।

दूसरी शताब्दी में ही गंगा के तटीय क्षेत्र तथा मगध में गुप्त-वंशी राज्य के चिह्न मिलते हैं। ७वीं शताब्दी में भारत में 'आई-ज़िग' नामक एक चीनी यात्री आया था। उसके अनुसार, नालन्दा से लगभग ४० योजन पूर्व की ओर स्थित मृग-सिखावन के निकट महाराज श्रीगुप्त ने एक मंदिर बनवाया था।[4] उसके अनुसार, उसका राज्य सन् १७५ ई०[5] के लगभग था। एलन उक्त समय को अस्वीकार करते हुए कहते हैं कि श्रीगुप्त समुद्रगुप्त के परदादा थे। अत: एक ही क्षेत्र में थोड़े से समय के अंतर से एक ही वंश और एक ही नाम के दो राजाओं का होना असंगत-सा प्रतीत होता है। परन्तु, क्या थोड़े समय में ही दो 'चन्द्रगुप्त' तथा दो 'कुमारगुप्त' नहीं हुए? इसमें सचमुच कोई उचित कारण नहीं कि १७५ ई० के श्रीगुप्त को लगभग १०० वर्ष बाद के समुद्रगुप्त के परदादा से सम्बद्ध किया जाय।

Com. Vol., 361f. यदि सुन्दरवर्मन तथा उसका पुत्र कल्याणवर्मन वास्तव में ऐतिहासिक व्यक्ति हैं तथा उन्होंने वास्तव में मगध पर शासन किया, तो वे महाराज श्रीगुप्त के पूर्व अथवा बालादित्य (छठी शताब्दी) के पश्चात् हुए थे। महाशिवगुप्त के सीरपुर-पाषाण-लेख के समय मगध पर वर्मन-आधिपत्य की काफ़ी चर्चा थी (*Ep. Ind.*, XI, 191)। साथ ही हमें चीनियों के वर्णन से पूर्णवर्मन एवं देववर्मन तथा मौखरी-वंश के अन्य शासकों से संबंधित जानकारी भी मिलती है। अत:, गुप्त-वंश की उत्पत्ति अत्यन्त रहस्यमय है। हम केवल इतना ही जानते हैं कि सम्भवत: वे 'धारण' गोत्र के थे (*IHQ*, 1930, 565)। सम्भव है कि अग्निमित्र की मुख्य रानी धारिनी से उनका कोई सम्बन्ध रहा हो। डॉ० आर० सी० मजूमदार (*IHQ*, 1933, 930 ff) का मत है कि जावा के एक लेख (तन्त्रि-कामंदक) से पता चलता है कि इक्ष्वाकु जाति के राजा महाराज ऐश्वर्यपाल अपने वंश का सम्बन्ध समुद्रगुप्त के वंश से जोड़ते थे। बाद के लेखकों को कोई समर्थन प्राप्त नहीं है, अत: उन पर अधिक भरोसा नहीं किया जा सकता। उनसे भी अधिक अविश्वसनीय 'भविष्योत्तर पुराण' है जो कि कुछ आलोचकों के अनुसार, 'वर्त्तमान युग की जालसाज़ी' है (*NHIP*, VI, 133n)। *Cf. Proceedings of the I. H. Congress*, 1944, pp. 119 ff.

[1] ज़िला बांदा।

[2] *Luders*, No. 11.

[3] *Luders*, No. 687.

[4] डॉ० मजूमदार, *A New History of the Indian People*, VI, 129; डॉ० डी० सी० गांगुली, *IHQ*, XIV (1938), 332.

[5] Allan, *Cupta Goins*, Introduction, p. xv; *Cf. Ind. Ant.*, X (1881), 110.

श्रीगुप्त के बाद के उत्तराधिकारियों के बारे में हमें कुछ भी ज्ञात नहीं है। मगध के गुप्त-सम्राटों में सबसे पहले हमें महाराजगुप्त का नाम मिलता है, जिसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र महाराज घटोत्कच था।

२. चन्द्रगुप्त-प्रथम

घटोत्कच के पुत्र चन्द्रगुप्त-प्रथम इस वंश के प्रथम 'महाराजाधिराज'[1] (स्वतंत्र शासक) थे। वे सन् ३२० ई० के आसपास सिंहासनारूढ़ हुए होंगे। इसी तिथि से गुप्त-काल[2] आरम्भ होता है। अपने अग्रज बिम्बिसार की भाँति ही उसने भी धीरे-धीरे अपनी स्थिति दृढ़ कर ली। ऐसा उसने नेपाल[3] अथवा वैशाली के लिच्छवियों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करके किया। इस प्रकार उसने दूसरे मगध-राज्य की नींव डाली। चन्द्रगुप्त-प्रथम तथा लिच्छवि-वंश के इस वैवाहिक सम्बन्ध का आख्यान अनेक मुद्राओं[4] द्वारा किया गया है। इन मुद्राओं पर एक ओर चन्द्रगुप्त तथा उसकी लिच्छवि-वंशीया रानी कुमारदेवी की मूर्त्ति है तो दूसरी ओर लक्ष्मी, अर्थात् सुख एवं सम्पन्नता की देवी की। यह सम्भवतः इसलिए है कि इस रानी के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने के पश्चात् ही उसके वंश का वैभव बढ़ा था। स्मिथ का मत है कि लिच्छवि-वंश के शासक पाटलिपुत्र में कुषाणों के सामन्त के रूप में राज्य करते थे और चन्द्रगुप्त ने उनसे वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करके अपनी पत्नी के सम्बन्धियों का यह अधिकार प्राप्त किया था और परिणामतः

---

[1] ऋद्धपुर के प्लेटों (*JASB*, 1924, 58) में चन्द्रगुप्त-प्रथम तथा समुद्रगुप्त को भी केवल 'महाराज' कहा गया है।

[2] *JRAS*, 1893, 80; Cunningham, *Arch. Sur. Rep.*, Vol. IX, p. 21 इस बात का पता ठीक से नहीं चलता कि सन् ३२० ई० का काल (गुप्त-प्रकाल, गुप्तानम् काल) किस राजा के राज्य-काल से आरम्भ होता है? सम्भव है कि यह तिथि महाराजगुप्त (*IHQ*, 1942, 273n) अथवा समुद्रगुप्त के राज्यारोहण की ही तिथि हो।

[3] इस विवाह के, सन् ३२० ई० के बाद, होने का उल्लेख कहीं नहीं मिलता। सन् ३८० ई० के पूर्व का गुप्त-वंश का इतिहास संदेहात्मक है। जब तक कि हमें चन्द्रगुप्त-प्रथम के शासन-काल की अवधि ज्ञात नहीं हो जाती तथा यह नहीं पता चल जाता कि वह तथा उसका पुत्र समुद्रगुप्त कब गद्दी पर बैठे, तब तक विवाह की तिथि निश्चित नहीं की जा सकती। कुछ विद्वानों का मत है कि चन्द्रगुप्त-प्रथम ने नेपाल (*JRAS*, 1889, p. 55) अथवा पाटलिपुत्र (*JRAS*, 1893, p. 81) के शासक के यहाँ विवाह किया था।

[4] इन मुद्राओं के सम्बन्ध में विद्वानों में बहुत मतभेद है (देखिये Altekar, *Num. Suppl.*, No. XLVII; *JRASB*, III, 1937, No. 2, 346)। जब तक चन्द्रगुप्त-प्रथम के काल की कोई ऐसी मुद्रा नहीं मिल जाती, जिसके सम्बन्ध में तनिक भी संदेह न हो, तब तक कुछ भी कहना सम्भव नहीं है।

वह पाटलिपुत्र का शासक बना। परन्तु, एलन का मत है कि श्रीगुप्त के समय[1] से ही पाटलिपुत्र गुप्त-वंश के अधिकार में था।

समुद्रगुप्त के विजय-विवरणों से यह निष्कर्ष निकलता है कि उसके पिता का राज्य मगध तथा उसके आसपास के क्षेत्रों तक ही सीमित था। एलन के अनुसार, पुराणों में इसी गुप्त-साम्राज्य की परिभाषा दी गई है—

अनुगंगा प्रयागंच साकेतम् मगधांस्तथा
एतान् जनपदान् सर्वान् भोक्ष्यन्ते गुप्तवंशजाः।

"गुप्तवंशीय राजा गंगा-तट पर स्थित प्रयाग,[2] साकेत (अवध) तथा मगध (दक्षिणी बिहार) पर राज्य करेंगे।"

यह बात ध्यान देने योग्य है कि वैशाली (उत्तर बिहार) का नाम इस सूची में नहीं है। अतः एलन के इस मत से, कि चन्द्रगुप्त ने अपने शासन के प्रारम्भिक काल में ही वैशाली पर अधिकार कर लिया था, हम सहमत नहीं हैं। समुद्रगुप्त की विजय-सूची में भी वैशाली का नाम नहीं मिलता, यद्यपि इलाहाबाद के स्तम्भ-लेख से यह अवश्य ज्ञात होता है कि समुद्रगुप्त के राज्य की सीमा नैपाल तक थी। इससे यह सहज में ही अनुमान लगाया जा सकता है कि वैशाली उस समय तक गुप्त-साम्राज्य में सम्मिलित की जा चुकी थी। प्रामाणिक रूप से वैशाली गुप्त-वंश के अधिकार में सर्वप्रथम चन्द्रगुप्त-द्वितीय के शासन-काल में आयी, जबकि उसने एक राजकुमार को वहाँ का उपशासक नियुक्त कर दिया। कदाचित् प्रयाग भी किसी राजवंश से जीतकर साम्राज्य में मिला लिया गया था। इस राजवंश का उल्लेख भीटा[3] के अभिलेख में मिलता है। इनमें से दो राजा महाराज गौतमीपुत्र श्रीशिवमघ तथा राजन् वासिष्ठीपुत्र भीमसेन, मार्शल के अनुसार, दूसरी अथवा तीसरी शताब्दी के हैं। शिवमेघ (अथवा शिवमघ) से हमें 'मेघ' (अथवा माघ) राजाओं की याद आती है, जो तीसरी शताब्दी[4] में कोशल पर राज्य करते थे। महाराज गौतमीपुत्र वृषध्वज को भी तृतीय अथवा चतुर्थ शताब्दी का शासक कहा गया है। चन्द्रगुप्त-प्रथम के शासन-काल का सर्वाधिक स्मरणीय कार्य था उत्तराधिकारी के रूप में समुद्रगुप्त

---

[1] Kielhorn, *North Indian Inscription*, No. 541. इसमें लिच्छवियों तथा पुष्पपुर (पाटलिपुत्र) का आपसी सम्बन्ध निर्देशित है।

[2] देखिये—**'अनुगंगम् हस्तिनापुरम्, अनुगंगम् वाराणसी, अनुशोणम् पाटलिपुत्रम्'**—पंतञ्जलि, II, 1, 2.

[3] देखिये बन्धोगढ़ (रींवा)—*Amrita Bazar Patrika*, 11,10,38, p. 2; *NHIP*, VI, 44 ff. फ़तेहपुर से प्राप्त मुद्राओं में भी मघ राजाओं का उल्लेख है।

[4] *JRAS* 1911, 132; Pargiter, *DKA*, p. 51; देखिये *Indian Culture*, III, 1936, 177 ff में ए० घोष द्वारा उद्धृत महाराज भीमवर्मन का कोसम-पाषाण-लेख; और *IC*, 694, 715.

का चुनाव। यह कार्य सभी सभ्यों (सभासदों) तथा राजवंशीय राजकुमारों की संयुक्त सभा में सम्पन्न हुआ।

३. समुद्रगुप्त पराक्रमाङ्क[1]

चन्द्रगुप्त-प्रथम के उपरान्त समुद्रगुप्त के राज्यारोहण की निश्चित तिथि मालूम नहीं है। यदि (नृपुर से प्रेषित) नालन्दा-लेख को प्रामाणिक माना जाये तो यह घटना गुप्त-काल के ५वें वर्ष से पूर्व, अर्थात् सन् ३२५ ई० में घटी थी। परन्तु यह तिथि अत्यन्त संदेहजनक है। परन्तु जहाँ तक उत्तराधिकारी के रूप में निर्वाचन का प्रश्न है, यह बात न केवल इलाहाबाद-प्रशस्ति से स्पष्ट हो जाती है, वरन् ऋद्ध-पुर-लेख में समुद्रगुप्त के लिए प्रयुक्त **'तत्पादपरिगृहीत'** उपाधि भी इसी बात की पुष्टि करती है कि चन्द्रगुप्त-प्रथम ने अपने सभी पुत्रों में सबसे योग्य पुत्र समुद्रगुप्त को अपना उत्तराधिकारी चुना। नये राजा को काच[2] के नाम से भी सम्बोधित किया जाता था।

भारतवर्ष को राजनैतिक एकता के सूत्र में बाँधना तथा अपने को 'महापद्म' के समान एकमात्र (एकराट्) शासक बना लेना ही समुद्रगुप्त का उद्देश्य था। परन्तु, उसकी स्थायी विजय गंगा और उसकी सहायक नदियों की ऊपरी घाटी से लेकर मध्य

---

[1] 'पराक्रम', 'व्याघ्रपराक्रम' तथा 'पराक्रमांक' आदि उपाधियाँ अनेक मुद्राओं पर अंकित हैं (Allan, *Catalogue* p. cxi, l f) तथा इलाहाबाद-प्रशस्ति (*CII*, p. 6) में पायी गयी हैं। हाल ही में एक ऐसी भी मुद्रा मिली है, जिसमें एक ओर 'श्री विक्रमः' लिखा है (Bamnala Hoard, Nimar district, *J. Num. Soc. Ind.*, Vol. V, pt. 2, p. 140, December, 1943)।

[2] काच की मुद्राओं पर 'सर्वराजोच्छेत्ता' लिखा हुआ मिला है, जिससे पता चलता है कि वह सम्भवतः समुद्रगुप्त ही था (*Cf.* Smith, *Catalogue*, 96: *IA*, 1902, 259 f.)। दूसरे मत के लिए देखिये Smith, *JRAS*, 1897, 19; Rapson, *JRAS*, 1893, 81; Heras, *Annals of the Bhandarkar Oriental Research Institute*, Vol. IX, p. 83 f. हम तो यह सोच भी नहीं सकते कि जिस गुप्त-सम्राट् ने वास्तव में ऐसा किया (समकालीन लेख से पता चलता है कि उसने ऐसा ही किया), उसके अतिरिक्त कोई दूसरा राजा भी अपने लिए 'शत्रुविनाशक' की उपाधि धारण करे। पूना-लेख से ज्ञात होता है कि यह उपाधि समुद्रगुप्त के पुत्र चन्द्रगुप्त-द्वितीय के लिए थी। परन्तु, यह भी स्मरण रहे कि ये लेख गुप्त-सम्राटों के प्रामाणिक लेख नहीं हैं। समुद्रगुप्त को छोड़कर अन्य किसी भी गुप्त-सम्राट् ने अपने लिए 'सर्वराजोच्छेत्ता' की उपाधि धारण नहीं की। पूना-लेख में यह उपाधि चन्द्रगुप्त-द्वितीय के नाम उसी असावधानी के कारण लिखी गई, जिस असावधानी में चन्द्रगुप्त-प्रथम को 'महाराजाधिराज' न लिखकर केवल 'महाराज' लिखा गया। आमगाछी तथा बाणगढ़ अभिलेखों के तुलनात्मक अध्ययन से ज्ञात होता है कि इन प्रशस्तिकारों ने अपनी असावधानी के कारण एक नरेश की उपाधि उसके उत्तराधिकारी के नाम के साथ भी टाँक दी।

था पूर्वी भारत के कुछ जिलों तक ही सीमित थी। अपने पूर्वज सर्वक्षत्रांतक[1] के समान इस 'सर्वराजोच्छेत्ता' (समस्त राजाओं का उन्मूलक) ने रुद्रदेव, मतिल, नागदत्त, चन्द्रवर्मन, गणपति नाग, नागसेन, अच्युत, नन्दी, बलवर्मन तथा आर्यवर्त[2] के अन्य राजाओं का उन्मूलन कर, कोट-वंश के राजा को बन्दी कर शेष वन-प्रदेश (आटविक-राज) के नरेशों को अपना दास बना लिया। श्री दीक्षित के अनुसार, रुद्रदेव अन्य कोई न होकर रुद्रसेन वाकाटक ही था। परन्तु वाकाटकों ने आर्यावर्त पर भी राज्य किया था, यह अमान्य है। अतः समुद्रगुप्त[3] के शासन-काल में उनके उन्मूलन का प्रश्न ही नहीं उठता। इसी प्रकार, यह भी अविश्वसनीय है कि बलवर्मन असम का राजकुमार था, क्योंकि उस युग में असम आर्यावर्त का भाग न होकर सीमा-प्रान्त (प्रत्यन्त) था। मध्य दोआब में बुलन्दशहर में एक सील मिली है, जिस पर 'मत्तिल' नाम अंकित है। सम्भवतः इसी को 'मतिल' कहा गया है। इस सील पर कोई भी आदर-सूचक शब्द नहीं है। अतः एलन का ऐसा अनुमान है कि यह किसी की व्यक्तिगत सील थी। परन्तु, हमें अनेक ऐसे राजकुमारों के नाम भी मिले हैं जिनके नाम के पहले किसी भी आदरसूचक शब्द का प्रयोग नहीं मिलता। सुसूनिया[4] के अभिलेख में चन्द्रवर्मन नामक एक राजा का उल्लेख मिलता है। सम्भवतः वही यह चन्द्रवर्मन होगा जो पुष्करण का राजा था तथा 'घुग्रहाती-ग्राण्ट' के अनुसार, चन्द्रवर्मन-कोट की नींव डालने वाला भी था। कुछ विद्वानों का मत है कि पुष्करण मारवाड़-स्थित पोकरन अथवा पोकुर्न नगर था। साथ ही चन्द्रवर्मन के पिता, मंदसौर-वंश के सिंहवर्मन को उपर्युक्त सिंहवर्मन बताया गया है। परन्तु, इस सम्बन्ध में कुछ अधिक सामग्री नहीं मिलती। पश्चिमी मालव के वर्मन-वंश के लोगों में चन्द्रवर्मन अथवा उसकी विजय का कोई उल्लेख नहीं मिलता। वास्तव में मुसूनिया पहाड़ी[5] के उत्तर-पूर्व में २५ मील दूर, बाँकुरा ज़िले में दामोदर नदी के तट पर स्थित 'पोखरन' गाँव ही पुष्करण है।

---

[1] 'महापद्म' की एक उपाधि, क्षत्रियों का विनाश करने वाला।

[2] Father Heras (*Ann. Bhan. Ins.*, IX, p. 88) का मत है कि समुद्रगुप्त ने आर्यावर्त पर दो बार आक्रमण किया। परन्तु, इस सिद्धान्त के अनुसार, प्रथम आक्रमण में अच्युत तथा नागसेन को पराजित कर दूसरे आक्रमण में उन्हें पूर्णतया नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया था। किसी प्रकार की गड़बड़ी न हो, इसीलिए 'उन्मूलित' (uprooted) शब्द का अर्थ 'पराजित' करने से लिया गया है। यह बात संतोषजनक नहीं है।

[3] *Cf. IHQ*, I, का 2, 254. सी० पी० के चन्दा ज़िले के देवतेक से रुद्रसेन सम्बन्धित है (*Eighth Or. Conf.*, 613 ff; *Ep. Ind.*, xxvi, 147, 150)।

[4] बाँकुरा के उत्तर-पश्चिम में १२ मील दूर पर स्थित एक बलुआ पत्थर की पहाड़ी।

[5] देखिये दीक्षित, *ASI*, *AR*, 1927-28, p. 188; एस० के० चटर्जी, *The Origin and Development of the Bengali Language*, II, 1061; *IHQ*, I, 2, 255. पंडित एच० पी० शास्त्री का मत है कि 'महाराज' की उपाधि

ऐसा प्रतीत होता है कि गनपति नाग, नागसेन तथा नन्दी, नागवंशीय राजा थे। यह निश्चित है कि गनपति नाग नाग-राजकुमार ही था। मथुरा[१] में प्राप्त मुद्राओं से भी इस राजकुमार के सम्बन्ध में बहुत कुछ ज्ञात होता है। ऐसी ही सूचना नरवर के निकट पवाया तथा वेसनगर[२] में प्राप्त मुद्राओं से भी मिलती है। सिन्धु-तट पर ग्वालियर तथा झाँसी के बीच नरवर के निकट पद्मावती[३] में नागसेन की मृत्यु हुई थी। इस राजा का उल्लेख हर्षचरित में भी है (**नागकुल-जन्मनः सारिकाश्रावित मंत्रस्य आसीद्नाशो नागसेनस्य पद्मावत्याम्**[४])। सम्भवतः नंदी भी नाग-

---

धारण करने वाला यहाँ का स्थानीय शासक श्री मेहरौली के लौह स्तम्भ-लेख में अंकित (**भूक्षिपति प्राप्त ऐकाधिराज्य**) राजा चन्द्र ही था जिसने अपनी वीरता से समस्त संगठित शत्रुओं को भगाकर सात मुँह वाली सिन्धु पार कर युद्ध किया और वाह्लीकों को हराया था। दूसरे लोग 'चन्द्र' को चन्द्रगुप्त-प्रथम अथवा द्वितीय बताते हैं। परन्तु, चन्द्र ने अपने आपको न कभी चन्द्रवर्मन कहा और न कभी चन्द्रगुप्त ही। यही नहीं, गुप्त एवं वर्मन वंश के चारणों के समान यद्यपि इसके चारण भी बताते हैं कि उसने अपने बाहुबल से अपना राज्य दूर-दूर तक फैला रखा था, तो भी उसकी वंशावली के सम्बन्ध में वे भी मौन ही लगते हैं। यही नहीं, नाम तो उसके पिता तक का भी नहीं दिया गया है! यह बात ध्यान देने योग्य है कि पुराणों के अनुसार, चौथी शताब्दी के प्रारम्भ में जमुना की घाटी तथा मध्यभारत में नागों का राज्य था। विष्णु-पुराण से ज्ञात होता है कि पद्मावती तथा मथुरा में नागों का राज्य था। पार्जिटर (*Kali Age*, p. 49) के अनुसार, विदिशा में भी नागों का राज्य था। आंध्र-देश के नाग-राजाओं के बाद के दो राजाओं—सदाचन्द्र तथा चन्द्रांश (नखवन्त-द्वितीय)—का भी उल्लेख मिलता है। इनमें से एक (सम्भवतः अंतिम) प्रसिद्ध शासक था और कदाचित् मेहरौली-स्थित लौह-स्तम्भ में वर्णित राजा 'चन्द्र' था। सात मुँह वाली सिन्धु के उस पार रहने वाले वाह्लीक बकत्रिओई' थे, जिन्होंने तोलेमी के समय में अर्कोशिया प्रदेश पर अधिकार कर रखा था (*Ind. Ant.*, 1884, p. 408)। वैभार पहाड़ी पर जैनियों की एक मूर्त्ति पर 'महाराजाधिराज श्रीचन्द्र' लिखा हुआ मिला है (*ASI*, *AR*, 1925-26, p. 125)। ज्ञात नहीं कि यह 'चन्द्र' कौन था?

१. Altekar, *NHIP*, vi, 37.

२. *IHQ*, I, 2, 255. धार्मिक इतिहास की दृष्टि से इस राजा के नाम के महत्व पर ध्यान दीजिए (देखिये बृहत्संहिता का गजमुख, 58.58)। आगे चल कर 'भावशतक' में भी गनपति नाग का उल्लेख संदेहजनक है। उस लेख के गजवक्त्र-श्री वास्तव में गतवक्त्र-श्री थे (*IHQ*, 1936, 135ff; काव्यमाला, IV, pp. 46f, 60)।

३. पद्मावती—सिन्धु तथा पारा नदियों के संगम के शिखर में पदम पवाया (नरवर के उत्तर-पूर्व में २५ मील)। नागों के सिक्के भी यहाँ पाये गये हैं (*EHI*^{4}, p. 300; *ASI*, *AR*, 1915-16, pp. 101 ff.)।

४. 'पद्मावती' के अनुसार, नागसेन का जन्म नागवंश में हुआ था और उसका अज्ञान तपस्या 'सारिका' पक्षी द्वारा भंग हो जाने पर उसकी मृत्यु हो गई थी।

राजकुमार ही था। पुराणों में शिशुनन्दी तथा नन्दीयशस को मध्य भारत के नागवंशीय कहा गया है। शिवनन्दी[1] नामक एक अन्य नाग-राजा की भी हमें जानकारी है। अहिच्छत्रा (बरेली जिले के आधुनिक रामनगर) में कदाचित् राजा अच्युत राज्य करता था। अहिच्छत्रा[2] में अनेक छोटी-छोटी ताँबे की मुद्राएँ मिली हैं, जिन पर 'अच्यु' लिखा है और जो सम्भवतः इसी की हैं। जहाँ तक कोट-कुल का प्रश्न है, रैप्सन[3] हमारा ध्यान उन मुद्राओं की ओर आकर्षित करता है जिन पर 'कोट' अंकित है। ये मुद्राएँ श्रावस्ती के राजा की 'श्रुत मुद्राओं' से मिलती-जुलती हैं। अतः यह अनुमान लगाया जा सकता है कि कोट-कुल गंगा नदी के उत्तरी मैदानों में कहीं राज्य करता था।[4]

विजित प्रदेशों को साम्राजय में मिलाकर 'विषय' की संज्ञा दी गई थी। बाद के लेखों से ऐसे दो विषयों' का पता चलता है। इस वंश के बाद के कुछ लेखों से पता चलता है कि इन विषयों में एक दोआब में था। इसका नाम 'अन्तर्वेदी' था। दूसरा 'ऐरिकन' विषय पूर्वी मालव में था। यहाँ इस बात का उल्लेख विशेष महत्त्व रखता है कि स्कन्दगुप्त के समय में भी 'अन्तर्वेदी' में एक नाग-राजकुमार 'विषयपति सर्वनाग' की उपाधि से राज्य करता था।

उपर्युक्त उत्तरवर्ती राज्यों को ही समुद्रगुप्त ने अपने राज्य में नहीं मिलाया था, वरन् उसने 'आटविक राज्यों', अर्थात् वनीय राज्यों के शासकों को भी अपना दास बना लिया था। किन्तु, उसकी अत्यन्त साहसिक विजय दक्षिण की विजय थी, जहाँ पूर्वी

---

[1] Dubreuil, *Ancient History of the Deccan*, p. 31. यह अत्यन्त विचित्र बात है कि गुप्त-सम्राटों का राजचिह्न गरुड़ था, जिन्होंने नागों को कुचलने का भरसक प्रयत्न किया था। देखिये स्कन्दगुप्त का जूनागढ़-लेख—

नरपति भुजगानाम् मानवर्पोत् फणानाम्
प्रतिकृति गरुणाज्ञाम् निर्विशीम् चावकर्त्ता।

"पुराणों के अनुसार, गुप्तों के आराध्य कृष्ण 'कालिय' नाग और दूसरे सर्पों के सिर को कुचल डालते हैं।"

[2] Allan, *Gupta Coins*, xxii; *CCAI*, lxxix.

[3] *JRAS*, 1898, 449f.

[4] स्मिथ (*Coins in the Indian Museum*. 258) का कथन है कि कोट-मुद्रायें पूर्वी पंजाब तथा दिल्ली के बाज़ार में भारी संख्या में प्रचलित थीं। ऐसा कहा जाता है कि कोट की एक जाति नीलगिरि में भी रहती थी (*JRAS*, 1897, 863; *Ind. Ant.*, iii, 36, 96, 205)। इलाहाबाद-अभिलेख में यह वाक्य "समुद्रगुप्त की सेना ने कोट-वंश के एक राजा को बन्दी बनाकर पुष्पाह्वय में अपना मनोरंजन किया" का अर्थ कुछ विद्वान् यह बताते हैं कि कोट-नरेश कभी पाटलिपुत्र पर भी राज्य करते थे (*Cf.* Jayaswal, *History of India*, *c.* 150 *A. D.* to 350 *A. D.* p. 113)। 'कौमुदी महोत्सव' में वर्णित मगध-वंश के शासक कोट-कुल के थे, इसका कोई प्रमाण हमें नहीं मिलता।

दक्षिण के राजाओं ने उसका लोहा मान लिया था। उत्तर में उसके विजय-अभियानों का मुख्य उद्देश्य था प्रारम्भिक मागधीय सम्राटों की भाँति दिग्विजयी[1] बनना, परन्तु दक्षिण में, उसने पौराणिक एवं कौटिल्य की 'धर्मविजयी' नीति का अनुसरण किया था। इसीलिए वहाँ के राजाओं को उसने पराजित तो किया, परन्तु उनका राज्य अपने साम्राज्य में नहीं मिलाया। सम्भवतः उसने यह अनुमान लगा लिया था कि दक्षिण के इन दूरस्थ भागों पर सुदूर उत्तर भारत में रहकर किसी तरह का प्रभावशाली नियंत्रण रखना सम्भव न होगा। वैसे उसके उत्तराधिकारियों ने वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर दक्षिण पर अपना अधिकार बनाये रखा। आटविक राज्य में निश्चय ही आलवक (गाज़ीपुर) तथा डभाला अथवा जबलपुर के वनीय क्षेत्र सम्मिलित थे।[2] समुद्रगुप्त द्वारा इन प्रदेशों की विजय का संकेत एरण-अभिलेख से भी मिलता है।

दक्षिणापथ के जिन राजाओं ने गुप्त-सम्राट् के साथ युद्ध किया था, उनके नाम इस प्रकार हैं—कोशल के महेन्द्र, महाकांतार के व्याघ्रराज, कौराल के मण्टराज, कोट्टूर के स्वामिदत्त, पिष्टपुर का एक अज्ञातनाम शासक[3], एरण्डपल्ल के दमन, कांची के विष्णुगोप, अवमुक्त के नीलराज, वेंगी के हस्तिवर्मन, पलक्क के उग्रसेन, देवराष्ट्र के कुबेर, कुस्थलपुर के धनञ्जय, तथा अन्य नरेश।

---

[1] इस प्रकार की विजय 'असुर-विजय' कहलाती है (देखिये अर्थशास्त्र, p. 382)। यह नाम कदाचित् असीरियनों से लिया गया है जो युद्धक्षेत्र में अपनी क्रूरता के लिए प्रसिद्ध थे। "अश्शुर" शब्द से ही 'असुर' शब्द की उत्पत्ति हुई है (देखिये *JRAS*,1916, 355; 1924, 265 ff)। इस प्रकार की विजय का भारत में सर्वप्रथम उल्लेख ई० पू० छठी शताब्दी में हुआ था (देखिये अजातशत्रु द्वारा लिच्छवियों तथा विड्डभ (विदर्भ) के शाक्यों पर विजय)। उस समय भारत तथा असीरिया में फ़ारस बीच की कड़ी था।

[2] Fleet, *CII*, p. 114; *Ep. Ind.*, VIII, 284-287. पाँचवीं शताब्दी के अंत तथा छठी शताब्दी के प्रारम्भ में डभाल प्रदेश पर गुप्त-वंश के अधीनस्थ 'परिव्राजक महाराज' शासन करते थे। महाभारत (ii, 31, 13-15) में इलाहाबाद-प्रशस्ति की तरह आटविकों तथा कांतारकों में अंतर बताया गया है। संध्याकर नन्दी के रामचरित की टीका (p. 36) में आया हुआ 'कोटाटवि' सम्भवतः आटविक का ही दूसरा नाम है (*Ep. Ind.*, VII, p. 126); और एक दूसरे लेख में 'वटाटवि' कहा गया है, जबकि लूडर्स की सूची, संख्या ११९५ में, 'सहलाटवि' बताया गया है।

[3] "**पैष्टपुरक महेन्द्रगिरि कौट्टूरक स्वामिदत्त**" के सम्बन्ध में विविध अर्थों के लिए देखिये फ़्लीट, *CII*, Vol. 3, pp. 7; *JRAS*, 1897, pp. 420, 868-870; *IHQ*, 1925, 252; बरुआ, *Old Brahmi Inscriptions*, p. 224. हो सकता है कि इसमें आया हुआ 'महेन्द्रगिरि' नाम किसी का व्यक्तिगत नाम हो। कीलहॉर्न (*S. Ins.*, 596) के अनुसार, गोदावरी ज़िले के एक भाग में कोंडविड् के राजा का नाम कुमारगिरि था। *JRAS* (1897, 870) में सिंधिया के मित्र राजा का नाम कामतागिर था।

दक्षिणापथ के कोशल, अर्थात् दक्षिणी कोशल में आधुनिक बिलासपुर, रायपुर, सम्बलपुर ज़िले तथा गंजाम[1] के कुछ प्रदेश सम्मिलित थे। इसकी राजधानी श्रीपुर (आधुनिक सीरपुर) रायपुर से पूर्व तथा उत्तर की ओर ४० मील पर स्थित थी।[2] महाकांतार कदाचित् मध्य प्रदेश का वन-प्रदेश है, जिसमें सम्भवतः कांतार भी है। महाभारत के अनुसार, कान्तार वेण्वातट (वैनगंगा की घाटी) तथा उपर्युक्त कोशल राज्य के पूर्वी भाग, अर्थात् प्राक-कोशल के बीच था।[3]

'कौराल' 'कोल्लेरु' अथवा 'कोलैर' कभी भी हो नहीं सकता, जो कि कदाचित् वेंगी के हस्तिवर्मन, जिनका उल्लेख अलग से किया गया है, के राज्य में सम्मिलित था। डॉ० बार्नेट के अनुसार, दक्षिणी भारत में कोराड[4] नामक ग्राम ही यह स्थान था। गंजाम में रसेलकोंदा के निकट कोलाड नामक एक स्थान है।

गंजाम[5] में महेन्द्रगिरि से १२ मील दक्षिण-पूर्व में स्थित 'कोथूर' ही 'कोट्टूर' है। गोदावरी ज़िले का पिष्टपुर ही पिठापुरम है। फ़्लीट के अनुसार, खानदेश का एरण्डोल ही एरण्डपल्ल है, जबकि डुब्रील के अनुसार, गंजाम[6] ज़िले के एरण्डपली का

---

[1] रतनपुर भी सम्मिलित था (देखिये *Ep. Ind.*, X. 26; कोंगोद—*Ep. Ind.*, VI. 141, तभी जब तोसल को कोशल पढ़ लिया जाये)।

[2] Fleet, *CII*, p. 293; *Cf. Ep. Ind.*, xxiii, 118 f.

[3] महाभारत, II, 31,12-13. जी० रामदास (*IHQ*, I. 4, 684) के अनुसार, गंजाम तथा विशाखापटनम के क्षेत्र में 'झारखंड' क्षेत्र को महाकांतार कहा गया है। महाकांतार के राजा का राज्य उत्तर की ओर अजयगढ़ राज्य के नचना तक फैला हुआ था। (Smith, *JRAS*, 1914, 320)। R. Sathianathaier (*Studies in the Ancient History of Tondamandalam*) ने बहुत से दक्षिणी राज्यों के सम्बन्ध में जो चर्चा की है, वह विश्वसनीय प्रतीत नहीं होती। उसका यह निष्कर्ष, कि समुद्रगुप्त सर्वप्रथम पूर्वी किनारे पर पिठापुरम में आया और वहीं से पश्चिमी दक्षिण पर विजय प्राप्त की, निस्संदेह अस्पष्ट प्रमाणों पर ही आधारित है।

[4] *Cal. Rev.*, Feb., 1924, 253 n; देखिये कुर्रालन, Tj, 590 (*A Topographical List of Inscriptions of the Madras Presidency*, by V. Rangacharya)। इस पुस्तक के कुछ संस्करणों में यथातिनगरी (*Ep. Ind.*, XI. 189) को ही बताया गया है। परन्तु, 'पवनदूत' में 'केरली' पढ़ना भी कुछ असम्भव नहीं है। कोलाड के लिए देखिये *Ep. Ind.*, XIX, 42.

[5] विशाखापटनम ज़िले में पहाड़ों की तलहटी में 'कोट्टूर' नामक एक अन्य प्रदेश भी है। और भी देखिये 'कोट्टूर' (*IA*, 4, 329) और 'कोट्टूरनाड़ु' (*MS*, 333, रंगाचार्य की सूची)।

[6] Dubreuil, *AHD*, pp. 58-60. 'एरण्डवल्ली' नामक स्थान का उल्लेख गोविन्द-तृतीय के लेख में भी है (*Bharat Itihas Sam. Mandala*, AR, XVI)।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

एक नाम एरण्डपल्ल था। परन्तु, जी० रामदास[1] का कथन है कि यह नाम विशाखापटनम के येण्डीपल्ली अथवा एलोर तालुक़ा के येण्डापिल्ली से मिलता है। मद्रास के निकट काँची ही कांजीवरम है। अवमुक्त का पता ठीक से नहीं चलता, परन्तु इसके राजा 'नीलराज' से हमें गोदावरी[2] ज़िले में यानम के निकट स्थित प्राचीन बन्दरगाह नीलपल्ली की याद आती है। वेंगी वास्तव में वेगी अथवा पेद्दावेगी था, जो कृष्णा तथा गोदावरी के बीच एलोर से सात मील उत्तर की ओर था। हल्ट्ज़ के अनुसार, इसका राजा हस्तिवर्मन वास्तव में आनन्द-वंश[3] का अत्तिवर्मन था। परन्तु, अधिक विश्वसनीय यह प्रतीत होता है कि वह शालंकायन-वंश[4] से सम्बन्धित था। पलक्क सम्भवतः दक्षिण भारत के नेल्लोर अथवा गुण्टूर ज़िले के पल्लव-राजा अथवा उसके प्रतिनिधि का निवास-स्थान पलक्कद अथवा पालत्कट था। एलन तथा जी० रामदास के अनुसार, यह नेल्लोर ज़िले[5] में ही था। देवराष्ट्र, येल्लामंचिली तालुक़ा था जो विशाखापटनम[6] ज़िले में था। डॉ० बार्नेट के अनुसार, उत्तरी आर्काट[7] में पोलूर के निकट कुत्तलपुर सम्भवतः कुस्थलपुर था।

महेन्द्रगिरि पर्वत के निकट मुख्य रूप से कोट्टूर के शासक के बन्दी बनाये जाने तथा उसके मुक्त होने से हमें कालिदास के रघुवंशम् की इन पक्तियों का स्मरण हो आता है—

गृहीत-प्रतिमुक्तस्य स धर्मविजयी नृपः
श्रियं महेन्द्रनाथस्य जहार नतु मेदिनीम्।

"न्याय-विजयी महाराज रघु ने महेन्द्रगिरि के राजा को बन्दी बनाकर छोड़

---

[1] *IHQ*, I, 4, p. 683. पाद्म (स्वर्ग-खण्ड, 45, 57, 61) में 'एरण्डी' तीर्थ का उल्लेख मिलता है।

[2] गोदावरी ज़िले का गज़ेटियर, Vol. I, p. 213. ब्रह्म पुराण (Chap. 113. 22 f) में 'अविमुक्त क्षेत्र' को गौतमी या गोदावरी के तट पर बताया गया है। रंगाचार्य की सूची में १६४ पर देखिये अविमुक्तेश्वर, अनन्तपुर।

[3] अत्तिवर्मन को भूल से पल्लव-वंश का कहा गया है (देखिये *IHQ*, 1, 2, p. 253; *Ind. Ant.*, IX, 102)। परन्तु, वास्तव में वह प्रसिद्ध संन्यासी आनन्द का वंशज था (*Bomb. Gaz.*, I, ii. 334; कीलहार्न, *S. Ins.*, 1015; *IA*, IX, 102; *ASI*, 1924-25, p. 118)।

[4] हस्तिवर्मन वास्तव में शालंकायन-वंशावली में मिलता है (*IHQ*, 1927, 429; 1933, 212; नन्दीवर्मन द्वितीय का पेदावेगी-लेख)।

[5] *IHQ*, I, 2, 686; *Cf. Ep. Ind.*, xxiv, 140.

[6] Dubreuil, *AHD*, p. 160; *ASR*, 1908-09, p. 123; 1934-35, 43, 65.

[7] *Cal. Rev.*, 1924, p. 253 n. देखिये—कुतलपरं, *MS*, 179 of Rangacharya's List.

दिया। इस प्रकार उन्होंने उसका यश तो समाप्त कर दिया, परन्तु उसका राज्य नहीं छीना।''

यह कोई कम आश्चर्य की बात नहीं कि इलाहाबाद-प्रशस्ति में वाकाटकों का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया गया, जबकि हम जानते हैं कि ईसवी काल की पाँचवीं शताब्दी में वे पेनगंगा और बुन्देलखण्ड के मध्यवर्ती क्षेत्र पर राज्य करते थे। वाकाटकों का सर्वप्रथम उल्लेख अमरावती[1] के कुछ अभिलेखों से मिलता है। इस वंश का उत्थान विन्ध्यशक्ति-प्रथम और उसके पुत्र प्रवरसेन-प्रथम के समय हुआ। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रवरसेन के बाद उसके राज्य के उत्तरी भाग पर उसके पौत्र रुद्रसेन-प्रथम ने शासन का भार सँभाला था। रुद्रसेन-प्रथम का पुत्र एवं उत्तराधिकारी पृथिवीषेण-प्रथम समुद्रगुप्त का और सम्भवतः उसके पुत्र चन्द्रगुप्त-द्वितीय का भी समकालीन रहा होगा, क्योंकि उसके पुत्र रुद्रसेन-द्वितीय ने चन्द्रगुप्त-द्वितीय की पुत्री से विवाह किया था। पृथिवीषेण-प्रथम का राजनैतिक प्रभाव बहुत दूर-दूर तक फैला हुआ था। 'नाचने की तलाई' तथा गंज[2] प्रदेश में उसके आधिपत्य को स्वीकार कर व्याघ्रदेव राज्य करते थे। प्रो० डुब्रील का मत है कि 'नाचना' तथा गंज के अभिलेखों में जिस व्याघ्र का उल्लेख है, वह पृथिवीषेण-प्रथम के समय का न होकर उसके प्रपौत्र पृथिवीषेण-द्वितीय के समय का ही अधिक लगता है। यह तथ्य विश्वसनीय नहीं है, क्योंकि पृथिवीषेण-द्वितीय के परदादा के समय से, यदि इससे भी पूर्व नहीं तो, कम से कम ५२८ ई० तक 'नाचना' तथा गंज और वाकाटक[3] प्रदेश के बीच की भूमि पर गुप्त-सम्राटों का शासन था। 'नाचना' तथा गंज के विवरणों से ज्ञात होता है कि व्याघ्र ने वाकाटक पृथिवीषेण का आधिपत्य स्वीकार किया था। अतः वह पृथिवीषेण-प्रथम ही होगा, जिसने गुप्त-वंश के समुद्रगुप्त तथा चन्द्रगुप्त-द्वितीय[4] के आधिपत्य की स्थापना के पूर्व राज्य किया होगा। वह राजा पृथिवीषेण-द्वितीय नहीं हो सकता, क्योंकि उसके काल में, जैसा कि

---

[1] *Ep. Ind.*, XV, pp. 261, 267.

[2] Fleet, *CII*, p. 233: *Ep. Ind.*, XVII, 12; *Cf. Ind. Ant.*, June, 1929.

[3] यह प्रदेश बरार तथा उसके आसपास का प्रदेश था (*Ep. Ind.*, xxvi, 147)। बृहत्संहिता से ज्ञात होता है कि नाचना तथा गंज गुप्त-काल में दक्षिणापथ में सम्मिलित थे। उसके अनुसार, चित्रकूट भी दक्षिणी भारत में ही था। हाल ही में द्रुग ज़िले में एक वाकाटक-अभिलेख का पता चला है, जिसमें पद्मपुर का उल्लेख है। प्रो० मिराशी के अनुसार, यह स्थान भवभूति की जन्मभूमि था, तथा मध्य प्रान्त के भण्डारा ज़िले में आमगाँव के निकट था (*IHQ* 1935, 299; *Ep. Ind.*, xxii, 207 ff)। बासिम-ग्राण्ट से ज्ञात होता है कि अजन्ता-क्षेत्र के दक्षिण में बरार के एक भाग पर इस वंश का अधिकार था।

[4] देखिये—एरण तथा उदयगिरि लेख। पुराभूगोल के साक्ष्य के लिए देखिये—*JRASB*, xii, 2. 1946, 73.

परिव्राजक महाराज[1] के विवरणों से ज्ञात होता है, मध्यप्रदेश पर गुप्त-सम्राटों का शासन था, वाकाटकों का नहीं ।

हरिषेण की प्रशस्ति में पृथिवीषेण-प्रथम का उल्लेख केवल इसीलिए नहीं मिलता कि समुद्रगुप्त ने अपनी विजय उत्तरी भारत के पूर्वी भाग तक ही सीमित रखी थी । इस बात का कोई प्रमाण नहीं मिलता कि समुद्रगुप्त ने दक्षिणी भारत के मध्य तथा पश्चिमी भाग पर भी आक्रमण किया था, या नहीं । अतः, पृथिवीषेण-प्रथम के राज्य पर समुद्रगुप्त का आक्रमण कभी हुआ ही नहीं । प्रो० डुब्रील का कथन है कि देवराष्ट्र को महाराष्ट्र तथा एरण्डपल्ल को खानदेश का एरण्डोल बताना शायद गलत होगा ।[2]

यद्यपि समुद्रगुप्त ने पश्चिमी दक्षिणापथ पर आक्रमण नहीं किया फिर भी एरण अभिलेख से स्पष्ट है कि उसने मध्य भारत में वाकाटकों की प्रभुता समाप्त कर दी थी । इन प्रदेशों पर वाकाटक-नरेशों का सीधा राज्य नहीं था, वरन् यहाँ पर उनके प्रतिनिधि राज्य करते थे । पृथिवीषेण के राज्य-काल में यह प्रतिनिधि व्याघ्र था । अतः यह स्वाभाविक ही है कि वाकाटक के प्रतिनिधियों तथा गुप्त-विजेताओं के बीच समय-समय पर संघर्ष होता रहा । आश्चर्य की बात है कि इलाहाबाद-प्रशस्ति में महाकांतार[3] के राजा व्याघ्रराज पर समुद्रगुप्त की विजय का उल्लेख किया गया है । हो सकता है कि यह व्याघ्रराज वही व्याघ्र हो, जो नाचना-अभिलेख के अनुसार, मध्य भारत में पृथिवीषेण का प्रतिनिधि था । समुद्रगुप्त की विजयों के कारण वाकाटकों के ऊपर गुप्त-सम्राटों का प्रभुत्व स्थापित हो गया था । अब से वाकाटकों की शक्ति केवल दक्षिण में ही सीमित रह गई थी ।

समुद्रगुप्त की इन विजयों का गहरा प्रभाव उत्तरी-पूर्वी भारत और हिमालय-क्षेत्रों के प्रत्यन्त[4] नृपतियों अथवा सीमावर्त्ती नरेशों पर भी पड़ा । साथ ही पंजाब के कबाइली राज्य भी इस प्रभाव से अछूते न रह सके । इनके अतिरिक्त पश्चिमी भारत, मालव तथा मध्यप्रदेश के शासकों ने 'हर प्रकार के कर देकर तथा उसकी प्रभुता को मानकर' उसके 'प्रचण्ड शासन' को स्वीकार किया । पूर्वी राज्यों में जिन प्रदेशों ने गुप्त-सम्राटों का आधिपत्य स्वीकार किया, उनमें से मुख्य प्रदेश समतट (पूर्वी बंगाल का समुद्र-तटवर्त्ती प्रदेश जिसकी राजधानी कोमिल्ला के निकट कर्मान्त

---

[1] *Cf. Modern Review*, April, 1921, p. 475. डुब्रील के विचार जानने के लिए देखिये—*Ind. Ant.*, June, 1926.

[2] *Cf. Modern Review*, 1921, p. 457.

[3] समुद्रगुप्त के कुछ सिक्कों पर शेर को पैरों से कुचलते हुए राजा को दिखाया गया है तथा उस पर 'व्याघ्र-पराक्रम' लिखा है । तो क्या इसका कोई सम्बन्ध सम्राट् के व्याघ्रराज पर विजय प्राप्त करने से है ? यह कम आश्चर्य की बात नहीं है कि दूसरे सम्राट् ने अंतिम क्षत्रप रुद्रसिंह-तृतीय पर विजय प्राप्त करके 'सिंहविक्रम' की उपाधि धारण की थी ।

[4] इस शब्द के महत्त्व के लिए देखिए—दिव्यावदान, p. 22.

या बडकाम्त थी)[१], डवाक (अभी तक ठीक से इसका पता नहीं चल सका है)[२] तथा कामरूप (असम में) थे। दामोदरपुर-प्लेट से पता चलता है कि उत्तरी बंगाल का पुड्रवर्धनभुक्ति नामक एक बहुत बड़ा भाग सन् ४४३ से ५४३ ई० तक गुप्त-साम्राज्य का अंग था और उपरिकों द्वारा, गुप्त-वंश के प्रतिनिधि के रूप में, शासित था। अतः उत्तरी बंगाल के कुछ ज़िलों को 'डवाक' बताना भ्रमात्मक होगा। उत्तरी प्रत्यन्तों में नेपाल तथा कर्त्तृपुर नामक राज्य थे। कर्त्तृपुर में सम्भवतः कर्तारपुर (जो जालन्धर ज़िले में था), कुमायूँ का कतूरिया अथवा कत्यूर 'राज', गढ़वाल और रोहिलखण्ड सम्मिलित थे।[३]

वे सभी कबाइली राज्य जो समुद्रगुप्त को कर देते थे, आर्यावर्त के पश्चिमी और दक्षिणी-पश्चिमी सीमान्त पर स्थित थे। इनमें से मुख्य-मुख्य राज्य मालव, आर्जुनायन, यौधेय, मद्रक, आभीर, प्रार्जुन, सनकानीक, काक और खरपरिक थे।

सिकन्दर के आक्रमण के समय मालवों ने पंजाब के कुछ भाग पर अपना अधिकार कर रखा था। जिस समय उनका संघर्ष उषवदात से हुआ, उस समय सम्भवतः वे पूर्वी राजपूताना[४] में थे। समुद्रगुप्त के समय की उनकी वास्तविक स्थिति मालूम नहीं की जा सकती। समुद्रगुप्त के उत्तराधिकारियों के समय में उनका सम्बन्ध सम्भवतः मन्दसौर प्रान्त से था। हम देखते हैं कि मन्दसौर के राजा ५८ ई० पू० से आरम्भ होने वाली तिथि को मानते थे, जो सम्भवतः उन्हें मालवगण से मिली थी।

बृहत्संहिता के लेखक ने आर्जुनायनों तथा यौधेयों को उत्तरी भारत का बताया है। हो सकता है कि तोलेमी द्वारा उल्लिखित पंजाब[५] में बसी पाण्डुओई अथवा पांडव जाति से उनका सम्बन्ध था। आर्जुनायनों का सम्बन्ध पाण्डव अर्जुन[६] से था, यह

---

[१] Bhattasali, *Iconography*, pp. 4 f; *JASB*, 1914, 85 ff. देखिये—छठी शताब्दी के प्रारम्भ में सम्राट् वैन्यगुप्त के नीचे महाराज रुद्रदत्त की क्या स्थिति थी ?

[२] देखिए देकक (ढाका), Hoyland, *The Empire of the Great Mogol*, p. 14. श्री के० एल० बरुआ मध्य असम में कोपिली-घाटी को 'दवाक' बताते हैं (*Early History of Kamarupa*, 42 n)। गुप्त-काल का प्रयोग दबोका-क्षेत्र में देखने के लिए देखिए—*Ep. Ind.*, xxvii, 18 f.

[३] *EHI*^{4}, 302 n; *JRAS*, 1898 198; *Ep. Ind.*, XIII, 114; *Cf. J. U. P. Hist. Soc.*, July-Dec., 1945, pp. 217 ff., जिसमें पावेल प्राइस के अनुसार, कुणिन्दों तथा कत्यूरों के बीच कुछ सम्बन्ध अवश्य था।

[४] *Cf.* Smith, *Catalogue*, 161; Allan, *CCAI*, p. cv. जयपुर राज्य में मालव की मुद्रायें भारी संख्या में पाई गई हैं (*JRAS*, 1897, 883)।

[५] *Ind. Ant.*, XIII, 331, 349.

[६] उनकी मुद्रायें मथुरा में भी मिली हैं (Smith, *Catalogue*, 160)। 'अभिधान चिंतामणि' (p. 434) में आर्जुनी नामक नदी को बाहुदा (रामगङ्गा ?) नदी बताया गया है।

स्पष्ट है। यौधेय कदाचित् महाभारत[1] में आए हुए युधिष्ठिर के पुत्र का नाम था। हरिवंश में यौधेयों को उशीनर[2] से सम्बद्ध बताया गया है। विजयगढ़-अभिलेख[3] में इस जाति के निवास-स्थान का हल्का-सा संकेत मिलता है। राजपूताना के भरतपुर राज्य में बयाना के दक्षिण-पश्चिम में दो मील दूर विजयगढ़ का पहाड़ी किला स्थित है। परन्तु, यौधेयों का राज्य इससे अधिक क्षेत्र में विस्तृत था तथा उसमें सतलज के दोनों ओर की भूमि (जिसका नाम जोहियाबार था) तथा बहावलपुर का प्रदेश भी सम्मिलित था।[4]

मद्रकों की राजधानी पंजाब में शाकल अथवा शियालकोट थी। सिन्धु-घाटी का निचला भाग तथा विनाशन[5] के निकट पश्चिमी राजपूताना का वह ज़िला जिसे 'पेरीप्लस'[6] ने तथा तोलेमी ने अपने भूगोल में 'अबीरिया' कहा है, आभीरों के अधिकार में थे। हमने पहले ही पढ़ा है कि एक आभीर-सामन्त ने पश्चिमी भारत में 'महाक्षत्रप' का पद पाने के बाद तीसरी शताब्दी के मध्य तक महाराष्ट्र के एक भाग से सातवाहनों को मार भगाया था। इसी जाति की एक शाखा मध्यभारत में जा बसी और उसने झाँसी तथा भिलसा के बीच के प्रदेश को आहिरवार देश नाम दिया।[7] प्रार्जुनों, सनकानीकों, काकों और खरपरिकों के राज्य सम्भवतः मालव तथा मध्य-भारत में स्थित थे। कौटिल्य के अर्थशास्त्र[8] में प्रार्जुनों का उल्लेख मिलता है। स्मिथ[9] के अनुसार, इनका राज्य मध्यप्रान्त के नरसिंहपुर ज़िले में स्थित था। पूर्वी मालव में चन्द्रगुप्त-द्वितीय के प्राप्त उदयगिरि-अभिलेख से सनकानीकों के स्थान का कुछ पता चलता है। काकों का उल्लेख महाभारत[10] में मिलता है—'**ऋषिका विदभाः काकास्** तगनाः-परतंगनाः'। बॉम्बे-गज़ेटियर में काक को बिठूर के

---

१. महाभारत, आदिपर्व, 95, 76. पाणिनि यौधेयों के बारे में जानते थे (V. 3, 117)।

२. Pargiter, मार्कण्डेय पुराण, p. 380.

३. Fleet, *CII*, p. 251. यौधेयों की कुछ सीलें लुधियाना ज़िले में भी पाई गई हैं (*JRAS*, 1897, 887)। सहारनपुर से मुलतान तक के प्रदेश में मुद्रायें मिली हैं (Allan, *CCAI*,cli)।

४. Smith, *JRAS*, 1897, p 30: *Cf*. Cunningham, *AGI*, 1924, 281.

५. महाभारत, IX, I.37,1—'**शूद्राभिरान् प्रति द्वेषाद् यत्र नष्टा सरस्वती।**'

६. *Cf*. *Ind. Ant.*, III, 226 f.

७. *JRAS*, 1897, 891; देखिये *Ain-i-Akbari*, II, 165: Malcolm, *CI*. I. 20.

८. P. 194.

९. *JRAS*, 1897, p. 892.

१०. महाभारत, VI. 9, 64.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

निकट काकपुर बताया गया है। स्मिथ का मत है कि काकों का सम्बन्ध काकनाद (साँची) से था। खरपरिकों के अधिकार में सम्भवतः मध्य-प्रदेश का दमोह ज़िला था।[1]

उत्तरी-पश्चिमी सीमा-प्रान्त, मालव, सुराष्ट्र (कठियावाड़) आदि में विदेशियों का राज्य था। अतः जब उन्होंने एक भारतीय राजा की शक्ति को बढ़ते देखा तो उसकी सत्ता स्वीकार कर, व्यक्तिगत रूप से सेवा कर तथा सुन्दरियों[2] को उपहार में देकर सन्धि कर ली, साथ ही प्रार्थना की कि 'गरुड़-चिह्न' (गरुत्मदंक) देकर उनको उनके जिलों और प्रान्तों पर शासन करने दिया जाये।[3] इस प्रकार सम्राट् समुद्रगुप्त से कूटनीतिक सम्बन्ध स्थापित करने वाले विदेशियों में दैवपुत्र[4]-शाहि-शाहानुशाहि, शक मुरुण्ड,[5] सिंहल तथा अन्य द्वीपों[6] के निवासी भी थे।

दैवपुत्र-शाहि-शाहानुशाहि निश्चय ही उत्तर-पश्चिम के कुषाण-राजवंश से

---

[1] भण्डारकर, *IHQ*, 1925, 258; *Ep. Ind.*, XII, 46. एच० सी० राय (*DHNI*, I, 586) लिखते हैं कि खरपर 'पद्रक' मालव में है। 'वेण्णाकार्पर-भाग' का उल्लेख सिवानी-प्लेट में मिलता है।

[2] हिन्दू-राजाओं के रनिवास में शक-सुन्दरियों का होना कोई आश्चर्य की बात नहीं। चन्द्रगुप्त मौर्य का विवाह सेल्युकस और शातकरिण का विवाह एक महा-क्षत्रप की पुत्री से हुआ था (*Cf.* Penzer, II, 47; III, 170)।

[3] देखिए—नीलकंठ शास्त्री *The Pandyan Kingdom*, 145. "विजेता ने धार्मिक दान के रूप में चोल राज्य वापस कर दिया, इसकी पुष्टि पाण्ड्यन सील वाली राजाज्ञा द्वारा की गई।"

[4] 'दैव' शब्द के लिए Xerxes का एकीमीनियन-अभिलेख देखिये, जिसमें 'भीमरथी' के स्थान पर 'भैमरथी' लिखा है।

[5] समुद्रगुप्त ने कुषाणों की मुद्रा को अपना कर उलटी ओर 'अदोक्षो' अंकित कराया (Allan, xxviii, xxxiv, lxvi)। विद्वानों के अनुसार, ये मुद्रायें उत्तर-पश्चिम के शकों द्वारा चलायी गयी थीं।

[6] 'धनद-वरुणेन्द्रान्तकसम' ('धनद', कुबेर, संपत्ति के देवता तथा उत्तर के स्वामी), ('वरुण', समुद्र के भारतीय देवता तथा पश्चिम के स्वामी), ('इन्द्र', देवताओं तथा पूर्व के स्वामी) तथा ('अंतक', यम, मृत्यु के देवता तथा दक्षिण के स्वामी) के अनुसार, समुद्र के आसपास के द्वीपों पर भी अधिकार था। समुद्रगुप्त की तुलना उपर्युक्त देवताओं से करने का अर्थ यह है कि उसने न केवल चारों दिशाओं में अपनी विजय-पताका ही फहरायी, वरन् कुबेर के समान उसके पास अथाह धन था तथा समुद्र एवं अनेक प्रतापी राजाओं पर उसका प्रभुत्व था। गङ्गा तथा मलय (रक्त-मृत्तिका के महानाविक) में पाई गई मुद्राओं तथा लेखों से ज्ञात होता है कि भारतीय निवासी नाविक-विद्या में भी प्रवीण थे तथा गुप्त-काल में उन्होंने सैनिक आक्रमण आदि भी किये।

सम्बद्ध थे, तथा 'देवपुत्र' कनिष्क[1] की वंश-परम्परा में थे। शक मुरुण्डों में उत्तर के, 'अर्दोच्षो' मुद्रा चलाने वाले शक-शासक तथा सुराष्ट्र एवं मध्यभारत के वे शक-राजा भी सम्मिलित थे जिनके पूर्वजों ने कभी गंगा की घाटी पर भी शासन किया था। स्टेन कोनोव का कथन है कि 'मुरुण्ड' शक शब्द है, जिसका अर्थ संस्कृत शब्द स्वामिन् (मालिक) से मिलता-जुलता है। 'स्वामिन्' उपाधि का प्रयोग सुराष्ट्र और उज्जैन के क्षत्रप अपने लिए किया करते थे। मार्शल द्वारा पाये गये साँची-अभिलेख से पता चलता है कि सन् ३१९ ई० में एक और शक-प्रान्त था जिस पर नन्द[2] के पुत्र महादंडनायक श्रीधरवर्मन राज्य करते थे। मध्यभारत के खोह-अभिलेख में किसी एक मुरुण्ड-स्वामिनी का उल्लेख मिलता है। भारी संख्या में पूर्वी विंध्य तथा उसके आसपास के क्षेत्रों में पायी जाने वाली 'पुरी कुषाण' मुद्राओं का सम्बन्ध सम्भवतः विन्ध्य प्रदेश के शक-शासकों से है। तोलमी[3] ने स्पष्ट रूप से लिखा है कि समुद्रगुप्त से दो सौ वर्ष पूर्व गंगा के मैदान में, मुण्डों का राज्य था। जैन ग्रंथ 'प्रभावक चरित' से ज्ञात होता है कि मुण्ड-वंश के राजा किसी समय पाटलिपुत्र पर भी राज्य करते थे।[4]

लंका का राजा मेघवर्ण, समुद्रगुप्त का समकालीन था। चीनी लेखक वांग ह्वेन-से के अनुसार, ची-मी-किया-पो-मो (अर्थात्, श्री मेघवर्मन या मेघवर्ण) ने बहुत-सा उपहार तथा दूत भेजकर, समुद्रगुप्त से बोधगया में पवित्र वृक्ष के पास एक विशाल विहार बनाने की आज्ञा माँगी थी, जहाँ लंका से जाने वाले बौद्ध यात्री[5] ठहर सकें।

एलन के अनुसार, जिस अश्वमेध यज्ञ[6] की सूचना हमें समुद्रगुप्त के उत्तरा-

---

[1] स्मिथ (*JRAS*, 1897, 32) ने इनको ग्रमबेट बताया है। कुछ विद्वानों के अनुसार, यह किसी दूसरे राजा अथवा सरदार के लिए प्रयुक्त हुआ है (Allan, xxvii)। यह उल्लेख सम्भवतः ससानिदों के लिए भी आया हुआ लगता है।

[2] *Ep. Ind.*, xvi, 232; *JRAS*, 1923, 336, 837 ff.

[3] *Ind. Ant.*, 1884, 377; Allan, xxix; *Cf. India Antiqua* (Vogel Volume, 1947), 171f; Murundas in the Ganges Valley C. 245 A. D. mentioned by the Chinese.

[4] C. J. Shah, *Jainism in N. India*, p. 194; *Cf. Indian Culture*, III, 49.

[5] Geiger, महावंश (अनु०), p. xxxix; Levi, *Journ. As.*, 1900, pp. 316 ff, 401 ff ; *Ind. Ant.*, 1992, 194.

[6] *Cf.* Divekar, *Annals of the Bhandarkar Institute*, VII, pp, 164-65—'इलाहाबाद-प्रशस्ति तथा अश्वमेध'। पूना-लेख में समुद्रगुप्त को 'अनेकाश्वमेधयाजिन्' (अनेक अश्वमेध यज्ञों को करने वाला) की उपाधि से विभूषित किया गया है। उसने एक से अधिक अश्वमेध यज्ञ किए थे। इनमें से कई अश्वमेध-विजयें, जिनका उल्लेख इलाहाबाद-प्रशस्ति में है, उन्हें अश्वमेध में छोड़े जाने वाले घोड़े की रक्षा में चलने वाले राजकुमारों या सेना के अधिकारियों ने पूरा किया होगा। हरिषेण-अभिलेख में कई पराजित नरेशों को बन्दी बनाने का श्रेय सेना को दिया गया है। बड़े-बड़े सेनानायकों में तिलभट्टक तथा ध्रुवभूति के पुत्र स्वयं हरिषेण भी थे।

धिकारियों द्वारा निर्मित शिलालेखों से मिलती है, उसे सम्राट् ने अपनी विजयें पूरी कर लेने के बाद ही किया होगा। इन शिलालेखों के अनुसार, इस प्रकार के यज्ञ काफ़ी समय से नहीं हुए थे। परन्तु, यह भी स्मरण रखना चाहिए कि इसी बीच (पुष्यमित्र से लेकर समुद्रगुप्त तक) बहुत से नरेशों ने भी अश्वमेध यज्ञ किया था, उदाहरण के लिए पाराशरी-पुत्र सर्वतात, शातकर्णि (नायनिका के पति), वासिष्ठीपुत्र इक्ष्वाकु श्रीचांतमूल, देववर्मन शालंकायन, प्रवरसेन-प्रथम वाकाटक, शिवस्कन्दवर्मन पल्लव और भारशिव-वंश के नाग-राजा। यह संभव है कि गुप्त-वंश के दरबारी कवियों को इन राजाओं के सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञात न रहा हो। इस अश्वमेध यज्ञ के पश्चात् समुद्रगुप्त ने जो मुद्रायें चलायीं, उन पर **'अश्वमेधपराक्रमः'** (अर्थात्, जिसकी शक्ति अश्वमेध-यज्ञ[1] द्वारा प्रतिष्ठापित हो) अंकित कराया।

यदि इलाहाबाद-प्रशस्ति के लेखक हरिषेण का आधार लिया जाये तो कह सकते हैं कि यह गुप्त-सम्राट् एक बहुमुखी प्रतिभावाला व्यक्ति था। "उसने अपनी तीक्ष्ण और संस्कारवान् योग्यता, बुद्धिमानी तथा गायन-कला से देवताओं, तुम्बुरु,[2] नारद आदि को भी लज्जित कर रक्खा था। बहुत-सी कविताओं की रचना कर उसने 'कविराज' की उपाधि ग्रहण की थी।"[3] "बड़े-बड़े विद्वानों के लिए वह स्वयं ही विचार का विषय था....उसकी शैली कवित्वमय तथा मननीय थी। उसके काव्य से दूसरे कवियों को आध्यात्मिक प्रेरणा मिलती थी।" दुर्भाग्यवश उसका कोई भी काव्य-ग्रन्थ आज प्राप्त नहीं है।[4] परन्तु, वह उत्तम कोटि का गायक था, हरिषेण के साक्ष्य पर इसकी पुष्टि उसकी एक मुद्रा से होती है। मुद्रा पर वीणा[5] अंकित है। हर्ष, महेन्द्र-वर्मन तथा अन्य नरेशों की भाँति वह स्वयं भी एक कवि था। उसने अपने ही समान अन्य महान् कवियों के सहयोग से कवियों के बीच चलने वाले वाग्युद्ध (**सत्यकाव्य-**

---

[1] रैप्सन तथा एलन एक ऐसी सील का उल्लेख करते हैं जिस पर अश्व बना है तथा 'पराक्रम' अंकित है। यह सील लखनऊ में है। अनुमान है कि इसका सम्बन्ध समुद्रगुप्त के अश्वमेध-यज्ञ से है (*JRAS*, 1901. 102; *Gupta Coins*. xxxi)।

[2] 'तुम्बुरु' के लिए देखिये 'अद्भुत रामायण', VI. 7; *EI*, I. 236.

[3] काव्य-मीमांसा (3rd ed., *GOS*, pp. xv, xxxii, 19) के अनुसार, 'कविराज' का पद 'महाकवि' से ऊँचा होता है तथा वह विभिन्न भाषाओं, शैलियों तथा विचारों की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ होता है। गुप्त-काल की साहित्यिक उपलब्धियों के लिए देखिये—भण्डारकर, *A Peep into the Early History of India*, p. 61-74; तथा बूह्लर, *IA*, 1913. समुद्रगुप्त के पुत्र तथा उत्तराधिकारी को 'रूपकृती' (नाटकों का रचयिता) की उपाधि मिली थी।

[4] 'कृष्णचरितम्' नामक काव्य-ग्रंथ के लेखक का नाम विक्रमांक महाराजाधिराज परमभागवत श्री समुद्रगुप्त था (*IC*, X, 79 etc.)। परन्तु, विद्वान् आलोचकों को इस पर संदेह है (*Cf.* Jagannath in *Annals*, *BORI*, and others)।

[5] अश्वमेध में वीणावादक (वीणागाथिन्) का महत्त्वपूर्ण स्थान होता था।

श्रीविरोध) को समाप्त कर दिया था । परिणामस्वरूप विद्वानों के समाज में उसका बड़ा प्रभाव और प्रभुत्व था । इसका कारण उसकी अनेकानेक कवितायें थीं ।

समुद्रगुप्त कविता एवं शास्त्र, दोनों का ही उपासक था, जब कि अशोक ने केवल आध्यात्मिक क्षेत्र में ही दक्षता प्राप्त की थी । जैसा कि उसके लेखों से ज्ञात होता है, समुद्रगुप्त समस्त संसार को जीतना (**सर्व-पृथिवी-जय**) चाहता था, परन्तु अशोक ने कलिंग-युद्ध के बाद युद्ध करना बन्द कर दिया था तथा तीनों महाद्वीपों में धर्म-विजय के लिए सेना संगठित की थी । इतनी सारी असमानताएँ होने पर भी दोनों सम्राटों में कई समान विशेषताएँ भी थीं । दोनों ने पराक्रम—जो कार्य हाथ में लो, उसे अपनी समस्त योग्यता एवं शक्ति के साथ सम्पादित करो—पर विशेष बल दिया । दोनों ने ही अपनी प्रजा की भलाई का विशेष ध्यान रक्खा । साथ ही पराजित व्यक्तियों के साथ उनका व्यवहार अत्यन्त सहानुभूतिपूर्ण रहा । यही नहीं, दोनों ने धर्म पर भी विशेष बल दिया । समुद्रगुप्त ने 'धर्माशोक' की तरह सत्य-धर्म को दृढ़ बनाने के लिए भी कुछ कम प्रयास नहीं किया (**धर्म-प्राचिर-बन्धः**) ।

इसे स्वीकार किया जा सकता है कि काच के नाम पर जो मुद्रायें चलाई गई, वे समुद्रगुप्त की ही थीं । परन्तु, फ़रीदपुर-ग्राण्ट में प्रयुक्त 'धर्मादित्य' (सत्य-धर्म का सूय) उपाधि से समुद्रगुप्त को मिलाना बिलकुल भ्रामक होगा । इस सम्राट् ने निम्न-लिखित उपाधियों का प्रयोग किया था—'अप्रतिरथ' (रथविद्या में अद्वितीय), 'अप्रतिवार्यवीर्य' (साहस में अद्वितीय), 'कृतांत-परशु' (मृत्यु का फरसा), 'सर्व-राजोच्छेत्ता'[१] (समस्त राजाओं का उच्छेदक), 'व्याघ्र-पराक्रम' (शेर-जैसा शक्तिशाली), अश्वमेध-पराक्रम (जिसने अपनी शक्ति अश्वमेध द्वारा दिखाई हो) तथा 'पराक्रमांक' (शक्ति से भरा हुआ) । परन्तु, इस पूरी सूची में 'धर्मादित्य' का प्रयोग कहीं नहीं मिलता । इनमें बहुत-सी उपाधियाँ सम्राट् समुद्रगुप्त द्वारा जारी की गई मुद्राओं पर अंकित मिलती हैं । एक विशेष प्रकार की मुद्राओं की दूसरी ओर 'पराक्रम' शब्द अंकित मिलता है । 'अप्रतिरथ' शब्द धनुषाकार मुद्राओं पर, 'कृतान्त-परशु' युद्ध में प्रयुक्त होने वाले फरसे[२] जैसी मुद्राओं पर, 'मर्वराजोच्छेत्ता' कार्य-मुद्राओं पर, 'व्याघ्र पराक्रम' (राजा) शेर-जैसी मुद्राओं पर तथा 'अश्वमेध-पराक्रम' अश्वमेध[३]-मुद्राओं पर पाये जाते हैं । सिंहवाहिनी देवी (सिंहवाहिनी दुर्गा अथवा पार्वती, विन्ध्यवासनी अथवा हैमावती) से अनुमान होता है कि गुप्त-साम्राज्य विन्ध्य तथा हिमालय-क्षेत्र तक फैल चुका था ।[४] चीता तथा नदी की देवी (मकरवाहिनी) से अनुमान लगाया जाता है कि समुद्रगुप्त का राज्य गंगा की घाटी से लेकर महाकांतार प्रान्त (जहाँ चीते पाये जाते

---

[१] देखिये 'सर्वक्षत्रांतक' की उपाधि, जो उसके पूर्व महापद्म नन्द की थी ।

[२] उदुम्बरों (*CHI*, 539) और जयदामन (Rapson, *Andhra*, etc., 76) की मुद्राओं पर भी युद्ध के फरसे अंकित थे ।

[३] देखिये—चाश्तान की चौकोर मुद्राओं पर भी ऐसा ही अश्व अंकित है । इस वंश को गुप्तों ने समाप्त किया था ।

[४] हुविष्क की मुद्राओं पर 'शेर पर नाना' की मूर्ति ने इस प्रकार की मुद्राओं की प्रेरणा दी थी (Whitehead, 207) ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हैं) तक फैला हुआ था। गुप्त-काल के कपाटों पर गंगा तथा जमुना अंकित हैं। इससे यह सारांश निकलता है कि उसका सम्बन्ध गंगा के मैदान से भी था।

उसके शासन-काल के एरण-अभिलेख में उसकी सत्यनिष्ठा एवं पतिव्रता पत्नी, सम्भवतः दत्तदेवी का उल्लेख मिलता है। इस महान् शासक की शासन-सम्बन्धी तिथि के लिए हमारे पास कोई प्रामाणिक पत्र नहीं है। नालंदा[1] तथा गया के दान-पत्रों से ज्ञात होता है कि वे उसके शासन के क्रमशः ५वें तथा ९वें वर्ष में लिखे गये थे, परन्तु उन पर पूरा-पूरा भरोसा नहीं किया जा सकता। साथ ही गया-लेख में संख्या का पढ़ना भी अनिश्चित-सा ही है। स्मिथ द्वारा समुद्रगुप्त के लिए दी गई तिथि (सन् ३३० ई० से ३७५ ई०) उचित जान पड़ती है। उसके बाद सिंहासन पर आने वाले राजा की जो तिथि दी गई है, उसके बारे में सबसे पहली तिथि ३८०-३८१ ई० है।[2] अतः इसमें कुछ भी अस्वाभाविक नहीं कि उसके पूर्वज एवं पिता की मृत्यु सन् ३७५ ई०[3] के पश्चात् हुई हो। समुद्रगुप्त के अंतिम कार्यों में से एक कार्य उत्तराधिकारी का चुनाव भी था। अंत में उसने अपने पुत्र चन्द्रगुप्त (जिसकी माता दत्तदेवी थीं) को इस पद के लिए चुना।

---

[1] *ASI*, *AR*, 1927-28, p. 138.

[2] चन्द्रगुप्त-द्वितीय का एक लेख सन् ३८०-८१ का मथुरा में मिला है (*Ep. Ind.*, XXI, 1 ff)।

[3] सरकार (*IHQ*, 1942, 372) ६१ वर्ष के अभिलेख के तिथि वाले भाग को इस प्रकार पढ़ते हैं—**'श्री चन्द्रगुप्तस्य विजय-राज्य सम्वत्सरे पंचमे'**—अर्थात् 'चन्द्रगुप्त-द्वितीय के राज्य का पाँचवाँ वर्ष।' अतः उसका प्रथम वर्ष सन् ३७६-७७ ई० रहा होगा।

१४ गुप्त-साम्राज्य (क्रमशः) : विक्रमादित्यों का युग

कामं नृपाः सन्तु सहस्रशोऽन्ये राजन्वतीमाहुरनेन भूमिम्
नक्षत्र-तारा-ग्रह संकुलापि ज्योतिष्मती चन्द्रमसैव रात्रिः ।

—रघुवंशम्

१. चन्द्रगुप्त-द्वितीय विक्रमादित्य

अभिलेखों आदि से ज्ञात होता है कि समुद्रगुप्त के पश्चात् दत्तदेवी से उत्पन्न उसका पुत्र चन्द्रगुप्त-द्वितीय विक्रमादित्य सिंहासनारूढ़ हुआ । उसके अन्य नाम नरेन्द्र-चन्द्र, सिंहचन्द्र, नरेन्द्रसिंह तथा सिंहविक्रम हैं ।[1] उसके पिता ने उसे अपने अन्य दूसरे पुत्रों से अधिक योग्य एवं कुशल समझ कर ही उसको अपना उत्तराधिकारी चुना ।[2]

---

१. देखिये—उज्जयिनी के विक्रमसिंह का नाम, Penzer, III, 11. 'विषमशिल लम्बक' में जो कथा मिलती है, उसके नायक महेन्द्रादित्य के पुत्र विक्रमादित्य थे, जिनको साधारणतः स्कंदगुप्त कहा गया है । परन्तु, कुछ अन्य लेखों (कथा-सरित्सागर, XVIII, 3,42) में शत्रु के यहाँ वेताल (5. 40 f) के साथ स्त्री-वेश में जाने की चर्चा से लगता है कि इसका सम्बन्ध महेन्द्रादित्य के पिता चन्द्रगुप्त-द्वितीय से था ।

२. एरण-अभिलेख से स्पष्ट है कि समुद्रगुप्त के अनेक पुत्र एवं पौत्र थे । डॉ० अल्तेकर तथा अन्य व्यक्तियों का कथन है कि समुद्रगुप्त तथा चन्द्रगुप्त-द्वितीय के बीच एक और राजा राम (शर्म ? सेन ?) गुप्त भी हुआ था, अमान्य है; क्योंकि इसकी पुष्टि कहीं से भी नहीं होती (*JBORS*, XIV, pp. 223-253; XV, pt. i-ii, pp. 134 f) । ऐसा विश्वास किया जाता है कि नवीं शताब्दी में एक गुप्त राजा ने अपने भाई की हत्या कर उसकी पत्नी तथा राजमुकुट को हथिया लिया था । इस सम्बन्ध में प्राप्त साहित्यिक प्रमाणों पर विश्वास नहीं किया जा सकता । सातवीं शताब्दी में बाण द्वारा दिया गया विवरण मुख्य-मुख्य विषयों में काव्य-मीमांसा के लेखक के मतों से भिन्न है (देखिये *Cir.*, 900 A. D. *Ind. Ant.*, Nov., 1933, 201 ff; *JBORS*, XVIII, 1, 1932, 17 ff) । 'हर्षचरित' की साधारण कथा को, कि चन्द्रगुप्त ने दूसरे की पत्नी हरने के आकांक्षी शक-राजा का उसके नगर में ही जाकर वध किया, अन्य कवियों एवं नाटककारों ने अपने कृतियों का आधार बनाया । साथ ही जो बातें आरम्भ के लेखों में नहीं मिलती थीं, उनका भी उल्लेख अमोघवर्ष-प्रथम (८१५ ई० से ८७८ ई०) तथा गोविन्द-चतुर्थ (९२७ ई० से ९३३ ई०) के राज्य-काल में हुआ । जिस प्रकार से 'मुद्राराक्षस' तथा 'अशोकावदान' को मौर्यों के इतिहास का आधार नहीं माना जा सकता, उसी प्रकार 'देवी चंद्रगुप्तम्' नामक ग्रंथ को भी । सिन्धिया ओरिएंटल इंस्टीट्यूट (1948, pp. 483-511) नामक पुस्तक के लेख

कुछ वाकाटक-अभिलेखों, अन्य मुद्राओं तथा साँची-अभिलेख (४१२-१३ ई०) से ज्ञात होता है कि इस नये राजा का दूसरा नाम 'देवगुप्त', 'देवश्री' अथवा 'देवराज' था ।[1]

चंद्रगुप्त-द्वितीय के राज्य-काल के बारे में हमारे पास अनेक अभिलेख हैं, जिन पर तिथियाँ मिलती हैं । अतः उनके आधार पर उसके पूर्वजों के काल की अपेक्षा अधिक प्रामाणिक रूप से उसका इतिहास लिखा जा सकता है । वह सन् ३८१ ई० के पूर्व कभी सिंहासनासीन हुआ तथा ४१३-१४ ई० के लगभग उसका देहान्त हुआ ।

उसके शासन-काल की बाह्य नीति में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि उसने वाकाटक राजा पृथिवीषेण-प्रथम के पुत्र रुद्रसेन-द्वितीय के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किया था । दूसरी बात यह कि उसने शक-क्षत्रपों से युद्ध करके पश्चिमी मालव एवं सुराष्ट्र को अपने साम्राज्य में मिला लिया था ।

गुप्त-सम्राटों की बाह्य नीति में वैवाहिक सम्बन्धों का विशिष्ट स्थान था । उन्होंने लिच्छवियों से सम्बन्ध स्थापित कर बिहार में अपनी स्थिति दृढ़ कर ली थी । उन्होंने उत्तरी प्रांतों को जीत कर अन्य शासकों के साथ इसी तरह के वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किये, जिससे कि अपने नये राज्य को सुदृढ़ करने में सहायता मिले और अन्य देशों पर आक्रमण करने के लिए उपयुक्त अवसर प्राप्त किया जा सके । शक-कुषाण नरेशों तथा अन्य दूसरे विदेशी राजाओं से समुद्रगुप्त को उपहार में कन्यायें मिली थीं । चन्द्रगुप्त-द्वितीय ने नागवंश[2] की राजकुमारी कुबेरनागा से विवाह किया था तथा उससे प्रभावती नामक एक कन्या हुई थी, जिसका विवाह बरार तथा उसके आसपास के ज़िलों के शासक वाकाटक-नरेश रुद्रसेन-द्वितीय से हुआ था । डॉ० स्मिथ[3] के अनुसार, वाकाटकों की भौगोलिक स्थिति उत्तरी नरेशों के गुजरात और सुराष्ट्र के शक-क्षत्रपों पर नये अभियान के लिए विजय अथवा पराजय, दोनों के लिहाज़ से

'*Vikramaditya in History and Legend*' में लेखक ने इस विषय पर काफ़ी तर्क-वितर्क किया है । इस समय उपलब्ध चन्द्रगुप्त की कथा के आधार पर अनेक लोकगीत रचे जा चुके हैं । पेन्जर (कथासरित्सागर, III, 290) के कथन से स्पष्ट होता है कि उसकी पत्नी ने अपने दुर्बलहृदय पति को क्यों त्याग दिया था ।

१. भण्डारकर, *Ind. Ant.*, 1913, p. 160.

२. देखिये *JASB*, 1924, p. 58—नागकुलोत्पन्ना । जैसा कि अन्य लेखकों ने लिखा है, यह भी सम्भव है कि चन्द्रगुप्त-विक्रमादित्य ने वैजयंती के कदम्बों अथवा कुंतल के बनवासी अथवा कनेरिया से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किया हो । भोज तथा क्षेमेन्द्र का मत है कि कुन्तल में विक्रमादित्य ने अपना दूत भेजा था (*Proceedings of the Third Oriental Conference*, p. 6) । कदम्ब-वंश के काकुस्थवर्मन ने अपनी कन्याओं का विवाह गुप्त-वंश के सम्राटों से तो किया ही था, अन्य सम्राटों से भी किया था (देखिये तालगुण्ड-अभिलेख; *Ep. Ind.*, VIII, 33 ff ; *IHQ*, 1933, 197 ff) ।

३. *JRAS*, 1914, p. 324.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बहुत महत्त्वपूर्ण साबित हो सकती थी। चन्द्रगुप्त ने अपनी पुत्री का विवाह वाकाटक-राजा से करके उसे अपने अधीन कर अपनी कूटनीतिक बुद्धिमत्ता का परिचय दिया।

वीरसेन-शाब के उदयगिरि-गुफालेख के निम्न अनुच्छेद में सम्भवतः पश्चिमी क्षत्रपों के विरुद्ध समुद्रगुप्त के अभियान का संकेत मिलता है—"विश्व-विजयाकांक्षी महाराज चन्द्रगुप्त के साथ वे (शाब) भी यहाँ (पूर्वी मालव) आये थे।" वीरसेन-शाब पाटलिपुत्र के निवासी थे। वंश-परम्परागत रूप में वीरसेन-शाब चन्द्रगुप्त-द्वितीय के मंत्री थे, तथा राजा ने उन्हें युद्ध और शान्ति विभाग का अध्यक्ष बना रखा था। अतः जब पश्चिमी अभियान आरम्भ हुआ तो स्वाभाविक था कि वीरसेन-शाब सम्राट् के साथ युद्धभूमि में गये। सम्राट् समुद्रगुप्त द्वारा पहले से ही अधिकृत पूर्वी मालव को शकों के विरुद्ध किये जाने वाले सैनिक-अभियान का अभियान-स्थल बनाया गया। साँची तथा उदयगिरि के अभिलेखों से ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त-द्वितीय ने पूर्वी मालव में विदिशा अथवा उसके निकट अपने बहुत से मंत्रियों, सेनानायकों तथा अधीनस्थ राजाओं को एकत्रित किया। इनमें से कुछ का उल्लेख सन् ४०२ से ४१३ ई० तक के रिकार्डों में मिलता है। शक-नरेशों के विरुद्ध किया गया अभियान बहुत सफल रहा। बाण ने भी शक-क्षत्रप के पतन का उल्लेख किया है। उसके राज्य को साम्राज्य में मिला लिये जाने का उल्लेख मुद्राओं में भी मिलता है।[1]

साम्राज्य के प्रमुख नगर

ऐसा प्रतीत होता है कि सर्वप्रथम पाटलिपुत्र ही गुप्त-सम्राटों की मुख्य नगरी थी। इस स्थान को पुष्पनगर भी कहा जाता था और समुद्रगुप्त ने अपने एक विजय-अभियान के पश्चात् वीणावादन करते हुए कुछ समय तक यहीं विश्राम किया था। यहीं से उसके 'युद्ध तथा शान्ति' का मंत्री पूर्वी मालव पर आक्रमण के समय सम्राट् के साथ गया था। ऐसा प्रतीत होता है कि सन् ४०२ ई० के बाद चन्द्रगुप्त ने पूर्वी मालव में पहले विदिशा और फिर अपनी पश्चिमी विजयों के बाद उज्जैन को अपना निवास-स्थान बनाया। कुछ कनेरी शासक, जो अपने को चन्द्रगुप्त का वंशज बताते हैं, के अनुसार चन्द्रगुप्त उत्तम नगरी उज्जैन के स्वामी (उज्जयिनी-पुरवर अधीश्वर) तथा उत्तम नगरी पाटलिपुत्र के स्वामी (पाटलिपुरवर-अधीश्वर) थे। आर० जी० भण्डारकर ने चन्द्रगुप्त-द्वितीय को उज्जैन का 'विक्रमादित्य-शकारि'

---

[1] सम्भवतः गरुड़छाप रजत-मुद्राएँ, जिनमें 'परम-भागवत' लिखा था, सुराष्ट्र में बनी थीं। कुछ मुद्राओं पर तिथि ९० (=सन् ४०९ ई०; *EHI*, 4th ed., p. 345) अंकित थी। अपने पिता की तरह चन्द्रगुप्त ने भी अश्वमेध यज्ञ किया था (*IHQ*, 1927, p. 725)। बनारस के निकट नगवा ग्राम में पत्थर का बना एक अश्व मिला है, जिस पर 'चन्द्रगु' लिखा है। अश्व कदाचित् इसी समय बनवाया गया हो। परन्तु, अब तक प्राप्त किसी भी लेख अथवा मुद्रा से यह तथ्य प्रमाणित नहीं होता।

(साहस में सूर्य के समान तथा शकों का दमन करने वाला)[1] बताया है। वास्तव मे चन्द्रगुप्त की मुद्राओं पर श्रीविक्रमः, सिंहविक्रमः, अजित-विक्रमः विक्रमांक तथा विक्रमादित्य आदि उपाधियाँ मिलती हैं।[2]

चन्द्रगुप्त के समय में उज्जयिनी (जिसे विशाला, पद्मावती, भोगवती तथा हिरण्यवती भी कहते थे)[3] की क्या दशा थी, इसका विशद तत्कालीन विवरण उपलब्ध

---

१. साहित्य में विक्रमादित्य को पाटलिपुत्र (कथा-सरित्सागर, VII, 4.9—**विक्रमादित्य इत्यासिद्राज पाटलिपुत्रके**), उज्जयिनी और अन्य नगरों का शासक कहा गया है। काव्य-मीमांसा (3rd ed., p. 50) में लिखा है कि उज्जैन के साहसांक ने आज्ञा दे रखी थी कि उसके अन्तःपुर में संस्कृत का प्रयोग हो। इस प्रकार उसने आढ्यराज (p.197) अथवा कुन्तल के सातवाहन की नीति में आमूल परिवर्तन कर दिया। देखिये—सरस्वती कंठाभरण, II, 15 का एक पद—

केऽभून्न आढ्यराजस्य राज्ये प्राकृतभाषिणः
काले श्री साहसाङ्कस्य के न संस्कृतवादिनः ।

उज्जैन में हुई काव्यकारों की प्रतिद्वन्द्विता में कालिदास, अमर, भारवि आदि के साथ चन्द्रगुप्त का भी उल्लेख मिलता है (काव्य-मीमांसा, p. 55)। 'वसुबन्धु' के जीवनी-लेखक परमार्थ के अनुसार, विक्रमादित्य की राजधानी अयोध्या थी, जब कि ह्वेनसांग के अनुसार, श्रावस्ती (*EHI*, 3rd ed., p. 332-33)। सुबन्धु ने विक्रमादित्य की प्रसिद्धि तथा उसकी लोकप्रियता आदि की तो चर्चा की है, परन्तु उसकी राजधानी के विषय में कुछ नहीं कहा। "किसी झील के समान विक्रमादित्य ने इस संसार को त्याग दिया, परन्तु अपनी प्रसिद्धि यहीं रहने दी" (Keith, *History of Sanskrit Literature*, p. 312; *Cf*. Hala, v. 64)।

२.

नाम एवं उपाधि	**मुद्राओं का आकार-प्रकार**
श्री विक्रम	(सोने की) तीर-कमान के समान (सोने की) शंख के समान
विक्रमादित्य	(सोने की) क्षत्र के समान
रूपकृती	(सोने की) कोच के समान
सिंहविक्रम, नरेन्द्रचन्द्र नरेन्द्रसिंह, सिंहचन्द्र	(सोने की) सिंह का वध करने वाला
अजीत विक्रम परमभागवत	(सोने की) घुड़सवार के समान
परमभागवत विक्रमादित्य विक्रमांक	(रजत की) गरुड़ के समान
विक्रमादित्य, महाराज, चन्द्र	(तांबे की) गरुड़, क्षत्र तथा कलश के समान

३. मेघदूत (I,31); रवानी का अनुवाद—तथा कथासरित्सागर (Vol. II, p. 275)। सातवीं शताब्दी में उज्जयिनी के सम्बन्ध में देखिये—Beal, *H. Tsang*, II, p. 270; Ridding, कादम्बरी, pp. 210 ff.

नहीं है। परन्तु सन् ४०५ से ४११ ई० तक मध्य भारत का भ्रमण करने वाले फ़ाह्यान ने पाटलिपुत्र के बारे में बहुत कुछ लिखा है। इस यात्री ने अशोक के राजमहल तथा नगर के मध्य स्थित, अब तक पुराने पड़ चुके विशाल कक्ष के सम्बन्ध में लिखा है—"अशोक द्वारा नियुक्त परियों तथा देवदूतों द्वारा यहाँ की दीवालों, तोरणों और पत्थरों पर की गई नक़्क़ाशी आदि की दृष्टि से वास्तव में यह नगर इतना सुन्दर है कि विश्वास ही नहीं होता कि साधारण मनुष्यों ने इसका निर्माण किया होगा।" "यहाँ के निवासी धनी तथा समृद्धिशाली हैं तथा दयालुता एवं सन्मार्ग के कार्यों में एक-दूसरे से बढ़ जाने की स्पर्धा रखते हैं। प्रत्येक वर्ष, दूसरे मास के आठवें दिन मूर्त्तियों का एक जुलूस निकलता है। वैश्य-वंश के बड़े-बूढ़े निःशुल्क चिकित्सा तथा चिकित्सालयों का प्रबन्ध करते हैं।" पूर्वी समुद्र-तट का मुख्य बन्दरगाह 'ताम्रलिप्ति' अथवा 'तामलुक' पश्चिमी बंगाल में था जहाँ से लंका तथा जावा (जो उस समय ब्राह्मण-धर्म के केन्द्र थे) एवं चीन को जलपोत रवाना होते थे।

फ़ाह्यान के विवरणों तथा अब तक के उपलब्ध अभिलेखों में चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के शासन-प्रबन्ध पर काफ़ी प्रकाश डाला गया है। मध्यवर्ती राज्य अथवा गंगा की उत्तरी घाटी में चन्द्रगुप्त के राज्य के संबध में फ़ाह्यान का कथन है—"यहाँ की जनसंख्या बहुत है तथा लोग ख़ुशहाल हैं। उन्हें अपने घरेलू सामान की रजिस्ट्री आदि कराने अथवा अदालतों में जाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। जो लोग राजा की भूमि पर खेती करते हैं, केवल उन्हीं को कर देना पड़ता है। वैसे वे कहीं भी आने-जाने के लिए स्वतंत्र हैं। राजा प्रजा पर बिना किसी शारीरिक दंड के शासन करता है। परिस्थितियों तथा अपराध के अनुसार, अपराधियों पर कभी कम और कभी अधिक जुर्माना किया जाता है। बार-बार विद्रोह आदि करने पर भी केवल दाहिना हाथ काट दिया जाता है। राजा के अंगरक्षकों तथा सेवकों को वेतन मिलता है। सम्पूर्ण राज्य में कोई भी जीवित पशु-पक्षी की हत्या नहीं करता। इसके अतिरिक्त वे मादक वस्तुओं का सेवन तथा लहसुन, प्याज आदि का प्रयोग भी नहीं करते। परन्तु, चांडाल इनका प्रयोग करते हैं। वस्तुओं के क्रय-विक्रय में कौड़ियों का प्रयोग होता है।"[१] अंतिम उल्लेख फ़ाह्यान ने इसलिए किया है कि उसे छोटी-मोटी वस्तुएँ मोल लेनी होती थीं,[२] बड़ी-बड़ी वस्तुओं का क्रय नहीं करना पड़ता था, अतः उसे सोने की मुद्राओं का पता नहीं था। परन्तु अभिलेखों में 'दीनार' तथा 'स्वर्ण' का उल्लेख मिलता है।[३] इससे यह अनुमान लगाया जाता है कि उस समय मुद्रायें सामान्यतया प्रचलित थीं।

---

[१] Legge.

[२] Allan.

[३] चन्द्रगुप्त-द्वितीय ने रजत और ताँबे की मुद्रायें भी प्रचलित कराईं। रजत-मुद्रायें मुख्य रूप से पश्चिमी प्रान्तों के लिए थीं जिन्हें उसने शक-क्षत्रपों से जीता था। लेकिन, पश्चिमी बंगाल के अभिलेख में इन मुद्राओं का उल्लेख उसके पुत्र के शासन-काल में भी मिलता है। उदाहरण के लिए, १२८वें वर्ष (४४८ ई०) के बैग्राम-अभिलेख में 'दीनार' के साथ-साथ रूपक का भी उल्लेख मिलता है (*Cf.* Allan, p. cxxvii)। चन्द्रगुप्त-द्वितीय द्वारा मुद्रित ताम्र-मुद्रायें अधिकतर अयोध्या के आसपास पायी जाती हैं (Allan, p. cxxxi)।

इन्हीं लेखों से हमें यह भी ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त-द्वितीय एक कुशल शासक था। यद्यपि वह कट्टर वैष्णव (परम-भागवत) था, फिर भी प्रत्येक धर्मवालों को ऊँचे से ऊंचे पदों पर नियुक्त करता था। ऐसा प्रतीत होता है कि उसका सेनानायक सैकड़ों युद्धों का विजेता और यशस्वी (अनेकसमर-आवाप्त-विजय-यशस्पताकः) आम्र-कार्द्दव बौद्धधर्म का अनुयायी अथवा समर्थक था। युद्ध तथा शान्ति का मंत्री शाब-वीरसेन तथा कदाचित् एक और मंत्री शिखरस्वामिन शैवधर्म के उपासक थे।

सरकारी शासन के कौन-कौन से अंग थे, इस सम्बन्ध में हमें ज्यादा कुछ नहीं मालूम। फिर भी, प्राप्त अभिलेखों से इतनी जानकारी तो मिलती ही है कि मौर्य-काल की भाँति इस काल में भी राजा ही साम्राज्य का सर्वोच्च अधिकारी होता था और अपने उत्तराधिकारी को स्वयं चुनता था। राजा को देवपुरुष (अचिन्त्य पुरुष), कुबेर, यम, वरुण तथा इन्द्र के समान (धनद-वरुणेन्द्रान्तक-सम), इस पृथ्वी पर निवास करने वाला देवता (लोकधाम-देव) अथवा सबसे महान् देवता (परम दैवत) के नाम से सम्बोधित किया जाता था। उसकी सहायता के लिए उच्च कोटि की मंत्रि-परिषद् होती थी। मंत्रियों का पद प्रायः उत्तराधिकार में प्राप्त होता था, जैसा कि शाब के उदयगिरि-अभिलेख[1] (अन्वय-प्राप्त साचिव्य) से ज्ञात होता है। मंत्रि-परिषद् में मुख्य-मुख्य मंत्री—मंत्रिन्, सम्भवतः प्रधान मंत्री; सांधिविग्रहिक, युद्ध और शान्ति-मंत्री; अक्षपटल-आधिकृत, गृहमंत्री आदि होते थे। कौटिल्य के 'मंत्रिन्' की तरह गुप्त-काल का 'सांधिविग्रहिक' राजा के साथ युद्ध में जाया करता था। शिवाजी के 'प्रधानों' की तरह ही उसके सैनिक और असैनिक अधिकारियों के कार्यों के बीच कोई स्पष्ट विभाजन नहीं था। एक ही व्यक्ति सांधिविग्रहिक (युद्ध और शान्ति मंत्री), कुमारामात्य और महादण्डनायक (सेनापति) हो सकता था। इसी प्रकार मंत्रिन् (प्रधान मंत्री) महाबलाधिकृत (सर्वोच्च सेनाध्यक्ष) भी हो सकता था।

इस बात का हमें स्पष्ट पता नहीं है कि गुप्त-सम्राटों के यहाँ केन्द्रीय मंत्रि-परिषद्[2] होती थी या नहीं? परन्तु, स्थानीय परिषदों (उदाहरणार्थ, उदानकूप परिषद्) की व्यवस्था अवश्य थी। ब्लॉच द्वारा ढूंढ़ निकाली गयी बसाढ़-सील से इसकी पुष्टि होती है।

सम्पूर्ण साम्राज्य अनेक प्रान्तों में विभाजित था, जिन्हें 'देश', 'भुक्ति' आदि

---

[1] १. महादंडनायक हरिषेण महादंडनायक ध्रुवभूति के पुत्र थे। मंत्री पृथिवीषेण मंत्री शिखरस्वामिन के पुत्र थे। इसी प्रकार मन्दसौर, सुराष्ट्र आदि में पैतृकता से प्राप्त गवर्नर (गोप्तृ) पद भी देखिये। मौर्य-काल में ऐसी स्थिति नहीं थी। अशोक के शासन-काल में सुराष्ट्र का राज्यपाल तुषास्फ़ था, परन्तु चन्द्रगुप्त मौर्य के शासन-काल में पुष्यगुप्त; और, इन दोनों के बीच कोई भी रक्त-सम्बन्ध नहीं था।

[2] २. बिल्सड-अभिलेख (*CII*, 44) में '(पा)र्षद' का उल्लेख मिलता है। परन्तु, ऐसा कोई प्रमाण नहीं है जिसके आधार पर इसे 'केन्द्रीय राजनीतिक परिषद्' कहा जा सके। इलाहाबाद-स्तम्भ-लेख में जिन 'सभ्यों' का उल्लेख है, वे सम्भवतः केन्द्रीय मंत्रि-परिषद् के सदस्य थे।

कहते थे। ये प्रान्त अनेक जिलों (प्रदेशों अथवा विषयों)[1] में बँटे थे। 'देशों' के सम्बन्ध में गुप्त-अभिलेख से 'शुकुलि-देश' का पता चलता है। सुराष्ट्र (काठियावाड़), डभाला (जबलपुर-क्षेत्र, बाद के समय का डाहल या चेदि) तथा पूर्वी मालव की सीमा में लगा हुआ जमुना तथा नर्मदा के बीच का क्षेत्र—ये सभी सम्भवतः इसी कोटि में आते हैं।

गुप्त-काल तथा गुप्त-वंश की समाप्ति के प्रारम्भिक काल में हमें पुण्ड्रवर्धन भुक्ति (उत्तरी बंगाल), वर्धमान भुक्ति (पश्चिमी बंगाल), तीर भुक्ति (उत्तरी बिहार), नगर भुक्ति (दक्षिणी बिहार), श्रावस्ती भुक्ति (अवध) और अहिच्छत्र भुक्ति (रुहेलखण्ड)—इन सभी भुक्तियों के गंगा की घाटी में स्थित होने का उल्लेख मिलता है। 'प्रदेशों' अथवा 'विषयों' में लाट विषय (गुजरात), त्रिपुरी विषय (जबलपुर-क्षेत्र), ऐरिकिण (पूर्वी मालव) आदि थे (ये समुद्रगुप्त के एरण-अभिलेख के अनुसार 'प्रदेश' तथा तोरमाण के अनुसार 'विषय' कहे जाते थे)। इसी प्रकार अन्तर्वेदी (गंगा का दोआब), वालवी (?) (गया), कोटिवर्ष (उत्तरी बङ्गाल का दीनाजपुर-क्षेत्र), महाखुशापार (?), खाडाटापार (?) और कुण्डधाणि आदि प्रदेश थे।[2]

'देश' के शासक को 'गोप्तृ' कहते थे, जैसा कि इस वाक्य से हमें पता चलता है—"**सर्वेषु देशेषु विधाय गोप्तृन्**" (सारे 'देशों' में गोप्तृयों की नियुक्ति की)। 'भुक्ति' के शासक को 'उपरिक' अथवा 'उपरिक महाराज' कहा जाता था। इस पद पर अधिकांशतः राजवंश के राजकुमार ही नियुक्त किये जाते थे। उदाहरण के लिए, दामोदरपुर-लेख में पुण्ड्रवर्धन भुक्ति के राज्यपाल को 'राजपुत्र-देव-भट्टारक' कहा गया है, जबकि बसाढ़-सील[3] में तीर भुक्ति के राज्यपाल गोविन्दगुप्त, तथा मध्य भारत के तुमेन के राज्यपाल कदाचित् घटोत्कचगुप्त का उल्लेख मिलता है। 'विषयपति' अथवा जिलाधीश प्रायः 'कुमारामात्य' तथा 'आयुक्तक'[4] अथवा एरण-अभिलेख के अनुसार, मातृविष्णु जैसे सामन्त भी होते थे। अन्तर्वेदी[5] के शर्वनाग आदि जैसे कुछ विषयपति सीधे सम्राट् के अधीन थे, जबकि कोटिवर्ष, ऐरिकिण, त्रिपुरी आदि के विषयपति

---

[1] 'वीथी' नामक एक दूसरी क्षेत्रीय इकाई का पता चलता है।

[2] *Book of the Gradual Sayings* (I. 18 N) में 'कुण्डधान' नामक ग्राम का वर्णन है।

[3] मालव के ५२४ विक्रमी के मंदसौर-लेख से गोविन्दगुप्त का पता चलता है (Garde, *ASI*, Annual Report, 1922-23, p. 187; *Cal. Rev.*, 1926 July, 155; *Ep. Ind.*, xix, App. No. 7; xxvii, 12 ff)। इसमें उसके 'सेनाधिप' अथवा नायक वायुरक्षित तथा वायु के पुत्र दत्तभट; राजा प्रभाकर (४६७-६८ ई०) के मुख्य सेनापति का भी उल्लेख मिलता है।

[4] वे 'वीथियों' अथवा छोटी-छोटी इकाइयों के शासक थे।

[5] पंचनगरी (उत्तरी बङ्गाल) के कुलवृद्धि, *Ep. Ind.*, xxi, 81.

राज्यपाल के अधीन काम करते थे । राज्यपालों एवं ज़िलाधीशों के कार्यों में 'दाण्डिक', 'चौर-ओद्धरणिक' तथा 'दण्डपाशिक'[1] (कानून तथा पुलिस विभाग) सहायता करते थे । इनके अतिरिक्त 'नगर-श्रेष्ठ' (नगर-वृद्ध), सार्थवाह, प्रथम कुलिक, प्रथम कायस्थ, पुस्तपाल आदि अन्य अधिकारी थे । प्रत्येक 'विषय' में अनेक ग्राम हुआ करते थे जिनकी देखभाल करने वाले को 'ग्रामिक', 'महत्तर' तथा 'भोजक'[2] कहा जाता था ।

सम्राट् के राज्य के बाहर इलाहाबाद-प्रशस्ति तथा रिकार्डों में उल्लिखित अधीनस्थ राज्य और प्रजातंत्र स्थित थे । बसाढ़-सील के द्वारा तीरभुक्ति (तिरहुत, उत्तरी बिहार) के प्रान्तीय तथा नागरिक शासन और अर्थ-व्यवस्था के बारे में काफ़ी प्रकाश पड़ता है । इस प्रान्त के शासक, राजकुमार गोविन्दगुप्त सम्राट् तथा महादेवी ध्रुवस्वामिनी के पुत्र थे और उनकी राजधानी वैशाली थी । बसाढ़-सील में उपरिक (राज्यपाल), कुमारामात्य (सेनामंत्री),[3] महाप्रतिहार (सुरक्षाधिकारी), तलवर

---

[1] देखिये—'दन्दोआसी', ग्राम की देखभाल करने वाला, *JASB*, 1916, 30.

[2] शूद्रक-कृत 'मृच्छकटिक' (Act IX), जिसकी रचना सम्भवतः महाकवि बाण (जो राजा शूदक को जानता था, न कि इसी नाम के कवि को) और वामन (८वीं शती) के बीच कभी हुई होगी, के अनुसार 'श्रेष्ठिन्' तथा 'कायस्थ' भी इनके साथ थे । 'व्यवहार-मंडप' तथा 'नगर-रक्षाधिकृत' की सहायता के लिए 'अधिकरण-भोजक' तथा 'महत्तरक' आदि हुआ करते थे । विशाखदत्त की 'मुद्राराक्षस', जो सम्भवतः राजशेखर, दशरूपक तथा भोज आदि के समय में लिखी गई थी, में वामन (मौखरी अथवा उत्पल वंश के अवन्तिवर्मन नहीं) तथा दन्तिवर्मन (राष्ट्रकूट अथवा पल्लव वंश के), जिनका उल्लेख 'भरत-वाक्य' में बार-बार आता है, कायस्थ, दण्डपाशिक आदि का उल्लेख करते हैं । ग्राम-अधिकारी-वर्ग साधारणतया 'विषयपति' अथवा 'ज़िला-अधिकारी' के नीचे कार्य करता था । परन्तु, कभी-कभी विशेष परिस्थिति में वह 'उपरिक' अथवा 'भुक्ति' के राज्यपाल से भी शासन-सम्बन्धी कार्यों में सीधे सम्पर्क स्थापित करता था (*Ep. Ind.*, XV, 136) ।

[3] इसके निम्नलिखित अर्थ हैं : (१) 'कुमारामात्य' (राजकुमार का मंत्री), 'राजामात्य' (राजा के मंत्री) से भिन्न होता था; (२) सी० वी० वैद्य (*Med. Hind. Ind.*, I, 138) के अनुसार, राजकुमारों की निगरानी में मंत्री; (३) कोई ऐसा सहायक मंत्री जिसका पिता जीवित हो तथा (४) वह, जो अपनी युवावस्था से ही मंत्री रहा हो । परन्तु *Ep. Ind.* (X, 49; XV, 302 f) के अनुसार, कुमारामात्य, जैसा कि एक लेखक ने लिखा है, दो भागों में विभक्त थे—अर्थात् (१) युवराजपादीय—वे जो युवराज की सेवा में थे, तथा (२) परमभट्टारकपादीय—वे जो राजा की सेवा में थे । इससे यह अर्थ नहीं निकलता कि ये मंत्री राजकुमारों की देखभाल के लिए होते थे । फिर भी देखिये—Penzer, I, 32; III, 136. वास्तव में अनुमान यह है कि 'कुमारामात्य' में 'कुमार' शब्द दक्षिण के 'पिन', 'चिक्क', 'इम्मदि', 'इलय'

(स्थानीय अध्यक्ष)[1], महादण्डनायक (मुख्य सेनाध्यक्ष), विनयस्थिति[2]-स्थापक[3] (सेन्सर अधिकारी ?), भटाश्वपति (अश्वाधिकारी), युवराज-पादीय कुमारामात्य-अधिकरण (युवराज-कार्यालय), रणभाण्डागार-अधिकरण[4] (युद्धकोष-कार्यालय), दण्डपाश-अधिकरण (मुख्य पुलिस-कार्यालय), तीरभुक्ति उपारिक-अधिकरण (तीरभुक्ति-राज्यपाल-कार्यालय), तीरभुक्तौ विनयस्थिति-स्थापक-अधिकरण (तीरभुक्ति-सेन्सर-कार्यालय), वैशाली-अधिष्ठान-अधिकरण (वैशाली के शासक का कार्यालय), श्री-परम-भट्टारक-पादीय कुमारामात्य-अधिकरण[5], आदि का उल्लेख मिलता है।

उदानकूप की परिषद् के उल्लेख से ज्ञात होता है कि उस समय तक स्थानीय शासन में परिषद् का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान था। 'श्रेष्ठि-सार्थवाह कुलिक-निगम' का उल्लेख अर्थशास्त्र के विद्यार्थियों के लिए बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है।

चन्द्रगुप्त-द्वितीय की कम से कम दो रानियाँ थीं—एक, ध्रुवदेवी तथा दूसरी, कुबेरनागा। ध्रुवदेवी गोविन्दगुप्त तथा कुमारगुप्त-प्रथम की माता थी।[6] दूसरी रानी से प्रभावती नामक एक कन्या थी, जिसका विवाह वाकाटक-राजा से हुआ था।

आदि का पर्यायवाची तथा 'पेद' का विलोम था। गुप्त-काल में कुमारामात्य अधिकतर जिला-अधिकारी के पद पर काम करते थे। इस पद पर कार्य करने वाले को नायक, मंत्री तथा विदेश-मन्त्री का भी कार्य करना होता था।

१. देखिये—समरसिंह के चीरवा-अभिलेख में 'तलार'।

२. डॉ० बसाक के अनुसार, 'विनय-स्थिति' का अर्थ शान्ति-व्यवस्था है (*The History of North-Eastern India*, p. 312)।

३. नाट्यशास्त्र के अनुसार, नाटक के प्रारम्भकर्ता को 'स्थापक' कहते थे (Keith, *Sanskrit Drama*, p. 340)। यहाँ इसका दूसरा ही अर्थ है।

४. 'रण-भाण्डागार' के अनुसार, अर्थ-विभाग की अगली सेना थी जो मुख्य सेना से भिन्न होती थी।

५. राज्य-अधिकारी तथा प्रान्तीय राज्यपाल के अधिकारियों में भी अंतर था। यही नहीं, तीरभुक्ति के अधिकारियों का कार्य वैशाली के अधिष्ठान से भिन्न होता था।

६. वामन की 'काव्यालंकार सूत्रवृत्ति' में उद्धृत एक दोहे में चन्द्रगुप्त के एक पुत्र को भूपति (राजा) चन्द्रप्रकाश कहा गया है (*JASB*, Vol. I, No. 10. [N.S.] 1905, 253 ff.)। परन्तु, इस 'चन्द्र' गुप्त के सम्बन्ध में निश्चयपूर्वक कुछ भी नहीं कहा जा सकता। यह चन्द्रगुप्त वास्तव में विक्रमादित्य (चन्द्रगुप्त-द्वितीय) ही था, यह वामन के द्वारा वसुबन्धु (अथवा सुबन्धु) की दी हुई तिथि पर निर्भर करता है। साथ ही यह भी निर्णय करना है कि यह वही बौद्ध-भिक्षु था, जिसका जीवन-चरित्र परमा

प्रभावती के पुत्रों का नाम दिवाकरसेन, दामोदरसेन, प्रवरसेन-द्वितीय (अथवा तृतीय) था। कनेरी के कुछ शासकों ने अपने को चन्द्रगुप्त का वंशज कहा है। इन लोगों की उत्पत्ति की खोज विक्रमादित्य के दक्षिण-अभियान से सम्बन्ध रखती है।[1]

(सन् ५००-६९ ई०) ने लिखा है। परमार्थ उज्जयिनी के भारद्वाज-गोत्र के ब्राह्मण-कुल से सम्बन्धित थे। कुछ समय तक वे मगध में रहे, फिर चीन (५४६-६९ ई०) चले गए। उनके अनुसार, कौशिक-गोत्रीय ब्राह्मण-वंश में वसुबन्धु का जन्म पुरुषपुर (पेशावर) में हुआ था। विक्रमादित्य (*JRAS*, 1905, 33 ff) के पुत्र बालादित्य के अनुरोध पर ये अयोध्या गये। वसुबन्धु के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी के लिए देखिये—*Indian Studies in Honour of C. R. Lanman*, 79 ff.

[1] राजशेखर 'काव्य-मीमांसा' तथा भोज 'शृङ्गार-प्रकाशिका' में कहते हैं कि विक्रमादित्य ने कालिदास को कुन्तल-नरेश के यहाँ राजदूत बनाकर भेजा था। "क्षेमेन्द्र ने 'औचित्य-विचार-चर्चा' में कालिदास के कुन्तेश्वर-दौत्य का उल्लेख किया है" (*Proceedings of the Third Oriental Conference*, 1924, p. 6)। तालगुण्ड-अभिलेख से यह स्पष्ट हो जाता है कि गुप्त-सम्राटों ने कुन्तल से सम्बन्ध स्थापित किया था। साथ ही इस अभिलेख से यह भी विदित होता है कि कनेरी प्रदेश के एक कदम्ब शासक ने अपनी कन्याओं का विवाह गुप्त एवं अन्य राजाओं के साथ किया था। कुमारगुप्त-प्रथम की कुछ मुद्रायें सतारा ज़िले में भी मिली हैं (Allan, p. cxxx), जिससे अनुमान होता है कि गुप्त-सम्राटों का प्रभाव देश के दक्षिणी-पश्चिमी भाग पर था। राजशेखर, भोज तथा क्षेमेन्द्र ने कालिदास के सम्बन्ध में जो कहा है, उस पर अविश्वास नहीं किया जा सकता, क्योंकि जनश्रुति के अनुसार, गुप्त-काल के प्रारम्भिक दिनों में वे थे। उनके महाराजाधिराज विक्रमादित्य (शकाराति), दिग्नाग तथा वाकाटक-वंशीय राजा प्रवरसेन (महाराष्ट्री प्राकृत में लिखे गये 'सेतुबन्ध' काव्य के रचयिता), आदि के समकालीन होने के सम्बन्ध में देखिये—अभिनन्द, राम-चरित, ch. 32; हाल, गाथासप्तशती, भूमिका, p. 8; तथा अन्य कृतियाँ। और भी देखिये—*Proceedings of the Seventh Oriental Conference*, 99 ff; मल्लिनाथ, मेघदूत की टीका, I, 14; *Ind. Ant.*, 1912, 267; *JRAS*, 1918, 118f. मिराशी ने अभी कुछ समय पूर्व ही कहा है कि प्रवरसेन-द्वितीय के पत्तन-प्लेट से ज्ञात हुआ है कि कालिदास राजाज्ञा लिखने का कार्य करते थे (*Ep. Ind.*, 1935, xxiii, pp. 81 ff), किन्तु राजाज्ञा-लेखक और महान् कवि कालिदास एक ही थे, यह अभी निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता।

विष्णुवृद्ध गोत्र के वाकाटकों की वंशावली

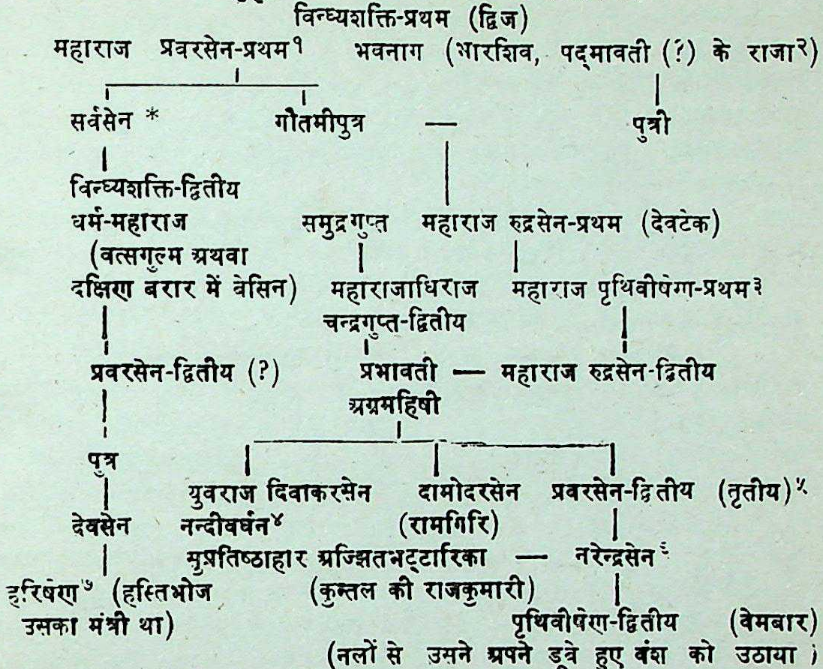
विन्ध्यशक्ति-प्रथम (द्विज)
महाराज प्रवरसेन-प्रथम[१]
भवनाग (भारशिव, पद्मावती (?) के राजा[२])
सर्वसेन *
गौतमीपुत्र
पुत्री
विन्ध्यशक्ति-द्वितीय धर्म-महाराज (वत्सगुल्म अथवा दक्षिण बरार में बेसिन)
समुद्रगुप्त
महाराज रुद्रसेन-प्रथम (देवटेक)
महाराजाधिराज चन्द्रगुप्त-द्वितीय
महाराज पृथिवीषेण-प्रथम[३]
प्रवरसेन-द्वितीय (?)
प्रभावती अग्रमहिषी
महाराज रुद्रसेन-द्वितीय
पुत्र
युवराज दिवाकरसेन
दामोदरसेन (रामगिरि)
प्रवरसेन-द्वितीय (तृतीय)[५]
देवसेन
नन्दीवर्धन[४]
सुप्रतिष्ठाहार अज्झितभट्टारिका — नरेन्द्रसेन[६]
(कुन्तल की राजकुमारी)
हरिषेण[७] (हस्तिभोज उसका मंत्री था)
पृथिवीषेण-द्वितीय (वेमबार)
(नलों से उसने अपने डूबे हुए वंश को उठाया)

---

* इसका अर्थ यह नहीं है कि सर्वसेन दोनों भ्राताओं में ज्येष्ठ था। यह बात तभी निश्चित की जा सकती है जब इस पर थोड़ा प्रकाश पड़े।

१. उसने चार अश्वमेध यज्ञ किये तथा उसे 'महाराज' अथवा 'सम्राट्' कहा जाता था। उसकी राजधानी 'कांचनकापुर' से हमें दूदिया-प्लेट के हिरण्यपुर (हीरपुर ? सागर की SSE) की याद आती है (*Ep. Ind.*, III 258 ff)। इस नाम को 'पुरिका' तथा 'चनका' के रूप में विकृत करना उचित नहीं है।

२. *J. Num. Soc.*, v. pt. ii, p. 2 ; *Coins and Identity of Bhaavnaga* (Altekar)।

३. 'धर्म-विजयी' वह होता था, जिसका 'कोष-दण्ड-साधन' १०० वर्षों से एकत्र हो रहा हो।

४. रामटेक के पास नगरधन से सम्बन्धित (हीरालाल-अभिलेख, सं० ४; *Tenth Or. Conf.*, p. 458)। परन्तु अन्य उसे रामटेक के उत्तर-पूर्व में घुघुसगढ़ के निकट स्थित नन्दपुर बताते हैं (Wellsted, *Notes on the Vakatakas*, *JASB*, 1933, 160 f)।

५. प्रवरपुर, चर्माङ्क तथा कुछ अन्य राज्यों, जैसे उत्तरी बरार के भोजकट, पूर्वी बरार के आरम्मी, वर्धा-क्षेत्र के शासक। कुछ लोग प्रवरपुर को वर्धा ज़िले का पवनार बताते हैं (*JASB*, 1933 159)।

६. कोशल, मेकल तथा मालव के राजा उसकी आज्ञा मानते थे।

७. कुन्तल, अवन्ती, कलिंग, कोशल, आंध्र, त्रिकूट तथा लाट को जीतने वाला।

२. कुमारगुप्त-प्रथम महेन्द्रादित्य

चन्द्रगुप्त-द्वितीय के उत्तराधिकारी कुमारगुप्त-प्रथम[1] महेन्द्रादित्य[2] थे जिनकी तिथि सन् ४१५ ई० से ४५५ ई०[3] मानी जाती है। विभिन्न और दूरस्थ स्थानों से प्राप्त उसके अभिलेख एवं मुद्राओं से पता चलता है कि मध्य और सुदूर पश्चिमी प्रान्तों के साथ ही अपने पिता के सम्पूर्ण विशाल राज्य को कुमारगुप्त ने सुरक्षित रखा।[4] उसका एक प्रतिनिधि, चिरातदत्त 'पुण्ड्रवर्धन भुक्ति' (उत्तरी बंगाल)[5] पर

---

[1] ५२४ वर्ष के मंदसौर-अभिलेख (मालव) से ज्ञात होता है कि कुमारगुप्त का प्रतिद्वन्द्वी उसका भाई गोविन्दगुप्त था। इसमें इन्द्र [विबुधाधिप (कुमार ?), जिसे मुद्राओं में श्री महेन्द्र तथा महेन्द्रकर्मा कहा गया है] गोविन्द की शक्ति के प्रति ईर्ष्यालु था (*Ep. Ind.*, XIX, App. No. 7 and n. 5; *Ep.*, xxvii. 15)।

[2] तीर-धनुष के आकार वाली मुद्राओं में 'श्रीमहेन्द्र'; अश्वमेध वाली मुद्राओं में 'अश्वमेध महेन्द्र'; घुड़सवार-छाप मुद्राओं में 'महेन्द्रकर्मा', 'अजित महेन्द्र'; सिंह-वध-छाप मुद्राओं में 'सिंह महेन्द्र', 'श्री महेन्द्र सिंह'; मोर-छापवाली मुद्राओं में 'महेन्द्र कुमार'; तुमेन-अभिलेख में 'महेन्द्र कल्प'; सिंह-वध वाली मुद्राओं में 'सिंहविक्रम' आदि नामों से भी कुमारगुप्त सम्बोधित किया जाता था (Allan, *Gupta Coins*, p. 80)। 'व्याघ्रबल-पराक्रम' (चीता-वधवाली मुद्राओं पर) तथा 'श्री प्रताप' के नाम से भी उसे सम्बोधित किया गया है। तलवार धारण किये हुए, सोने की मुद्राओं में, तथा गरुड़- छाप वाली, तांबे की एवं कदाचित् सिंहवाहिनी मुद्राओं में महाराज को केवल 'श्री कुमारगुप्त' कहा गया है। सुराष्ट्र में बनी चाँदी की मुद्राओं में उन्हें 'महेन्द्रादित्य परमभागवत' कहा गया है।

[3] तिथि ९६ (=४१५ ई०) बिलसड-अभिलेख में तथा तिथि १३६ (=४५५ ई०) रजत-मुद्राओं (*EHI*, 4th ed., p. 345-46) पर पाई जाती है। एरण-अभिलेख में समुद्रगुप्त की सत्यनिष्ठा एवं पतिव्रता पत्नी का उल्लेख है। साथ ही अनेक पुत्रों एवं पौत्रों की भी चर्चा मिलती है। इससे अनुमान लगाया जाता है कि कुमारगुप्त तथा उसके अन्य भाइयों का जन्म समुद्रगुप्त के सामने ही हुआ था। कुमारगुप्त का राज्याभिषेक लगभग ३५ वर्ष की उम्र में हुआ था। उन्होंने लगभग ४० वर्षों तक शासन किया। अतः उनकी मृत्यु ७५ वर्ष की उम्र में हुई होगी।

[4] एलन के अनुसार, मोर-छापवाली रजत-मुद्राओं से इस बात की पुष्टि हो जाती है (देखिये आर्यमित्र की अयोध्या में प्राप्त मुद्रायें; *CII*, I, 538; और मेघदूत, I, 45) कि उसके साम्राज्य में गंगा-घाटी के मध्य ज़िले शामिल थे। दूसरी ओर गरुड़-छाप की मुद्राओं से सिद्ध होता है कि पश्चिमी प्रान्त सम्राट् के अधीन थे। ताँबे के किनारे वाली चांदी की मुद्रायें वलभी में प्रचलित थीं। त्रैकुटक-मुद्राओं के समान ये मुद्राएँ स्पष्ट रूप से उत्तरी गुजरात के लिए निश्चित थीं (Allan, pp. xciii ff)।

[5] देखिये १२४ तथा १२८ तिथियों के दामोदरपुर-प्लेट (*Ep.*, xvii, 193)। तिथि १२८ (सन् ४४७-४८ ई०) के बैग्राम-अभिलेख से कुलवृद्धि नामक एक कुमारामात्य का पता चलता है जो पंचनगरी, सम्भवतः करतोया पर पंचगड अथवा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

राज्य करता था। दूसरा प्रतिनिधि, राजकुमार घटोत्कचगुप्त एरण (पश्चिमी मालव में) जिसमें तुम्बवन[1] भी सम्मिलित था; तथा तीसरा प्रतिनिधि, बंधुवर्मन पश्चिमी मालव में स्थित दशपुर[2] का शासक था। सन् ४३६ ई० के करमदाण्डे-अभिलेख से ज्ञात होता है कि अवध में सम्भवतः पृथिवीषेण नियुक्त था। वह चन्द्रगुप्त के समय मन्त्री तथा कुमारामात्य के पद पर रह चुका था, परन्तु कुमारगुप्त के शासन-काल में महाबलाधिकृत के पद पर आसीन था। मालव के एक प्रतिनिधि के चारण के अनुसार, कुमारगुप्त के साम्राज्य में "वह समस्त भूखण्ड था, जिसके एक ओर समुद्र था, दूसरी ओर ऊँचे-ऊँचे पर्वत थे तथा उनसे घिरी-घिरी झीलें थीं। साथ ही उस देश में हरे-भरे लहलहाते हुए खेत थे, और वे खेत नाना प्रकार के पुष्पों से सुसज्जित थे।"

अपने पिता के समान ही कुमारगुप्त एक सहनशील सम्राट् थे। उनके शासन-

---

पंचबीवी को राजधानी बनाकर एक 'विषय' पर राज्य करता था (*H. Standard* 14-10-47 in North Bengal; *Ep. Ind.*, XXI, 78 ff; Year Book, *ASB*, 1950, 200)। सुल्तानपुर अथवा कलईकुडी अभिलेख (बंगश्री 1350 B. S. बैशाख, pp. 415-51 तथा भाद्र; *IHQ*, XIX, 12), जो सन् ४३९ ई० का है तथा बोगरा ज़िले में मिलता है, में शृङ्गवेरवीथी में पूर्णकौशिका के अच्युतदास 'आयुक्तक' का उल्लेख मिलता है। सन् ४३२ ई० के नाटोर-अभिलेख (*JPASB*, 1911) से भी सिद्ध होता है कि कुमार का राज्य उत्तरी बङ्गाल में था।

[1] ग्वालियर राज्य में, एरण के उत्तर-पश्चिम में ५० मील दूर गुना ज़िले में तुमेन स्थित है (M. B. Garde, *Ind. Ant.*, xlix, 1920, p. 114; *Ep. Ind.*, xxvi, 1941, pp. 115 ff; ४३५ ई० का तुमेन-अभिलेख)। इस अभिलेख में उल्लिखित राजकुमार, जिसका ज़िक्र सीलों में पाये जाने वाले घटोत्कच, अथवा मुद्राओं में वर्णित घटोत्क्रमादित्य के साथ बार-बार हुआ है, कौन था—इस सम्बन्ध में निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता (Allan, xvi, xl, liv)। हेमचन्द्र (परिशिष्ट-पर्वन्, xii, 2-3) के अनुसार, तुम्बवन अवन्ति देश में है जो जम्बूद्वीप में स्थित पश्चिमी भारत का शृङ्गार है—

इहैव जम्बूद्वीपेऽपाग् भरतार्द्धा विभूषणम्
अवन्तिरिति देशोऽस्ति स्वर्गदेशीय ऋद्धिभिः
तत्र तुम्बवनमिति विद्यते सन्निवेशनम्।

[2] सन् ४३७-३८ का मंदसौर-अभिलेख। Bhide (*JBORS*, VII, March, 1921, pp. 33 f) का मत है कि गुप्त-अभिलेख, संख्या १७ का विश्ववर्मन एक स्वतंत्र शासक था जो अभिलेख-संख्या १७ के गुप्त-वंश के अपने ही नाम के राज्यपाल (गोप्तृ) से सौ वर्ष पूर्व हुआ था। एस० मजूमदार का मत है कि अभिलेख-संख्या १७ के विश्ववर्मन वी० एस० सन् ४०४-४०५ के नरवर्मन के पश्चात् हुए थे। मालव के राजगढ़ स्टेट में पाये जाने वाले बिहार कोटरा-अभिलेख (*Ep. Ind.*, xxvi, 130 ff) के महाराज नरवर्मन (४१७-१८ ई०) को 'औलिकर' कहा गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि उनका सम्बन्ध मालव के विष्णुवर्धन (५३२-३३ ई०) से था।

काल में स्वामी महासेन (कार्त्तिकेय), बुद्ध, शिवलिंग, सूर्य तथा विष्णु की उपासना साथ-साथ चलती हुई अपनी चरम सीमा पर पहुंच गयी।[1]

कुमारगुप्त के शासन-काल में, अश्वमेध-छाप की मुद्राओं द्वारा प्रमाणित अश्वमेध यज्ञ का होना तथा कुछ समय के लिए पुष्यमित्रों द्वारा गुप्त-साम्राज्य के वैभव एवं पराक्रम-रूपी सूर्य को ग्रहण लग जाना, ये दो प्रमुख घटनाएँ हैं। भिटारी-अभिलेख में, जहाँ इसका उल्लेख आया है, इस नाम का द्वितीय अक्षर मिट-सा गया है।[2] अतः बहुत से विद्वान् उसको 'पुष्यमित्र' पढ़ना स्वीकार नहीं करते। डॉ० फ़्लीट के 'पुस्यमित्रांस् = च' को श्री एच० आर० दिवाकर ने अपने लेख 'गुप्त-काल में पुष्यमित्र' में 'युघि = अमित्रांश = च' स्वीकार किया है और इस प्रकार इस भ्रम का निराकरण करने की कोशिश की है।[3] फिर भी, यह तथ्य आज लगभग सर्वस्वीकृत है कि कुमारगुप्त के शासन-काल के अंतिम दिनों में गुप्त-साम्राज्य की बुनियाद हिल गयी थी। परन्तु, अभी तक इसका कोई निश्चय नहीं हो सका है कि भिटारी-अभिलेख में आया हुआ शब्द 'अमित्र' है अथवा 'पुष्यमित्र'।[4] लेकिन, यह भी ध्यान रखने की बात है कि वास्तव में विष्णु पुराण में पुष्यमित्र नामक एक जाति तथा जैन-कल्पसूत्र[5] में 'पुष्यमितिक-कुल' का उल्लेख मिलता है। पौराणिक कथाएँ पुष्यमित्रों, पटुमित्रों या दुर्मित्रों आदि का सम्बन्ध नर्मदा के उद्गम-क्षेत्र में स्थित 'मेकल'[6] स्थान से जोड़ती

---

१. देखिये बिल्सड, मानकुवर तथा करमदाण्डे और मंदसौर अभिलेख। बहुत-से मंत्रियों के मुख्य उपास्य शिव, राजा के विष्णु तथा कलाकारों एवं व्यापारियों के प्रारम्भिक गुप्त-काल में सूर्य थे। कदाचित् राजा ने 'जितम् भगवता' को अत्यधिक लोकप्रिय बना दिया था। पेनुकोंडा-प्लेट (*Ep. Ind.*, XIV, 334) के अनुसार, माधव गंग; हेब्बात-दानपत्र (मैसूर *A.S.*, *A.R.*, 1925, 98) के अनुसार, कदम्ब के विष्णुवर्मन-प्रथम; उदयेंदिरम (*Ep. Ind.*, III, 145) के पल्लव-वंशी नन्दिवर्मन तथा दक्षिण के अन्य राजाओं ने उसका अनुसरण किया था। कार्त्तिकेय की लोकप्रियता का पता न केवल स्थान-स्थान पर मिलने वाली उनकी मूर्त्तियों से ही चलता है, वरन् राजाओं द्वारा अपने नाम के साथ 'कुमार' तथा 'स्कन्द' के प्रयोग से तथा कुमारगुप्त-प्रथम की मोरछाप-मुद्राओं से भी चलता है। मोरछाप-मुद्राओं को चलाने वाले शासक के शासन-काल में गुप्त-साम्राज्य अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुका था, परन्तु इसके पश्चात् ही इसका विघटन आरम्भ हो गया।

२. *Cf*. Fleet, *CII*, p. 55 n.

३. *Annals of the Bhandarkar Institute*, 1919-20, 99 f.

४. *CII*, iii, p. 55.

५. *SBE*, XXII, 292. देखिये—कुषाण-युग की भीटा-सीलों में अथवा उसके पूर्व (*JRAS*, 1911, 138) की जनश्रुति में 'पुसमितस' का उल्लेख है।

६. विष्णु, IV, 24, 17; Wilson, IX, 213. "पुष्यमित्र, पटुमित्र तथा अन्य १३ व्यक्ति मेकल पर राज्य करेंगे।" ये १३ पुष्यमित्र-पटुमित्र ७ मेकल राजाओं से भिन्न थे। लेकिन, सन्दर्भ से ज्ञात होता है कि पुष्यमित्र माहिष्यों (माहिष्मती के

हैं। कुमारगुप्त और वाकाटकों के सम्बन्ध का उल्लेख करने वाले अभिलेखों से यह भी पता चलता है कि मेकल और पड़ोसी कोशल में युद्ध-सम्बन्धी गतिविधियाँ दिखाई पड़ती थीं। स्मरण रहे कि इन्हीं राज्यों को सम्राट् गुप्त ने कभी रौंद दिया था। बाण ने मगध के एक शासक का एक बार मेकल के मंत्रियों द्वारा अपहृत किये जाने की दुर्घटना का उल्लेख किया है। १२९वें वर्ष (४४९ ई०) के मानकुवर-पाषाण-लेख में कुमारगुप्त-प्रथम को 'महाराजाधिराज श्री' के स्थान पर केवल 'महाराज श्री' कहा गया है। अतः कुछ विद्वानों ने इससे यह अनुमान लगाया है कि इस समय तक कुमारगुप्त-प्रथम सम्राट् की सर्वोच्च सत्ता की उपाधि से शत्रुओं द्वारा रहित कर दिये गये थे। परन्तु, लगभग उसी समय के दामोदरपुर-प्लेट के विवरणों से इस अनुमान का खण्डन होता है, क्योंकि उसमें कुमारगुप्त को पूरी-पूरी उपाधि से विभूषित किया गया है। इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि अनेक अभिलेखों एवं मुद्राओं पर उसके उत्तराधिकारियों को केवल 'राजा' अथवा 'महाराज' कह कर ही सम्बोधित किया गया है।

कुमार की मुद्राओं पर अंकित शब्द 'व्याघ्र-बल-पराक्रम' से बोध होता है कि वह अपने पितामह के समान दक्षिण में अपना प्रभुत्व स्थापित कर धीरे-धीरे व्याघ्रों से भरे हुए नर्मदा-पार के वनों में घुसा था। सतारा ज़िले[1] में १,३९५ मुद्राएँ मिली हैं। इनसे भी इस बात की पुष्टि होती है कि दक्षिण की ओर वह साम्राज्य-विस्तार कर रहा था। परन्तु, इस अभियान में राजसेना अवश्य ही नष्ट-भ्रष्ट हो गई होगी। गुप्त-वंश की गिरती हुई दशा को एक बार पुनः स्कन्दगुप्त ने सँभाला तथा उसे ऊपर उठाया। सम्भवतः कुमारगुप्त ने स्कन्दगुप्त को गाज़ीपुर क्षेत्र का शासक नियुक्त कर रखा था।[2]

वंशावली में कुमारगुप्त-प्रथम की केवल एक ही रानी अनन्तदेवी का उल्लेख मिलता है। कुमारगुप्त के कम से कम दो पुत्र थे। एक का नाम पुरुगुप्त था, तथा इसकी माता का नाम अनन्तदेवी था। दूसरे का नाम स्कन्दगुप्त था। कुछ विद्वानों के अनुसार, स्कन्दगुप्त की माता का नाम अभिलेखों में नहीं मिलता। सीवेल का मत है कि स्कन्दगुप्त की माता का नाम देवकी[3] था। यह बात विश्वसनीय-सी ही लगती है, क्योंकि यदि इसे स्वीकार न किया जाये तो भिटारी-स्तम्भ-लेख के छठे श्लोक में गुप्त-सम्राट् की विधवा रानी की जो तुलना कृष्ण की माता के साथ की गई है, उसे हम पूर्ण रूप से न्यायोचित ढंग से स्पष्ट न कर सकेंगे। ह्वेनसांग ने बुद्धगुप्त (फ़ो-तो-

---

निवासियों) तथा नर्मदा-सोन-घाटी के मेकलों के बीच की भूमि में राज्य करते थे (*Cf.* Fleet, *JRAS*, 1889, 228; भीटा-सील भी देखिये)। मेकल के लिए भी देखिये—*Ep. Ind.*, xxvii, 138 f.

[1] Allan, p. cxxx. कदम्ब-अभिलेख में पाँचवीं शताब्दी में कदम्बों एवं गुप्तों के सम्बन्ध के बारे में देखिये।

[2] देखिये—भिटारी-अभिलेख।

[3] *Historical Inscriptions of Southern India*, p. 349.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

किओ-तो) अथवा बुधगुप्त[1] को शक्रादित्य[2] का पुत्र अथवा उत्तराधिकारी बताया है। बुधगुप्त का समकालीन और इस प्रकार की उपाधि धारण करने वाला राजा केवल कुमारगुप्त-प्रथम था, जिसकी उपाधि मुद्राओं पर 'महेन्द्रादित्य' थी। महेन्द्र तथा शक्र में कोई विशेष अन्तर नहीं है। गुप्त-काल में इस प्रकार की उपाधियों के प्रयोग की कमी नहीं थी। विक्रमादित्य को 'विक्रमांक' भी कहते थे। स्कन्दगुप्त को 'विक्रमादित्य' तथा 'क्रमादित्य' दोनों ही नामों से सम्बोधित करते थे। अतः यदि शक्रादित्य को हम महेन्द्रादित्य अथवा कुमारगुप्त-प्रथम स्वीकार कर लें तो कहेंगे कि बुद्धगुप्त[3] का कुमारगुप्त से अत्यन्त निकट का सम्बन्ध था। कुमारगुप्त के वंश का दूसरा सदस्य सम्भवतः घटोत्कच गुप्त[4] था।

३. स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य

'आर्य-मंजुश्री-मूलकल्प' तथा अन्य लेखों से स्पष्ट है कि महेन्द्र, अर्थात् कुमारगुप्त-प्रथम के उत्तराधिकारी का नाम स्कन्दगुप्त था। 'एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल' की एक सभा में एक पत्र पढ़ते हुए डॉ० आर० सी० मज़ूमदार ने एक अत्यन्त आश्चर्यजनक घटना का उल्लेख किया। उनके अनुसार, पुष्यमित्रों के साथ चल रहे अनिर्णयात्मक युद्ध के दौरान ही सम्राट् कुमारगुप्त-प्रथम की मृत्यु हो गई। उनके निधन के बाद सिंहासन के लिए सम्राट् के पुत्रों में परस्पर युद्ध हुआ। इस युद्ध में

---

[1] 'फ़ो-तो-किओ-तो' को बुद्धगुप्त बताया जाता है। परन्तु, इस काल में बुद्धगुप्त नामक शासक की सत्ता को हम किसी दूसरे स्वतंत्र साक्ष्य से प्रमाणित नहीं कर सकते। उसके उत्तराधिकारी के उत्तराधिकारी वालादित्य का सम्बन्ध मिहिरकुल से था, अतः हम उसे बुद्धगुप्त ही स्वीकार करते हैं (*Cf. Ind. Ant.*, 1886, 251 n)।

[2] नालन्दा-सील से भी शक्रादित्य की पुष्टि होती है (एच० शास्त्री, *MASI*, No. 66, p. 30)। कहा जाता है कि प्रसिद्ध, आगे चलकर विश्व-विख्यात, विश्वविद्यालय के रूप में ज्ञापित होने वाला नगर नालन्दा, इसी सातवीं शताब्दी में बसाया गया था। नालन्दा पर मिले एक महत्त्वपूर्ण लेख में श्री एच० शास्त्री का मत है कि ह्वेनसांग ने नालन्दा का काल्पनिक चित्र प्रस्तुत किया है, परन्तु वास्तव में उसने केवल वास्तविकता का ही वर्णन किया है।

[3] आधुनिक अनुसन्धानों से ज्ञात होता है कि बुधगुप्त कुमारगुप्त-प्रथम का पुत्र न होकर पौत्र था। सम्भवतः चीनी यात्री पुत्र एवं पौत्र में कोई अंतर न कर सका हो। देखिये कोप्परम-प्लेट, जिसमें पुल्केशिन-द्वितीय को कीर्तिवर्मन-प्रथम का पौत्र बताया गया है। परन्तु, वास्तव में वह कीर्तिवर्मन-प्रथम का पुत्र था। यह भी सम्भव है कि बुधगुप्त के पिता पुरुगुप्त की उपाधि 'शक्रादित्य' रही हो।

[4] मि० गार्डे ने तुमेन-अभिलेख का उल्लेख किया है। देखिये बसाढ़-सील, जिसमें घटोत्कचगुप्त का उल्लेख मिलता है। इस अभिलेख से कुमार के साथ सम्बन्ध का कोई स्पष्ट निर्देश नहीं मिलता।

अन्ततः स्कन्दगुप्त ने अपने सभी भाइयों को, यहाँ तक कि सिंहासन के वैध उत्तराधिकारी पुरुगुप्त को भी, पराजित कर दिया। इसके बाद उसने स्वयं सम्राट् की उपाधि धारण की तथा जैसे भगवान् कृष्ण ने देवकी[1] का उद्धार किया था, वैसे ही उसने अपनी माता का उद्धार किया। डॉ० मजूमदार का मत है कि बिहार तथा भिटारी स्तम्भ-लेख में जो वंशावली दी गई है, उसमें स्कन्दगुप्त की माता का नाम नहीं है। इससे यह सिद्ध होता है कि वह मुख्य रानी नहीं थी। इस प्रकार स्कन्दगुप्त राज्य-सिंहासन का वैध उत्तराधिकारी नहीं था। वास्तव में राज्य के वैध अधिकारी महाराज कुमारगुप्त तथा महादेवी अनन्तदेवी के पुत्र श्री पुरुगुप्त ही थे ।

हमें वैसे यह स्मरण रखना चाहिये कि उस समय तक अन्य रानियों का अभिलेखों में उल्लेख करना वर्जित नहीं था । उदाहरण के लिए, चन्द्रगुप्त-द्वितीय[2] की पुत्री राजकुमारी प्रभावती की माता कुबेरनागा का उल्लेख अभिलेखों में मिलता है, जबकि वह मुख्य रानी नहीं थी—यद्यपि यह सत्य है कि उसकी पुत्री ने उसके नाम के साथ 'महादेवी' शब्द का उल्लेख किया है, परन्तु अन्य लेखों में इसकी पुनरावृत्ति नहीं हुई है। ऋद्धपुर-प्लेट में 'महादेवी' न लिख कर केवल 'कुबेरनागा देवी' लिखा गया है, जबकि कुमारदेवी, दत्तदेवी और स्वयं कुबेरनागा की पुत्री प्रभावती गुप्ता के नामों के पूर्व 'महादेवी' शब्द का प्रयोग किया गया है। यह विभिन्नता अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि चन्द्रगुप्त-द्वितीय की मुख्य रानी महादेवी ध्रुवदेवी अथवा ध्रुवस्वामिनी थीं। यद्यपि कुबेरनागा मुख्य रानी (अग्रमहिषी) नहीं थी, फिर भी एक लेख में उसकी पुत्री ने इसका उल्लेख किया है। परन्तु, कभी-कभी रानियों एवं राजमाताओं का नाम छोड़ भी दिया जाता था।[3] बंसखेर तथा मधुबन प्लेटों में जो वंशावली दी गई है, उसमें हर्ष की माता यशोमती का उल्लेख नहीं मिलता, परन्तु नालन्दा तथा सोनपत सीलों[4] में उसे राज्यवर्द्धन तथा हर्षवर्द्धन की माता बताया गया है। अतः सीलों एवं साधारण प्रशस्तियों में दी गई वंशावलियों की तुलना के आधार पर किसी प्रकार का निष्कर्ष निकालना उचित नहीं होगा। यदि हम उपर्युक्त सीलों तथा सामान्य प्रशस्तियों का तुलनात्मक अध्ययन करें तो दो तथ्यों का पता चलता है—(१) जो वंशावली सीलों आदि में दी गई है, वह पूर्ण है, परन्तु प्रशस्ति में दी गई वंशावली अपूर्ण है, तथा (२) राजमाताओं का नाम, अर्थात् जो राजा राज्य कर रहा है, उसकी माता

---

१. देखिये भिटारी-अभिलेख, *JASB*, 1921 (N.S. XVII), 253 ff. डॉ० मजूमदार (*IC*, 1944, 171) ने बिहार-अभिलेख में जो नाम नहीं दिया गया है, उस सम्बन्ध में अपने विचार में, थोड़ा-सा परिवर्तन किया है तथा उसी अभिलेख में महादेवी अनन्तदेवी तथा उसके पुत्र पुरुगुप्त का उल्लेख किया है।

२. *JASB*, 1924, 58.

३. कभी-कभी राज्य करने वाले राजा के पिता का नाम भी छोड़ दिया जाता था (*Cf*. Kielhorn's N. Ins., Nos., 464, 468)।

४. देखिये *A.R.* of the *A.S.I.* Eastern Circle 1917-1918, p. 44; *Ep. Ind.*, XXI, 74 ff: *MASI*, No 66, 68 f.

का नाम (चाहे उसकी पुनरावृत्ति ही क्यों न हो) सील में अवश्य मिलता है, जबकि प्रशस्ति में, चाहे वह अग्रमहिषी ही क्यों न रही हो, कभी-कभी उसका उल्लेख नहीं भी मिलता । अतः भिटारी-सील तथा स्तम्भ-लेखों के बीच वास्तविक समानता नहीं है । वास्तव में सील की तुलना दूसरी सील से तथा सामान्य प्रशस्ति की तुलना उसी कोटि के किसी अन्य लेख आदि से की जानी चाहिये ।[1]

जहाँ तक वैध उत्तराधिकार का प्रश्न है, हमने देखा कि समुद्रगुप्त तथा चन्द्रगुप्त-द्वितीय के उदाहरणों से सिद्ध है कि जन्म आदि का विचार न करके केवल योग्यतम व्यक्ति को ही सम्राट्-पद दिया जाता था ।

भिटारी-अभिलेख में जिस संघर्ष का उल्लेख कुमारगुप्त-प्रथम के शासन-काल के अंतिम दिनों में आता है, उसमें कहीं यह सूचना नहीं मिलती कि वह संघर्ष राजगद्दी के लिए था । अभिलेख का मौलिक पद इस प्रकार है—

पितरि दिवं उपेते विप्लुतां वंशलक्ष्मीम्
भुजबल-विजित अरिर्य्यः प्रतिष्ठाप्य भूयः
जितमिति परिपोषान् मातरं साश्रु नेत्राम्
हत-रिपुर-इव कृष्ण देवकीमभ्युपेतः ।

"जिसने अपने पिता के देहावसान के बाद, अपने बाहुबल एवं अपनी शक्ति

---

[1] हमने देखा है कि सीवेल के अनुसार, स्कन्द की माता का नाम वास्तव में एक लेख में मिलता है । उसके अनुसार, उनकी माता का नाम 'देवकी' था । कृष्ण की माता के साथ भिटारी-अभिलेख में उसकी जो तुलना की गई है (यद्यपि समस्त दुःखों के होते हुए भी कृष्ण की माता को वैधव्य का दुःख नहीं था), वह अधिक स्पष्ट नहीं है । फिर भी, यदि 'देवकी' स्कन्दगुप्त और साथ ही साथ कृष्ण की माता का नाम नहीं था, तो यह तुलना क्यों ? शत्रु-पक्ष पर विजय प्राप्त करने के सम्बन्ध में कृष्ण और देवकी का ही उल्लेख क्यों किया गया ? यह न कहकर 'स्कन्द' (कार्त्तिकेय) तथा 'पार्वती', 'इन्द्र' अथवा 'विष्णु' और 'अदिति' आदि भी तो कहा जा सकता है, क्योंकि स्कन्दगुप्त के प्रशंसकों ने उसे 'शक्र' (कहाउम-अभिलेख में शक्रोपम) तथा जूनागढ़-अभिलेख के अनुसार 'विष्णु' (श्री परिक्षिप्तवक्षा) की भी उपाधि दी है । सम्भवतः उसकी माता के दुःखों को देखकर तथा उसके नाम में समानता पाकर ही राजकवि ने उसकी तुलना 'कृष्ण' तथा 'देवकी' से की है (*Cf. Ep. Ind.*, I, 364: xiii, 126, 131) । कृष्णदेव राय के हैम्पे तथा कांजीवरम् अभिलेखों के अनुसार, देवकी के नाम पर इसी प्रकार का एक नाटक भी मिलता है—

तद्वंशे देवकीजानिर्द्वीपे तिम्म भूपतिः
यशस्वी तुलुवेन्द्रेषु यदोः कृष्ण इवान्वये....
सरसावुदभूत्तस्मान् नरसावनिपालकः
देवकीनन्दनात् (*Var.* नन्दनः) कामो देवकीनन्दनादिव ।

इस समस्या में अनेक कठिनाइयाँ हैं, तथा इस पर अंतिम निर्णय देने से पूर्व नवीन अनुसन्धानों के निष्कर्षों की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी ।

के द्वारा शत्रुओं का विनाश करके, अपने वंश की डावाँडोल स्थिति को दृढ़ बनाया, वह शत्रुओं का पूर्ण रूप से विनाश करके अपनी रोती दुःखी माँ, देवकी[1] के पास गया ।"

जिन्होंने स्कन्दगुप्त की वंश-लक्ष्मी को उसके पिता की मृत्यु के उपरान्त विलुप्त किया, वे निस्संदेह ही गुप्त-वंश के शत्रु थे, अर्थात् उन लोगों का गुप्त-वंश से कोई रक्त-सम्बन्ध नहीं था । यह निश्चित है कि भिटारी-अभिलेख में उल्लिखित ये शत्रु विदेशी थे, अर्थात् वे पुष्यमित्र[2] तथा हूण थे । यहाँ पर भाइयों के बीच हुए युद्ध के सम्बन्ध में किंचित् मात्र उल्लेख नहीं मिलता । स्कन्दगुप्त के जूनागढ़-अभिलेख में एक स्थान पर यह विवरण आता है—"भाग्य एवं समृद्धि की देवी लक्ष्मी ने उसके भाइयों को प्राथमिकता न देकर उसे अपना वर चुना (**स्वयम् वर्यम् चकार**) ।" परन्तु, यह वाक्यांश '**स्वयमेव श्रिया गृहीत**', अर्थात् 'लक्ष्मी जी ने स्वयं अपनी इच्छा से चुना' एक उपाधि मात्र है, जिसको प्रभाकरवर्धन ने अपनी मृत्यु से कुछ ही वर्ष पूर्व हर्ष के लिए प्रयुक्त किया था; जब कि हम जानते हैं कि हर्ष अपने भाई राज्यवर्धन से कितना अधिक प्रेम करते थे । यह बात सभी को भलीभाँति विदित है कि हर्ष के समान ही स्कन्दगुप्त भी लक्ष्मी के प्रिय पात्रों में से थे । इस सम्बन्ध में हमारा ध्यान जूनागढ़-अभिलेख की ओर जहाँ स्कन्दगुप्त को '**श्री परिक्षिप्तवक्षाः**' कहा गया है—तथा लक्ष्मी-छाप मुद्राओं[3] की ओर जाता है । सम्राट् के एक चारण ने यह भी बताया है कि स्कन्दगुप्त के समय में भी एक स्वयंवर परम्परागत रीतियों के अनुसार हुआ था ।[4] स्वयंवर में सभी राजकुमार (आवश्यक नहीं कि ये राजकुमार एक ही वंश के हों) एकत्र होते हैं, तथा उनमें से किसी एक को कन्या अपना वर चुनती है । परन्तु स्वयंवर के बाद युद्ध न हो, यह कोई ज़रूरी नहीं है । फिर भी. इतना तो इतिहास-सिद्ध है ही कि इस तरह का युद्ध कभी भी एक ही राजा के पुत्रों के बीच नहीं हुआ । अतः जिस गद्यांश का उल्लेख यहाँ लक्ष्मी के स्वयंवर के सम्बन्ध में किया गया है, उससे यह अर्थ ज़रूरी तौर पर तो नहीं निकलता कि कुमारगुप्त के पुत्रों के बीच युद्ध हुआ और उसमें अंत में स्कन्दगुप्त विजयी ही हुआ था । वास्तव में इससे केवल यही अर्थ निकलता है कि कुमारगुप्त के सभी पुत्रों में केवल स्कन्दगुप्त ही भाग्यशाली था

---

[1] देवकी के सम्बन्ध में जानने के लिए विष्णु पुराण, V, p. 79 देखिये ।

[2] यदि यहाँ पर 'अमित्रों' (see *ante*, p. 568) का वर्णन भी किया जाय तो भी उससे बड़े भाई का अर्थ कदापि नहीं निकलता, क्योंकि गद्यांश में स्पष्ट लिखा है कि "उसने अपना बायाँ पैर उस शत्रु राजा के सिंहासन पर रखा ।" यदि गुप्त-वंश का कोई वास्तविक अधिकारी ही सिंहासन पर आता, तो इतना साधन होते हुए भी एकाएक शासन हथिया लेने वाले किसी नये शासक के लिए '**समुदित बल-कोष**' (उसका धन एवं उसकी शक्ति बढ़ती ही गई) लिखने की आवश्यकता ही न पड़ती ।

[3] Allan, p. xcix.

[4] *Cf. Ep. Ind.*, I 25—'**गूर्जरेश्वर-राज्य-श्रीयंस्य जज्ञे स्वयम्वरा** ।'

उर्वशी ने अपनी अन्य अप्सराओं के साथ महाराज इन्द्र के सम्मुख जो नाटक किया था, उसका भी विषय 'लक्ष्मी का स्वयंवर' ही था (*J.A.S.B*, 59, 32) ।

और उसे सभी राजकुमारों में सर्वश्रेष्ठ भी समझा जाता था, क्योंकि उसने अपने वंश एवं साम्राज्य के शत्रुओं का डट कर सामना किया था। इलाहाबाद-प्रशस्ति में भी इसी आशय का एक उल्लेख सम्राट् समुद्रगुप्त के बारे में मिलता है—“दूसरे राजकुमार अपने जन्म और रक्त सम्बन्ध से उसके (समुद्रगुप्त के) समान होते हुए भी, अस्वीकृत किये जाने के कारण, समुद्रगुप्त के प्रति अत्यन्त ईर्ष्यालु थे, क्योंकि सम्राट् चन्द्रगुप्त-प्रथम ने घोषणा करते हुए यह कहा कि यही मात्र योग्य पुत्र है जो सारी दुनिया का शासन चलाने की शक्ति रखता है” शौर उसे अपने गले से लगा लिया था। परन्तु, इस सम्बन्ध में एक तर्क यह भी है कि इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि सम्राट् कुमारगुप्त न स्कन्दगुप्त को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किया ही था। इसके विपरीत, यह कहा गया है कि लक्ष्मी ने अपने आप स्कन्दगुप्त को चुना। परन्तु यही बात तो हर्ष के साथ भी थी। हर्ष के समान ही स्कन्द के ऊपर अपने वंश एवं पितामह के राज्य को बचाने का दायित्व उस समय आया, जब उसके राजवंश की स्थिति बहुत ही डावाँडोल थी। दोनों ने ही अपनी शक्ति एवं कार्य-कुशलता से राज्य को बचा लिया। इस सम्बन्ध में एक मुख्य और स्मरणीय बात यह भी है कि अभिलेखों में स्कन्दगुप्त के जिन शत्रुओं की सूचना मिलती है, वे सभी पुष्यमित्र, हूण[1] और म्लेच्छ थे।[2] जूनागढ़-अभिलेख में जिन ‘मनुजेन्द्र-पुत्रों’ का उल्लेख मिलता है, वे केवल निराश उम्मीदवार हो सकते हैं, पराजित शत्रु नहीं; और इन निराश उम्मीदवारों की तुलना समुद्रगुप्त के भाइयों से की जा सकती है जिन्हें उत्तराधिकार के योग्य नहीं समझा गया था। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि क्योंकि स्कन्दगुप्त ने लड़खड़ाते हुए गुप्त-साम्राज्य को नष्ट होने से बचा लिया था, अतः वही सबसे योग्य शासक ठहराया गया। वास्तव में आज ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता, जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि सिंहासन के लिए स्कन्दगुप्त तथा उसके भाइयों में कोई युद्ध भी हुआ। यह कहना सर्वथा भ्रमात्मक होगा कि अपने भाइयों का रक्तपात करके ही वह सिंहासनारूढ़ हुआ और यह कि भिटारी-लेख[3] में उसे जो ‘पवित्र हृदय वाला’ (अमलात्मा) तथा ‘दूसरों की सहायता करने वाला’ (परहितकारी) कहा गया है, वह गलत है।

‘आर्य-मंजुश्री-मूलकल्प’[4] में एक ऐसा पद आया है, जिसके आधार पर यह प्रमाणित किया जा सकता है कि कुमारगुप्त-प्रथम के उपरान्त स्कन्दगुप्त ही उसका उत्तराधिकारी बना—

---

[1] देखिये—भिटारी-अभिलेख।

[2] देखिये—जूनागढ़-अभिलेख।

[3] Allan, *Gupta Coins*, cxxi.

[4] देखिये गणपति शास्त्री द्वारा सम्पादित, Vol. I, p. 628 देखिये, रीवा-अभिलेख, सन् ४६०-४६१ ई० का। ओरिएंटल कान्फ्रेंस के बारहवें (बनारस) अधिवेशन में इस ओर हमारा ध्यान श्री बी० सी० छाबरा ने आकृष्ट किया। उसके पश्चात् डॉ० मजूमदार तथा सरकार ने भी इस ओर हमें प्रवृत्त किया।

समुद्राख्य नृपश्चैव विक्रमश्चैव कीर्तितः
महेन्द्र-नृपवरो मुख्यः सकाराद्यं अतः परम्
देवराजाख्य नामासौ युगाधमे ।

उपर्युक्त पद में समुद्र, विक्रम, महेन्द्र तथा 'शाकाराद्य' नृपों को पहचानना असम्भव नहीं है। ये नाम क्रम से महान् गुप्त-सम्राटों समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त-द्वितीय, विक्रमादित्य, कुमारगुप्त-प्रथम, महेन्द्रादित्य, स्कंदगुप्त आदि के ही हैं।[1]

स्कन्दगुप्त ने 'क्रमादित्य' तथा 'विक्रमादित्य' की उपाधि धारण की थी।[2] 'मंजुश्री-मूलकल्प' से जो उपर्युक्त पद लिया गया है, उसमें उसे 'देवराज' कहा गया है। सम्भवतः 'विक्रमादित्य' एवं 'देवराज' की उपाधि उसने अपने पितामह के अनुकरण में ही धारण की थी। 'देवराज' की उपाधि हमें इस बात का भी स्मरण कराती है कि उसके पिता को 'महेन्द्र' की उपाधि भी दी गयी थी। हमें यह बात भी याद रखनी चाहिये कि इलाहाबाद के स्तम्भ-लेख में समुद्रगुप्त को 'इन्द्र तथा अन्य देवताओं के समान' कहकर तथा कहाउम-लेख में स्कन्दगुप्त को 'शक्रोपम' की उपाधि देकर उनकी प्रशंसा की गई है।

मुद्राओं एवं अभिलेखों आदि से ज्ञात होता है कि स्कन्दगुप्त ने सन् ४५५ ई० से ४६७ ई० तक शासन किया। सर्वप्रथम विनाश की ओर जाते गुप्त-साम्राज्य को बचा कर उसने उसे एक महान् शक्तिशाली राज्य में परिणत किया। साथ ही ऐसे सारे प्रान्त फिर से राज्य के अंग बने जो गुप्त-साम्राज्य से अपना संबंध-विच्छेद कर चुके थे।

अभिलेख के एक वाक्य से हमें यह भी ज्ञात होता है कि खोये हुए वैभव को प्राप्त करने के सिलसिले में एक बार ऐसा भी समय आया जब सम्राट् स्कन्दगुप्त को एक पूरी रात नंगी ज़मीन पर सोना पड़ा। भिटारी-अभिलेख की १२वीं पंक्ति से ज्ञात होता है कि कुमारगुप्त-प्रथम के स्वर्गवासी हो जाने पर स्कन्दगुप्त ने अपने शत्रुओं को अपने पराक्रम से जीता। इस लेख के संदर्भ से यह भी ज्ञात होता है कि पुष्यमित्र ही, जिनकी शक्ति एवं समृद्धि अकस्मात् बढ़ गई थी, गुप्त-वंश के परम शत्रु थे।

---

[1] *IHQ*, 1932, p. 352.

[2] Allan, *Catalogue*, pp. 117, 122; *Cf*. Fleet, *CII*, p. 53—

विनय-बल सुनीतैर्व्विक्रमेण क्रमेण
प्रतिदिनमभियोगादीप्सितं येन लब्ध्वा ।

"कुछ धनुष-छाप सोने की बड़ी मुद्राओं पर 'क्रमादित्य' की उपाधि मिलती है। साथ ही यह उपाधि चाँदी की गरुड़, वृषभ तथा वेदी-छाप मुद्राओं पर भी अंकित है। सुप्रसिद्ध उपाधि 'विक्रमादित्य' चाँदी की वेदी-छाप मुद्राओं पर प्रायः अधिक मिलती है।"

पुष्यमित्रों को पराजित करने के पश्चात् स्कन्दगुप्त को हूणों[1] तथा कदाचित् वाकाटकों से लोहा लेना पड़ा। इन युद्धों में अन्तोगत्वा स्कन्दगुप्त विजयी रहा। जूनागढ़-अभिलेख में जिन म्लेच्छों का उल्लेख मिलता है, यदि वे हूण ही थे तो उनका आक्रमण सन् ४५८ ई० के पूर्व ही हुआ होगा। सोमदेव-रचित 'कथा-सरित्सागर'[2] में उज्जैन के सम्राट् महेन्द्रादित्य के पुत्र महाराज विक्रमादित्य की कथा में म्लेच्छों के ऊपर विजय का उल्लेख मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि गुप्त-साम्राज्य में मध्य भारत तथा सुराष्ट्र प्रान्तों की स्थिति असुरक्षित थी। बालाघाट-प्लेट[3] में स्कन्दगुप्त के चचेरे भाई प्रवरसेन-द्वितीय (तृतीय ?) के पुत्र नरेन्द्रसेन वाकाटक को '**कोशला-मेकला-मालव-आधिपत्यभ्यर्चित शासन**' (जिसकी आज्ञा का कोशल, मेकल तथा मालव नरेश सम्मान से पालन करते थे) कहा गया है। जूनागढ़-अभिलेख से ही इस बात का भी पता चलता है कि "कई रातों तथा कई दिनों तक स्कन्दगुप्त यही सोचते रहे कि सुराष्ट्र के महत्त्वपूर्ण प्रान्तों का शासन किसे सौंपा जाये।" एलन इससे तथा '**सर्वेषु देशेषु विधाय गोप्तृन्**', अर्थात् 'समस्त प्रान्तों में संरक्षकों की नियुक्ति' से यह अर्थ निकालते हैं कि सम्राट् अपने साम्राज्य को बाह्य आक्रमणों से सुरक्षित रखने के लिए प्रान्तों में सुरक्षा-सैनिकों की एक नियमित शृंखला बनाने के प्रति विशेष रूप से चिन्तित रहा करते थे। इन्हीं में सुराष्ट्र का राज्यपाल पर्णदत्त[4] भी था। इतनी अथक चेष्टा करने के बाद भी स्कन्दगुप्त अपने साम्राज्य के सुदूर पश्चिमी भाग को भविष्य की विपत्तियों से मुक्त नहीं कर सके। निस्सन्देह अपने जीवन-काल में उन्होंने गुजरात, मालव के आसपास की भूमि, सुराष्ट्र तथा कैम्बे पर अपना अधिकार बनाये रखा।[5] परन्तु, स्कन्दगुप्त के उत्तराधिकारी उसके समान ही भाग्यशाली नहीं

---

[1] हूणों का उल्लेख इन अभिलेखों के अतिरिक्त 'महाभारत', पुराणों, 'रघुवंश', 'हर्षचरित' और सोमदेव-रचित 'नीतिवाक्यामृत' में भी आया है। 'ललितविस्तर' (अनुवादक : धर्मरक्ष, ३१३ ई०) में हूण-लिपि का ज़िक्र आया है (*Ind. Ant.*, 1913, p. 266)। इसके अलावा देखिये—W. M. McGovern, *The Early Empires of Central Asia*, 399 ff, 455 ff. 485 f.

[2] Allan, *Gupta Coins*, Introduction, p. xlix.

[3] *Ep. Ind.*, IX, p. 271.

[4] जार्ल कार्पेन्टियर के अनुसार, फ़ारसी 'फ़र्नदात' वस्तुतः पर्णदत्त ही है (*JRAS*, 1931, 140; *Aiyangar Com. Vol.*, 15)।

[5] जूनागढ़-अभिलेख से सुराष्ट्र तथा चाँदी की वृषभ-छाप मुद्राओं से कैम्बे-तट के उसके राज्य में मिलाये जाने का प्रमाण मिलता है। इन मुद्राओं का अनुकरण सम्भवतः कटच्चुरि-वंश के कृष्णराज ने भी किया था (Allan, ci)। कृष्ण के पुत्र शंकरगण ने समुद्रगुप्त की उपाधियों को अपनाया। उसके पुत्र बुद्धराज ने ७वीं शताब्दी में पूर्वी मालव पर विजय प्राप्त की थी (C. 608 A. D.; Vadner Plates, *Ep. Ind.*, xii. 31 ff; see also Marshal, *A Guide to Sanchi*, p. 21 n)। चालुक्य ने इस वंश का विनाश किया। यह अत्यन्त आश्चर्य की बात है कि कैरा-दान-पत्र के अनुसार, समुद्रगुप्त की तीन उपाधियाँ चालुक्य-राजा विजयराज को मिली थीं (Fleet, *CII*, 14)।

सिद्ध हुए। अभी तक एक भी ऐसा लेख अथवा मुद्रा नहीं मिली है जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि सुराष्ट्र एवं पश्चिमी मालव स्कन्दगुप्त की मृत्यु के पश्चात् भी गुप्त-साम्राज्य के ही अंग बने रहे। इसके विपरीत, नरेन्द्रसेन के चचेरे भाई हरिषेण वाकाटक लाट (दक्षिणी गुजरात), अवन्ति (उज्जैन के आसपास का प्रदेश), कोंकण प्रदेश के त्रिकूट, कुन्तल (कनेरी देश), आंध्र (तेलुगु देश), कलिंग (दक्षिण उड़ीसा और कुछ आसपास का भाग), कोशल (महानदी का ऊपरी भाग), आदि पर अपना अधिकार कर लिया था तथा वलभी के मैत्रकों ने धीरे-धीरे अपने को स्वतंत्र कर लिया था।

स्कन्दगुप्त के अंतिम वर्ष शान्तिपूर्वक ही बीते।[1] शासकीय कार्य में उसे पश्चिम के राज्यपाल पर्णदत्त, अन्तर्वेदी के जिलाधीश (विषयपति) सर्वनाग तथा कोसाम प्रदेश के शासक भीमवर्मन[2] जैसे कितने ही योग्य राज्यपालों से महत्त्वपूर्ण सहायता मिली थी। सन् ४५७-५८ ई० में पर्णदत्त के पुत्र चक्रपालित ने गिरनार-स्थित सुदर्शन झील के बाँध को ठीक करवाया था, जो दो वर्ष पूर्व टूट गया था।

सम्राट् ने अपने पूर्वजों की सहिष्णुता की नीति का ही अनुसरण किया। कृष्ण-विष्णु के उपासक होने या भागवत की उपाधि धारण करने के बाद भी उसने अथवा उसके अधिकारियों ने दूसरे धर्म के अनुयायियों, जैसे जैनियों या सूर्योपासना करने वालों को कभी कोई यातना नहीं दी। प्रजा भी सहिष्णु थी। कहाउम-अभिलेख से ज्ञात होता है कि एक कट्टर ब्राह्मणवादी ने जैन-मूर्त्तियों को स्थापित कराया था।[3] इन्दौर-प्लेट से पता चलता है कि किसी ब्राह्मण ने सूर्य के मन्दिर में दीपदान किया था।

———

---

[1] देखिये—सन् ४६०-६१ ई० का कहाउम-अभिलेख।

[2] भिटारी तथा बिहार स्तम्भ-लेखों से ज्ञात होता है कि स्कन्दगुप्त के साम्राज्य के पूर्वी प्रान्तों का समावेश उसके साम्राज्य में हुआ था। सोने की धनुषधारी-छाप मुद्राओं (इनमें से प्रत्येक मुद्रा का वजन १४४६ ग्रेन था) से भी इस बात की पुष्टि होती है (Allan, p. xcviii, 118)।

[3] देखिये—सन् ४७९ ई० का पहाडपुर-लेख, जिससे ज्ञात होता है कि ब्राह्मण-दम्पति ने जैनियों के लिए दान दिया था।

१५ गुप्त-साम्राज्य (क्रमशः) : उत्तर गुप्त-सम्राट्

वस्वौकसारामतिभूय साहं सौराज्य बद्धोत्सवया विभूत्या ।
समग्रशक्तौ त्वयि सूर्यवंश्ये सति प्रपन्ना करुणामवस्थाम् ॥

—रघुवंशम्

१. स्कन्दगुप्त के पश्चात् गुप्त-साम्राज्य

आज लगभग सभी विद्वान् इस पर एकमत हैं कि स्कन्दगुप्त का शासन-काल सन् ४६७ ई०[1] में समाप्त हो गया था। उसकी मृत्यु के उपरान्त धीरे-धीरे राज्य का पतन,[2] मुख्य रूप से पश्चिम में, आरम्भ हुआ, किन्तु पूर्णतया विनष्ट नहीं हुआ। पाँचवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तथा छठी एवं सातवीं शताब्दी में गुप्त-साम्राज्य के अन्तर्गत मध्य एवं पूर्वी भारत था, इस बात की पुष्टि के लिए हमारे पास न केवल अभिलेख इत्यादि हैं, वरन् साहित्य भी उपलब्ध है। दामोदरपुर-प्लेट, सारनाथ-अभिलेख[3] तथा बुधगुप्त का एरण-अभिलेख आदि सभी इस बात को प्रमाणित करते हैं कि सन् ४७७ से ४९६ ई० तक बङ्गाल से लेकर पूर्वी मालव तक गुप्त-साम्राज्य फैला हुआ था। परिव्राजक महाराज संक्षोभ के सन् ५१८ ई० के गुप्त-साम्राज्य[4] की प्रभुता के काल में लिखे गये बेतुल-प्लेट से ज्ञात होता है कि डभाला, जिसके अन्तर्गत त्रिपुरी विषय (जबलपुर-क्षेत्र)[5] भी था, तक उसकी सत्ता स्वीकार की जाती थी। बघेलखण्ड में खोह-ग्राम के निकट की घाटी में सन् ५२८ ई० का संक्षोभ का एक दूसरा अभिलेख मिला है। उससे ज्ञात हुआ है कि सन् ५२८ ई०[6] में भी गुप्त-साम्राज्य

---

[1] Smith, *The Oxford History of India,* additions and corrections, p. 171, end.

[2] पतन के सम्भावित कारणों के लिए देखिये—*Calcutta Review*, April, 1930, p. 36 ff; also *post*. 626 ff.

[3] *A. S. I. Report*, 1914-15; *Hindusthan Review*, Jan., 1918; *JBORS*, IV, 344 f.

[4] "श्रीमति प्रवर्धमान विजय-राज्ये संवत्सर शते नव-नवत्युत्तरे गुप्त-नृप-राज्य भुक्तौ।" अर्थात्, 'एक शताब्दी तथा ९९ वर्षों तक गुप्त-साम्राज्य एक प्रभुता-सम्पन्न, वैभवशाली एवं समृद्धशाली राज्य था।'

[5] *Ep. Ind.*, VIII pp. 284-87—डभाला = बाद का डाहल।

[6] Fleet, *CII*, III, pp. 113-16; Hoernle in *JASB*, 1889, p. 95.

में मध्य प्रान्त के कुछ ज़िले सम्मिलित थे। १५ वर्ष के उपरांत पुंड्रवर्धन भुक्ति (सामान्यतः उत्तरी बङ्गाल) के कोटि-वर्ष विषय (ज़िला दीनाजपुर) में **'परमदैवत परम-भट्टारक महाराजाधिराज श्री····गुप्त'**[1] के शासन-काल में जो ग्राम दान में दिया गया था, उससे स्पष्ट हो जाता है कि गुप्त-साम्राज्य में पूर्वी तथा मध्य प्रान्त उस समय भी सम्मिलित थे। छठी शताब्दी के अन्त में एक गुप्त-वंश का राजा, जो श्रीकण्ठ (थानेश्वर) के पुष्यभूति-वंश[2] के प्रभाकरवर्धन का समकालीन था, मालव[3] पर शासन करता था। इस राजा के दो पुत्रों—कुमारगुप्त तथा माधवगुप्त—को राजकुमार राज्यवर्धन तथा थानेश्वर के हर्ष की सेवा में रहना पड़ा था। आदित्यसेन के अपशद-

---

१. *Ep. Ind.*,. XV, 113 ff. Corrected in *Ep. Ind.*, XVII (Jan., 1924), p. 193.

२. 'पुष्पभूति' न होकर 'पुष्यभूति' ही ठीक एवं सही प्रतीत होता है (*Ep. Ind.*, I. 68)।

३. पाँचवीं शताब्दी में ही मालव पर गुप्त-वंश का अधिकार हो गया था-इस बात की पुष्टि चन्द्रगुप्त-द्वितीय के उदयगिरि-अभिलेख तथा घटोत्कचगुप्त के तुमैन' अभिलेख से होती है। छठी शताब्दी के अन्त तथा सातवीं शताब्दी के प्रारम्भ में यहाँ गुप्त-राजाओं का सीधा शासन था। परन्तु, यह ज्ञात नहीं है कि इस शासक का गुप्त-महाराजाओं से क्या सम्बन्ध था। मगध पर, सम्भवतः, कुमारामात्य महाराज नंदन जैसे स्थानीय शासकों (सन् ५५१-५५२ ई०, गया ज़िले के अमौना-प्लेट वाले; *Ep. Ind.*, X, 49) तथा वर्मनों (नागार्जुनि पर्वत-गुफालेख, *CII*, 226; ह्वेनसांग द्वारा वर्णित पूर्णवर्मन तथा *IA*, X, 110 के देववर्मन) का राज्य था। विशद विवरण के लिए देखिये रायचौधरी, *JBORS*, XV, parts iii, iv (1929, p. 651 f)। अंतिम गुप्त-राजाओं के राज्य-काल में मालव की सीमा एवं क्षेत्र-विस्तार के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। विक्रमादित्य-षष्ठम के करदाता दण्डनायक अनन्तपाल ने हिमालय तक फैले 'सप्त' मालव-प्रदेशों को अपने राज्य में मिला लिया था (*Ep. Ind.*, V, 229)। इससे अनुमान होता है कि अधिक से अधिक सात मालव नामधारी प्रदेश तो थे ही (देखिये Rice, *Mysore and Coorg*, 46)। इन सातों की स्थिति सम्भवतः इस प्रकार थी—(१) पश्चिमी घाट का मालव-प्रदेश (*Kanarese Districts*, p. 569); (२) मही-तट पर (वलभी-अभिलेख में उल्लिखित मालव-आहार) मो-ला-पो, जिसके शासक मैत्रक थे; (३) अवन्ती, जिसके शासक कटच्चुरि या कलचुरि थे (अभोना-प्लेट, छठी शताब्दी) तथा चीनी यात्री ह्वेनसांग के समय का एक ब्राह्मण-वंश था; (४) पूर्व मालव (भिलसा के पास); (५) उत्तर प्रदेश के प्रयाग, कौशाम्बी तथा फ़तेहपुर ज़िले के आसपास के प्रदेश (Smith, *EHI*, 4th ed., p. 350n; *IHQ*, 1931, 150 f; *cf*. *JRAS*, 1903, 561); (६) पूर्वी राजस्थान का कुछ भाग; तथा (७) पंजाब में सतलज ज़िले तथा हिमालय-क्षेत्र का कुछ प्रदेश। अंतिम काल के गुप्त-सम्राटों का शासन नं० ४ तथा ५ मालव तथा समय-समय पर मगध पर था। भागवत पुराण, जिसका रचना-काल गुप्त-वंश के अंतिम

अभिलेख से ज्ञात हुआ है कि माधव-गुप्त (हर्षवर्धन के सहयोगी)[1] के पिता ने कामरूप के शासक शुस्थितवर्मन पर विजय प्राप्त की थी, और उसकी विजय के गीत लोहित्य अथवा ब्रह्मपुत्र नदी के किनारों पर निरन्तर गाये जाते थे। इससे स्पष्ट है कि लगभग ६०० ई० तक (प्रभाकरवर्धन के शासन-काल में) भी गुप्त-वंश की प्रभुता मालव से ब्रह्मपुत्र[2] तक फैली हुई थी।

यह एक निःसंदिग्ध तथ्य है कि छठी शताब्दी तक आते-आते गुप्त-वंश की शक्ति को हूणों ने तथा मन्दसौर एवं मौखरी-वंश के शासकों ने चुनौती देनी शुरू कर दी थी। सातवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में कटच्चुरियों ने विदिशा पर तथा हर्ष ने गंगा की घाटी पर अधिकार कर लिया। परन्तु, कन्नौज के इस महान् शासक की मृत्यु के पश्चात् गुप्त-वंश के माधवगुप्त के पुत्र आदित्यसेन ने, जिसका साम्राज्य समुद्र तक फैला हुआ था, अपने राज्य का विस्तार करना आरम्भ किया। उसने अश्वमेध यज्ञादि करके 'परमभट्टारक' तथा 'महाराजाधिराज' की उपाधि धारण की।

२. पुरुगुप्त एवं नरसिंहगुप्त बालादित्य

इस अध्याय में हम स्कन्दगुप्त के उत्तराधिकारियों का वर्णन करेंगे। ऐसा प्रतीत होता है कि उसकी मृत्यु के उपरान्त उसका भाई पुरुगुप्त सिंहासनारूढ़ हुआ। सन् १८८९ ई० तक, जब कुमारगुप्त-द्वितीय की भिटारी-सील का पता चला तथा

सम्राटों के समय के ही आसपास है, मालव को अर्बुद (आबू) से जोड़ता है और अवन्ती से भिन्न बताता है। राजशेखर-रचित 'विद्धशाल भंजिका' (Act VI, p. 121, जीवानन्द विद्यासागर का संस्करण) में भी मालव तथा अवन्ती के शासकों को अलग-अलग बताया गया है। सातवीं शताब्दी के प्रारम्भ में गुप्त-सम्राटों के हाथ से कटच्चुरि-राजा ने पूर्वी मालव ले लिया था। सन् ६०८ ई० के लगभग विदिशा (बेसनगर) की एक प्लेट से ज्ञात होता है कि एक 'कटच्चुरि' राजा शंकरगण ने इलाहाबाद-प्रशस्ति में आई हुई सम्राट् समुद्रगुप्त की उपाधियों के अनुकरण में कई उपाधियाँ ग्रहण की थीं। इन कटच्चुरियों का दमन दक्षिण गुजरात और बदामी के चालुक्यों ने किया था। फ़्लीट (*CII*, 14) का मत है कि समुद्रगुप्त की तीन उपाधियों को चालुक्य-शासक विजयराज ने कैरा-दानपत्र (३९४) में अपनाया था (*IA*, VII, 248)। अन्तिम गुप्त-वंश के राजा आदित्यसेन (जो सातवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में राज्य करता था) को एक नेपाली-अभिलेख में कदाचित् मगध-सम्राट् कहा गया है। इस काल में पूर्वी मालव के स्थान पर मगध गुप्त-काल का मुख्य केन्द्र बन गया था।

[1] *Cf.* Hoernle, *JRAS*, 1903, 561.

[2] बाण की कादम्बरी के १०वें श्लोक में अंतिम गुप्त-राजाओं के सम्बन्ध में कुछ सूचनायें मिलती हैं, क्योंकि उसमें कहा गया है कि कवि के पितामह कुबेर के कमल-पद की वंदना अनेक गुप्त सम्राटों ने की थी—

बभूव वात्स्यायन वंश सम्भवो द्विजो जगद्गीतगुणोऽग्रणीः सताम्।
अनेक गुप्तार्चित पादपंकजः कुबेर नामांश इव स्वयंभुवः॥

उत्तर गुप्त राजाओं के काल में भारत

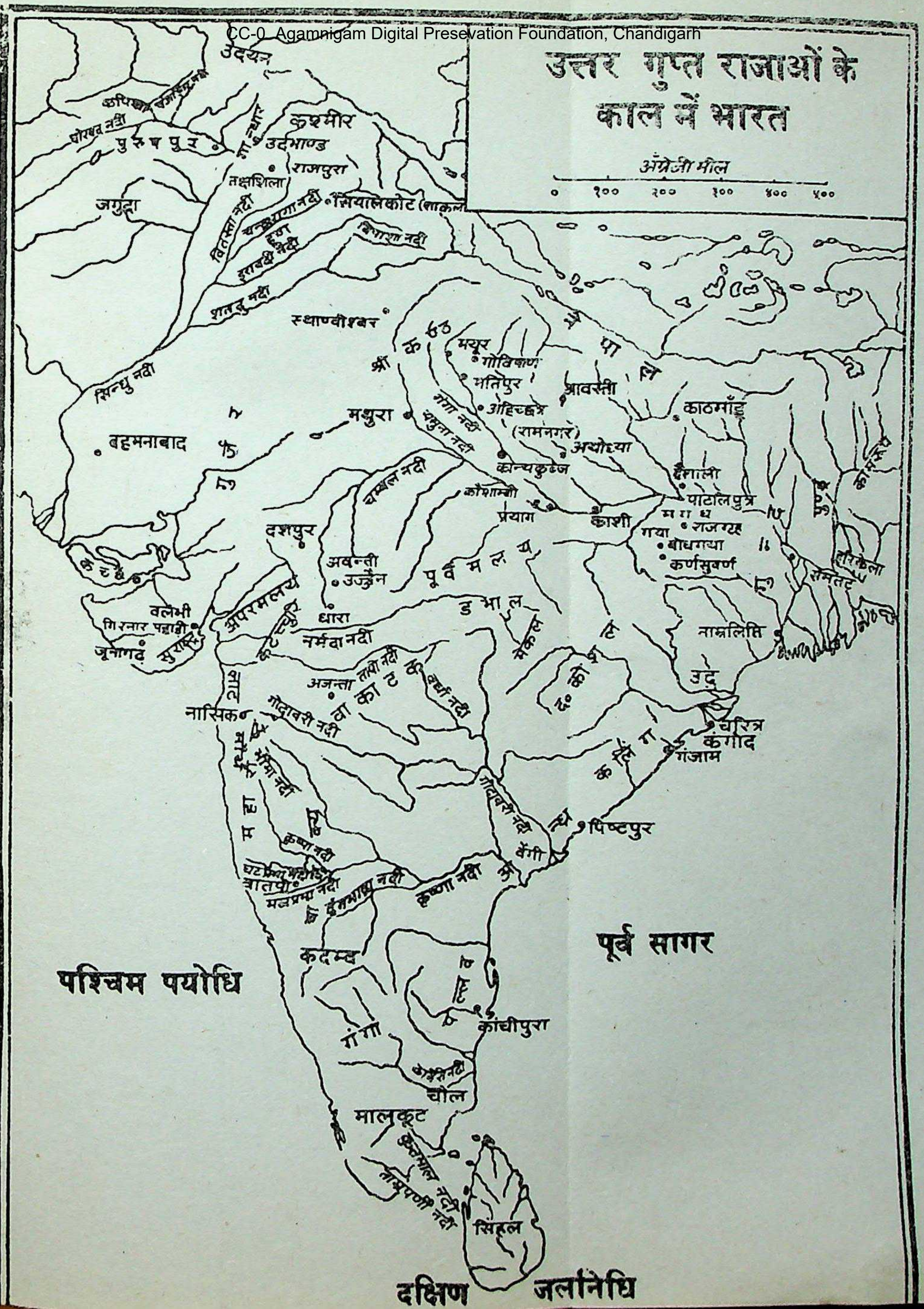
अंग्रेज़ी मील
० १०० २०० ३०० ४०० ५००
उदयन
कपिशा
पौरव नदी
पुरुषपुर
गान्धार
कश्मीर
उदभाण्ड
राजपुरा
तक्षशिला
जगुड़ा
वितस्ता नदी
चन्द्रभागा नदी
सियालकोट (शाकल)
इरावती नदी
विपाशा नदी
शतद्रु नदी
स्थाण्वीश्वर
सिन्धु नदी
श्रीकण्ठ
मयूर
गोविषाण
मतिपुर
श्रावस्ती
नेपाल
गंगा नदी
यमुना नदी
मथुरा
अहिच्छत्र
(रामनगर)
अयोध्या
काठमाँडू
बहमनाबाद
कान्यकुब्ज
वैशाली
पाटलिपुत्र
कामरूप
चम्बल नदी
कौशाम्बी
प्रयाग
काशी
मगध
गया
राजगृह
बोधगया
कर्णसुवर्ण
हरिकेल
समतट
दशपुर
अवन्ती
उज्जैन
पूर्व मलय
कच्छ
वलभी
गिरनार पहाड़ी
जूनागढ़
सुराष्ट्र
अपरमलय
धारा
नर्मदा नदी
डभाल
मेकल
ताम्रलिप्ति
उड्र
अजन्ता
तापी नदी
वाकाटक
वर्धा नदी
दक्षिण कोसल
नासिक
गोदावरी नदी
भीमा नदी
महाराष्ट्र
चरित्र
कंगोद
गंजाम
कलिंग
गोदावरी नदी
आन्ध्र
पिष्टपुर
वेंगी
कृष्णा नदी
घटप्रभा नदी
वातापी
मलप्रभा नदी
तुंगभद्रा नदी
कृष्णा नदी
पूर्व सागर
कदम्ब
पश्चिम पयोधि
पल्लव
कांचीपुरा
गंगा
कावेरी नदी
चोल
मालकूट
कृतमाल नदी
ताम्रपर्णी नदी
सिंहल
दक्षिण जलनिधि

स्मिथ एवं हार्नले[1] ने उसे प्रकाशित किया, राजा पुरुगुप्त के बारे में हमें कुछ भी पता नहीं था। इस सील से ज्ञात होता है कि पुरुगुप्त कुमारगुप्त-प्रथम तथा रानी अनन्त-देवी के पुत्र थे। परन्तु, इसमें स्कन्दगुप्त का कोई उल्लेख नहीं है, यद्यपि यह सत्य है कि कुमारगुप्त के ठीक बाद पुरुगुप्त का उल्लेख मिलता है, तथा उसके साथ **'तत्-पाद-अनुध्यात'** भी लिखा है। फिर भी यह आवश्यक नहीं कि वह अपने पिता के तुरन्त पश्चात् गद्दी पर बैठा हो तथा अपने भाई अथवा सौतेले भाई स्कन्दगुप्त[2] का सम-कालीन और प्रतिद्वन्द्वी रहा हो। मनहाली-दानपत्र में मदनपाल को **'श्री रामपाल-देव-पाद्-अनुध्यात'** कहा गया है, जबकि उससे पूर्व उसके बड़े भाई कुमारपाल ने शासन किया था। कीलहार्न के उत्तरी अभिलेख, संख्या ३९ में विजयपाल को क्षितिपाल का उत्तराधिकारी कहा गया है, जबकि उसके पूर्व उसके भाई देवपाल ने भी राज्य किया था।[3] स्मिथ तथा एलन ने यह सिद्ध किया है कि स्कन्दगुप्त का राज्य समूचे साम्राज्य पर था तथा पूर्वी तथा मध्य प्रान्तों के अतिरिक्त पश्चिमी प्रान्त के अनेक ज़िले भी उसके साम्राज्य के अन्तर्गत थे। हो सकता है कि सुदूर पश्चिम में उसने अपने साम्राज्य के कुछ भाग खो दिये हों। परन्तु, मुद्राओं से स्पष्ट है कि स्कन्दगुप्त एवं बुधगुप्त को छोड़कर कुमारगुप्त के अन्य किसी भी उत्तराधिकारी की सत्ता पश्चिमी भारत पर नहीं थी। अतः, मुद्राओं एवं लेखों से यह पूर्णतया प्रमाणित हो गया है कि स्कन्दगुप्त के शासन-काल में उत्तरी भारत में (बङ्गाल एवं बिहार को मिलाकर) उसका विरोधी कोई भी महाराजाधिराज नहीं था। सन् ४६७ ई०[4] में

---

[1] *JASB*, 1889, p. 84-105.

[2] स्कन्द के भाई के पौत्र ने भिटारी-सील में स्कन्द का उल्लेख नहीं किया है। परन्तु, इसका अर्थ यह नहीं कि उसमें तथा पुरुगुप्त के वंश के बीच शत्रुता थी (आर० डी० बनर्जी, *Annals of the Bhand. Ins.*, 1918-19, pp. 74-75)। पुलकेशिन-द्वितीय का नाम भी उसके भाई और युवराज विष्णुवर्द्धन के लेख में नहीं मिलता (सतारा ग्राण्ट, *Ind. Ant.*, 1890, pp. 227 f)। प्रतिहार-वंश के महाराज भोज-द्वितीय का नाम उसके भतीजे महेन्द्रपाल-द्वितीय के प्रतापगढ़-अभिलेख में नहीं है। परन्तु, महेन्द्रपाल के पिता एवं उसके भाई विनायकपाल के लेख में उसका उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त, ऐसा कोई नियम नहीं था जिसके अनुसार प्रतिद्वन्द्वी चाचा या भाई का नाम देना वर्जित हो। अपने प्रतिद्वन्द्वियों एवं वंशजों के अभिलेखों में मंगलेश तथा गोविन्द-द्वितीय का नाम मिलता है, जबकि इसके विपरीत कभी-कभी राज्य करने वाले राजा के पूर्वज का नाम नहीं भी दिया जाता था। उदाहरण के लिए, धरपट्ट के नाम का उल्लेख उसके पुत्र के अभिलेख में ही नहीं मिलता (Kielhorn, *N. Ins.*, No. 464)।

[3] Kielhorn, *Ins.*, No. 31.

[4] जब कभी लम्बी अवधि के पश्चात् कोई युवराज अपने पिता के पश्चात् सिंहासन पर बैठता है तो वह साधारणतया काफ़ी परिपक्व आयु का होता है। स्कन्दगुप्त के सम्बन्ध में हम जानते हैं कि सन् ४५५ ई० में ही वह इतना परिपक्व था कि अपने वंश और राज्य के सारे शत्रुओं के विरुद्ध संघर्ष करने में समर्थ था (*Cf.* 566 n. 3 *ante*)।

मृत्यु के समय वह परिपक्व अवस्था का था। उस समय तक उसके भाई एवं उत्तराधिकारी पुरुगुप्त भी वृद्ध हो चुके होंगे। अतः इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि उनका शासन-काल अत्यन्त अल्प था, तथा उनकी मृत्यु उनके पौत्र कुमारगुप्त-द्वितीय के शासन-काल, अर्थात् ४७३ ई० के पूर्व हुई थी। विभिन्न विद्वानों ने उसकी पत्नी का नाम श्री वत्सदेवी, वैन्यदेवी अथवा श्री चन्द्रदेवी[1] बताया है। वे नरसिंहगुप्त बालादित्य की माता थीं।

पुरुगुप्त की मुद्रायें भारी धनुषधारी छाप की हैं। स्पष्ट है कि वे उसके पूर्वजों[2] के साम्राज्य के समान ही पूर्वी प्रान्तों की हैं। कुछ मुद्राओं की दूसरी ओर 'श्रीविक्रमः'[3] लिखा है जो सम्भवतः विक्रमादित्य की पूर्ण उपाधि है। एलन का मत है कि वे बालादित्य के पिता अयोध्या के राजा विक्रमादित्य थे, जो वसुबन्धु के प्रभाव में आकर बौद्धधर्म के अनुयायी बन गये थे। यह बात अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इससे यह सिद्ध होता है कि स्कन्दगुप्त के उत्तराधिकारियों की राजधानी सम्भवतः, मौखरियों की शक्ति के उदय के पूर्व, अयोध्या थी। यदि गया-लेख को विश्वसनीय मान लिया जाये तो निश्चय ही समुद्रगुप्त के समय में ही अयोध्या गुप्त-वंश के राजाओं का 'जय-स्कन्धावार' था। ऐसा प्रतीत होता है कि बालादित्य तथा उसके उत्तराधिकारियों की मुख्य राजधानी काशी[4] थी।

एलन के द्वारा जो परिचय दिया गया है, उससे यह भी स्पष्ट है कि पुरुगुप्त सन् ४७२ ई० के पश्चात् अधिक दिनों तक नहीं रहा, क्योंकि उसी काल के भारतीय राजाओं के चीनी इतिहास में तत्कालीन राजा को 'ब-सु-बं-द'[5] कहा गया है।

भरसार-संग्रहालय में पाई गयी मुद्राओं से ज्ञात होता है कि स्कन्दगुप्त के पश्चात् कुछ काल के लिए प्रकाशादित्य शासक हुए। सम्भवतः 'प्रकाशादित्य' पुरुगुप्त की 'बिरुद' या द्वितीय उपाधि थी, अथवा उसके तुरन्त बाद ही सिंहासनारूढ़ होने वाले किसी अन्य उत्तराधिकारी की। यदि हम एलन के मत से सहमत भी हो जायें और यह स्वीकार भी कर लें कि पुरुगुप्त की उपाधि 'विक्रमादित्य' थी तो भी यह असम्भव नहीं कि उसने 'आदित्य' की उपाधि भी धारण की हो। एक ही

---

[1] *Ep. Ind.*, XXI, 77; *ASI*, *AR.*, 1934-35, 63.

[2] Allan, p. lxxx, xcviii.

[3] श्री एस० के० सरस्वती कहते हैं कि ये मुद्रायें बुधगुप्त की थीं (*Indian Culture*, I, 692)। प्रो० जगन्नाथ इस मत मे सहमत नहीं हैं (*Summaries of papers submitted to the* 13*th All India Oriental Conference*, Nagpur, 1946, Sec. IX, p, 11)। प्रो० जगन्नाथ के अनुसार, वह शब्द 'बुध' न होकर 'पुरु' है। 'विक्रमादित्य' उपाधि के सम्बन्ध में देखिये—Allan, p. cxxii. डॉ० आर० सी० मजूमदार (*ASB*, 4-4-49) श्री सरस्वती के मत से सहमत हैं।

[4] *CII* 285.

[5] *JRAS*, 1905, 40. यह बात उस सील से प्रमाणित हो जाती है, जिसमें पुरु को बुध का पिता बताया गया है (476-95)।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

राजा दो 'आदित्य' की उपाधि धारण करते थे, यह स्कन्दगुप्त (विक्रमादित्य और क्रमादित्य) तथा वलभी के राजा (शीलादित्य-धर्मादित्य) की दुहरी उपाधियों से भी सिद्ध हो जाता है। परन्तु, प्रकाशादित्य कौन था, इस विषय में अभी निश्चयपूर्वक कुछ भी नहीं कहा जा सकता। उसकी मुद्राओं में अश्वारोही एवं सिंहवधिक-छाप मुद्राओं का समन्वय मिलता है। गुप्त-साम्राज्य[१] के दक्षिणी प्रान्तों में अश्वारोही तथा उत्तरी प्रान्तों में सिंहवधिक-छाप की मुद्रायें मिली हैं।[२]

सम्राट् पुरुगुप्त के पश्चात् उसका पुत्र नरसिंहगुप्त बालादित्य सिंहासन पर बैठा। बालादित्य के बारे में कहा गया है कि यह वही राजा है जिसके सम्बन्ध में ह्वेनसांग ने लिखा था कि उसकी सेनाओं ने अत्याचारी मिहिरकुल को बन्दी बना रखा था। इस सम्बन्ध में हम यह भूल जाते हैं कि ह्वेनसांग ने जिस बालादित्य का उल्लेख किया है, वह बुधगुप्त[३] के पश्चात् राजा होने वाले तथागतगुप्त[४] का उत्तराधिकारी था, जबकि नरसिंहगुप्त बालादित्य पुरुगुप्त का पुत्र एवं उत्तराधिकारी था जो पुरुगुप्त स्वयं कुमारगुप्त-प्रथम का पुत्र और स्कन्दगुप्त का उत्तराधिकारी था। ह्वेनसांग के अनुसार, बालादित्य के पुत्र एवं उत्तराधिकारी का नाम वज्र[५] था, जबकि नरसिंहगुप्त के उत्तराधिकारी का नाम कुमारगुप्त-द्वितीय था। यह बात सिद्ध हो गई है कि मिहिरकुल को पराजित करने वाला, पुरुगुप्त का पुत्र न होकर कोई अन्य ही व्यक्ति था।[६] मध्यदेश के पूर्वी भाग में ऐसे अनेक राजाओं का उल्लेख मिलता है जिन्होंने 'बिरुद' बालादित्य की उपाधि धारण की थी। यह बात प्रकटादित्य[७] के सारनाथ-अभिलेख से प्रमाणित हो जाती है। सन् ४७३ ई० में या इसके

---

[१] Allan, p. lxxxvi.

[२] *Ibid.*, xci.

[३] बील, फ्लीट तथा वाटर्स ने 'फ़ो-तो-किओ-तो' का अर्थ बुद्धगुप्त बताया है, जो गुप्त-वंश में नहीं मिलता। परन्तु, उसके उत्तराधिकारी बालादित्य द्वारा मिहिरकुल को बन्दी बनाये जाने के उल्लेख से सिद्ध होता है कि इसका अर्थ 'बुधगुप्त' ही है। नामों के अपभ्रंश के अल्प उदाहरण भी मिलते हैं जैसे आंध्रवंश की अनेक पौराणिक सूचियों में 'स्कन्द' का 'स्कन्ध' हो गया है।

[४] *Life of Hiuen Tsang*, 111; *Si-yu-ki*, p. II, 168.

[५] *Yuan Chwang*, II, p. 165.

[६] डॉ० भट्टसालि तथा बसाक ह्वेनसांग के मत से सहमत हैं, परन्तु वे *Life of Hiuen Tsang* (p. 111) के प्रमाण को कोई विशेष महत्त्व नहीं देते। आगे चल कर हम देखेंगे कि इसकी पुष्टि प्रकटादित्य के सारनाथ-अभिलेख तथा 'आर्य-मंजुश्री-मूलकल्प' से भी होती है। इन प्रमाणों से सिद्ध होता है कि ह्वेनसांग द्वारा वर्णित बालादित्य (प्रकटादित्य एवं वज्र के पिता) भानुगुप्त थे।

[७] *CII*, p. 285. यशोवर्मन के नालन्दा-पाषाण-अभिलेख में भी एक बालादित्य का उल्लेख मिलता है (*Ep. Ind.*, 1929, Jan., 38) तथा एक सील में लिखा है कि **'श्री नालंदायाम् श्री बालादित्य गन्धकुडी'** (*MASI*, 66, 38)।

आसपास ही नरसिंहगुप्त की मृत्यु अवश्य हो गयी थी। उसके पश्चात् उसकी रानी मित्रदेवी[१] से उत्पन्न कुमारगुप्त-द्वितीय क्रमादित्य उत्तराधिकारी हुआ।

नरसिंहगुप्त एवं उसके उत्तराधिकारियों की दो प्रकार की धनुषधारी छाप मुद्रायें थीं। एलन के अनुसार, इनमें से एक प्रकार की मुद्रायें गंगा की निचली (दक्षिणी) घाटी में, तथा दूसरे प्रकार की मुद्रायें गंगा की ऊपरी (उत्तरी) घाटी में प्रचलित थीं। 'आर्य-मंजुश्री-मूलकल्प'[२] के अनुसार, यह निर्विवाद सत्य है कि पूर्वी भारत भी बालादित्य (बालाख्य) तथा कुमार (द्वितीय) के साम्राज्य का अंग था।

३. कुमारगुप्त-द्वितीय तथा विष्णुगुप्त

नरसिंहगुप्त के पुत्र तथा भिटारी-सील के कुमारगुप्त-द्वितीय को धनुर्धारी-छाप की कुछ मुद्राओं का क्रमादित्य माना गया है। इन मुद्राओं में और नरसिंह बालादित्य की इसी प्रकार की मुद्राओं में घनिष्ठ सम्बन्ध है। सन् ४७३-७४ ई०[३] के सारनाथ-बुद्ध-प्रतिमा-अभिलेख में वर्णित कुमारगुप्त को भी कुमारगुप्त-द्वितीय बताया जाता है। डॉ० भट्टसालि, डॉ० बसाक तथा कुछ अन्य विद्वानों का मत है कि भिटारी-सील तथा सारनाथ के अभिलेख के कुमारगुप्त दो भिन्न-भिन्न व्यक्ति हैं। डॉ० भट्टसालि का मत है कि नरसिंहगुप्त के पुत्र कुमार सन् ५००[४] के बहुत बाद हुए थे। परन्तु, उनका यह मत इस भ्रम पर आधारित है कि यह नरसिंहगुप्त वही हैं जिन्होंने मिहिरकुल को पराजित करके बन्दी बनाया था। डॉ० बसाक के अनुसार, सारनाथ के कुमार, स्कन्द के तात्कालिक उत्तराधिकारी थे। उनके विचार में दो प्रतिद्वन्द्वी गुप्त-वंश एक ही समय में शासन कर रहे थे। इनमें से एक वंश में स्कन्द, सारनाथ के कुमार तथा बुध थे, जबकि दूसरे में पुरु, नरसिंह तथा भिटारी-सील के नरसिंह के पुत्र कुमार थे। परन्तु पाँचवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में गुप्त-वंश के विभाजन का कोई उल्लेख अथवा संकेत हमें कहीं भी नहीं मिलता। इसके विपरीत, मुद्राओं एवं अभिलेखों से यही ज्ञात होता है कि स्कन्द एवं बुध दोनों ने ही बङ्गाल से लेकर पश्चिम

---

[१] *Ep. Ind.*, xxi, 77 (नालंदा की मिट्टी की सील तथा *ASI*, *AR*, 1934-35, 63) में कहा गया है कि कुमारगुप्त की माता का नाम श्रीमती देवी अथवा लक्ष्मी देवी न होकर मित्रदेवी था।

[२] गणपति शास्त्री का संस्करण, p. 630; *Cf.* Jayaswal, *Imperial History*, 35—

बालाख्य नामसौ नृपतिर्भविता पूर्वदेशकः
तस्यापरेण नृपतिः गौडानां प्रभविष्णवः
कुमाराख्यो नामतः प्रोक्तः सोऽपिर् अत्यन्त धर्मवान्।

[३] देखिये *ASI*, *AR*, 1914-15, 124; *Hindusthan Review*, Jan., 1918. *Ann. Bhand. Inst.*, 1918-19, 67ff and *JBORS*, iv, 344, 412 में वेनिस, पाठक, पाण्डेय, पन्नालाल तथा दूसरों के विचार देखिये।

[४] *Dacca Review*, May and June, 1920, pp. 54-57.

तक के विस्तृत साम्राज्य पर शासन किया। हमने अभी देखा है कि 'आर्य-मंजुश्री-मूलकल्प' के अनुसार, 'बालाख्या' अर्थात् बालादित्य एवं उसके उत्तराधिकारी कुमार का शासन 'पूर्व-देश' (पूर्वी भारत), जिसमें गौड़ प्रान्त[1] (पश्चिमी और उत्तरी बंगाल का कुछ भाग) भी था, तक फैला था। यदि हम तथाकथित प्रतिद्वन्द्वी सम्राटों स्कन्दगुप्त तथा बुधगुप्त[2] को समकालीन शासक मानते हैं तो फिर गुप्त-वंश के इन राजाओं की सत्ता को हम किस प्रकार सही ठहरा सकेंगे ? अतः, हमारे समक्ष ऐसा कोई प्रमाण नहीं है जिसके आधार पर हम, भिटारी-सील तथा सारनाथ-अभिलेख के कुमार के एक ही व्यक्ति होने के विषय में संदेह करें।

बुधगुप्त के शासन-काल की पहली ज्ञात तिथि सन् ४७६-७७ ई० है।[3] अतः कुमारगुप्त-द्वितीय का शासन इस तिथि से पूर्व अवश्य समाप्त हो गया होगा।

---

[1] जी० शास्त्री द्वारा सम्पादित 'आर्य-मंजुश्री-मूलकल्प', pp. 630 f.

[2] बुधगुप्त की सील (*MASB*, No. 66, p. 64) से सिद्ध होता है कि विरोधी होना तो दूर रहा, उलटे वास्तव में बुध पुरुगुप्त का पुत्र था। डॉ० भट्टसालि ने जो अंतिम तिथि पुरुगुप्त के लिए दी थी, वह भी इस सील द्वारा गलत सिद्ध हो जाती है।

[3] 'आर्य-मंजुश्री-मूलकल्प' के लेखक के अनुसार, बालादित्य के पुत्र कुमार-द्वितीय के उत्तराधिकारियों में से एक ने 'उकाराख्य' की उपाधि धारण की थी। हो सकता है कि जैसा जायसवाल जी का कथन है, यह उपाधि प्रकाशादित्य के लिए रही हो, क्योंकि उनकी मुद्राओं में एलन को 'रु' अथवा 'उ' शब्द मिले हैं। परन्तु 'उ' शब्द बुधगुप्त के लिए आया है (*An Imperial History of India*, 38), यह मत सही प्रतीत नहीं होता। 'आर्य-मंजुश्री-मूलकल्प में इसके समाधान के लिए उपगुप्त, उपेन्द्र का भी उल्लेख मिलता है। यद्यपि ऐसा कोई लेख अथवा कोई मुद्रा नहीं है जिसके आधार पर उसके शासन-काल को सिद्ध किया जा सके, फिर भी उपगुप्त नाम के राजा का होना कुछ अस्वाभाविक नहीं है, क्योंकि मौखरी-रिकार्डों में ईशानवर्मन की माता उपगुप्ता का उल्लेख मिलता है (असीरगढ़-सील, फ़्लीट, *CII*, p. 220 तथा नालन्दा-सील, *Ep. Ind.*, xix, p. 74)। देखिए भानुगुप्त और भानुगुप्ता, हर्षगुप्त और हर्षगुप्ता, महासेनगुप्त और महासेनगुप्ता। इस तरह के साम्य के आधार पर यह कहा जा सकता है कि ईशानवर्मन की माता उपगुप्ता का कोई भाई उपगुप्त रहा हो। अगर इस कल्पना को सही मान लें तो उपगुप्त का समय भी ईशानवर्मन की माता उपगुप्ता (छठी शताब्दी का पूर्वार्द्ध : बुधगुप्त के कुछ बाद) का समय ही होगा। यदि 'उ' से उपेन्द्र (विष्णु अथवा कृष्ण) का बोध होता है तो इसका संकेत विष्णुगुप्त अथवा कृष्णगुप्त की ओर उसी प्रकार हो सकता है, जैसे सोमाख्य से गौड़ राजा शशांक का। नालन्दा में प्राप्त एक टूटी सील में कुमारगुप्त के पुत्र महाराजाधिराज श्री विष्णुगुप्त का भी उल्लेख मिलता है (*Ep. Ind.*, xxvi, 235; *IHQ*, XIX, 19)। उपलब्ध साधनों के आधार पर यह कहना असम्भव है कि वह अपने पिता की मृत्यु के उपरान्त अथवा अपने चाचा बुधगुप्त की मृत्यु के बाद राजा बना था। जो विद्वान् यह कहते हैं कि वह और उसके पिता बुधगुप्त के पश्चात् हुए

पुरु, नरसिंह तथा कुमार-द्वितीय के शासन की अवधि अत्यन्त अल्प थी । कदाचित तीनों के राज्य-काल की अवधि १० वर्ष (सन् ४६७ से ४७७ ई०) थी । यह कोई आश्चर्यजनक बात नहीं है । वेंगी में तीन पूर्वी चालुक्य-राजा—विजयादित्य-चतुर्थ, उसका पुत्र अम्मराज-प्रथम, अम्मराज के पुत्र तथा एक अन्य विजयादित्य ने मिलकर कुल ७ वर्ष ६½ मास[1] तक ही राज्य किया । कश्मीर में छः राजाओं—सूरवर्मन-प्रथम, पार्थ, शम्भुवर्मन, चक्रवर्मन, उन्मत्तावन्ती तथा सूरवर्मन-द्वितीय—ने छः वर्षों (सन् ९३३-३९ ई०) से कम समय तक राज्य किया और राजाओं की तीन पीढ़ियों, जैसे यशस्कर, उनके चाचा वर्णट और उनके पुत्र संग्रामदेव ने कुल दस वर्षों (सन् ९३९-४९ ई०) तक ही शासन किया । नालन्दा में प्राप्त एक टूटी सील से पता चलता है कि कुमार के पुत्र का नाम विष्णुगुप्त (सम्भवतः मुद्राओं का चन्द्रादित्य) था ।

४. बुधगुप्त

बुधगुप्त जिसे अब पुरुगुप्त का पुत्र[2] स्वीकार किया जा चुका है, के शासन-काल के अनेक लेख एवं मुद्राएँ प्राप्त की जा चुकी हैं जिन पर तिथियाँ अंकित हैं । ये तिथियाँ इस बात को सिद्ध करती हैं कि उसने लगभग २० वर्षों (सन् ४७७ ई० से ४९५ ई०) तक राज्य किया था ।

दीनाजपुर ज़िले के दामोदरपुर ग्राम में दो ताम्रलेख मिले हैं, जिनसे प्रमाणित होता है कि बुधगुप्त के राज्य में पुण्ड्रवर्धन भुक्ति (साधारणतया उत्तरी बङ्गाल) भी था, तथा यहाँ पर उसके प्रतिनिधि (उपरिक महाराज) ब्रह्मदत्त एवं जयदत्त शासन करते थे ।[3] सन् ४७६-७७ ई० के सारनाथ-अभिलेख एवं सन् ४७९ ई० के बनारस-अभिलेख[4] से सिद्ध होता है कि काशी उसी के राज्य में था। सन् ४८४-८५ ई० में जबकि भूपति (राजा) बुधगुप्त सिंहासनासीन थे तथा कालिन्दी (यमुना) एवं नर्मदा के मध्यवर्ती क्षेत्र पर महाराज सुरश्मिचन्द्र का राज्य था, एरण के शासक

थे, उन्हें भिटारी तथा नालन्दा सीलों के कुमारगुप्त को सारनाथ के राजकुमार से भिन्न करना पड़ेगा । यद्यपि यह कुछ असम्भव नहीं है, फिर भी हमें उस समय तक प्रतीक्षा करनी ही पड़ेगी जब तक कि इस दिशा में अनुसंधान नहीं हो जाता ।

[1] Hultzsch, *SII*, Vol. I, p. 46.

[2] बुधगुप्त की सील (*MASB*, No. 66, p. 64) ।

[3] सन् ४७८-७९ ई० (*Mod. Rev.*, 1931, 150; प्रवासी, 1338-671; *Ep. Ind.*, XX, 59 ff.) के पहाड़पुर (प्राचीन सोमपुर ज़िला राजशाही) का लेख इसी गुप्त-राजा के समय का था । साथ ही मुंगेर ज़िले के नन्दपुर ग्राम में प्राप्त सन् ४८८-८९ का ताम्रपत्र भी इसी के राज्य-काल का था (*Ep. Ind.*, xxiii, 52) ; पौराणिक साहित्य में बुधगुप्त के सम्बन्ध में देखिये—*Pro. of the Seventh Or Conf.*, 576.

[4] *JRASB*, 1949, 5 ff.

महाराज मातृविष्णु तथा उनके भाई धन्यविष्णु द्वारा जनार्दन, अर्थात् विष्णु के सम्मान में ध्वज-स्तम्भ की स्थापना इस बात की ओर संकेत करती है कि बुधगुप्त के साम्राज्य में मध्य भारत के कुछ भागों के साथ-ही-साथ काशी तथा उत्तरी बंगाल भी सम्मिलित थे ।

इस राजा की मुद्राओं पर सन् ४९५ ई० अंकित है । ये उसी प्रकार की मोर-छाप रजत-मुद्राएँ थीं जिनका प्रचलन बुधगुप्त के पूर्ववर्ती गुप्त सम्राटों के शासन-काल में था । एलन का मत है कि ये मुद्राएँ साम्राज्य के मध्यवर्ती भाग के लिए बनवाई गई थीं ।[१] इन मुद्राओं पर अंकित लेख में 'पृथ्वी का स्वामी तथा आकाश का विजेता' होने का दावा किया गया है । यही लेख कुमारगुप्त-प्रथम तथा स्कन्दगुप्त की मुद्राओं पर भी अंकित था ।

५. बुधगुप्त के उत्तराधिकारी

'ह्वेनसांग की जीवनी' के अनुसार, बुधगुप्त के पश्चात् तथागतगुप्त और उनके पश्चात् बालादित्य गद्दी पर बैठे ।[२] इस समय मध्य भारत में गुप्त-नरेश की शक्ति एवं प्रभुता को हूण राजा तोरमाण ने चुनौती दी । पिछले अध्यायों में हमने देखा कि ऐरिकिण विषय (पूर्वी मालव में एरण, जो आजकल मध्य प्रदेश के सागर ज़िले में है) में सन् ४८४-८५ ई० में महाराज मातृविष्णु का शासन था । वे वहाँ पर बुधगुप्त के प्रतिनिधि के रूप में शासन करते थे । परन्तु, उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके छोटे भाई धन्यविष्णु, तोरमाण के पक्षधर बन बैठे । जो भी हो, मध्य भारत में हूणों की सफलता चिरस्थायी न हो सकी । हमारे पास इस बात का प्रमाण है कि सन् ५१०-११ ई० में गुप्त-सम्राट् की ओर से एरण में 'गोपराज' नामक एक सेनापति ने युद्ध किया था तथा एरण के दक्षिण-पूर्व में स्थित डभाला का शासक 'हस्तिन' भी गुप्त-सम्राटों की सम्प्रभुता को स्वीकार करते थे । सन् ५१८-१९ ई० में गुप्त-सम्राटों की प्रभुता त्रिपुरी विषय (जबलपुर ज़िले) में भी स्वीकार की जाती थी । ५२८-२९ ई० में डभाला के 'परिव्राजक महाराज' गुप्त-सम्राटों की सत्ता एवं प्रभुता स्वीकार करते थे । आधुनिक मध्य प्रदेश के उत्तरी भाग में परिव्राजक 'हस्तिन' तथा संक्षोभ सम्भवतः गुप्त-साम्राज्य के मेरुदण्ड थे । 'हर्षचरित' के रचयिता बाण के अनुसार, प्रभाकर-वर्धन (६०० ई०) तक पूर्वी मालव पर गुप्त-राजाओं का आधिपत्य कायम था । वैसे इसमें कोई संदेह नहीं कि मध्य भारत से हूणों को सदा के लिए निकाल दिया गया था ।[३] कदाचित् जिस बालादित्य की सेना ने, ह्वेनसांग के अनुसार, मिहिरकुल को बन्दी बनाया था, उसी ने मध्य भारत पर फिर से विजय प्राप्त कर उसे गुप्त-साम्राज्य का अंग बनाया । राजमाता के कहने पर ही बालादित्य ने तोरमाण के पुत्र एवं उत्तराधिकारी

---

[१] देखिये महाभारत, ii, 32, 4; कालिदास, मेघदूत, I, 45.

[२] Beal, *Si-yu-ki*, II, p. 168; the *Life*, p. 111.

[३] मालव-क्षेत्र में हूणों के दीर्घकालीन अस्तित्व के लिए देखिये—*Ep. Ind.*, xxiii, p. 102.

मिहिरकुल को मुक्त किया था। मुक्त होने के बाद मिहिरकुल ने उत्तर में एक छोटा-सा राज्य लेकर ही संतोष कर लिया।[1] इसमें कोई संदेह नहीं कि "इस पृथ्वी पर सबसे शक्तिशाली तथा पार्थ के समान बलशाली भानुगुप्त, जिनकी उपाधि बालादित्य थी, अपने सेनापति गोपराज के साथ एरण गये, जहाँ प्रसिद्ध युद्ध में उन्होंने शत्रुओं को पराजित किया।" इस राजा भानुगुप्त की मृत्यु ५१०-११ ई०[2] में हुई।

मंदसौर के जनेन्द्र[3] यशोधर्मन ने ५३३ ई० के पूर्व ही मिहिरकुल को अंतिम

---

१. Beal, *Si-yu-ki*, I, p. 171.

२. नालन्दा-पाषाण-अभिलेख (*Ep. Ind.*, XX, 43-45) के अनुसार, बालादित्य अत्यन्त शक्तिशाली राजा था जिसने अनेक शत्रुओं को पराजित किया था। सारनाथ-अभिलेख (Fleet, *CII*, 285 f) में जिस बालादित्य का उल्लेख मिलता है, उसकी पत्नी धवला से उत्पन्न उसके पुत्र का नाम प्रकटादित्य था। जी० शास्त्री द्वारा सम्पादित 'आर्य-मंजुश्री-मूलकल्प' (p. 637 ff) के अनुसार पकाराख्य (प्रकटादित्य) भकाराख्य (भानुगुप्त) के पुत्र थे। इसी प्रकार बौद्ध परम्पराएँ एवं जनुश्रुतियाँ भी, जैसा कि इस पुस्तक में पहले भी कहा जा चुका है, बालादित्य का सम्बन्ध भानुगुप्त से ही बताती हैं (देखिये जायसवाल, *An Imperial History of India*, 47, 53)। कोमिला के निकट गुणाइघर में प्राप्त एक अभिलेख तथा नालन्दा में प्राप्त कुछ सीलों से यह पता चलता है कि सन् ५०७ ई० के लगभग वहाँ वैन्यगुप्त नामक राजा शासन करता था। यह अवश्य ही मिहिरकुल अथवा उसके पिता का समकालीन रहा होगा (प्रबासी, 1338, 675; *IHQ*, 1930, 53, 561)। सील के अनुसार, वह 'महाराजाधिराज' था (*ASI*, *AR*, 1930-34, Pt. I, 230, 249; *MASI*, 66 67; *IHQ*, XIX, 275) तथा गुप्त-सम्राटों के साथ उसका सम्बन्ध भी था। डॉ० डी० सी० गांगुली के अनुसार, मुद्राओं में पाया जाने वाला द्वादशादित्य (*IHQ*, 1933, 784, 989) इसी का नाम था। परन्तु, नालन्दा-सील ऐसी दयनीय अवस्था में प्राप्त हुई है कि उसके सम्बन्ध में ठीक-ठीक कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

३. यह कहना कि मंदसौर के यशोधर्मन ने विक्रमादित्य की उपाधि धारण की थी, और वह 'मो-ला-पो' के शिलादित्य का पिता, प्रभाकरवर्धन का श्वसुर, और उज्जैन का मुख्य शासक था, सर्वथा अनुचित होगा। फ़ादर हेरा (*JBORS*, 1927, March, 8-9) के अनुसार, हूण राजा मिहिरकुल को बालादित्य ने जब पराजित किया, उसके पहले वह (मिहिरकुल) यशोवर्मन द्वारा बलहीन किया जा चुका था। कहा गया है कि बालादित्य के साथ युद्ध के समय मिहिरकुल प्रभुता-सम्पन्न सम्राट् था जिसे मगध-सम्राट् कर देता था तथा अपनी शारीरिक क्षीणता के कारण युद्ध करने से डरता भी था (Beal, *Si-yu-ki*, Vol. I, p. 168)। लेकिन जिस तरह मंदसौर के जनेन्द्र ने मिहिरकुल को पराजित करके उसे 'दो चरणों पर सिर झुकाने' के लिए बाध्य किया, उससे यह सम्भव नहीं दिखता। सम्राट् बालादित्य की मिहिरकुल पर विजय एक स्थायी विजय थी। केवल कुछ समय के लिए ही मिहिरकुल ने सम्भवतः मगध पर अधिकार किया होगा। शीघ्र ही वह कश्मीर के सिंहासन पर आसीन हुआ

रूप से पराजित कर दिया था। मंदसौर के पाषाण-स्तम्भ-अभिलेख[1] की छठी पंक्ति से ज्ञात होता है कि यशोधर्मन के समय में मिहिरकुल हिमालय-प्रदेश, अर्थात् कश्मीर एवं उसके आसपास की भूमि का शासक था। जनेन्द्र यशोधर्मन ने जब गंगा के उद्गम-स्थल के आसपास के हिमाच्छादित प्रदेश पर चढ़ाई की तो मिहिरकुल को बाध्य होकर उसकी सत्ता स्वीकार करनी पड़ी।

यशोधर्मन का दावा है कि उसका राज्य पूर्व में ब्रह्मपुत्र या लौहित्य तक फैला हुआ था। यह असम्भव नहीं कि उसने बालादित्य[2] के पुत्र वज्र को पराजित कर युद्धक्षेत्र में उसका वध किया तथा पुंड्रवर्धन भुक्ति के दत्त-वंश को भी समाप्त कर दिया हो। ह्वेनसांग ने भी इस बात की पुष्टि की है कि मध्य भारत का कोई शासक (गुप्त-वंश का नहीं) वज्र का उत्तराधिकारी बना। इसी समय कुमारगुप्त-प्रथम के समय से पुंड्रवर्धन पर शासन करने वाले दत्त-वंश का जैसे नामोनिशान सदा-सदा के लिए मिट गया। किन्तु, जिस मंदसौर-अभिलेख में जनेन्द्र यशोधर्मन को विजयी बताया गया है, उसके ठीक १० वर्ष बाद सन् ५४३-४४ ई० में पुंड्रवर्धन भुक्ति पर मध्य भारतीय जनेन्द्र का कोई अधिकारी नहीं, बल्कि 'परमभट्टारक, महाराजाधिराज पृथिवीपति' गुप्त-सम्राट् का कोई पुत्र (?) प्रतिनिधि के रूप में शासन कर रहा था। इससे यह तो सिद्ध हो ही जाता है कि जनेन्द्र यशोधर्मन की मंदसौर-पाषाण-अभिलेख में उल्लिखित विजय अत्यन्त क्षणिक रही होगी।

और गंधार जीत लिया (Beal, *Si-yu-ki*, I, p. 171)। यशोधर्मन के दरबारी कवि के अनुसार, मिहिरकुल मुख्य रूप से हिमाचल-प्रदेश का शासक था। निम्नलिखित गद्यांश का अर्थ फ़्लीट ने ग़लत लगाया और फ़ादर हेरा (p. 8n) ने इसे सही समझा। इससे सभी कुछ स्पष्ट हो जायेगा—

"उस (यशोधर्मन) के चरणों की वन्दना वह प्रसिद्ध राजा मिहिरकुल करता था जिसने केवल देवता 'स्थाणु' को छोड़ कर किसी के समक्ष अपना मस्तक नहीं झुकाया था और जिसकी प्रतापी भुजाओं के संसर्ग से हिमाच्छादित पर्वत-शिखर भी अजेय दुर्ग बन जाते थे" (Kielhorn, *Ind. Ant.*, 1885, p. 219)। कीलहॉर्न की इस व्याख्या को फ़्लीट ने स्वीकार किया है। (यह कथन कि मिहिरकुल ने केवल देवता 'स्थाणु' को छोड़ कर अन्य किसी के समक्ष अपना शीश नहीं झुकाया, सिद्ध करता है कि उसने बालादित्य के समक्ष भी नतमस्तक होना स्वीकार किया नहीं होगा जिसके कारण उसे मृत्युदंड मिला।)

[1] *CII*, p. 146-47; जायसवाल, *The Historical Position of Kalki*, p. 9.

[2] जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है, यदि बालादित्य का सम्बन्ध भानुगुप्त से है तो उसका पुत्र वज्र ही 'वकाराख्य' था, जो सारनाथ-अभिलेख के प्रकटादित्य का छोटा भाई (अनुज) था (Fleet, *CII*, 284 ff)। जी० शास्त्री द्वारा संपादित 'आर्य-मंजुश्री-मूलकल्प' (p. 637-44) के अनुसार, पकाराख्य भकाराख्य (भानुगुप्त) का पुत्र था। प्रकटादित्य को उक्त अभिलेख में बालादित्य एवं रानी धवला का पुत्र बताया गया है (देखिये जायसवाल, *An Imperial History of India*, p. 47, 53, 56, 63)।

प्रारम्भिक गुप्त-सम्राट्

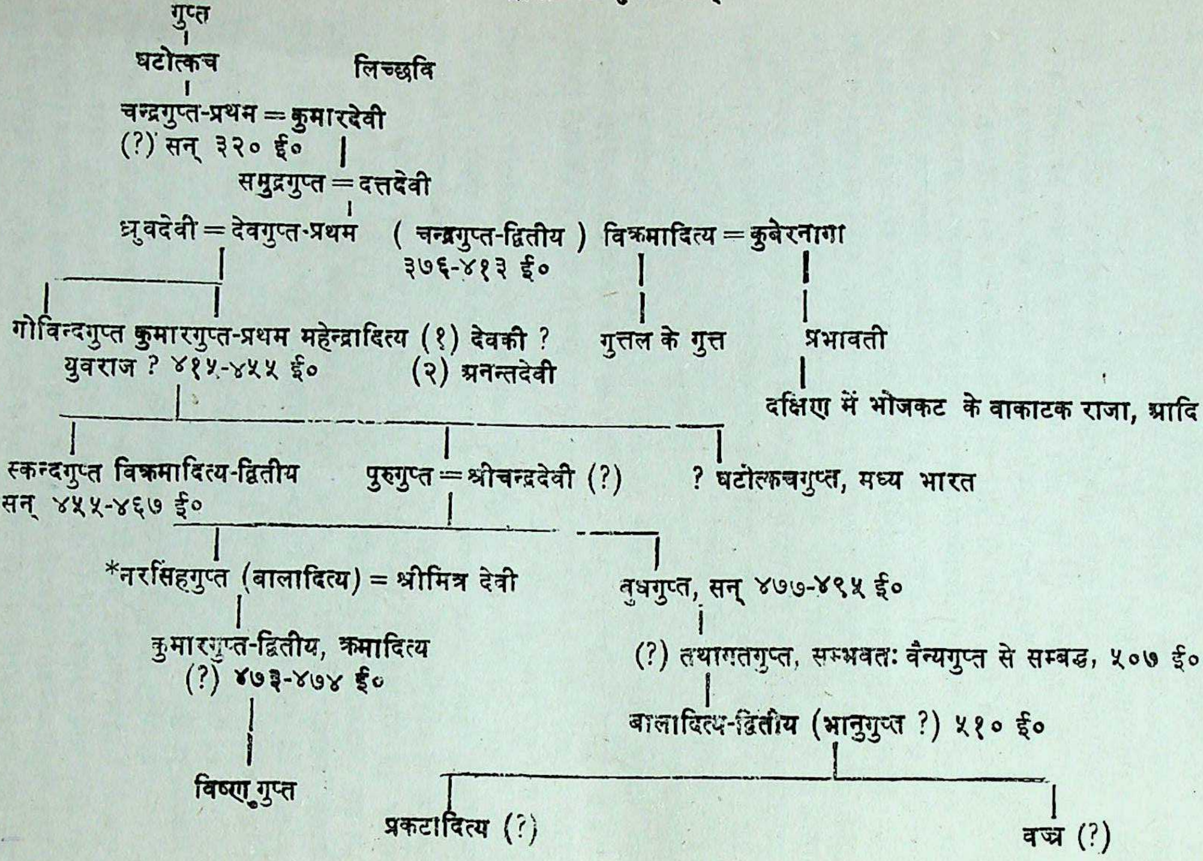
गुप्त
घटोत्कच
लिच्छवि
चन्द्रगुप्त-प्रथम = कुमारदेवी
(?) सन् ३२० ई०
समुद्रगुप्त = दत्तदेवी
ध्रुवदेवी = देवगुप्त-प्रथम (चन्द्रगुप्त-द्वितीय) विक्रमादित्य = कुबेरनागा
३७६-४१३ ई०
गोविन्दगुप्त
युवराज ?
कुमारगुप्त-प्रथम महेन्द्रादित्य (१) देवकी ?
४१५-४५५ ई०
(२) अनन्तदेवी
गुत्तल के गुत्त
प्रभावती
दक्षिण में भोजकट के वाकाटक राजा, आदि
स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य-द्वितीय
सन् ४५५-४६७ ई०
पुरुगुप्त = श्रीचन्द्रदेवी (?)
? घटोत्कचगुप्त, मध्य भारत
*नरसिंहगुप्त (बालादित्य) = श्रीमित्र देवी
बुधगुप्त, सन् ४७७-४९५ ई०
कुमारगुप्त-द्वितीय, क्रमादित्य
(?) ४७३-४७४ ई०
(?) तथागतगुप्त, सम्भवतः वैन्यगुप्त से सम्बद्ध, ५०७ ई०
बालादित्य-द्वितीय (भानुगुप्त ?) ५१० ई०
विष्णुगुप्त
प्रकटादित्य (?)
वज्र (?)

६. कृष्णगुप्त के वंशज

सन् ५४३-४४ ई० की दामोदरपुर-प्लेट में दुर्भाग्यवश गुप्त-सम्राट् का नाम मिट-सा गया है। फिर भी, अपशद-अभिलेख से अनेक गुप्त-सम्राटों का पता चलता है,[1] जिनमें से चौथा गुप्त-सम्राट् कुमारगुप्त (तृतीय) ईशानवर्मन मौखरी का समकालीन था। हराहा-अभिलेख के अनुसार, ईशानवर्मन ५५४ ई०[2] में शासन कर रहा था। अतः कुमारगुप्त-तृतीय एवं उसके तीनों पूर्वजों—कृष्ण, हर्ष और जीवित—को हम सन् ५१० ई० (भानुगुप्त की तिथि) से ५५४ ई० (ईशानवर्मन की तिथि) के बीच में रख सकते हैं। यह सम्भव हो सकता है, परन्तु निश्चित नहीं कि इनमें से एक राजा ही सन् ५४३-४४ ई०[3] के दामोदरपुर-प्लेट का गुप्त-राजा था। अपशद-अभिलेख में यदि 'महाराजाधिराज' अथवा 'परमभट्टारक' जैसी ऊँची उपाधियाँ नहीं हैं तो इससे यह निष्कर्ष कदापि नहीं निकलता कि उल्लिखित राजा छोटे-मोटे शासक थे।

---

[1] यद्यपि नाम के अंत में 'गुप्त' शब्द वाले बहुत-से शासकों का उल्लेख अपशद तथा अन्य समकालीन लेखों में मिलता है जो गुप्त-साम्राज्य के मुख्य प्रान्तों में राज्य करते थे और सुविधा के लिए 'गुप्त-शासक' ही कहे गये। लेकिन यह स्पष्ट नहीं है कि गुप्त-वंश अथवा गुप्त-कुल से उनका क्या और कैसा सम्बन्ध था? यह याद रखने की बात है कि उनमें से कुछ (जैसे कुमारगुप्त, देवगुप्त, आदि) के नाम प्रारम्भिक वंशावली में मिलते हैं तथा कुछ विद्वानों के अनुसार, इस नये गुप्त-वंश की नींव डालने वाले कृष्णगुप्त और कोई नहीं चन्द्रगुप्त-द्वितीय के पुत्र गोविन्दगुप्त का ही दूसरा नाम था। परन्तु, इस तथ्य को हम ज्यों-का-त्यों स्वीकार नहीं कर सकते, क्योंकि गोविन्दगुप्त कृष्णगुप्त से लगभग ५० वर्ष पूर्व हुआ था। अगर ऐसा है तो यह अत्यन्त आश्चर्य की बात है कि कृष्णगुप्त की वंशावली प्रस्तुत करने वालों ने गुप्त-वंश के राजघराने के एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण व्यक्ति (गोविन्दगुप्त) का नाम क्यों छोड़ दिया! अपशद-अभिलेख में इस वंश को केवल 'सद्वंश' कहा गया है। इस गुप्त-वंश का पुराने गुप्त-वंश से कोई संबंध नहीं था, इसकी पुष्टि बाण भी करते हैं। बाण की 'कादम्बरी' तथा 'हर्षचरित' में जिन गुप्तों और 'गुप्त-कुलपुत्रों' का उल्लेख मिलता है, निश्चय ही उनका सम्बन्ध कृष्णगुप्त और उसके वंशजों से जोड़ा जा सकता है। प्रारम्भिक गुप्त-वंश का एक राजकुमार तुमेन-अभिलेख में उल्लिखित घटोत्कचगुप्त भी था जो पूर्वी मालव का शासक था। यह असम्भव नहीं कि कृष्णगुप्त का उससे किसी प्रकार का कोई सम्बन्ध भी रहा हो। परन्तु, इस विषय में दृढ़ता से कुछ भी कह सकना सम्भव नहीं है। खोज अपेक्षित है।

[2] एच० शास्त्री, *Ep. Ind.*, XIV, pp. 110 ff.

[3] श्री वाई० आर० गुप्ते (*Ind. Hist. Journal*) सन् ५४३-४४ ई० के अभिलेख में 'कुमार' का नाम पढ़ते हैं, परन्तु वे उसे नरसिंहगुप्त का पुत्र बताते हैं। जिस राजा का नाम नहीं मिल रहा है, वह इन्हीं के वंश का अथवा किसी अन्य नवीन वंश का रहा होगा। देखिये इस सम्बन्ध में वैन्यगुप्त और दूसरे राजकुमारों का उल्लेख—*Ep. Ind.*, xx, Appendix, pp. 214-15.

मंदसोर-अभिलेख में कुमारगुप्त-प्रथम को इस प्रकार की कोई उपाधि नहीं दी गई है। इसी प्रकार एरण-अभिलेख में आये 'बुध' के नाम के पूर्व भी कोई उपाधि नहीं है। परन्तु, इसी के साथ अपशद-अभिलेख में उल्लिखित शासकों में सबसे कम शक्तिशाली राजा माधवगुप्त की रानी को देव-बरणार्क-अभिलेख में 'परम-भट्टारिका' तथा 'महादेवी' कहा गया है।

कृष्णगुप्त के सम्बन्ध में हमारा ज्ञान अत्यन्त सीमित है। अपशद-अभिलेख में उसे नायक का रूप दिया गया है, जिसने 'सिंह' की-सी अपनी बाहुओं से गर्वीले शत्रु (दृप्ताराति) की चिंघाड़ती हुई हस्तिसेना के मस्तक को तोड़ कर असंख्य शत्रुओं का मान-मर्दन किया और उन पर विजय प्राप्त की। सम्भवतः यशोधर्मन ही वह गर्वीला शत्रु (दृप्ताराति) था, जिसके विरुद्ध उसे युद्ध करना पड़ा था। उसके पश्चात् दूसरा राजा 'देवश्री हर्षगुप्त' था, जिसे उन लोगों के साथ युद्ध करना पड़ा, "जो यह नहीं चाहते थे कि भाग्य की देवी लक्ष्मी उसे अपना वर चुने।" उसके वक्षस्थल पर नाना प्रकार के शस्त्रों के घाव थे। जिन शत्रुओं ने उस पर आक्रमण किया था, उनके नामों का उल्लेख हमें नहीं मिलता। हर्ष के पुत्र जीवितगुप्त-प्रथम ने सम्भवतः अपने वंश की प्रभुता पुनः हिमालय तथा सागर (पूर्वी भारत) के बीच स्थापित कर ली थी। "यद्यपि उसके शत्रु सागर के तट पर ठंडी हवा में खड़े हुए थे, सागर में ज्वार-भाटा आ रहा था, और हाथियों द्वारा तट के वृक्ष गिराये जा चुके थे, फिर भी वे सब भय के ज्वर से पीड़ित थे।" समुद्र-तट पर खड़े हुए 'गर्वीले शत्रु' कदाचित् गौड़ थे, जिन्होंने विजय-अभियान आरम्भ कर दिया था। सन् ५५४ ई०[१] के हराहा-अभिलेख के अनुसार, वे उस समय सागर-तट (समुद्राश्रय) पर रहते थे। अन्य शत्रु नन्दन जैसे महत्त्वाकांक्षी कुमारामात्य रहे होंगे, जिनका उल्लेख अमौना-प्लेट में आया है।

इसके पश्चात् गद्दी पर बैठने वाले राजा कुमारगुप्त-तृतीय को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। गौड़ लोग अपने राज्य, जो समुद्र-तट तक फैला हुआ था और जिसमें कर्णसुवर्ण[२] और राधापुरी[३] भी सम्मिलित थे, से निकल कर जब-तब आक्रमण करने लगे। इनके अतिरिक्त, सहस्रों हाथियों को तीन पंक्तियाँ बनाने वाले आन्ध्र लोग तथा अनेक अश्वारोहियों की सेना के स्वामी शूलिक उसके दूसरे शत्रु थे। सम्भवतः माधवर्मन (प्रथम जनाश्रय) आन्ध्र के राजा थे। पोलामुरु-प्लेट के अनुसार, वे विष्णुकुण्डिन-वंश के थे, पूर्वी क्षेत्र[४] पर विजय प्राप्त करने के लिए गोदावरी-पार गये थे, और उन्होंने ग्यारह बार अश्वमेध यज्ञ आयोजित किया था। शूलिक कदाचित् चालुक्य थे।[५] महाकूट-स्तम्भ-अभिलेख में यह नाम 'चालिक्य' के रूप में आता है।

---

[१] *Ep. Ind.*, XIV, p. 110 *et seq.*

[२] एम० चक्रवर्ती, *JASB*, 1908, p. 274.

[३] प्रबोध-चन्द्रोदय, Act. II.

[४] Dubreuil, *AHD*, p. 92 and D. C. Sircar, *IHQ*, 1933. 276 ff.

[५] शूलिकों और शौलिकों का सम्बन्ध अपरान्त (उत्तरी कोंकण), बनवासी (कनारा) तथा विदर्भ (बरार) से बताया जाता है (बृहत्संहिता, IX, 15; XIV, 8)।

गुजरात के लेखों में हमें 'सोलकी' तथा 'सोलंकी' रूप भी देखने को मिलते हैं। 'शूलिक' इसी प्रकार किसी दूसरी बोली का रूप हो सकता है। महाकूट-स्तम्भ-अभिलेख से ज्ञात होता है कि चालिक्य-वंश के कीर्तिवर्मन-प्रथम (छठी शताब्दी) ने अंग, वंग, मगध आदि देशों पर विजय प्राप्त की थी। उसके पिता ने अश्वमेध यज्ञ भी किया था। "उन दिनों योद्धाओं पर विजय प्राप्त करने का एक मात्र उपाय यही था तथा महान् योद्धा वही होता था जो इस कसौटी पर खरा उतरता था।" जिन प्रदेशों के राजाओं को चुनौती दी जाती थी, उनके राज्य में यज्ञ का अश्व छोड़ दिया जाता था; तथा उसकी रक्षा के लिए एक सेना उसके पीछे चला करती थी। सम्भवतः राजकुमार कीर्तिवर्मन को इस सेना का नायक बनाकर अश्व की रक्षा का भार सौंपा गया था।

इसी समय गंगा की ऊपरी घाटी में एक नयी शक्ति का उदय हो रहा था, जिसे उत्तरी भारत में अपनी प्रभुता स्थापित करने के लिए गुप्तों से भयानक युद्ध करना पड़ा। यह शक्ति 'मुखर' अथवा 'मौखरी' वंश[१] की थी। मौखरी-वंश की उत्पत्ति अश्वपति के सौ पुत्रों से हुई थी, जो राजा अश्वपति को वैवस्वत यम[२] (न कि मनु) से वरदान-रूप में मिले थे। यह वंश अनेक विभिन्न शाखाओं में बँटा हुआ था। इस वंश की एक शाखा के पाषाण-अभिलेख उत्तर प्रदेश के जौनपुर और बाराबंकी ज़िले में प्राप्त हुए हैं, जबकि दूसरी शाखा के लेख बिहार राज्य के गया ज़िले में मिले हैं। एक तीसरी शाखा के अभिलेख राजस्थान राज्य के कोटा में 'बडवा' नामक स्थान पर प्राप्त हुए हैं। गया के मौखरी-शासक यज्ञवर्मन, शार्दूलवर्मन तथा अनन्तवर्मन सहायक राजा थे। बारबरा-पर्वत-गुफालेख[३] में शार्दूलवर्मन को उसके

इतना ही नहीं, उन्हें गंधार तथा वोक्काण (वाखान) से भी सम्बद्ध बताया गया है (बृहत्संहिता, IX, 21; X, 7; XVI, 35)। सम्भव है इनकी एक शाखा उत्तर-पश्चिम में भी रही हो। शुल्कि-वंश के कुलस्तम्भ का भी उल्लेख मिलता है। तारनाथ (*Ind. Ant.*, IV, 364) शुलिक-राज्य को टोगर (दक्षिण में टेर ?) में बताते हैं।

[१] इस वंश को 'मुखर' तथा 'मौखरी' दोनों ही नामों से सम्बोधित करते थे। "**सोम-सूर्य वंशाविव पुष्पभूति** (sic) **मुखर-वंशौ,**" "**सकल भुवन नमस्कृतो मौखरि वंशः**" (Parab's ed., हर्षचरित, pp. 141, 146)। *Cf. CII*, p. 229.

[२] महाभारत, III, 296, 38 ff. अपनी पुत्री सावित्री के माँगने पर राजा अश्वपति के वरदानस्वरूप यम की कृपा से सौ पुत्र हुए थे, उसी ओर यह संकेत है। यह एक आश्चर्य की बात है कि कुछ लेखक मौखरी-लेख के वैवस्वत को मनु मानते हैं।

[३] *CII*, p. 223. गया से मौखरियों का सम्बन्ध अत्यन्त प्राचीन था। इस बात की पुष्टि 'मोखलिश' अथवा 'मोखलिणम' अभिलेख में मिट्टी की सील द्वारा होती है (Fleet, *CII*, 14)। कदम्ब के राजा के चन्द्रवल्लि-पाषाण-अभिलेख में भी मौखरियों का उल्लेख मिलता है (*Arch. Survey of Mysore*, A.R. 1929, pp. 50 ff)। डॉ० त्रिपाठी को इसी प्रकार का संकेत महाभाष्य में मिला है (*JBORS*, 1934, March)। बड़वा-अभिलेख के लिए देखिये— Altekar, *Ep. Ind*, XXIII, 42 ff

पुत्र ने 'सामन्त चूड़ामणि' की उपाधि से सम्बोधित किया है। तीसरी शताब्दी में बडवा मौखरी पश्चिमी भारत के किसी राजा के अधीन सेनानायक अथवा सैनिक राज्यपाल के पद पर कार्य करते थे। ऐसे ही कदाचित् उत्तर प्रदेश[१] की मौखरी शाखा भी आरम्भ में किसी के आश्रित थी। इस वंश के प्रारम्भिक राजकुमार हरिवर्मन, आदित्यवर्मन तथा ईश्वरवर्मन केवल साधारण महाराज थे। आदित्यवर्मन की पत्नी हर्षगुप्ता कदाचित् हर्षगुप्त की बहन थी। उसके पुत्र एवं उत्तराधिकारी ईश्वरवर्मन की पत्नी उपगुप्ता भी सम्भवतः गुप्त-वंश की ही राजकुमारी थी। हराहा-अभिलेख के अनुसार, ईश्वरवर्मन तथा उपगुप्ता[२] के पुत्र ईशानवर्मन ने आंध्रों[३], शूलिकों तथा गौड़ों पर विजय प्राप्त कर सर्वप्रथम 'महाराजाधिराज', की सम्राटीय उपाधि धारण की। इसी से उसे कुमारगुप्त-तृतीय के साथ संघर्ष में आना पड़ा।[४] सम्भवतः इसी उपाधि के कारण मौखरियों एवं गुप्तों में द्वन्द्व आरम्भ हुआ, तथा अंत में गुप्तों ने गौड़ों की सहायता से हर्षवर्धन के बहनोई ग्रहवर्मन मौखरी को पूर्ण रूप से पराजित कर उसके राज्य को नष्ट कर दिया।[५]

इस प्रकार हम देखते हैं कि ईशानवर्मन की माता एवं दादी गुप्त-वंश की थीं। छठी शताब्दी के उत्तरार्ध में साम्राज्य स्थापित करने वाले प्रभाकरवर्धन की माता भी गुप्त-वंश की ही थीं। ऐसा प्रतीत होता है कि जिस प्रकार अत्यन्त प्राचीन काल में

---

१. साहित्य में मौखरियों का सम्बन्ध उत्तर प्रदेश में कन्नौज से बताया जाता है, जो सम्भवतः किसी समय उनकी राजधानी रहा होगा (*Cf.* सी० वी० वैद्य, *Mediaeval Hindu India*, I, pp. 9,33; Aravamuthan, *The Kaveri, the Maukharis and the Samgam Age*, p. 101)। ह्वेनसांग के अनुसार, हर्ष से बहुत पूर्व कन्नौज पर पुष्यभूति के वंशजों का अधिकार था। हर्ष के उत्कर्ष के पूर्व तथा राज्यवर्धन की मृत्यु के पश्चात् कुशास्थल (कन्नौज) का शासक गुप्त-वंश का कोई सामन्त था (Parab's ed., हर्षचरित, pp. 226, 249)।

२. Fleet, *CII*, p. 220.

३. जौनपुर-पाषाण-अभिलेख में भी आन्ध्रों पर विजय का उल्लेख मिलता है (*CII*, p. 230)। इसी से, फ़्लीट के अनुसार, पश्चिमी मालव (?) की राजधानी धारा में हुए युद्ध का भी पता चलता है। डॉ० बसाक का मत है कि इसमें 'धारा' शब्द का प्रयोग तलवार की धार के अर्थ में हुआ है, न कि किसी नगर आदि के अर्थ में (*Hist. N. E. India*, 109)।

४. जो व्यक्ति यूरोप के इतिहास से भलीभाँति परिचित हैं, उन्हें अच्छी तरह से ज्ञात होगा कि प्रथम, द्वितीय, तृतीय आदि का अर्थ यह नहीं है कि जो राजा इस उपाधि को धारण करें, वे सभी एक ही वंश के हों।

५. ग्रहवर्मन के उत्तराधिकारी साधारण सरदारों की तरह ही रह गये होंगे। उनके साथ सातवीं शताब्दी में गुप्त-वंश के अंतिम राजाओं में से किसी एक ने वैवाहिक सम्बन्ध भी स्थापित किया था।

लिच्छवियों[1] के साथ विवाह कर दूसरे राजा अपनी शक्ति बढ़ाते थे, उसी अभिप्राय से इस काल में गुप्त-वंश में विवाह-सम्बन्ध स्थापित किये जाते थे।

कुमारगुप्त-तृतीय ने दावा किया है कि "राजाओं में चन्द्रमा के समान ईशानवर्मन की सेना को बिलोकर उसने अपने आपको परम भाग्यशाली बना लिया।"[2] यह कोई मिथ्याभिमान की बात नहीं है, क्योंकि अन्य किसी भी स्रोत से यह ज्ञात नहीं होता कि मौखरियों ने कभी भी गुप्त-सम्राटों पर विजय प्राप्त की थी। कुमारगुप्त-तृतीय का अंतिम संस्कार प्रयाग में हुआ था, जिससे यह अनुमान होता है कि सम्भवतः प्रयाग उसके साम्राज्य का ही अंग था।

इस राजा के पुत्र एवं उत्तराधिकारी का नाम दामोदरगुप्त था। उसने मौखरियों[3] के साथ होने वाले युद्ध को जारी रखा और अंत में उनके साथ युद्ध करता हुआ स्वर्गवासी हुआ। "मौखरियों के शक्तिशाली हाथियों की पंक्ति को, जिससे उन्होंने हूणों को पददलित किया था, तोड़कर वह (दामोदरगुप्त) मूर्च्छित हो गया और युद्ध-क्षेत्र में ही मृत्यु को प्राप्त हुआ।"[4]

दामोदरगुप्त के पश्चात् उसका पुत्र महासेनगुप्त सिंहासनारूढ़ हुआ। 'हर्षचरित' में वर्णित पूर्वी मालव का शासक कदाचित् यही था। सम्भवतः इसी के पुत्र कुमारगुप्त तथा माधवगुप्त को श्रीकण्ठ (थानेश्वर) के पुष्यभूति-वंश के प्रभाकरवर्द्धन ने अपने दोनों पुत्रों—राज्यवर्द्धन एवं हर्षवर्द्धन—की सेवा में रखा था। मधुबन-दानपत्र तथा

---

[1] *Cf.* Hoernle, *JRAS*, 1903, p. 557.

[2] अपशद-अभिलेख।

[3] दामोदरगुप्त का मौखरी-शत्रु यदि ईशानवर्मन स्वयं नहीं था तो उसके पुत्र सूर्यवर्मन या सर्ववर्मन थे। महाशिवगुप्त के सीरपुर-पाषाण-अभिलेख में सूर्यवर्मन के सम्बन्ध में लिखा है कि 'उसका जन्म उस शक्तिशाली एवं पवित्र वर्मन-वंश में हुआ था जिसका आधिपत्य मगध पर भी था।' यदि यह सूर्यवर्मन, ईशानवर्मन का ही पुत्र अथवा सूर्यवर्मन का वंशज था तो यह स्वीकार करना पड़ेगा कि कुछ समय के लिए मगध की सत्ता गुप्त-सम्राटों के हाथों से निकल कर मौखरियों के हाथों में आ गई थी। जीवितगुप्त-द्वितीय के शाहाबाद जिले के देव-बरणार्क-अभिलेख से ज्ञात होता है कि मौखरी-वंश के सर्ववर्मन तथा अवन्तिवर्मन के अधिकार में बालादित्य-देव के पश्चात् मगध का एक बहुत बड़ा भाग आ गया था (*CII*, pp. 216-18)। जाहिर है कि मगध के निकल जाने के बाद अंतिम गुप्त-सम्राटों के पास केवल मालव ही शेष बच रहा था, जब तक कि आगे चलकर महासेनगुप्त ने एक बार पुनः अपनी विजयों द्वारा लौहित्य (ब्रह्मपुत्र) तक अपना साम्राज्य-विस्तार न कर लिया।

[4] महाभारत (XII, 98, 46-47), रघुवंश (VII, 53), काव्यदर्श (II, 119), राजतरंगिणी (I, 68) आदि से ज्ञात होता है कि फ्लीट द्वारा किये गये अर्थ के विरुद्ध जो कुछ कहा गया है, वह सब अमान्य है। 'मुरवधुओं' के महत्त्व को (जो मनुष्य न थीं) *Bhand. Com. Vol.*,181 का लेखक तथा डॉ० त्रिपाठी की *History of Ancient India* का आलोचक ठीक से समझ नहीं सके।

हर्ष की सोनपत-ताम्रसील से ज्ञात होता है कि प्रभाकरवर्द्धन तथा महासेनगुप्त के वंश के बीच बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध था। ताम्रसील के अनुसार, 'महासेनगुप्ता देवी' प्रभाकर की माता थीं, तथा आदित्यसेन के अपशद-अभिलेख से पता चलता है कि महासेनगुप्त के पुत्र माधवगुप्त की मित्रता हर्ष से थी।

मौखरियों की बढ़ती हुई शक्ति के भय से महासेनगुप्त ने पुष्यभूति से सम्बन्ध स्थापित कर लिया था।[1] यह नीति काफ़ी सफल रही। परिणामस्वरूप उसके जीवन-काल में उस वंश से किसी प्रकार का युद्ध नहीं हुआ। परन्तु, इसी समय पूर्व की ओर से एक नया भय उत्पन्न हो गया। भागदत्त के वंशजों ने कामरूप में एक शक्तिशाली राज्य स्थापित कर लिया। इस वंश के राजा सुस्थितवर्मन[2] का महासेनगुप्त के साथ युद्ध हुआ, जिसमें वह (सुस्थितवर्मन) स्वयं पराजित हुआ। अपशद-अभिलेख के अनुसार, सुस्थितवर्मन को पराजित करने के पश्चात् महासेनगुप्त की प्रसिद्धि चारों ओर फैल गई, तथा उस समय लौहित्य (ब्रह्मपुत्र) के तट तक उसकी कीर्त्ति के गीत गाये जाते थे।

प्रभाकरवर्द्धन के समकालीन महासेनगुप्त, तथा महासेनगुप्त के छोटे अथवा सबसे छोटे पुत्र माधवगुप्त, जो हर्ष का समकालीन था, के बीच देवगुप्त-द्वितीय[3] नामक राजा हुआ था। इसका उल्लेख हर्ष के मधुबन तथा बंसखेड़ा-अभिलेखों में मिलता है। इस लेख में देवगुप्त-द्वितीय को 'दुष्ट घोड़ों की श्रेणी में रखे गये राजाओं' की सूची में श्रेष्ठतम स्थान दिया गया है। इन सभी राजाओं को राज्यवर्द्धन ने उचित दण्ड दिया था। चूँकि 'हर्षचरित' में गुप्त-राजाओं का सम्बन्ध मालव से बताया गया है। अतः, इसमें कोई संदेह नहीं कि देवगुप्त ही मालव का वह दुष्ट शासक था, जिसने ग्रहवर्मन मौखरी का वध किया था, तथा स्वयं बड़ी सहजता से राज्यवर्द्धन[4] के द्वारा

---

[1] कदाचित् दूसरे आक्रमणकारी राज्यों का नाम 'हर्षचरित' के चौथे उच्छ्वास में है। जिस अंश में लाटों का उल्लेख आता है, वे कदाचित् कटच्चुरि रहे होंगे, जिन्होंने अन्ततः सन् ६०८ ई० के लगभग गुप्त-राजाओं को विदिशा से उखाड फेंका। कटच्चुरि (कलचुरि) राज्य में छठी शताब्दी के अन्त तथा सातवीं शताब्दी के प्रारम्भ में लाट प्रदेश भी सम्मिलित था (Dubreuil, *AHD*, 82)।

[2] देखिये—निधनपुर-प्लेट। *JRAS* (1928) में एक लेखक पुनः यह सिद्धान्त प्रतिपादित करता है कि सुस्थितवर्मन कामरूप के राजा न होकर मौखरी राजा थे। परन्तु, इस नाम के किसी भी मौखरी-शासक का उल्लेख नहीं मिलता। सुस्थितवर्मन का ब्रह्मपुत्र या लोहित्य नदी से सम्बन्धित होना, यही सिद्ध करता है कि इस नाम के जिस शासक का उल्लेख निधनपुर-प्लेट में है, वह यही था।

[3] सम्राट चन्द्रगुप्त-द्वितीय ही देवगुप्त-प्रथम थे।

[4] ग्रहवर्मन तथा राज्यवर्द्धन का मालव-शत्रु बुद्धराज कलचुरि-वंश का था, जैसा कि एक विद्वान् ने सिद्ध करने की कोशिश की है, विश्वसनीय प्रतीत नहीं होता। यदि यही सही होता तो हर्ष के समय के अभिलेखों में बुद्धराज को न चुन कर देवगुप्त जैसे निर्बल राजा को ही इस उल्लेख के लिए क्यों चुना जाता, जबकि वह एक दुष्ट

पराजित हुआ था। गुप्त-राजाओं की वंशावली में देवगुप्त का स्थान निश्चित करना फ़िलहाल अत्यन्त कठिन है। सम्भवतः वह महासेनगुप्त का सबसे बड़ा पुत्र तथा कुमार गुप्त एवं माधवगुप्त का बड़ा भाई रहा होगा।[1] उसका नाम अपशद-अभिलेख के राजाओं की सूची में नहीं मिलता। यह सम्भवतः उसी प्रकार है, जैसे भिटारीलेख में स्कन्दगुप्त का नाम छूट गया है।

अपनी मृत्यु के कुछ ही समय पूर्व राजा प्रभाकरवर्द्धन ने अपनी पुत्री राज्यश्री का विवाह मौखरी-राजा अवन्तिवर्मन के ज्येष्ठ पुत्र ग्रहवर्मन के साथ किया। अपने परम शत्रु के साथ पुष्यभूतियों के इस सम्पर्क से रुष्ट होकर ही देवगुप्त ने उनसे अलग होकर ईशानवर्मन के समय से ही चले आ रहे मौखरियों के शत्रु गौड़ों के साथ मैत्री कर ली। प्रभाकर की मृत्यु के साथ ही गुप्त-राजा तथा गौड़-राजा शशांक[2] ने मौखरी राज्य पर सम्मिलित रूप से आक्रमण कर दिया। "मालव के दुष्ट राजा ने ग्रहवर्मन को समाप्त कर उसके साथ ही उसके सत्कार्यों को भी समाप्त कर दिया। रानी राज्यश्री के पैरों में लोहे की बेड़ियाँ डाल कर कान्यकुब्ज में बन्दी बना दिया गया।" "उस दुष्ट राजा ने यह सोचकर कि सेना बिना नायक के है, थानेश्वर पर आक्रमण कर उसे जीत लेने का प्रस्ताव रखा।"[3] यद्यपि राज्यवर्द्धन ने बड़ी सरलता से मालव-सेना को पराजित कर दिया था, फिर भी गौड़-नरेश के झूठे विश्वास में आकर उन्होंने

राजा था और राज्यवर्द्धन ने उसे कठोर दण्ड दिया था। राज्यश्री की मुक्ति तक की जो कथा 'हर्षचरित' में आती है, वहाँ गुप्त-राजाओं के मालव से सम्बद्ध होने का ही उल्लेख है। अन्तिम मौखरी-राजा का दुःखद अन्त, राज्यश्री की कठिनाइयों तथा राज्यवर्द्धन को जिनसे युद्ध करना पड़ा, उनमें गुप्त एवं गौड़ राजाओं का तो उल्लेख है, परन्तु किसी कटच्चुरि-राजा का कहीं भी कोई उल्लेख नहीं मिलता।

[1] Hoernle, *JRAS*, 1903, p. 562. इस सुझाव को पूर्णतया निश्चित तथ्य नहीं माना जा सकता। सम्भव है कि देवगुप्त ने मालव-वंश की उस शाखा का प्रतिनिधित्व किया हो जो पुष्यभूति-वंश तथा मौखरियों के प्रति शत्रुता की भावना रखती रही हो; जबकि कुमार, माधव आदि गुप्त 'कुलपुत्र' जिन्होंने राज्यश्री को जेल से भाग जाने में सहायता की, और माधव के पुत्र आदित्यसेन, जिसने अपनी पुत्री का विवाह किसी मौखरी शासक से किया, मित्र-पक्ष के रहे हों।

[2] ऐसा कोई कारण नहीं, जिससे विश्वास हो सके कि शशांक गुप्त-वंश का था (Allan, *Gupta Coins*, lxiv)। यदि यह भी सिद्ध हो जाये कि उसका उपनाम नरेन्द्रगुप्त था, तो भी इससे यह सिद्ध नहीं होता कि वह गुप्त-वंश का ही था, क्योंकि (अ) उसी की सील अथवा लेख इत्यादि में ऐसा कोई विवरण नहीं मिलता जो उसे गुप्त-वंश का साबित कर सके; (ब) गरुड़ध्वज के स्थान पर नन्दिध्वज का प्रयोग; तथा (स) गौड़ों से उसका सम्बन्ध। छठी शताब्दी में 'समुद्राश्रय' गौड़ों की उपाधि थी। अतः, उसे मगध, मालव अथवा प्रयाग के गुप्त-राजाओं की उपाधि कहना भ्रमात्मक होगा।

[3] हर्षचरित, उच्छ्‌वास 6, p. 183.

शालीनतावश हथियार रख दिया, जिसके परिणामस्वरूप वे अपने ही स्कन्धावार में मारे गये ।

अपने शक्तिशाली शत्रु गौड़ों तथा गुप्तों को पराजित करने के लिए राज्यवर्द्धन के उत्तराधिकारी हर्ष ने कामरूप के राजा भास्करवर्मन, जिसके पिता सुस्थितवर्मन मृगाङ्क ने महासेनगुप्त से युद्ध किया था, से सन्धि कर ली । भास्कर के निधनपुर-प्लेट से ज्ञात होता है कि यह सन्धि गौड़ों के लिए अत्यन्त घातक सिद्ध हुई । जिस समय भास्करवर्मन ने निधनपुर की प्लेट अंकित करवायी, उस समय कर्णसुवर्ण नगर पर उसका अधिकार था । कर्णसुवर्ण गौड़-राजा शशांक (सन् ६१९-३७ ई०) की राजधानी थी । भास्करवर्मन ने सम्भवतः शशांक के उत्तराधिकारी जयनाग, जिसका उल्लेख वप्पघोषवाट-अभिलेख[1] में आता है, को पराजित करके कर्णसुवर्ण पर अधिकार किया होगा । फिर भी, गौड़ लोगों ने सहज में ही अपनी स्वाधीनता का अपहरण होने नहीं दिया । कन्नौज एवं कामरूप की आँखों में वे लगातार काँटे की तरह चुभते रहे, और यह शत्रुता और संघर्ष शशांक के उत्तराधिकारियों—पाल एवं सेन राजाओं—ने भी पूर्ववत् जारी रखा ।

सन् ६०८ ई० के आसपास कटच्चुरियों ने गुप्त-राजाओं से विदिशा का राज्य छीन लिया । सन् ६३७ ई० के पूर्व मगध पर पूर्णवर्मन ने अधिकार कर लिया । महासेनगुप्त का छोटा अथवा सबसे छोटा पुत्र माधवगुप्त थानेश्वर तथा कन्नौज के शासक हर्षवर्द्धन का न केवल आश्रित ही था, वरन् उसके दरबार में भी रहता था । ६१८ से ६२७ ई० के बीच हर्ष ने भारत के चारों कोनों के राजाओं को दण्डित कर सन् ६४१ ई० में मगधाधिराज[2] की उपाधि धारण की । उसकी मृत्यु के पश्चात् गुप्त-वंश के योग्य एवं शक्तिशाली राजकुमार आदित्यसेन ने मगध पर गुप्त-वंश के राज्याधिकार को पुनरुज्जीवित किया । हर्ष की मृत्यु से सारे राज्य में फैली हुई अव्यवस्था के बीच ही उसने फिर से राज्य को हड़प लिया । इस गुप्त-सम्राट् के सम्बन्ध में प्रमाणस्वरूप हमें अनेक स्तम्भ-लेख, प्लेट और अभिलेख मिलते हैं । इनसे सिद्ध होता है कि उसका राज्य आसमुद्रान्त फैला हुआ था । अपशद, शाहपुर और मंदार अभिलेखों से यह सिद्ध होता है कि पूर्वी और दक्षिणी बिहार पर उसका अधिकार निश्चित रूप से था । फ्लीट[3] द्वारा उल्लिखित देवघर-अभिलेख से पता चलता है कि उसके अधिकार में समुद्र तक की समस्त भूमि थी, तथा उसने अश्वमेध एवं अन्य यज्ञादि किये थे । उसने मौखरियों और गौड़ों से पुनः अपना संबंध स्थापित किया, और 'सूक्ष्मशिव' नामक गौड़ सामन्त को अपनी सेवा में भी रखा । 'भोगवर्मन' नामक

---

[1] *Ep. Ind.*, XVIII, p. 60 ff; संपा० जी० शास्त्री, आर्य-मंजुश्री-मूल-कल्प, p. 636. 'जय' नाम बुद्ध साहित्य में भी मिलता है ।

[2] *Ind. Ant.*, IX, 19.

[3] *CII*, p. 213 n. कहा जाता है कि आदित्य ने तीन अश्वमेध यज्ञ किये थे ।

एक मौखरी-शासक ने उसकी पुत्री[1] के साथ अपना विवाह कर उसका सहायक होना स्वीकार कर लिया। देव-बरणार्क-अभिलेख में उल्लेख मिलता है कि उसके प्रपौत्र जीवितगुप्त-द्वितीय का 'जयस्कन्धावार' गोमतीकोट्टक पर था। इससे स्पष्ट है कि मध्यदेश की गोमती-घाटी में गुप्त-वंश के राजाओं का ही शासन था, मौखरियों का नहीं। मंदार-अभिलेख के अनुसार, आदित्यसेन को 'परमभट्टारक' तथा 'महाराजाधिराज' की उपाधि प्राप्त थी। शाहपुर के पाषाण-मूर्त्तिलेख से ज्ञात होता है कि सन् ६७२-७३ ई० में वह शासन कर रहा था। ऐसा लगता है कि '**सकलोत्तरा-पथ-नाथ**' (सारे उत्तर भारत का स्वामी) उसे ही, अथवा उसके पुत्र देवगुप्त-तृतीय को, कहा गया है। देवगुप्त-तृतीय को चालुक्य-राजा विनयादित्य (६८०-९६ ई०) तथा विजयादित्य ने पराजित किया था।[2]

देव-बरणार्क-अभिलेख से ज्ञात होता है कि आदित्यसेन का उत्तराधिकारी देवगुप्त-तृतीय, और देवगुप्त का उत्तराधिकारी विष्णुगुप्त-द्वितीय था।[3] विष्णु का पुत्र जीवितगुप्त-द्वितीय अंतिम सम्राट् था। इन सभी राजाओं ने शाही उपाधि ग्रहण कर रखी थी। ये केवल कोरी उपाधियाँ ही नहीं थीं। वातापी के पश्चिमी चालुक्यों के अभिलेखों से ज्ञात होता है कि सातवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में भी सम्पूर्ण उत्तरी भारत में गुप्त-राजाओं का राज्य था। इस काल में उत्तर भारत के शासकों, अर्थात् 'उत्तरापथ-नाथ' में आदित्यसेन और उसके उत्तराधिकारी ही ऐसे शासक थे जिन्होंने सम्राट् होने का दावा किया था। मगध और मध्य प्रदेश वस्तुतः उनके अधिकार में थे। अपशद तथा देव-बरणार्क अभिलेख से इस बात की पुष्टि होती है।[4]

गुप्त-राजवंश को अंतिम रूप से गौड़-नरेशों ने समाप्त कर दिया। वे इस बात को नहीं भुला सके कि माधवगुप्त ने उन्हें धोखा दिया था, साथ ही आदित्यसेन की सेवा में रह कर वे शक्तिशाली भी हो गये थे। कन्नौज के यशोवर्मन के समय (८वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध) में मगध[5] पर किसी गौड़-राजा का अधिकार था।

---

१. Kielhorn, *INI*, 541.

२. *Bomb. Gaz.*, Vol. I, Part II, pp. 189, 368, 371; और केन्दूर-प्लेट।

३. बक्सर प्रदेश के मँगरांव-अभिलेख में भी इस राजा का उल्लेख है।

४. चालुक्यों तथा राजा जिह-क्वान (आदित्यसेन) के सन्दर्भ के लिए देखिए—*IA*, X, p. 110.

५. देखिये—वाक्पतिराज का गौडवहो। बनर्जी ने गौड़ों तथा अन्तिम गुप्तों को मिलाकर बड़ी गड़बड़ी की है। हराहा-अभिलेख में गौड़ों को समुद्र के किनारे रहने वाला (समुद्राश्रय) बताया गया है, जबकि अन्तिम गुप्त-शासकों का राज्य मगध एवं मालव में था। अपशद-अभिलेख के अनुसार, समुद्र-तट के निवासी

बारहवीं तथा तेरहवीं शताब्दी में छोटे-छोटे गुप्त-राजकुमार कनेरी ज़िलों के शासक थे। इनका उल्लेख अक्सर अभिलेखों में मिलता है। गुप्त-शासकों का कनेरी से सम्बन्ध था, इसका उल्लेख तालगुण्ड-अभिलेखों में भी मिलता है; जिसमें लिखा है कि कदम्ब-वंश के काकुस्थवर्मन ने अपनी पुत्रियों का विवाह गुप्त-राजाओं तथा दूसरे राजाओं के साथ किया था। पाँचवीं अथवा छठी शताब्दी में चन्द्रगुप्त-द्वितीय विक्रमादित्य की पुत्री प्रभावतीगुप्ता के पुत्र वाकाटक राजा नरेन्द्रसेन थे जिन्होंने कनेरी प्रदेश[1] की राजकुमारी कुन्तल से विवाह किया था। आश्चर्य की बात है कि कनेरी प्रदेश में 'गुत्त' अथवा 'गुप्त' अपने को उज्जयिनी[2] के शासक चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य[3] का वंशज बताते हैं।

जीवितगुप्त-प्रथम से शत्रुता रखते थे। अपशद-अभिलेख के प्रशस्तिकारों को स्पष्ट रूप मे गौड़ कहा गया है। यह उपाधि उन्होंने अपने किसी भी संरक्षक (गुप्त-शासक) को कभी भी नहीं दी। कृष्णगुप्त के वंश को 'सद्वंश' कहा गया है। पर, ऐसा कोई प्रमाण नहीं है जिसके आधार पर कहा जा सके कि उसकी तथा उसकी वंशावली लिखने वालों (चारणों, प्रशस्तिकारों) की राष्ट्रीयता एक थी। इस बात से कि आठवीं शताब्दी (यशोवर्मन के शासन-काल) में मगध के शासक गौड़ कहे जाते थे, यह नहीं सिद्ध होता कि गौड़ तथा अन्तिम गुप्त-शासक एक ही थे। इस काल में मगध का आधिपत्य अन्तिम गुप्त-काल के शासकों से अभिन्न नहीं था। "**मगधातिपत्यमहताम् जात कुले वर्मणाम्**" से सिद्ध होता है कि इस काल में मगध पर गुप्त-वंश के अतिरिक्त अन्य राजाओं का भी राज्य था।

[1] Jouveau-Dubreuil, *AHD*, p. 76.

[2] अन्तिम गुप्त-शासकों का वर्णन सर्वप्रथम *JASB*, (1920, No. 7) में प्रकाशित हुआ था।

[3] *Bomb. Gaz.*, Vol. I, Part II, pp. 578-80; सर आर० जी० भण्डारकर, *A Peep iuto the Early History of India*, p. 60. इस संकेत के लिए मैं डॉ० भण्डारकर का आभारी हूं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अन्तिम गुप्त-सम्राटों की वंशावली

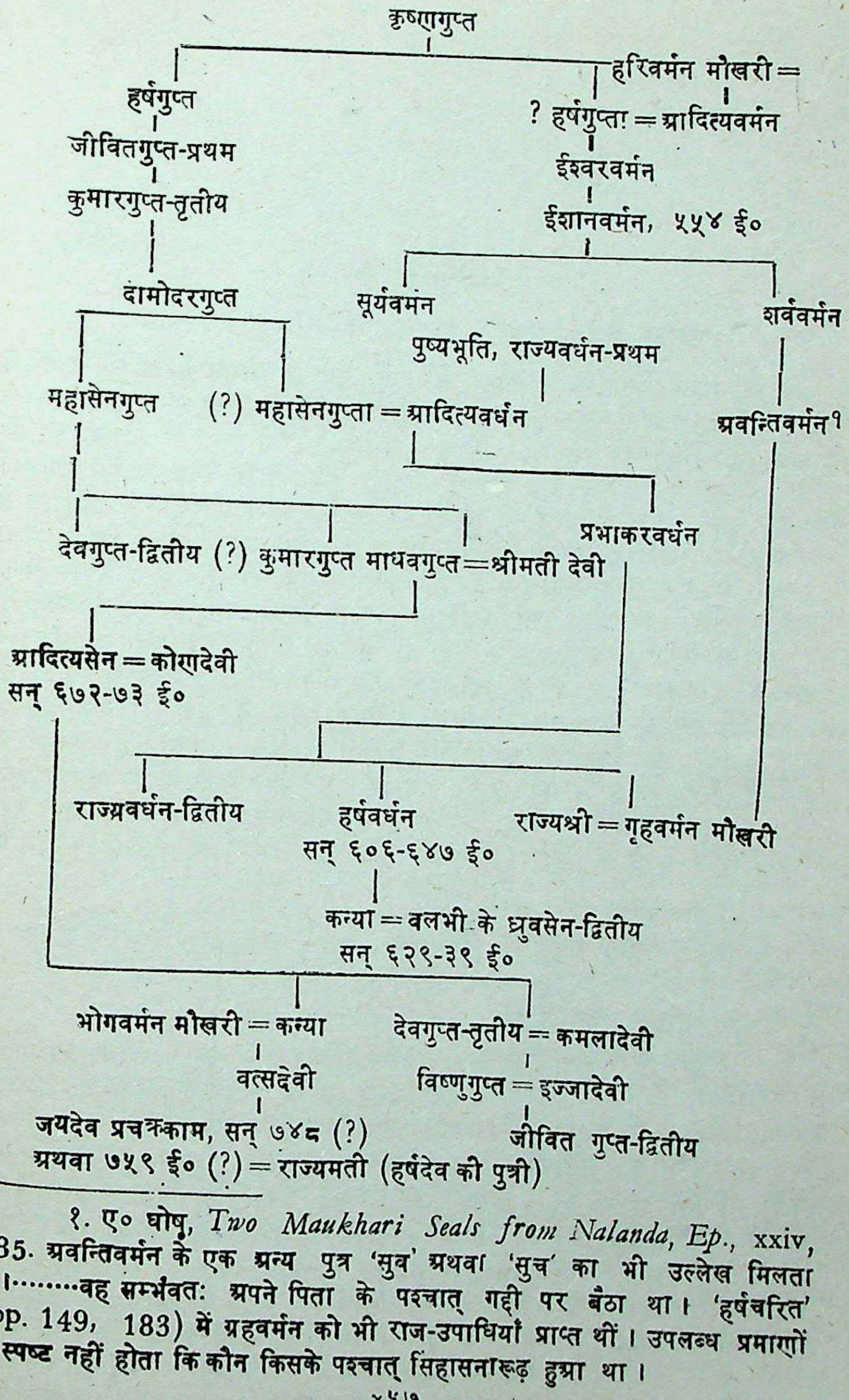
कृष्णगुप्त
हरिवर्मन मौखरी =
हर्षगुप्त
? हर्षगुप्ता = आदित्यवर्मन
जीवितगुप्त-प्रथम
ईश्वरवर्मन
कुमारगुप्त-तृतीय
ईशानवर्मन, ५५४ ई०
दामोदरगुप्त
सूर्यवर्मन
शर्ववर्मन
पुष्यभूति, राज्यवर्धन-प्रथम
महासेनगुप्त
(?) महासेनगुप्ता = आदित्यवर्धन
अवन्तिवर्मन[1]
प्रभाकरवर्धन
देवगुप्त-द्वितीय (?) कुमारगुप्त माधवगुप्त = श्रीमती देवी
आदित्यसेन = कोणदेवी
सन् ६७२-७३ ई०
राज्यवर्धन-द्वितीय
हर्षवर्धन
सन् ६०६-६४७ ई०
राज्यश्री = गृहवर्मन मौखरी
कन्या = वलभी के ध्रुवसेन-द्वितीय
सन् ६२९-३९ ई०
भोगवर्मन मौखरी = कन्या
देवगुप्त-तृतीय = कमलादेवी
वत्सदेवी
विष्णुगुप्त = इज्जादेवी
जयदेव प्रचण्डकाम, सन् ७४८ (?)
अथवा ७५९ ई० (?) = राज्यमती (हर्षदेव की पुत्री)
जीवित गुप्त-द्वितीय

---

[1] ए० घोष, *Two Maukhari Seals from Nalanda*, *Ep*., xxiv, 285. अवन्तिवर्मन के एक अन्य पुत्र 'सुव' अथवा 'सुच' का भी उल्लेख मिलता है।........वह सम्भवतः अपने पिता के पश्चात् गद्दी पर बैठा था। 'हर्षचरित' (pp. 149, 183) में ग्रहवर्मन को भी राज-उपाधियाँ प्राप्त थीं। उपलब्ध प्रमाणों से स्पष्ट नहीं होता कि कौन किसके पश्चात् सिंहासनारूढ़ हुआ था।

परिशिष्ट 'क'

अशोक के धर्म-प्रचार का पश्चिमी एशिया में प्रभाव[1]

भारतवर्ष की पश्चिमी सीमा की उस ओर के विस्तृत भूगाग की चर्चा हमें 'बावेरु जातक' तथा सम्भवतः 'सुस्सोन्दी जातक' जैसे प्राचीन बौद्ध-ग्रन्थों में मिलती है, तथा ईसा से तीसरी शताब्दी पूर्व के बुद्ध-अभिलेखों में यहाँ के राजाओं का भी उल्लेख आया है। अशोक के विवरणों से ज्ञात होता है कि मगध के धर्म-प्रचारकों का ध्यान पूर्व की ओर न होकर पश्चिम की ओर अधिक था। श्रीलंका[2] के इतिहास में प्राचीन बौद्धधर्म-प्रचारकों का जो विवरण मिलता है, उसमें भी यवनों के देश की चर्चा है। इसके अनुसार, "महारक्खित ने जनता के बीच 'कालकाराम सुत्तन्त' का प्रचार किया जिसके परिणामस्वरूप १७० हज़ार व्यक्तियों को मोक्ष मिला, तथा दस सहस्र व्यक्तियों को 'पब्बज्जा' मिली।" यह अवश्य कहा जा सकता है कि यहाँ यवन-देश का अर्थ क़ाबुल के कुछ भागों से ही है; यवनराज एण्टिओकोस[3] तथा उसके पड़ोसी राजा तोलेमी, एण्टिगोनोस, मगस तथा सिकन्दर आदि के प्रदेशों से नहीं है जिनका उल्लेख अशोक के दूसरे तथा तेरहवें पाषाण-लेखों में मिलता है। राइज़ डेविड्स इन लेखों से यही निष्कर्ष निकालते हैं कि यवन-प्रदेश में केवल प्रचार मात्र में ही अशोक को सफलता मिली थी। उनका कथन है, "बहुत सम्भव है कि धर्म-प्रचार के महत्त्व को बढ़ा-चढ़ा कर प्रतिपादित करने के लिए ग्रीक-नरेशों का यहाँ केवल उल्लेख मात्र ही हुआ है,

---

[1] बी० सी० लॉ द्वारा सम्पादित *Buddhistic Studies* नामक लेख के आधार पर।

[2] महावंश, Ch. XII.

[3] डॉ० जार्ल कार्पेण्टियर ने '*A Volume of Indian Studies presented to Professor E. J. Rapson*' में एक लेख लिखा था, जिसमें अपने प्रिन्सेप (हल्टज़, अशोक, xxxi) के इस विचार को पुनः प्रतिपादित किया कि अशोक ने एण्टिओकोस सोटर (सी० २८१-६१) का 'अंतियक' शब्द से उल्लेख किया था। उसका अभिप्राय एण्टिओकोस थियोस (२६१-४१) से नहीं था। परन्तु, उसके इस सिद्धान्त का अर्थ यह होगा कि चन्द्रगुप्त ईसापूर्व ३२७-२५ में सिंहासनारूढ़ हुआ, तथा जस्टिन एवं प्लूटार्क द्वारा दी गई कथा, कि उसने सिकन्दर से भेंट की थी, केवल एक कपोल-कल्पना ही थी। यह सिद्धान्त न केवल जस्टिन तथा प्लूटार्क के साक्ष्य के विरुद्ध है, वरन् अब तक चन्द्रगुप्त के पूर्वजों के संबंध में जो कुछ भी ज्ञात है, इससे वह भी ग़लत हो जाता है। इस बात का उल्लेख कहीं भी नहीं मिलता कि चन्द्रगुप्त नाई-वंश का था। ब्राह्मण तथा बौद्ध-लेखकों ने उसके पूर्वजों को राज-परिवार से ही सम्बद्ध बताया है।

जबकि वास्तव में वहाँ कोई धर्म-प्रचारक भेजा भी न गया हो।"[१] सर फ़्लिण्डर्स पेत्रे का मत है कि तोलेमी के शासन-काल में बौद्ध-पर्व, उत्सव-समारोह तथा स्वयं बौद्ध-धर्म के अनुयायी, आदि मिस्र तक पहुँच चुके थे। उनकी इस धारणा का आधार मेम्फ़िस में प्राप्त भारतीय मूर्त्तियाँ हैं। थिबेद में प्राप्त एक लेख से ज्ञात होता है कि 'सोफ़न नामक भारतीय'[२] ने उसे समर्पित किया था।

ग्यारहवीं शताब्दी में अल्बेरूनी[३] ने लिखा है, "प्राचीन काल में खुरासान, फ़ारस, ईराक, मोसुल तथा सीरिया की सीमा तक फैले हुए प्रदेश के लोग बौद्धधर्म के मानने वाले थे। आधरबैजान से फिर ज़रथुस्ट्र ने आकर बल्ख़ (बक्त्र) में मागीधर्म का प्रचार आरम्भ किया। राजा गुष्तास्प उसके विचारों से प्रभावित हुआ तथा उसके पुत्र इस्फ़ेन्दियाद (Isfendiyad) ने शक्ति एवं सन्धि दोनों ही तरीक़ों से इस धर्म का प्रचार पूर्व एवं पश्चिम में किया। चीन की सीमा से लेकर यूनान राज्य तक अपने सम्पूर्ण राज्य-क्षेत्र में उसने अग्नि-देवता के मन्दिर बनवाए। उसके उत्तराधिकारियों ने फ़ारस तथा ईराक में पारसी-धर्म को अनिवार्य कर दिया। परिणामस्वरूप इन देशों से बौद्धधर्म मानने वालों को निष्कासित कर दिया गया और उन्हें बल्ख़ के पूर्वी प्रदेशों में शरण लेनी पड़ी।……इसके पश्चात् इस्लाम-धर्म का प्रादुर्भाव हुआ।" सम्भव है कि उपर्युक्त विवरण पूर्ण रूप से सही न हो, फिर भी यह कहना कि पारसी-धर्म के पूर्व ही पश्चिमी एशिया में बौद्धधर्म का प्रचलन था, भ्रमात्मक होगा। परन्तु यह कथन कि अल्बेरूनी से बहुत पहले पश्चिमी एशिया में शाक्यमुनि का धर्म प्रचलित था, परन्तु बाद में पारसी एवं इस्लाम धर्मवालों ने इसे नष्ट कर दिया, मान्य है। 'भूरिदत्त जातक'[४] में भी इसका उल्लेख है कि बौद्धधर्म वालों की अग्नि-उपासकों (पारसियों) से शत्रुता थी और ऐसा अनुमान भी लगाया जाता है कि पारसी धर्म-ग्रन्थों में भी बौद्ध-धर्मावलम्बियों से संघर्ष की चर्चा है।[५]

अल्बेरूनी से चार शताब्दी पूर्व ह्वेनसांग ने लिखा है कि फ़ारस के एक प्रदेश लांग-की (का)-लो में लगभग १०० मठ तथा ६,००० से भी अधिक महायान एवं हीनयान के अनुयायी थे। फ़ारस (पो-ला-सी) में ही दो या तीन संघाराम थे, जिनमें कई सौ भिक्षु, सरवास्तिवादिन विचारधारा के अनुसार, हीनयान का अध्ययन करते थे। इसी देश में राजा के राजभवन में शाक्य मुनि बुद्ध का एक पात्र भी मिला है।[६]

ऐसा प्रतीत होता है कि चीनी यात्री स्वयं फ़ारस नहीं गया था। फिर भी, इस में सन्देह नहीं कि ईरान में बौद्धधर्म के अनुयायी, संघाराम तथा मठादि थे। स्टेन

---

१. *Buddhist India*, p. 298.

२. Mahaffy, *A History of Egypt under the Ptolemaic Dynasty*, 155 f.

३. Sachau, *Alberuni's India*, Vol. I, p. 21.

४. No. 543.

५. Sir Charles Eliot, *Hinduism and Buddhism*, III, 450.

६. Beal, *Records of the Western World*, Vol. II, p. 277-78; Watters, *Yuan Chwang*, II, 257.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ने सीस्तान[1] प्रदेश में हेलमण्ड नामक स्थान के दलदलों में एक ऐसा ही मठ खोज निकाला है। मनीशियन धर्म के प्रवर्त्तक मानी, जिनका जन्म सन् २१५-१६ ई० में बेबीलोनिया के टेसीफ़ान नामक स्थान पर हुआ था, तथा सन् २४२ ई० में जिन्होंने सम्भवतः अपने धर्म का प्रचार आरम्भ कर दिया था, के विचारों पर भी बौद्धधर्म का प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है।[2] अपनी पुस्तक शाबूरक़ान (शापुरखान) में उन्होंने भगवान बुद्ध को ईश्वर का संदेशवाहक कहा है। लेगि (Legge) तथा इलियट ने मनीशियन धर्म की एक पुस्तक का उल्लेख किया है, जिसे बौद्ध-सूत्रों की तरह लिखा गया है। इसमें मानी को तथागत कहा गया है तथा बुद्ध एवं बोधिसत्त्व का भी उल्लेख मिलता है। बनियुनॉनजिओ की पुस्तक 'Catalogue of the Chinese Translation of the Buddhist Tripitak' (App. II, No. 4) में हमें एक ऐसे पार्थियन राजकुमार का उल्लेख मिलता है, जो सन् १४८ ई० पूर्व में बौद्ध-श्रमण (भिक्षु) हो गया था। अपनी पुस्तक 'History of Fine Arts in India and Ceylon' में डॉ० स्मिथ ने चार भुजाओं वाले बौद्ध संन्यासी अथवा बोधिसत्त्व[3] का उल्लेख किया है, जिसके काली मूंछें एवं दाढ़ी है तथा जो फ़ारसवासियों के वेश में है। उसके बायें हाथ में वज्र है। यह तस्वीर तुर्किस्तान में 'दन्दान-उलिक' नामक स्थान में मिली है। निस्संदेह इस प्रकार की तस्वीरें ईरान में विकसित बौद्धधर्म के प्रभाव से ही बनी होंगी, और बौद्धर्म का यह रूप आठवीं शती तक वहाँ लोकप्रिय रहा होगा, क्योंकि 'दन्दान-उलिक' में प्राप्त लकड़ी और प्लास्टर पर बने इन फ़्रेस्कोज का समय स्मिथ ने आठवीं शताब्दी निर्धारित किया है।

पश्चिमी एशिया में बौद्ध-साहित्य का कितना प्रभाव पड़ा, कहा नहीं जा सकता। सर चार्ल्स इलियट कुछ मनीशियन पुस्तकों तथा बौद्ध-सुत्तों एवं 'पातिमोक्ख' नें बहुत कुछ समानता पाते हैं। उनका कथन है कि येरुसलेम के सिरिल के अनुसार, मनीशियन धार्मिक पुस्तकें किसी सीथियन विद्वान् द्वारा लिखी गई थीं तथा उसके शिष्य टेरेबिन्थस, जिसने अपना नाम बदल कर बोद्दस[4] (बुद्ध) रख लिया था, ने उन्हें संशोधित किया था। इसमें हमें शाक्यमुनि बुद्ध तथा बोधिवृक्ष का संकेत मिलता है। यह अत्यन्त आश्चर्य की बात है कि बहुत-सी जातक कथाओं तथा 'अरेबियन नाइट्स'

---

[1] Sir Charles Eliot, *Hinduism and Buddhism*, III, 3.

[2] *Ibid.*, p. 446; *The Dacca University Journal*, Feb., 1926, pp. 108, 111; *JRAS*, 1913, 69, 76, 81.

[3] p. 310.

[4] *Cf.* McCrindle, *Ancient India as described in Classical Literature*, p. 185. टेरेबिन्थस ने घोषित किया कि वह मिस्र की सभी विद्याओं में पारंगत था तथा अब उसका नाम 'टेरेबिन्थस' न होकर नवीन बुद्ध (बुद्दस) था। साथ ही यह कि उसका जन्म एक कुवाँरी कन्या से हुआ था। यह सीथियनुस का शिष्य था, जिसका जन्म फ़िलीस्तीन में हुआ था और जिसने भारत के साथ व्यापार किया था।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

की कथाओं में बहुत कुछ समानता है। उदाहरण के लिए, समुग्ग जातक[१] में एक ऐसे राक्षस की कथा है, जो अपनी सुन्दर पत्नी को संदूक में बन्द कर इसलिए उसकी रक्षा करता था कि वह कहीं इधर-उधर न जा सके। परन्तु, इतने पर भी वह उसे दूसरों के साथ रँगरेलियाँ करने से रोक न पाया। इस कथा का सम्पूर्ण कथानक 'अरेबियन नाइट्स'[२] में मिलता है। जातक में कहा गया है कि "स्त्रियों एवं उनकी क्रूरताओं से दूर रह कर ही कोई एकान्त-वास का सच्चा सुख एवं आनन्द प्राप्त कर सकता है।" इसी से मिलता-जुलता विवरण 'अरेबियन नाइट्स' में है—"किसी भी स्त्री का भरोसा न करो और न उसकी शपथ का विश्वास करो; क्योंकि उनकी प्रसन्नता एवं अप्रसन्नता उनकी भावनाओं पर निर्भर करती है। उनका स्नेह-दान झूठा है, क्योंकि बेवफ़ाई उनके कपड़ों में छिपी रहती है।" आज स्थिति चाहे जो कुछ भी हो, परन्तु अति प्राचीन काल में पश्चिमी एशिया पर बौद्धधर्म का बौद्धिक एवं आध्यात्मिक प्रभाव अवश्य ही था।

परिशिष्ट 'ख'

कनिष्क और रुद्रदामन-प्रथम[३] की तिथियों के सम्बन्ध में एक टिप्पणी

कुछ वर्ष पूर्व[४] श्री हरिचरण घोष तथा प्रोफ़ेसर जयचन्द्र विद्यालंकार ने कनिष्क की तिथि के सम्बन्ध में दो बहुत ही रोचक लेख लिखे हैं। विद्यालंकारजी डॉ० स्टेन कोनोव तथा डॉ० वॉन विज्क के विचारों से सहमत होते हुए कहते हैं कि महान् कुषाण-राजा का राज्य-काल सन् १२८-१२९ ई० था। इस पुस्तक में दी गई व्याख्या की आलोचना करते हुए वे कहते हैं कि कनिष्क-प्रथम का राज्य 'सिन्धु नदी की निचली घाटी' (वास्तव में 'सिन्द' शब्द न होकर यही शब्द प्रयुक्त हुआ है) में रुद्रदामन-प्रथम के काल में नहीं था। रुद्रदामन-प्रथम ने महाक्षत्रप की उपाधि स्वयं

---

[१] No. 436.

[२] Burton, *The Book of Thousand Nights*, I, 12 ff; Olcott, *Stories from the Arabian Nights*, p. 3; Lane's *Arabian Nights*, pp. 8-9. इसी प्रकार की एक कथा कथा-सरित्सागर (लम्बक X, तरंग 8) में भी मिलती है (Penzer, *The Ocean of Story*, Vol. II, pp. 151-52)। "स्त्रियों के प्रति इतना आसक्त होने से कष्ट ही कष्ट है, जबकि उनके प्रति उदासीन रह कर मनुष्य आवागमन से मुक्ति पा सकता है।"

[३] *IHQ*, 1930, p. 149 ff.

[४] *IHQ*, Vol. No. 1, March, 1929, pp. 49-80 and *JBORS*, XV, parts I & II, March-June, 1929, pp. 47-63.

ग्रहण की थी। प्रो० कोनोव तथा डॉ० वान विज्क के निष्कर्ष के सम्बन्ध में प्रो० रैप्सन[1] की आलोचना के पश्चात् कुछ भी कहने को शेष नहीं रह जाता। इस लेख में हम केवल प्रो० जयचन्द्र विद्यालंकार तथा श्री हरिचरण घोष की पुस्तकों में दिये गये मत के आधार पर की गई आलोचना के सम्बन्ध में कुछ कहने तक ही अपने को सीमित रखेंगे।

प्रोफ़ेसर महोदय ने इस सम्बन्ध में एक भी शब्द नहीं कहा है कि कनिष्क की तिथि १-२३; वासिष्क की तिथि २४-२८; हुविष्क की तिथि ३१[2]-६० तथा वासुदेव की तिथि ६७-९८ यह सिद्ध करती है कि उनमें एक क्रम है। दूसरे शब्दों में, कनिष्क को इस सम्वत् का प्रवर्त्तक कहा गया है। परन्तु, हमें दूसरी शताब्दी में प्रारम्भ होने वाले ऐसे किसी भी सम्वत् का पता नहीं है जो उत्तर-पश्चिम भारत में प्रचलित रहा हो। उन्होंने अपना सारा ध्यान यह सिद्ध करने में लगाया है कि सन् १३० से १५० ई० के बीच सिन्ध-सौवीर में रुद्रदामन का राज्य था। परन्तु, इसका यह अर्थ नहीं कि सुई-विहार तथा मुल्तान पर भी उसका अधिकार था। अतः इससे यही ज्ञात होता है कि इस सम्वत् के ११वें वर्ष में, अर्थात् सन् १२८-२९ ई० में, अथवा लगभग १४० ई० में सुई-विहार पर कनिष्क का ही पूर्ण अधिकार था। इस तरह सिन्ध-सौवीर पर महाक्षत्रप रुद्रदामन का अधिकार होने से ऐतिहासिक तथ्यों में कोई गड़बड़ी नहीं होती। प्रोफ़ेसर महोदय इस बारे में स्पष्ट नहीं हैं कि रुद्रदामन की राज्य-सीमा को इस तरह सीमित कर देने से उस तथ्य का क्या होगा, जिसके अनुसार महाक्षत्रप रुद्रदामन ने शक्तिशाली यौधेयों को उनके अपने ही राज्य, जो सुई-विहार के भी उत्तर में स्थित था, में उन्हें पराजित किया था। यदि सुई-विहार पर कनिष्क का अधिकार था तो महाक्षत्रप उससे भी उत्तर में कैसे जा सका? उन्होंने इस कठिनाई का हल यह कहकर किया कि उत्तर में कौसान (कुषाण?) सेना का दबाव पड़ने पर यौधेयों को विवश होकर मारवाड़ की मरुभूमि की ओर जाना पड़ा। कठिनाइयों के सम्बन्ध में इस प्रकार की व्याख्या तनिक भी विश्वास के योग्य नहीं है; वह भी तब, जबकि वह मरु-प्रदेश, जिसका उल्लेख प्रोफ़ेसर साहब ने किया है, रुद्रदामन के अपने ही अभिलेख के अनुसार उसके राज्य के अन्तर्गत था।

परन्तु प्रोफ़ेसर महोदय की यह धारणा कि सिन्ध-सौवीर में मुल्तान तक का प्रदेश सम्मिलित नहीं था, क्या युक्तिसंगत है? अल्बेरूनी, जिसने अपने कथन को भौगोलिक तथ्यों, पुराणों तथा बृहत्संहिता पर आधारित किया है, कहता है कि सौवीर का अर्थ मुल्तान तथा झारवार[3] (Jahravar) से ही था। इसके विपरीत, प्रो० विद्यालंकार 'युवान च्वांग' के मत का समर्थन करते हुए कहते हैं कि 'माउ-लो-सान-पु-लु', अर्थात् मूल-स्थान-पुर अथवा मुल्तान मध्य पंजाब के चेक अथवा टक्क का एक उपशासित प्रदेश था। इस सम्बन्ध में यह याद रखना चाहिये कि चीनी यात्री का 'उपशासित' शब्द से अर्थ राजनीतिक उपशासन से है, भौगोलिक 'अन्तर्वेश' से नहीं। भारत ग्रेट ब्रिटेन का उपशासित था, परन्तु भौगोलिक दृष्टि से यह नहीं कहा जा

---

[1] *JRAS*, 1930, p. 186-202.

[2] हुविष्क की सबसे प्राचीन ज्ञात तिथि २८ है।

[3] 302.

सकता कि वह ब्रिटिश द्वीप का एक अंग था। दूसरी ओर अल्बेरूनी इस बात का तनिक भी संकेत नहीं देता कि सौवीर को मुल्तान तथा झारवार कहने से उसका अभिप्राय यही था कि राजनीतिक दृष्टि से मुल्तान सिन्ध का उपशासित था। यहाँ पर उसका अर्थ केवल भौगोलिक दृष्टि से है। उसने वराहमिहिर की संहिता से देशों का नाम लेकर अपनी धारणा सामने रक्खी है। मुल्तान को सिन्ध का राजनीतिक उपशासित बनाना तो दूर, उसने अत्यन्त सावधानी के साथ 'सौवीर, अर्थात् मुल्तान तथा झारवार' से अलग सिन्ध का उल्लेख किया है।

यह विचार, कि प्राचीन सौवीर केवल दक्षिणी सिन्ध तक ही सीमित था तथा सिन्ध एवं सौवीर और कुछ न होकर आधुनिक सिन्ध थे, किसी भी तथ्य के द्वारा प्रमाणित नहीं किया जा सका है। युवान च्वांग सिन-तू से पूर्व की ओर जाकर, सिन्धु को पारकर, ९००ली पूरब की ओर स्थित माउ-लो-सान-पु-लु देश[1] में पहुँचा। इससे सिद्ध होता है कि माउ-लो-सान-पु-लु (मुल्तान) के पश्चिम में सिन-तू था तथा वह सिन्धु नदी के पश्चिमी तट पर था। वात्स्यायन के कामसूत्र के टीकाकार[2] ने इस सम्बन्ध में स्पष्ट रूप से '**सैन्धवानामिति**'; '**सिन्धुनामा नदस्तस्य पश्चिमेन सिन्धदेशस्तत्र भावनाम्**' लिखा है। निस्संदेह आधुनिक सिन्ध का एक बहुत बड़ा भाग प्राचीन सिन-तू, अर्थात् सिन्ध से स्पष्ट रूप से अलग था। साथ ही युवान च्वांग के समय में ए-तीन-पो-चिह-लो, पि-तो-शिह-लो तथा ए-फ़ॉन-तू उसी के एक भाग थे। आधुनिक सिन्ध का कुछ भाग सम्भवतः सौवीर में सम्मिलित रहा हो; तथा इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि उसकी दक्षिणी सीमा सागर को छूती थी, क्योंकि 'मिलिन्दपञ्हो' में इस देश का उल्लेख उन देशों की उस सूची में हुआ है, जहाँ बहुत से जलयान आकर एकत्र होते थे। 'पेरिप्लस' के लेखक के द्वारा हमें ज्ञात होता है कि बारबैरिकम (सिन्धु नदी के मुहाने पर) में आकर जलयान ठहरते थे। अल्बेरूनी के विवरण से स्पष्ट है कि सौवीर की उत्तरी सीमा मुल्तान तक पहुँचती थी। अल्बेरूनी-जैसा पुराणों का प्रकाण्ड विद्वान् कोई ऐसी बात नहीं कह सकता जो आधारहीन अथवा ग़लत हो। वास्तव में कुछ पुराणों से भी स्पष्ट हो जाता है कि मुल्तान सौवीर का ही अभिन्न अंग था। उदाहरण के लिए, स्कन्दपुराण[3] में 'मूल-स्थान' अथवा 'मुल्तान' के 'सूर्यमंदिर' के विषय में उल्लेख है कि यह मंदिर देविका नदी के तट पर बना हुआ था—

ततो गच्छेन्महादेवि मूलस्थानमिति श्रुतम्
देविकायास्तटे रम्ये भास्करं वारितस्करम्।

अग्निपुराण[4] में देविका को सौवीर राज्य से विशेष रूप से सम्बद्ध किया गया है·—

---

[1] Watters, II, 254.

[2] देखिये, बनारस-संस्करण, p. 295.

[3] प्रभास-क्षेत्र-माहात्म्य, Ch. 278.

[4] Ch. 200.

सौवीरराज्यस्य पुरा मैत्रेयोभूत् पुरोहितः
तेन चायतनं विष्णोः कारितं देविकातटे ।

युवान च्वांग के अनुसार, सिन-तू तथा मुलतान सिन्धु नदी के तट पर आमने-सामने बसे, एक-दूसरे के पड़ोसी राज्य थे। यही तथ्य, कि सिन्धु एवं सौवीर एक-दूसरे के अत्यन्त निकट थे, प्राचीन साहित्य से भी सिद्ध होता है—

पतिः सौवीरसिन्धूनां दुष्टभावो जयद्रथः ।[1]
कच्चिदेकः शिवीनाढ्यान् सौवीरान् सहसिन्धुभिः ।[2]
शिविसौवीरसिन्धूनां विषादश्चाप्यजायत ।[3]

अतः एक ही समय में सिन्ध एवं सौवीर पर रुद्रदामन का अधिकार (उसी अर्थ में जिसमें पुराणों, वात्स्यायन के 'कामसूत्र' के टीकाकार, युवान च्वांग तथा अल्बेरूनी ने समझा था) तथा सुई-विहार पर कनिष्क का अधिकार होना समझ में नहीं आता।

सौवीर को मुल्तान तथा झारवार सिद्ध करने के अतिरिक्त क्या यह तर्क असंगत प्रतीत होता है कि जिस शक्ति का अधिकार सिन्ध एवं मरु पर था, तथा जिसने जोहियावार के यौधेयों को युद्ध में परास्त किया था, उसी महाक्षत्रप रुद्रदामन का अधिकार 'सुई-विहार' पर भी था ?

श्री एच० सी० घोष[4] का कथन है कि हमारे पास ऐसा कोई भी प्रमाण नहीं है, जिसके आधार पर कहा जा सके कि कम से कम सन् १३६ ई० से सिन्ध एवं सौवीर पर रुद्रदामन का अधिकार था। उनकी धारणा यह भी है कि कनिष्क ने कोई सम्वत् चलाया, इस पर तर्क की गुंजाइश है। हम यह जानते हैं कि सन् १५० में "रुद्रदामन ने सम्पूर्ण पूर्वी एवं पश्चिमी आकरावन्ती, अनुपनीवृद, आनर्त्त, सुराष्ट्र, स्वभ्र, मरु, कच्छ, सिन्ध, सौवीर, कुकुर, अपरान्त, निषाद तथा अन्य देशों पर अपनी शक्ति से विजय प्राप्त की थी।" इतने देशों को जीतने में निस्संदेह इसे बहुत समय लगा होगा। अन्धौ-अभिलेखों से ज्ञात होता है कि इनमें से एक देश, सम्भवतः कच्छ, पर सन् १३० ई० में ही इस महाक्षत्रप का अधिकार हो गया था। 'Political Histoy of Ancient India' (द्वितीय संस्करण) के पृष्ट २७७ पर बताया गया है कि सीथिया (सिन्धु-घाटी के दक्षिणी भाग) की राजधानी का, 'पेरीप्लस' के समय में, नाम 'मिन्नगर' था। स्पष्ट है कि यह नाम इसीदोर द्वारा वर्णित शकस्थान में, मिन-नगर के आधार पर रखा गया होगा। रैप्सन ने बताया है कि चाश्तान के पश्चिमी क्षत्रपों के नामों में एक विशेषता यह थी कि उनके अंत में 'दामन' (-दम) शब्द का प्रयोग होता था। परन्तु, यही शब्द वोनोन्स के ईन्जियन-वंश के एक राजकुमार के नाम के साथ भी

---

[1] महाभारत, III, Ch. 266.

[2] महाभारत, III, Ch. 266.

[3] महाभारत, III, Ch. 270.

[4] *IHQ*, 1929, p. 79.

पाया गया है। अंत में कार्द्दमक-वंश, जिसमें महाक्षत्रप रुद्र की पुत्री उत्पन्न हुई थी, का नाम फ़ारस की एक नदी 'कार्द्दम' से लिया गया है।

उपर्युक्त तथ्यों से यही निष्कर्ष निकलता है कि शक जाति जिससे चाश्तान तथा रुद्रदामन सम्बन्धित थे, ईरान के शकस्थान से निकल कर, सिन्धु-घाटी के दक्षिणी भाग से होकर, कच्छ तथा पश्चिमी भारत के अन्य नगरों में फैली थी। इस सत्य के साथ ही यह देखते हुए कि कच्छ सिन्धु-घाटी के दक्षिणी भाग से सम्बन्धित था, यही विश्वास होता है कि सिन्ध तथा सौवीर की विजय-तिथियाँ एक-दूसरे से बहुत दूर नहीं थीं। साथ ही, यह भी सम्भव है कि इनकी विजय कच्छ-विजय के पूर्व हुई हो, क्योंकि महाक्षत्रप का राज्य इन नगरों पर सन् १५० ई० में भी था। अतः यही न्यायसंगत प्रतीत होता है कि उसका राज्य इन पर सी० १३६ ई० से ही था।

श्री घोष के दूसरे कथन के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि कनिष्क की तिथि १-२३, वासिष्क की तिथि २४-२८, हुविष्क की तिथि २८-६० तथा वासुदेव की तिथि ६७-९८ से इस बात का संकेत मिलता है कि वे सब क्रमशः एक के बाद एक हुए थे। यदि हम यह अस्वीकार कर दें कि कनिष्क ने कोई सम्वत् चलाया था, तो उसके उत्तराधिकारियों—वासिष्क, हुविष्क तथा वासुदेव—की तिथियाँ सम्वत् में न होकर सन् में होंगी, जिन्हें किसी भी दशा में स्वीकार नहीं किया जा सकता। कोई भी विद्वान् यह नहीं कहेगा कि वासुदेव की तिथि सन् ६७-९८ के बीच मान ली जाये।

परिशिष्ट 'ग'

उत्तर गुप्त-राजाओं[1] पर एक टिप्पणी

अभी हाल में ही प्रो० आर० डी० बनर्जी ने कहा है कि माधवगुप्त के पिता, हर्ष के साथी, तथा अपशद-अभिलेख के महासेनगुप्त पूर्वी मालव के शासक कभी भी नहीं हो सकते। दूसरे, जिस सुस्थितवर्मन का उल्लेख अपशद-अभिलेख में मिलता है तथा जो लोहित अथवा लौहित्य प्रदेश में महामेनगुप्त द्वारा पराजित हुआ था, वह मौखरी-वंश का न होकर कामरूप का शासक था।

अपशद-अभिलेख तथा निधनपुर-प्लेट का जिन लोगों ने गहन अध्ययन किया है, वे तुरन्त इस दूसरे सिद्धान्त को स्वीकार कर लेंगे। यद्यपि आज भी अनेक पश्चिमी विद्वान् ऐसे भी मिलेंगे जो पता नहीं क्यों इसके विपरीत विचारों के हैं।[2] जहाँ तक

---

[1] सितम्बर-दिसम्बर, १९२९ में *JBORS* (p. 561) में प्रकाशित एक लेख के आधार पर।

[2] *JRAS*, 1928, July, p. 689 f.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पहली बात का प्रश्न है कि महासेनगुप्त पूर्वी मालव अथवा मगध का शासक था, प्रत्येक जिज्ञासु को निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना होगा--

(i) जीवितगुप्त द्वितीय देवबरणार्क-अभिलेख में, जिसमें दक्षिण बिहार के एक ग्रामदान[1] का विवरण दिया हुआ है, बालादित्यदेव तथा उसके पश्चात् मौखरी सर्ववर्मन तथा अवन्तिवर्मन का उल्लेख आता है। इस ग्रामदान आदि के पूर्व इस सम्बन्ध में एक शब्द भी उनके समकालीन अंतिम गुप्त-राजाओं के बारे में नहीं कहा गया है। निस्संदेह यह लेख अस्त-व्यस्त है, परन्तु सर्ववर्मन तथा अवन्तिवर्मन का अधिकार इस बात को सिद्ध करता है कि उनके समकालीन अंतिम गुप्त-राजाओं का वहाँ सीधा शासन नहीं था।

(ii) बारबरा तथा नागार्जुनि पहाड़ियों के गुफालेखों से ज्ञात होता है कि मौखरी 'वर्मनों' की एक दूसरी भी शाखा थी जो अंतिम गुप्त-राजाओं के समय में गया ज़िले पर उनके प्रतिनिधि के रूप में शासन करती थी।

(iii) हर्ष के समय में मगध की यात्रा करने वाले चीनी यात्री ने लिखा है कि उस समय पूर्णवर्मन मगध का शासक था।[2] मगध के सम्बन्ध में उसने माधवगुप्त अथवा उसके पिता के बारे में एक भी शब्द नहीं लिखा है।

(iv) महाकवि बाण ने अवश्य ही हर्ष के साथी माधवगुप्त का उल्लेख किया है, परन्तु उसने भी स्पष्ट रूप से लिखा है कि उसके पिता मगध के नहीं, वरन् मालव के शासक थे। इस महान् सम्राट् के जीवनी-लेखक को इस बात का कोई पता नहीं था कि माधवगुप्त नाम के दो व्यक्ति थे, जिनमें से एक शायद मगध-सम्राट् का पुत्र रहा हो।

उपर्युक्त तथ्यों से दो बातें स्पष्ट होती हैं: (१) केवल एक ही माधवगुप्त, जिसका ज्ञान बाण को था और जो उसके संरक्षक (हर्ष) का मित्र था, का पिता मालव का राजा था। दूसरे, हर्षवर्धन द्वारा ६४१ ई०[3] में जीता गया मगध वर्मनों के अधिकार में था, गुप्त-राजाओं के अधिकार में नहीं। महाशिवगुप्त के सीरपुर-पाषाण-अभिलेख के समय मगध पर वर्मन-राजाओं का ही आधिपत्य था।

हर्ष के मित्र माधवगुप्त के पिता महासेनगुप्त मालव के शासक थे।[4] इसके विपरीत, प्रो० बनर्जी का सबसे प्रबल तर्क यह है कि मालव-नरेश के लिए यह कैसे सम्भव हुआ कि बिना किसी घोर विरोध के वह लोहित के तट तक पहुँच सके, जबकि बीच में दूसरे विरोधी राज्य स्थित थे। परन्तु प्रो० बनर्जी ने इसका बड़ा ही विचित्र

---

[1] डॉ० आर० सी० मजूमदार के इस मत की, कि यह गाँव उत्तर प्रदेश में था, डॉ० सरकार ने आलोचना करते हुए कहा है कि फ़्लीट ने गाँव का जो नाम पढ़ा है (जिस पर डॉ० मजूमदार अपना मत आधारित करते हैं), वह भ्रमात्मक है; अतः उसे स्वीकार नहीं किया जा सकता।

[2] Watters, III, 115.

[3] *Ind. Ant.*, IX, 19.

[4] *Political History of Ancient India*, Second Edition, p. 373.

समाधान प्रस्तुत किया । उन्होंने महासेनगुप्त को मगध का सम्राट् मान लिया और यह कल्पना कर ली कि सम्भवतः असम मगध के सीमान्त पर ही अवस्थित था और राधा तथा वंग अथवा मिथिला और वरेन्द्र मगध राज्य के अन्तर्गत शामिल थे । यद्यपि इसके लिए उनके पास कोई प्रमाण नहीं था, फिर भी हमें उनकी इस धारणा को स्वीकार करने के लिए इसलिए कहा गया कि इसके विना महासेनगुप्त का सुस्थितवर्मन को पराजित करना सम्भव नहीं दिखता ।

यशोधर्मन के मंदसौर-अभिलेख से ज्ञात होता है कि मालव का कोई राजा युद्ध करते-करते लोहित (ब्रह्मपुत्र) के तट तक जा पहुँचा था । जहाँ तक महासेनगुप्त का प्रश्न है, अपशद-अभिलेख का सावधानी से अध्ययन करने वाला इतिहास का कोई भी सचेत विद्यार्थी यह समझ सकता है कि लौहित्य तक पहुँचने तथा उस पर अधिकार जमाने के लिए महासेनगुप्त के पूर्व-सम्राटों ने रास्ता साफ कर दिया था । उसके पितामह कुमारगुप्त ने प्रयाग तक विजय-पताका फहरायी थी, जबकि उसके पिता दामोदरगुप्त ने शक्तिशाली हाथियों की पंक्तियों को तोड़कर मौखरियों के गर्व को चूर किया था । हमने देखा है कि हर्ष द्वारा मगध-विजय के पूर्व उस पर इसी मौखरी-वंश के शक्तिशाली वर्मनों का आधिपत्य था । दूसरी ओर, ईशानवर्मन मौखरी ने अपने बाहुबल द्वारा कुछ समय के लिए गौड़ों की बढ़ती हुई शक्ति को विलकुल ही रोक दिया था । अतः, समझ में नहीं आता कि अब ऐसी कौन-सी शक्ति शेष रह गयी थी, जो युद्धक्षेत्र में प्राण त्यागने वाले दामोदरगुप्त के पुत्र एवं उत्तराधिकारी महासेनगुप्त को लौहित्य के तट तक पहुँचने से रोक सके ।[1]

परिशिष्ट 'घ'

प्रारम्भिक गुप्त-साम्राज्य का पतन[2]

प्रतिभा-सम्पन्न समुद्रगुप्त एवं विक्रमादित्य ने अपने पराक्रम से जिस साम्राज्य का निर्माण किया था, वह पाँचवीं शताब्दी के अंत में अत्यन्त द्रुत गति से पतन की ओर अग्रसर होने लगा था । प्रारम्भिक गुप्त-वंश का अंतिम शासक समुद्रगुप्त था जिसने सुदूर पश्चिमी प्रान्तों पर अपना अधिकार बनाये रखा था । सन् ४६७ ई० में उसकी मृत्यु के पश्चात् हमारे पास ऐसा कोई प्रमाण नहीं, जिसके आधार पर कहा

---

[1] *Cf.* Fleet, *Corpus*, III, pp. 203, 206; *Cf.* also वीरशय्या, *motif ante*, 606 n l.

[2] सर्वप्रथम अप्रैल सन्, १९३० के 'कलकत्ता-रिव्यू' में प्रकाशित ।

जा सके कि गुप्त-सम्राटों का सम्बन्ध सुराष्ट्र अथवा पश्चिमी मालव[1] के एक बड़े भाग से किंचित् मात्र भी था। कदाचित् बुधगुप्त (सन् ४७६-७७ से सी० ४९५ ई०) वह अंतिम गुप्त-सम्राट् था जिसकी सत्ता गंगा तथा नर्मदा के तट तक स्वीकार की जाती थी। उसके पश्चात् जो भी राजा सिहासनासीन हुए, उन्होंने किसी प्रकार पूर्वी मालव तथा उत्तरी बंगाल पर अपना अधिकार बनाये रखा। परन्तु उन्हें अपने चारों ओर के शत्रुओं से बराबर युद्ध करते रहना पड़ा। यदि जिनसेन[2] द्वारा उल्लिखित जनुश्रुति को सच माना जाय तो गुप्त-वंश का ह्रास सन् ५५१ ई० (३२०+२३१) में हुआ।

गुप्तानां च शत-द्वयं एकत्रिंशच्च वर्षाणि काल-विद्भिरुदाहृतम्।[3]

इसके पश्चात् आर्यावर्त्त मुखर (*cir.* ५५४ ई०)[4] तथा पुष्यभूति (हर्ष का वंश, सन् ६०६-४७ ई०) के अधिकार में आ गया। इन राजवंशों के समय में राजनीति

---

[1] इसका पता नहीं कि वलभी का राजा द्रोणसिंह, जिसके लिए 'परम-स्वामिन्' उपाधि का उल्लेख किया गया है, कौन था? यह धारणा कि उसका सम्बन्ध गुप्त-वंश से था, बहुत तर्कसंगत नहीं लगती। कुछ विद्वानों का कहना है कि जिस संवत् का प्रयोग वहाँ हुआ है, वह गुप्त-संवत् है (*IC*, V, 409)। परन्तु, यह आवश्यक नहीं कि यदि कोई वंश कोई नया सम्वत् चलाये तो उसके मानने वाले राजनैतिक रूप से उसके आश्रित हों। इसका महत्त्व केवल भौगोलिक हो सकता है—एक विशिष्ट क्षेत्र की प्रचलित परिपाटी को चालू रखने का प्रयत्न। गुप्त-राजाओं के अधीनस्थ मंदसौर के सामन्तों ने 'मालव-विक्रम-सम्वत्' का प्रयोग किया है। इसके विपरीत, गुप्त-साम्राज्य के बाहर शोरकोट-क्षेत्र में गुप्त-सम्वत् का प्रचलन था। तेजपुर भी सम्भवतः इसी कोटि में आता है, क्योंकि हमें इस बात का पूर्ण विश्वास नहीं है कि चौथी शताब्दी में वह कामरूप राज्य का अंग था भी, या नहीं। उपर्युक्त राजा हूण था, अथवा मंदसौर का शासक; इस सम्बन्ध में निश्चयपूर्वक कुछ भी नहीं कहा जा सकता। निश्चित मत के अभाव में अटकल-पच्चू तौर पर निश्चयपूर्वक कुछ भी कहना ठीक नहीं। छठी शताब्दी के प्रथम चरण में पश्चिमी मालव के मंदसौर-क्षेत्र से गुप्त-राजाओं का कुछ सम्पर्क अवश्य था, क्योंकि यशोधर्मन की मंदसौर-प्रशस्ति में **'गुप्तनाथैः'** शब्द का प्रयोग हुआ है। 'नाथ' शब्द से यह अर्थ भी निकलता है कि गुप्त-राजा कभी मंदसौर के भी स्वामी थे। परन्तु, उसी में **'हूणाधिप'** शब्द का भी प्रयोग हुआ है। अतः 'नाथ' शब्द का अर्थ मात्र 'स्वामी' या 'राजा' भी हो सकता है जिसका मंदसौर और (सन् ५३३ ई० या उसके आसपास के) गुप्त-सम्राटों के बीच कोई सम्बन्ध नहीं भी हो सकता।

[2] हरिवंश, Ch. 60.

[3] *Ind. Ant.*, 1886, 142; *Bhand. Com. Vol.*, 195.

[4] *Ep. Ind.*, XIV, pp. 110-20; *JRAS*, 1906, 843 f. इस समय (५५४ ई० या ५६४ ई०), जैसा कि डॉ० भट्टसालि तथा सरकार का कथन

का केन्द्र मगध से हट कर कन्नौज तथा उसके आसपास के क्षेत्रों में आ गया। यद्यपि अंतिम गुप्त-राजाओं ने इस बात का भरसक प्रयत्न किया कि किसी प्रकार अपने वंश के लुप्त वैभव को पुनः स्थापित करें, परन्तु जब तक महाराज हर्ष जीवित रहे, उन्हें कोई सफलता नहीं मिल सकी।

प्रारम्भिक गुप्त-वंश के पतन के कारणों की खोज करने के लिए हमें कहीं दूर नहीं जाना है। परन्तु, फिर भी गुप्त-राजाओं के समकालीन उल्लिखित प्रमाणों के अभाव में उनका विशद् विवरण नहीं दिया जा सकता। इतना होने पर भी उनके पतन की कहानी स्पष्ट है। गुप्त-वंश के विनाश के अधिकांश कारण लगभग वही हैं, जिनसे १४वीं शताब्दी में तुर्की साम्राज्य, अथवा अठारहवीं शताब्दी में मुगल-साम्राज्य का पतन हुआ, अर्थात् (i) आंतरिक विद्रोह, (ii) बाह्य आक्रमण, (iii) पैतृक राज्यपालों का उदय तथा अपने-अपने क्षेत्र में इनका प्रभावाधिक्य, एव 'महाराज' अथवा 'महाराजाधिराज' की उपाधि धारण करने की प्रवृत्ति, और (iv) राजवंश में आपसी फूट एवं कलह आदि।

कुमारगुप्त-प्रथम के शासन-काल में ही इस वंश के लोगों में पुष्यमित्रों की लगातार विद्रोही प्रवृत्तियों से भय उत्पन्न हो गया था, परन्तु युवराज स्कन्दगुप्त ने उस खतरे को एक तरह से दूर कर दिया। उसके पश्चात् मध्य एशिया में घास के मैदान में एक दूसरे ही शक्तिशाली शत्रु का उदय हुआ। भिटारी, कुर, ग्वालियर, एरण के अभिलेखों तथा अनेक चीनी यात्रियों के विवरणों से सिद्ध होता है कि कुमारगुप्त-प्रथम की मृत्यु के बाद ही अत्याचारी और क्रूर हूणों ने राज्य के उत्तरी-पश्चिमी प्रान्तों पर आक्रमण कर पंजाब तथा पूर्वी मालव पर अपना अधिकार जमा लिया था।

इन नवागन्तुकों को भारतीय पहले से ही चीनियों के निकट सम्बन्धी के रूप में जानते थे। महावस्तु[1] में उनका उल्लेख चीनियों के साथ हुआ है, जबकि महाभारत[2] के सभापर्व में उनका नाम विदेशियों की उस सूची में आया है, जिसमें सर्वप्रथम चीनियों का उल्लेख आता है—

चीनान् शकांस्तथा च् ओद्रान् (?)[3] ववंरान् वनवासिनः
वाष्र्णेयान् (?) हार-हूणांश्च कृष्णान् हैमवतंस्तथा।

है, असम के राजा भूतिवर्मन ने अश्वमेध यज्ञ कर के राजसी उपाधियाँ धारण की थीं। देखिये, 'भारतवर्ष', आषाढ़, 1348, p. 83 आदि; *Ep. Ind.*, xxvii, 18 f. अतः सरकार के अनुसार, उन्हें इस उल्लेख में गुप्त-सम्वत् का प्रयोग नहीं मिलता।

[1] I. 135.

[2] II, 51, 23-24.

[3] इस सम्बध में ओद्रों का उल्लेख असंगत है। इस महाकाव्य में **'तथाचोद्रान्'** की जगह **'चडोतांच'** पढने का लोभ होना है। 'चडोत' मध्य एशिया में खोतान के निकट एक जगह का नाम है।

'भीष्म-पर्व' के एक श्लोक[१] से ज्ञात होता है कि हूणों का सम्बन्ध फ़ारसवासियों से भी था। देखिये—

यवनास् चीन-काम्बोजा-दारुणा म्लेच्छजातयः
सकृद्ग्रहाः कुलत्थाश्च हूणाः पारसिकैः सह ।

यह श्लोक उस समय का है जबकि हूणों का सम्पर्क फ़ारस के ससानियन-वंश से हुआ।[२] कालिदास ने भी हूणों का संबंध फ़ारस से जोड़ा है, जहाँ केसर की खेती होती है तथा वंक्षु (आधुनिक ऑक्सस[३]) नदी से सिंचाई होती है। स्कन्दगुप्त के शासन-काल के प्रारम्भिक दिनों में उन्होंने बड़ी संख्या में भारत में घुसना प्रारम्भ किया, किन्तु सम्राट् ने उन्हें तुरन्त खदेड़ दिया। इसका उल्लेख हमें भिटारी-अभिलेख तथा व्याकरणाचार्य चन्द्रगोमिन के विवरणों में मिलता है।[४] स्कन्दगुप्त की मृत्यु के पश्चात् हूणों को रोकने के जो भी साधन थे, लगभग सभी समाप्त हो गये थे। यदि कृष्ण-तृतीय, राष्ट्रकूट के समकालीन सोमदेव का विश्वास किया जाये, तो हूण भारत में घुसते हुए चित्रकूट[५] तक जा पहुँचे। आधुनिक मध्य प्रदेश के उत्तरी भाग में स्थित एरण प्रदेश को उन्होंने वास्तव में जीत लिया था। उनके शासक तोरमाण तथा मिहिरकुल के समय में भारत में उनकी शक्ति के मुख्य केन्द्र चिनाब[६] के तट पर स्थित पव्वैया तथा शाकल (आधुनिक स्यालकोट), अर्थात् उत्तरी पंजाब में चेनाब और देग के बीच के क्षेत्र थे।

हूणों के पश्चात् महत्वाकांक्षी सेनापतियों एवं सामन्तों का उल्लेख करना भी आवश्यक हो जाता है। महाराज स्कन्दगुप्त के शासन-काल में सुराष्ट्र पर पर्णदत्त 'गोप्तृ' का शासन था। पर्णदत्त को स्वयं सम्राट् ने सुदूर पश्चिम का राज्यपाल नियुक्त किया था। इसके कुछ समय बाद ही मैत्रक-वंश के भटार्क नामक एक सेनापति ने अपने आपको वहाँ का सैनिक शासक घोषित कर दिया और कदाचित्

---

[१] 9, 65-66.

[२] Smith, *EHI*, 4th edition, p. 339; See also W. M. McGovern, *The Early Empires of Central Asia*.

[३] *Ind. Ant.*, 1912, 265 f.

[४] *Ind. Ant.*, 1896, 105.

[५] *Bhand. Com. Vol.*, 216. राजपूताना का चित्तौड़ भी चित्रकूट हो सकता है। परन्तु, अधिक सम्भावना इस बात की है कि चित्रकूट मध्य भारत में मंदाकिनी-तट पर था, जहाँ कभी भगवान राम अपने निर्वासन-काल में कुछ समय के लिए ठहरे थे। एक अभिलेख से पता चलता है कि मालद-क्षेत्र में हूणमण्डल था (*Ep. Ind.*, XXIII, 102)।

[६] *JBORS*, 1928, March, p. 33; सी० जे० शाह, *Jainism in Northern India*, p. 210, जिसमें आठवीं शताब्दी (?) की 'कुवलयमाला' से उद्धृत किया गया है।

उसने वलभी को अपनी राजधनी बनाया। वह तथा उसके उत्तराधिकारी धरसेन-प्रथम केवल 'सेनापति' की उपाधि धारण करके ही संतुष्ट हो गये थे, परन्तु इनके पश्चात् 'भटार्क' (५०२-५०३ ई०) के द्वितीय पुत्र द्रोणसिंह ने 'महाराज' की उपाधि धारण की। छठी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इस वंश की एक शाखा ने मो-ला-पो (मालवक)[1] अथवा मालव के सुदुर पश्चिमी भाग में अपना राज्य स्थापित कर सह्य तथा विन्ध्य पर्वत[2] की ओर विजय-अभियान आरम्भ किया। इससे छोटी, एक दूसरी शाखा वलभी में ही शासन करती रही। सातवीं शताब्दी में इसी वंश के ध्रुवसेन द्वितीय ने हर्ष की पुत्री से विवाह किया। उसके पुत्र धरसेन-चतुर्थ (सन् ६४५-८९ ई०) ने 'परमभट्टारक परमेश्वर चक्रवर्त्ती' की उपाधि धारण की थी।

परन्तु मो-ला-पो तथा वलभी के मैत्रक ही केवल ऐसे सामन्त नहीं थे, जिन्होंने धीरे-धीरे अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित कर ली। मंदसौर के शासकों ने भी यही मार्ग अपनाया तथा मध्यदेश के मौखरी और नव्यावकाशिका-वर्द्धमान तथा बंगाल के 'कर्णसुवर्ण' के शासकों ने भी उनका अनुकरण किया।

प्रारंभिक गुप्त-काल में मंदसौर (प्राचीन दशपुर) अत्यन्त महत्त्वपूर्ण उपशासित प्रदेश था। औलिकर-वंश[3] के शासकों की यही राजधानी थी। वे महाराज

---

१. Smith, *EHI*, 4th edition, p. 343.

२. वलभी के राजा धरसेन-द्वितीय के दो पुत्र शीलादित्य-द्वितीय धर्मादित्य तथा खरग्रह-प्रथम थे। ह्वेनसांग के उल्लेख से ज्ञात होता है कि उसके समय (शीलादित्य की मृत्यु के कुछ समय पश्चात्) में मैत्रकों का राज्य दो भागों में विभाजित हो गया था। एक भाग वह, जिसमें मो-ला-पो तथा अन्य प्रदेश थे और जो शीलादित्य धर्मादित्य के वंशजों के अधिकार में था; तथा दूसरा भाग वह, जिसमें वलभी भी सम्मिलित थी तथा जिस पर खरग्रह के पुत्रों और वंशजों का अधिकार था। खरग्रह के पुत्रों में से एक का नाम ध्रुवसेन-द्वितीय बालादित्य या ध्रुवभट था जिसने कन्नौज के राजा हर्ष की पुत्री से विवाह किया था। चीनी लेखक के इस कथन की पुष्टि शीलादित्य-सप्तम के एलिना-अभिलेख से होती है (Fleet, *CII*, 171 f. esp. 182 n)। इसके अनुसार, शीलादित्य-प्रथम धर्मादित्य का पुत्र देरभट सह्य एवं विन्ध्य पर्वतीय क्षेत्र का स्वामी था, जबकि खरग्रह-प्रथम के वंशजों का वलभी पर अधिकार था। नवलखी तथा नोगावा प्लेटों से ज्ञात होता है कि बहुधा एक ही शासक मालव तथा वलभी में शासन किया करता था। सातवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में खरग्रह-वंश लुप्त हो गया, तथा मैत्रक राज्य पुनः एक हो गये। वलभी-वंश का कनेरी देश से क्या सम्बन्ध था, इस विषय में मोरेस-कृत 'कदम्ब-कुल,' पृ० ६४ देखिये। अभी हाल में ही खरग्रह-प्रथम (सन् ६१६-१७) का जो विरदी-ताम्रलेख खोजा गया है, उससे पता चला है कि उसका कुछ समय तक उज्जैन पर भी अधिकार था (*Pro. of the 7th Or. Conf.*, 695 ff)। यह ताम्रपत्र उज्जैन के कैम्प मे ही प्रचलित किया गया था।

३. *Ep. Ind.*, XXVI, 130 ff ; Fleet, *CII*, 153.

चन्द्रगुप्त-द्वितीय विक्रमादित्य तथा उसके पुत्र कुमारगुप्त-प्रथम महेन्द्रादित्य की ओर से उपशासक सामन्त थे। छठी शताब्दी में यहाँ एक नया दृश्य सामने आया। सन् ५३३ ई० में मंदसौर के शासक यशोधर्मन ने हूणों पर अपनी विजय से प्रोत्साहित होकर गुप्तनाथों (गुप्त-सम्राटों) की आज्ञाओं को मानने से इन्कार करके अपनी स्वतंत्र स्थिति बना ली। अपनी विजयों का महोत्सव मनाने के लिए उसने जगह-जगह विजय-स्तम्भ बनवाये। इन विजय-स्तम्भों पर उसके दरबारी कवियों और भाटों के अनुसार, यशोधर्मन का राज्य लौहित्य या ब्रह्मपुत्र नदी से लेकर पूरे आर्यावर्त्त में पश्चिमी समुद्र तक तथा हिमालय से लेकर पूर्वी घाट या महेन्द्र पर्वत तक फैला हुआ था। उसकी मृत्यु के पश्चात्, साहित्य एवं हर्ष के समय के अभिलेखों में गुप्त-राजाओं को पुनः पूर्वी मालव का शासक बताया गया है। परन्तु, पश्चिमी मालव पर दुबारा उनका अधिकार नहीं हो सका। जैसा कि हमने पहले ही देखा है, इसका एक भाग मैत्रकों के राज्य में सम्मिलित कर लिया गया था। दूसरा भाग, अर्थात् अवन्ती, अथवा उज्जैन के आसपास का भाग, जो पांचवीं शताब्दी में विक्रमादित्य तथा महेन्द्रादित्य की शानदार राजधानी थी[1] अगली शताब्दी में कटच्चुरि या कलचुरि वंश[2] के शंकरगण के अधिकार में था। फिर मैत्रक-वंश के खरग्रह-प्रथम के अधिकार में गया। फिर ह्वेनसांग के समय में एक ब्राह्मण-वंश ने अवन्ती को हथिया लिया।[3] आगे चलकर उस पर राष्ट्रकूटों, गुर्जर-प्रतिहारों तथा अन्य वंशवालों का समय-समय पर अधिकार रहा।[4]

---

[1] सोमदेव, कथा-सरित्सागर, Bk. XVIII; Allan, *Gupta Coins*. xlix on; *Bomb. Gaz.*, I, ii, 578.

[2] G. Jouveau Dubreuil, *Ancient History of the Deccan*, 82.

[3] Watters, *Yuan Chwang*, ii, 250. इस वंश का सम्बन्ध यशोधर्मन तथा विष्णुवर्धन के समय के मन्दसौर-अभिलेख में उल्लिखित नैगामों के सामन्तों से था। इसी वंश का अभयदत्त विन्ध्य प्रदेश के आसपास के क्षेत्र, पारियात्र (पश्चिमी विन्ध्य जिसमें अरावली पहाड़ियाँ भी सम्मिलित थीं) तथा सिन्धु (सागर अथवा इसी नाम की मध्य भारत की एक नदी) का शासक (राजस्थानीय, सचिव) था। उसके भतीजे को 'नृपति' कहा गया है। इस राजा के छोटे भाई दक्ष ने सन् ५३३-३४ ई० में एक कुआँ खुदवाया था।

[4] *Ind. Ant.*, 1886, 142; *Ep. Ind.*, XVIII, 1926, 239 (संजम-दानपत्र का नवाँ श्लोक); देखिये *Ep. Ind.*, XIV, p. 177 (प्रतिहार राजा महेन्द्रपाल-द्वितीय के उज्जैन के राज्यपाल का उल्लेख)। संजम-अभिलेख से पता चलता है कि प्रारम्भ में उज्जैन के राष्ट्रकूट राजा ने गुर्जर तथा अन्य सामन्तों को अपने यहाँ द्वारपाल (प्रतिहार) बना रखा था। यह कुछ असम्भव नहीं कि प्रारम्भ में जैसे गुर्जर और परमार लोग उज्जैन आने पर राष्ट्रकूटों के सामन्त थे, उसी प्रकार 'प्रतिहार' भी रहे हों, इसके पहले कि उन्होंने अपने उद्भव के रूप में अयोध्या के राजकुमार लक्ष्मण को खोज निकाला हो। यहां यह भी बता देना उचित होगा कि संयोगवश नागभट-वंश की जन्मभूमि (स्वविषय) मारवाड़ थी। इसका पता हमें जैन-ग्रन्थ 'कुवलयमाला' और बुचकल-अभिलेख से चलता है।

इसके अलावा मुखर अथवा मौखरी नामक एक दूसरा राजवंश छठी शताब्दी में काफ़ी शक्तिशाली हो गया। इस वंश के राजाओं के पाषाण-अभिलेखों से पता चलता है कि उत्तर प्रदेश तथा बिहार के बाराबंकी, जौनपुर तथा गया ज़िलों पर उनका अधिकार था। चौथी एवं पाँचवीं शतादी में ये सभी प्रदेश गुप्त-साम्राज्य के अंतरंग अंग थे। छठी शताब्दी में इन स्थानों पर अवश्य ही मौखरियों का अधिकार रहा होगा। मौखरी-वंश के कुछ शासकों की हैसियत देखते हुए यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि छठी शताब्दी के आरम्भ में वे मात्र उपशासक या सम्राट् के प्रतिनिधि थे। लगभग ५५४ ई० में ईशानवर्मन मौखरी ने गुप्त-सम्राटों और कदाचित् हूणों के विरुद्ध तलवार उठायी तथा 'महाराजाधिराज' की उपाधि धारण की। गंगा की ऊपरी घाटी में लगभग चौथाई सदी (सन् ५५४ ई० से ५८० ई० तक) मौखरी-राजवंश सबसे शक्तिशाली राजवंश था। कुछ हद तक उन्हें अपने वंश के सर्वशक्तिशाली राजा ग्रहवर्मन और उनके साले हर्षवर्द्धन (कन्नौज के स्वामी ?) के यश और शक्ति का जो अन्दाज़ था, वह ठीक ही निकला।

मौखरियों की तरह छठी शतादी के उत्तरार्द्ध में वङ्गाल के शासकों ने भी गुप्त-सम्राटों के जुएँ को अपने कन्धे से उतार कर स्वयं को स्वतन्त्र शासक घोषित कर दिया। यह सच है कि चौथी-पाँचवीं शताब्दी में बंगाल पर गुप्त-राजाओं की सत्ता क़ायम थी। इलाहाबाद-स्तम्भ-अभिलेख में समतट (पूर्वी बंगाल) को समुद्रगुप्त के राज्य का 'प्रत्यन्त' (सीमा-प्रान्त) कहा गया है। अतः, इससे यह सिद्ध होता है कि सम्पूर्ण पश्चिमी तथा मध्य वंगाल समुद्रगुप्त के साम्राज्य का अंग था, जबकि उत्तरी वंगाल (पुण्ड्रवर्धन भुक्ति) कुमारगुप्त-प्रथम के शासन-काल (सन् ५४३-४४ ई०)[1] स गुप्त-साम्राज्य का अंग बन गया, इसकी पुष्टि दामोदरपुर-प्लेट से भी होती है। यद्यपि प्रारम्भ में समतट गुप्त-साम्राज्य के बाहर था, फिर भी उसे गुप्त-सम्राटों की भयंकर शक्ति का अहसास हमेशा बना रहा। लेकिन ईशानवर्मन के हराहा-अभिलेख मे ज्ञात होता है कि छठी शताब्दी के मध्य तक आते-आते गुप्त-साम्राज्य का राज-नीतिक नक़्शा बिलकुल बदल चुका था। गगा की निचली घाटी में गौड़ों की एक नयी शक्ति का उदय हो रहा था। गौड़ों के विषय में पाणिनि[2] तथा कौटिल्य (अर्थशास्त्र)[3] दोनों को ही जानकारी थी। पाणिनि उनका सम्बन्ध पूर्व से जोड़ते हैं।[4] मत्स्य, कूर्म तथा लिग पुराण[5] में एक ऐसा गद्यांश मिलता है, जिससे अनुमान होता है कि गौड़ों का उद्भव-स्थान श्रावस्ती-प्रदेश था। परन्तु, यही गद्यांश वायु तथा ब्रह्म पुराणों

---

[1] तिथि के लिए देखिये, *Ep. Ind.*, XVII, Oct. 1924, p. 345.

[2] VI. ii. 100

[3] ii 13.

[4] *Cf.* VI. ii. 99 (in regard to accentuation)।

[5] **'निर्मिता येन श्रावस्ती गौड़देशे द्विजोत्तमाः'**— मत्स्य पुराण, XII, 30; देखिये लिग पुराण I, 65. **'निर्मिता येन श्रावस्ती गौड़देशे महापुरी'** (कूर्म पुराण. I. 20. 19)।

एवं महाभारत[1] में नहीं मिलता। प्राचीन साहित्य में श्रावस्ती के निवासियों को 'कोशलवासी' ही कहा गया है। वात्स्यायन, जिनका समय ईसा की तीसरी-चौथी शताब्दी बताया जाता है, अपने ग्रन्थ 'कामसूत्र' में 'कोशल' और 'गौड़' दोनों को दो अलग-अलग देश बताते हैं।[2] मत्स्य, कूर्म तथा लिंग पुराणों की पाण्डुलिपि में आया हुआ 'गौड़' शब्द सम्भवतः 'गोंड' के संस्कृत रूप की तरह प्रयुक्त हुआ होगा; जिस तरह कुछ आधुनिक पंडितों और प्राचीन भारत की भौगोलिक स्थिति के जानकार विद्वानों और अखबारनवीसों ने मद्र-मंडल को मद्रास प्रेसीडेन्सी के लिए प्रयुक्त बताया है।[3] मध्य प्रान्त में बहुधा 'गोंड' के संस्कृत रूप को 'गौड़'[4] ही कहा जाता है। छठी शताब्दी में उत्पन्न वराहमिहिर ने 'गौड़क' को पूर्वी भारत का अंग बताया है। मध्य-देश में स्थित प्रदेशों की सूची प्रस्तुत करते हुए उन्होंने गौड़ प्रदेश को उसमें शामिल नहीं किया है। वैसे 'गुड' नामक एक स्थान का उल्लेख अवश्य आया है। परन्तु, अल्बेरूनी[5] के अनुसार, 'गुड' अवध न होकर थानेश्वर का नाम था। उत्तरी भारत के कन्नौज एवं सरस्वती नदी तक के भूभाग के लिए जहाँ 'पंचगौड़' शब्द का प्रयोग हुआ है, वह उल्लेख लगभग बारहवीं शताब्दी का है। सम्भवतः यह नाम धर्मपाल एवं देवपाल के गौड़-राज्य की याद में रखा गया होगा और उसको ईसा की प्रारम्भिक शताब्दी का गौड़ देश मानना ग़लत होगा। हराहा-अभिलेख में स्पष्ट रूप से लिखा है कि गौड़-राज्य समुद्र-तट पर था, जिससे सिद्ध होता है कि छठी शताब्दी में गौड़ों का वास-स्थान अवध न होकर बङ्गाल था। अगली शताब्दी में गौड़-राजा शशांक की राजधानी मुर्शिदाबाद के निकट कर्णसुवर्ण नामक नगर था। वाक्पतिराज के 'गौडवहो' (८वीं शताब्दी) में एक ऐसे गौड़-राजा का उल्लेख आता है जिसे मगध का शासक बताया गया है। नवीं शताब्दी में गौड़-वंश उन्नति की चरम सीमा पर था, जबकि उनका आधिपत्य गंगा-दोआब तथा कन्नौज तक हो गया था। गौड़-वंश के प्रारम्भिक राजाओं के सम्बन्ध में हमारा ज्ञान अत्यन्त सीमित है। फ़रीदपुर तथा बर्दवान[6] ज़िले में कुछ ताम्रलेख मिले हैं, जिनमें तीन राजाओं—धर्मादित्य, गोपचन्द्र[7] तथा समाचारदेव—का

---

[1] 'यज्ञे श्रावस्तको राजा श्रावस्ती येन निर्मिता' (वायु पुराण, 88. 27; ब्रह्म पुराण, VII. 53); 'तुस्य श्रावस्तको ज्ञेयः श्रावस्ती येन निर्मिता (महाभारत, III. 201. 4)।

[2] 'कोशल' के लिये देखिये 'दशनच्छेद्य-प्रकरणम्'; 'गौड़ के लिए देखिये 'नखच्छेद्य-प्रकरणम्' और 'वाररक्षिक-प्रकरणम्'।

[3] देखिये, गेगर द्वारा अनूदित महावंश, p. 62।.

[4] *Cf. Imperial Gazetteer of India*, Provincial Series, *Central Provinces*, p. 158.

[5] i, 300.

[6] मल्लसारुल-प्लेट (एस० पी० पत्रिका, 1344, 17)।

[7] गोपचन्द्र सम्भवतः 'गोपाख्य नृपति' ही हो। वह भानुगुप्त के पुत्र प्रकटादित्य का प्रतिद्वन्द्वी एवं समकालीन था (जी० शास्त्री द्वारा सम्पादित, आर्य-मंजुश्री-मूल-कल्प, p. 637)। यह भी असम्भव नहीं है कि 'धकाराख्य' ही 'धर्मादित्य' रहा हो

उल्लेख मिलता है और उन्हें 'नव्यावकाशिका', 'वारक-मंडल' तथा वर्धमान भुक्ति (बर्दवान) का शासक बताया गया है। वप्पघोषवाट-अभिलेख के द्वारा हमें एक चौथे राजा जयनाग का भी पता चलता है जो कर्णसुवर्ण का शासक था। इन राजाओं को कहीं भी स्पष्ट रूप से 'गौड़' कह कर सम्बोधित नहीं किया गया है। सबसे पहला राजा जिसे 'गौड़' कहा गया है, वह राज्यवर्धन और हर्षवर्धन का प्रसिद्ध शत्रु शशांक है। जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, बङ्गाल के कुछ शासकों ने महाराजाधिराज की उपाधि धारण कर ली थी। अतः इसमें अब कोई संदेह नहीं कि वे लोग पूर्ण रूप से स्वतन्त्र हो चुके थे तथा गुप्त-राजाओं की सत्ता किसी भी दशा अथवा अवस्था में स्वीकार नहीं थी।

गुप्त-साम्राज्य के अंतिम वर्षों में पुष्यमित्र का विद्रोह, हूणों का आक्रमण तथा प्रान्तीय सामन्तों एवं अन्य अधिकारियों की स्वतंत्र होने की प्रवृत्ति ही पतन के कारण नहीं थे। बाह्य आक्रमणों तथा प्रान्तीय सामन्तों द्वारा आंतरिक विद्रोह के साथ-साथ हमें यह भी स्मरण रखना है कि स्वयं गुप्त-वंश में फूट एव कलह उत्पन्न हो चुकी थी। कुमारगुप्त-प्रथम के पुत्रों में उत्तराधिकार के लिए युद्ध हुआ—यह सत्य हो या न हो, परन्तु हमारे पास यथेष्ट प्रमाण हैं, जिनके आधार पर हम कह सकते हैं कि चन्द्रगुप्त-द्वितीय के उत्तराधिकारियों में वैमनस्य आरंभ हो चुका था। अंतिम गुप्त-सम्राटों के वंशज अपने समय में होने वाले युद्धों या संघर्षों में अक्सर एक-दूसरे के विरुद्ध होकर भी लड़ने लगे थे। अपने चचेरे भाई वाकाटक-शासकों के साथ भी इनका व्यवहार मैत्रीपूर्ण नहीं था। चन्द्रगुप्त-द्वितीय के प्रपौत्र (पुत्री प्रभावती का वंशज) नरेन्द्रसेन वाकाटक का मालव के उपशासक से संघर्ष का उल्लेख मिलता है। नरेन्द्रसेन के चचेरे भाई हरिषेण ने अवन्ती पर विजय प्राप्त की थी। जहाँ तक हर्ष के शासन-काल में गुप्त-सम्राटों का मालव से सम्बन्ध का प्रश्न है, यही कहा जा सकता है कि वाकाटकों ने कुछ भाग अपने चचेरे भाई गुप्त-राजाओं से भी प्राप्त किया था। यह तो ज्ञात ही है कि सातवीं शताब्दी में जहाँ देवगुप्त हर्ष के वंश का शत्रु था, वहीं माधवगुप्त उसका मित्र था।

अंत में, एक महत्त्वपूर्ण बात यह भी है कि जहाँ प्रारम्भिक गुप्त-सम्राट् कट्टर ब्राह्मण थे, तथा यज्ञादि में नरबलि देना उचित समझते थे, वहीं आगे चलकर बुधगुप्त, तथागतगुप्त तथा बालादित्य आदि कुछ सम्राटों का झुकाव बौद्धधर्म की ओर अधिक था। जिस प्रकार कलिंग-युद्ध के पश्चात् अशोक ने तथा चीनी यात्री के निकटतम सम्पर्क में आ जाने के पश्चात् हर्ष ने बौद्धधर्म को अपनाया था, तथा इस धर्म-परिवर्त्तन का सबसे अधिक प्रभाव राज्य की सेना पर पड़ा था, उसी प्रकार इन अंतिम गुप्त-सम्राटों के धर्म-परिवर्त्तन के कारण भी साम्राज्य की राजनीतिक दशा एवं सेना पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। इस सम्बन्ध में ह्वेनसांग द्वारा दी गई कथा का स्मरण दिलाना उचित होगा। जब शाकल प्रदेश का क्रूर शासक मिहिरकुल,

---

(*Ibid.*, p. 644)। क्या वह 'वकाराख्य' (वज्र) तथा 'पकाराख्य' (प्रकटादित्य) का अनुज था? यदि हमारा यह विचार सही मान लिया जाय, तो वह निस्संदेह गुप्त-वंश का ही था।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बालादित्य के साम्राज्य पर आक्रमण करने के लिए बढ़ा तो बालादित्य ने अपने मन्त्रियों से कहा—"मैंने सुना है कि ये चोर बढ़े चले आ रहे हैं और मैं उनकी सेना के साथ युद्ध नहीं कर सकता, अपने मन्त्रियों की राय से मैं अपने कमज़ोर शरीर को दलदली झाड़ियों में छिपा दूँगा।" यह कह कर अपनी बहुत-सी प्रजा के साथ वह एक द्वीप की ओर चला गया। मिहिरकुल पीछा करता हुआ आगे बढ़ा, परन्तु उसे जीवित अवस्था में ही बन्दी बना लिया गया। कुछ समय पश्चात् राजमाता[1] के कहने पर उसे मुक्त कर वापस जाने दिया गया। पता नहीं, यह कथा कहाँ तक विश्वसनीय है, परन्तु ऐसा अवश्य प्रतीत होता है कि सातवीं शताब्दी में भारतीयों को अंतिम गुप्त-सम्राटों की शक्ति एव साहस में बहुत अधिक विश्वास एवं आस्था नहीं थी, और उन्हीं से चीनी यात्री ने यह कथा सुनी होगी। परन्तु इतना तो सभी स्वीकार करते ही हैं कि अन्तिम गुप्त-सम्राट् बड़े ही दयालु और पवित्र थे। बालादित्य तथा उसकी माता की दया के कारण ही मिहिरकुल को अत्याचार करने का अवसर मिला। साथ ही यशोधर्मन, ईशावर्मन, प्रभाकरवर्धन आदि को अपनी स्वतंत्र सत्ता स्थापित करने का अवसर मिलते ही, न केवल उन्होंने हूणों (Yetha) को खदेड़ा, बल्कि गुप्त-सम्राटों के एकाधिपत्य को भी उत्तर भारत में समाप्त कर दिया।

परिशिष्ट 'च'

विन्ध्यपर्वत-पार के भारतीय राज्यों, जनों तथा वंशों आदि की क्रमिक सूची

ब्राह्मण-काल—(१) निषाद (राजधानी गिरिप्रस्थ, महाभारत, III, 324,12)।
(२) विदर्भ (राजधानी कुण्डिन) तथा दूसरे भोज।
(३) दस्यु जाति—आन्ध्र, शबर, पुलिन्द तथा मूतिब।

सूत्रकाल— (१) माहिष्मती (मान्धाता अथवा महेश्वर; *IA*, 4, 346)।
(२) भृगु-कच्छ (ब्रोच)।
(३) शूरपारक (कोंकण में सोपर)।
(४) अश्मक (राजधानी पोदन्य, बोधन)।

---

[1] Beal *Si-yu-ki*, I, 168 f; Watters, I, 288-89.

(५) मूलक (राजधानी प्रतिष्ठान) ।
(६) कलिंग (राजधानी दंतपुर) ।
(७) (?) उक्कल (उत्तरी उड़ीसा) ।

रामायण-काल—गोदावरी के दक्षिण की ओर आर्यों का विस्तार—पम्पा-तट पर बसना—मलय, महेन्द्र तथा लंका की खोज ।

मौर्य-काल—

मौर्य-साम्राज्य—

(१) अपरान्त (राजधानी शूरपारक) ।
(२) भोज (राजधानी कुण्डिन ?) ।
(३) राष्ट्रिक (राजधानी नासिक ?) ।
(४) पेतेनिक (प्रतिष्ठान के निवासी ?) ।
(५) पुलिन्द (राजधानी पुलिन्दनगर) ।
(६) आंध्र (राजधानी बेजवाड़ा आदि ?) ।
(७) अटवी ।
(८) कलिंग (तोसली तथा समापा भी सम्मिलित थे) ।
(९) सुवर्णगिरि का प्रदेश ।
(१०) इसिला का आहार ।
(११) चोल ।
(१२) पाण्ड्य ।
(१३) केरलपुत्र ।
(१४) सतियपुत्र (केरलोल्पत्ति की सत्यभूमि ?) ।
(१५) ताम्रपर्णी (श्रीलंका) ।

मौर्य-काल के पश्चात् —

(१) विदर्भ-राज्य ।
(२) दक्षिण-पथ के सातवाहन ।
(३) कलिंग के चेत ।
(४) मसुलीपटम के निकट पिथुड राज्य ।
(५) चोल राज्य ।
(६) पाण्ड्य राज्य ।
(७) केरल राज्य ।
(८) श्रीलंका का राज्य (जहाँ कभी चोल राजाओं का शासन था) ।

पेरीप्लस का युग—(१) मम्बरुस (या नम्ब्रनुस) के निकट अरियक का दक्षिणी भाग ।

(२) सरगनुस तथा उसके उत्तराधिकारियों के अधीन दक्षिणबदेस (सातवाहन शातकर्णियों के अधीन दक्षिण)।

(३) दमीरिका (तमिलकम, द्रविड़) जिसमें निम्नलिखित सम्मिलित थे—

(अ) केरोबोथ् (केरलपुत्र)।

(ब) पाण्ड्य राज्य।

(स) अर्गरु (उरगपुर) राज्य।

(४) मसलिया (मसुलीपटम)।

(५) दोसरीन (=तोसली)।

तोलेमी का युग—(१) बैठन (प्रतिष्ठान) राज्य, पुलुमायि (सातवाहन) द्वारा शासित।

(२) हिप्पोकौर राज्य (कोल्हापुर), बैलिओकौरोस (विलिवायकुर) द्वारा शासित।

(३) मौसोपल्ली राज्य (कनेरी प्रदेश में)।

(४) करौर राज्य, केरोबोथ्रो (केरलपुत्र) द्वारा शासित।

(५) पौन्नत (दक्षिण-पश्चिमी मैसूर)।

(६) अईओई राज्य (दक्षिण ट्रावनकोर में, राजधानी कोट्टिआर)।

(७) करेओई राज्य (ताम्रपर्णी घाटी)।

(८) मोदौर (मदुरा) राज्य, पांड्य-वंश द्वारा शासित।

(९) बटोई राज्य (राजधानी निकम)।

(१०) ओरथौर राज्य, 'सोर्नगोस' द्वारा शासित (चोल और नाग वंश ?)।

(११) सोर (चोल) राज्य, अर्कतोस द्वारा शासित।

(१२) मलंग (कांची ?) (मविलंगाई ?) राज्य, बसरोनाग (नाग ?) द्वारा शासित।

(१३) पिटुंद्र (पिथुड) राज्य।

सन् १५० से ३५० ई०— (१) आभीर (उत्तरी महाराष्ट्र तथा पश्चिमी भारत)।

(२) वाकाटक (बरार तथा आसपास के प्रदेश) तथा महाकान्तार के शासक।

(३) दक्षिणी कोशल, कौराल, कोट्टुर, एरण्डपल्ल, देवराष्ट्र (वशिष्ठ के वंशज ?), पिष्टपुर (माठर-कुल के अधीन ?), अवमुक्त, पलक्क तथा कुस्थलपुर के राज्य।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(४) आन्ध्रपथ (तथा वेंगी) राज्य—

(अ) इक्ष्वाकु।
(ब) आनन्द-गोत्र (कन्दरपुर) के शासक।
(स) कुदुर आदि के बृहत्फलायन।
(द) वेंगीपुर के सालंकायन (तोलेमी के सालाकेनोई ?), इन्हीं में से एक वेंगी का हस्तिवर्मन था।

(५) काँची के पल्लव।
(६) कुन्तल के शातकर्णि।

सन् ३५० से ६०० ई०— (१) कोंकण के त्रैकुटक तथा मौर्य और दक्षिणी गुजरात के लाट, नाग तथा गुर्जर।

(२) वाकाटक (मध्य दक्षिण)।
(३) कटच्चुरि (उत्तरी महाराष्ट्र तथा मालव)।
(४) शरभपुर (दक्षिणी कोशल) के राजा।
(५) मेकला के पाण्डव।
(६) उड़, कोंगोद, कलिंग [वशिष्ठ-वंश, माठर-कुल, मुद्गल-वंश (*Ep. Ind.*, xxiii, 199 ff) तथा पूर्वी गंगा के अधीन]; लेन्डुलुर (विष्णुकुण्डिन के अधीन) पूर्वी दक्षिण में।
(७) काँची के पल्लव (द्रमिल अथवा द्रविण में)।
(८) चोल, पाण्ड्य, मूषक तथा केरल (सुदूर दक्षिण में)।
(९) दक्षिणी मैसूर के गंग और आलुप (सिमोगा तथा दक्षिणी कनारा के पास)।
(१०) पूर्वी मैसूर तथा उत्तरी आरकाट के बाण, दावंगीर तालुक के केकय, वैजयन्ती आदि कदम्ब और उत्तरी-पश्चिमी मैसूर में तुंकर प्रदेश अथवा नागरखण्ड के सेन्द्रक।
(११) नल—(अ) पुष्करी, जो पोडागढ़ (जयपुर एजेन्सी) क्षेत्र में शासन करते थे, (ब) बरार के येवतमाल और सम्भवतः (स) बेल्लारी ज़िला भी। सभी नल-वंश के थे।
(१२) वातापी के प्रारम्भिक चालुक्य।

सन् ६०० ई० के पश्चात्— (१) कोंकण के शिलाहार।
(२) प्रारम्भिक चालुक्य, राष्ट्रकूट जिनमें मानदेश आदि के वंशज भी

सम्मिलित थे । पश्चिमी दक्षिण के उत्तर चालुक्य, कलचुरि तथा यादव ।

(३) त्रिपुरी तथा रत्नपुर के हैहय, कलचुरि अथवा चेदि और चक्रकूट (मध्य प्रदेश) के नाग ।

(४) पूर्वी चालुक्य, वेल्नाण्डु के स्वामी तथा तेलुगु प्रदेश के काकतीय; कलिंग तथा उड़ीसा के पूर्वी गंग; महानदी घाटी (उत्तर-पूर्व दक्षिण) के कर, शबर (? शशधर एवं पाण्डु के वंशज) तथा सोमवंशी गुप्त ।

(५) पश्चिमी गंग, सान्तर तथा होयसल (मैसूर) ।

(६) काँची के पल्लव, रेनाण्डु के वैदुम्ब, तिन्नवेली ज़िले के कलभ्र, तंजोर के चोल, केरल और कोलम्ब के वर्मन, मदुरा (सुदूर-दक्षिण) के पाण्ड्य ।

सन्दर्भ-अनुक्रमणिका

(अँग्रेजी-क्रम)

Acta Orientalia, 272, 276, 305, 344.
Advance, 297.
Age of Nandas and Mauryas, 170
A Guide to Sanchi, Marshall, 197, 303, 432.
A Guide of Ancient India, 287.
A Guide to Taxila, Marshall, 49, 313, 340.
Aiyangar Commemoration Volume, 151, 202, 231, 244 353, 379, 391.
Ajivikas, Barua, 238.
Alexandar the Great, Tarn, 307.
Allan, 286, 391, *et passim.*
An Account of the Kingdom of Kabul, 115.
Ancient Geography of India, 79. 99, 143 etc.
Ancient Hindu Polity, N. Law, 244.
Ancient History of the Deccan, G. Jauveau-Dubreuil, 52. 345, 370, 400, 452, 472.
Ancient India, Aiyangar, 242.
Ancient India, Rapson, 143. 179. 324.
Ancient India as described in Classical Literature, McCrindle, 179, 186. 203, 245.
Ancient Indian Historical Tradition, Pargiter, 8, 16. 17. 81. 197.
Ancient Mid-Indian Kshatriya Tribes, B. C. Law, 23, 112.
Ancient Persian Lexicon and the Text of the Achaemenidan Inscriptions, H. C. Tolman, 114, 179.
A New History of the Indian People, 290.
An Indian Ephemeris, Swami Kannu Pillai, 169.
Annals of the Bhandarkar Institute, 151, 153, 233, 286, 300.
Annals of the First Han Dynasty, 317
Annals of the Later Han Dynasty, 319, 337.
Antigonas Gonatas, Tarn, 245.
A Peep into the Early History of India, R. G. Bhandarkar, 408, 456.
A Political History of Parthia, Debevoise, 331.
Arabian Nights (Burton), 460.
—Lane, 460.
—Olcott, 461.
Aravamuthan, 300, 450.
Arch. Expl. Ind., Marshall, 398.
Archaeological Report, Cunningham, 21.
Archaeological Survey of India, 99, 292, 304, 396, *et passim.*
Archaeological Survey of Mysore, A. R., 456.
Archaeological Survey of Western India, 294.
Arrian (Chinnocks translation), 178, *et passim.*
Aryanisation of India, N. Dutt, 17.
Aryan Rule in India, Havell, 254.
Aryans, V. Gordon Childe, 8.
Ashoka, भण्डारकर 222, 232.
Ashoka Edicts in New Light, वरुआ, 249.

Ashoka, Smith, 3rd ed., ch. iv, *et passim.*

Ashoka Text and Glossary, Woolner, 229.

A Survey of Persian Art, 178, 330.

A Volume of Indian Studies presented to Prof. E. J. Rapson, 251, 316.

Beginnings of Buddhist Art, Foucher, 313.

Beginnings of South Indian History, 171, 199, 242, 384.

Bhandarkar Commemoration Volume, 150, 297, 452.

Bhilsa Topes, 177.

Bigandet, 218.

Black Yajus (Kieth), 126, 128.

Bombay Gazetteer, *see* Gazetteer, Bombay.

Book of Kindred Sayings, Mrs. Rhys Davids, 97, 119, 148, 155, 157, 257.

Bose, A. K., 248.

Buddha, Oldenberg, 21, 43, 89, 102, 143.

Buddhist Conception of Spirits, Law, 104, 116, 213.

Buddhist India, Rhys Davids, 47, 83, 85, 89, 103, 114, 119, 148, 459.

Buddhistic Studies (ed. Law), 423, 452, 552, 351, 375, 459

Buddhist Suttas, *see* सुत्त बौद्ध

Bunyin Nanjio's Catalogue, 5, 345.

Calcutta Review, 61, 316, 332, 342, 349, 381, 434, 467.

Cambridge History of India, Vol. I, 127, 179, 183, *et passim.*

Cambridge History of India, Vol. III, 329.

Cambridge Shorter History of India, 321, 349, 343, 352, 359.

Carl Cappeller, 6.

Carmichael Lectures (1918), 60, 61, 111, 167, 188, 227, 289, 351.

Catalogue of Coins, Allan (Guptas), 312, 392, *et passim.*

—Gardner, 229.

—Rapson (Andhra & W. Kshatraps) 231, 294, 297, 303, 325, 329 345, *et passim.*

—Smith (Indian Museum), 292, 312, 339. 356, 382, *et passim.*

—Whitehead (Indo-Greeks and Indo-Scythians), 282, 305, 311, 320, 336, 340, 352, 353, *et passim.*

Ceylonese Chronicles, *passim.*

Coins of Ancient India, Cunningham, 285, 287.

Corporate Life in Ancient India, R. C. Majumdar, 109.

Corpus Inscriptionum Indicarum, Vol. I, Hultzsch, *passim.*

Corpus Inscriptionum Indicarum, Vol. II, Konow, *passim.*

Corpus Inscriptionum Indicarum, Vol. III, Fleet, *passim.*

Cunningham, *passim.*

Curtius, 172 *et passim.*

Dacca Review, 440.

Dacca University Journal, 460

Deb, H. K, 308.

Dialogues of the Buddha, 61, 68, 86, 97, 98, 99, 119, 148; 159, 189, 238, 241.

Dictionary of Pali Proper Names, Malalasekera, 30, 69, 102, 144, 145, 146, 150, 151, 152, 156, 158, 159,

Die Kosmographie Der Inder, 76, 244.

Dikshitar, Indian Culture, 300.

D. R. Bhandarkar, Volume 279.

Dynasties of the Kali Age, Pargiter, 15, 16, 20, 26, 89, 90, 150, 164, 176, 261, *et passim.*

—Kanarese Dist., Fleet, 21 175.

Early Empires of Central Asia, McGovern, 470.
Early Hist. of Bengal, *see* Monahan.
Early History of the Dekkan, R. G Bhandarkar, 292, 301, 304, *et passim.*
Early History of India, Vincent Smith, *passim.*
Early History of the Vaishnava Sect, Raichaudhuri, 27, 34, 130, 194, 313.
Early Pallavas, *see* D. C. Sircar.
Eggeling (इगलिंग), 3, 33.
Eliot (इलियट), 85.
Elphinstone, 115.
Epigraphia Indica, *passim.*
Erskine, K. D. (Rajputana Gazetteer), 197.
Essay on Gunadhya, 93, 113, 114, 151, 153.
Excavations at Harappa, 96.
Fick, The Social Organisation in North-East India, trans., S. Maitra, 3, 113. 134 , 234.
Fleet, pt II, *passim.*
Foreign Elements in the Hindu Population, 279.
Foucher, 149, 313, 316.
Fundamental Unity of India, Radhakumud Mookerjee, 125, 126.
Garde, 417, 423.
Gardner, *see* Catalogue of Coins.
Geographical Dictionary, 55 101.
Ghirshman, 344.
Goldstucker, 30, 280.
Great Epic of India (महाभारत), Hopkins, 5, 33, 130.
Hamilton and Falconer, pt. II, Ch. iii-viii, *passim.*
Hardy, Manual of Buddhism, 87.
Harvard Oriental Series (23-30), 85, 105, *et passim.*
Hastings, 350.
Havell, 254.
Heaven and Hell in Buddhist Perspective, B. C. Law, 111, 119.
Hinduism and Buddhism, *see* Eliot.
Hindu Civilisation, Mookerji, 261.
Hindu Polity, Jayaswal, 191.
Hindu Revenue System, Ghoshal, 209
Hindusthan Review, 434, 440.
Historical Inscriptions of Southern India, 425.
Historical Position of Kalki, Jayaswal, 445.
History of Ancient India, Tripathi, 452.
History of Bengal (D. U.), 189.
History of Buddhist Thought, E. J. Thomas, 76.
History of Central and Western India, Ghosh, 285, 304.
History of Egypt under the Ptolemaic Dynasty, (Mahaffy), 459.
History of Fine Art in India and Ceylon, Smith, 254, 313.
History of Greece for Beginners, Bury, 193.
History of Hindu Political Theories, 123.
History of India, K. P. Jayaswal, 398.
History of Indian and Indonesian Art, Coomaraswami, 227, 314.
History of Indian Literature, Weber, 40, 53, 57.
History of Indian Literature, Winternitz, 11.
History of Mediaeval India, C. V. Vaidya, 21.
History of Sanskrit Literature, Keith, 285, 313.
History of Sanskrit Literature, Macdonell, 4, 45.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

History of Sanskrit Literature, Max Muller, 261.
Hoey, 145.
Hoffmann, 323.
Hoyland, The Empire of the Great Mogol, 404.
Hultzsch (हल्ट्ज), *see* Corpus Inscriptionum Indicarum, I.
Iconography, भट्टसाल, 403.
Imperial Gazetteer, the Indian Empire, 313
—C. P., 474
Imperial History of India, Jayaswal, *et passim.*
India in 1932-33, 322.
India, What it can teach us, 313.
Indian Antiquary, *passim.*
Indian Culture, 10, 68, 87, 119, 130, 149, 196, 198, *et passim.*
Indian Cultural Influence in Cambodia, 115.
Indian Historical Quarterly, *passim.*
Indian Studies in Honour of C. R. Lanman, 419.
Indica, *see* Megasthenes.
Intercourse between India and Western World, Rawlinson, 281.
Introduction to the Pratima Natak, 232.
Introduction to the Kalpasutra of Bhadrabahu, Jacobi, 257
Invasion of India by Alexander, McCrindle, 192 *et passim.*
Isidore of Charax, 279, 314.
I-Tsing, 86, 224.
Jainism in North India, C. J. Shah, 217, 414, 470
Jolly, 185.
Journal Asiatique, 116,
—of the American Oriental Society, 67.
—of the Andhra Research Society, 289.
—of the Asiatic Society of Bengal, *passim.*
—of the Bihar and Orissa Research Society, *passim.*
—of Indian History, 40, 42
—of the Dacca University, 460.
—of the Department of Letters (Calcutta University), 313, 317, 327.
—of the Royal Asiatic Society of Great Britain and Ireland, *passim.*
—of the U. P. Historical Society, 276.
Knights Tale, 279.
Ktesis, 180.
Lane, *see* Arabian Knights.
Law, B. C., 23, 96, 97, 100, 111, 112.
Law, N., 244.
Legge, 227, *see* फाह्यान भी।
Levi (लेवी), Sylvain, *passim.*
Life of Alexander, 173, 198.
—of Apollonius, 333.
—of Budha (Rockhill), 94.
—of Hiuen Tsang, 439.
—of Vasubandhu, परमार्थ, 138.
List of Northern Inscriptions, 348.
List of Southern Inscriptions, Kielhorn 188.
McGovern, Early Empires of Central Asia, 470.
Mahaffy, A History of Egypt under the Ptolemaic Dynasty, 459
Malcolm, Sketch of the Sikhs, 53.
Manual of Buddhism, Hardy, 87.
Marshall (मार्शल), Sir John, *passim.*
McCrindle (मॅक्रिंडल), *passim.*
Mediaeval Hindu India, 188.
Megasthenes and Ârrian, 208, 215.
Mamoires of the Archaeological Survey of India, 167, 179, 294, *et passim.*
Mamoires of the Asiatic Society of Bengal, 294.

Modern Europe, Lodge, 134
Modern Review, 96, 160, 166, 271, 311, 315, 391, 402, 442.
Monahan (मोनाहन), 204, 207, 210, 250.
Monuments of Sanchi, 294, 295.
Mysore and Coorg from the Inscriptions. *see* Rice.
Nariman, 151.
Nazim, Life and Times of Sultan Mahmud, 357.
Notes on the Ancient Geography of Gandhara, Foucher. 49.
Numismatic Chronicle, 186
Ogden, 151.
Oka, 285, 385.
Old Brahmi Inscriptions, बरुआ, 229, 305.
Olcott, *see* Arabian Knights.
Orgin and Development of Bengali Language, Chatterji, 396.
Oxford History of India, V. A. Smith, 166, 203, 217, 222, 256, 340 434.
Pali English Dictionary, Rhys Davids and William Stede, 213, etc.
Pandyan Kingdom, 242, 306, 361, 406.
Parthian Stations, Schoff, 312, 315.
Penzer, The Ocean of Story, 461.
Periplus of the Erythraean Sea, Schoff, 49 *et passim.*
Pischel, 124.
Philostratos, 311, 333.
Political History, Raichaudhuri, 34.
Pompeius Trogus, 311
Pre-Aryen et Pre-Dravidien dans l'Inde, S. Levi, 86, 116, 224.
Pre-Buddhist India, 106.
Proceedings of the Second Oriental Conference, 218.
Proceedings of the Seventh Oriental Conference, 442.
Proceedings and Transactions of the Sixth Oriental Conference, 115.
Proceedings of third Oriental Conference, 270, 412
Proceedings of the Seventh Session of the Indian History Congress, 341.
Raverty, Tabaqat, Vol. I, 383.
Ray, H C., 53.
Records of the Western World, *see* Beal, 337.
Religion and Philosophy of the Veda and Upanishads (Kieth), 17, 125.
Regligion of India, Hopkins, 34, 313.
Renou, Louis, 126
Ridding, 373.
Rockhil, 102.
Sachau, Alberuni's India, *see* Alberuni.
Saint Martin, V. De (सेंट मार्टिन, वी० डी), 190.
Saletore, B A 343.
Sallet, Van, 281.
Sanskrit Drama, Kieth, 285, 313, 419
Sanskrit English Dictionary, Apte *passim.*
Sarkar, B K., 121.
Schoff, 49.
Siddhanta, N. K., The Heroic Age of India, 16.
Si-yu-ki, Beal, 52, 98, 161, 246, 439, 443.
Sketch of the Sikhs, Malcolm, 53.
Smith, V. A., 3, *et passim.*
Some Kshatriya Tribes of Ancient India, 53, 97, 100
South Indian Inscriptions, Hultzsch, 15, 240, 242, *et passim.*
Stein, Sir Aurel, Benares Hindu University Magazine, Jan, 1927, 192.
Stein, Megasthenes and Kautilya, 210.

Sten Konow (एस० कोनोव), *passim*, 462.
Strabo, *see* Hamilton and Falconer.
Studies in Indian Antiquities, H. C. Raichaudhury 23, 333.
Successors of the Satvahanas in the Eastern Deccan, *see* सरकार, डो० सी०।
Sukhthankar, V. S., 39, 300.
Tabard, Rev. A. M., 151.
Tabaqat-i-Nasiri, 383.
Takakusu, I-Tsing, 250
Tamils Eighteen Hundred Years Ago, 242.
Tarn, Greeks in Bactria and India, 194, 201, 334.
Tawney, *see* कथासरितसागर।
—The Ocean of Stories, Penzer, 461.
The North Western Provinces of India (Crooke), 179.
Tolman, H. C., 114, 179.
Trenckner, 278, 383.
Vaishnavism, Shaivism and Minor Religious Systems, R. G. Bhandarkar, 351.
Vedic Index, Macdonell and Kieth, *passim*.
Vogel (वोगेल), 187, 329.
Volume of Indian Studies presented to Prof. Rapson, 251, 458.
Warren, S. 98
Watson (वाटसन), 195, 200, 201.
Watters, *see* Yuan Chwang.
Wei-lio (वी-लिओ), 341.
Wendel Wilkie (वेंडेल विल्की), One World, 213.
Whitehead, *see* under Catalogue.
Winternitz, 9,31.
Woolner, Ashoka Text and Glossary, 229.
Young Men of India, 342, 383
Youan Chwang, Watters, 85, 94, 227, 316.
Yu-Houan, 341.
Z D M G, 312, 317.

(हिन्दी-क्रम)

अ–औ

अभिधान चिन्तामणि, २१६
अभिधानप्पदीपिका, १४८
अलबेरूनी, ६, ३५३, ४५९, ४६३
अमरकोश, २८५
अमृत बाज़ार पत्रिका, २२१
अनुक्रमणी, ५४
अपोलोडोरस (आर्टेमिटा के), २६७
अप्पिआनूस, २००
अरिस्टोबुलस, १८५
अर्थशास्त्र—बार्हस्पत्य, संपा० एफ० डब्लू० थॉमस, १८४, १८९
—कौटिल्य (शाम शास्त्री), ९, २०४, सर्वत्र
अष्टाध्यायी—पाणिनि (एस० सी० बसु), सर्वत्र।
अशोकावदान, ७, १६५, ४१२
अश्वघोष, ३६७
अट्टकथा, १६०
अवदान कल्पलता, २७८
आइने-अकबरी, ६७
आयंगर, कृष्णस्वामी, १९९, २४२
आपस्तम्ब, ३०
आरण्यक ऐतरेय, २२८
—कौषीतकि (सांखायन), २८, ३०, ८९
—तैत्तरीय, २०, ३४
आर्यभट्ट, २५
आर्य-मंजुश्री-मूलकल्प, १६०, ४२६, ४३०, ४४०, सर्वत्र।
आर्यसूर, १०
आवश्यक कथानक, १५२
इन्द्रजी, भगवान लाल, २७३
उपनिषद्—
—बृहदारण्यक, ४, सर्वत्र।
—छांदोग्य, सर्वत्र।
—राजेन्द्र लाल मित्र का अनुवाद, ५, ५०
—जैमिनीय, २२, ४१
—कौषीतकि, ५४, १३१
—मुण्डक, २६०
—प्रश्न, ६८, ८०, १२७, २१६
—तैत्तरीय, ८०
उत्तररामचरित, ६४, १३०
उवासगदसाव, हार्नले, ७६, ९३, ९४, १५१, १५८
एलियन, २०३
ओल्डेनबर्ग, ३, १३, २१, ४३, ४८, ९९, १०२
ओनेसीक्रिटोस, १८६
ओरोसियस, १८९, ३१०
औचित्य-विचार-चर्चा, ४२०
ऋग्वेद ब्राह्मण-ग्रंथ, Kieth ३१, १२१

क

कदम्बकुल (Moraes), ३७३, ४७१
कल्हण, दे० राजतरंगिणी।
कल्पनामण्डिटीका, १३७, ३४९
कनकसभाई, पिल्ले, २४२
कर्पूरमंजरी, १०१
कठकसंहिता, २२, १२२
कथाकोश, १५६, १५८, १६०
—पं० दुर्गा प्रसाद तथा पारब, ५४
—त्वानी, १५२, १६४
कर्न (Kern), २६०, २८२
कलन्द, कालैण्ड (Caland), ३, ३१, ३८, २६१
कार्लाइल, ९९

कार्पेण्टियर, २१८, २५०, ३५३, ४३२
कादम्बरी, Ridding, ४१४, ४३६
कालकाचार्य कथानक, ३१७
कालिदास, २८४, ४२०
कामन्दक, ६, १७६
कामसूत्र, वात्स्यायन, ३७६, ४६३, ४७४
कात्यायन, २४३
कावेरी, Maukhari and the Sangam Age, ३००, ४५०
काव्यादर्श, ४५
काव्यमीमांसा, १६५, २९६, ३५३, ४०८
किंग्समिल, ३३५
किटल का शब्दकोश, ३८
कीथ (Kieth) ३, ७, १३ १७, ६३, ६५, १२५, १२८, १३१, सर्वत्र।
कीलहार्न (Kielhorn), सर्वत्र।
कुमारलात (कल्पनामण्डिटीका), ३४८
कुवलयमाला, ४७०
केरलोलपत्ति, २४४
कैनेडी, ३३४, ३४३, ३५३
कैलिमेकस, २१७
कोनोव, दे० Sten Konow.
कौटिल्य, दे० अर्थशास्त्र।
कौमुदी-महोत्सव, ३९१
क्रमदीश्वर, २७९
क्षीरस्वामिन्, २१३
क्षेमेन्द्र, १६७, २७८, ४२०

ग

गजेटियर (Gazetteer)—
—अमरावती, ६८
—गोदावरी जिला, ४०१
—राजपूताना, II A, मेवाड़ रेजीडेन्सी, १९७
—बॉम्बे (Bombay), Vol. I, Pt. II, सर्वत्र।
विशाखापटनम, ३५०
गणपाठ, १८७
गण्डव्यूह, २२५
गांगुली, अर्धेन्दु कुमार, १६७
गांगुली, डी० सी०, ४४४
गार्गी संहिता, १६१, २५८, २६५, २६७
गीता, २८८
गुणाढ्य, दे० Essay on Gunadhya.
गुणे, १५१
गुप्ते, वाई० आर०, ३५८, ४४७
गेगर (Geiger), सर्वत्र।
गोस्वामी, के० जी०, ३४९
गौडवहो, ४५५, ४७४

घ

घोष, ए०, ४५७
घोष, अमर, ३०१
घोष, हरिचरण, ४६१, ४६४
घोषाल, यू० एन०, दे० Hindu Revenue System.

च

चक्रवर्ती, एम०, ४४८
चटर्जी, बी० आर०, ११५
चटर्जी, एस० के०, ३९६
चट्टोपाध्याय, के० पी०, २९८
चन्दा, आर० पी०, १६२, १६६, १६७, २७३, २८३, २९४
चन्द्रगोमिन, ४७०
चम्पा, आर० सी० मजूमदार (कम्बुज देश), ११५

छ

छविल्लाकर, २२७

ज

जस्टिन (Justin), १७३, सर्वत्र।
जातक, ७७, ८४, सर्वत्र।
—अस्सक, ७७, १११
—अट्ठान, ६२
—उद्दालक, ५०, ६२
—उदय, ७७
—उम्मदन्ती, १८७
—एकपण्ण, ९८

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

—एकराज, ११९
—कालिंगबोधि, ५३
—कुनाल, ८८, ११८, १४४
—कुम्भकार, ६५, १०५, ११३
—कुम्मासर्पिड, ६२, १५७
—कुरुधम्म, १०४
—कुश, ७९
—कौशाम्बी, ११८, ९८
—खण्डहाल, १३३, १३४
—गंगमाल, ६२
—गग्ग, १५१, १५२
—गण्डतिन्दु, १०५
—गान्धार, ४४
—गुत्तिल, ७६
—घट, ११९
—घट, ८३, ११९
—चत्त ८३
—चम्पेय्य, ८७
—चुल्ल कालिंग, ९८, १११, ११२
—चुल्ल सुतसोम, १३२
—चेतिय, १०१
—जयदिस्स, १०५
—तच्छसूकर, १५४, १५७
—तन्डुलनालि, ६०
—तुष, १५४
—तेलपट्ट, ४९, ११४, १३४
—तेसकुन, ११९
—दरीमुख, १२४
—दस ब्राह्मण, १०४, १०५
—दशरथ, ६३, १२४
—दुम्मेध, ६२, १३३
—धजविहेठ, ६१, ६२
—धूमकारि, १०४
—धोनसाख, ७७, १४४
—नन्दियामिग, ८३
—निमि, ४५, ५४, ६६, १०५
—पदकुसलमानव, १३४
—पादंजलि, १२३, १३२
—बावेरु, ४५८
—ब्रह्मचत्त, ७७, ११८
—ब्रह्मदत्त, १०५
—भद्दसाल, ७७, ७८, १००, १५७
—भल्लाटीय, ७९
—भूरिदत्त, ७८, ११६, ४५९
—भोजजानीय, ७९
—मंगल, २३९
—मच्छ, ८३
—महा अस्सारोह, १३२
—महा उम्मग्ग, ४४, १०६
—महाकान्त, ५४
—महाजनक, ४४, ८६
—महानारद कस्सप, ५४
—महासीलव, ११८
—महासुत्तसोम, १०४
—मातंग, १५२
—मातिपोसक, ६२
—मूषिक, १८१
—लोमस कस्सप, ६२
—वड्ढकी सूकर, ११९, १५४, १५७
—विधुर पंडित, ७७, ८४, ८७, १०४
—वेदब्भ, १०२
—वेसन्तर, १३३, १८७, ३०५
—संवर, १२३, १२४
—सच्चंकिर, १२४, १३४
—सब्बमित्त, ८३
—समुग्ग, ४६१
—सम्बुल, ६२
—सम्भव, ७६, १०४
—सरभंग, ७१
—सरभमिगा, ७७
—सुरुचि, ४४, ७७, १२४
—सुसीम, ४९, ११३

—सुशीम, ६२
—सुस्सोन्दी, ४५८
—सेतकेतु, ५०
—सेय्य, ११९
—पेरवाणिज, ७२
—सोनक, १२४
—सोननन्द, ७७, १११, ११८
—सोमनस्स, ५९, १०५
—हत्थिमंगल, २३९
—हरितमात, ११९, ११७
जातकमाला, १०
जान्सटन, १०
जायसवाल, Pt. II, सर्वत्र ।
जिनप्रभसूरि, २५८
जिनसेन, ४६८
ज़िमर, १३
ज्ञान-प्रस्थान, ५

ट

टर्नर (Turnour), महावंश, ९३
टॉड (Tod), दे०, राजस्थान

ड

डायोडोरस, १७६, सर्वत्र ।
डॉउसन, ३३२, ३४३
डुब्रील (Dubreuil), ७०, ३४४, ३४६, ३७०, ४०१, ४४८, ४५६
डे, एन० एल०, ८१, ८५, १०१, २४४

त

तंत्रि-कामंदक, ३९१
तारनाथ, १७५, २१९, २५८, २७१, ४४८
तीर्थकल्प, ३४४
तोलेमी, इतिहासकार, १८५
तोलेमी, भूगोलवेत्ता, सर्वत्र ।
त्रिपाठी, ४४९
त्रिपिटक (चीनी), ३८५

थ

थॉमस, एफ़० डब्ल्यू० (Thomas, F. W.), १८४, २४७, २७४, ३०६, ३१३, ३४३, सर्वत्र ।

द

दशकुमार चरित्र, ८५, ११५, १८८
दिवेकर (Divekar), Annals of the Bhandarkar Institute, ४०७, ४२४
दिव्यावदान (Cowell & Neil), ५४, १०५, १४७, १९७, सर्वत्र ।
दीक्षित, के० एन०, २९७, ३९६
दीपवंश, २४४
देवीभागवतम्, ३७, ३८
देवीचन्द्रगुप्तम्, ३७९, ४१२
देवीमाहात्म्य, ६
देसीकर, एस० एस०, २२८
द्वातृ शत पुत्तलिका, १६३

ध

धम्मपद-टीका (Dhammapada Commentary), ९४, ९८, २४६
ध्रुव, २५८

न

नन्दीसूत्र, ९
नाट्यदर्पण, ३७९
नाट्यशास्त्र, ४१९
नागरी प्रचारिणी पत्रिका, २७१
निकाय—
—अंगुत्तर, सर्वत्र ।
—दीघ, ७८, सर्वत्र ।
—मज्झिम, सर्वत्र ।
—संयुक्त, ११९, १५५, १५७
निरुक्त, यास्क, ९७, १२३
—संपा० क्षेमराज श्रीकृष्णदास श्रेष्ठी, २३
नीतिवाक्यामृत (सोमदेव), ४३१
नीतिसार, कामन्दक, १७६
नीलकण्ठ (टीकाकार), ५५, ११२
नीलकण्ठ शास्त्री, के० ए०, दे० Pandyan Kingdom,

नोरिस (Norris), २४५

प

पतंजलि, दे० महाभाष्य
—Index of Words, ३८५
पपंचिसूदन, २३
परमत्थदीपनी, ५३
परमत्थ जोतिका, ६६, ९७
परनार, १९९
पवनदूतम्, ४००
परिशिष्टपर्वन्, १५५, १६३, १६७, १७२, १९६, २१८
पातिमोक्ख, ४६०
पान-कू, ३३४, ३३६
पान-यंग, ३३७
पार्जिटर (Pargiter), ३, सर्वत्र।
पुराण—
—अग्नि, ३८५, ४६३
—कल्कि, १६४
—कूर्म, २२४, ४७३
—पद्म, ३०१
—ब्रह्म, ५८, ५९
ब्रह्माण्ड, २९६
—बृहद्धर्म, ८८
—भागवत, ५, ६, १४, २५७, २७८, सर्वत्र।
—मत्स्य, सर्वत्र।
—मार्कण्डेय, पार्जिटर, ६, ५९, ७४, सर्वत्र।
—लिंग, ४७३
—वायु, सर्वत्र।
—विष्णु, सर्वत्र।
—स्कन्द, ४६३
पोलिबियस, २६५, २७७
प्रचण्ड पाण्डव, Cappeller, ६
प्रज्ञापना, २२८
प्रतिज्ञा-योगन्धरायण, ३९
प्रबासी, ४४२
प्रबोध-चन्द्रोदय, ४४८
प्रवचन-सारोद्धार, ३७६
प्रियदर्शिका-श्रीहर्ष, ८७, १५२
प्लिनी (Pliny), २२०, २२८
प्लूटार्क, १७३, १९२, १९३, १९८, २०१

फ

फ़र्गुसन, ३४५
फ़ान-ई, ३१३, ३३५
फ़ाह्यान, Legge, १४६, ४१५, सर्वत्र।
फ़िलिग्रोज़ैट, २१७

ब

बरी (Bury), ९५, १९४
बनर्जी, आर० डी०, १६६, २९४, ३१६, ४३७, सर्वत्र।
बरुआ, बी० एम०, १७५, २०३, २४८, २५३, २७४, २८७, ३०५, सर्वत्र।
बरुआ, के० एल०, ४०४
बसाक, आर० जी०, ४१९, ४३९, ४५०
बाखले, बी० एस०, ३८८
बाण, Part II, सर्वत्र।
बाबरनामा (अँग्रेजी), A.S.Beveridge, १९८
बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र, १८४
बील (Beal), ५२, २४६, ४१४, ४४३
बुद्धघोष, ८८, १५५, २२९
बुद्धचरित, ६९, १४५
बूह्लर, सर्वत्र।
बेलक, २४५
बेवन, १९१
बोधायन, २२८
बौद्धधर्म-कोश, १७५
ब्राह्मण—
—ऐतरेय, Part I, Ch. i-iv, ४, सर्वत्र।
—ऐतरेय (Trivedi's translation), ३७
—ऋग्वेद (कीथ), ३२, १२१, १२५
—कौशीतकि, ६०
—गोपथ, ३२, ४२, ५४, ५६, ८९

—जैमिनीय, ३८ ४२
—जैमिनीय उपनिषद्, २२, ३६, ८०, ८१, १३३
—पंचविंश या ताण्ड्य, ३१, ६५, ८९, २६३
—वंश, ३७, ४१, ११६, २७०
—शतपथ, Eggeling, Pt. I, Pt. II, Ch. i-ii, ४, सर्वत्र ।
—संहितोपनिषद्, ५८
बृहत्कथा, १५१, १६४
बृहत्संहिता, वराहमिहिर, संपा० कर्न, २५, १८४, २२१, २४४, २५८, २८२, ३६०, ३६४, ४४८, ४६२, सर्वत्र ।
बृहद्देवता, २३
ब्लॉच (Bloch), ४१६
ब्लूमफ़ील्ड, १३

भ

भट्टसालि, एन० के०, ४०३, ४३९, ४६८
भण्डारकर, आर० जी०, सर्वत्र ।
भण्डारकर, डी० आर०, १३७
भरत-मल्लिका, १९०
भवनगर-अभिलेख, ३८३
भवभूति, ४६, ६४, १३०
भारतवर्ष, ४६८
भास, ३९, १०३
भोज, ३७९, ४२०

म

मजूमदार, आर० सी०, सर्वत्र ।
मजूमदार, एन० जी०, ३१८, ३८६
मजूमदार, एस० एन०, १४५, ४२४
मनुसहिता, ५६, ९७
महाबोधिवंश, १६५, १७२, १७५, २१२
महाभारत, ६, सर्वत्र ।
—अनु० दत्त (एम० एन०), १५, सर्वत्र ।
—अनु० राय (पी० सी०), १५
—एक आलोचना, सी० वी० वैद्य, ३५
महाभाष्य, पतंजलि, सर्वत्र ।
महामायूरी, ३१७
महावंश, १६७, २४४, ४५८, सर्वत्र ।
महावंश, गेगर, ९३, सर्वत्र ।
टीका, १६३, १८३, १९८
—टर्नर, ९३, १६३, १९७, २०७
महावग्ग, ७७, ८४, ८८, ९७, ११८, ११९, १३२, सर्वत्र ।
महावस्तु, ७०, ७२, ७५, ७९, २४७, ४६९
महाविभाषा, ५
महावीर-चरित, ४७, ६४
मानसी-ओ-मर्मवाणी, २२८
मामुलनार, २०१
मार्गभूमि-सूत्र, ३४५
मालविकाग्निमित्रम्, २७०, २७१, २४४
—Tawny. २७०, २८५
मालालंकारवत्थु, ९२
मित्रा, एस० एन०, ५३
मित्रा, आर० एल०, ४, ५०, २२२
मिराशी, ३६७
मिलिन्दपञ्हो (S. B. E.), १७७, ३०५, ३७६, ४६३
—Trenckner, २७८, २८३
—मुद्राराक्षस, १७६, १९६, १९९, २१७, ३७९, ४१२, ४१८
मेघदूत, ७३, १५२, ४१४
मेहता, रतिलाल, १०६
मैक्डोनेल, ३, ४, १३, ६२, सर्वत्र ।
मैक्लिफ़, Sikh Religion, २०६
मोरेस (Moraes), दे० कदम्बकुल ।
मृच्छकटिक १७५

य

यास्क, ६, ८८, ११६

र

रघुवंश, ७१, २४२, ४३१, ४५१
रत्नावली, १५२
राइस (Rice), १७५, १९९, २१७, २६२, ४३६

राजतरंगिणी, कल्हण, ११४, ११५, २४०, सर्वत्र।
राजशेखर, ६
राजस्थान, टॉड, १९८
रामचरित, संध्याकर नन्दी, ३९९
रामदास, जी०, ४०१
रामायण, ५, सर्वत्र।
रॉलिन्सन, २२१
रिवेट-कारनैक (Rivett-Carnac), २८६
रीज़-डेविड्स, ३, सर्वत्र।
रैप्सन (Rapson), सर्वत्र।
रोथ, १३

ल

ललितबिस्तर, ४३१
लूडर्स (Luders), सवत्र।
लैसेन, ३
लोक-विभाग, २७२

व

वत्स, ९६
वसु, एस० सी०, दे० अष्टाध्यायी।
वाक्पतिराज, दे० गौडवहो।
वात्स्यायन, दे० कामसूत्र।
वार्षगण्य, ६
वासवदत्ता नाट्यधारा, २१८
विज्क, वान, ४६८
विद्याभूषण, एस० सी०, ९६
विद्यालंकार, जयचन्द्र, ४६१
विनयपिट्कम्, १०, ७७
—चुल्लवग्ग, १५६
—महावग्ग, ७७, ८५, ८८, ९७, १३२, १५२, १५५, १५८
विमानवत्थु, ११९
विलसन, ९९
विशाखदत्त, १४०, ३७९
वीरचरित, ३०४
बेंकटेश्वरैयर, २४३
वेंगर, जे०, ८८
वेद संहिता—
—अथर्व, सर्वत्र।
—ऋक्, सर्वत्र।
—काठक, २२, १४३
—तैत्तिरीय, १२७
—ब्लूमफ़ील्ड का अनुवाद, १३
—मैत्रायणी, १२२
वेबर (Weber) ४०, ५३,५७, ८९, १२४, १८८
वैद्य, सी० बी०, २१, १८८

श

शंकर, टीकाकार, ३७९
शाबूरक़ान (शापुरख़ान), ४६०
शाम, शास्त्री, दे० अर्थशास्त्र।
शास्त्री, एच० पी०, २६०, ३९६, ४४७
शास्त्री, गणपति, ३९, १०२, २३२
शाह, एच० ए०, २७०
शाह, सी० जे०, २१७, ४०७
शुक्रनीति, बी० के० सरकार, १२१
शोणदण्ड सुत्त, १५५
शृंगार-प्रकाश, ३७९, ४२०
श्रीनिवासाचारी, सी० एस०, ३४३, ३८३
श्वानबेक (Schwanbeck), २०२

स

संघरक्ष, ३४५
सरकार, डी० सी०, १३०, ३६८, ३८८, ४४८, ४६८,
सरस्वती, एस० के०, ४३८
सरस्वती, रंगस्वामी, ३७९
सांख्य-प्रणाली, Kieth, ६
सामण, १२१
साहनी, दयाराम, ३४१
साहित्य-परिषद् पत्रिका (एस० पी० पत्रिका), ४७४
सिगालोवाद सुत्तन्त, २५२
सिद्धान्त, एन० के०, Heroic Age of India, १६

सुत्त, बौद्ध, १०
—अग्गञ्ञ, ७९
—अम्बट्ठ, ७९, १९०
—कालकाराम, ४५८
—पायासि, ७९, ११९
—मखादेव, ६५
—महागोविन्द, ६१, ६८, ८६, ११२, १२९
—महापरिनिब्बान, ८५, ९४, ९६, ९९, १००, १५८; १९७
—महालि, ९७
—लोहिच्च, ११९
—संगीति, ९९
सुत्तनिपात, ७०, १४८
सुबन्धु, २१८
सुब्रामणियम, टी० एन०, २४३
सुमंगलविलासिनी, १५८, २५३
सूत्र—
—धर्म :—
—आपस्तम्ब, २९
—बौद्धायन, ६७
—गृह्य :—
—आश्वलायन, २९, ३४
—सांखायन, ३०
—जैन :—
—आचारांग, ९३, ३६१
—आवश्यक, ३०४, ३५९
—उत्तराध्ययन, ४९, ६८, १०६, ११३
—औपपातिक, १५६
—कल्प, ९७, ९८, १५६, १५९
—निरयावली, ९८, १५५, १६०
—भगवती, १५५
सूत्र, श्रौत :—
—आपस्तम्ब, ८२, १२९
—आश्वलायन, ४७
—कात्यायन, १२१
—बौद्धायन, ३२, ३७, ८१, ८२ २७०, २९०
—सांखायन, ३७, ८८
सू-म-चीन (Ssu-ma-chi'en), ३३५
सूर्यकान्त, १९८
से-के, शी-की (Sse-ke, Shi-ki), ३३६
सेन, जे०, १५१
सेन, वी० सी०, २०३
सेनार्ट (Senart), सर्वत्र ।
सोमदेव (कथासरित्सागर का लेखक), १६७, सर्वत्र ।
सोमदेव (नीतिवाक्यामृत), ४३२
सौन्दरानन्द, ११३
स्पूनर, २०३
स्वप्नवासवदत्ता, १०२, १५२, १६१

ह

हरित-कृष्णदेव, ६१
हरिवंश, १४, ६८, ७१, ८५, १०२,१०३, ११२, १४५, २४१, सर्वत्र ।
हरिस्वामी; ५७, १०२
हर्ज़फ़ील्ड, १३७, १७७, ३११, ३१२, ३५६
हर्मन (Hermann), ३१५
हर्षचरित, संपा० पारब, ६, १३७, १६५, सर्वत्र ।
—Cowell and Thomas, ३४५
—हॉप्किन्स (Hopkins), ३२, ३५, ३१३
हार्नले (Hoernle), १८९, ४३४, ४५०
हाल (Hala), २९६, ४१३, ४२०
हिलब्रैण्ड, १२६
हेमचन्द्र, १५५, सर्वत्र ।
हेरा (JBORS), ४४४
हेरोडोटस, १७९
ह्वेनसांग (Hiuen-Tsang), सर्वत्र ।

सामान्य अनुक्रमणिका

(हिन्दी-क्रम)

अ

अंग, ७६, ८४, ११७, २२८, ४४९
अक्षदर्श, ३८५
अक्षपटल-अधिकृत, ४१७
अक्षवाप, १२७
अगलसोई, १८८
अगिखन्ध, २५१
अग्निमित्र, २७०, २७१, २८४
अग्रमहिषी, ३८३
अग्रामात्य, २२२
अग्रामीज (Agrammes), १७२, १७६
अग्रोनोमोई, २०९
अच्युत, ३९६, ३९८
अज (Aya, Aja), ३३२
अजक, १६४
अजातशत्रु, काशी का, ५४, ६१, ६६
अजातशत्रु कूणिक, १५६, १५७
अटवी, २२६, २२९
अत्तिवर्मन, ४०१
अद्रेस्ताई, १८५
अधिष्ठान, ३८५
अधिसीमाकृष्ण, ३६, ५७, ८३
अध्यक्ष, २०९
अनन्तदेवी, ४२५
अनन्तनेमि, ११३
अनन्तपाल दण्डनायक, ४३५
अनन्तवर्मन, ४४९
अन-शिह्-काव, ३४५
अनुपिया, १००
अनुरुद्ध, १६३
अनुसंयान, २३५, २४८
अनप, ३६४, ३७५
अन्तपाल, २३४
अन्तमहामात्र, २३४
अन्तवंश, १२७
अन्तर्वंशिक, २३४
अन्धौ-अभिलेख, ३७५
अन्यत्ल्लक्षा, २१
अपर मत्स्य, ५५
अपरान्त, २३१, ३६४, ३७२, ३७६
अपोलोडोटस, २८२, २८३, ३०७
अपोलोफेन्स, ३०७
अबीरिया, दे० आभीर।
अबीसेयर्स, दे० अभिसार।
अब्दगसेस, ३३३, ३८५
अभय, मगध-राजकुमार, १५६
अभयदत्त, ४४८
अभिप्रतारिण, कक्षसेन-पुत्र, ३७
अभिषेक, १२८; राज्याभिषेक, २२२
अभिसार, अपीसेयर्स, १८४, १९२
अभिसारप्रस्थ, ३२४
अभ्यन्तरोपस्थापक, ३८७
अमच्च, अमात्य, मंत्री, २०६, २७२,
    ३८२, ३८६
अमिन्तास, ३०९
अमित्रघात, अमित्रखाद, अमित्रचेत्स, दे०
    बिन्दुसार, २१८
अयपुत्त, २३२
अयम, ३५९
अयसि कमुइया, ३८३
अयोध्या, ८२, ४३८
अरिट्ठपुर, १८७
अरियक, ४७८
अर्गरु (उरगपुर), ४७८
अर्जुन, १०३
अर्जुन (पाण्डव), ९७, ४०५

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अर्थचिन्तक, ३८१
अर्थविद्या, ३८१
अर्देसिर बाबगान, ३५३
अलवर, ५५
अलिकसूदर, २४५
अलेक्जेन्ड्रस, (सिकन्दर-महान्), १७२, १८१, १९४
अलेक्जेन्ड्रिया, १९४
अलेक्जेन्ड्रिया (अलसन्द), १९४
अलेक्जेन्ड्रिया (अलसन्दा), २२६, २७८
अल्लकप्प, १४५
अल्लित्रोशेड्स, २१८
अवचत्नुक, ८६
अवन्तिपुत्र, १११
अवन्तिवर्धन, १६४
अवन्तिवर्मन, ४५१, ४५३, ४६६
अवन्ती, ७६, १५३, ४३३
अशोक, २४५
अशोक (महाभारत में), ६
अशोकचन्द्र, १५६
अशोक मौर्य, ६, २२२, ४५८
अश्मक, अस्सक, असक, ७२, १११, १७३ १८२, ३६३
अश्वक, १८३
अश्वघोष, ३५१
अश्वपति, केकय का राजा, ४६, ५२
अश्वपति, मद्र का राजा, ५४
अश्वमेध, १३०, २७५, २८४, ३०३, ३५५, सर्वत्र।
अश्वमेध (राजा), ३६
अश्वमेधदत्त, ८, ३६, ५७
अश्वमेध-पराक्रम, ४०८, ४०९
अश्ववारक, ३८६
असन्धिमित्रा, २६८
असिक, ३६३
असितमृग, ३२
असुरविजय, ३९९
अस्पवर्मन, ३२६, ३३३
अस्सकनोस, १८२
अस्सलायन, आश्वलायन, २०, ३५, ८१
अस्सानम, ११५
अहिच्छत्र, अधिछत्र, १०५, २८७, ३९८, ४१७

आ

आंभीय (कुल), ३०४
आकरावन्ती, ३७५, ४६४
आकूफिस, १८३
ऑक्सीकनोस, १९१
ऑक्सीड्रके, १८८
आगथोक्लिया, २८१, २८३, ३०७
आगथोक्लीज, ३०७
आजीविक, १५९, २४१, २५८
आटणार, ८१
आटविक, ३९८
आठम, ३२४
आदित्यवर्मन, ४५०
आदित्यसेन, ४३६, ४५४
आनन्द, ४५३, ४७९
आनर्त्त, ३७५, ४६४
आन्ध्र, ७, ७२, २३०
आन्ध्रपथ, ३६४
आन्ध्रपुर, ७२
आन्ध्रवंश, २९०, २९३, ४४८
ऑफिर (Ophir), ४
आबस्टनोई, सम्बस्टई, सब्रके, सब्रगे, १८९
आभीर, अबीरिया, १९०, ३२७, ४०५
आम्भी, १८३
आम्भीय, १८४, ३०४
आम्रकार्दव, ४०६
आयुक्त, २३३, २३६, ४१७
आयोगव, १२३
आरक्षाधिकृत, ३८६
आरुणि, २८, ४१, ४८, ५०
आर्जुनायन, ३८२, ४०४
आर्त्त, ३२६

आर्तजिरक्सीज़-द्वितीय Artaxerxes II), १८०
आॅर्थेन्स, २८१
आॅर्द्रक, आेर्द्रक, २८७
आर्यक, १६४
आलवी, अलभिय, आलवक, १४८, ३९९
आश्वलायन, दे० अस्सलायन ।
आषाढ़सेन, २८७
आसन्दीवत्, २१, ३३
आस्टेस, १८३, १९३
आस्पेसियन, १८१
आहार, आहाल, ३८८

इ

इक्ष्वाकु, ७९, ९४, ९५
इक्ष्वाकु-वंश, ९९, १११, १७३, ३७०
इजिप्ट (मिस्र), २०४, २०९, २१३
इथीक्षक महामात्र, २३४
इन्द्रदत्त, ३६९
इन्द्रद्युम्न, ४२, ५२
इन्द्रपालित, २५७
इन्द्रप्रस्थ, इन्द्रपत्त, इन्द्रपत्तन, ७६, १०४
इन्द्रमित्र, २८६
इन्द्रवर्मन, ३२६
इन्द्रौत, १६, १७, ३२, ३३
इफैण्डर, ३०९
इरावती, ३२
इषुकार, १०४
इसामुस (Isamus), २७८
इसिला, २२६, २३३

ई

ईशानवर्मन (मौखरी), ४४४, ४५०, ४६७, ४७३
ईश्वरदत्त, ३६९, ३७८
ईश्वरवर्मन, ४५०
ईश्वरसेन, ३६९

उ

उक्कचेला, ८७
उक्कत्थ, उक्कट्ठ, ७९, १४८
उक्कावेला, ८७
उग्रवश, ९३
उग्रसेन, १७२
उग्रसेन, पलक्क के, ३९९
उग्रसेन परीक्षित, १५
उग्रसेन महापद्म, १७८, १९४
उच्चश्रृंगी, ३७४
उच्छस्रवा, २२, २३
उज्जैन, उज्जयिनी, विशाला, पद्मावती, भोगवती, हिरण्यवती, २०३, २१२, २२०, २२६, २५८, २६६, ३१७, ३७५, ४१४, ४४४
उत्कल, १०७
उत्तमभद्र, ३६३
उत्तमौज, ५९
उत्तर कुरु, ५३, १२१
उत्तर तोसल, २२५
उत्तर पांचाल, ६०, १०५
उत्तराध्यक्ष, २१०
उत्तरापथ, ४८, २२७
उत्तरी मद्र, ५२, १२१
उदकसेन, ७८
उदय, काशी के, ६२, ७७
उदय, उदायन, १६०, १६२
उदयन, १५१
उदयभट्ट, १६१
उदाक, २८७
उदानकूप, ४१६, ४११
उदीच्य, ५४, १२०
उद्दालक, आरुणि, दे० आरुणि ।
उद्यान, १८२
उपगुप्त, ४४०
उपगुप्ता, ४४०, ४५०
उपप्लव्य, ५५
उपरिक महाराज, ४१७
उपरिचर, १०१
उबेराय, ७४
उब्भटक, ९९

उभक, १६६
उरशा, १८४, ३२७
उरुवेलकप्पा, १००
उर्गपुर, उरैयूर, २४२
उशवदात, ३५९
उशीनर, ५४
उषस्ति चाक्रायण, दे० चाक्रायण

ऊ

ऊना, १८२

ए

एकचक्रा, ५८
एकराट्, १७३, ३९५
एजिलिसेस (Azilises), ३२३
एजेस-द्वितीय, ३२२
एजेस-प्रथम (Azes), ३१३, ३२२
एण्टिओकोस सोटर, ४५८
एन्टिओकोस-द्वितीय थियोस, २२१, २२६, २४५
एन्टिओकोस-महान्, २७८, २८०
एन्टियलकिडस, अन्तलिकित, २८१, २८८, २९५, ३०९
एन्टीमेकोस, ३०८
एन्ड्रोस्थेनीज़, २६५, २७७
एपीरस, २७७
एप्रिक्स, १८२
एमेट्रिअस, २७९
एरण, ४४२
एरण्डपल्ल, ३९९
एरनबाओस, २०२
एरिया, २०१
एसियाई (Assii), ३११
एसियानी (Asiani), ३११

ऐ

ऐण्ड्रोकोट्स, दे० चन्द्रगुप्त मौर्य ।
ऐन्द्र-महाभिषेक, १२८
ऐरिकिन, ३९८, ४४२
ऐश्वर्यपाल, ३९२
ऐक्टेसीनियन, १७८

ओ

ओक्काक, ९९, १२४
ओज़ीन, दे० उज्जैन ।
ओद्धवादि, १०७
ओम्फ़िस, १८३
ओस, १२८
ओसेडिओई, १९०
ओहिन्द, ३५७

औ

औग्रसैन्य, १७६, १९३
औलिकर-वंश, ४७१

ऋ

ऋष, ११२
ऋतुपर्ण, ८०, ८२
ऋषभदत्त, दे० उशवदात ।

क

कंचनपुर, ७०
कंस, कोसल का, ११९
कंस, मथुरा का, १०९
कक्षसेन, १५, ३८
कक्षसेनि, ३६
कच्छ, २७८, ३६०, ३७६, ४६४
कटच्चुरि, दे० कलचुरि ।
कटच्चुरि-वंश, ४३२, ४३६, ४५२, ४५३, ४५४, ४७१
कठ, १८५
कण्टकशोधन, २३५
कण्व-वंश, २९०
कतुरिया (कत्यूर) राज, ४०४
कदम्ब, कदम्ब-वंश, ३७४, ४१३, ४२०, ४५६
कनखल, ५४
कनिष्क, ४६१, ४६२
कनिष्क-तृतीय, ३५३
कनिष्क-द्वितीय, ३४१, ३५३
कनिष्कपुर, ३४९
कन्नौज, १०६, ४५६
कन्थ, १८६

कप, ३३४
कपिलवत्थु, १४८
कपिशा, कापिशी, १७८, २८२, ३०९, ३१७, ३२४, ३४९
कम्बोज, ११४, ११५, १८४, २१२, २२७
कम्मास्सदम्म, १०४
कर, ४८०
करकण्डु, ६५, ११३
करण्डु, ६५
कराताई, ३१९, ३५८
कराल, ६५,६६
करेग्रोई, ४७८
कर्ण, ११५, ११७
कर्णदा, ८९
कर्णसुवर्ण, २२८, ४४८, ४५४, ४५५
कर्त्तृपुर, ४०४
कर्मसचिव, २०८, ३७७
कर्मान्ति, ४०४
कर्मान्तिक, ३८७
कलचुरि-संवत्, ३४४
कलभ्र, ४८०
कलशीग्राम, २७८
कलार जनक, दे० कराल ।
कलिंग, ७२, १७३, २४०, २६६, २७२, ४३३
कलिंग-नगर, ७०, ३०५
कलियुग, २४
कल्याणवर्मन, ३९२
कल्लार, ३५३, ३५७
कविराज, ४०८
कश्मीर, २२७, ३४९, ३५६, ४४४
कश्यप, १६, २७०
कश्यप मातंग, ३५३
कसिया, ९९
कसुचैद्य, १०१
कस्सपिय अर्हत्, २८७
कांची, ३७२, ३९९
काओ-फ़ू, ३३४
काक, ४०५
काककर्ण, ८९
काकनाद (साँची), ४०६
काकवर्ण, ८९, १६५, १७३
काकुत्थ, ९९
काकुस्थ, ९५
काकुस्थवर्मन, ३७४, ४५६
काच, ३९५
काडफ़िसेस-द्वितीय, दे० बीमा ।
काडफ़िसेस-प्रथम, दे० कुजुल ।
कात्यायन, २९
कान्तिपुरी, ३५५
कान्यकुब्ज, १०६
कापटिक, २१४
कापेय, ३६
काप्य-पतंचल, ५३
काबुल, १७८, २७८
कामन्दक, ७
कामरूप, २२८
काम्पिल्य, १०५, १४९
काम्यक, २१
कारनक, २३३
कारस्कर, ३९२
कारुवाकी, २५३
कारुष, ७३
कार्तिकेय, ४२४
कार्तिकेय-सम्प्रदाय, ३५३
कार्द्दमक, ३७४, ४६५
कालचम्पा, ८५
कालसेन, ८३
कालामश, ७८, ११६, १४९
कालाशोक, १६५, १७३
कालिदास, ४२०
कालिन्दी, ४४३
कावषेय, दे० तुरा कावषेय ।
काविरी पट्टिनम, २४२
काशी, ६१, ६२, ७५, ७६, ११८, १५४, १५७, १५८, १७३, ४३८, ४४२
काशीपुत्र, २८७
काहोडा कौषीतकेय, ४७

काहोला कौषीतकि, २८
किदार कुषाण, ३५६
कि़पिन, ३१६, ३२०, ३३५, ३४३, ३५४, ३५८
कीकट, ८८
कीर्त्तिवर्मन-प्रथम, ४४९
कीन-ची, कीन-शी, ३३६
कुइ-चुआंग, कुइ-शुआंग, ३३६
कुकुर, ३६३, ३७६
कुजुल-काडफ़िसेस, ३२३, ३३८, ३४६
कुणाल, २५७
कुण्डग्राम, ९४
कुण्डधाणि, ४१७
कुण्डिन, ६८
कुन्तल, १७५, २६९, २९६, ३७३, ४३३
कुन्तल शातकर्णि, २९६, ३७३
कुबरिक, २३०
कुबेर, ४३६
कुबेर, देवराष्ट्र के, ३९९
कुबेरनागा, ४१२, ४१९, ४२७
कुमार, राजकुमार, २१२, २३४, २५६
कुमारगिरि, ३९९
कुमारगुप्त (राजकुमार), ४३५
कुमारगुप्त-तृतीय, ४४४, ४४८, ४५१, ४६७
कुमारगुप्त-द्वितीय, ४४०
कुमारगुप्त-प्रथम, ४२२, ४६९
कुमारदेवी (गाहड़वाल रानी), २२३
कुमारदेवी (लिच्छवि-वंशीया रानी), ३९३
कुमारपाल, ४३७
कुमारविष्णु, ३७२
कुमारामात्य, २८५, ३८७, ४१६, ४१८, ४२२
कुम्भावती, ७२
कुयुल-कर-कफस, ३३८
कुयुल (कुजुल) काडफ़िसेस, दे० कुजुल काडफ़िसेस।
कुररघर, ११२
कुरु (दक्षिण', २३
कुरु (राज्य), १९, ३७, ५६, १०४
कुरुओं, १२, १९, २३, ३३, ५६, ६०, १७४
कुरुक्षेत्र, २०
कुरुजांगल, २०
कुरुविन्दों, १०१
कुरुश, १७८
कुरुश्रवण, २१, २३
कुलस्तम्भ, ४४८
कुलूत, ३८२
कुविन्द, १११
कुशध्वज, ४४
कुशाग्रपुर (राजगृह), ८८, १५६
कुशीनर, ९९
कुषाण, ३३२, ३३५, ४६१
कुषाण (अन्तिम), ३५५
कुसावती, ९८
कुसुमध्वज, २६०
कुसुमपुर, १६२
कुसुलुक, ३२५
कुस्थल, दे० कन्नौज।
कुस्थलपुर, ३९९, ४०१
कूणिक, दे० अजातशत्रु।
केकय, ५१
केतुमती, ६०
केरलपुत्त, २४४
केसपुत, ७८, १४५
कैकृषिसूत्वन, १४४
कैसर ३५३
कोंकण, ४३३
कोट, ३९६, ३९८
कोटाटवी, ४००
कोटिग्राम, ९४
कोटिवर्ष, ४१७, ४३५
कोट्ट-विषय, २३३
कोट्टूर, ३९९
कोनकमन, २५४
कोलकई, २४३
कोलिय-राजवंश, १४६
कोल्लाग, ९४

कोरण्डवर्ण, १६६
कोशल (उत्तर), ६१, ६३, ७६, ७८, ११७, ११८, १५९, १७५, २७१
कोशल (दक्षिण), २२५, ३४५, ४००, ४३३
कोष्ठागार, ३८६
कौटिल्य, दे० चाणक्य, ९, ५१, १७६, १९८, २०६, २१८
कौत्स, ४२
कौराल, ३९९
कौशाम्बी, ३६, ३९, ५७, १०२, २०३, २०६
कौशिकी, २८६
कौशिकी नदी, २१
क्यु-ज्यु-कियो, ३३७
क्यु-शा, ३४९
क्रकुच्छनन्द, २२७
क्रमादित्य, ४३१
क्रमादित्य, दे० कुमारगुप्त-द्वितीय।
क्रमादित्य, दे० घटोत्कच गुप्त।
क्राथ, १८६
कृतलक्षण, ६५
कृत-मानव-विक्रम-सम्वत्, ३२२
कृतमाला, २४३
कृति, ४४, ६५
कृमिलाश्व, ५८
कृष्णगुप्त, ४४४, ४५६
कृष्णवर्मन-प्रथम, ३७४
कृष्ण वासुदेव, देवकीपुत्र, दे० वासुदेव कृष्ण।
कृष्ण सातवाहन, ३०२
कृविवंश, ५८
क्लियोफिस, १८२
क्षत्रप, ३२५, ३५९, ३८८
क्षत्रपाणि, दे० वासिष्ठीपुत्र क्षत्रपाणि शातकर्णि।
क्षत्री, १९०
क्षयार्षा (Xerxes), १८०
क्षहरात, ३२५, ३५८
क्षितिपाल, ४३७
क्षुद्रक, १८८, १९३
क्षेमराज, ३८३

ख

खड्डवली, ३७२
खरग्रह-प्रथम, ४७१, ४७२
खरपल्लान, ३४९
खरपरिक, ४०४, ४०५
खरोष्ट, ३२९
खलटिक पवत, २२६
खल्लाटक, २१८
खश, २२०
खाण्डव, २०
खारवेल, २७३, २९५
खेपिंगल, २२६
खेमा, १५४

ग

गंग (मैसूर के), ४७९
गंगारीद, २२८
गंजवर, ३८६
गग्गरा, ८६
गणतंत्र, ९६, १००, १०४, १०६, १०९, १३१, १४३
गणपति नाग, ३९७
गणराजा, ९८
गणराज्य, १५९
गद, ३३१
गदरोसिया, २०१
गया (पुत्र), ९१
गर्दभिल्ल, ३४५
गहपति, ३८९
गान्दारिस, १९४
गान्धार, ४८, १०८, ११७, १४७, १७८, १८४, १८५
गान्धारी, २०१, २२७, ३२१, ३२५, ३४३, ४४४, ४४९
गार्गी, ४७
गार्ग्य बालाकि, ६२
गिरिव्रज (अवध में), ५२, ८७
गिरिव्रज (केकय में), ५१

गुद, ४७४

गुणाढ्य शांखायन, दे० शांखायन ।

गुदुवर, ३३१

गुप्त (सम्राट्), ३९३

गुप्त-काल, गुप्त-संवत्, ३९२, ४७७

गुप्त-राजा (प्रारम्भिक), ३९१, ३९२

गुप्त-शासन-प्रबन्ध, ४१५

गुप्त-साम्राज्य, ४६८

गुरेम्रन्स, १८२

गुष्तास्प, ४५९

गुसान, दे० कुषाण ।

गूढ़पुरुष, २३६

गो-अध्यक्ष, २११

गोण्डोफ़र्नस, ३११, ३२२, ३३१

गोनार्ड, २८९

गोप, २१६

गोपचन्द्र, ४७४

गोपराज, ४४३

गोपाली वैहिदरी, २८७

गोप्तृ, २३४, ४१७, ४३२

गोमतीकोट्टक, ४५५

गोमित्र, २९,३

गोरथगिरि ३०६

गोवर्धन (नासिक), ७२, ३६६, ३७२

गो-विकर्त्तन, १२७

गोविन्दगुप्त, ४१७, ४२२, ४४७

गोविन्द चन्द्र, गहड़वाल-वंश के राजा, २५५

गोविन्दराज, २६८

गोविषाणक, १७५

गोष्ठी, ३८९

गोसाला-मंखलिपुत्र, १५९

गोड़, ४१८, ४५०, ४६७

गोतम राहुगण, ४५

गोतमीपुत्र शातकर्णि, २९९, ३००, ३१३, ३६३

गोतमी बलश्री, दे० बलश्री, २५५, ३६३

गोपालायन, दे० शुचिवृक्ष, ३७

गोपालायन स्थपति, ३७

गौल्मिक, ३८६

ग्रनवृग्रक, ३२५

ग्रमबेटस, ३५३

ग्रहवर्मन, ४५०, ४५२

ग्राम, ३८९, ४१८

ग्रामणी, १२५, १२७, १३३, ३८९

ग्रामभोजक, ३८९

ग्रामभृतक, २१६

ग्रामवृद्ध, २१६

ग्रामाहार, ३८९

ग्रामिक, १३२, १५५, २१५, ३८९, ४१८

ग्रामेयिक आयुक्त, ३८९

ग्लौचुकायनक, १८५

ग्लौगनिकाय, १८५

घ

घटाक, ३२९, ३५८, ३५९

घटोत्कमादित्य, ४२३

घटोत्कच (गुप्त), ३९२

घटोत्कचगुप्त, ४१७, ४२३, ४२६, ४४७

च

चक्रपालित, ४३३

चंडोत, ४६९

चण्डप्रद्योत महासेन, १५३

चण्डसेन, ३९१

चन्दना, ८७

चन्द्र कनिष्क, ३५१

चन्द्रगुप्त का शासन, २०४

चन्द्रगुप्त-द्वितीय, ३७९, ४१०, ४५६

चन्द्रगुप्त-प्रथम, ३९१, ३९२

चन्द्रगुप्त मौर्य, १३९, १७६, १९५, २६१, ४५८

चन्द्रगुप्त मौर्य का देहावसान, २१७

चन्द्रगुप्त-विक्रमादित्य, दे० चन्द्रगुप्त-द्वितीय ।

चन्द्रगोमिन, ४७०

चन्द्रदेवी, ४३८

चन्द्रप्रकाश, ४१९

चन्द्रबाला, दे० चन्दना ।
चन्द्रवर्मन, कम्बोज का, ११६
चन्द्रवर्मन, बंगाल का, ३९६
चम्पा नगरी, १४८, १५५, २३८
चर, २३६
चरक, ३५१
चांग-कीन, ३३६
चाक्रायण, ३७, ४७
चाणक्य, १९६, १९८, २०४, २१८
चापड़, २३६
चालिक्य, ४४९
चालुक्य-राजा (पूर्वी), ४४२
चाश्तान, ३४६, ३६१, ३७५, ४६५
चित्रकूट, ४७०
चित्ररथ, ६३
चिरातदत्त, ४२२
चीन, १०, ३४९
चीनी यात्री, ४६९
चीनपट्ट, १०, २०४
चुक्ष, ३२५
चुरनी (चूर्णी), २४४
चेटक, १५८
चेतवंश, ३०५
चेदिवंश, १०१, ३२८
चेलना, दे० छलना, १५५
चोररज्जुक, २३५
चोल, २४२
चोर-ओद्धरणिक, ४१८

छ

छविल्लाकर, २२७
छलना, १५६
छुतु-वंश, ३७३

ज

जनक; उपनिषदों के, ४०, ४१, ४४, ६०
जनक, काशी के, ६१
जनक, सीता के पिता, ४४, ४७
जनक-वंश, ४४, ४६
जन-शार्कराक्ष्य, ५२
जनमेजय, १३, १५, १६, ३३, ४२, ४३
जम्बूद्वीप, ७७, २६२
जय (इतिहास), ३५
जयदत्त, ४४२
जयदामन, ३६१, ३७५
जयनाग (गौड़), ४७५
जरथुस्ट्र, ४५९
जरासन्ध, ९०
जल, जातुकर्ण्य, ६१
जात्रिक-वंश, ९४
जाथ्रोई, १९०
जारत्कारव, ४७
जालिक, १६६
जालौक, २५७, २६५
ज़ा हकेल, ३७५
ज़िओनिसेस, दे० जिहोनिक ।
जिनसेन, ४६८
जियासत्तु, ९०
जिहक्वान, ४५५
जिहोनिक, ३२५
जीवक, १५४
जीवदामन, ३७८
जीवितगुप्त-द्वितीय, ४५०, ४५५
जीवितगुप्त-प्रथम, ४४६
ज़ुंगलिय पर्वत, ३५०
जुन्ह, १५१
जुष्क, ३४१, ३५२
जुष्कपुर, ३५२
जूनागढ़-शिलालेख, ९, २००, २०९
जेठमित्र, २८७
जेत्तुत्तर, १४८, १८६
ज़ेदा, ३४९
ज़ैन्ड्रामीज (Xandrames), १७३, १७५
जैवालि, ६०
ज़ोइलोस, ३०७
जोगलथेम्बी, ३६३

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ज़ोस्केलीज, दे० ज़ा हकेल ।
जौगढ़, २२६
ज्येष्ठ, २८७

ट

टक्क देश, ४६२
टेरेबिन्थसे, ४६०
टेलीफ़ोस, ३०९

ड

डभाला, ४१६, ४४३
डवाक, ४०४
डायोडोटस, ३११
डायोडोटस-द्वितीय, २७७
डायोमेडीज़ (Diomedes), २५८
डाहे, १९२
डेमेकस, २२०
डेमेट्रिग्रोस, ५, २७९
डेमेट्रियास्पोलिस, २३९
डेरियस-तृतीय, १८१
डेरियस-प्रथम, १७८, ३८४
ड्रैन्जियन, ३१०
ड्रैन्जियन-वंश, ४६४

त

तक्षशिला, ३२, ४९, ५०, ११३, २०२, २१२, २६६, ३२३, ३२७
तक्षशिला, विश्वविद्यालय, ५१
तथागत, ५
तथागतगुप्त, ४३९, ४४३
तम्बपन्नी, दे॰ ताम्रपर्णी ।
तलवर, ४१८
तॉउ मी, ३३४, ३३७
ताम्रपर्णी, २४४
ताम्रपर्णी नदी, २४५
ताम्रलिप्ति, ४१५
ता-यू-ची, दे० यूची ।
तालगुन्द, ३७२
तालजंघ, ११३
ताहिया, ३५४
तिमित्र, २७९
तिरहुत, ४३
तिष्य, २२२
तिष्यरक्षिता, २६८
तिस्स, २६८
तीक्ष्ण, २१५
तीन-चॉऊ, ३४१, ३५४
तीरभुक्ति, ४१७
तीरभुक्ति उपारिक अधिकरण, ४१९
तीवर २५३, २५७
तुखार, ११४
तुण्डीकेर, कुण्डीकेर, ११३
तुमेन, तुम्बवन, ४२३
तुरग़ना, २०
तुरा कावषेय, १३, १४, १६, १७
तुर्वश, ५८
तुलकुची, १६४
तुलु, २४३
तुषास्फ, १९४, २१३, २२४, २३१, ३७७
तूथिक, ३८८
तैलदाह, ७२
तोखारी (Tochari), ३११
तोरमाण, ४१७, ४६०, ४७०
तोसाली, २१२, २२६
त्रनकयिरो, ३०४
त्रसदस्यु, ८०
त्रिकमल, २९२
त्रिकूट, ४३३
त्रिगर्त्त, ५६
त्रिपर्वत, ३७४
त्रिपुरी, १०१
त्रिपुरी विषय, ४१७, ४४३
त्रिशाला, ९८
त्रिसामा, २४०
त्रैकुटक, ३७०
त्रैकुटक-सम्वत्, ३४५
त्सेम-होआंग (Tsem Hoang), ३३५

थ

थानेश्वर, ४५३
थुल्लकोट्टिता, १०४
थ्योदोरा, ३८१

द

दक्ष, १०७
दक्षिण, दे० दक्षिणापथ।
दक्षिणापथ, ६७,२१२,२९३,४००, ४७७
दक्षिणापथपति, ३००,३०२,३६६
दक्षिणापद, ६७
दक्षिणी मथुरा, २४३
दण्डक, ७१
दण्डनायक, ३८६, ४१९
दण्डपाश-अधिकरण, ४१९
दण्डपाशिक, ४१८
दण्डसमता, २६३
दत्त-वंश (पुण्ड्रवर्धन के), ४४५
दत्तमित्रि, दत्तामित्र, ६, २७९
दत्तादेवी, ४११
दत्तामित्री, २३९
दद्दरपुर १०१
दधिवाहन, ८६, १०३, १३०
दन्तकूर, ७०, २२४
दन्तपुर नगर, ६९, २२४
दन्तवक्र, ६९
दन्ताबल धौम्र, ३३, ४३
दब्बसेन, ११९
दमिजद, नम्रिजद, ३२०
दर्शक, १६१
दशपुर, ३५९, ४२२, ४७१
दशरथ (इक्ष्वाकु), ६९, ८१
दशरथ (मौर्य), २५८
दशार्ण, ७३, ७५
दाक्षिणात्य, ६७
दाण्डिक, ४१८
दामघसद-प्रथम, ३७८
दामजद-श्री, ३७८, ३८०
दामन, ३९९
दामसेन, ३७८
दामोदरगुप्त, ४५१, ४६६
दामोदरपुर-प्लेट, ४०४, ४१७, ४२३, ४४२
दामोदरसेन, ४२०
दार्वाभिसार, १८४
दाल्भ्य केसिन, ६०
दाल्भ्य चैकितायन, ६०
दिपि, १८१
दिवाकर, ८३, ९०
दिवाकरसेन, ४२०
दिवोदास (काशी का), ६१
दिवोदास पांचाल, ६०
दीघायु, १३२
दीघीति, ८४, ११८, १३२
दीर्घचारायण, १४६
दुर्म्मुख (पांचाल), १०५
दुर्म्मुख (लिच्छवि), ९७
दुर्धरा, २१८
दुर्योधन, १२४
दुष्टरीतु, १३३
दूत, २३३, २३६, ३८७
देरभट, ४७१
देवकी, ४२५, ४२७, ४२८
देवकुल, ३५२, ३८४
देवगुप्त-तृतीय, ४५५
देवगुप्त-द्वितीय, ४५२
देवगुप्त-प्रथम, ४१२
देवपाल, ४३७
देवपुत्र, ३५३, ३८३, ३८४, ४०७
देवभूति या देवभूमि, २८८
देवराज, ४१२
देवराज-स्कन्दगुप्त, ४३१
देवराष्ट्र, ३९९, ४०१, ४७८
देववर्मन (पूर्वी भारत), ३९२,४३५
देववर्मन (मौर्य), २५६
देववर्मन सालंकायन, ४०८
देवव्रत, ३३१
देवश्री, ४१२, ४४५
देवश्री हर्षगुप्त, ४४५

देवानांपिय, २००, २२३, २४०, २५८
देवानांपियतिस्स, २४६
देवापी, १२३
देविका, ४६३
देश, ३८९, ४१६
देशाधिकृत, ३८८
देवपुत्र-शाहि-शाहानुशाहि, ३५६, ४०६
दैवाप, दे० शौनक इन्द्रोत दैवाप ।
वृढ़वर्मन, ८७
द्रुपद, ६०
द्रुह्य, १०७
द्रोणमुख, २०८
द्रोणसिह, ४६७, ४७१
द्रोणाचार्य (महाभारत के) १९, २७०
द्वादशादित्य, ४४४
द्वारका, ११६, ३७५
द्विमुख, दे० दुम्मुख पांचाल ।
द्वैतवन, ५५
द्वैराज्य, ३६१, ३८५

ध

धनंजय (कुस्थलपुर के), ३९९
धनंजय कौरव्य, १०४
धन, १७५
धनद वरुणेन्द्रान्तकराम, ४०६, ४१६
धनभूति, ३९२
धन्यविष्णु, ४४३
धम्नकड़, धन्नकड़, ७२, २३०
धम्म-निगम, ३८९
धम्म-नियम, २५३
धम्मविजय, धर्मविजयी, २४१, २४५,
२६८, ३८३, ३९९
धम्मारक्खिता, २२४
धरसेन-चतुर्थ, ४७१
धरसेन-प्रथम (वलभी), ३७०, ४७१
धर्मघोष, धम्मघोष, २४१, २६७
धर्ममहामात्र, २३२, २४९, २६२
धर्म महाराजाधिराज, ३८३
धर्मयुत, २४८, २४९
धर्मस्थीय, २०९
धर्मादित्य (पूर्वी भारत के), ४०९, ४७४
धर्मादित्य (शीलादित्य-प्रथम), दे०
शीलादित्य ।
धर्मारण्य विहार, २२७
धवल, २५९
धवलप्पदेव, २५९
धवला, ४४४, ४४५
धारा, ४५०
धौली, २२६
धृतराष्ट्र, काशी के राजकुमार, ३६,
६१, ७७
धृतराष्ट्र वैचित्र्यवीर्य, ७, २२, ३६१
धृष्टद्युम्न, १९, २३
ध्रुवदेवी, ध्रुवस्वामिनी, ३७९, ४१८,
४१९, ४२७
ध्रुवभट, ४७१
ध्रुवसेन-द्वितीय (वलभी), ४७१
ध्वसनद्वैतवन, ५५

न

नक्श-ए-रुस्तम, १७९
नखवन्त, ३५६, ३९६
नगरभुक्ति, ४१६
नगर-श्रेष्ठ, ४१८
नगराक्षदर्श, ३८५
नगराध्यक्ष, २१०
नगल-वियोहालक, नगर-व्यावहारिक,
२३४, ३८५
नग्नजित्, १०८
नन्द, १६३, १६७, १७१, २७६
नन्द, शक, ४०७
नन्द-वंश, २२८
नन्दी (राजा), ३९८
नन्दीनगर, ११६
नन्दीयशस, ३९८
नन्दीवर्धन, १६३, १६७
नन्दीवर्मन, ३७२
नबेतियन्स (Nabataeans), ३७५

नमिसाप्य, ४६
नम्बनुस, ३१९, ३५९
नरवर्मन, ४२४
नरसिंहगुप्त, बालादित्य, ४३९, ४६५, ४७५
नरसिंहवर्मन-प्रथम, ३७२
नरेन्द्रगुप्त, ४५३
नरेन्द्रचन्द्र, ४११
नरेन्द्रसिंह, ४११
नरेन्द्रसेन वाकाटक, ४३२, ४७५
नल, ४७९
नवनन्द, १६७
नवनर, ३६७
नव्यावकाशिका, ४७१, ४७५
नहपाण, ३४५
नाग, ३०१, ३४९, ३५५, ३७०, ३७३
नाणक मुद्राएं, ३५१
नागदत्त, ३९६
नागदासक, १६१, १६३
नागनिका, नायनिका, २९३, ३०४, ३८३
नागभट्ट, ३५१, ३५५
नागरक, २३४
नागार्जुन, ३५९, ३६६, ४४५
नागार्जुनी पहाड़ियाँ, २५८
नागसाह्वय (हस्तिनापुर), २१
नागसेन, राजा, ३९७
नाचने की तलाई, ४०२
नादिक, ९४
ना-पी-क्या, २२७
नामार्क, १८७
नायक, ३८६
नायनिका, २९४
नारायण (कण्व), २९०
नारायणपाल, २९३
नाव-अध्यक्ष, २११
नासत्य, १०७
नासिक-प्रशस्ति, ३६५
निकाइया, १९४
निगण्ठनाटपुत्त, २३९
निगम, ३८९
निगम-प्रधान, २१०
निगम-सभा, ३८५
निगरानी, विदेशियों की, २१५
निचाक्षु, ५७, १०२
निच्छवि, दे० लिच्छवि।
निपिण्ट, १८१
निमि, ४४, १०५
निर्ग्रन्थ, २३९
निर्वाण, १५९, १६०, १६८
निर्वाण-मन्दिर, ९९
निशाद, ३७६
निषाद, ४७६
निसृष्टार्था:, २०९, २३६
नीकियस, ३०९
नीलपल्ली, ४०१
नीलराज, ३९९
नीसा, १८३
नेयिक, ३८८
नेपाल, ४४, २२७, ३९३
नेमि, ६६
नैगाम, ४७२
नैमिष, ११७
नौनन्द-देहरा (नन्देर), १७५
न्गान्सी, ३३७
न्याग्रोधवन, १४५

प

पंचगौड़, ४२४
पऊमावई, १५५
पकतीक, १७९
पकोरस, ३३३
पक्थस, १७९, १८७
पटना-मूर्त्तियाँ, १६२
पटिक, ३२५, ३२६, दे० पतिक।
पटिवेदका, २३३, २४४
पण्डुक, १७५
पण्डुगति, १७५
पतंचल, ५३
पतिक, ३५९

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पद्मावती, १५२
पद्मावती, अजातशत्रु की रानी, १५८
पद्मावती (नगर), ३४५, ३५५
पभोसा, २८७
पर आटणार, दे० आटणार
परमदैवत, ४१६
परशुराम, ३०१
पराक्रमांक, ३९५, ४०९
परिमितार्थः, २३६
परिदक्षा, परिचक्रा, ५८
परिव्राजक महाराज, ४०३, ४४३
परिव्राजिका, २१४
परिवृक्ती, १२८
परिषद् (परिषा), १३२, २०६, २०७,
    २३२, २५१, ३९०
परीक्षित, १२, २४
परीक्षित-वंश, ४०
परोपनिसदई, २०१
पर्खमर्मूति, १६१
पर्णदत्त, ४३२
पलक्क, पलक्कद, ३९९, ४०१
पलासिका, ३७४
पलौरा, २२४
पल्लव, ३७०
पव्वैया, ४७०
पसेनदि, दे० प्रसेनजित् ।
पह्लव, ३३०
पांचाल, २३, १०५, ११७, १७३, २८५
पाटल १९२; पैटलीन, २७८, ३२७
पाण्डव, पाण्डु, ११४, २४३, ४०४
पाण्ड्य, २४३
पादंजलि, १२४
पान-कू, ३३४, ३३६
पानचाऊ, ३५०
पानीयघरिक, ३८७
पायासि, ११९
पारदस, २३१
पारमेष्ठ्य, १२५
पारसमुद्र, २४४
पारसिक, ३७४
पारियात्र, ३६४
पार्थ (कश्मीर का), २४७
पार्थलिप्त, २२४
पार्थियन, ३१०, ३१३
पार्श्व (तीर्थंकर), ७७
पार्श्व (बौद्ध), ३५१
पालक, १६२
पालदास, २२९, २३१
पाल-नरेश, ३५०
पाल-वंश, २७१
पालागल, १२७
पालिबोथरो १७४
पालिबोथ्रि, २२८
पावा, ९९
पिंगल, २१३
पिंडोल, १५२
पितिनिक, दे० पेत्तनिक ।
पिपरावा, १४४
पिप्पलाद, ६४
पिप्पलिवन, १४५, १९७
पियदसि, दे० अशोक ।
पिरनी (Phryni), २७८
पिष्टपुर, पिठापुरम, ३९९
पिहुण्ड, ३०६
पुक्कुसाति, ११४, १६९
पुगार, २४३
पुण्ड्रनगर, २०३
पुण्ड्रवर्धन, २२८, ४१७, ४४२, ४४५, ४७३
पुनर्भिषेक, १२५, १२८
पुष्कवती, ६०
पुरिका, २९०
पुरु, १८५
पुरुकुत्स, ७९
पुरुगुप्त, ४२७, ४३७, ४४०
पुरुगवस, २४
पुरुवंश, २१
पुरुषपुर, ३४९
पुरोहित, १२७, २६३

पुलकेशिन-द्वितीय, २४२, ४३७
पुलिक, पुणिक, पुणक, ११३
पुलिन्द, २३०
पुलिन्द-वंश, ७२
पुलिसा, २३३, २३७
पुलुमावि (बैठान का), ३६६
पुलुमावि (सातवाहनिहार का), ३००
पुष्कर, ३५९
पुष्करण, ३९६
पुष्करावती, पुष्कलावती, ४९, १८३, १९३, ३०७, ३०९, ३२५
पुष्पपुर, २६१, २९२, ३२४
पुष्यगुप्त, २०० २१३
पुष्यधर्मन, २५७
पुष्यभूति, पुष्यभूति-वंश, ४३५, ४५० ४५२, ४६८
पुष्यमित्र (राजा), २५७, २६५, २७०, २८०
पुष्यमित्रों, ४२४, ४२९, ४६९
पुस्तपाल, ४१८
पूआ-डीउ, ३४१
पूर्णवर्मन, २६०, ३९१, ४५४, ४६६
पूर्व मालव, ४३६
पेत्तनिक, २२९
पेदावेगी, ४०१
पेरिमुद्रा, २४२
पेट्रोकिलस, २२१
पैठन, दे० प्रतिष्ठान।
पैठानक, २२९
पोकरन, पोखरन, ३९६
पोटलि (पोतलि), पोटन, ७०, ७८, १११
पोडियिल पहाड़ी, १९९, २२८
पोता, ३३७
पोतिऑव, ३४१, ३५४
पोरस, १८४, १८७
पोर्टिकनोस, १९१
पोलिंग, २२४
पो-हो, ५२
पोडन्य, १११
पौन्नत, ४७८
पौरव, २१, १८४
पौर व्यावहारिक, २३४
पौष्करसादि, २९
प्यूकेलाओ टिस, १८३
प्यूकोलाओस, ३२७
प्रकटादित्य, ४३९, ४४४, ४४५
प्रकाशादित्य, ४३८, ४४१
प्रचन्त, दे० प्रत्यन्त, २२९, २४२
प्रजातंत्र, ११६, ३८२
प्रणय, ९
प्रतर्दन, ६६, ७८
प्रतिष्ठान, २७०, ३०३, ३६७
प्रतिश्रवा, १३
प्रतिहार, ४७२
प्रतीप, १३
प्रथम कायस्थ, ४१८
प्रथम कुलिक, ४१८
प्रदेश, २३३, ४१७
प्रदेशिक या प्रादेशिक, २३३, २३५, २४८
प्रदेष्ट्रि, २१६, २३५
प्रद्योत (अवन्ती का), ९०, ११२, १५२
प्रभाकर, ४१७
प्रभाकरवर्धन, ४४३, ४५०, ४५२
प्रभावती, ४२०
प्रमगन्द, ८८
प्रवरसेन-द्वितीय, ४२०, ४३२
प्रवरसेन-प्रथम, ४०२
प्रवाहण-जैवालि, दे० जैवालि।
प्रसेनजित्, १६६
प्रसेनजित्, पसेनदि, ८१, ११९, १४९, १५७
प्राचीनशाल, औपमन्यव, ५२
प्राच्यां, १२०, २१२
प्रादेशिकेश्वर, २३५
प्रार्जुन, ४०५
प्राश्नीपुत्र आसुरिवासन, ४२
प्रासी, १७४

प्रास्ती, २२३
प्रियक, १६३
पृथिवीषेण-द्वितीय, ४०२
पृथिवीषेण-प्रथम, ४०२, ४१२
पृथ्वीषेण मंत्रिन्, ४१६
प्रोति कौशाम्बेय, ५७

फ

फ़िलाडेल्फ़स, २२०
फ़िलिपोस, १९३
फ़ेगेला, १८७
फो-सो-किस्रो-तो, ४२५, ४२६, ४३९

ब

बंगाल, २२८, ४०३
बज्जि, दे० वज्जि ।
बडकाम्त, ४०३
बतोई, ४७८
बनारस, दे० वाराणसी ।
बन्धुपालित, २५८
बन्धुल, १४९
बन्धुवर्मन, ४२३
बरार, दे० विदर्भ ।
बरिगाज़ा, ३५८
बलभद्र, २५७
बल-प्रधान, २१०
बलवर्मन, ३९६
बलश्री, ३६३, ३८३
बलाध्यक्ष, २१०
बलि, ३८६
बहसतिमिता, २७२
बहुपति-प्रथा, ३४
बारबैरिकम, ३३३
बार्हद्रथपुर, ८८
बालादित्य, ४३९, ४४३
बालादित्य-प्रथम, दे० नरसिंह गुप्त ।
बाल्हिक, २३
बाह्ली, २३
बिन्दुसार, १९७, २०२, २१८
बिम्बिसार, ९१, १२०, १५२
बिम्बिसार-श्रेणिक, ८७
बिम्बिसार (हर्यंक)—शिशुनाग-वंश का
    तिथिक्रम, १६७
बुद्धगुप्त, ४२६, ४३९
बुद्धराज, ४५२
बुद्धों की सभा, १६०, १६५
बुधगुप्त, ४२५, ४३९
बुधवर्मन, ३७२
बुलि, १४५
बूकेफल ४६०
बेनाकटक-स्वामी, ३६५, ३६६
बेसनगर, २८८
बैक्ट्रियन, ८, १८१, २००, २७८, ३१०
बैठन, दे० प्रतिष्ठान ।
बैम्बिक, २७०
बोद्स, ४६०
ब्रह्मक्षत्र, १०३
ब्रह्मदत्त, अंग राज्य का अन्तिम राजा, ८७
ब्रह्मदत्त, अस्सक का राजा, १११, १२९
ब्रह्मदत्त (उपरिक महाराज), ४४२
ब्रह्मदत्त, काशी का, ६२, ११८
ब्रह्मदत्त, चुलानि (पांचाल राजा), १०६
ब्रह्ममित्र, २८६
ब्रह्मर्षि देश, ५६
बृहत्फलायन ३७०
बृहदिषु, ५८
बृहदुक्थ, ६५, १०५
बृहद्रथ, ९०
बृहद्रथ, मगध के, ९०
बृहद्रथ (मौर्य), २५६, २५९
बृहस्पति मित्र, २७२, ३०६

भ

भग्ग (भर्ग), १०३, १४४
भगेरथ, ८०
भटमनुष्य, ३८६
भटार्क, ४७१

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भट्टाश्वपति, ४१९
भाट्टप्रोलू, २३०
भड्डिय, ८५
भद्दसाल, १७७
भद्दा, १६३
भद्रक, २८७
भद्रघोष, २८६
भद्रबाहु, २१७
भद्रमुख, ३६१
भद्रयशस, ३१३
भरत, ऋषभ-पुत्र, २२
भरत दौषन्ति, २१, २२
भरत-वंश, २१, ३४, ५९, ११०
भरत, सौवीर के, १११
भरसार, ४३८
भर्ग, दे० भग्ग ।
भर्त्तुदामन, ३७८
भवनाग, ३५४
भाग, २११, ३८७
भाग (पांच सदस्य का), २१०
भागदुघ, १२७
भागभद्र, २८९
भागल, १८६
भागवत, २८७
भागवत-धर्म (सम्प्रदाय), २६९, २८८
भाण्डागार, २८६, ३८७
भाण्डागारिक, ३८६
भारतवर्ष ३०६
भारद्वाज, २७०
भारशिव, ३५४
भाल्लवेय, दे० इन्द्रद्युम्न ।
भास्करवर्मन, ४५४
भिटारी-अभिलेख, ४२४, ४२८
भीमवर्मन, ४३३
भीम, विदर्भ के राजा, ६५
भीमसेन, १४
भीमसेन, राजा, ३९४
भुक्ति, ४१६
भुज्यु लाह्यानी, ४०
भूतपाल, १७५
भूतवीरों, ३२
भूतिवर्मन, ४६८
भूमक, ३५९
भूमिमित्र, २८६
भोग, ९३
भोगनगर, ९४
भोगवर्मन, ४५४
भोज, १२२
भोजक, ४१८
भोजकट, ७१
भोज, दाण्डक्य, ७१
भोजवंश, ७२
भोजों, १०८, ११२, २२१

म

मंखलिपुत्र, दे० गोसाल मंखलिपुत्त ।
मंगल, २३९
मंगलेश, ४३७
मंगुर, १६४
मंत्रिन्, २०६, ४१६
मंत्रिपरिषद्, २०५, २०७, २११, २३२,
    २३४, २८४, ४१६
मखादेव, ४५
मगध, ७६, ८७, ११७, १५३, २२६,
    २९१, २९३, ३०६, ३९३, ४३५, ४८९
मगधपुर, ८८
मच्च, दे० मत्स्य ।
मटचि (टिड्डी), ३७, ५७
मण्टराज, कौराल के, ३९९
मतिल, मत्तिल, ३९६
मतिसचिव, ३७७, ३८५
मत्स्य, ५४, १०६
मथुरा, १०७, २७९, २९२, ३४५, ३५४
मदुरा, २४३
मद्र, मद्रक, ५२, ५३, ११७, १८५,
    ४०४
मद्रगार, ५३

मधुमंत, ७०
मध्यदेश, मज्झिम देश, ५४, १९५, २१२, २६०, २८२
मध्यमिका, १८८
मनिगुल, ३२५
मनियतप्पो २०७
मनोज, ७७
मन्दाकिनी, २७१
मम्बरुस, ३५९
मयूरपोषक, १९७
मयूरशर्मन, ३७३
मरु, ३७६, ४६४
मलिकोस, मलिकु, ३७५
मलोई, १८८
मल्ल, मल्लकी, ७६, ९८, १५९
मल्लसारुल-प्लेट, ४७४
मल्लिका, १५०
मसनोई, १९०
मसलिया, ४७८
मसागा, १९३
महत्तर, महत्तरक, ३८९, ४१८
महाकान्तार, ३९९
महाकोसल, ८२, १२०
महाखुशावार, ४१७
महाजनक-द्वितीय, ४७
महाजनक-प्रथम, ४७
महाजनपद ७५
महादण्डनायक, ३८६, ४०७, ४१६, ४१९
महानन्दिन, १६३, १६७
महावामन, १५०
महापद्म (नन्द), १७२, २७६
महाप्रतिहार, ४१८
महाबलाधिकृत, ४१६
महाभारताचार्य, ३४
महाभिषेक, १०५, १२८
महाभोज, २३१
महामण्डल, १६६
महामत्त, महामात्र, १५५, २०७, २३३, २४९
महारठी, २३१
महाराज्य, १२५
महाराष्ट्र, २३१, ३५८
महावीर, ९४, १५९, २३९
महाशिलाकण्टग, १५९
महाशिवगुप्त, ४५१, ४६६
महासामिय, ३८७
महासीलव, ११८
महासुदस्सन, ९९
महासेनगुप्त, ४५२, ४६५
महासेनगुप्त देवी, ४५२
महासेन प्रद्योत, दे० चण्ड प्रद्योत महासेन ।
महासेनापति, २७१, ३८२, ३८६
महास्थानगढ़, २०३
महिरकुल, दे० मिहिरकुल ।
महिला-पहरेदार, २०४
महिषी, १२४, १२७, ३८३, ४२८
महेन्द्र (कोशल के), ३९९
महेन्द्र (मौर्य), २२२, २४६, २५७
महेन्द्रगिरि, ३९९
महेन्द्रपाल-द्वितीय (प्रतिहार), ४३७, ४७२
महेन्द्रवर्मन-प्रथम (पल्लव), २४२, ३७२
महेन्द्रादित्य, महेन्द्रकर्मा. श्री महेन्द्र, दे० कुमार गुप्त-प्रथम, ४२२
महेश्वर नाग, ३५५
महोदय, १०२
माउ-लो-सान-यु-लु, दे० मूलस्थानगुर ।
माऊस, ३१२, ३२०
माकलास, ६८
मागन्धी, १५२
माठर, ३५१, ४५९
माडबिक, ३८८
माण्डव्य, २६४
माण्डव्य (वैदिक ग्रंथों मे), ४२
मात्रिविष्णु, ४४३
माधव, ६३
माद्रवती, १५, १८

मात्रा, १५४
माधवगुप्त, ४३६,४४५,४५१,४५५.४६५
माधववर्मन-प्रथम, ४४८
मानवसेन, २७२
मानसेहरा. ३०६
मानी, ४६०
मामाल, ३६३
मालव, मालय, ७६, १९३, ३५९, ३६३, ३८२, ४०५, ४४३, ४५१
मालवगण, ४०४
मालिनी, ८५
मास्की, २६२
माहिष्मती, १०८, ११२
माहेश्वर, २६९
मित्र, २८५
मित्र देवी, ४४०
मित्र राजाओं के सिक्के. २८५
मित्र-वंश, २९२
मिथि, ४५
मिथिला, ४५, ९३
मिथ्राडेटम, ३१०
मिन, ३१९, ४६८
मिन्नगर, ३१८, ३३३, ३६०, ४९५
मिलिन्द, दे० मेनाण्डर ।
मिहिरकुल, ४३९, ४४३. ४७०, ४७५
मुखर. दे० मौखरी ।
मुखलिंगम, ६९
मुचुकर्ण. १९१
मुजावत, ४९
मुजीरिस, १४८
मुण्ड, १६३
मुण्ड (वैरागिन), १९१
मृदगल, ५८
मुग्यि-काल, २७३
मुरुण्ड, ३१५. ४०६
मुलुद, ३८९
मुसिक (असिक) नगर. ३०६
मूतिब, ७४
मूलक, १११, ३६३
मूशिप, मूतिब, मूत्रिप, ७४
मूगिक, २४४
मेकल आम्बष्ठ, १९०
मेगास्थनीज, २०२
मेघ; ३९४
मेघवर्ण, ४०७
मेनाण्डर, २७८, ३०८
मेगीदार्क, २३६, ३८१
मेवाकी, मेआक, ३१८
मैत्रक (वलभी के), ४७१
मोखलिंग, मोखलिणम, ४५०
मोगा, ३१९
मोद्व, ७४
मोफ़िस (आम्भी), १८३
मो-ला-पो, ४७१
मोलि, ७६
मोलिण्द, ७४
मोलिनी, ६०
मोम्सिकनोम, १९१
मौखरी, २९२, ४३६, ४४९, ४५४, ४५५ ४६५, ४६३, ४७३
मौर्द मुग्यि, ८, १४३, १४५, १९५
मौसोपल्ली, ४७८
मृगधार, १५१
मृगेशवर्मन. ३७४

य

यज्ञवर्मन. ४४९
यज्ञश्री, ३६८, ३७३
यज्ञसेन, ६०, २७२
यदुवंश, १०७
ययाति, २२, ५२
ययातिनगरी. ४००
यवन, ५,६, २२३, २६८, २८०, २८९
यशस्कर, ४४२
यशामोतिक. ३६१, ३७४
यशोदामन, ३७८, ३८०
यशोनर्मन, ४४४.४४८, ४६७,४७२,५६९
यशोमती, ४३०
यशोवर्मन, ४४०
याज्ञवल्क्य, ४२
यिन-मो-फू, ३१६, ३२१, ३४३
युंग-कू, ३१६
युत, युक्त, २३३, २३६, २४८
युधिष्ठिला, युधिष्ठिर, ३८, ६५, १०४
युवमहाराज, ३८५
यूक्राटीड्स, २८०, ३८१, ३८२, ३०७

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

यूची, यूती, ३१५, ३२५, ३४९
यूडोमोस, १९४
यूथिडीमिया, २७९
यूथिमीडिया, २७६, ३३७
यूथीडेमस, २७७
योनक, ३१६
यौधेय, ३७६, ३८२, ४०५, ४६२, ४६४
यौवराज्य, ३८५

र

रघु, ३७९, ४०१
रज्जुक, दे० राजूक, २३५
रज्जुगाहक, २३५
रठिक, २२९, २३३
रणभाण्डागार-आधिकरण, ४१९
रतिदेव, २७१
रत्निनाम्, १२६
रथगृत्स, ३७
रथमुसल, १५९
रथिका, २१४
रषद, २१५
रहस्याधिकृत, ३८५
राजकृत, १२५
राजकर्त्तृं, १३१
राजगृह (केकय), ५१
राजगृह, (बल्ख), ५०, २७३
राजगृह (मगध), ५२, ८४, ८८, ९२,
    १५७, १६३, ३०५
राजपुर (कम्बोज), ११५
राजपुर (कलिंग), ७०
राजपुत्र देव भट्टारक, ४१७
राजयुक्त, २७९
राजलिपिकर, ३८५
राजवैद्य, ३८६
राजशासन, २०६
राजसिंह, ३९१
राजसूय यज्ञ, १२५, १२६
राजातिराज, ३८२
राजामात्य, ३८६
राजुल, राजुवुल, ३२५
राजूक, २११, २१४, २४८, ३८१, ३८५
राज्यवर्धन, ४३५, ४५०, ४५२
राज्यश्री, ४५२
राज्याभिषेक, १२०
राघ, राधापुरी, ४४८
राधगुप्त, २२२
राम, ६४, ८०
रामगाम, १४३
राम (शर्म) गुप्त, ४१०
रामपाल, ४३७
राष्ट्र, ३८८
राष्ट्रकूट, ४७२
राष्ट्रपाल (राजा), १७५
राष्ट्रपाल (कर्मचारी), २३४
राष्ट्रपति, ३८८
राष्ट्रीय, २१३
राहुल, ८१
रुद्रदामन-द्वितीय, ३७८
रुद्रदामन-प्रथम, ९, २२३, ३४४, ३६२,
    ३६७, ३७५, ४६२
रुद्रदेव, ३९६
रुद्रघर भट्टारिका, ३७७
रुद्रभूति, ३७८
रुद्रसेन-तृतीय, क्षत्रप, ३७८, ३७९
रुद्रसेन-द्वितीय, क्षत्रप, ३७८
रुद्रसेन-प्रथम, क्षत्रप, ३७८
रुद्रसेन-द्वितीय, वाकाटक, ४०२
    ४१२
रुद्रसेन-प्रथम, वाकाटक, ३९६, ४०२
रुद्रसिंह-तृतीय, ३७८, ४०३
रुद्रसिंह-प्रथम, ३७८
रुद्रायन, १४७
रुम्मिन्देई, २२७, २५२
रूपदर्शक, २११
रूपनाथ, २३०
रेणु, ७०, १११
रेवोत्तरस पाटव चक्रस्थपति, १३३
रोम, ३३९
रोमन्स (रोमकों), ६
रोरुक राज्य, १८७
रोहिणी, १४४

ल

लगतुर्मान, ३५३
लम्पाक, ३१६
लाल (सेनापति), ३४९
ललाक, ३०५
लल्लिय, ३५७

लाट प्रदेश, ४३३, ४५२
लानशी (चिनशी), ३३७
लाल, २४४
लियाक, ३२५, ३५८
लिच्छवि, लिच्छवि-वंश, ६६, ९४, ९७, १५८, २९२, ३९३, ४५१
लिपिकार, २३३, २३६
लियोडाइक, २८१
लीसियस, २८१, ३०९
लीसोबोरा (Cliebora), १०७
लुम्मिनी गाँव, २२६
लेखक, २०९
लेखहारक, २३६
लौहित्य, लोहित्य, ४४५, ४६७

व

वंक, ८३, ११९
वंग, ८४, २२८, ४४९, ४६७
वंश, वत्स, १०२, १४४, १५७
वंशधरा, ७८
वचभूमिक, २३३, २३६
वजिरा, १५०, १५७
वज्जि, ९३, १५८
वज्र, ४३९, ४४५
वटाटवि, ३९९
वत्स, १०२
वनवासी, ४४८
वनष्पर, ३५०
वम्ब मोरियर, १९९
वरदा-तट, ६७
वरधा, २७२
वर्डक, ३१८
वर्धमान भुक्ति, ४१७, ४७४, ४७५
वर्मन, ४५१, ४६७
वर्ह्रान, ३५३, ३५६, ३७८
वलभी, ४३४, ४६८, ४७१
वसाति, १९०
वसु, चेदि के, १०१
वसुचैद्य, ९०
वसु ज्येष्ठ, २८६
वसुदान, १०३
वसुदेव कण्व, २८६, २९०
वसुबन्धु, ४१९, ४३८
वसुमित्र, राजा, २७६, २८३, २८७, ३५१
बसुमित्र, संन्यासी, ३५१
वसुलदत्त, दे० वासवदत्त ।
वस्सकार, १५८
वाकाटक, ४०३, ४१३, ४१९, ४३२, ४५६, ४७५
वाजपेय, १२२, १२५
वाझेष्क, ३१४, ३५२
वान्जी, २४४
वाणियगाम, १४९
वात्स्यायन, २९७, ३९०
वामतक्ष(म), ३३६
वामदेव, ६५
वायुरक्षित, ४१८
वारक-मण्डल, ४७४
वाराणावत, १०४
वाराणसी, ६१, ७६, ७८, ११८
वार्षगण्य, ६
वाल्वी, ४१७
वावाता, १२४
वाश, ५४, १०२
वाश कुषाण, ३४१
वासभक्खत्तिया, १५०
वासवदत्ता, १५२
वासिष्क, ३४१, ३५१
वासिष्ठ-जाति, ३६४
वासिष्ठी पुत्र एहुवल, चांतमूल, ३७०
वासिष्ठी पुत्र क्षत्रपाण शातकर्णि, ३६७
वासिष्ठी पुत्र पुलमायि, २९९, ३६७
वासिष्ठी पुत्र शिवश्री शातकर्णि, ३६७
वासिष्ठी पुत्र श्री शातकर्णि, ३६७, ३७६
वासुदेव कुषाण, ३४५, ३५३
वासुदेव कृष्ण, कृष्ण वासुदेव, १०९, २८८, ३४८, ३५३
वासुमती, ८८
वासेट्ठ, ९९
वाह्लीक, बाह्ली, २२, ३९६
विध्यशक्ति-प्रथम, ४०२
विक्रम-सम्वत्, ३४२, ३४९
विक्रमादित्य (अयोध्या के राजा), ४३७
विक्रमादित्य, चन्द्रगुप्त-द्वितीय, ४११
निक्रमादित्य (शकारि), ३४३, ४१३, ४४४
धिक्रमादित्य (स्कन्दगुप्त), ४३१

विगतशोक तिष्य, दे० तिष्य ।
विगतशोक-द्वितीय, २२१
विग्रहपाल, १६६
विचित्रवीर्य, २२३
विजय (जीत), २४१, २५२, ३९९
विजय (राजकुमार), २४४
विजयकीर्ति, ३४५
विजयबुद्धवर्मन, ३८५
विजयमित्र, ३२६
विजयेश्वर, २२७
विटंकपुर, ८४
विडुडभ, १५०, १५७, २३९, ३९९
धित स्तात्र, २२७
विदग्ध, शाकल्य, ४८
विदर्भ, ६८, ७१, ११३, २७२, ४४९
विदिशा, २६९, २८७, २८९, ३५६, ४१३, ४५२
विदेध माधव, ४५
विदेह ४०, ४३, ६४, ९४, ११४, १५५
विनयस्थिति-स्थापक, ४१९
विनयादित्य, ४५५
विनायकपाल (प्रतिहार), ४३७
विनाशन, ४०५
विपासा (Vipasha), ३६१
विमल-कोंडन्न, १५६
विमा कवथिशा, ३३९
विमा काड़फिसेस-द्वितीय, दे० वीमा ।
विमान-दसना, २५१
विराट, ५५
विराटनगर, ५५, १०६
विलिवायकुर, ३७३, ४७८
विशाख, २३८
विशाखदत्त की 'मुद्राराक्षस', १९८
विशाखयूप, १६४
विशाणिन, १८७
विशाल, राजा, १७८
विशाला (उज्जैन), ४१४
विशाला (वैशाली), ९५
विश्ववर्मन, ४२३
विश्वसिंह, ३७८
विषय, २३६, ३८८, ३९९, ४१७
विषयपति, ३८९, ३९८, ४१७
विष्टि, ९, ३८१
विष्णुकड-चुतु, कुलानन्द शातकर्णि, ३७३
विष्णु की उपासना, ४२४
विष्णुकुण्डिन, ३७०, ४४८, ४७९
विष्णुगुप्त-द्वितीय, ४५५
विष्णुगोप, ३९९
विष्णुगोप, पलक्कद के, ३८५
विष्णुपद, ८४
विष्णुपालित, ३८८
विष्णुमित्र, २९२
विष्णुवर्धन, ४३७, ४७२
विसदेव, ३९२
विस्ससेन, ७८
विहार-यात्रा, २३९
वी (wei), ३४१
वीतभय, ३७६
वीतहव्य, ७८
वीतिहोत्र, ११३, १७३
वीमा काडफिसेस, ३३९, ३४६
वीरकूर्च-द्वितीय, ३७२
वीरचोड, १५
वीरमत्स्य, ५५
वीरवर्मन, ३७२
वीरशय्या मोतिफ, ४६७
वीरसेन, मौर्य, २५७, २६५
वीरसेन, साव, ४१३, ४१६
वीरसेन, सेनापति, २७१, २८५
वु-मुन, ३३५
वू-नू-लू, ३१६
वेंगी, ३७०, ३९९
वेजयन्ती, ३६३
वेथादीप, १४५
विदेहपुत्र, ६२
वेध, राजा, ८२
वेशाली, दे० वैशाली ।
वेस्पशी, ३४९
वेस्सन्तर, १३४
वेहाल, वेहल्ल, १५६, १५८
वैचित्र्यवीर्य दे० धृतराष्ट्र वैचित्र्यवीर्य ।
वैजयन्ती, ३६४, ३७३, ३७४
वैदेहीपुत्र, १०३, १५५
वैद्य, १९०
वैन्यगुप्त, ४४४
वैन्यदेवी, ४३८

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वैराज्य, १२०
वैराट, १०६
वैरोचन, ८६
वैशम्पायन, ८, १७, ३०, ३४
वैशाली, ९४, १५४, १५८, १६३, ३९४, ४१८
वैशाली-आधिष्ठान-अधिकरण, ४१९
वैश्रवण, १६२
वैहार, ८८
वोक्काण, ४४९
वोनोन्स, ३११, ४६४
वोहारिक महामत्त, दे० व्यावहारिक महामात्र।
व्यवहार-समता, २६३
व्याघ्रदेव, ४०२
व्याघ्र-पराक्रम, ४०९
व्याघ्रबल-पराक्रम, ४२२, ४३०
व्याघ्रराज, ३९९
व्याघ्रसेन, ३७०
व्यावृत, ३८८
व्यावहारिक महामात्र, १५५, २६१
व्यास, ४१
व्युथ, २५१
व्रज़, २३६
व्रात्य, ९७, ८९, ११०
वृद्धद्युम्न, ३७
वृषल, २१८, २६२
वृषसेन, २५८
वृष्ण-वंश, १०९
वृहस्पति, २५७, १५९

श

शंकरगण, ४७२
शक, ५, ३११, ३१५, ३७४
शकमुरुण्ड, ४०६
शक-सम्वत्, शकाब्द, २४, ३४५
शकस्थान, ३१७, ३५४, ३५८, ४६४
शक्तिकुमार, शक्तिश्री, ३०४
शक्रादित्य, ४२६
शतधन्वन, २५७, २५९
शतानिक, जन्मेजय के पुत्र, ३६, ४१
शतानिक-द्वितीय, १०३
शतानिक-परन्तप, १५१
शतानिक सात्राजित, ३६, ७७, १२९
[illegible]
शरभ, १८२
शरवर्मन, ४५१
शश, ३२६, ३३३
शशांक, ४५३
शाकल, शाकलनगर, दे० सागल, सागलनगर।
शाकल्य, ४८, ५३
शाक्य, ८१, १२०
शाक्य राज्य, १४३
शातकर्णि-प्रथम, १४९, २१५, २९९, ४०८
शान्तनु, २२
शापूर-द्वितीय, ३५४, ३५६, ३७८
शाब, ४१३, ४१६
शालंकायन, दे० सालाकेनोई।
शालिवाहन, २९३, ३४३
शालिशूक, २५७, २५८
शाल्व, ५६, ११७
शासन, गाँव का, २१५
शासनहार, २३६
शाहबाजगढ़ी, २२६
शाहंशाह, ३८४
शिउमी, ३३७
शिखण्डिन, ६०
शिखरस्वामिन, ४१६
शिबि, ५४
शिबिपुर, १८७
शिलक शालावत्य, ६०
शिव शिवि, दे० शिब।
शिव की उपासना, २३८, ३४० ४२४
शिवगुप्त, ३९१
शिवदत्त, ३७०
शिवनन्दी, ३९८
शिवपुर १८७
शिव-भागवत, ३४०
शिवमेघ, शिवमघ, ३९४
शिवलकुर, ३७३
शिवश्री आपिलक, २९७
शिवसेन, ३२५
शिवस्कन्ददत्त, ३८८
शिवस्कन्दनाग, ३७३
शिवस्कन्दवर्मन, ४०८

शिवि, १३४, १८७
शिशुनंदी, २८८, ३९८
शिशुपाल, १०२
शीलवती, १२४
शीलादित्य, धर्मादित्य (मो-ला-पो के), ४४४, ४७१
शी-हॉउ, ३३७
शुंग, २९०
शुंग-युन, ३३७
शुंग राजा, २७०
शुआंग्मी, ३३७
शुकुलि-देश, ४१७
शुक्तिमती, १०१
शुक्तिसाह्वय, १०१
शुचिवृक्ष, ३७
शुद्धोदन, ८१
शुनःशेप, १२७
शुल्क, ३८७
शुष्कलेत्र, २२७
शूद्र (सोद्रई जाति), १९०, २०७, ४०५
शूद्रक, ५०४, २८५, ४१८
शूद्रराजा, २६०
शूरसेन, १०६, १११, ११७, १४७
शूरसेवक, ५६
शूलिक, ४४८, ४५०
शैवधर्म, ३४०, ३५३
शैशुनाग, ९१
शोडास, ३२७
शोण, २०२
शोण कोलिविस, १३२
शोणदण्ड, १५५
शोमशर्मन, २५७
शौनक, इन्द्रोत दैवाप, १६, १७, ३६, ४१
शौनक, कापेय, ३६
श्पलगदम, ३१२
श्पलहोरा, ३१२
श्रमण महामात्र, २५०
श्रावस्ती, दे० सावत्थी।
श्रावस्ती भुक्ति, ४२२
शृंजय, २४, ३३, ५८
श्रीकण्ठ, ४३५, ४५१
श्रीगुप्त, ३९२
श्रीनगरी, २२७
श्रीपुर, ४००
श्रीप्रताप, ४२२
श्रीमार-राजवंश, ८५
श्रीराज्य, ७२
श्रीलंका, सिंहल, २४४, ४०६
श्रीविक्रम, ४१४
श्रीविजय, ७२
श्रीविषय, ७२
श्रीवीर पुरुषदत्त, ३७०
श्रीहरिदास, ३९२
श्रुत मुद्राएँ, ३९८, ३९९
श्रुतसेन, १५
श्रेणिक, १५३
श्रेष्ठि-सार्थवाह कुलिक-निगम, ४१९
श्वेतकेतु, ४०, ५०, ११३

स

संक्षोभ, ४३४, ४४३
संख्यापक, २१०
संग्रहण, २०९
संग्रहीत्रि, १२७
संघदामन, ३७८
संघमुख्य, १०९
संघरक्ष, ३५१
संचरंतक, संचारिन, ३८१, ३९०
संजय (काम्पिल्य के राजा), १०६
संजय (मगध के राजा), १६५
संजय (सूत), १२६
संस्था, २१४
सकरौली (Sacarauli), ३११
सचिव, मंत्री, १९०, २७२
सतत्रस्त्र, ३३३
सतियपुत्र, २४४
सत्ताभु, १११, १२९
सत्ययज्ञ, ४१, ५२, ५७
सत्रि, २१५
सत्वात, ७०, १०७, ११०
सदानीरा, ४३
सनकानीक, ४०४
सनबरस, ३३३
सन्दनेस, ३५८
सन्द्रोकोट्टस, दे० चन्द्रगुप्त मौर्य।
सन्निधात्रि, १२६, २१६
सपेदन, ३३३

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सफ़ारिद-वंश, ३५६
सब्बत्थक, १५५
सब्बमित्र, ८३
समतट, २२८
समाचारदेव, ४७४
समापो, २२६, २२९
समाहर्त्तृ, २१६
समिति, १३२
समुद्रगुप्त, ३४५, ३५६, ३९५
समुद्रविजय, ९१
सम्प्रति, २५८
सम्वोधि, २४९
सम्बोस, १९१
सम्भुत्तर (सुम्होत्तर), ७६
सम्राट्, ४७, १२१
सरगनुस, ३५८
सर्पिका, ७८
सर्वक्षत्रान्तक, २११, ३९६
सर्वञ्जह, १६६
सर्वतात, २९१, ४०८
सर्वनाग, ३९८, ४१७
सर्वभूमि, सार्वभौम, २१, १२५, १३०
सर्वराजोच्छेता, ३९६, ४०९
सर्ववर्मन, ४५१, ४६६
सस, दे० शश।
ससानियन, ३५३, ३७८
सहज, १०६
सहजाति, १०१
सहदेव सारंजय, ९५
सहस्रानीक, १०३
सांकाश्य, ४४
सांख्यायन, २९
सांगल, १८६
सांधिविग्रहिक, ४१६
साकेत, ७९, ८३, २७६, ३४९
सागल, सागलनगर (सियालकोट), ५३,
    २३६, ३०८, ४०५, ४७०
सातवाहन, २८९, २९६, ३१७
सातवाहनिहार, ३००, ३८८
साताहनिरट्ठ, ३००, ३८८
सात्रासह, ५८
साम्राज्य, १२१
सार्थवाह, ४१८
सालाकेनोई, शालंकायन, ३७०, ४०१
सावत्थी, श्रावस्ती, ७९, ८३, १४८,
    ४७३
साहलिन, १६४, १७६
सिंहचन्द्र, ४११
सिंहपुर, ७०
सिंहल, दे० श्रीलंका, ४०७
सिंहवर्मन (पल्लव), ३७२
सिंहवर्मन (मंदसौर), ३९६
सिंहविक्रम (चन्द्रगुप्त-द्वितीय), ४११
सिंहविष्णु, ३७२
सिकन्दर, एपीरस का, २४५
सिकन्दर, कोरिन्थ का, २४५
सिगेर्डिस (Sigerdis), २७८
सिद्धार्थ (बुद्ध), ८१
सिद्धार्थ (महावीर के पिता), ९४
सिन-तु, दे० सिन्धु, ४६३
सिन्धु-सौवीर, १९०, ३४४, ३७६, ४७९
सिमुक, २९३, ३०३
सिरिवड्ढ, १५१
सिरि-सात, ३०३
सिरेंस्ट्रीन (Syrestrene), ३२७
सिलवत, १५६
सीता, ६३
सीथियन शासन, ३८१
सीरध्वज (जनक-द्वितीय), ४४, ४६
सीरिज, २७८
सीहपुर, १०१
सुंसुमारगिरि, १०४, १४४
सुई-विहार, ३१८, ३८४, ३३४, ३४४,
    ४५७, ५५०
सुकल्प, १७५
सुकेतवर्मन, २६८
सुकेशा भारद्वाज, ६४, ८१
सुगांग महल, २०३
सुज्येष्ठ, दे० वासु ज्येष्ठ।
सुतसोम, ९७
सुदर्शन झील, २००, ४३३
सुदर्शनपुर, ११२
सुदस्सन, ६०
सुदास, ६०
सुनीथ, १०२
सुनीद, १५८

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सुभागसेन, १७७, २६५
सुमति, ९५
सुमन्त्र, १२७
सुमात्रा, ७२
सुयशस, २५७
सुरश्मिचन्द्र, ४४
सुराष्ट्र, सौराष्ट्र १९९, २१२, २१९,
 २३१, २७८, ३१७, ३७५, ४०६
सुरुन्धन, ६०
सुवर्णगिरि, २१ , २२६, २२९
सुवास्तु, १८२, १८३
सुविशाख, ३७७
सुशर्मन, २९०
सुषेण, १५
सुसीम, २२२
सुस्थितवर्मन, ४५२, ४५४, ४८५
सूक्ष्मशिव, ४५४
सूत, १२५, १२७, १३१, १३२
सूरपारक, ३५९, ३७६
सूर्यवर्मन, ४५१
सेणिय, १५३
सेतकन्निका, ३००
सेनव्य, ७९, ११९
सेनागोप, ३८६
सेनानायक महामात्त, १७
सेनानी, १२७
सेनापति, १५१, २०५, २२२
सेन्ट थॉमस, २८१
सेयनाग, १५८
सेयविया, ५२
सेर, ७२
सेल्युकस, २००
सै-वांग, ३१५
सोअस्तुग, १८३
सोग्डियन, १८१, ३१०, ३१९
सोत्थिवती नगर, १०१
सोत्थिसेन, ६२
सोद्रई (सोग्डोई), १९०
सोन सात्रासह, ५८
सोफ़ाइटस, दे० सौभूति।
सोफ़गसेनुस, दे० सुभागसेन।
सोफन नामक भारतीय, ४५९
सोमक-वंश, ५८
सोमक साहदेव्य, ५८, ९५, ११०
सोमदेव, ४७०
सोलस महाजनपद, ७५
सोवीर, दे० सौवीर।
सौद्युम्नि, २३
सौफ़ीर, ५
सौभूति, १८६
सौवीर, ४, १७३, १४७, ३७६, ३७९
स्कन्द, २३८
स्कन्दगुप्त, ३५६, ४२७, ४७०
स्कन्दनाग, ३५८
स्कन्दनाग-शतक, २९६, २७४
स्कन्दवर्मन, ३७२
स्कन्दस्वाति, २९६
स्ट्राटेगो, स्ट्रैटेगोस, ३२४, ३८१
स्ट्रैटो, २८१, २८३, ३०८
स्त्री-अध्यक्ष, २३४
स्थपति, १२७
स्थानीय, २१०
स्यन्दिका, ७८
स्वभ्र, ३७५, ३८१, ५५९
स्वर्जित, ११४
स्वामिदत्त, ३९९, ४८१
स्वाराज्य, १२०

ह्

हकुश्री, ३०४
हगान, ३२६
हगामश, ३२६
हत्थालवक, १४८
हत्थिगाम, ९४
हत्थिगिह, ३०५
हरिवर्मन, ४५०
हरिश्चन्द्र, ८०
हरिषेण (प्रशस्तिकार एवं अधिपति),
 ४०३, ४०८
हरिषेण (वाकाटक-राजा), ३७०, ४३३,
 ४७४
हर्मेओस, २८१, ३०९, ३१३, ३२२,
 ३३८, ३४६
हर्यंक-कुल, ९१
हर्ष (कन्नौज के), ४४७, ४५०, ४६६,
 ४७१
हर्षगुप्त, ४४८, ४५०

हर्षगुप्ता, ४५०
हल्ल, १५७, १५८
हस्तिन्, ४४३
हस्तिदशना, २५०
हस्तिनापुर, २०, ३६
हस्तिवर्मन, ३९९, ४८१
हाइपार्क (Hyparch), २३९
हाथीगुम्फा-शिलालेख, १९९, २७२, ३०५
हारितीपुत्र विष्णुकड छनु कुलानन्द शातकर्णि, ३७३
हरितीपुत्र शिवस्कन्दवर्मन, ३७४
हाल, २९६
हिन्त्रिकों, २११
हिन्दुओं, १७९
हिप्पोकौर, ३७३, ४७८
हिप्पोस्ट्रेटस, ३०७
हियुंगनू ह्यु गनू, ३३५
हिरण्यगर्भ, ८१
हिरण्यनाभ, ८१, ८२, ९२, ९३
हिरण्यवती, ९९
हिरण्यवाह, २०२
हुविष्क, ३४१, ३५१
हूण, ४२९, ४४३, ४५२, ४६८, ४७०
हूण-मण्डल, ४७०
हेफ़ीस्चन, ४७६
हेलिग, २२५
हेलिओक्लीज, ३०९
हेलिओडोरस, २८८
हैहय, ११३, १७३
होती, ३४०, ३५०, ४२२
होरमिसदास, ३५६

State Museum Library
Lucknow
6494